बहुवचन

हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका

अंक : 64-65-66 जनवरी-सितंबर, 2020 UGC-CARE Listed, ISSN : 2348-4586

विशेषांक परामर्श
प्रो. के. एन. पंडित
श्री जवाहरलाल कौल
श्री आशुतोष भटनागर

परामर्श
अधिष्ठाता, समस्त विद्यापीठ :
प्रो. हनुमानप्रसाद शुक्ल
प्रो. प्रीति सागर
प्रो. नृपेंद्र प्रसाद मोदी
प्रो. कृपाशंकर चौबे
प्रो. मनोज कुमार
प्रो. अवधेश कुमार

संरक्षक
प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल

संपादक मंडल
प्रो. हरमहेन्द्र सिंह बेदी
प्रो. जी. गोपीनाथन
प्रो. कुलदीप चंद अग्निहोत्री
डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी
प्रो. उदय प्रताप सिंह
प्रो. कृपाशंकर चौबे (समन्वयक संपादक)

सहायक संपादक
डॉ. अमित कुमार विश्वास

ज्ञान शांति मैत्री
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय
हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रभात
प्रकाशन

बहुवचन
हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
अंक : 64-65-66 (जनवरी-सितंबर, 2020) UGC-CARE Listed, ISSN : 2348-4586

प्रकाशक : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

सह-प्रकाशक एवं वितरक : प्रभात प्रकाशन प्रा.लि. 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
011-23289777, 7827007777, ई-मेल : prabhatbooks@gmail.com

संपादकीय संपर्क :
समन्वयक संपादक, बहुवचन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट-हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. 9970244359, ई-मेल : bahuvachan.wardha@gmail.com

प्रकाशन प्रभारी : डॉ. रामानुज अस्थाना

© संबंधित लेखकों द्वारा सुरक्षित
प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। न्याय क्षेत्र : वर्धा

बिक्री एवं प्रसार
प्रभारी : सूचना, संपर्क, प्रसार—डॉ. प्रकाश नारायण त्रिपाठी
प्रकाशन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
गांधी हिल्स, पोस्ट-हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र) भारत
फोन : 07152-232943, मोबाइल नं. (वाट्सएप सहित) 7278114912
ई-मेल : pub.mgahv@gmail.com वेबसाइट : www.hindivishwa.org

अक्षर-संयोजन एवं पृष्ठ-सज्जा
विजय खोब्रागडे

टंकण सहयोग
सुरेश यादव

वार्षिक सदस्यता के लिए केवल ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण निम्न है—
Name : Finance Officer, Mahahtma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Bank Name : Bank of India, Wardha, Branch : Hindi Vishwavidyalaya, Wardha
Accont No. : 972110210000005, IFSC Code No. : BKID0009721

सामान्य अंक : रु. 75/-, यह अंक : रु. 225/-, वार्षिक शुल्क रु. 300/-
विदेश में : हवाई डाक : एक प्रति 10 अमेरिकी डॉलर, 8 ब्रिटिश पाउंड

BAHUVACHAN
A QUARTERLY INTERNATIONAL JOURNAL IN HINDI
PUBLISHED BY: MAHATMA GANDHI ANTARRASHTRIYA HINDI VISHWAVIDYALAYA
GANDHI HILLS, POST-HINDI VISHWAVIDYALAYA, WARDHA-442001 (MAHARASHTRA)
INDIA.

अनुक्रम

आरंभिक 7

कीर्ति-कलश

जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध/रजनीश कुमार शुक्ल 9

कश्मीरियत का सांस्कृतिक संदर्भ/जवाहरलाल कौल 17

कश्मीरी की आदि कवयित्री लल्लेश्वरी/रतनलाल शांत 21

कश्मीर की त्रिक परंपरा/महेश कौल 27

आचार्य जयंत भट्ट : कथ्य व तथ्य/जयंत उपाध्याय 31

कश्मीर में बौद्ध धर्म-दर्शन/प्रमोद कुमार सिंह 43

स्थापत्य का वैभव/ज्योति शुक्ला 51

कला वैशिष्ट्य/अवतार मोटा (अनुवाद—नंदिनी सिन्हा) 69

कश्मीरी कलाकृतियां 83

सांगीतिक वैभव/अप्रमेय मिश्र 87

कश्मीरी नाटकों का इतिहास : एक विहंगम दृष्टि/शशिशेखर तोषखानी 93

संवाद

वरिष्ठ कश्मीरी नाटककार पद्मश्री मोती लाल क्यमू से अग्निशेखर की बातचीत 99

वरिष्ठ इतिहासकार पद्मश्री के.एन. पंडित से अमित कुमार विश्वास की बातचीत 103

साहित्य

संस्कृत साहित्य में कश्मीर का अवदान/योगेश शर्मा 107

महामाहेश्वर अभिनवगुप्त/क्षमा कौल 115

अभिनवगुप्त का सौंदर्यशास्त्रीय अवदान/मयंक शेखर 123

ध्वनि में रस और रस में जीवन की तलाश/उदय प्रताप सिंह 147

संवाद परंपरा के प्रतिमान 'अभिनवगुप्त'/जयप्रकाश सिंह 155

फारसी साहित्य में कश्मीर का अवदान/के.एन. पंडित (अनुवाद—शंभू जोशी) 165

उर्दू कहानी में जम्मू-कश्मीर का अवदान/दीपक बुदकी (अनुवाद—मिथिलेश कुमार) 177
उर्दू साहित्य में कश्मीर का अवदान/प्रेमी रोमानी (अनुवाद—हिमांशु शेखर) 191
हिंदी साहित्य में कश्मीर का योगदान/कृपाशंकर चौबे 199
कश्मीरी साहित्य का इतिहास/गौरीशंकर रैणा 209
डोगरी साहित्य का उद्‌भव और विकास/विनोद कुमार गुप्ता (निर्मल विनोद) 227
डोगरी सृजनशीलता का समकाल/पद्‌मा सचदेव 241

कहानी

वे अड़तालीस घंटे/आशीष कौल 247
ललितादित्य के मार्तंड/छत्रपाल 273

कविता

आधुनिक कश्मीरी कविताएं

ना-तैयारी/मास्टर जिंदा कौल 281
अरे ओ बागबां/गुलाम अहमद 'महजूर' 284
मुझे है आस कल की/दीनानाथ नादिम 285
घास फूल/रहमान राही 287
मुझसे भी कहना/अमीन कामिल 288
कब न किया विषपान हमने/मोतीलाल 'साकी' 289
कब्रिस्तान है शहर हमारा फिर भी कोई आवाज नहीं/रफीक राज 290

आधुनिक कश्मीर की उर्दू कविताएं

और मैं चुप रहा/फारूख नाजकी 291
गजल/प्रेमी रोमानी 292
क्या तुममें कोई ऐसा है/ताहिर मुजतर 293
सवाल तुमसे/शबनम अशायी 294
आंख खुली/नुसरत रशीद 295
शब्द-दर-शब्द/रख्शदां रशीद 296

आधुनिक डोगरी कविताएं

रंगीन कश्मीर/पद्‌मा सचदेव 297
बर्फ/मोहन सिंह 298

प्यार भरी हुई चांदनियां/शिवराम 'दीप' 299
मुंह अंधेरा/ध्यान सिंह 300

आधुनिक कश्मीर की हिंदी कविताएं

फैलेगा-फैलेगा हमारा मौन/शशिशेखर तोषखानी 301
पितृभूमि/रतनलाल शांत 303
जड़ें/क्षमा कौल 304
शांति प्रक्रिया/महाराज कृष्ण संतोषी 305
आचार्य अभिनवगुप्त से/अग्निशेखर 306
ब्लैकहोल/सतीश विमल 307
कश्मीरी आत्मा/दिलीप कुमार कौल 308

विमर्श

कश्मीर के सांस्कृतिक संघर्ष के विविध पक्ष/कुलदीप चंद अग्निहोत्री 309
विस्थापन की अंतहीन पीड़ा/आशुतोष भटनागर 333
जलावतनी का इतिवृत्त/सीमा संगसार 345
कश्मीर केंद्रित उपन्यासों में निर्वासन की त्रासदी/नेहा चतुर्वेदी 351
जड़ों से उखड़ने की त्रासदी/विजय कुमार कौल 361

भारतीय साहित्य में कश्मीर

मलयालम साहित्य में कश्मीर/सुप्रिया पी. 365
कन्नड़ उपन्यास 'कशीर' में कश्मीर/मनोरंजिनी कोटेमने 373
कन्नड़ साहित्य में कश्मीर/टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी 379
तमिल साहित्य में कश्मीर/एम. गोविंदराजन 383
तेलुगु साहित्य में कश्मीर/एम. वेंकटेश्वर 391
गुजराती साहित्य में कश्मीर/अशोक चावड़ा 405
मराठी साहित्य में कश्मीर/संदीप मधुकर सपकाले 415
पंजाबी साहित्य में कश्मीर/हरमहेन्द्र सिंह बेदी 423
ओड़िया साहित्य में कश्मीर/अरुण होता 431
बांग्ला साहित्य में कश्मीर/कल्लोल चक्रवर्ती 437

अद्यतन

जम्मू-कश्मीर में नव-निर्माण और नवजागरण की वेला/रसाल सिंह 443

शोध

जम्मू-कश्मीर में औषधीय पौधे : आवश्यकता एवं संभावना/रोमसा शुक्ला 449

देशांतर

कश्मीर पर मेहमान नजर/ह्वेनसांग (प्रस्तुति : कुमार निर्मलेंदु) 457

अंतर्देशीय यात्रा

स्वामी विवेकानंद की कश्मीर यात्रा/प्रस्तुति : डॉ. भवान सिंह राणा 465

मेरी कश्मीर यात्रा/विनोबा भावे 467

भाषा-चिंतन

कश्मीरी और नागरी/राजनाथ भट्ट 475

कश्मीरी भाषा का भविष्य/महाराजकृष्ण मुस्सा भरत 479

अपनी हिंदी-नागरी सँवारिए/वृषभ प्रसाद जैन 485

आवरण चित्र

आवरण पर कश्मीर की अधिष्ठात्री कश्मीरा देवी का चित्र है। कश्मीर पुराख्यान के अनुसार सतीसर की अपार जलराशि का निकास करने के बाद कश्मीरा देवी, जो मूलतः नदी हैं, ने कश्मीर की भूमि पर मनुष्यों का पुनर्वास करने में कश्यप ऋषि का हाथ बंटाया था। इस चित्र में कश्मीरा देवी पारंपरिक प्राचीन कश्मीरी वेशभूषा (फिरन) और आभूषणों से अलंकृत एक विशेष कश्मीरी शैली में उकेरे कमल पर आसीन हैं। पृष्ठभूमि में आख्यान वर्णित प्राकृतिक परिवेश है। चित्रकार हैं–वीरजी सुम्बली। आवरण पृष्ठ की सज्जा डॉ. ज्योतिष पायेङ और राजेश आगरकर ने की है।

आरंभिक

'बहुवचन' ने विभिन्न अनुशासनों में जम्मू और कश्मीर के अवदान को याद करते समय भरसक यत्न किया है कि पत्रिका में भाषा, साहित्य और अनुवाद की केंद्रीयता बनी रहे और उसके अनुषंगी ज्ञानानुशासनों; यथा–कला, संस्कृति, पत्रकारिता, सिनेमा, समाज विज्ञान, धर्म और दर्शन आदि के लिए भी समुचित स्थान रहे। संस्कृत साहित्य के आचार्य मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनंदवर्धन, क्षेमेंद्र बिल्हण, कल्हण, सोमदेव, गुणाढ्य, अभिनवगुप्त, उत्पल, कैयट, मम्मट, मंख, जगद्धर भट्ट इसी धरती के थे। संस्कृत साहित्य में उनकी देन अप्रतिम है। तेरहवीं शताब्दी तक कश्मीर में संस्कृत काव्य चिंतन अबाध चलता रहा। मुस्लिम शासनकाल में कश्मीर ने फारसी साहित्य और उर्दू अदब के निर्माण में योगदान किया। डोगरी, कश्मीरी तो जम्मू-कश्मीर की मुख्य भाषाएं ही हैं जिनमें बहुत मूल्यवान साहित्य रचा गया। बल्ती, पहाड़ी, पंजाबी, गूजरी और दरद (शीना) भी वहां की मुख्य भाषाएं हैं।

संसद द्वारा जम्मू-कश्मीर राजभाषा विधेयक पारित कर पांच भाषाओं–कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी को जम्मू-कश्मीर की राजभाषा बना दिया गया है। इससे अब तक उपेक्षित रहीं कश्मीरी तथा डोगरी जैसी भाषाओं को पहली बार न्याय मिला है। जम्मू-कश्मीर की आबादी का बड़ा हिस्सा जीवन व्यवहार में इन भाषाओं को बरतता है, उन्हें राजभाषा बनाने से उन्हें एहसास होगा कि शासन में उनकी भी भागीदारी है। पांच भाषाओं–कश्मीरी, डोगरी, उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी को जम्मू-कश्मीर की राजभाषा बनाने से वस्तुतः वहां की जनसंख्या की समावेशी संस्कृति के प्रति सम्मान प्रकट हुआ है। कश्मीरी को जहां तक जम्मू-कश्मीर की राजभाषा बनाने का प्रश्न है, उसकी वैदिक संस्कृत की पृष्ठभूमि रही है और आर्य भाषा परिवार की वह समृद्ध भाषा है किंतु उसके साथ हुए अन्याय का इतिहास शताब्दियों पुराना है। 14वीं शताब्दी में कश्मीर में मुस्लिम शासन कायम होने के साथ ही फारसी राजभाषा घोषित की गई थी। उसके पहले कश्मीरी शारदा लिपि में लिखी जाती थी। आजादी के बाद भी कश्मीरी भाषा के प्रति अन्याय दूर नहीं हुआ। स्वतंत्र भारत में भी कश्मीरी की पारंपरिक शारदा लिपि की जगह फारसी-अरबी लिपि नस्तालीक कश्मीरी की आधिकारिक लिपि बनाई गई। किंतु जो कश्मीरी अरबी-फारसी लिपि से अनभिज्ञ थे, उन्होंने देवनागरी का प्रयोग करना जारी रखा। वस्तुतः अधिकतर कश्मीरीभाषी नस्तालीक लिपि नहीं जानते। वे देवनागरी जानते हैं और कश्मीरी के अनेक लेखक देवनागरी में ही लिख रहे हैं। डोगरी के अधिकांश लेखक भी देवनागरी में ही लिखते हैं। डोगरी की मूल लिपि टाकरी रही है जो आज लगभग इतिहास हो चुकी है। जम्मू संभाग के 10 जिलों में करीब 60 लाख डोगरीभाषी नागरिक रहते हैं। उनके 12 वर्ष निरंतर संघर्ष

करने के बाद 2003 में अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में डोगरी को शामिल किया था। अब जाकर डोगरी को राजभाषा बनाने के निर्णय से उस भाषा को समुचित प्रतिष्ठा मिली है।

पिछले 131 वर्षों से उर्दू जम्मू-कश्मीर की एकमात्र राजभाषा थी। तथ्य है कि जम्मू-कश्मीर में अब तक केवल उर्दू के राजभाषा होने से उर्दू नहीं जानने वाले लाखों लोग अदालतों और सरकारी दफ्तरों तक में असहाय महसूस करते थे। अब वे कागजात आधिकारिक पांचों भाषाओं में रहेंगे और उम्मीद है कि कश्मीरी और डोगरी सहित पूरे प्रदेश को एकसूत्र में पिरोने का काम हिंदी कर सकेगी।

इस अंक में संस्कृत, फारसी, कश्मीरी, डोगरी, उर्दू और हिंदी साहित्य में जम्मू-कश्मीर के अवदान को रेखांकित करनेवाले लेखों के साथ ही आधुनिक कश्मीरी तथा डोगरी कविताओं तथा आधुनिक कश्मीर की उर्दू व हिंदी कविताओं से एक चयन भी दिया गया है ताकि पाठकों को आधुनिक जम्मू-कश्मीर के प्रतिनिधि साहित्य की एक झलक मिल सके। विभिन्न विद्वानों ने इस अंक में कश्मीर के साहित्यिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक वैभव को रेखांकित किया है। वह वैभव कश्मीर के साहित्य, कला, संस्कृति में ही नहीं मुखर हुआ, अपितु दूसरी भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी दिखता है। मलयालम, कन्नड़, तमिल, तेलुगु, गुजराती, मराठी, पंजाबी, ओड़िया और बांग्ला साहित्य में कश्मीर पर उन भाषाओं के सुपरिचित साहित्यशिल्पियों ने लिखा है। कश्मीर देश ही नहीं, विदेशियों को भी सदियों से आकृष्ट करता रहा है। ह्वेनसांग कश्मीर में दो साल रहा था। 'देशांतर' स्तंभ में 'ह्वेनसांग का कश्मीर पर मेहमान नजर' शीर्षक लेख दिया गया है। अपने देश के दो महापुरुषों–विवेकानंद और विनोबा भावे की कश्मीर यात्रा के वृत्तांत ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। उन्हें पुनर्प्रस्तुत किया गया है।

विमर्श खंड में कुलदीप चंद अग्निहोत्री के लेख 'संस्कृति के संहार की वेदना', आशुतोष भटनागर के लेख 'निर्वासन की अंतहीन पीड़ा', सीमा संगसार के लेख 'जलावतनी का साहित्य', विजय कुमार कौल के लेख 'जड़ों से उजड़ने की त्रासदी' और नेहा चतुर्वेदी के लेख 'कश्मीर केंद्रित उपन्यासों में निर्वासन की त्रासदी' साहित्य का केंद्रीय विमर्श बनाने में सहायक होंगे, ऐसी आशा है।

इस अंक के संयोजन में महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हरमहेन्द्र सिंह बेदी और वहां के कुलपति कुलदीप चंद अग्निहोत्री, फारसी के सुपरिचित विद्वान प्रो. के. एन. पंडित, सुप्रसिद्ध पत्रकार जवाहरलाल कौल, जम्मू-कश्मीर अध्ययन केंद्र के निदेशक आशुतोष भटनागर और कवि-कलाकार अग्निशेखर ने बहुत सहायता पहुंचाई है। इन महानुभावों के सहयोग के बिना इस रूप में यह अंक आपके सामने न होता। विश्वविद्यालय परिवार के सदस्य सर्वश्री कादर नवाज खान, जयंत उपाध्याय, ऋषभ कुमार मिश्र, राजेश कुमार यादव, प्रकाश नारायण त्रिपाठी और नटराज वर्मा ने प्रूफ पढ़कर संपादन सहयोग किया। उनके प्रति आभार। अंक पर आपकी प्रतिक्रिया का इंतजार रहेगा।

–कृपाशंकर चौबे

जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध

रजनीश कुमार शुक्ल

जम्मू-कश्मीर का सांस्कृतिक अवबोध भारत और भारतीयता का अवबोध है। सांस्कृतिक अवबोध भाषा और साहित्य के परिप्रेक्ष्य से ही होता है। कोई और परिप्रेक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर संस्कृति का बोध हो सके, लेकिन कठिनाई यह है कि भारत के भीतर जो लोग उन्नीसवीं शताब्दी के बाद का सांस्कृतिक इतिहास लिख रहे थे, उन लोगों ने सांस्कृतिक अवबोध को मृत और भौतिक वस्तुओं के आधार पर लिखने का यत्न किया। उस यत्न का परिणाम था कि संस्कृति भी एक तरह से वस्तु तथ्य हो गई। इसलिए कश्मीर के सांस्कृतिक अवबोध को गंभीरता से समझने की आवश्यकता है। भारत और पूरी दुनिया के अध्येता इस बात को लेकर सहमत हैं कि कश्मीर की जो सांस्कृतिक मान्यताएं हैं, वे भारत की मूल सांस्कृतिक मान्यताएं हैं। कश्मीर की संस्कृति अर्थात् भारत की संस्कृति। भारत के किसी भी कोने में यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा हो, जिसका संस्कार होता है, उसे उस समय कश्मीर की ओर मुंह करके बैठाया जाता है और तब वह प्रार्थना करता है—'नमस्ते शारदे देवी कश्मीरपुरवासिनि त्वामहं प्रार्थये नित्यं विद्यादानं च देहि मे' अर्थात् कश्मीरपुर, कश्मीर क्षेत्र, कश्मीर मंडल में निवास करने वाली शारदा देवी, मैं आपकी प्रार्थना करता हूं, आपको प्रणाम करता हूं और यह विनती करता हूं कि मुझे विद्या दान दें। भारत के पुरातन षोडश संस्कारों में यज्ञोपवीत ही एक ऐसा संस्कार है जिसमें माना जाता है कि इसके बाद मनुष्य का पुनर्जन्म होता है। वह प्राकृत मनुष्य से ज्ञान की ओर बढ़ने वाला परिवर्तित मनुष्य होता है और यज्ञोपवीत संस्कार बिना कश्मीर को, बिना शारदा पीठ की देवी शारदा को याद किए हुए नहीं हो सकता है। एक बात तो स्पष्ट है कि पूरे भारत में शास्त्रों के अंतर्गत, हिंदू संस्कारों की परंपरा के अंतर्गत यह मान्यता है कि ज्ञान का केंद्र और ज्ञान की देवी शारदा हैं और वह कश्मीर में निवास करती हैं।

हिंदू धर्म की वैदिक परंपरा में ही नहीं, अपितु भारतीय धर्म साधना की बौद्ध एवं जैन धर्म की जो समानांतर भारतीय धाराएं हैं, उनमें भी कश्मीर का विशेष महत्त्व है। चीनी यात्री ह्वेनसांग, जिसने कश्मीर की पूरी यात्रा की थी और जिसने नालंदा के साथ-साथ कश्मीर में भी अध्ययन किया था, जिस काल में वह लिख रहा है, उसका यह कहना है कि उस समय 500 से अधिक बौद्ध विद्वान कश्मीर में थे, जिन्हें पूरी दुनिया में बौद्ध अध्येता के रूप में जाना जाता है। यहां तक कि कनिष्क ने कश्मीर के कुंडलवन में चतुर्थ बौद्ध संगीति कराई थी जिसकी अध्यक्षता वसुमित्र ने की थी। बाद के दिनों में आठवीं शताब्दी का कालखंड यानी 711 में मोहम्मद बिन कासिम के आक्रमण के बाद

723-24 ई. से 760-761 ई. तक जो ललितादित्य का कालखंड है, उस समय कश्मीर न केवल राजनीतिक दृष्टि से पूरे एशिया महाद्वीप का केंद्र बनकर उभरा था बल्कि वह विद्या और ज्ञान का भी केंद्र था।

कश्मीर शैव दर्शन का भी बड़ा केंद्र रहा है। छठी-सातवीं शताब्दी में वसुगुप्त द्वारा शैव दर्शन के पुनरोदय के बाद 9वीं से 13वीं शताब्दी तक कश्मीर पूरे भारत में फैले हुए शैव मतावलंबियों के लिए महत्त्वपूर्ण केंद्र रहा है। अद्वैत की एक धारा जो शंकराचार्य ने स्थापित की थी, वह कश्मीर में जाकर परिवर्तित हो जाती है जिसे पंचदेव उपासना की धारा कहा जाता है। पंचदेव की उपासना में भी त्रिपुर सुंदरी और शारदा देवी के रूप में शक्ति की उपासना केंद्र में है। इसकी उपासना को शंकराचार्य शारदा पीठ से आरंभ करते हैं और आरंभ करते हुए बहुत साफ शब्दों में कहते हैं कि 'ललाटे काश्मीरं विलसति' यानी देवी के ललाट पर कश्मीर यानी केसर का टीका है। कश्मीर मंडल वही है जिसको हम सामान्य तौर पर सप्त सिंधु का क्षेत्र मानते हैं। सप्त सिंधु यानी सात नदियों का क्षेत्र। ये सात नदियां जिस पूरे क्षेत्र की निर्मिति करती हैं, उसे ही कश्मीर मंडल के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके केंद्र में वितस्ता है। एक तरफ सरस्वती है तो दूसरी तरफ सिंधु है। सिंधु की गिनती महानदी के रूप में 'भागवत पुराण' भी करता है। सिंधु और सरस्वती के बीच के क्षेत्र को भारत में ज्ञान परंपरा और सांस्कृतिक परंपरा की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इरावती को आज रावी के रूप में जाना जाता है, वितस्ता को हम झेलम के रूप में जानते हैं, विपाशा को आज ब्यास के रूप में जानते हैं, देविका, जो रावी की एक सहायक नदी है, कुहु यानी काबुल नदी, गोमती जिसे कहीं-कहीं गोमेल और कहीं गौतमी कहा जाता है, शतद्रू, जो आज सतलज के रूप में जानी जाती है, चंद्रभागा जिसे आज चिनाब के रूप में जानते हैं और सरस्वती, जिसे लुप्त नदी के रूप में जाना जाता था, किंतु अब उसके प्रवाह को खोज लिया गया है, का जिक्र कश्मीर के साहित्य में मिलता है। कश्मीर मंडल में ही महानदी सिंधु बहती है अर्थात् लेह, लद्दाख, गिलगिट, बाल्तिस्तान का वह पूरा-का-पूरा इलाका, जिसे राजनीतिक कारणों से कश्मीर से अलग क्षेत्र के रूप में समझा जाने लगा था, वह सांस्कृतिक कारणों से, सांस्कृतिक आधार पर कश्मीर का हिस्सा है। 'राजतरंगिणी' और 'नीलमतपुराण' दोनों में ही सिंधु नदी के बहने का रास्ता एक ही प्रकार से बताया गया है।

'वशिष्ठ संहिता' में स्पष्ट रूप से कहा गया कि यह जो उत्तर कुरु का क्षेत्र है, कुरु पांचाल से ऊपर उत्तर का क्षेत्र है जिसे कश्मीर मंडल कहते हैं, उसे देव क्षेत्र के रूप में निर्धारित किया गया है। सातवीं शताब्दी के चीनी लेखक ह्वेनसांग के विवरण को मानें तो सिंधु नदी से प्रारंभ होकर चिनाब तक बहने वाला जो क्षेत्र है और दक्षिण में जो माल्द्रेज तक जाता है, वह विस्तृत फैला हुआ क्षेत्र कश्मीर मंडल है। इसमें जो विस्तार होता है उसमें तक्षशिला और सिंहपुर और दक्षिण-पश्चिम पुंछ, जिसके उत्तर में तक्षशिला आ जाता है, जिसके दक्षिण में राजौरी आता है, इसप्रकार से एक व्यापक क्षेत्र निर्मित होता है। उसमें जम्मू का इलाका भी सम्मिलित होता है, उसमें गिलगिट, बाल्तिस्तान का विकास होता है, संपूर्ण कश्मीर सम्मिलित होता है। लेह-लद्दाख का पूरा-का-पूरा इलाका सम्मिलित होता है। उस काल के तिब्बत से मानसरोवर तक का पूरा-का-पूरा क्षेत्र कश्मीर मंडल के रूप में स्वीकार किया जाता है। कश्मीर मंडल के केंद्र में वितस्ता है।

मैं जान-बूझकर नदियों, पहाड़ों, पर्वतों से सांस्कृतिक केंद्रों की चर्चा कर रहा हूं, क्योंकि

भारत की जो पुरानी परंपरा है, उसमें किसी भी क्षेत्र को राजाओं के माध्यम से जानने की कोई परंपरा नहीं रही है। 'श्रीमद्भागवत पुराण' जब भारत का नक्शा खींचता है तो वह नदियों के माध्यम से खींचता है, पर्वतों के माध्यम से खींचता है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक नदियों की चर्चा करता है। पश्चिम से लेकर पूर्व तक पर्वतों की चर्चा करता है। जब नदियों की चर्चा करते हुए वह कहता है तो उसमें से सिंधु नदी से भारत को पहचान दिलाता है और अंत में आकर दक्षिण की नदियों की पूरी चर्चा करते हुए एक विस्तृत भारत के क्षेत्र का चित्र खींचता है। एक महानदी भारत के उत्तरी क्षेत्र में है तो दूसरी महानदी भारत के पूर्वी क्षेत्र में है। तीसरी महानदी के रूप में कावेरी की चर्चा करता है, जो दक्षिणी क्षेत्र में है। इन तीन नदियों से घिरा जो विस्तृत क्षेत्र है, वह भारतवर्ष है।

सिंधु, ब्रह्मपुत्र और कावेरी नदियों के द्वारा जब भारत की सांस्कृतिक सीमा निर्धारित होती है तो कश्मीर की संस्कृति का केंद्र कहां बनता है, इसकी भी चर्चा किसी नदी के माध्यम से ही करनी होगी। भारत की परंपरा में संस्कृति की पहचान नदियों, पर्वतों, तीर्थों, सरोवरों के माध्यम से करनी होगी। नगर बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रहे हैं, राजवंश बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रहे हैं, राज व्यवस्थाएं बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रही हैं। संपूर्ण भारतीय परंपरा में भूगोल को सांस्कृतिक परंपरा के आलोक में देखा गया है और यह सांस्कृतिक परंपरा प्राकृतिक रचनाओं से निर्मित होती है। प्राकृतिक रचनाओं में जब देवता को देखने की बात होती है, तो कश्मीर के जो कुछ सांस्कृतिक केंद्र हैं, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मैं वितस्ता-झेलम की चर्चा कर रहा हूं। एक ऐसी नदी जिसका नाम भी भुला दिया गया है। न तो कश्मीरी भाषा में इस नदी को जिस रूप में जाना जाता था, वह आज लोग जानते हैं और न ही संस्कृत में इसे जिस रूप में जाना जाता था, उस रूप में जानते हैं। चीनी यात्रियों के जो यात्रा विवरण पाए जाते हैं, उसमें कश्मीर की चर्चा करते हुए सर्वत्र वितस्ता नदी की ही चर्चा दिखाई देती है, कश्मीर के मध्य मान बिंदु के रूप में। 'ऋग्वेद' में भी वितस्ता का उल्लेख आता है। बाद के पौराणिक और चीनी साहित्य में इस क्षेत्र का नाम वैतस्तिका है। 'नीलमत पुराण' इसे वितस्ता ही कहता है। 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण', जो पुराणों में सबसे बड़ा पुराण है, वह भी वितस्ता को वितस्ता ही कहता है और उसका अपर नाम वैतस्तिका देता है। पाश्चात्य लेखक हेरोडोट्स इसका वेदस्ता के नाम से उल्लेख करता है। यूनानी लेखकों ने भी वितस्ता का उल्लेख वेदस्ता के रूप में किया है। इसप्रकार से सर्वत्र कश्मीर की पहचान वितस्ता के आधार पर निर्धारित हुई है। बाद के दिनों में इस्लामिक आक्रमण के बाद चौदहवीं शताब्दी के बाद से वितस्ता नाम लुप्त होता चला गया और इसे झेलम कहा जाने लगा।

मैं केवल कश्मीर में लिखे गए साहित्य पर केंद्रित होकर कश्मीर के सांस्कृतिक केंद्रों की चर्चा नहीं कर रहा हूं अपितु संपूर्ण भारत में जो सांस्कृतिक साहित्य निर्मित हुआ है, भारत की परंपरागत लेखन प्रक्रिया में जो साहित्य निर्मित हुआ है, उसको सामने रखकर कह रहा हूं। महाभारत के वनपर्व और सभापर्व में वितस्ता की बहुत चर्चा हुई है। उसे कुरु पांचाल और उत्तर कुरु की नदी कहा गया है। उत्तर कुरु यानी जम्मू-कश्मीर का वही क्षेत्र, जो कुरु महाजनपद के ऊपर का है। 'महाभारत' के वनपर्व में उल्लेख है कि कश्मीर मंडल में नागराज तक्षक का भवन है और उसका नाम वितस्ता है। नागराज तक्षक नदी में रहते हैं, पर्वत से निकलने वाले जल स्रोत वितस्ता में रहते हैं। इस वितस्ता में जो स्नान करता है, उसको वाजपेय यज्ञ करने का पुण्य प्राप्त होता है। भारत

में वाजपेय यज्ञ श्रेष्ठतम यज्ञ है। भारत की वैदिक परंपरा में इसे अश्वमेध यज्ञ से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण और बड़ा यज्ञ माना गया है। उस वाजपेय यज्ञ को करने का लाभ मनुष्य को वितस्ता में स्नान करने से प्राप्त हो जाता है। इस वितस्ता का जल जब उत्तर कुरु से नीचे भारत के मैदानी भाग में आ रहा है तो इसके जल के कारण भारत के लोगों को लाभ मिल रहा है। इस तरह सांस्कृतिक दृष्टि से कश्मीर को और कश्मीर में नदियों के महत्त्व को समझा जा सकता है।

कश्मीर की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि को यदि समझना है तो वितस्ता यानी झेलम के महत्त्व को समझना होगा। भारत की कृषि संस्कृति में, भारत की ग्रामीण संस्कृति में, भारत के लोगों के लिए वितस्ता यानी झेलम के महत्त्व को एक तरफ 'महाभारत' तो दूसरी तरफ 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' सिद्ध करता है। 'महाभारत' अनुशासन पर्व भी वितस्ता के बारे में महत्त्वपूर्ण चर्चा करता है और कहता है कि देवी पार्वती ने भगवान शंकर की पत्नी बनकर स्त्री धर्म के निर्वाह का संकल्प किया तो इस संकल्प के लिए जिन लोगों से विचार-विमर्श किया था, उसमें से वितस्ता भी है। यानी यह वह इलाका है जहां देवी पार्वती ने भगवान शंकर के साथ विवाह करने के पूर्व तप किया था और उसके परिणामस्वरूप उनको भगवान शंकर की प्राप्ति हुई थी। 'महाभारत' कहता है कि देवी उमा स्वयं यहां पर वितस्ता के रूप में प्रकट हुईं। अपनी तपस्या करने के बाद वह लुप्त हो गईं। बाद में स्वयं कश्यप की प्रार्थना पर वह पचहत्तर नाग के रूप में प्रकट हुईं। यह वह कालखंड है जब कश्मीर में नदियों के स्रोतों को, झरनों को, जहां से नदियां निकलती थीं, उन झरनों को नाग कहा जाने लगा था। पचहत्तर नाग देवसर के आसपास का कोई स्थान है, जहां इसप्रकार का एक भौगोलिक स्वरूप बनता है। 'महाभारत' में यह नील कुंड के रूप में आता है। वितस्ता जितनी महत्त्वपूर्ण वैदिक परंपरा में है, उतनी ही महत्त्वपूर्ण बौद्ध परंपरा में भी है। यही कारण है कि अशोक ने वेरीनाग के आस-पास एक स्तूप का निर्माण कराया था जिसका उल्लेख कल्हण ने भी किया है। कल्हण के कालखंड में वितस्ता के उद्गम के रूप में वेरीनाग को ही स्वीकार किया गया है। नीलनाग इसलिए कहते हैं कि वितस्ता वहां नीले रंग की प्रकट होती है, इसलिए जहां से प्रकट होती है, वह नीलकुंड है। बाद में वह वीर नाग के रूप में परिवर्तित होती है।

यह पौराणिक भूगोल भी स्वीकार करता है कि अनंतनाग आने के बाद वितस्ता को नदी का रूप मिलता है और यहां से फिर बहुत सारी नदियां उसके अंदर मिलती हैं। अनंतनाग इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि वह वितस्ता का उद्गम स्थल है। भारत की वैदिक परंपरा में ठीक वैसे ही जैसे गोमुख से गंगा निकलती है, पर गंगा के रूप में वह गंगोत्री में आकर के परिवर्तित होती है। उसी प्रकार पौराणिक मान्यता है कि वेरीनाग वितस्ता का उद्गम स्थल है, किंतु नदी के रूप में वह अनंतनाग में आकार लेता है। वैसे ही जैसे कि गंगा गंगोत्री में एक नदी के रूप में आकार लेती है। वितस्ता का 'राजतरंगिणी' में वर्णन बार-बार इसलिए आता है कि सभी राजाओं ने, विशेष करके कर्कोटक वंश के, नाग वंशीय राजाओं ने वितस्ता को केंद्र में रखकर उसके इर्द-गिर्द दोनों किनारों पर भिन्न-भिन्न कालखंड में नगरों को निर्माण कराया, मंदिरों का निर्माण कराया, चैत्यों का निर्माण कराया। यह घटना उस कालखंड के इतिहास में संपूर्ण भारत के अंदर अन्य कहीं नहीं दिखाई देती है। मां शारदा का मंदिर शारदा सर्वज्ञ पीठ आज पाकिस्तान के द्वारा आक्रांत जम्मू-कश्मीर के हिस्से में है। भारत की शक्ति परंपरा के केंद्र के रूप में कश्मीर लगातार रहा है। क्षीर भवानी का

एक ऐसा मंदिर है जिसका उल्लेख 'नीलमत पुराण' और 'राजतरंगिणी' में भी मिलता है। क्षीर भवानी से लेकर कामाख्या तक का जो विस्तृत हिमालय है, इस विस्तृत हिमालय में अभिनवगुप्त के विचरण का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

कश्मीर का जो सांस्कृतिक विस्तार है, वह संपूर्ण हिमालय क्षेत्र में है। किंतु आज के संदर्भ में विचार करें तो कश्मीर में वितस्ता की उत्पत्ति, पार्वती के तप, शिव के विवाह यानी एक युग, एक कल्प के प्रारंभ की जो पूरी कथा है, उस कथा से भारतीयों को जोड़ती है बाबा अमरनाथ की यात्रा। इस यात्रा का इतिहास निकाला जाए तो अमरनाथ के मंदिर का उल्लेख भी लगभग सभी पुराणों में आता है। कई सौ वर्षों के अंदर जो साहित्य लिखा गया है, उन यात्राओं के सांस्कृतिक इतिहास में इसका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। किसी की सांस्कृतिक पहचान जब मिटानी होती है तो इसप्रकार के जीवंत सांस्कृतिक केंद्रों को रोका जाता है। तेरहवीं शताब्दी से लगातार बाबा अमरनाथ की यात्रा पर जो प्रतिबंध लगाए गए, उनकी पहचान मिटाई गई, उन स्थानों के नाम बदले गए, उसमें पर्शियन पुट दिया गया–उसके कारण से इसका जो तीन-चार हजार वर्षों का पौराणिक इतिहास प्राप्त होता है, वह दिखाई नहीं देता है। तथापि यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि उस कालखंड के सभी शैवाचार्यों ने, चाहे वह वसुगुप्त हों, उत्पलदेव हों, सोमानंद हों, उन्होंने कश्मीर क्षेत्र में फैले हुए शिव मंदिरों की व्यापक चर्चा तो की ही है, उनके द्वारा अमरनाथ की यात्रा और भगवान शिव के जीवित शिवलिंग के दर्शन का इतिहास प्राप्त होता है। उसे बाद में यह बताने की कोशिश की गई कि कश्मीर और कश्मीरियत बहुरंगी संस्कृतियों का मिश्रण है। वस्तुतः संस्कृतियों का सम्मिश्रण कश्मीर में कभी नहीं रहा है। एक संस्कृति तेरहवीं शताब्दी तक अनवरत दिखाई देती है, वह वैदिक संस्कृति है। वैदिक संस्कृति की जो निगम-आगम दोनों परंपराएं हैं, शैव-वैष्णव दोनों परंपराएं हैं और शैव-वैष्णव आगम परंपराओं को शाक्त आगम परंपरा के द्वारा जोड़ने की जो प्रक्रिया है, उसका केंद्र कश्मीर है। सांस्कृतिक दृष्टि से त्रिकूट पर्वत बहुत महत्त्वपूर्ण है। वैष्णव देवी का स्थान वस्तुतः भारत की दृष्टि से एक विशिष्ट सांस्कृतिक अभिधान को प्रस्तुत करता है। मानसरोवर श्रेणी शिखरों और त्रिकूट पर्वत के बीच का जो क्षेत्र है, वह भगवान शिव का क्षेत्र है। यह एक ऐसा क्षेत्र है, जहां उमा वैष्णवी हो जाती हैं, जहां आराधना की एक विशिष्ट स्थिति दिखाई देती है, जिसमें शिव और विष्णु दोनों परंपराओं के बीच शक्ति को केंद्रित करते हुए सामंजस्य स्थापित किया जाता है। ज्येष्ठ मास की अष्टमी को क्षीर भवानी का जो मेला लगता है, वह कितना महत्त्वपूर्ण रहा होगा–इसकी कल्पना सिर्फ इस बात से की जा सकती है कि स्वामी विवेकानंद को भी अंततः अपनी साधना की स्थिति को प्राप्त करने की दृष्टि से क्षीर भवानी की यात्रा करनी पड़ी थी।

संस्कृति, सभ्यता, राजनीति, इतिहास, कृषि, चिकित्सा प्रणाली, विज्ञान और तकनीक–यानी संपूर्ण भारतीय ज्ञान परंपरा में जम्मू-कश्मीर का अवदान अमूल्य है। अपने इन वैशिष्ट्यों के आधार पर जम्मू-कश्मीर अनादिकाल से लेकर आज तक भारत मां के शीश के रूप में जाना जाता रहा है। आज जम्मू-कश्मीर एकीकरण के प्रश्न से बाहर आ गया है। यह प्रश्न कृत्रिम था, इस कृत्रिम प्रश्न को बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार के आख्यानों को रचा गया। अलग-अलग तरह से नैरेटिव सेट किए गए। ये आख्यान जब गढ़े जा रहे थे, उसी समय जम्मू-कश्मीर ने अपने संविधान में

जम्मू-कश्मीर को भारत का अविभाज्य अंग स्वीकार किया था। जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ने भी इसे स्वीकार कर लिया था, लेकिन उसके बाद भी कुछ निहित स्वार्थों के कारण इस देश में 70-72 वर्ष तक लगातार जम्मू-कश्मीर को एक प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया गया। वस्तुतः भारत की सांस्कृतिक निरंतरता, भारत की सांस्कृतिक एकता और भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता का कोई एक महनीय भूखंड भारत में है तो वह जम्मू-कश्मीर है। 1846 के एंग्लो-सिख वार के नाम से जिस युद्ध को जाना जाता है, उसमें महाराजा रणजीत सिंह की पराजय के फलस्वरूप एक संधि हुई थी जिसमें युद्ध के खर्चों को देकर महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू-कश्मीर और लद्दाख के क्षेत्र को, जो बहुत बड़ा क्षेत्र था–जिसमें जम्मू था, कश्मीर था, लद्दाख का हिस्सा था, गिलगिट-बाल्तिस्तान का हिस्सा था–इन सबको एक राज्य के रूप में अंग्रेजों से प्राप्त किया था।

जम्मू-कश्मीर के बारे में एक चर्चा यह भी रही है कि भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के अंदर जम्मू-कश्मीर की उपस्थिति नहीं है। महाराजा प्रताप सिंह का कालखंड हो या महाराजा हरि सिंह का कालखंड हो, जम्मू-कश्मीर में भारतीय स्वतंत्रता के आंदोलन का स्वरूप दिखाई नहीं देता है। जम्मू-कश्मीर भारत का हिस्सा होता तो 1930 के बाद जिस प्रकार से अखिल भारतीय आंदोलन भारत में शुरू हुआ था, वैसा ही आंदोलन जम्मू-कश्मीर में भी दिखाई देता। वस्तुतः जम्मू-कश्मीर कभी भी उस प्रकार से ब्रितानी हुकूमत का शासित प्रदेश नहीं रहा है, जिस प्रकार से अवध की रियासत रही है, जिस प्रकार से हैदराबाद की रियासत रही है। जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त अन्य रियासतें जिस प्रकार से ब्रितानी हुकूमत का हिस्सा थीं, उस ढंग से वह ब्रितानी हुकूमत का हिस्सा नहीं था। ब्रितानी हुकूमत के अधीन एक स्वायत्त राज्य के रूप में उसकी स्थिति बनी रही। इसको समझना हो तो गिलगिट एजेंसी के ध्वजारोहण के द्वारा समझा जा सकता है, जहां पर ग्रेट ब्रिटेन के ध्वज के साथ ही जम्मू-कश्मीर का ध्वज फहराया जाता था। गिलगिट एजेंसी में ब्रितानी हुकूमत के सैनिक पदस्थ करने के लिए जम्मू-कश्मीर ने जो अनुमति प्रदान की थी, उस अनुमति में यह भी शर्त थी कि दोनों के ध्वज फहराए जाएंगे। महाराजा हरि सिंह वायसराय के निर्देशों की अवहेलना कर अपना निर्णय लेने के लिए भी स्वतंत्र थे। जम्मू-कश्मीर बहुत सारे ऐसे प्रयोग कर रहा था, जो पूरे भारत में नहीं हो रहे थे। एक स्वतंत्र राज्य में जिस तरह के कार्य किए जाने चाहिए, वे सारे कार्य जम्मू-कश्मीर में हो रहे थे। अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम लागू करना हो, कृषि व्यवस्था करनी हो, जम्मू-कश्मीर भारत में स्वतंत्रता के पूर्व इनको लागू करने वाले राज्य के रूप में था। जम्मू-कश्मीर ब्रिटिश इंडिया का अविभाज्य भाग नहीं था और उस जम्मू-कश्मीर के राजा ने बिना शर्त, स्वेच्छा से भारत संघ में अपना विलय स्वीकार किया था। उसे भारत की राजनीति के अंतर्गत एक विवादित प्रश्न के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई थी।

यह सिर्फ इसलिए हुआ था कि लोगों को जम्मू-कश्मीर के वास्तविक सांस्कृतिक इतिहास से ठीक ढंग से परिचित नहीं कराया गया। जब इतिहास छूट जाता है, इतिहास ओझल हो जाता है, इतिहास अंधेरे में चला जाता है तो वर्तमान के संबंध में कठिनाई होती है। आज के किसी भारतीय से पूछा जाए कि जम्मू-कश्मीर क्या है तो वह कहेगा धरती का स्वर्ग है। इस नाते कि नूरजहां ने कहा था कि 'गर फिरदौस बर रुए जमीं अस्त, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त'। तो क्या जम्मू-कश्मीर का इतिहास पंद्रहवीं शताब्दी में शुरू होता है, तो क्या जम्मू-कश्मीर 1339 में शाह मीर

साम्राज्य की स्थापना के साथ शुरू होता है, तो क्या जम्मू-कश्मीर 'कारवां आता गया, हिंदोस्तां बसता गया' की अवधारणा पर विकसित हुआ है? सच यह है कि जम्मू-कश्मीर की स्थिति संपूर्ण एशिया में मध्यमान के रूप में थी, संपूर्ण एशिया के शीर्ष के रूप में थी। जम्मू-कश्मीर जियो पोलिटिकल स्टडी का वह बिंदु है, जहां पर खड़े होकर संपूर्ण दुनिया पर, विशेषकर एशिया महाद्वीप और यूरोप की ओर जाने वाले रास्तों पर नियंत्रण किया जा सकता है। यही कारण रहा कि लंबे समय तक जम्मू-कश्मीर को विवाद का विषय बनाया गया। जम्मू-कश्मीर के बारे में अवधारणा यह है कि यह इस्लाम के आने के साथ ही पूरी दुनिया के केंद्र में आया, लेकिन भारत का इतिहास ऐसा नहीं कहता है। भारत का इतिहास इससे उलट बात करता है। एक कालखंड था जब भारत विश्वगुरु था। भारत के विश्वगुरु के पद पर प्रतिष्ठित होने में सर्वाधिक योगदान जम्मू-कश्मीर का था।

कहते हैं कि कश्मीर भारत का सबसे प्राचीन जनपद रहा है या राज्य रहा है। जम्मू और कश्मीर का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। पौराणिक आख्यान के अनुसार कश्मीर महर्षि कश्यप की भूमि है। उन कश्यप ऋषि का आश्रम जिस भूमि पर था, वही कश्मीर है। 'नीलमत पुराण' जब इसे कश्यप की धरती कहता है तो उसको स्वीकार करने में क्या दिक्कत है? लेकिन जब इसको स्वीकार करते हैं तो यह स्वीकार करना पड़ता है कि भारत भूमि में कश्मीर से कन्याकुमारी तक जो जन फैला हुआ है, उसकी मूल भूमि कश्मीर है। भारत की संस्कृति, भारत की सभ्यता, भारत की अनादि विज्ञान परंपरा की स्रोत भूमि कोई है तो वह कश्मीर है। कालिदास 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' नाटक में लिखते हुए यह कहते हैं कि देवासुर संग्राम के बाद स्वर्ग से इंद्र का रथ लेकर मातलि दुष्यंत को लेकर कश्यप के आश्रम में उतरा था। अगर 14वीं-15वीं शताब्दी में कश्मीर को फूलों की जमीन कहा जा रहा है तो उसके पूर्व भी इसकी स्वर्ग के समान स्थान के रूप में मान्यता रही है। कश्यप ऋषि की मान्यताओं को अगर स्वीकार करते हैं, तो मानव जाति के इतिहास में सभ्यता और संस्कृति की जब से पहचान बनती है, तब से कश्मीर की भूमि भारत की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमि रही है। संस्कृत भाषा और संस्कृत वाङ्मय को लेकर जब हम विचार करें तो अभिनवगुप्त, आनंदवर्धन, मम्मट आदि महान विद्वान कश्मीर से आते हैं। यदि भारत के 100 साहित्य शास्त्रियों की सार्वकालिक सूची बनाई जाए तो इस सूची में प्रथम 20 पर उन्हीं साहित्य शास्त्रियों का नाम आता है, जो कश्मीर से जुड़े हुए हैं, जिनकी मातृभूमि कश्मीर है। राजशेखर और क्षेमेंद्र को भी नहीं भूलेंगे, क्योंकि उनकी भी प्रेरणा भूमि कश्मीर ही है। अपनी काव्यमीमांसा में राजशेखर जिस प्रकार से कश्मीर और कश्मीर के सौंदर्य की चर्चा करते हैं, उससे पता चलता है कि साहित्य के क्षेत्र में कश्मीर की स्थिति क्या थी। काव्य और साहित्य के क्षेत्र में अप्रतिम योगदान की भूमिका का नाम कश्मीर है।

कश्मीर के इतिहास को यदि भारत के इतिहास के साथ-साथ देखा गया होता तो आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत के लिए कोई जगह नहीं बचती, क्योंकि मानव जाति के इतिहास के प्रारंभ के साथ से ही कश्मीर में पूरी दुनिया से मनुष्यों के आने-जाने का इतिहास मिलता है। अब सिंधु न होती तो हिंदू न होता, सिंधु न होती तो हिंदुस्तान न होता। इस सिंधु नदी की उद्गम भूमि तो कश्मीर मंडल है। आर्य सभ्यता के मूल केंद्र में देव नदी सरस्वती है, जिसके नाते इसे सारस्वत सभ्यता के रूप में जाना जाता था, जिसका जल अमृत के रूप में स्वीकार किया गया, उस देव नदी सरस्वती

की उद्‌गम भूमि भी कश्मीर है। भारत के 200 वर्षों के गुलामी के दौर में अंग्रेजों ने यह धारणा गढ़ी कि भारत एक नहीं था। अलग-अलग राज्यों के अलग-अलग टुकड़े थे। यह एक साम्राज्य कभी नहीं रहा, एक राजा के अधीन, एक प्रकार की विधि व्यवस्था के अधीन यह कभी नहीं रहा तो ध्यान में आता है 36 वर्षों तक घोड़े की पीठ पर बैठा हुआ कश्मीर के कर्कोटक नागवंशी हिंदू सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड का। उनके काल में कश्मीर का विस्तार मध्य एशिया और बंगाल तक पहुंच गया। उन्होंने अरब के मुसलमान आक्रांताओं को सफलतापूर्वक दबाया तथा तिब्बती सेनाओं को भी पीछे धकेला। उन्होंने राजा यशोवर्मन को भी हराया। उनका राज्य पूर्व में बंगाल तक, दक्षिण में कोंकण तक, पश्चिम में तुर्किस्तान और उत्तर-पूर्व में तिब्बत तक फैला था। उन्होंने अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया। मार्तंड मंदिर की वास्तुकला का लोहा आज पूरा विश्व मान रहा है। छठी शताब्दी के कालखंड में उतना बड़ा सूर्य मंदिर निर्मित हो सके, इसकी कल्पना भी दुनिया में नहीं हो सकती थी, लेकिन वह करने वाला स्थान कश्मीर है। भारत की महान स्थापत्य-वास्तु-शास्त्रीय परंपरा का प्रारंभ होता हुआ कहीं से दिखाई देता है तो वह कश्मीर है।

वस्तुतः कश्मीर की संस्कृति का अवबोध भारतीयता का अवबोध है। कश्मीरियत भारतीयता से अलग नहीं, भारत की चिति है। यह कश्मीरियत विशिष्ट संस्कृति न होकर निरंतर संस्कार की सभ्यता है। भारत का स्वत्व है। जड़ता की सभ्यता के विरुद्ध ज्ञानात्मक समाज एवं मूल्यात्मक विज्ञान की प्रतिष्ठा है। ऐसे निरंतर और सांस्कृत जम्मू-कश्मीर तथा उसके भौगोलिक विस्तार में भारतीयता का विस्तार है, उपबृंहण है।

□

कश्मीरियत का सांस्कृतिक संदर्भ

जवाहरलाल कौल

कश्मीरियत मूल रूप से राजनीतिक कम, सांस्कृतिक-सामाजिक स्थिति अधिक है, जिसे कश्मीर और राज्य के बाहर के पृथकतावादी नेताओं को अपने वास्तविक स्वरूप से विलग करने में लगभग एक शताब्दी का समय लगा, लेकिन यह केवल कश्मीर की राजनीति के खाद-पानी से ही उपजी नहीं है, इसके पीछे की भावना के अंकुर छह सौ वर्ष पहले कश्मीर में बहने वाली एक सांस्कृतिक धारा के कारण फूटे थे। नाम तब तक कश्मीरियत नहीं पड़ा था, न हिंदू, न मुसलमान। मार-काट, अनास्था, अविश्वास, घृणा और प्रतिशोध के वातावरण में अहिंसा, सहनशीलता और प्रेम की इस धारा में हिंदू समाज में सदियों से जड़ हुई रीतियों और अप्रासंगिक मान्यताओं पर प्रहार करने वाली वेदांत, शैव, बौद्ध दर्शनों में पारंगत विद्रोही संत कवयित्री लल्लेश्वरी और उनके मुसलमान शिष्य नंद ऋषि ने जन सुलभ भाषा में अपने संप्रदाय को मुल्ला-मौलवियों के चंगुल से सचेत करते हुए वास्तविक अध्यात्म की ओर ले जाने का प्रयास किया। दोनों ऐसे युग में उत्पन्न हुए थे, जब कश्मीर में लोग अभी-अभी मुसलमान हुए थे और तबलीगी मौलवियों का जबरदस्त दबदबा था। उन्हें सरकारी अमले का भी समर्थन प्राप्त था। दरअसल यह एक प्रकार की बगावत थी, लेकिन जैसा अगली दो शताब्दी पश्चात् सारे भारतवर्ष में होने वाला था; यह प्रेम, सद्भावना, अध्यात्म, दर्शन और ज्ञान का ऐसा आंदोलन था जिसमें पीड़ा सहना तो स्वीकार था, लेकिन पीड़ा देना स्वीकार नहीं था। इसे भारत के अन्य प्रदेशों में भक्ति आंदोलन कहा गया। कश्मीर में इसका कोई विशेष नाम तो नहीं दिया गया था, क्योंकि देश के अन्य राज्यों की तुलना में यह लहर काफी पहले आरंभ हुई थी, लेकिन इसका प्रभाव भी आम जनता पर लगभग वैसा ही था जैसा उत्तर, दक्षिण, पश्चिम भारत या बंगाल में हुआ। कश्मीर में यह मतांध राजनीति और सांप्रदायिक जड़ता के बीच एक प्रबल सांस्कृतिक हस्तक्षेप था।

लल्लेश्वरी शैव थीं या वेदांतिन, यह बहस तभी से चलती रही है जबसे उनके 'वाखों' के संकलन के प्रयास आरंभ होने लगे। जॉर्ज ग्रियर्सन, जिनके काल में पहली बार लल्लेश्वरी के वाखों का संकलन किया गया, उन्हें ब्रह्मवादिनी यानी वेदांतिन मानते हैं, जबकि प्रो. जियालाल कौल का मानना है कि लल्लेश्वरी न माया को भ्रांति ही कहती हैं और न मानव के सांसारिक जीवन को मिथ्या। वे इसी जन्म में सदाशिव को पाने का उपदेश देती हैं, लेकिन वेदांतिक और शैव का यह विवाद इस मायने में निरर्थक है कि कश्मीर में आरंभ से ही विभिन्न दार्शनिक वादों में शास्त्रार्थ के साथ-साथ आपसी लेन-देन भी होता रहा है। यह सच है कि लल्लेश्वरी का समय अभिनवगुप्त के जाने के दो सदी के पश्चात् का काल था और उनके त्रिक दर्शन का गहन प्रभाव तो समाज पर रहा ही होगा, उनके गुरु भी संभवतया शैव विद्वान ही रहे हों, लेकिन शैवदर्शन के प्रभाव में वेदांत और बौद्ध दर्शनों की मान्यताएं समाज की

स्मृति से पूरी तरह हट चुकी होंगी, यह मानना कश्मीर के सांस्कृतिक विकास के अनुरूप नहीं होगा। इसीलिए लल्लेश्वरी के काव्य में हमें कई संप्रदायों के बिंब मिलते हैं। लल्लेश्वरी के वाखों का प्रभाव इतना व्यापक था कि कश्मीर के ग्रामीण क्षेत्रों में आम जनता इनको तब भी नहीं भूल पाई जब राजनीतिक कारणों से उन्हें धर्म परिवर्तन करना पड़ा। हमें यह याद रखना होगा कि जब कश्मीर पर विदेशी आक्रमणकारी दालचू और उसके पश्चात् रिंचन के बर्बादी के दौर से गुजर चुके थे, उस समय लल्लेश्वरी एक ग्रामीण बालिका के रूप में घूमती थीं और अपने अड़ोस-पड़ोस में अपने असाधारण व्यवहार के लिए जानी जाती थीं। इस्लाम के तीव्र प्रसार के दौर में वह संत योगिनी के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुकी थीं। रिंचन के पश्चात् और सिकंदर (बुत शिकन) से पहले के दौर में लल्लेश्वरी का सामना मुस्लिम धर्म प्रचारकों के साथ हुआ होगा, लेकिन किसी प्रकार की भौतिक हिंसा, व्यक्तिगत अपमान से बेपरवाह, योगिनी और कुशाग्र बुद्धि वाली लल्लेश्वरी को नकारना या मार्ग से हटाना उनके लिए संभव नहीं हुआ। इसलिए उन्हें अपनाने के प्रयास होने लगे जिसमें कुछ ऐसी भी घटनाएं गढ़ ली गईं जिनसे उन पर इस्लाम का प्रभाव दिखलाया जा सके। यह इसलिए आवश्यक हो गया था कि इस बीच जिन लोगों को धर्म बदलना पड़ा था। वे भी लल्लेश्वरी और उनके वाखों को त्यागने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। लल्लेश्वरी के बारे में जो कहानियां प्रचलित रह गईं, उनमें सबसे अधिक उल्लेख शाह हमदान और लल्लेश्वरी की भेंट का किया जाता है, लेकिन इनमें से कोई भी घटना तथ्यों पर आधारित नहीं लगती। कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार ख्वाजा मोहम्मद ददामारी अपनी पुस्तक 'वाक्याते कश्मीर' में लिखते हैं, ''परम पवित्र सईद अली हमदानी की इस्लाम की पताका को दिशा देते हुए अपनी यात्रा के दौरान लल्ला के साथ मुलाकात की घटना को शोधकर्ताओं ने सही नहीं पाया है।" वास्तव में इस घटना का उल्लेख तो 1836 से पहले कभी आया ही नहीं।

लल्लेश्वरी किसी सांस्कृतिक आंदोलन का न तो नेतृत्व कर रही थीं और न ही किसी का अनुसरण। इसलिए अगर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में चले भक्ति आंदोलनों से उन्हें जोड़ना कठिन लगता है तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है, वे तो अधिसंख्य संत भक्त कवियों से काफी पहले आई थीं। कबीर हों, दादू हों, या पूर्वी भारत के गायक संत कवि, लल्लेश्वरी सबसे पहले, एकाकी, कश्मीर में बिजली की तरह चमककर आईं और अपने पीछे अनेक कश्मीरी संतों, मलंगों, सूफी कवियों और ऋषियों की एक परंपरा छोड़कर निकल गईं। जब वे गईं तो अनेक कवि और संत लल्लेश्वरी को अपना गुरु, मार्गदर्शक मानने और उनसे आध्यात्मिक संबंध जोड़ने को लालायित दिखाई दिए। बीसवीं शताब्दी तक कवियों, संतों और मनीषियों के चिंतन-मनन में वे जीवित रहीं तो कश्मीरी आम जन में वह आज भी मुहावरों और कहावतों के माध्यम से जीवित हैं और यह भावना उनके घर से दूर तक और उनके काल से बहुत देर तक चलती रही। उनके समकालीन कवि संत, जिन्हें लल्ला ने जन्मते ही अपना दूध पिलाया था, उनके न रहने पर बोल पड़े–''मेरी मां लल्ला तो भक्ति अमृत पीकर तृप्त हुई और अपने परमपिता के पास चली गई। ओ मेरे देवा! मुझे भी वैसी ही सुगति दे देना।" तीन सौ साल बाद आई रूपभवानी ने तो मंत्र वाक्य कहा–''लल्ला मां, लल्ला परमगुरु।" अठारहवीं शताब्दी के भक्त कवि परमानंद उन्हें अनाहत नाद बिंदु को प्राप्त करने वाली परम योगिनी मानते थे तो उन्नीसवीं शताब्दी के रहस्यवादी कवि शम्स फकीर को तो उनका जाना एक दिव्य नाटक की तरह दिखाई दिया, ''लगा कि मां शुहियार घाट पर बस नहाने गई थीं, लेकिन देह के चोले को उतार कर घाट पर ही रखा और एक डुबकी लगाई और गायब हो गईं, उस पार निकल गईं तो और कोई नहीं, परमेश्वर ही उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे।"

अभिनवगुप्त के ग्यारहवीं शताब्दी में अवसान के पश्चात् बहुत समय तक राजनीतिक रूप से ही नहीं, सामाजिक स्तर पर भी कश्मीर दिशाहीनता, सामाजिक ह्रास, नेतृत्वहीनता का शिकार होता रहा। इसमें बाहरी आक्रांताओं के लिए पांव जमाना आसान हो गया था और समाज के भीतर भी अराजकता का फैलना स्वाभाविक था। धार्मिक और दार्शनिक स्तर पर एक ठहराव आ गया था। हर पंथ रूढ़ियों में जकड़ा था। लल्लेश्वरी ने अपने दार्शनिक पैनेपन, अपनी निर्भीक आलोचना, काव्यात्मक व्यंजना से पूरे समाज को झकझोरा और इस आध्यात्मिक झंझावात को धरातल पर उतारकर जन साधारण के जीवन में उतारने का काम एक और संत कवि नंद ऋषि ने किया।

हिंदू घर में पैदा हुईं, हिंदू घर में ब्याही गईं और हिंदू दार्शनिक ज्ञान को आधार बनाकर हिंदू समाज को ही झकझोरने का काम करने वाली लल्ला को आरिफा घोषित करने से इस साधारण योगिनी को मीर सैयद अली हमदानी की शिष्या तो नहीं घोषित किया जा सकता था, लेकिन मुसलमान परिवार में जन्मे, पले नुंद के मुस्लिम कट्टरता का खुलकर विरोधी अभियान का सामना करना, उन्हें पुनर्जन्म देने से ही किया जा सकता था यानी मौलवियों ने उनका नया नामकरण करने का फैसला किया। बताया गया कि उनका नाम नुरुद्दीन है, नुंद तो प्यार से कहा जाता है। इससे भी काम नहीं चला, क्योंकि जो कुछ उनके बारे में कहा जा रहा था, वह उनके व्यक्तित्व में रूपांतरित होता तो दिख नहीं रहा था। कट्टर मुसलमानों में स्वीकार्यता तभी होती जब उन्हें सामान्य संत नहीं बल्कि एक औलिया घोषित किया जा सकता। इस संदर्भ में शाह हमदान और नुंद ऋषि का भी उल्लेख होता है। दावा किया जाता है कि उन पर सईद अली हमदानी के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। शाह हमदान पहली बार कश्मीर 1372-73 में आए और दो वर्ष से ही कुछ अधिक समय तक रहे। उस समय नुंद ऋषि पैदा भी नहीं हुए थे। दूसरी बार वे कश्मीर 1379 में आए, तब नुंद दो साल का बच्चा था। कुछ लोगों का विचार है कि शाह हमदान 1383 में तीसरी बार भी आए। उस समय भी नुंद इतने बड़े नहीं थे कि किसी विद्वान के साथ शास्त्रार्थ कर सकते। नुंद तो ऋषि ही नहीं बने थे, लड़कपन में अपनी मां सदर द्यद (सदर कश्मीरी में समुद्र) की देख-रेख में एक ग्रामीण परिवार के बालक थे, जिसकी एक बड़े विद्वान के साथ कोई तबलीगी बहस होने की संभावना तो नहीं दिखती। इसलिए ऐसा नहीं लगता कि नुंद ऋषि और लल्लेश्वरी पर तैमूर लंग के भय से भागकर आए सईद अली हमदानी के विचारों का कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा होगा। पहले तो कालखंड मेल नहीं खाता, दूसरे भाषा का व्यवधान था। फारसी बोलने वाले सईद अली हमदानी ईरान के प्रांत हमदान से आए थे तो शेष दोनों फारसी नहीं जानते थे, फिर भी नुंद ऋषि के जाने के पश्चात् उनका नाम शेख नुरुद्दीन वली हो गया और उन्हें औलिया घोषित कर लिया गया। नुंद ऋषि लल्ला की भांति विधिवत् शिक्षित नहीं थे। लल्लेश्वरी के अनुसार ''जो लिखा गया था, वह भी पढ़ा और जो नहीं लिखा गया वह भी पढ़ लिया।" लेकिन नुंद ने तो खेत, खलिहान, खस्ताहाल किसान, पहाड़ों की चरागाहों में भेड़ों के बीच गड़रियों के साथ, फकीरों और साधुओं की संगत करते हुए जो सामाजिक परंपरा देखी, उसी से ग्रहण किया, यायावरों की भांति कभी वनवास करते हुए तो कभी गुफावास में उन्होंने साधना की, जो पाथेय मिला, उसी से सब ज्ञान अर्जित किया। जिस परंपरा को लल्लेश्वरी ने परिष्कृत कर समाज के सामने प्रस्तुत किया था, उसे लोक सुलभ भाषा में गांव-गांव जाकर समझाना आरंभ किया।

यद्यपि नुंद ऋषि के परिवार को दो पीढ़ी पहले धर्म परिवर्तन करना पड़ा था और उन्हें किश्तवाड़ से कश्मीर घाटी में शरण लेनी पड़ी। फिर भी नुंद ने अपनी पुरानी सांस्कृतिक परंपरा नहीं छोड़ी। वे विरक्त थे, लेकिन अपने आप को पीर, फकीर या मलंग नहीं कहते थे। उन्होंने अपने आप

को प्राचीन ऋषि परंपरा से जोड़ा। ऋषियों का कश्मीर से प्राचीन नाता था और इसी कारण पुराने ग्रामीण जन कश्मीर को ऋषियों की वाटिका कहते थे। नुंद ने अपने काव्य को जिस प्रकार के छंदों में बांधा, वे उन्हें श्रुक कहते थे, जो कि लोक का कश्मीरी उच्चारण है। इस मामले में भी उन्होंने लल्लेश्वरी का ही अनुसरण किया, जिन्होंने और भी प्राचीन छंद वाक् का उपयोग किया। वास्तव में नुंद ऋषि के जीवन काल में ही इन दोनों संत कवियों की कविता इतनी मिल-जुल गई थीं कि कुछ ही समय में संकलनकर्ताओं को दोनों की रचनाओं को अलग-अलग छांटना कठिन हो गया था। दोनों के वाक् और श्रुक ग्रामीण जनजीवन और संस्कारों का अंग बन गए थे कि तीन-चार शताब्दियों में कश्मीर में एक नई लोक संस्कृति का विकास हो गया था। इसलिए जब वाल्टर लॉरेंस उन्नीसवीं सदी में कश्मीर की समग्र भूमि का ब्योरा बनाकर रिपोर्ट देकर कश्मीर और वहां के लोगों का विवरण लिखने लगे तो उन्होंने लिखा कि ''कश्मीर के लोग मुसलमान तो हो गए, लेकिन जो कोई ध्यान से देखेगा तो यही महसूस करेगा कि भीतर से वे अभी भी हिंदू ही हैं।" बीसवीं सदी में यही बात अहमदी खलीफा मिर्जा बशीरुद्दीन महमूद के प्रचारकों ने कुछ अलग अंदाज में उन्हें समझाई कि मिर्जा साहब, अगर हिंदू और मुसलमानों को कहीं बड़ी संख्या में एक साथ देखना है तो किसी पीर की दरगाह में जाइए या किसी ऋषि के आश्रम में, लेकिन हां, मगर दोनों में फर्क करना काफी मुश्किल है।

समकालीन संदर्भ में कश्मीरियत क्या हो सकती है? इस भावना या धारणा की सांस्कृतिक भूमिका को जानने और समझने के पश्चात् तो यह कहना होगा कि कवियों ने कश्मीर को स्वर्ग कहा हो या पूर्वजों ने इसे ऋषि वाटिका माना हो, लेकिन इन कल्पनाओं को धरती पर उतारना है, अपने व्यवहार में अभिव्यक्त करना है, अपने भौतिक जीवन में उतारना है तो कश्मीरियत की आवश्यकता होगी, लेकिन फिर कश्मीरियत उसके सांस्कृतिक परिवेश में जाए बिना कैसे आएगी। वह मार्ग तो हमें अपने अंतर्मन में उतरने से ही मिलेगा। यह सच है कि कश्मीर की अधिकतर आबादी को धर्मांतरण करना पड़ा, लेकिन कश्मीरियत का सांस्कृतिक आधार समाप्त नहीं हुआ, वह लोक मन में अनेक रूपों में विद्यमान रहा। लल्लेश्वरी ने कोई पंथ संवाद या संगठन नहीं चलाया, वे समाज को झकझोरकर इस संसार से चली गईं, लेकिन नुंद ऋषि की परंपरा उनके पश्चात् भी जारी रही। उनके जाने के पश्चात् उनके शिष्यों के चार आश्रम या स्थान विभिन्न स्थानों में बने, जो कई पीढ़ी तक नुंद ऋषि की परंपरा का विस्तार करते रहे। इनमें अधिकतर शिष्य न केवल शाकाहारी ही रहे अपितु पिछली शताब्दी तक इन स्थानों में ऋषियों और पूर्वजों का भारतीय तिथि के अनुसार ही श्राद्ध किया जाता था। सत्रहवीं शताब्दी में कश्मीर में ऋषि परंपरा के कई केंद्रों पर कठोर नियम लागू किए गए, उनमें सभी रीतियों पर प्रतिबंध भी शामिल था, जो प्रचलित मुस्लिम समाज में मान्य नहीं था। इससे भी पहले कई ऋषियों को नवाबों ने दंडित भी किया था, नुंद के एक शिष्य को तो सुल्तान ने इसलिए देश-निकाला कर तिब्बत भेज दिया था कि वह उनका स्वागत करने के लिए स्थान में उपस्थित नहीं था। कट्टरपंथियों और सरकारों के कोप से बचना आसान नहीं रहा और बहुत से स्थान नगर से दूर जाने को विवश हो गए। फिर भी ऋषि परंपरा क्षीण ही सही, भारत की स्वतंत्रता तक कश्मीर में किसी-न-किसी रूप में चलती रही और हिंदू, मुसलमानों दोनों के हजारों लोग इन स्थानों में अपने श्रद्धा सुमन चढ़ाते ही रहे, लेकिन देश में पृथकतावाद की लहर ने इसे अपनी सांप्रदायिक राजनीति के लिए सबसे बड़ा खतरा महसूस किया। इसलिए कश्मीरियत को अपने सांस्कृतिक आधार से काट कर इसे केवल राजनीतिक नारा बना दिया, जो मुल्लाओं की कट्टरवादिता या सुल्तानों की कठोरता नहीं कर पाई, वह उसे अपने मूल स्वभाव से अलग करने से हो रहा है।

□

कश्मीरी की आदि कवयित्री लल्लेश्वरी

रतनलाल शांत

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की तरह कश्मीरी का प्रथम प्रस्फुटन ग्यारहवीं-बारहवीं शती में हुआ। इस भाषा के विकास के पहले दो सौ वर्षों के मात्र दो-तीन ग्रंथ उपलब्ध हो सके हैं और कुछ नमूने, कुछ संस्कृत ग्रंथों में बिखरे मिले हैं। उनसे कश्मीरी के मूल अपभ्रंशी स्रोतों के स्वरूप का कुछ भान होता है। 'छुम्म संप्रदाय' के पंथ निदर्शक पदों (ग्यारहवीं सदी) में इस अपभ्रंश का प्राचीन रूप है जो बारहवीं सदी में 'महानायकप्रकाश' (शितिकंठ) में थोड़ा परिवर्तित होकर शैव दर्शन की व्याख्या को जन साधारण तक पहुंचाने में सफल रहा होगा। इन दो ग्रंथों की भाषा के अध्ययन से इतना स्पष्ट होता है कि अपभंश तेजी से बदलकर 'सर्वगोचर देश भाषा' बन रही थी। चौदहवीं शती में लल्लेश्वरी की कविता में यह भाषा साहित्यिक मान्यता प्राप्त करने लगी। कुछ अन्य भाषिक कारणों से यह परवर्ती परिनिष्ठित कश्मीरी के लिए आदर्श बनी। लल्लेश्वरी तक आते-आते कश्मीरी का अपभ्रंश से संक्रमण लगभग पूरा हो चुका था और यह एक स्वतंत्र साहित्यिक माध्यम का रूप धारण कर चुकी थी। उसके बाद सैकड़ों वर्षों तक यह भाषा लगातार साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त की जाती रही और आज भी हम लल्लेश्वरी की भाषा को बहुत हद तक आधुनिक कश्मीरी के समान पाते हैं। इसलिए लल्लेश्वरी कश्मीरी के विकास की दृष्टि से इस भाषा की आदि कवयित्री हैं। उसका प्रथम कवयित्री होने का एक और कारण यह भी है कि लल-पूर्व उपर्युक्त ग्रंथ साहित्यिक रचनाएं नहीं हैं, भले ही वे छंदोबद्ध हैं। कश्मीरी के इतिहास में लल्लेश्वरी पहला साहित्यिक नाम है, बल्कि प्रतिभा, गहन अनुभूति, पर्यवेक्षण, संवेदनशीलता तथा अभिव्यक्ति की संपन्नता के कारण लल्लेश्वरी अभी तक अप्रतिम बनी हुई हैं।

लल्लेश्वरी, 'ललद्यद' या 'लल्ला आरिफा' नामों से जानी जाने वाली कवयित्री का जन्म का नाम 'लल' रहा होगा। 'लल' वस्तुतः 'ललिता' का संक्षिप्त है और आज तक इसी रूप में प्रयुक्त होता है। लल ने स्वयं जगह-जगह पर अपने लिए इस नाम का उल्लेख किया है। लोक परंपरा में जिस प्रकार इस लोकप्रिय संत कवयित्री के दिव्यीकरण की प्रक्रिया चली, उसने उनके जीवन की घटनाओं के साथ-साथ उनके नाम का भी रहस्यीकरण किया। लल के बारे में विचित्र अटकलें लगाई गईं। यह दुःखद संयोग है कि लल के समकालीन इतिहासकारों में से केवल जोनराज (द्वितीय राजतरंगिणीकार) ने उनका परोक्ष उल्लेख किया। उसने नाम लिये बगैर एक आत्मलीन योगिनी का जिक्र किया, जो एक दिन जंगल में शिकार खेल रहे राजकुमार शहाबुद्दीन (13वीं शती) के सामने

प्रकट हुई और श्रद्धावनत कुमार को राजा बनने का वरदान दिया। बाद के उल्लेखों अथवा आलेखों में इस घटना को लगातार परिवर्तित किया जाता रहा। सत्रहवीं सदी की एक फारसी पांडुलिपि 'असरार-उल-अबरार' में पहली बार इस योगिनी का नाम ललद्यद उद्धृत हुआ। उन्हें लल्ल मां भी कहा गया और लल के पारिवारिक जीवन का, उसके पति का और जंगल में उसके निर्वसन घूमते हुए किसी अन्य धर्मावलंबी विद्वान या प्रचारक से उसका सामना होने का जिक्र किया गया। फिर उन्नीसवीं शती की पांडुलिपियों में इस विद्वान प्रचारक को मध्य एशिया का पीर अली हमदानी बताया गया और लल को इस 'मर्द-ए-मोमिन' के प्रभाव में आने से लल को मुसलमान 'आरिफा' कहा गया।

प्रचलित मौखिक परंपराओं के अनुसार लल्लेश्वरी 14वीं शती के दूसरे या तीसरे दशक में श्रीनगर से 10 कि.मी. दूर स्यमपुर गांव में एक ब्राह्मण परिवार में जन्मी। उनका विवाह 3 कि.मी. दूर प्रसिद्ध केसर भूमि पांपुर के कस्बे में हुआ। प्रथानुसार उनका नाम ससुराल में बदलकर पद्मावती रखा गया। वह आरंभ से ही संवेदनशील तथा चिंतनशील थी। ससुराल में सास के दुर्व्यवहार और पति के शंकालु स्वभाव ने उनका मन संसार से उचाट हो गया और वह एकांत में भक्ति साधना तथा योग में खोने लगीं। ससुराल के उत्पीड़न और पनघट पर मिलने वाली सखियों से यदा-कदा अपनी पीड़ा के वर्णन की मार्मिक कथाएं कश्मीरी लोकवार्ता का अभिन्न भाग बनी हुई हैं। अपने समय के एक शैव साधक सिद्ध 'मोल' (पिता) से, जो कश्मीर शैवदर्शन के प्रतिपादक वसुगुप्त की शिष्य परंपरा में थे, लल ने इस दर्शन का आरंभिक ज्ञान प्राप्त किया। फिर अपनी प्रतिभा और साधना से वह गुरु से भी आगे निकल गईं। गृहस्थी को तिलाजंलि दी और जन-जन में अपने अर्जित ज्ञान, अनुभव तथा अनुभूति का विस्तार करती तथा जन-साधारण से उसे साझा करती हुई बेधड़क घूमती-फिरती रहीं। सूक्तिप्राय तुकांत वचन कहने की प्रवृत्ति पहले से ही प्रचलित थी। लल आगे चलकर अपने आध्यात्मिक अनुभव को लोकग्राह्य भाषा और मुहावरे में अभिव्यक्त करती रहीं। लल की वाणी योगी, साधक तथा जनसाधारण सबके लिए बुद्धि, सांसारिक सूझ, आत्मज्ञान तथा एकांतिक आध्यात्मिक अभ्यास की अभिव्यक्ति का प्रतीक बनी और उसने सूक्तियों का आयाम प्राप्त किया। यह कविता सामान्यतः चतुष्पदियों में थी। यह लल से पूर्व का पारंपरिक परिनिष्ठित छंद था। लल ने चतुष्पदियों को 'वाख' (वाक्) कहा। बाद में लल के कनिष्ठ समकालीन मुस्लिम संत कवि शेख नुरुद्दीन ने भी अपनी कविता के लिए इस छंद का प्रयोग किया और इसे 'श्रुक' (श्लोक) कहा। लल के प्रभावशाली व्यक्तित्व तथा कवित्व ने न केवल नुरुद्दीन को बल्कि लगभग तमाम परवर्ती कवियों को प्रभावित किया। कई ने (जैसे सूफी कवि शम्म फकीर, भक्त कवि परमानंद) अपनी कविता में लल के आध्यात्मिक उत्थान और भक्ति साधना में उनकी उपलब्धि का श्रद्धा के साथ उल्लेख किया। लल कश्मीर के शैव (त्रिक) दर्शन से प्रभावित थीं और अपनी कविता में उन्होंने अपने विशिष्ट अनुभव का वर्णन लोकप्रिय बिंब चित्रण के साथ किया। लोकप्रियता और श्रद्धा के कारण लल के जीवन, कथा व कविता दोनों के साथ जनकल्पना को खुली छूट मिली। उनका जीवन-वृत्त चमत्कारिक घटनाओं से तथा उनकी कविता नीति-उक्तियों तथा परवर्ती कवियों के पदों से भर दी गई। लल की कविता (कुल मिलाकर डेढ़-दो सौ के करीब 'वाख' प्राप्त हो सके हैं) का आधिकारिक विद्वानों के द्वारा पाठालोचन संशोधन नहीं हुआ है और न ही उनकी भाषा में आए परवर्ती प्रक्षेपों की पूरी तरह से निकाला जा सका है। लल की मूल शैव विचारधारा के साथ परवर्ती इस्लामी विचारों

का जो मिश्रण हुआ, उसकी संतोषप्रद पहचान भी नहीं हो सकी है, बल्कि निहित अभिप्राय वाले विद्वानों ने प्रक्षिप्त और मूल के विवेचन के बिना ही लल का साहित्यिक और सामाजिक मूल्यांकन किया है।

लल ने अपने जीवनकाल में हिंदू धर्म और दर्शन के विकास तथा उनके क्षीण होने की प्रक्रियाएं देखी थीं। इस्लाम के पश्चिम एशियाई प्रचारकों के प्रति जन सामान्य के आरंभिक प्रतिरोध की वह साक्षी थीं। इस धर्म के राज्याश्रय पाने तथा व्यापक राज्याश्रित प्रचार की ज्यादतियां भी उन्होंने देखी थीं। योगी और वाममार्गी तांत्रिकों के द्वारा चमत्कार करके जनता को प्रभावित करने की घटनाएं भी लल के सामने होती रहीं। समय-समय पर आड़े-तिरछे संकेतों में उन्होंने इन घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया भी दी। अपने समय का प्रत्यक्ष साक्ष्य लल की कविता में नहीं मिलता। उनकी कविता के बाहर केवल जबानी परंपराएं चलती रहीं। कभी-कभी उनकी लाक्षणिक उक्तियों के सीधे अर्थ लेकर उनके जीवन तथा कृतित्व के विवरण तैयार किए गए। उदाहरणतः उनके 'निर्वसन नाचने', अन्य धर्मगुरुओं, समुदायों, सास, पति, गुरु के साथ उनके पद्यबद्ध वार्तालाप करते तथा सांसारिक व्यवहार पर उनके आशुपद कहने के बारे में विविध मौखिक और लिखित परंपरागत बातें आज तक चल रही हैं। जो भी हो, लल की छवि हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए श्रद्धेय स्नेहशील मां की है। अनुमान है कि लल ने सत्तर-पचहत्तर वर्ष की आयु पाई होगी। कबीर की तरह उनके पार्थिव शरीर का अग्नि-संस्कार करने या उसे दफन करने के बारे में विवाद का जिक्र भी मिलता है। लल्लेश्वरी कश्मीर शैवदर्शन की व्याख्याता नहीं, जैसा कि कुछ साहित्यालोचकों ने सिद्ध करने की कोशिश की है। वह इस दर्शन से प्रभावित थीं, पर उनका उद्देश्य इसका प्रचार करना नहीं था। उन्होंने अपने आध्यात्मिक अनुभव को लोकप्रिय मुहावरे तथा शब्दावली में व्यक्त किया। कविता उनके लिए बेहतरीन आत्माभिव्यक्ति का साधन थी–

मेरे गुरु मुझसे बस एक वचन बोले
बाहर से तू सिमट और भीतर हो ले
वही मेरा आदर्श बना, आदेश बना
इसीलिए मैं लगी घूमने निर्वसना।

गुरु का स्थापित हुआ आदर्श शिव भक्ति का था, जिसे प्राप्त करने के लिए लल कुछ भी कर सकती थीं, सह सकती थीं। पारिवारिक और सामाजिक विरोध को उन्होंने बड़े मानसिक पराक्रम से सहा तथा अभिव्यक्त किया–

हंस लें मुझ पर बोल हजारों भले कसें
मैं मनवासी मुझ को कोई खेद नहीं
यदि मैं होऊंगी शंकर-भक्तिन सच्ची
दर्पण को मैला कर सकती राख कभी?

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि लल ने शैव साधना के मार्ग को समझते-समझाते जो कविता की, उसमें इस योगिनी के अभ्यासक्रम के विभिन्न चरणों का संकेत मिलता है। इस आधार पर इस कवयित्री को शैवदर्शन की भाष्यकार बताया गया; पर वास्तव में ऐसा नहीं है। लल ने शैवदर्शन को अपने जीवन में उतारा जरूर था, पर उनका मुहावरा कवि का है और उनका व्यक्तिगत

अनुभव रूपक में परिवर्तित होकर अभिव्यक्त हो जाता है। इसे व्याख्यात्मक या उपदेशात्मक समझना उचित नहीं।

शिव है तेरे तन में सूक्ष्म जाल फैलाकर
बहुत कला से रमा हुआ घट-घट के भीतर
जीते-जी रे नहीं देखेगा तो क्या मर कर?
तनिक विचारो, मन से अहं को कर लो बाहर।

यह शिव की मनुष्य में उपस्थिति की दार्शनिक व्याख्या नहीं बल्कि उपस्थिति की अनुभवगम्यता का चित्र है। लल के लिए शिव की प्राप्ति का उपाय किसी मतवाद से प्रेरित नहीं था बल्कि जिंदगी के ढर्रे के निर्वाह के साथ-साथ एक समांतर चिंतन तथा रचना से संभव था।

शिव शिव कहो और हंस की गति अपनाओ
जीवनभर व्यवहार यही हो चाहे दिन या रात
दुई किसी से नहीं, न मन से कोई लगन लगाए
उस पर नित्य प्रसन्न हुआ करते हैं सुरगुरु नाथ।

यहां स्पष्ट ही हंस की गति आध्यात्मिक अभ्यास-क्रम का संकेत करती है। मन से दुई से दूर रखना व्यावहारिक सज्जनता है। लल दोनों का संतुलित मिश्रण करके ही शिव की प्राप्ति संभव मानती हैं। जीवन की निरंतरता उनके लिए सबसे बड़ा सत्य था। यह शैवदर्शन के अभिमत से समर्थित भी था। जीवन को लल ने कभी त्याज्य और अवांछित तथ्य नहीं समझा यद्यपि मृत्यु और पुनर्जन्म अवश्यंभावी बताए–

हम ही सदा रहे हैं जग में, हम ही सदा रहेंगे
चले आ रहे सदा निरंतर हम ही विगत समय से
जीना-मरना नहीं चुकेगा शिव के लिए कभी भी
उदय-अस्त ज्यों नहीं रुकेगा रवि के लिए कभी भी।

वस्तुतः लल्लेश्वरी धर्म-कर्म दर्शन आदि का निश्चित और सोद्देश्य उपयोग करने के पक्ष में थीं। इस सब क्रिया का लक्ष्य था ईश्वर सापेक्ष मानव-उत्थान।

तंत्र जभी चुक जाए मंत्र बाकी रहता है।
और मंत्र चुक जाए चित्त ही शेष रहेगा
और चित्त भी रहे नहीं तो कहां क्या रहे
विलय शून्य में होकर केवल शून्य रहेगा।

तंत्र-मंत्र चित्त और शून्य के इस क्रम की व्याख्या टीकाकारों ने अलग-अलग ढंग से की है। तंत्र वस्तुतः आरंभिक आयोजन का प्रारूप या आरेखन है, जो किसी भी उपक्रम में, मन में केंद्रीकरण के लिए आवश्यक है। तंत्र को ही साध्य बनाकर चलने वाले तांत्रिक लल की व्यंग्योक्तियों से बच नहीं सके थे। मंत्र आरेख को दिया जाने वाला शब्द है, जो उसे 'वस्तु' की संपन्नता और गरिमा प्रदान करता है। लल ने हजारों मंत्रों की अनावश्यकता तथा एक ही प्रभावी मंत्र 'ओम' की महत्ता पर जोर दिया। शब्द की भी एक सीमा होती है और शब्द का विकास चित्त और चिंतन में ही संभव है। पर अंततः चित्त को भी शून्य में विलीन करना ध्येय है, क्योंकि जीवंत शून्य में सबका

विलय सबसे बड़ा सत्य है और इसका स्वीकार ही मानसिक और आध्यात्मिक परिणति का मार्गदर्शन करा सकता है। अनुभव की एक पूरी दुनिया तथा अनुभूति के एक पूरे क्रम को इसप्रकार संक्षिप्ति के साथ बहुत कम कवि कह सके हैं।

लल ने जब भी आध्यात्मिक अनुभव को शिवभक्ति की पारंपरिक शब्दावली से संयुक्त करके 'वाख' कहे, उनका मूल कवि-व्यक्तित्व अभिव्यक्ति में सदा प्रधान रहा। केवल शब्द पारंपरिक थे, शब्द संयोजन, वाक्य रचना उनकी नितांत मौलिक थी, जिससे उनकी रचना में सटीकता तथा बात में भेदन-बल अचूकता के साथ बराबर मौजूद रहा। न केवल सामाजिक रूढ़ियों पर बल्कि धार्मिक आडंबर पर उनके व्यंग्यों में तीक्ष्णता तथा सदाशयता, उनकी कविता की कोटि को उच्च बनाती है। लोक-व्यवहार तथा लोक-विश्वास का उन्होंने पूरा सदुपयोग किया। शिव उनकी कविता में एक आदर्श प्रियतम के रूप में मौजूद रहते हैं और लल एक बिरही प्रियतमा की तरह उसे पाने को बेकल रहती हैं–

प्रेम पगी मैं 'लल' यों घर से निकल पड़ी
उसे ढूंढ़ते मुझे हो गए दिन और रात
देखा 'पंडित' तो मेरे ही घर में थे
यही मुहूर्त था शुभ, जो मैंने ग्रहण किया।

प्रिय को दिन-रात ढूंढ़ने की ललक लल में एक सुखद रोमांस की-सी रही है, क्योंकि यह ललक वह एक निरंतर यात्रा के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। यह उनकी मानसिक यात्रा है जिसका लक्ष्य सदा उनकी नजर में रहा है। न वह द्वैत की उपज है, न ही द्वैत उसका तार्किक निष्कर्ष है। यह किसी नायिका का अपने बावरे प्रिय के साथ रमण का-सा रससिक्त अनुभव है–

मेरे तलुओं का मांस मार्ग से चिपक गया
मुझे 'एक' से 'एक' दिशा का बोध मिला
(अनुभव मेरा) सुने वही विक्षिप्त बने
सौ बातों की एक बात लल यही माने।

यह मानते हुए या अपनी आस्था की विवेचना करते हुए लल कभी भी मानव मात्र, कमजोरियों तथा मानव प्रयास के बौनेपन का सत्य आंखों से ओझल नहीं होने देतीं। ऐसे समय कवयित्री का मन लघुता के प्रति करुणा से भर जाता है और उनकी कविता पारदर्शी बन जाती है–

कच्चे धागे से समुद्र में खींच रही हूं नाव
काश सुनें प्रभु मेरे, मुझको कभी लगा दें पार
मिट्टी के कच्चे सकोरों में पानी पचता है
अपने घर आना चाहूं, है ललच रहा जी मेरा।

मिस्री का बोझ ढोती हूं, गांठ पड़ गई ढीली
देह यष्टि ही हो गई टेढ़ी, अब कैसे ढो सकती
गुरु वचनों से जाग पड़ी वंचित होने की पीड़ा,
बिन चरवाहा रेवड़ भटका, अब कैसे सह सकती।

इसप्रकार लल की कविता तीव्र व्यक्तिगत अनुभव की समर्थ अभिव्यक्ति है जिसका चिंतनात्मक आधार धर्म और दर्शन है, पर जो कवयित्री के मानसिक बंधन तथा मुक्ति की कामना को अभिव्यंजित करता है। इस कविता के सामाजिक-सांस्कृतिक राजनीतिक आयाम भी हैं, पर हर संदर्भ में इसका काव्यत्व प्रधान रहता है। लल किसी भी मनःस्थिति को स्पष्ट चित्रों और सघन बिंबों में संप्रेषित करती हैं, जिससे पाठक उनके मंतव्य की गहराई तक जा सकता है। लल कश्मीरी की आदि कवयित्री हैं, पर उनकी कविता का स्तर देखकर यह मानना गलत नहीं कि वह किसी पूर्ववर्ती काव्य परंपरा की एक उन्नत कड़ी ही हो सकती हैं। ऐसी किसी परंपरा के अनुपलब्ध तथा असंभवप्राय होने की स्थिति में लल्लेश्वरी के काव्य तथा व्यक्तित्व का महत्त्व और बढ़ जाता है। □

कश्मीर की त्रिक परंपरा

महेश कौल

कश्मीर भारतीय ज्ञान और धर्म परंपरा का केंद्र ही नहीं, अपितु प्रयोगशाला भी है, जहां समय-समय पर अनेक प्रकार के धर्म संबंधित शोध होते रहे और यह प्रयोग तथा शोध जिस धरातल पर होते रहे, उन्हें केवल सामान्य ज्ञान और कौशल बुद्धि के आधार पर नहीं समझा जा सकता। इसके लिए उन मानदंडों को समझना पड़ेगा जिनके आधार पर इसकी नींव रखी गई है।

कश्मीर की शैव साधना, जिसे काश्मीर शैव दर्शन के नाम से जाना जाता है, वह हर प्रकार से इस आधार पर खड़ी है कि संपूर्ण सृष्टि शिव रूप है। जब शिव उन्मेष द्वारा अपने उल्लास को प्रकट करते हैं तो जीवन का प्राकट्य होता है। सरल शब्दों में कहें तो सारा जीवन, जो पृथ्वी पर संचालित होता है, वह शिवरूप है, उससे भिन्न नहीं है।

शिव, जिसे प्रकाश कहा जाता है, वह अपने अस्तित्व को साकार करने के लिए शक्ति का संचार करते हैं। वह शक्ति ही उनका विमर्श है। इसे शिव का स्वातंत्र्य कहते हैं। इसी आधार पर संपूर्ण कश्मीर शैव दर्शन की नींव पर टिका है, जिसे समय-समय पर विभिन्न शैव साधकों ने विस्तार प्रदान किया है।

शैव दर्शन का आधार तांत्रिक संस्कृति है, जिसका मूल तंत्र या आगम शास्त्र है। कश्मीर शैव दर्शन पर जितना भी अनुसंधान या साधना हुई है, वह शिव द्वारा शक्ति के साथ संवाद पर आधारित है। जिन तंत्रों के आधार पर कश्मीर शैव परंपरा का निर्माण हुआ है, उसमें से कई महत्त्वपूर्ण तंत्र लुप्त हो चुके हैं। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा रचित 'तंत्रालोक' और 'तंत्रसार' नामक ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है। कई ग्रंथ और तंत्र जो कश्मीर शैव दर्शन को अपनी पहचान देने में सक्षम रहे हैं और अब लुप्त हैं, इसप्रकार हैं—1. श्री सर्वज्ञ शास्त्र, 2. अनादि शास्त्र, 3. श्री मत्स्वायंभुव शास्त्र, 4. श्री सिद्धांत तंत्र और 5. श्री मत्त्रैशिरस शास्त्र।

कश्मीर शैव दर्शन को मूलतः 'त्रिक' के नाम से भी जाना जाता है, जो प्रत्यभिज्ञान की पराकाष्ठा है। यहां यह कहना अनिवार्य है कि कश्मीर में प्रचलित शैव दृष्टियां उसी तरह एक उत्कृष्ट

स्थान पर पहुंचीं जैसे वैज्ञानिक अनुसंधान में विभिन्न प्रयोगों के उपरांत एक प्रतिनिधि शोध को सबका आधार माना जाता है, जिसमें सबका समावेश माना जाता है। त्रिक भी उसी चरमसीमा का प्रतिनिधि है। कश्मीर में प्रचलित विभिन्न शैव समूह कालांतर में एक जगह समाहित हुए, जो त्रिक की संज्ञा से शोभायमान हुआ। वह विभिन्न दृष्टियां हैं—1. द्वैत 2. अद्वैत और 3. द्वैताद्वैत।

परंतु आज यह सारी परंपराएं अद्वैयवादी दर्शन में विराजमान है। नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य कश्मीर में शैव परंपरा में नई चेतना का संचार हुआ। इस समय काल में त्रिक, क्रम, मत, कुल, स्पंद, प्रत्यभिज्ञा, सिद्धांत और त्रिपुरा दर्शनधाराएं प्रवाहित हुईं।

त्रिक परंपरा, जो कश्मीर शैव दर्शन की प्रतिनिधि परंपरा है, इसका मूल पूर्णतया आगमिक या तांत्रिक है। त्रिक का उल्लेख तंत्रों में बार-बार आता है। श्री तंत्रालोकः, श्री तंत्रसार परात्रिशिका जैसे ग्रंथों में इसका विशद विवेचन आज भी मिलता है, जो यह सिद्ध करता है कि आचार्य अभिनवगुप्त इस परंपरा को ही कश्मीर शैव दर्शन का आधार तथा मूल स्रोत मानते हैं। परात्रिशिका विवरण में तो वह इस पर संपूर्ण प्रकाश डालते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि त्रिक कश्मीर शैव परंपरा का शिखर है। आचार्य अभिनवगुप्त के शोध एवं साधना से यह स्पष्ट हो जाता है कि त्रिक परंपरा द्वैत, अद्वैत व द्वैताद्वैत धाराओं का समावेश है।

श्री तंत्रालोक के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सिद्धयोगेश्वरीतंत्र और उसका संक्षिप्त स्वरूप श्री मालिनीविजयोत्तरतंत्र त्रिक परंपरा के मुख्य आगम स्रोत हैं। इस शैव परंपरा का वैशिष्ट्य परा, परापरा और अपरा देवियां हैं। इन्हीं को केंद्र बनाकर साधना का विकास हुआ है। यहां यह कहना अत्यंत आवश्यक है कि मालिनी की यहां प्रधानता है, यानी वर्णमाला में 'न' से लेकर 'फ' तक वर्णों का एक सिद्धांत विकसित है।

त्रिक् परंपरा के विकास के तीन स्तर हैं—1. सिद्धयोगेश्वरीमत व मालिनीविजयोत्तरतंत्र में वर्णित त्रिक परंपरा, 2. काली केंद्रित त्रिक परंपरा और 3. अभिनवगुप्त द्वारा तंत्रालोक, मालिनीविजयवर्तिक एवं परात्रिशिकाविवरण में विकसित त्रिक परंपरा।

यदि ध्यान से इन धाराओं का विश्लेषण किया जाए तो ज्ञात होता है कि त्रिक परंपरा शैव दर्शन को एक संपूर्ण शोधपरक पद्धति के पटल पर स्थापित कर देता है।

अभिनवगुप्त कृत 'परात्रिशिका' त्रिक परंपरा को समझने का उत्कृष्ट ग्रंथ है। जैसा कि पहले बताया गया है कि कालांतर में मुख्य ग्रंथ, जो दर्शन के मूल ग्रंथ हैं, लुप्त हो चुके हैं, लेकिन आचार्य अभिनवगुप्त के समय यह ग्रंथ उपलब्ध रहे हैं। इसलिए उन्हें इन ग्रंथों का रसपान करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ में आचार्य ने त्रिक सिद्धांतों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

इस ग्रंथ का अध्ययन करने पर साधक और शोधकर्ता को त्रिक परंपरा के रहस्य का बोध होता है। अभिनवगुप्त इस रहस्य का उद्घाटन करते हैं कि शिव और शक्ति का एकीकरण

ही शैव अद्वैतवाद का रहस्य है। इस रहस्य का साक्षात्कार देवी पराशक्ति के द्वारा ही हो सकता है, जिसे परवाक से उद्घाटित किया जाता है। देवी भैरव (शिव) से इस रहस्य का ज्ञान अर्जित करती है। इस प्रश्न-उत्तर प्रक्रिया में वह शिव से स्थूल शरीर में खेचरी अवस्था का ज्ञान प्राप्त करती है। इस ग्रंथ से यह सिद्ध होता है कि देवी, जो विमर्श है और शिव के प्रकाश की पराशक्ति स्वरूपा है, भैरव से पश्यंति और मध्यमा के पटल पर प्रश्न रखती है।

इस वार्ता को जब सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो यह ज्ञात होता है कि मानव शरीर शिव स्वरूप का ही क्षेत्र है। यह शिव से भिन्न नहीं है। यहां कुल परंपरा का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, इसे यहां कौलकी विशेषण से उद्घाटित किया गया है। इसे कौलकी सिद्धि के द्वारा वर्णित किया गया है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कश्मीर शैव परंपरा एक निरंतर चलती धारा का प्रवाह है, जिसे लगातार सिद्धियों के द्वारा एकीकरण की ओर अग्रसर किया गया और आज उसने जो स्थान अर्जित किया है, उसका रहस्य केवल तंत्र शास्त्र के हृदय में विराजमान है।

यहां पर वाक की ही विशेषता दी गई है। पर वाक ही शैव चेतना का शिखर है। त्रिक परंपरा में शिव के विमर्श की शक्ति ही इस संसार रूपी उन्मेष में विद्यमान है, जो उसके होने का प्रमाण है। यहीं पर वाक, पश्यंति, मध्यमा और वैखरी स्तर पर भी विद्यमान है। पश्यंति उस चेतना का संचार करती है, जो आरंभिक स्तर पर हमारी स्मरण शक्ति को भैरव भाव की ओर अग्रसर करती है। मध्यमा शब्द और उसके संकेत की ओर ले जाती है। वैखरी में शब्द हमें एक स्थिर भाव की ओर ले जाता है। पर वाक शैवदर्शन को यह स्पष्ट करने में बल देता है कि यह संसार माया नहीं, अपितु भैरवभाव की पराकाष्ठा का साक्षात्कार है। यहां शिव के स्वातंत्र्य को विमर्श के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इसके पांच कृत्य बताए गए हैं—1. सृष्टि, 2. स्थिति, 3. संहार, 4. विल्यं और 5. अनुग्रह।

इस सारे विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शक्ति शिव से भिन्न नहीं है, अपितु वह भैरव की अनुग्रहकर्ता स्वातंत्र्य की परिचायक है। वह हर समय समस्त कार्य सिद्ध करने में तत्पर रहती है। उसके अनुग्रह को सात भागों में वर्णित किया जा सकता है। वह इसप्रकार है—सकल, प्रत्यकाल, विज्ञानकाल, मंत्र, मंत्रेश्वर, मंत्रमहेश्वर और शिवप्रमाता। मध्यमा स्तर पर केवल मानसिक अनुभव का प्रसाद आभासित होता है। वह बाहर दृष्टिगोचर नहीं होता।

शब्द और उसके संकेत की भिन्नता केवल मध्यमा में रहती है। वह बाहरी स्तर पर प्रकट नहीं होती। वैखरी में शब्द मुंह में दृष्टिगोचर होता है। वहां बाहरी स्तर पर शक्ति का संचय होता है।

इसप्रकार त्रिक परंपरा शैव दर्शन को भैरवी शिखर पर स्थापित करता है। त्रिक के रहस्य को एक त्रिकोण के द्वारा प्रकट किया जा सकता है।

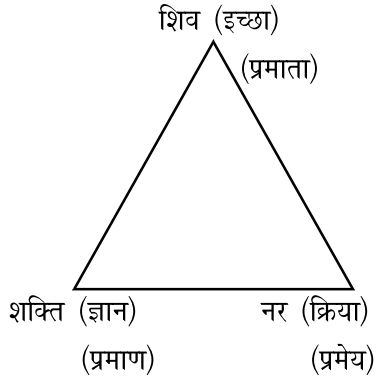

यही त्रिक का संपूर्ण रहस्य एवं शिव की परमसत्ता का भेद भी है।

सहायक ग्रंथ :

1. मिश्र, परमहंस, (हंस), (2000). 'श्री तंत्रालोक', भाग (1-7), वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
2. सिंह, जयदेव, (2017). 'परात्रिशिका विवरण (अभिनवगुप्त कृत)', दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
3. क्षेमराज, रजानक, (2017). 'प्रत्यभिज्ञानहृदयम्', नई दिल्ली : ईश्वर आश्रम ट्रस्ट।
4. सिंह, जयदेव, (2018). 'विज्ञानभैरव', नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
5. रस्तोगी, नवजीवन, (2017). 'अभिनवगुप्त का तंत्रागमीय दर्शन-इतिहास-संस्कृति-सौंदर्य और तत्त्व-चिंतन', सागर : सागर विश्वविद्यालय प्रकाशन।

□

आचार्य जयंत भट्ट : कथ्य व तथ्य

जयंत उपाध्याय

भारतीय न्यायदर्शन परंपरा में आचार्य जयंत भट्ट का आविर्भाव एक महत्त्वपूर्ण घटना है। उन्होंने न्यायशास्त्रीय विद्या, शास्त्र एवं तंत्र को पुनर्व्याख्यायित करने में अप्रतिम योगदान प्रस्तुत किया। नवम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महापंडित आचार्य प्रवर जयंत भट्ट का जन्म कश्मीर में हुआ। आचार्य जयंत भट्ट ने अपनी किसी कृति में कहीं भी अपने जीवन के बारे में स्पष्टतः कुछ नहीं कहा, तथापि उनकी कृतियों से कुछ ऐसे अंश ढूंढ़े जा सकते हैं, जो उनके व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डालते हैं। जयंत भट्ट के जीवन और वंशावली के संबंध में इनके पुत्र अभिनंद के ग्रंथ 'कादंबरीकथासार' से उनके विषय में पर्याप्त और प्रामाणिक परिचय मिलता है। तत्कालीन कश्मीरी परिवेश के विषय में भी कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' से पर्याप्त प्रकाश मिलता है। इन सब साक्ष्यों के समन्वय से जयंत भट्ट के जीवन का परिचय इसप्रकार है—जयंत भट्ट के पूर्वज शक्ति नामक गौड़ ब्राह्मण थे और जिनका गोत्र भारद्वाज था, वे बंगाल से कश्मीर के लिए स्थानांतरित हुए। यह स्थानांतरण कश्मीर के 'दार्वाभिसार' नामक स्थान पर शक्ति के वैवाहिक संबंधों के फलस्वरूप हुआ।[1] डॉ. ब्यूलर ने दार्वाभिसार की स्थिति कश्मीर की सीमा पर बताई है।[2] डॉ. स्टीन का मत है कि वितस्ता और चंद्रभागा नदियों के मध्य का भाग दार्वाभिसार था।[3] शक्ति के पुत्र का नाम मित्र था और मित्र का पुत्र शक्तिस्वामी कश्मीर के कर्कोटयवंशीय शासक मुक्तापीड ललितादित्य के मंत्री थे।[4] शक्तिस्वामी के पुत्र कल्याणस्वामी थे, जो जयंत भट्ट के पितामह थे। जयंत भट्ट ने 'न्यायमंजरी'[5] में माना है कि उनके पितामह ने गौर-मूलक ग्राम प्राप्त करने की इच्छा से संग्रहणी यज्ञ किया और गौर-मूलक ग्राम प्राप्त किया। जयंत भट्ट ने 'गौर-मूलक' का उल्लेख अन्यत्र भी किया है।[6] इससे प्रतीत होता है कि जयंत भट्ट गौर-मूलक ग्राम के स्वामी रहे हों या न रहे हों, किंतु निवासी अवश्य थे।[7] कल्याणस्वामी के पुत्र चंद्र का जयंत भट्ट के पिता के रूप में उल्लेख किया गया है।[8]

जयंत भट्ट का काल-निर्धारण—जयंत भट्ट ने अपनी कृतियों में अपने काल का उल्लेख नहीं किया है। अतः जयंत भट्ट के काल का निर्धारण प्राप्त अंतर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर किया जा सकता है।

पूर्व सीमा—जयंत भट्ट ने अपने विश्रुत ग्रंथ 'न्यायमंजरी' में जिन ग्रंथों को उद्धृत किया है, उनमें से कुछ जो अत्यंत प्राचीन हैं, उन पर हमें विचार नहीं करना है, परंतु अपेक्षाकृत परवर्ती ग्रंथों से प्राप्त उद्धरण अवश्य अवलोकनीय हैं। 'न्यायमंजरी' में जयंत भट्ट ने ध्वनि सिद्धांत पर

आक्षेप किया है जिसका शास्त्रीय प्रतिपादन आनंदवर्धन ने किया है।[9] यहां जयंत भट्ट ने आनंदवर्धन अथवा उनकी कृति 'ध्वन्यालोक' का नामोल्लेख नहीं किया है।[10] 'न्यायमंजरी' में जयंत भट्ट ने बाणभट्ट का सम्मानपूर्वक नाम स्मरण किया है।[11] जयंत भट्ट कृत टिप्पणी और 'राजतरंगिणी' से प्राप्त संकेत जयंत भट्ट और आनंदवर्धन के काल में निकटता प्रदर्शित करते हैं।[12] जयंत भट्ट ने 'कुट्टनीमत' का भी उल्लेख किया है।[13] 'कुट्टनीमत' के लेखक दामोदर गुप्त आनंदवर्धन के समकालीन अवंतिवर्मा के अमात्य थे।[14] 'राजतरंगिणी' के साक्ष्य के आधार पर अवंतिवर्मा का शासनकाल 855-56 से 883 ई. तक है।[15] 'तत्त्वोपप्लवसिंह' का संकेत करने वाले चार्वाक सिद्धांतों का भी जयंत भट्ट ने खंडन किया है। यद्यपि वे ग्रंथ का उल्लेख नहीं करते हैं।[16] आठवीं सदी के ग्रंथ 'युक्तिदीपिका' के विचारों का भी 'न्यायमंजरी' में खंडन हुआ है।[17] जयंत भट्ट ने सविकल्पक प्रत्यक्ष के संदर्भ में माघ के 'शिशुपालवध' का एक श्लोक उद्धृत किया है।[18] ये सभी ग्रंथ नवीं सदी के पूर्वार्द्ध के हैं। अतः जयंत भट्ट के काल की पूर्व सीमा नवीं सदी का पूर्वार्द्ध निश्चित की जा सकती है।

उत्तर सीमा—जयंत भट्ट के काल की उत्तर सीमा का निर्धारण बहिरंग साक्ष्यों पर आधारित है। मलधारी सूरिकृत 'षड्दर्शन समुच्चय' नामक ग्रंथ के शैव दर्शन परिच्छेद में आया 100वां श्लोक राजशेखर सूरि (1383 ई.) से उद्धृत है, जिसमें जयंत भट्ट का उल्लेख है।[19] गंगेशोपाध्याय ने 'तत्त्वचिंतामणि' के उपमान खंड में जयंत भट्ट को 'जरन्नैयायिक' कहते हुए स्मरण किया है।[20] देवसूरि (1086-1169 ई.) के स्याद्वारत्नाकर'[21] में भी जयंत भट्ट के उद्धरण मिलते हैं। उदयन भी जयंत भट्ट से परिचित थे। उदयन ने 984 ई. में 'लक्षणावली' की रचना की।[22] उन्होंने परिशुद्धि में 'जयंतमतमाह' कहकर जयंत भट्ट का उल्लेख किया है। अतः इन सब साक्ष्यों से स्पष्ट है कि दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक जयंत भट्ट विश्रुत हो चुके थे।

अभिनंद का विवरण—जयंत भट्ट के बारे में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सूचना उनके पुत्र अभिनंद की कृति 'कादंबरीकथासार' से प्राप्त होती है। अभिनंद ने 'कादंबरीकथासार' के उपक्रम में अपना वंश-परिचय प्रस्तुत किया है। अभिनंद के अनुसार 'वृत्तिकार' इस द्वितीय नाम वाले जयंत भट्ट उनके पिता हैं, जो कविता एवं वक्तृता में निष्णात हैं।[23] 'कादंबरीकथासार' के अनुसार जयंत भट्ट शक्ति स्वामी के प्रपौत्र थे, जो कर्कोटवंशीय कश्मीर नरेश मुक्तापीड ललितादित्य के अमात्य थे।[24] मुक्तापीड का शासन 'ललितागणी' के अनुसार 733 से 769 ई. तक है।[25] शक्तिस्वामी इनके समकालीन थे। इस तथ्य के माध्यम से जयंत भट्ट के प्रपितामह का काल अष्टम सदी का मध्य भाग निश्चित होता है। यदि तीन पुश्तों के मध्य 100 वर्ष का अंतराल माना जाए तो जयंत भट्ट की स्थिति नवीं सदी का मध्य भाग ही निश्चित होता है, जो वर्णित पूर्व सीमा और उत्तर सीमा का भी अतिक्रमण नहीं करती।

शंकरवर्मा का उल्लेख और उसका अभिज्ञान—जयंत भट्ट के काल निर्धारण में यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि 'न्यायमंजरी'[26] और 'आगमडंबर'[27] में शंकरवर्मा के नाम का उल्लेख है। 'न्यायमंजरी' में प्रयुक्त 'निवारयामासं' में परोक्ष भूतवाची (Past Perfect Tense) के प्रयोग से कुछ आलोचक यह निष्कर्ष निकालते हैं कि जयंत भट्ट और शंकरवर्मा के काल में काफी अंतराल रहा होगा, परंतु उपर्युक्त निर्णय पूर्णतया सत्य नहीं है, क्योंकि परोक्ष शब्द के अनेक अर्थ हैं। सौ, दो सौ वर्षों के

अतिरिक्त दो-तीन दिन पूर्व के लिए भी परोक्ष शब्द का प्रयोग होता है।[28] राजा बनने के बाद शंकरवर्मा ने दार्वाभिसार, गुजरात, त्रिगर्त स्थानों को विजित कर पंचसत्र (पाटन) में शंकरपुर नामक नगर बसाया तथा स्वयं एवं अपनी पत्नी सुगंधा के नाम पर क्रमशः 'शंकरगौरीश' तथा 'सुगंधेश' नामक मंदिरों का प्रभारी 'नायक' अर्थात् आचार्य जयंत भट्ट को नियुक्त किया। फणिभूषण तर्कवागीश[29] तथा जे.वी. भट्टाचार्य[30] ने भी इस 'नायक' की पहचान जयंत भट्ट के रूप में की है। प्रो. स्टीन ने इसकी पहचान आलंकारिक भट्ट नायक के रूप में की है।[31] परंतु 'राजतरंगिणी' में वर्णित नायक के गुणों का साम्य जयंत भट्ट से अधिक है और नायक तथा भट्टनायक के पदों में मात्र नायक अंश की उभयनिष्ठता के अलावा प्रो. स्टीन के पास समीकरण का कोई अन्य आधार नहीं है। यह स्पष्ट नामोल्लेख न कर उनके लिए कल्हण ने 'नायक' पद का व्यवहार क्यों किया? संभवतः 'राजतरंगिणी' ने शंकरवर्मा का जो व्यक्तित्व प्रस्तुत किया है, उसमें वह अत्यंत अत्याचारी, क्रूर और जनविरोधी चित्रित किया गया है। जे.वी. भट्टाचार्य का मत है कि शंकरवर्मा ने लगातार युद्धरत रहकर राष्ट्रीय आय का अपव्यय किया, लगातार पराजित हुआ और इसप्रकार सैनिक व्यय के लिए जनता पर अनावश्यक करों का बोझ लाद दिया। फलतः उसके काल में विद्वानों, आश्रितों की उपेक्षा हुई। यह तथ्य 'निवारयामास' से भी सिद्ध है। जयंत भट्ट ने राजा के प्रति निंदा भाव प्रकट किए हैं। जयंत भट्ट ने भी अप्रत्यक्ष रूप से शंकरवर्मा के अत्याचारों के विरुद्ध लेखनी अवश्य चलाई होगी। अतः उनकी प्रशस्ति कल्हण ने 'नायक' के रूप में की। इस तर्क से फणिभूषण तर्कवागीश भी सहमत हैं। बाद में जयंत भट्ट ने 'नीलांबर व्रत प्रथा' पर रोक लगा देने के कारण शंकरवर्मा को 'धर्मतत्त्वज्ञ' उपाधि से विभूषित किया।[32] आगे चलकर शंकरवर्मा का शासन अपेक्षाकृत जनोन्मुखी हो गया था और उसने जयंत भट्ट को अपना मंत्री भी बनाया।[33] इसप्रकार दो मंदिरों के प्रभारी बनकर जयंत भट्ट शंकरवर्मा के निकट हो गए। अतः यदि कल्हण जयंत भट्ट का नामोल्लेख करते तो उसकी दृष्टि में शंकरवर्मा के साथ जुड़े जयंत भट्ट पर भी अनेक मिथ्यारोप लगते। 'राजतरंगिणी' में शंकरवर्मा का मात्र आततायी रूप में ही चित्रण है, अतः उससे जुड़े जयंत भट्ट को अपयश से बचाने के लिए संभवतः कल्हण ने उनका सीधे उल्लेख न कर 'नायक' शब्द का व्यवहार किया। जयंत भट्ट की रचना 'आगमडंबर' में शंकरवर्मा को यशोवर्मन देव के रूप में चित्रित किया गया है।[34] संभव है, शंकरवर्मा का यह उपनाम विजयी होने पर यशोवर्मन देव के रूप में वर्णित किया गया हो, क्योंकि इस नाम के सिक्के पंजाब के उत्तरी क्षेत्र में प्राप्त हुए हैं जिन्हें कर्कोटवंशीय शासकों की शैली का माना गया है।[35] ये सभी तथ्य बताते हैं कि जयंत भट्ट शंकरवर्मा के समकालीन थे। 'राजतरंगिणी' में शंकरवर्मा का शासनकाल 883 से 903 ई. तक माना गया है। इसीलिए इस काल को जयंत भट्ट का भी काल मानना चाहिए।

जयंत भट्ट और वाचस्पति मिश्र का पौर्वापर्य—विद्वान, जयंत भट्ट के काल को पुष्ट करने के लिए जिस तथ्य का सर्वाधिक प्रयोग करते हैं—वह है, वाचस्पति मिश्र का काल। वाचस्पति मिश्र का काल नियत है, जो 841 ई. माना गया है। तर्क यह दिया जाता है कि चूंकि वाचस्पति मिश्र और जयंत भट्ट ने एक-दूसरे का उल्लेख नहीं किया है, ऐसा तभी संभव है जब वे दोनों समकालीन हों और परस्पर अपरिचित हों, क्योंकि उनमें अधिक कालांतर होने पर यह असंभव है कि वे एक-दूसरे का उल्लेख न करें। 'न्याय-सूची-निबंध' में यह श्लोक मिलता है कि—

श्री वाचस्पतिमिश्रेण वस्वंकवसुवत्सरे।
न्यायसूचीनिबंधोऽसावकारि सुधियां मुदे।।

यहां आए 'वस्तवंकवसुवत्सरे' से ग्रंथ की समाप्ति-काल का संकेत है। 'वसु' का अर्थ 8 तथा 'अंक' का अर्थ 9 है। आशय यह निकला कि वाचस्पति मिश्र 898 संवत्सर में ग्रंथ की रचना कर रहे थे। फणिभूषण तर्कवागीश ने 'वत्सर' का अर्थ 'विक्रम संवत्' माना है, अर्थात् वाचस्पति मिश्र ने ग्रंथ की रचना 898 विक्रम संवत् में की थी। कुछ आलोचक 'वत्सर' का अर्थ 'शक संवत्' लेते हैं और ऐसा मानने पर ग्रंथ का रचना काल 976 ई. ठहरता है, परंतु यह निष्कर्ष इस तथ्य से बाधित है कि उदयनाचार्य वाचस्पति मिश्र के बाद हुए थे।[36] चूंकि उदयनाचार्य 984 ई. में 'लक्षणावली' लिख रहे थे।[37] अतः शक संवत् मानने पर वाचस्पति मिश्र का पूर्ववर्ती होना बाधित होता है। इसलिए पहले आए 'वत्सर' के लिए 'विक्रम संवत्' मानना ही उचित होगा। इसप्रकार वाचस्पति मिश्र का समय 841 ई. निश्चित हुआ।

जयंत भट्ट और वाचस्पति मिश्र के पौर्वापर्य संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। इस विषय में तीन मत प्रचलित हैं। पं. गंगाधर शास्त्री ने जयंत भट्ट को वाचस्पति मिश्र का परवर्ती स्वीकार किया है। पं. धर्मेंद्र नाथ शास्त्री ने उन्हें वाचस्पति से पूर्ववर्ती और गुरु स्वीकार किया है जबकि प्रामाणिक गवेषणाओं के बाद महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, फणिभूषण तर्कवागीश, जानकी वल्लभ भट्टाचार्य, वी. राघवन, सी. डी. विजल्वान प्रभृति विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जयंत भट्ट और वाचस्पति मिश्र दोनों समकालीन तथा एक-दूसरे से अनभिज्ञ थे। गोपीनाथ कविराज ने जयंत भट्ट को वाचस्पति मिश्र का उत्तरवर्ती समकालीन कहा है।[38]

यद्यपि सामान्य दशा में मिथिला (जहां के वाचस्पति मिश्र थे) तथा कश्मीर के विद्वानों के मध्य विचार-विनिमय साधारण घटना थी, परंतु नवीं सदी में कश्मीर की स्थिति सामान्य न थी—जैसा कि कल्हण ने स्पष्ट किया है। वह युद्धरत कश्मीर का काल था। अपने ही देश में राजकीय संरक्षण से रहित विद्वान दीन-हीन थे। अशांत वातावरण के कारण कश्मीर का देश के अन्य भागों से संपर्क-विच्छेद की कल्पना करना कठिन नहीं है। जयंत भट्ट राजकीय दायित्वों का भी निर्वहन कर रहे थे। अतः एकांतिकता उनकी परिणति बन गई थी। इसप्रकार यह निष्कर्ष निकालना उचित होगा कि जयंत भट्ट और वाचस्पति मिश्र समकालीन थे। परिस्थितिजन्य अवरोधों के कारण उनका संपर्क नहीं हुआ होगा।

जयंत भट्ट के काल-निर्धारण का निष्कर्ष—जयंत भट्ट का जन्म नवीं सदी के मध्य में हुआ होगा, यही समय अवंतिवर्मा का शासनकाल प्रारंभ होने का होगा। यह निश्चित है कि जयंत भट्ट के जन्मकाल तक वाचस्पति मिश्र मिथिला में एक उद्भट विद्वान के रूप में उभर चुके थे। अवंतिवर्मा के शासनकाल में ही जयंत भट्ट ने विविध शास्त्रों का अध्ययन किया। नवीं सदी के अंतिम चतुर्थांश में शंकरवर्मा ने सत्तारूढ़ होते ही जयंत भट्ट को दो मंदिरों का प्रभारी बनाया। नवीं सदी के अंत तक उन्होंने 'न्यायमंजरी' की रचना की। नवीं सदी के अंत में ही शंकरवर्मा के धार्मिक मामलों के सलाहकार (मंत्री) नियुक्त किए गए होंगे। 'आगमडंबर' नामक नाटक की रचना इन्होंने दसवीं सदी के प्रारंभ में की। (उस समय शासक सुगंधादेवी थी)। इसप्रकार दसवीं सदी के प्रथम या द्वितीय दशक तक जयंत भट्ट जीवित रहे होंगे।

जयंत भट्ट और कारावास—जयंत भट्ट, शंकरवर्मा द्वारा बंदी बनाए गए थे? वस्तुतः यह विवाद जयंत भट्ट के इस कथन द्वारा आंदोलित हुआ—

राज्ञा तु गर्धेऽस्मिन्नशब्दके बंधने विनिहितोऽहम्।
ग्रंथरचनाविनोदादिह हि मया वासराः गमिताः ।।

इस श्लोक का कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि जयंत भट्ट को शंकरवर्मा ने बंदी बनाया था। संभवतः वह देश खग देश रहा होगा।[39] इसके कारण के रूप में वे 'राजतरंगिणी' में वर्णित शंकरवर्मा-आख्यान की सहायता लेते हैं, जिससे पता चलता है कि शंकरवर्मा ने विद्वानों को अपमानित किया, उनकी वृत्ति छीन ली, अतार्किक कर-भार बढ़ाकर मंदिरों, मठों को आयरहित कर दिया। अतः अनाचार के विरोध में जयंत भट्ट ने आवाज अवश्य उठाई होगी और तब शंकरवर्मा ने इन्हें बंदी बनाया होगा।

यह कथा सत्य हो सकती है, परंतु इसमें कई संशय के बिंदु भी उभरते हैं। न तो जयंत भट्ट ने स्वयं को बंदी बनाए जाने के कारणों का उल्लेख किया है और न ही 'राजतरंगिणी' में ऐसा कहीं उल्लेख मिलता है। बंदी-काल में ऐसी सुविधाओं की कल्पना कठिन है, जो 'न्यायमंजरी' जैसे बृहद् ग्रंथ के प्रणयन के लिए प्रदान की जाती है। क्या शंकरवर्मा उनके ग्रंथ को नष्ट नहीं कर सकते थे? मेरे मन में उपर्युक्त श्लोक लाक्षणिक शैली में कहा गया एक वक्तव्य है, जो रचनाकार के सहज स्वभाव के प्रतिकूल उपलब्ध वातावरण के प्रति उसकी अरुचि को प्रकट करता है। श्लोक यह भी बताता है कि राजकीय दायित्व उनके लिए भार-सदृश था। वे एक ऐसे स्थल पर थे, जहां उनका मन दार्शनिक साहित्यिक प्रेरणा के रूप में कोई अनुकूल परिवेश नहीं पाता था। वस्तुतः जयंत भट्ट द्वारा जन-विद्रोह के प्रतिनिधित्व की बात अविश्वसनीय-सी है। दो मंदिरों का प्रभारी बनना, सचिव-पद प्राप्त करना, नीलांबर प्रथा पर रोक लगवाना आदि तथ्य जयंत भट्ट को राजसत्ता का सहयोगी ही बताते हैं। अभिनंद स्वीकार करते हैं कि[40] जयंत भट्ट का द्वितीय नाम 'वृत्तिकार' था, वे कविता एवं वक्तृता में पारंगत थे। अतः एक दार्शनिक साहित्यकार द्वारा राजकर्म को लाक्षणिक शैली में अरुचिकर कहना अपेक्षित ही है।

न्यायमंजरी : सा अनन्या—'न्यायमंजरी' जयंत भट्ट की अप्रतिम कृति है, जिसकी रचना नवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई। जयंत भट्ट इसे अक्षपाद के चुने हुए सूत्रों की व्याख्या मानते हैं।[41] गंगाधर शास्त्री ने इसी आशय को 'गौतम सूत्र-तात्पर्य-विवृत्ति' कहकर प्रकट किया है। आज जिस रूप में यह ग्रंथ प्राप्य है,[42] अपने उस कलेवर में यह बारह आह्निकों में विभक्त है। इसके विस्तार में 'न्याय दर्शन' में वर्णित सोलह पदार्थों का विवेचन है। इसमें पदार्थ विवेचन अधिमानी स्तर पर हुआ है। मुख्य रूप से प्रथम छह आह्निकों में जहां 'प्रमाण' का ही विवेचन है, उसमें से तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं षष्ठ आह्निकों में शब्द संबंधी अवधारणाओं का विवेचन हुआ है अर्थात् पूरे ग्रंथ का तिहाई भाग परवर्ती शब्द-प्रमाण के लिए समर्पित है। परवर्ती छह आह्निकों में शेष पंद्रह पदार्थों[43] का विवेचन है।

'न्यायमंजरी' की लोकप्रियता एवं उपादेयता अपेक्षाकृत कम रही है। अतः इस ग्रंथ को अपने युग में यथोचित सम्मान नहीं मिल पाया। इसके कई कारण थे, एक तो जयंत भट्ट काल में कश्मीर की स्थिति अशांत थी, जिससे उनका संपर्क अन्य विद्वानों से नहीं हो पाया, अतः इस पर

पर्याप्त चर्चा नहीं हुई। बाद में इस पर 'न्यायमंजरीग्रंथिभंग' नाम की टीका लिखी गई और जयंत भट्ट पुत्र अभिनंद ने अपनी रचना 'कादंबरीकथासार' में इस ग्रंथ के बारे में अनेक सूचनाएं दीं, तब तक न्याय परंपरा की दिशा अन्यत्र मुड़ चुकी थी। गंगेश के काल में (12वीं शताब्दी) नव्य न्याय के प्रादुर्भाव ने न्याय दर्शन के पद्धति में व्यापक परिवर्तन किए।

'न्यायमंजरी' जयंत भट्ट की दार्शनिक प्रतिबद्धता का प्रमाण है। न्याय दर्शन के प्रति समर्पित जयंत भट्ट ने परंपरागत न्याय-मान्यताओं (विशेष रूप से 'न्याय भाष्य' और 'वार्तिक' के विरोध में) के विरुद्ध उठाए गए बौद्धों—विशेष रूप से दिङ्नाग संप्रदाय और मीमांसकों के आक्षेपों को निरस्त कर न्याय मान्यताओं को पुनर्स्थापित किया है। ध्यातव्य है कि ग्रंथ में अधिकांश दर्शनों की मान्यताओं को मूल रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह ग्रंथ 'सर्वदर्शन मान्यता' की प्रामाणिक प्रस्तुति का सफल मंच बन गया है। यद्यपि ग्रंथ न्याय मान्यताओं का परिरक्षण करता है, परंतु यह रक्षा हठधर्मिता या सांप्रदायिक स्तर पर नहीं हुई है। प्रत्येक मान्यता के ग्रहण के लिए एक बौद्धिक तर्क शृंखला है। अतः रचना ने सहज तर्क के अनेक क्षितिज उद्घाटित किए हैं। सूत्रों की शास्त्रीय व्याख्या पर रचनाकार ने निजता का आवरण चढ़ाकर बहुत कुछ अपना बना लिया है और कई मान्यताएं 'न्यायमंजरी' की निजी मान्यताएं बनकर उभरी हैं; जैसे—सामग्रीकारणवाद और संहत्यकारितावाद।

जयंत भट्ट का अपना देश (कश्मीर) शैव दर्शन की भूमि रही है, परंतु रचना अपने कलेवर में न्याय पथ से अविचलित रहकर उसके रचनाकार की प्रतिबद्धता का ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत करती है, जो कुछ ही रचनाओं में उपलब्ध होता है। 'न्यायमंजरी' में आए आचार्यः, व्याख्याकारः, गुरुवः आदि पद वात्स्यायन एवं जयंत भट्ट के मध्य के न्याय परंपरा की शृंखला को विशृंखलित होने से बचाता है, वहीं दूसरी ओर लेखन के लिए एक व्यापक फलक भी प्रदान करता है। परवर्ती काल में नव्य न्याय की जो परंपरा चली, उसके कई प्रस्थान बिंदु 'न्यायमंजरी' में अपने विवेचन का आधार बनाते हैं। अन्य दर्शनिक संप्रदाय भी 'न्यायमंजरी' के उल्लेख के बिना अपने प्रतिपादन को अपूर्ण पाते हैं—जैसे 'सामग्रीकरणवाद' का अनुकरण 'न्याय भाष्य' के व्याख्याकार विश्वरूप ने किया है।[44] इसी प्रकार 'संहत्यकारितावाद' का प्रभाव भोज पर पड़ा जिसका विवेचन उन्होंने अपने ग्रंथ 'शृंगार प्रकाश' में किया है।[45] यह ग्रंथ मत-मतांतरों के खंडन-मंडन का नीरस पिटारा भर नहीं है, अपितु इसमें चतुर्दिक साहित्य भाव की अंतःसलिला भी प्रवाहित है, जो इसे अन्य दार्शनिक ग्रंथों से विशिष्ट बनाती है। रचनाकार का पांडित्य इसमें कहीं भी बौद्धिक आतंक का पर्याय बनाकर नहीं उभरा है, अपितु जयंत भट्ट के सरस साहित्यिक व्यक्तित्व के अनुरूप इस ग्रंथ में सर्वत्र सरस विवेचन के दर्शन होते हैं। नवीं सदी तक भारत में लौकिक साहित्य के समानांतर देशभाषा में साहित्य का भी विकास हो चुका था। प्रबंधात्मक ग्रंथ दोनों भाषाओं के शिल्पों से अंतःक्रिया कर एक परिपाटी ग्रहण कर चुके थे। 'न्यायमंजरी' में भी इस परिपाटी के दर्शन होते हैं, यद्यपि इसे प्रबंध-ग्रंथ मानना अनुचित नहीं होगा। सर्गों की भांति ही यह ग्रंथ भी बारह आह्निकों में विभाजित है। इसमें भी ईशवंदना, गुरु अभ्यर्थना, रचनाकार के मंतव्य का प्रतिपादन है। ग्रंथ का पहला ही श्लोक पूर्ण रूप से न्याय दर्शन की मान्यता के अनुरूप न होकर भी इतर साहित्यकारों के समान शिव वंदना करता है।[46] चौथे श्लोक में अक्षपाद की महत्ता बताकर रचनाकार एक प्रकार से

गुरु-अभ्यर्थना का संकेत करते हैं।[47] चौदहवें श्लोक में रचना-उद्देश्य का कथन है।[48] यद्यपि संपूर्ण रचना तार्किक विवेचन का प्रतिफलन मात्र है, परंतु रचनाकार अपने घोषित उद्देश्य के अतिरिक्त कुछ अपने निष्कर्ष भी देता है। यह प्रयास संपूर्ण रचना में 'उत्तम पुरुष' में विवेचित है। अतः यह ग्रंथ आत्मकथात्मक शैली में पर्यवसित होकर उत्कृष्ट साहित्य का रूप ग्रहण करती है। पूरे ग्रंथ में विषयानुकूल शांत रस का परिपाक है, परंतु प्रसंगानुकूल अन्य रस (विशेषतः शृंगार रस) भी आए हैं।[49] यद्यपि लक्ष्य 'सामग्रीकरणवाद' को पुष्ट करता है, परंतु इसमें प्रतिवादी के आक्षेप के साथ लंबे-लंबे सामासिक पदों की व्यंजना परिलक्षित होती है।[50] रचना में रूपक के बाहुल्य के साथ-साथ जनसामान्य के जीवन के शब्दों, दृष्टांतों का भी प्रयोग हुआ है।[51] रचना की शैली में व्यासत्व की प्रधानता है जो प्रसंगानुकूल विविध रूप ग्रहण करती है, संपूर्ण रचना को 'चंपू-काव्य' कहा जा सकता है। इसप्रकार 'न्यायमंजरी' अपनी साहित्यिक श्रेष्ठता के कारण भी लोकप्रिय है।

'न्यायमंजरी' के अंत में जयंत भट्ट ने स्वीकार किया है कि उन्हें 'नववृत्तिकार' उपनाम से जाना जाता था।[52] जयंत भट्ट ने संभवतः पाणिनीय व्याकरण पर कोई वृत्ति अवश्य लिखी थी, जो आज अप्राप्य है। 'न्यायमंजरी' में जयंत भट्ट की व्याकरण संबंधी स्वाभाविक प्रतिभा का परिचय मिलता है, साथ ही 'आगमडंबर' में भी जयंत भट्ट ने व्याकरण के सिद्धांतों के गहन ज्ञान का परिचय दिया है, जिससे उनके व्याकरण में निष्णात होने की पुष्टि होती है। जयंत भट्ट की 'न्यायमंजरी' के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण कृति 'आगमडंबर' है। यह एक नाट्य-कृति है जिसे उन्होंने दसवीं सदी के प्रारंभ में लिखा। इसे हम 'रूपक' कह सकते हैं, यद्यपि नाट्य-शास्त्र में मान्यता प्राप्त रूपक विद्या के किसी वर्ग में इसे नहीं रखा जा सकता। साहित्यिक कलेवर में प्रतिपाद्य छह आगम (मुख्यतः पंचरात्र) के आचार्यों के मध्य वाद-विवाद है। छह दर्शनों से संबद्ध होने के कारण इसे 'षष्ठमतनाटक' भी कहा गया है।[53] इसमें कुछ 'न्यायमंजरी' के श्लोक भी मिलते हैं।[54]

जयंत भट्ट : दर्शन की साहित्यिक भूमिका—आत्म-विज्ञापन-निषेध हमारे ऋषियों और मनीषियों की सहज प्रवृत्ति रही है। अपने दाय के मूल्यांकन के प्रति उपेक्षाभाव वस्तुतः उनके उदारमना होने का परिचय देता है; परंतु जिज्ञासु के लिए जहां यह एक संभावना प्रस्तुत करता है, वहीं अनेक चुनैतियां भी खड़ी करता है। यह बात न्यायमंजरीकार जयंत भट्ट के लिए पूरी तरह सत्य है। ग्रंथ-रचना को दिवस-यापन का व्यसन मानने वाले जयंत भट्ट हमारे सामने जिस गोपन-पुरुष के रूप में आते हैं, उस आवरण को भेदकर उनके आलोक प्रकीर्ण व्यक्तित्व को सामने लाना एक कठिन कार्य है, तथापि उपलब्ध साक्ष्यों (विशेष रूप से 'न्यायमंजरी') के आधार पर कहा जा सकता है कि जयंत भट्ट हमारे सामने एक ऐसे दार्शनिक आचार्य के रूप में उभरकर आते हैं जिनकी मेधा चली है बुद्धि के साथ, पर हृदय का अवलंबन लेकर। इसी हृदय वृत्ति ने उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को भी उभारा। इसी तथ्य को जयंत भट्ट के पुत्र अभिनंद ने भी स्वीकार किया है।[55]

जयंत भट्ट ने वस्तुतः पूर्ववर्ती दार्शनिक परंपराओं का गहन अध्ययन किया था। चार्वाक सांख्य, बौद्ध, जैन, वैशेषिक के साथ-साथ मीमांसा एवं अपने पूर्ववर्ती न्याय-आचार्यों का उल्लेख वस्तुतः उनके अध्ययनशील होने का ही संकेतक है। उनका अध्ययन अभ्रांत था जिससे वे निरपेक्ष होकर सभी मतों को यथातथ्य उद्धृत कर सके। यह पूर्वाग्रह रहितता जहां एक ओर उनकी निष्पक्षता,

सदाशयता को द्योतित करती है, वहीं दूसरी ओर इस तथ्य को भी रेखांकित करती है कि प्रतिपक्षियों की न्यूनताओं को प्रकट करने में उनकी मेधा सक्षम है और इसके लिए किसी वितंडा, जल्प या मिथ्या कथन की कोई आवश्यकता नहीं। इसप्रकार जयंत भट्ट ने एक स्वच्छ वाद-विवाद एवं चिंतन परंपरा का मार्ग प्रशस्त किया। प्रतिपक्षियों के तर्कों के खंडन में उनकी स्पष्टवादिता वस्तुतः किसी अहम्मन्यता का रूप ग्रहण नहीं करती, अपितु उनकी प्रतिबद्धता को ही उजागर करती है। अतः जब वे कहते हैं कि ''प्रभाकर अपने कृतित्व का अमुक-अमुक अंश बौद्धों से बिना उनकी स्वीकृति के लिया है[56] तो इस कथन को उपर्युक्त आशय के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए। अपनी मातृभूमि के दर्शन से अलग जब एक बार उन्होंने न्यायदर्शन मार्ग का अवलंबन लिया तो आजीवन उसे ही निष्कंटक और संवृद्ध बनाते रहे, यह उनकी न्यायदर्शन के प्रति अभ्रांत निष्ठा का परिणाम था। अपने लक्ष्य में न्यायदर्शन के प्रति उनके मन में कोई संशय नहीं था, उन्हें अपनी प्रक्रिया विकल्पक नहीं लगी। जब सभी दर्शन-मार्ग एक ही लक्ष्य (मोक्ष) के प्रतिपादक हैं तो जयंत भट्ट की दृष्टि में उनमें न्यूनता खोजना वस्तुतः अपनी आस्था की बलि चढ़ाना है। अतः उनकी दृष्टि में प्रतिपक्षियों का प्रत्युतर एक प्रकार से न्याय मार्ग की शुचिता को स्थापित करना ही अधिक जान पड़ता है; और यह ऐतिहासिक तथ्य है कि तीसरी सदी में 'न्याय भाष्य' की रचना के बाद बौद्धों ने न्याय सूत्रों की आलोचना की, पांचवीं सदी में बौद्ध तार्किक वसुबंधु तथा दिङ्नाग ने 'न्याय-सूत्र' की प्रासंगिकता पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। अतः न्यायदर्शन को पुनर्जीवित करने के लिए उद्योतकर (छठी सदी) ने बौद्ध आक्षेपों पर प्रहार किया, परंतु यह प्रहार दीर्घकालीन न रह सका। अंततः तीन सदी बाद जयंत भट्ट के अवतरण ने इस अधूरे कार्य को पूरा किया। जयंत भट्ट की निष्ठा का पता हमें तब चलता है जब हम देखते हैं कि उनके ही समकालीन वाचस्पति मिश्र अपनी ही न्याय-मान्यताओं का खंडन कर अद्वैत वेदांत की ओर मुड़ गए, परंतु जयंत भट्ट ने मार्ग-परिवर्तन को पंथ-परिवर्तन के समान पाप समझा।

जयंत भट्ट ने हमेशा अपनी क्षमता, अपने प्रयास मूल्य को कम आंका, जो वस्तुतः उनको अत्यधिक उदारमना और सहिष्णु होना सिद्ध करती है। जब वे स्पष्टतः अपनी अक्षमता की घोषणा करते हुए कहते हैं कि हम नवीन बात कहने में कहां समर्थ हैं? तो वे सर्वथा मौलिक बात कह रहे हैं।[57] यद्यपि 'सर्वथा मौलिक' न कहने का दावा करने वाले जयंत भट्ट ने बहुत कुछ मौलिक कहा है। 'तात्पर्यवृत्ति' और 'तात्पर्यवाद की उद्भावना' का प्रतिपादन उनकी मौलिकता के ही प्रमाण हैं। 'अथर्ववेद' को वेदत्रयी के स्तर पर प्रतिष्ठित करने का उनका प्रयास स्तुत्य है। कोई भी सत्य किसी व्यक्ति या वर्ग की धरोहर नहीं होता, जिस किसी ने भी उसे पूर्णनिष्ठा से प्रतिपादित किया, वह उसका ही हो गया और इस आधार पर जयंत भट्ट को नितांत मौलिक विचारक कहा जा सकता है। एक साथ पौरोहित्य (जयंत भट्ट दो मंदिरों के प्रभारी थे), राजधर्म (शंकरवर्मा का मंत्री होना) और रचना धर्म साधने वाले जयंत भट्ट में संतुलनकारी अद्भुत मौलिकता थी। 'न्यायमंजरी' के प्रणयन काल की एकांतिकता जहां उनका 'बंधन' कहना बताता है कि वे रचना-धर्म को अधिमान्यता देते हैं। मानवीय दुर्बलता के रूप में कहीं-कहीं सौम्यता का अतिक्रमण कर बैठते हैं[58] यद्यपि ऐसे प्रसंग अत्यल्प हैं, जहां भाषा में अमर्यादापन, विरोधियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार के लिए उन्हें प्रेरित होना पड़ा।

जयंत भट्ट की भाषा संयत है, शब्द चयन प्रसंगानुकूल है। पदों की सामासिकता बाणभट्ट का स्मरण कराती है। सूत्रों की व्याख्या में उन्होंने विविध शैलियों का प्रयोग किया है। सर्वप्रथम वे सूत्र उद्धृत करते हैं, यहां सूत्रात्मक शैली है। इसके बाद वे अपने आशय को प्रकट करते हैं, यहां शैली में विवरणात्मकता से अधिक व्यासत्व का प्राधान्य है। तत्पश्चात् प्रतिपक्षियों के आक्षेप प्रस्तुत करते हैं। कहीं-कहीं यह क्रम बदल भी गया है। प्रतिपक्षियों के आक्षेप के परिहार में वे कभी आधार वाक्य का ही खंडन करते हैं और कहीं-कहीं विपक्षी तर्क-शृंखला की मध्यवर्ती किसी मान्यता का खंडन कर पूरी शृंखला ध्वस्त कर देते हैं। कभी-कभी जयंत भट्ट अपनी आधारभूत मान्यता का कोई विशेष अर्थ नहीं बताते और उसे पूर्वमान्यता के रूप में स्वीकार कर प्रतिपक्षी का खंडन करते हैं। उदाहरण के लिए 'वर्ण-भेद' के संदर्भ में जयंत भट्ट ने माना कि उच्चारण भेद में उदात्त-अनुदात्त-स्वरित के क्रम में भेद है जिससे वर्ण-भेद है। वे लौकिक साक्ष्यों को अधिमान्यता देते हैं। वस्तुतः संपूर्ण 'न्यायमंजरी' में लौकिक साक्ष्यों को सर्वाधिक वैधता भी है।

यदि विषय प्रतिपादन पर बल न दिया जाए तो 'न्यायमंजरी' की संरचना प्रबंधतंत्रीय लगती है। ईश्वर-गुरु अभ्यर्थना एवं लक्ष्य निरूपण का उल्लेख करके अपनी साहित्यिक अभिरुचि का प्रमाण दिया है। अनुप्रास, रूपक, उपमा, अलंकारों का बाहुल्य, वर्ण-मैत्री, पद-मैत्री का लालित्य, श्लोकों के रूप में छंदों का यथाशक्य निर्वहन, आत्मने पद का बाहुल्य उन्हें ललित और आत्माभिव्यंजक निबंधकार के रूप में प्रतिष्ठित करता है तथापि जयंत भट्ट ने यह भी ध्यान रखा कि साहित्यिक-मोह कहीं वर्ण्य-विषय के साथ अन्याय न कर दे। 'न्यायमंजरी' के अध्येता के रूप में उनका व्यक्तित्व बहुआयामी होकर उभरा है। बाद में जयंत भट्ट अपने साहित्यिक लगाव को दबा न सके। यह प्रवृत्ति उनके नाटक 'आगमडंबर' में पूर्ण रूप से प्रकट हुई। यद्यपि इस ग्रंथ का वर्ण्य-विषय दर्शनशास्त्र ही है, जिसे जयंत भट्ट ने भी स्वीकार किया है। 'आगमडंबर' के पूर्व किसी रचना में दार्शनिक व्यक्तित्वों का वाचवी प्रयोग नहीं दिखाई देता है—यह बात उस युग में जितनी क्रांतिकारी थी, उससे अधिक आज सर्जनात्मक है। जिस बात को सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'खुल गए छंद के बंध' कहकर व्याख्यायित किया, उसका प्राचीनतम उदाहरण 'आगमडंबर' को माना जा सकता है। यह शिल्प-विद्रोह वस्तुतः रचनाकार के रूप में जयंत भट्ट के क्रांतिकारी व्यक्तित्व का ही रूप है। यदि 'विजन' को साहित्य की कसौटी माना जाए तो उक्त नाटक एक 'फंतासी' की सर्जना करता है जिससे देश-काल निरपेक्ष पात्रों ने एक ही धरातल पर आकर दार्शनिक मतवादों की चर्चा की।

इसप्रकार डॉ. वी. राघवन के निष्कर्षों से सहमति व्यक्त की जाए तो कहा जा सकता है कि जयंत भट्ट का उनके पूरे रचनाकाल में व्यक्तित्वांतरण दार्शनिक से कवि ('न्यायमंजरी' में), कवि से दार्शनिक (आगमडंबर में) और समेकित रूप में दार्शनिक-कवि के रूप में हुआ है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. अभिनंद, (1925). 'कादंबरीकथासार', पृ. 2, बॉम्बे : पांडुरंग ज्वालाजी प्रेस।
   शक्तिनामाभवद्गोड़ो भारद्वाज कुले द्विजः।
   दर्वाभिसारमासाद्य क तदारपरिग्रहः ॥ 1/5
2. इंडियन एंटीक्वेरी, भाग II ,(1884), जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च, पृ. 102

3. कल्हण, (1960). 'राजतरंगिणी', स्टीन कृत अनुवाद भाग-1, पृ. 209, काशी : पंडितराज पुस्तकालय।
4. अभिनंद, (1925). 'कादंबरीकथासार', पृ. 2, 1/6-7, बॉम्बे : पांडुरंग ज्वालाजी प्रेस।
5. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, पृ. 250 (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस
   द्वितीय संस्करण *तथा ह्यस्मत्पितामह एव ग्रामकामः साग्रहणीं कृतवान्, इष्टिसमाप्तिमनन्तरमेव गौरमूलक ग्राममवाप।*
6. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ. 50, 53, 54, 215, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
7. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-2, द्वितीय संस्करण का अंतिम श्लोक, पृ. 250, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
8. यह परंपरा अधोलिखित से समर्थित है–
   i. नरहरी, गुरु त्रिलोचन, (1927). 'न्यायमंजरी : ए फॉरगोटेन वर्क', पटना : जर्नल ऑफ द बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी।
   ii. गुप्त, बह्मानंद, (1963). जर्नल ऑफ द बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना।
   iii. मुखर्जी, सतकारी, (1931). जयंत भट्ट-द ऑथर ऑफ द न्यायमंजरी, कल्चरल रिव्यू, पृ. 40
9. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 6, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
10. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ. 45, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
    एतेन शब्दसामर्थ्यमहिम्ना सोऽपि वारितः।
    यमन्यः पण्डितंमन्यः प्रपेदे कंचन ध्वनिम् ॥
11. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ. 217, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
    प्रकटरसानुगुणविकटाक्षररचनाचमत्कारितसकलकविकुला बाणस्य वाच।
12. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 6, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
13. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ. 248, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
    तेषामेव प्रमाणत्वमागमनामिहेष्यते।
    न मृष्यते तु यत्किंचित्प्रमाण कुट्टनीमतम् ॥
14. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 6, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
15. कल्हण, 'राजतरंगिणी',(1960). पंडितराज पुस्तकालय, काशी, स्टीन कृत अनुवाद भाग-1, 4/716 से 5/123
16. भट्टाचार्य, जानकी बल्लभ, (1978), 'न्यायमंजरी' भाग-1, प्रस्तावना पृ. 26, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास
17. भट्टाचार्य, जानकी बल्लभ, (1978), 'न्यायमंजरी' भाग-1, प्रस्तावना पृ. 26, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास
18. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
    चयस्त्विषामित्यवधारित पुरा ततः शरीरीति विभावितकृतिम्।
    विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः ॥ शिशुपाल-वध 1/3 यह श्लोक 'न्यायमंजरी' भाग-1, पृ. 79 में उद्धृत है।
19. जयन्ताचार्यविरचितों न्यरतर्कोऽतिदुस्तरः।
20. जरन्नैयायिकाः जयन्तभट्टप्रभृतयः
21. यदा च शक्तिसंसिद्धो मज्जत्युदयनद्विपः।
    जयंत हन्त कातत्र गणनात्वाति कीटके ॥ परिच्छेद-2
22. भट्टाचार्य, जानकी बल्लभ, (1978). 'न्यायमंजरी', भाग-1, पृ. 7, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
23. अभिनंद, (1925). 'कादंबरीकथासार', पृ. 2, 10-11 श्लोक, बॉम्बे : पांडुरंग ज्वालाजी प्रेस।
24. अभिनंद, (1925). 'कादंबरीकथासार', पृ. 2, बॉम्बे : पांडुरंग ज्वालाजी प्रेस।
    स शक्तिस्वामिनं पुत्रमवाप श्रुतशालिनम्।
    राज्ञः कर्कोटवंशस्य मुक्तापीडस्य मन्त्रिणम् ॥ 7वां श्लोक

25. कल्हण, (1960). 'राजतरंगिणी', स्टीन कृत अनुवाद, 4/42, काशी : पंडितराज पुस्तकालय।
26. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ. 248, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
तद्पूर्वमिति विदित्वा निवारयामास धर्मतत्त्वज्ञः।
राजाशंकरावर्मा न पुनर्जैनादिमतमेवम् ॥
27. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 20, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
28. पाणिनि, (1969). 'धातुपाठ' (धात्वर्थ प्रकाशिका सहित), पृ. 233, वाराणसी : चौखंभा विद्याभवन।
परोक्षत्वं तु वर्षयातवृत्ततमित्येके। वर्षसहस्त्रवृत्रत्वमित्यपरे। द्वियहवृत्रत्वंन्यहवृत्र-त्वमित्यन्ये। कुड्यकटाड्यातरितत्वमतीरे।
29. तर्कवागीश, फणिभूषण, (1968). 'न्यायमंजरी', (बंगला अनुवाद) पृ. 56, वाराणसी : चौखंभा विद्याभवन।
30. भट्टाचार्य, जानकी बल्लभ, (1978). 'न्यायमंजरी', भाग-1, प्रस्तावना, पृ. 234, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
31. Steen, MA, (1961). 'Kalharn's Chronicles of the Kings of Kashmir', Vol. II, P. 144, 145, Delhi : Munsi Ram Manoher Lal. (भट्टनायक, जो प्रसिद्ध आलंकारिक थे, जिन्होंने अपने ग्रंथ 'हृदयदर्पण' में आनंदवर्धन के ध्वनि सिद्धांत का खंडन किया था।)
32. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 53, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
33. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 54, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
मंत्रीशास्त्रमहावीहरणाश्रान्तो जयन्तोडप्यसौ।
34. आगमडंबर, पृ. 77
35. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 7- 8, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
36. यह तथ्य परिशुद्धि के इस तथ्य से स्पष्ट है—
'मात, सरस्वति पुनः पुनरेव नत्वा बहाच्जलिः किमपि विज्ञपमाम्ययवैहि।
वाक्चेतसोमर्म तथा भव सावधान वाचस्पतेर्वचसि न स्खलतो यथैते ॥
37. लक्षणावली में तर्कम्बराड्प्रमितेश्वप्रतीतेशुशकात्ततः। यहां तर्क का तात्पर्य 6, अंबर का शून्य तथा अंक का 9 है, अतः पूरे वाक्यांश का 906 शक-संवत या 984 ई.।
38. Kaviraj, G.N., (1961). 'Gteenings from the Histroy and Bibliographical of Nayaya Vasisheshika Literature', Calcutta : Indian studies, Past and Present.
39. चक्रधर, (1972). 'न्यायमंजरीग्रंथिभंग', पृ.167, अहमदाबाद : एल. डी. इंस्टीट्यूट आफ इंडोलाजी।
40. अभिनंद, (1925). 'कादंबरीकथासार', पृ. 2, श्लोक 10-11, बॉम्बे : पांडुरंग ज्वालाजी प्रेस।
41. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, श्लोक 4, 14, (सं. पंडित सूर्य नारायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस।
42. मैंने मुख्य रूप से पंडित सूर्य नारायण शुक्ल द्वारा संपादित और जय कृष्ण दास हरिदास गुप्त, चौखंबा संस्कृति सीरीज ऑफिस, वाराणसी द्वारा प्रकाशित, 'न्यायमंजरी' को ध्यान में रखा है।
43. प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितन्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान।
44. Thakur, Vishwaroop, (1978). 'The Naiyayaika', Vol. 28, P. 29-30, Madras : Journal of Oriental Research.
45. Raghwan, V. (1963). 'Bhaja's Sringar Prakash', Bombay : Karnataka Publishing House.
46. नमः शाश्वतिकानन्दज्ञानैश्वर्यमयात्मने।
संकल्पसफलब्रह्मस्तम्भारम्भाय शम्भवे ॥
47. जयन्ति पुरजिद्दत्तसाधुवादपवित्रिताः ।
निदानं न्यायरत्नानामक्षपादमुनेर्गिरः ॥
48. तदेकदेशलेशे तु कृतोऽयं विवृतिश्रमः।
तमेव चानुगृह्नन्तु सन्तः प्रणयवत्सलाः ॥
49. अविरलजलधरधाराप्रबन्धबद्धान्धकारनिवहे बहुलनिशीये सहसैव
स्फुरता विद्यल्लुलतालोकेन कामिनीज्ञानमादधानेन तज्जन्मनि
सातिशयत्वमवाप्यते। न्यायमंजरी, पृ. 12-13
50. सामग्रयास्तु सोऽशितयः सुवच सन्निहिता चेत्सामग्री

संपन्नमेव...न्यायमंजरी, पृ. 13 (अनुप्रास प्रवृत्ति)
फलोपजननाविनाभाविस्वभावत्वाख्यसामग्रीसरूपसमारोपणनिबन्धनः। न्यायमंजरी, पृ. 13 (सामासिक प्रवृत्ति)

51. यथा हि बाह्यानि करणनि काष्ठादीनि पाके व्याप्रियन्ते यथा च शिबिकाया उद्यन्तार सर्वे शिबिकामुद्यच्छन्ति यथा त्रयोऽपि ग्रावाण उखां बिभ्रति तथा सर्वाण्येव पदानि वाक्यार्थमबोधयन्ति..., न्यायमंजरी 1, पृ. 366
52. अन्वर्थो नववृत्तिकार इति यं शंसन्ति नाम्ना बुधाः। न्यायमंजरी, अंतिम श्लोक
53. राघवन, वी., (1964). 'आगमडंबर की भूमिका', पृ. 25, दरभंगा : मिथिला विद्यापीठ।
54. भट्ट, जयंत, (1971). 'न्यायमंजरी', भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृ. 244, (सं. पंडित सूर्य नरायण शुक्ल), वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज ऑफिस। यह इस पुस्तक के नानाविधैरागममार्गभेदै इत्यादि लोक आगमडंबर 4/29 में उद्धृत है।
55. सरसाः सदलंकाराः प्रसादमधुराः गिरः।
कान्तास्तातजयन्तस्य जयन्ति जगतीगुरोः।। कादंबरीकथासार 1/2
56. भट्टाचार्य, जानकी बल्लभ, (1978). 'न्यायमंजरी' भाग-1, पृ. 31, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
57. कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः।
वचोविन्यासवैचित्र्यमात्रमत्र विचार्यताम् ॥
न हीयं कविभिः पूर्वैरदृष्ट सूक्ष्मदर्शिभिः।
शक्ता तृणमपि द्रष्टुं मतिर्मम तपस्विनी ॥
58. जयंत भट्ट अपने कट्टर विरोधियों के प्रति अमर्यादित शब्दावली का प्रयोग करते हुए कहते हैं—
ये त्वोश्वर निरपवाददृढप्रमाणसिद्धम्वरूपमपि नाभ्युपयन्ति मूढ़ाः।
पापाय तैः सहकथाऽपि वितन्यमाना
जायते नूनमति युक्तमतो विरन्तुम् ॥
न्यायमंजरी, भाग-1, पृ. 187-188
कहीं-कहीं वे विरोधियों के तर्कों का उपहास करते हैं और व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग करते हैं-
मीमांसकाः यशः पिबन्तु पयो वा पिबन्तु बुद्धिजाड़यापनयनाय ब्राह्मी घृत वा पिबन्तु, वेदस्तु पुरुषप्रणीत एवनात्र भ्रन्तिः। न्यायमंजरी, भाग-1, पृ. 216

□

कश्मीर में बौद्ध धर्म-दर्शन

प्रमोद कुमार सिंह

भारतीय प्राचीन ग्रंथों में कश्मीर को पृथ्वी का स्वर्ग तथा भारतवर्ष का राजमुकुट कहा गया है। इस कथन का अभिप्राय यह है कि यह एक मनोरम स्थान होने एवं हिमाच्छादित रहने के कारण विशेषकर वैदिक, शैव, शाक्त, बौद्ध एवं सभी धर्मों के प्रचारकों तथा मौलिक चिंतनकर्ताओं के आकर्षण का केंद्रबिंदु रहा है। इसका प्रमुख कारण यह था कि यहां पर चिंतन करने के लिए प्रीतिकर वातावरण मिलता था। पौराणिक परंपराओं के अनुसार कश्मीर का प्राचीन नाम कश्यपपुर था, जहां पर कश्यप ऋषि ने तपस्या की थी और यहीं पर इनकी दो पत्नियां दिति और अदिति से दैत्य तथा देवताओं की उत्पत्ति हुई थी। इस कथन से यह ध्वनित होता है कि बहुत ही प्राचीनकाल से कश्मीर धर्मों, दर्शनों एवं साधनाओं का संगम स्थल रहा है और यहां से धर्म, दर्शन एवं साधना का प्रचार-प्रसार भारतवर्ष में तथा उससे संबद्ध देशों यथा—तिब्बत, खोतन, चीन, अफगानिस्तान, चीनी तुर्किस्तान (मध्य एशिया) आदि देशों में होता रहा है। अतः जम्मू-कश्मीर में प्रारंभ से ही भिन्न-भिन्न मत के मानने वाले भी परस्पर सौहार्दपूर्ण वातावरण में एक साथ रहते आए हैं।[1]

कश्मीर अपने प्रारंभिक काल में एक विशाल सीमा वाला राज्य प्रतीत होता है। यूनानी दस्तावेजों में यह उल्लेख मिलता है कि कश्यप ऋषि के वहां पर बसने के कारण कस्यपिरोज (कश्यपपुर = कश्मीर) नाम पड़ा।[2] कश्मीर को चीनी परंपरा में 'की-पिन्' (Ki-Pin) कहा जाता है।[3] तिब्बती परंपरा में कश्मीर को 'खे-छे-युल' या 'खा-छुल'[4] तथा कश्मीर के निवासियों को 'खा-छे-पा'[5] कहते हैं। गिलगिट प्रदेश के लोग कश्मीर और कश्मीर के निवासियों को 'कशीर' कहते हैं।[6] चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण से हमें कश्मीर के पुराने भूगोल का बहुत ही रोचक विवरण प्राप्त होता है। श्वान् त्वाङ्[7] ने 10 अगस्त सन् 631 ईसवी में कश्मीर (च्या-स्स-मी-लुओ) की यात्रा की और दो वर्षों तक वहां पर रहकर इसके बारे में बहुत ही यथार्थ भौगोलिक विवरण प्रस्तुत किया था। वे बताते हैं कि कश्मीर का भौगोलिक नाम आज ही की तरह तब भी प्रयोग होता था जैसा आज है, लेकिन यह वितस्ता की घाटी तथा बारामुला के दर्रे के ऊपर से बहने वाली सहायक नदियों की घाटी तक ही सीमित था।

कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना के उद्भव के विषय में प्राप्त विवरण अत्यधिक अस्पष्ट है। परंतु बौद्ध स्रोत इस संबंध में एकमत हैं कि कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का परिचय आनंद के शिष्य तथा वाराणसी के एक भिक्षु मज्झंतिक द्वारा सुनिश्चित किया गया था। सिंहली के ऐतिहासिक ग्रंथ 'महावंश' के आधार पर जो विवरण प्राप्त होता है, उससे यह स्पष्ट होता

है कि तृतीय बौद्ध संगीति के उपरांत सम्राट अशोक के आध्यात्मिक गुरु मोग्गलिपुत्र तिस्स ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए विभिन्न देशों में धर्म-प्रचारकों को भेजा था। उसी में से एक बौद्ध भिक्षु मज्झंतिक को कश्मीर और गंधार भेजा गया था।[8] अन्य कई बौद्ध साहित्य यथा तिब्बती दुल्वा, अशोकावदान, अवदानकल्पलता और श्वान् त्वाङ् के यात्रा विवरण से भी यह स्पष्ट होता है कि मज्झंतिक ने कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का प्रचार किया था।[9] संबंधित कथानकों में विभिन्न प्रकार की गाथाएं बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गई हैं, और यह स्पष्ट किया गया है कि कैसे स्थानीय नाग लोगों के उग्र व्यवहार का सामना मज्झंतिक को करना पड़ा था तथा किस प्रकार वह उनके मुखिया, राजा और संपूर्ण नाग लोगों को अपनी आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा बौद्ध धर्म में विनीत करने के लिए अभिप्रेरित करने में सफल हुआ था।[10]

बौद्ध ग्रंथ 'दिव्यावदान'[11] में यह उल्लेख किया गया है कि कश्मीर के तमसावन के कई भिक्षुओं को सम्राट अशोक द्वारा पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध संगीति में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया था। सम्राट अशोक के पूर्ववर्ती राजा सुरेंद्र के शासनकाल में कश्मीर में कई विहारों के स्थापित होने का उल्लेख कल्हण[12] द्वारा किया गया है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि मज्झंतिक और अशोक के पूर्व ही कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का प्रचार-प्रसार हो चुका था। फिर भी बौद्ध धर्म भले ही पहले यहां प्रवेश कर चुका हो, लेकिन कश्मीर में उसकी सुदृढ़ता, तृतीय शताब्दी ईसा पूर्व मज्झंतिक के आध्यात्मिक नेतृत्व में ही हुई। ज्ञातव्य है कि सम्राट अशोक के शासनकाल के दौरान कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना के प्रचार-प्रसार हेतु राजकीय संरक्षण में मज्झंतिक थेर नामक अग्रदूत को भेजा गया था, जो वाराणसी का रहने वाला एवं आनंद का शिष्य था।

सम्राट अशोक के राज्यकाल में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना भारत में इस तेजी से फैला कि उसके अठारह पंथ बने। ये भेद सैद्धांतिक उतने नहीं थे, जितने भौगोलिक थे। बौद्ध धर्म के विकास के साथ-साथ अलग-अलग प्रदेशों में पंथ बने। उन्हें संगठित करने वाली या एकरूपता देने वाली कोई व्यवस्था न होने से पुराने उपदेशों को उन्होंने अपने-अपने तरीके से आगे बढ़ाया। कई पंथ-भेद तो मिट भी गए। बुद्ध के निर्वाण के बाद दूसरी सदी में महासंघिक ने आठ विभिन्न निकाय चलाए। इनमें एक व्यावहारिक, लोकोत्तर, अपरशैल और उत्तरशैल प्रमुख थे। एक शती बाद स्थविरवाद मानने वाले में फूट पड़नी शुरू हुई। पहली फूट के कारण दो निकाय विभक्त हुए—सर्वास्तिवाद तथा मूल-स्थविरवाद (जिसे हैमावत भी कहते हैं)। वैशाली में अपने आरंभ से महासंघिक पूर्व की ओर सीमित रहा, जहां से वह विशेषतः दक्षिण की ओर फैला। इस मत के मानने वाले उत्तर में अधिक नहीं रहे होंगे, क्योंकि उनका उल्लेख केवल दो उत्कीर्ण लेखों में है। महासंघिक का अपना साहित्य विकसित हुआ और वस्तुतः उसने प्राचीन बौद्ध धर्म की सबसे अधिकृत परंपरा रखी, क्योंकि वह अपने आप को महाकाश्यप से चला हुआ धर्म मानता है। इसी महाकाश्यप ने पहला बौद्ध संघ बुलाया, जिसमें बौद्ध धर्म के सूत्र पहली बार परंपरा के अनुसार पढ़े गए। धान्यकटक प्रदेश के साहित्य में महासंघिक की सभी शाखाओं का उल्लेख यह बतलाता है कि वह प्रदेश सातवाहनों के और उनके वंशजों के राज्याश्रय में कृष्णा घाटी में, महासंघिकों का सबसे बड़ा अखाड़ा रहा होगा। ये मत तीसरी या चौथी शती तक पनपते रहे। स्थविरवाद नामक दूसरे दल में से जो निकाय निकले, उन्होंने भी साहित्य और उत्कीर्ण लेखों में अपना निश्चित स्थान बना लिया। ये शुंग काल से कुशाण काल तक यानी 200 ईसा पूर्व से 200 ई. तक पनपते रहे।

सर्वास्तिवाद और उसकी अन्य शाखाएं उत्तर में पनपती रहीं। सर्वास्तिवादी निकाय मथुरा से नगर (हार) और तक्षशिला से कश्मीर तक के समूचे प्रदेश में प्रचलित था।

सम्राट अशोक के उपरांत कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का इतिहास कुछ सीमा तक अंधकारमय है। अशोक के पुत्र जलौक के शासनकाल में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का ह्रास हुआ था। वस्तुतः उसका पुत्र स्थानीय नागवंशियों का समर्थक और शैव धर्म का अनुयायी था; जिसके कारण उसे बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना में अधिक विश्वास नहीं था। बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना के प्रति उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन 'कृत्या' से संबंध होने पर हुआ, जिसके अनुरोध पर उसने कृत्याश्रम नामक विहार का निर्माण कराया था।[13]

इंडो-ग्रीक राजा मिनांदर बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का एक महान संरक्षक और सहायक था। मौर्य साम्राज्य की शक्ति के ह्रास के बाद की दो शताब्दियों में ग्रीक आक्रमणकारियों ने उत्तर-पश्चिमी भारत तथा अफगानिस्तान पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। इस युग में लगभग तीस शासक हुए, जिनमें से केवल मिनांदर ने ही भारतीय मस्तिष्क पर अपनी स्थायी छाप छोड़ी। स्पष्टतः यह सद्धर्म के साथ उसके संबंध के कारण ही है। राजा मिनांदर पालि ग्रंथ 'मिलिंद-प्रश्न' में एक पात्र है। 'मिलिंद' ग्रीक शब्द 'मिनांड्रोस' का भारतीय रूपांतर है। प्राचीन लेखकों ने इस ग्रीक राजा के नाम के कई अन्य भारतीय रूप भी प्रयुक्त किए हैं। जिन मुख्य स्रोतों से राजा मिनांदर के संबंध में सूचना संकलित की जा सकती है, वे हैं—'मिलिंद-प्रश्न', स्ट्रेबो, प्लूटार्क और जस्टिन जैसे ग्रीक इतिहासकारों के वर्णन और स्वयं राजा मिनांदर के सिक्के, जिन पर 'बेसिलियस सोटेरोस मिनांड्रोस' लेख पाया जाता है। ये सिक्के उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों तथा काबुल और सिंधु नदी की घाटियों में बाईस विभिन्न स्थानों पर पाए गए हैं।

राजा मिलिंद और भिक्षु नागसेन के इसी संलाप पर 'मिलिंद-प्रश्न' आधारित है। यह ग्रंथ स्थविरवाद बौद्ध धर्म के अनु-पिटक साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है और आचार्य बुद्धघोष ने इसे प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है। कश्मीर में बौद्ध धर्म के इतिहास का एक और महत्त्वपूर्ण चरण 'मिलिंद-प्रश्न' नामक बौद्ध ग्रंथ के रूप में दिखलाई देता है; जिसके अंतर्गत इंडो-ग्रीक राजा मिनांदर और अर्हत नागसेन के मध्य संवाद का क्षेत्र कश्मीर से केवल बारह योजन दूर स्थित है।[14] इस प्रसिद्ध ग्रंथ के रचयिता ने कश्मीर और उसके आस-पास के क्षेत्रों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस क्षेत्र के लोगों से पूर्ण परिचित था। इस ग्रंथ के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर राजा मिलिंद ने 'मिलिंद विहार' का निर्माण करवाया और उसे स्थविर नागसेन को समर्पित कर दिया। भिक्षु-संघ को भी उसने उदारतापूर्वक दान दिया। 'मिलिंद-प्रश्न' के अनुसार राजा मिनांदर अपने पुत्र को राज्य देने के बाद भिक्षु हो गए। उन्होंने अर्हत्व को भी प्राप्त किया, जो स्थविरवाद बौद्ध धर्म के अनुसार पवित्र जीवन का अंतिम लक्ष्य है। अतः पुरालेखशास्त्र और मुद्राशास्त्रीय परक साक्ष्य यह प्रमाणित करते हैं कि मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भी इंडो-ग्रीक शासकों ने बौद्ध धर्म में अपना विश्वास बनाए रखा था तथा संपूर्ण उत्तरी-पश्चिमी भारत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। संभवतः कश्मीर भी इन राजाओं के प्रभाव में था जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म का भी उनके संरक्षण में प्रचार-प्रसार हुआ।

कश्मीर में बौद्ध अध्ययन का दूसरा प्रमुख चरण कुषाण राजा कनिष्क (78 से 101 ई.) के शासनकाल में प्रारंभ होता है। अशोक के उपरांत कनिष्क ने बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना के प्रचार

एवं प्रसार के लिए अशोक के समान व्यवस्थित रूप से प्रयास किया। जिस तरह अशोक ने अपनी उपाधि 'देवानां प्रिय' रखा था, उसी तरह कनिष्क ने भी अपनी उपाधि 'देवप्रिय' रखा था, जिसकी सूचना हमें कनिष्क के मिट्टी के मोहरों तथा अभिलेखों से प्राप्त होती है। अशोक ने तृतीय बौद्ध संगीति पाटलिपुत्र के अशोकाराम में मोग्गलिपुत्र तिस्स के नेतृत्व में कराया था, ठीक उसी प्रकार कनिष्क ने भी चतुर्थ बौद्ध संगीति पार्श्व नामक भिक्षु के परामर्श पर कश्मीर के कुंडलवन विहार में करवाया था।

बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का तीव्र विकास कुषाण राजाओं के शासनकाल में हुआ था। कनिष्क के शासनकाल (सन् 78 ई.) में बौद्ध धर्म का इतिहास प्रसिद्धियों से परिपूर्ण है। कनिष्क यूह्-ची कबीले की कुषाण (क्यूई-वांग) शाखा में उत्पन्न हुआ था। यूह्-ची मूलतः चीनी तुर्किस्तान आधुनिक सिक्याङ् में निवास करते थे। प्रथम कुषाण सरदार, जिसने भारत में आधिपत्य स्थापित किया, कडफिसीज प्रथम (कुजुल-कस) था, जो बौद्ध था। तक्षशिला के समीप जो खुदाई हुई है, उसमें उसके कुछ सिक्के मिले हैं जिन पर खरोष्ठी लिपि में लिखा हुआ है—'कुजुल-कसस कुसण-यवुगस धर्मठिदस' अर्थात् धर्म में स्थित, कुषाण सरदार कुजुल-कस का। धर्म से तात्पर्य यहां बौद्ध धर्म से ही है, यह इस बात से प्रकट होता है कि इसी शासक के जो कुछ अन्य सिक्के मिले हैं, उन पर 'धर्म-ठित' के स्थान पर लिखा हुआ है—'सच-धर्म-ठित' अर्थात् 'सत्य-धर्म में स्थित' जिससे स्पष्टतः तात्पर्य सद्धर्म या बौद्ध धर्म से ही है। इसप्रकार के तेजस्वी पूर्वज की परंपरा में कनिष्क ने प्रथम शताब्दी ई. के अंतिम चतुर्थांश में भारत के शासन को प्राप्त किया।

राजा कनिष्क का शासन (78-101 ई.) बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना तथा साहित्य के इतिहास में एक युग-परिवर्तन की सूचना देता है। इसने महायान बौद्ध धर्म के उदय को देखा। पार्श्व, अश्वघोष और वसुमित्र आदि के द्वारा प्रवर्तित महान साहित्यिक कार्य का श्रीगणेश इसी समय हुआ। पालि के स्थान पर संस्कृत की प्रतिष्ठा इसी युग में हुई। कला के क्षेत्र में प्रसिद्ध गंधार कला का आविर्भाव इसी समय हुआ तथा बुद्ध और बोधिसत्त्वों की मूर्तियां बनने लगीं। कनिष्क के शासनकाल में और उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही प्रथम बार बौद्ध धर्म का सफलतापूर्वक प्रचार मध्य-एशिया और पूर्व-एशिया में किया गया। मध्य-एशिया से लेकर भारत के मध्य-देश तक फैले कनिष्क के विस्तृत साम्राज्य में धर्म-प्रचार का कार्य उसके शासनकाल में सतत रूप से चलता रहा, जिसके परिणामस्वरूप सच्चे अर्थों में एशिया की एक संश्लिष्ट संस्कृति का जन्म हुआ, जो जीवन के उच्चतम उद्देश्यों पर आधारित थी जिनके लिए ही बौद्ध धर्म खड़ा हुआ था। उसने इस धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए उच्चकोटि के विद्वानों को अन्य देशों में भेजा।

सन् 100 ई. के आसपास कनिष्क के संरक्षण में बौद्धों की एक परिषद् बुलाई गई जिसे सामान्यतः चौथी परिषद् कहा जाता है। कहा जाता है कि इस परिषद् में बड़े स्तर पर साहित्यिक गतिविधियां हुईं। राजा ने पांच सौ भिक्षुओं के ठहरने के लिए एक मठ का निर्माण करवाया। इन भिक्षुओं को पिटकों पर टीकाएं लिखनी थीं। सुत्तपिटक पर एक लाख श्लोकों की टीका लिखी गई। 'विनयपिटक' की टीका विनय-विभाषा में भी एक लाख श्लोक थे और परिषद् में रचित 'अभिधर्म-विभाषा' में भी इतने ही श्लोक थे। 'अभिधर्म-विभाषा' जिसे 'महाविभाषा' अथवा केवल 'विभाषा' भी कहा जाता है, सर्वास्तिवादियों के लिए धर्मग्रंथ संबंधी सर्वोच्च आप्त प्रमाण बन गया। तथापि यह अभिधर्मपिटक की टीका नहीं थी; बल्कि यह कात्यायनीपुत्र रचित 'ज्ञानप्रस्थानशास्त्र'

नामक ग्रंथ की टीका थी। 'ज्ञानप्रस्थान' स्वयं सर्वास्तिवादियों का ही ग्रंथ था। यह ग्रंथ एवं इसकी टीका, दोनों के ही मूल संस्कृत रूप अब प्राप्य नहीं हैं, किंतु चीनी भाषा में इनके अनुवाद सुरक्षित हैं। सर्वास्तिवादियों ने 'विभाषा' को इतना महत्त्व दिया कि उन्हें वैभाषिक अथवा विभाषा के अनुयायी ही कहा जाने लगा।

'महाविभाषा-शास्त्र' की रचना के पश्चात् बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना कश्मीर में स्थायी रूप से स्थापित हो गया और इसप्रकार कश्मीर बौद्ध विद्वानों की सक्रियता का केंद्रबिंदु बन गया, जिसने पड़ोसी देशों से प्रसिद्ध आचार्यों को भी आकर्षित किया। इस तरह कश्मीर बौद्ध अध्ययन के एक महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में शताब्दियों तक रहा।

लामा तारनाथ[15] के अनुसार राजा कनिष्क पूर्ण समर्पित बौद्ध था। उसने कश्मीर के राजा सिंह, जो बाद में दीक्षित होकर सुदर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, से बौद्ध धर्म पर कई संभाषण सुने थे। चीनी परंपरा के अनुसार 'विभाषाशास्त्र', सर्वास्तिवादी अभिधर्म ग्रंथों पर लिखी गई व्याख्या थी, जिन्हें कश्मीर के प्रमुख आचार्यों द्वारा लिखा गया था, जो मूलतः सर्वास्तिवादी संप्रदाय से संबद्ध थे। इन प्रमुख आचार्यों को विभाषा-शी या कभी-कभी कश्मीर-शी कहा जाता था।

तद्नंतर, हम देखते हैं कि कश्मीर 'विभाषाशास्त्र' के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया। यहां कई उल्लेखनीय कश्मीरी बौद्ध पंडित हुए जो अभिधर्म के प्रतिष्ठित विद्वान थे, जिन्होंने इस पर अपनी व्याख्याएं प्रस्तुत कीं। ऐसे बौद्ध पंडितों में संघभद्र, धर्मत्रात, विमलमित्र इत्यादि कश्मीरी बौद्ध पंडितों का नाम उल्लेखनीय है। इस मत के प्रचार हेतु कई कश्मीरी बौद्ध पंडित भारत के बाहर भी गए। कुछ लोग जो चीन और तिब्बत में गए हुए थे, उन्होंने संस्कृत साहित्य को चीनी और तिब्बती भाषा में अनूदित किया।

राजा कनिष्क के उपरांत कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का राजकीय संरक्षण प्रदान करने वाला छठी शताब्दी में एक अन्य राजा मेघवाहन हुआ था; जो बौद्ध धर्म प्रधान क्षेत्र गंधार का मूल निवासी था।[16] उसने अपने राज्य में जीवित पशुओं का वध वर्जित कर दिया था।[17] राजा मेघवाहन की रानी प्रागूज्योतिष की अमृतप्रभा ने विदेशी भिक्षुओं के लिए अमृतभवन[18] नामक एक विशाल विहार का निर्माण करवाया था, जिसका उल्लेख चीनी यात्री ओउ खोङ्[19] ने अपने यात्रा विवरण में किया है। यह विहार श्रीनगर के उपनगरीय क्षेत्र में वौनत भवन (प्राचीन नाम अमृत भवन) के अवशेष के रूप में पड़ा हुआ है।

श्वान् त्वाङ्, ओउ खोङ् और कुछ पुरातात्विक खोजों, अभिलेखों एवं साहित्यिक स्रोतों से सातवीं शताब्दी तथा उसके उपरांत कश्मीर में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना की स्थिति का विवरण प्राप्त होता है। श्वान् त्वाङ् 631 ई. में कश्मीर भ्रमण हेतु आए थे। उन्होंने घाटी में एक सौ संघाराम और पांच हजार बौद्ध भिक्षु का उल्लेख किया है।[20] सम्राट अशोक द्वारा निर्मित चार स्तूपों को भी उसने देखा था जिनमें बुद्ध के धातु अवशेष थे।[21] बौद्ध विहारों में उसने जुश्क विहार का विशेष उल्लेख किया है[22], जहां पर घाटी में प्रवेश के प्रथम दिन रात्रि निवास के लिए रुका हुआ था। यह क्षेत्र बारामूला में था। प्रवरसेन द्वितीय के मामा जयंत द्वारा निर्मित जयंद्र विहार[23] में ही उसने कुछ वर्षों तक रहकर विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। कश्मीर के राजा ने श्वान् त्वाङ् का बड़े उत्साह से स्वागत किया था और सम्मानपूर्वक महल में आमंत्रित कर महत्त्वपूर्ण बौद्ध साहित्य की प्रतिलिपि तैयार करने के लिए आवश्यक सुविधाएं भी प्रदान की थीं। श्वान् त्वाङ् द्वारा दिए गए विवरण निस्संदेह यह स्पष्ट करते

हैं कि उनकी यात्रा अवधि में कश्मीर बौद्ध अध्ययन का एक उन्नत एवं महत्त्वपूर्ण केंद्र था; जहां कई प्रख्यात एवं विशिष्ट बौद्ध पंडित घाटी में निवास करते थे; जिन्हें न केवल विभाषा पर ही पूर्ण रूप से अधिकार था अपितु वे उपदेशशास्त्र के भी आचार्य थे। इन कश्मीरी बौद्ध पंडितों द्वारा निरंतर महत्त्वपूर्ण विषयों पर उत्साह एवं परिश्रम के साथ साहित्य सृजन ही किया जा रहा था। संबंधित साहित्य की प्रशंसा करते हुए श्वान् त्वाङ् ने टिप्पणी की है कि—इससे यह प्रमाणित होता है कि महत्त्वपूर्ण अध्ययन और अनुसंधान यहां किए जा रहे हैं। इन साहित्यिक रचनाओं में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना के विविध विषयों की उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त होती है। साथ-ही-साथ वैदिक शिक्षा, भारतीय वर्तनी, वेद तथा उनके अंगों का भी महत्त्वपूर्ण विवरण प्राप्त होता है।[24]

जिस तरह 'राजतरंगिणी' कश्मीर का राजनीतिक इतिहास है, उसी प्रकार 'नीलमत पुराण' कश्मीर का सांस्कृतिक इतिहास है। इसमें महात्मा बुद्ध को भगवान विष्णु के रूप में स्वीकार करते हुए वैशाख के शुक्लपक्ष में भगवान बुद्ध की पूजा-अर्चना का विधि-विधान प्रस्तुत किया गया है। इसमें कश्मीर के रीति-रीवाजों, व्रत, तीर्थों इत्यादि के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। इसके अनुसार भगवान बुद्ध की पूजा-अर्चना हिंदू रीति के कर्मकांड के अनुसार करने का उल्लेख मिलता है। इससे यह परिलक्षित होता है कि बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का प्रभाव तत्कालीन सनातन धर्म पर भी पूर्ण रूप से पड़ा जिसके कारण बौद्ध न होते हुए भी हिंदुओं ने भी भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को गहन रूप से आत्मसात किया और उन्हें विष्णु के अवतार के रूप में मान्यता प्रदान की।

कश्मीर में बौद्ध धर्म के इतिहास में गिलगिट के एक स्तूप से प्राप्त बौद्ध पांडुलिपियों की खोज भी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। पुरालिपिशास्त्र के आधार पर यह पांडुलिपि उत्तरवर्ती गुप्तकालीन लिपियों में निबद्ध है जिसे सातवीं शताब्दी ई. में रखा जा सकता है। कुछ लिपिबद्ध अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन गिलगिट पर शाही नरेशों का शासन था।[27] प्राप्त पांडुलिपि में भी कुछ शाही शासकों का उल्लेख है।[28] ऐसा प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी में बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना की उन्नत स्थिति केवल घाटी तक ही सीमित नहीं थी, अपितु वह कश्मीर के सुदूर उत्तर तक फैली हुई थी।

एस.पी.एस. संग्रहालय, श्रीनगर में सुरक्षित रानी दिद्दा के शासनकाल का एक अभिलेख प्राप्त हुआ है जिससे यह संकेत मिलता है कि दसवीं सदी में भी घाटी में बौद्ध धर्म प्रसिद्ध था।[29] यह अभिलेख बोधिसत्त्व पद्मपाणि की कांस्य प्रतिमा के आधार पर तीन तरफ अंकित है। इसके अंतर्गत एक बौद्ध भक्त राजानक विमाता द्वारा धार्मिक दान के रूप में इस मूर्ति को प्रदान किए जाने का उल्लेख है। संभवतः उसी काल या उसके बाद की अवधि का एक अन्य अभिलेख एक बौद्ध प्रतिमा के पृष्ठभाग में पाया गया है जिसमें प्रसिद्ध सिद्धांत 'ये धर्मा...' इत्यादि का उल्लेख है।[30] सन् 1197 का एक अन्य अभिलेख, जो अरिगम से प्राप्त हुआ है तथा इसमें किसी रनदेव के द्वारा बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की प्रतिमा की स्थापना हेतु ईंटों के पूजा स्थल के निर्माण का उल्लेख है।[31] राजजदेव (1213-1235 ई.) के शासनकाल में भी मंडलक संप्रदाय का उल्लेख प्राप्त होता है, जो बोधिसत्त्व लोकेश्वर (अवलोकितेश्वर) के समान एक बौद्ध आचार्य कमलश्री द्वारा प्रस्थापित किया गया था।[32] लद्दाख में द्रास नामक स्थान से कनिंघम द्वारा खोजे गए दो अभिलेखों में बोधिसत्त्व मैत्रेय और लोकेश्वर का उल्लेख है और ये अभिलेख संभवतः उसी काल के या उसके कुछ बाद के हैं।[33]

'राजतरंगिणी' के अनुसार कश्मीर में बौद्ध धर्म को वहां के राजा जय सिंह का संरक्षण

प्राप्त था, जो 1128 ई. में गद्दी पर बैठा था। बौद्ध धर्म के प्रति उसके सकारात्मक दृष्टिकोण का प्रमाण न केवल नए विहारों के निर्माण के रूप में प्राप्त होता है अपितु प्राचीन विहारों का भी उसने जीर्णोद्धार कराया था। राजा जयसिंह के चाचा उत्कल द्वारा 'शुल विहार' का निर्माण प्रारंभ कराया गया था; जिसे राजा जय सिंह ने पूर्ण कराया था।[34] राजा जय सिंह के सगे-संबंधी और अधिकारी भी बौद्ध धर्म एवं दर्शन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते थे और उन्होंने कई बौद्ध संस्थाओं की स्थापना भी करवाई थी, जिसे जय सिंह द्वारा अत्यधिक मात्रा में अनुदान भी दिया गया था।[35] इसप्रकार उपरोक्त वर्णित पुरातात्त्विक अभिलेखों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कश्मीर में बौद्ध धर्म तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अत्यधिक प्रचलित था।

बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना के इतिहास में कश्मीर का उल्लेख अत्यधिक गर्व के साथ किया जाता है। अपने प्रारंभिक काल से ही बौद्ध धर्म कश्मीर में निरंतर विस्तृत एवं प्रसिद्ध होता रहा। यहां के शासकों ने इसे संरक्षण दिया और अत्यधिक अनुदान प्रदान कर बड़ी संख्या में विहारों और संघों का निर्माण करवाया। यही बौद्ध विहार कालांतर में बौद्ध अध्ययन और अनुसंधान के महान केंद्र बनने के लिए सहायक रहे। इन्हीं विहारों में प्रामाणिक बौद्ध साहित्य और व्याख्यात्मक टीकाओं का प्रमुख बौद्ध आचार्यों द्वारा प्रतिपादन किया गया। यहां के प्रगतिशील बौद्ध केंद्रों ने न केवल देश के अपितु अन्य देशों के भी बौद्ध विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित किया। जिसके कारण वे कश्मीर में आकर बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का अध्ययन करते थे। कश्मीर के बौद्ध पंडितों ने केवल कश्मीर घाटी के लोगों को ही बौद्ध धर्म एवं दर्शन की शिक्षाओं से संबद्ध नहीं किया अपितु उन्होंने मध्य एशिया, चीन और तिब्बत जैसे पड़ोसी देशों में भी बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना को प्रसारित करने में अपना महत्त्वपूर्ण अवदान दिया।

कालांतर में कश्मीर ने बौद्ध धर्म, दर्शन एवं साधना का विकास और प्रसार न केवल घाटी में किया बल्कि एशिया के अनेक क्षेत्रों में प्रसारित करने में एक अहम भूमिका अदा की। कश्मीर के बौद्ध पंडितों ने जिन धर्मग्रंथों की रचना की, उन्हें हम 'विभाषाशास्त्र' के नाम से जानते हैं। इन शास्त्रों की लोकप्रियता ने घाटी के बौद्ध पंडितों को देश के दूरस्थ प्रदेशों में तथा साथ ही विदेशों में जिन्होंने इनका अध्ययन कश्मीरी बौद्ध पंडितों द्वारा किया, अत्यधिक लोकप्रिय बना दिया। इसप्रकार हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध की वाणी का प्रभाव सुदूर-पूर्व तथा सीमांत प्रदेशों पर बहुत ही पड़ा, जिसके कारण वहां के लोगों ने हिंसा का रास्ता छोड़कर भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए अहिंसा एवं करुणा के मार्ग को चुना, जिसका प्रभाव हमें अभी तक देखने को मिलता है। जहां-जहां पर भगवान बुद्ध की अहिंसा एवं करुणा के उपदेश का प्रचार-प्रसार हुआ, वहां-वहां पर लोग हिंसा का रास्ता छोड़कर करुणा तथा परस्पर प्रेमभाव का आचरण व्यावहारिक रूप में करने लगे। इस तरह हम देखते हैं कि कश्मीरी बौद्ध पंडितों का यह संदेश संपूर्ण विश्व के लिए उपादेय है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. इलियट, सी. (1921). हिन्दुइज्म एंड बुद्धिज्म, लंदन, वॉल्यूम I पृ. XXV.
2. दत्त, नलीनाक्ष. (1939). गिलगिट मनुस्क्रिप्ट, श्रीनगर, वॉल्यूम. I, पृ. 3.
3. वाटर्स, थॉमस. (1904). ऑन ष्वानू त्वाङ् ट्रैवल्स इन इंडिया लंदन, रॉयल एसियाटिक सोसॉइटी, वॉल्यूम I, पृ. 260.
4. रेमुसत, ए., कलाप्रोथ, जे.एच. एंड लैंड्रिज, सी. (1848). 'द पिलग्रिमेज ऑफ फाऽ ष्येऽन्:' फ्रॉम द फ्रेंच एडिशन ऑफ द फो कुकी ऑफ एम. रेमुसत, कलाप्रोथ एंड लैंड्रिज, कलकत्ता, पृ. 30.

5. विगने, जी.आर. (1841). ट्रैवल्स इन काश्मीर, लद्दाख एंड इश्करदु, वॉल्यूम II, लंदन, पृ. 46.
6. वही.
7. कनिंघम, ए. (1975). *द एनसियंट ज्योग्रफी ऑफ इंडिया*, भारतीय पब्लिशिंग हाऊस, वाराणसी, पृ. 475.
8. भागवत, एन.के. (सं.). (1936). महावंश, यूनिवर्सिटी ऑफ बॉम्बे, बॉम्बे, अध्याय 12ए, श्लोक 834-836.
''थेरो मोग्गलि पुत्तो सो जिनसासन जोतको।
निट्ठापेत्वान संगीति पेक्खमानों अनागतं ॥
सासनस्स पतिट्ठानं पच्चन्तेसु अपेक्खिया।
पेसेसि कत्तिके मासे ते ते थेरे तहिं तिहं ॥
थेरं कस्यीरगन्धारं मज्झन्तिकम पेसयि।
अपेसयि महादेवत्थरं महिसमण्डलं ॥''
9. विश्वास, डी.के. (अनुवाद). (1967). अशोकावदान, कलकत्ता, पृ. 2; बैध, पी.एल. (सं.). (1959). अवदान कल्पलता वॉल्यूम II, मिथिला इंस्टिच्यूट, दरभंगा, पल्लव 77, पृ. 446.
''माध्यन्तिकाभिधो भिक्षुरानन्दस्य गुरोर्गिरा।
बुद्धाशसनमाधुतं ययौ काश्मीरमण्डलम् ॥2॥
10. द स्टोरी इज टोल्ड एट लेंथ इन द महावंश. अध्याय 121; वाटर्स, थॉमस. (1904). ऑन ष्वान् त्वाङ् ट्रैवल्स इन इंडिया लंदन, रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, वॉल्यूम I, पृ. 267.
11. कॉवेल, इ.बी. एंड नील, आर.ए. (सं.). (1886). दिव्यावदान, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, पृ. 399.
''वसंति काश्मीरपुरे सुरम्ये ये चापि धीरास्तमसावनेऽस्मिन्।
महावने रेवतके रयेऽर्या अनुग्रहार्थं ममतेऽभ्युपेयुः ॥''
12. स्टीन, एम.ए. (सं.). (1961). राजतरंगिणी, वॉल्यूम I, अध्याय (तरंग) 1, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, श्लोक 94, 98.
13. स्टीन, एम.ए. (सं.). (1961). राजतरंगिणी, वॉल्यूम I, अध्याय 1, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, श्लोक 140-144, 147.
14. ट्रेंकनर, वी. (1928) मिलिंदप्रश्न, रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, लंदन, पृ. 82-83, 420.
15. चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद. (सं.). (1970) तारानाथ हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इंडिया, इंडियन इंस्टिच्यूट ऑफ एडवांस स्टडी, शिमला, पृ. 91.
16. स्टीन, एम.ए. (सं.). (1961). राजतरंगिणी, वॉल्यूम I, अध्याय III, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, श्लोक 2.
17. वही. श्लोक 6.
18. वही. श्लोक 9.
19. स्टीन, एम.ए. (1896). नोट्स ऑन ओउ खोङ् एकाउंट ऑफ काश्मीर, वेन.
20. वाटर्स, थॉमस. (1904). ऑन ष्वान् त्वाङ् ट्रैवल्स इन इंडिया, लंदन, रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, वॉल्यूम I, पृ. 261.
21. वही; बील, एस. (1969). सी-यू-की बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड, ओरियंटल बुक्स रिप्रिंट कॉरपोरेशन, दिल्ली, वॉल्यूम. I, पृ. 148.
22. वही पृ. 258.
23. वही पृ. 259; स्टीन, एम.ए. (सं.). (1961). राजतरंगिणी, वॉल्यूम I, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 103, 355.
24. वाटर्स, थॉमस (1904). ऑन ष्वान् त्वाङ् ट्रैवल्स इन इंडिया, लंदन, रॉयल एसियाटिक सोसाइटी, वॉल्यूम I, पृ. 277.
25. कुमारी, वेद. (सं.). (1961). द नीलमत पुराण, जम्मू एंड काश्मीर एकाडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लॉगवेज, श्रीनगर पृ. 9-15.
26. वही. पृ. 684-690.
27. चक्रवर्ती, एन.पी. (1987). एपीग्राफिया इंडिका (1953-54) द डायरेक्टर जेनरल आर्केलॉजीकल सर्वे ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, पृ. 226-231.
28. दत्त, नलीनाक्ष (1939). गिलगिट मनुस्क्रिप्ट, श्रीनगर, वॉल्यूम I, पृ. 34.
29. डिम्बी, बी.के. कॉल. (1982). कॉर्पस ऑफ शारदा इंसक्रिप्सन ऑफ काश्मीर, दिल्ली, पृ. 97.
30. वही. पृ. 139.
31. वही. पृ. 107.
32. वही. पृ. 110.
33. वही. पृ. 153.
34. स्टीन, एम.ए. (सं.). (1961). राजतरंगिणी, वॉल्यूम II, अध्याय VIII, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, श्लोक 3318.
35. वही. श्लोक 2402, 2410-11, 2415, 3352-53, 3343-3344.

□

स्थापत्य का वैभव

ज्योति शुक्ला

कश्मीर के प्रतापी राजा ललितादित्य के शासनकाल में कला का सर्वांगीण विकास दृष्टिगोचर होता है। ललितादित्य ने कश्मीर से कन्नौज, बंग, दक्षिण, गुजरात एवं उज्जैन 'विजय' प्राग्ज्योतिषपुर एवं उत्तरी कुरु देश तक न सिर्फ राज्य विस्तार किया था अपितु उनके शासनकाल में स्थापत्य कला ने भी नई ऊंचाइयों को प्राप्त किया, जिसने आने वाले शासकों को आधारभूत प्रेरणा दी। कला के विभिन्न आयामों के साक्ष्य स्थापत्य, मूर्तिशिल्प के रूप में कश्मीर ही नहीं अपितु समीपवर्ती राज्यों में आज भी विद्यमान हैं। स्थापत्य एवं कला के विकास से तात्कालिक शासन के राजनीतिक तथा सामाजिक पहलुओं को बखूबी समझा जा सकता है। प्रतापी शासक ललितादित्य के व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके शासनकाल में पल्लवित-पुष्पित कश्मीरी कला पर यहां दृष्टिपात किया जाएगा।

परवर्ती काल के साहित्य में यथा—'राजतरंगिणी', अलबरूनी का भारत एवं 'ओ-कोंग' का विवरण प्राप्त होता है, जिसमें राजनीतिक व्यवस्था तथा राज्यविस्तार का विवरण मिलता है। तत्कालीन स्थापत्य जिनमें ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म दोनों दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ मार्तंड मंदिर के भग्नावशेष, परिहासपुर का राजविहार, चैत्य एवं स्तूप इत्यादि। मूर्तिकला में भी नई ऊंचाइयों को प्राप्त किया यथा—पाषाणकालीन धातु, हाथी दांत आदि के प्रयोग किए गए। कला के उदाहरण भारत के विभिन्न संग्रहालयों, व्यक्तिगत संग्रह के अतिरिक्त विदेशी संग्रहालयों में भी संगृहीत हैं।

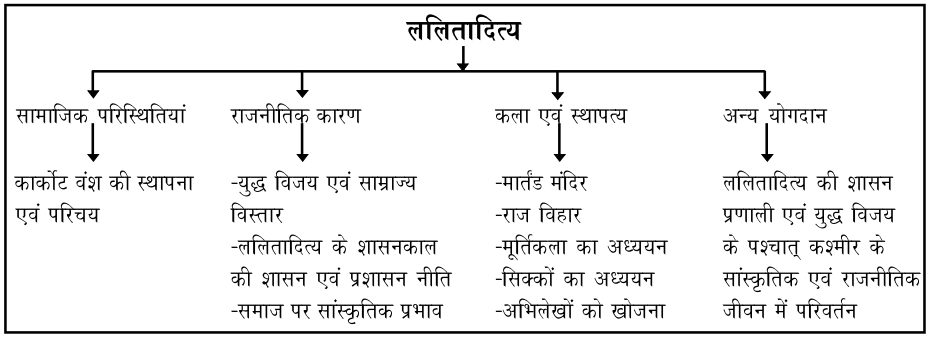

कश्मीर के कार्कोट वंश की स्थापना दुर्लभवर्धन ने की थी, जिसे चीनी इतिहासकारों ने तु-लो-प कहा है। इसका शासनकाल 625 से 661 ई. तक माना जाता है।[1] दुर्लभवर्धन के पश्चात् उसका पुत्र दुर्लभ प्रतापादित्य राजगद्दी पर आसीन हुआ। इसका शासनकाल 661 से 711 ई. तक

माना जाता है।[1] दुर्लभ तथा नरेंद्रप्रभा ने तीन पुत्र रत्नों को जन्म दिया जिनके नाम चंद्रापीड-वज्रादित्य, मुक्तापीड-उदयादित्य एवं ललितादित्य मुक्तापीड अथवा अविमुक्तापीड थे। चंद्रापीड का राज्य समय ई. सन् 711 से 719 तक था अर्थात् सातवीं शती का पूर्वार्द्ध[2] संभवतः 719 से 724 तक का समय तारापीड-उदयादित्य के शासनकाल के पश्चात् ललितादित्य मुक्तापीड अथवा अविमुक्तापीड का शासनकाल प्रारंभ हो जाता है। अविमुक्तापीड का अर्थ रहा होगा जिसका आपीड (मुकुट) अविमुक्ता (छूटा न हो अथवा भ्रष्ट न हुआ हो)। संभवतः इसी कारण इसका पूरा नाम ललितादित्य अविमुक्तापीड रहा होगा, परंतु उच्चारण असुविधा के फलस्वरूप मुक्तापीड की संज्ञा दी गई है। डॉ. रघुनाथ सिंह ने दोनों को एक ही माना है, परंतु पं. रामतेज शास्त्री ने दोनों को अलग-अलग माना है।[3]

ललितादित्य का सिंहासनारोहण

सुनील रायचंद रे[4] कल्हण की 'राजतरंगिणी' के आधार पर ही सिंहासनारोहण की तिथि 695 ई. अथवा 699 ई. मानते हैं, जबकि कनिघंम तथा विशुद्धानंद पाठक[5] 727 ई. स्वीकार करते हैं। डॉ. मजूमदार[6] एवं भरत सिंह राज्यारोहण तिथि 724 ई. मानते हैं। श्री मदनलाल विरमानी भी 724 से 761 ई. तक ललितादित्य का शासन मानते हैं।[7]

ललितादित्य का साम्राज्य

'राजतरंगिणी' से ज्ञात होता है कि ललितादित्य ने लगभग संपूर्ण भारत पर ही नहीं वरन् तिब्बत और अफगानिस्तान तक अपनी विजयों द्वारा साम्राज्य का विस्तार किया। ललितादित्य ने कन्नौज, बंग, दक्षिण गुजरात एवं उज्जैन प्राग्ज्योतिषपुर एवं उत्तरी कुरुदेश पर विजय प्राप्त की। इन सभी विजयों का वर्णन श्री रामतेज शास्त्री पांडेय कृत 'राजतरंगिणी' के श्लोक संख्या 132 से लेकर 180 में वर्णित है।[8] ललितादित्य ने तुखार (तुर्क पर विजय) प्राप्त किया। अलबरूनी ने अपनी पुस्तक 'अलबरूनी का भारत', अनुवाद-संताराम बी. ए. तीसरे भाग के, 76वें परिच्छेद, पृ. 228 में वर्णित किया है कि इस क्षेत्र की विजय स्मृति में कश्मीर में हर वर्ष चैत्र मास में द्वितीया को विजय दिवस मनाया जाता था। मदनलाल विरमानी ने अपनी पुस्तक 'दिग्विजयी सम्राट ललितादित्य-मुक्तापीड', पृ. 87 पर ललितादित्य की तिब्बत विजय का वर्णन किया है। काठियावाड़ मालवा, मारवाड़ विजय का वर्णन 'राजतरंगिणी' एवं मदनलाल विरमानी कृत 'दिग्विजयी सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड' से प्राप्त होता है। ललितादित्य ने इन सभी क्षेत्रों को निस्संदेह विजित किया होगा, इसके प्रमाण में पुरातात्त्विक साक्ष्य में सिक्कों की उपलब्धता महत्त्वपूर्ण है। जैसे—भिटवारी गांव (मैनपुरी), फैजाबाद, बांदा, वाराणसी, रामपुर (उत्तर प्रदेश) तथा बिहारशरीफ से ताम्र तथा स्वर्ण सिक्के (भार, 92.7, 122.6 ग्रेन) प्राप्त होते हैं जिनपर श्री प्रताप अंकित है। ललितादित्य को कन्नौज विजय के पश्चात् प्रतापादित्य के विरोध का सामना करना पड़ा था। इसलिए उसके सिक्कों पर श्री प्रताप अंकित है। राष्ट्रीय संग्रहालय में श्री प्रताप तथा भारतीय संग्रहालय में श्री प्रताप-II के ताम्र एवं स्वर्ण सिक्के प्रदर्शित हैं, जिनका उल्लेख स्मिथ एवं कनिंघम ने भी किया है, परंतु कनिंघम श्री प्रताप के सिक्कों को समय 661 ई. तथा द्वितीय प्रकार के सिक्कों का समय 719 ई. मानते हैं, परंतु भारतीय विद्वान एल.एन. दीक्षित, ए.एस. अल्तेकर और अन्य विद्वानों ने भी इन दोनों सिक्कों को ललितादित्य का सिक्का माना है[9]। अगर हम विदेशी विद्वानों की भी बात करें तो स्मिथ और कनिंघम ने श्री प्रतापादित्य द्वितीय के सिक्कों का जो समय दिया है, वह काल 'राजतरंगिणी' में उल्लेखित ललितादित्य का

शासनकाल है, क्योंकि 'राजतरंगिणी' में ललितादित्य मुक्तापीड के सिंहासनारोहण की तिथि 695 या 699 ई. उल्लेखित है। सभी इतिहासकारों ने, यहां तक कि विदेशी इतिहासकारों ने भी यह माना है कि ललितादित्य ने लगभग 35 से 10 वर्षों तक राज किया है, उसके अनुसार भी 719 का समय ललितादित्य का है। वैसे भी कनिंघम एवं स्मिथ का शोध लगभग 70 वर्षों से भी पुराना है। वर्तमान शोध एवं विद्वानों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि ये दोनों ही सिक्के ललितादित्य के ही हैं तथा अभी और सिक्कों के प्रकार पर शोध आवश्यक है।

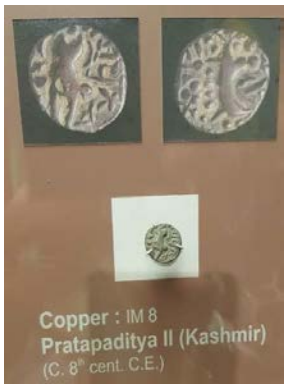

(सौ. भारतीय संग्रहालय, कोलकाता) (सौ. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली)

कला—आठवीं शताब्दी कश्मीरी शैली में कला का स्वर्णकाल था, शिल्पकार राजा के निर्देश पर विभिन्न प्रकार के प्रयोग को पूर्ण कर रहा था। इस सदी में प्रतिमा निर्माण का कार्य हो रहा था—जैसे पाषाण, धातु एवं हाथी दांत क्रमशः हिंदू देवी-देवता, बौद्ध प्रतिमाओं एवं यक्ष-यक्षी के मूर्ति तथा प्रतिमा का निर्माण हुआ है। श्री प्रताप सिंह संग्रहालय में पाषाण पर निर्मित कई प्रतिमाएं हैं, जिनका प्रदर्शन किया गया है एवं विदेशों में स्थापित संग्रहालय जैसे क्लीवलैंड म्यूजियम, मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम, बोस्टन म्यूजियम इत्यादि। यहां पर उक्त काल की कई धातु एवं पाषाण से बनी उच्चकोटि की प्रतिमाएं विद्यमान हैं।

हाथी दांत कला

जम्मू-कश्मीर के भौगोलिक क्षेत्र में हस्तकला का विकास स्वयं इस बात को पूर्णता की ओर ले जाता है कि हाथी दांत का आयात अन्य राज्यों से होता होगा, जहां पर हाथी मिलते हैं—जैसे दक्षिण भारत एवं बंगाल। ललितादित्य के शासनकाल में हाथी दांत से निर्मित अप्रतिम सौंदर्य एवं सौष्ठव को निरूपित करते हुए शिल्पकार ने प्रतिमा निर्माण एवं मूर्ति निर्माण किया है, दुर्भाग्य की बात यह है कि कुछ ही मूर्तियां भारत में प्रदर्शित हैं, वे भी संभवतः 3 या 4, जिससे भारत के सामान्य जन इस सौंदर्य से परिचित नहीं हो पा रहे हैं। परंतु गौरव की बात यह है कि अधिकांश मूर्तियां विदेशों के संग्रहालय में शोभायमान होकर 'ललितादित्य मुक्तापीड' के स्वर्णिम इतिहास को स्वयं परिभाषित कर रही हैं। इन्हीं प्रतिमाओं में से कुछ का संक्षिप्त वर्णन यहां किया जा रहा है।

बुद्धतीर्थ के कोष्ठक पर–संगीतकारों एवं नृत्यांगनाओं का अंकन
आठवीं शताब्दी–कश्मीर, हाथी दांत में रंगों का निर्माण
माप-17/16 (3.6 से.मी.) 17/8 (4.8 से.मी.)–क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट
क्र.सं. 1988.148.1

इस प्रतिमा में दो पुरुष एवं एक स्त्री का अंकन है, स्त्री मध्य भाग में त्रिभंगी मुद्रा में है। धोती पर चुन्नटों का निशान है। लंबी चोटी कमर के साथ मुड़ती हुई, केशों को आभूषण से सजाया गया है। स्त्री के बाईं तरफ पुरुष आकृति प्रत्यालीढ़ मुद्रा में है, जो हाथों में ऊपर की तरफ मंजीरा लेकर बजाता हुआ, जिसकी कमर को स्त्री ने अपने हांथों से पकड़ रखा है। दाईं तरफ का पुरुष प्रलंबपाद आसन में दाहिने हाथ से ढोल बजाता हुआ एवं बायां हाथ ऊपर की तरफ। यह कश्मीरी कला में नृत्य एवं संगीत के प्रदर्शन की अलौकिक प्रतिमा है, जिसकी प्रत्येक भाव-भंगिमा को शिल्पकार ने अत्यंत सूक्ष्मता से उत्कीर्ण किया है।

महिला परिचर–आठवीं शताब्दी–कश्मीर–हाथी दांत
क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट–क्र.सं. 1972.35.1

कश्मीर शैली में निर्मित महिला परिचर की वेशभूषा भी कश्मीरी महिला जैसी है। सिर पर दो भागों में केश को मुकुट की तरह बनाया गया है। कानों में कुंडल, गले में हार, बाजूबंद, हाथों में चूड़ी एवं पैजन के साथ, कमरबंद तथा कमर से नीचे पांव तक लड़ी माला का अंकन किया गया

है। दाहिने हाथ में गुलाब का फूल एवं बायां हाथ ठुड्डी पर, मुख नीचे की तरफ झुका हुआ एवं चेहरे पर मुस्कान का भाव है।

बोधिसत्त्व–आठवीं शताब्दी–कश्मीर–हाथी दांत

क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट–ज्चेलफ 1985 द्वारा प्रदत्त

काष्ठ स्तंभ के बीच में स्थापित है बोधिसत्त्व की प्रतिमा। बोधिसत्त्व पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए हैं तथा उनके अगल-बगल एवं ऊपर की तरफ भक्तगण एवं परिचारिकाओं का अंकन है, यह सभी बोधिसत्त्व की तरफ उत्सुकता भरी निगाहों से देख रहे हैं, बोधिसत्त्व उसमें मुकुट एवं आभूषण के साथ अंकित हैं तथा बीच में ऊर्णा का अंकन है। नीचे भक्तगण हाथ जोड़े बैठे हुए हैं।

कार्तिकेय–आठवीं शताब्दी–कश्मीर–हाथी दांत

ब्रिटिश म्यूजियम-कश्मीर संग्रह भाग-2

खोजकर्ता–खोटन/योटन

कार्तिकेय अपने वाहन मयूर के साथ अंकित हैं। मयूर की मुद्रा हवा में ऊपर की तरफ उड़ने की ओर इंगित है। कार्तिकेय सिंहासन मुद्रा में दाहिने हाथ में क्रमशः खड्ग एवं पाश लिये हुए हैं तथा बायां हाथ जंघा पर रखा हुआ है एवं अन्य हाथ ऊपर की तरफ, जिसपर कुक्कुट का

अंकन है। कार्तिकेय ने मणियुक्त मुकुट, गले में हार एवं बाजूबंद के साथ चुन्नटदार धोती धारण कर रखी है। इनका अंकन भी शिल्पकार ने अत्यंत खूबसूरती के साथ किया है।

धातु कला

शाक्यमुनि–कश्मीर अथवा गिलगिट (वर्तमान में पाकिस्तान अधिकृत लद्दाख)

आठवीं शताब्दी–पीतल, तांबे की आवक, चांदी एवं जस्ते का मिश्रण

एशिया सोसाइटी, न्यूयॉर्क, श्री एवं श्रीमती जॉन डी. रॉकफेलर

थर्ड क्लेक्शन ऑफ एशियन आर्ट, 1979.044

शाक्यमुनि की यह प्रतिमा अलौकिक ही नहीं वरन् शाही संरक्षण के नियमों को भी प्रदर्शित करती है। मूर्ति के नीचे शाही दाताओं को दोनों तरफ प्रदर्शित किया गया है। राजा बाईं तरफ बुद्ध को पुष्पांजलि अर्पित करते हुए एवं दाहिनी तरफ रानी घुटने टेककर हाथ जोड़े हुए भगवान की तरफ ऊपर देख रही हैं। स्त्रियां अपने परिवार की रक्षा हेतु सदैव पूजा-अर्चना करती हैं, यह इस प्रतिमा से स्पष्ट हो रहा है तथा इस सिद्धांत को कश्मीरी शिल्पकारों ने भी उकेरा है। यह प्रतिमा संभवतः एक भव्य आयोजन की थी। शाक्यमुनि ज्ञान मुद्रा में पद्मासन में कमलासीन हैं। बगल में दोनों तरफ स्तूप का अंकन किया गया है एवं माथे पर उर्णा का अंकन है।

मंजूश्री–आठवीं/नवीं शताब्दी–कश्मीर–पीतल एवं चांदी

क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट–द्वारा–कॉरल्टन रॉचेल

मंजूश्री की यह एक दुर्लभ प्रतिमा है, जो चतुर्भुज है। यह प्रतिमा कश्मीर शैली का बेहतरीन नमूना है। शरीर की आनुपातिक माप नाभि, मुंह और नाक के आकार, चौड़े रूप में चांदी से निर्मित आकृति अपनी कई विशेषताओं के माध्यम से पहचानी जा सकती है। मंजूश्री दोहरे कमलाकार पर

आसीन हैं। दाहिना हाथ वरदमुद्रा तथा दंड, बाएं हाथ में कमल एवं पुस्तक का अंकन, सिर पर मुकुट एवं गले में हार है तथा नीचे मंजूश्री के अभिलेख अंकित किए गए हैं।

शाक्यमुनि, मंजूश्री एवं अवलोकितेश्वर–कश्मीर–आठवीं शताब्दी

पीतल एवं चांदी–क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट–द्वारा–क्रिस्टी

शाक्यमुनि बीच में सिंहासनासीन हैं। कश्मीर शैली के ही अनुसार दो शेरों का अंकन नीचे किया गया है तथा बीच में भारवाहक यक्ष है। शाक्यमुनि के दाहिनी तरफ मंजूश्री हैं जिनका दाहिना हाथ वरद मुद्रा में एवं बाएं हाथ में स्क्रॉल है जिसके ऊपर कमल पुष्प का अंकन है। बाईं तरफ अवलोकितेश्वर जिनका दाहिना हाथ वरद मुद्रा में एवं बाएं हाथ में कमलनाल है। शाक्यमुनि का दाहिना हाथ वरद मुद्रा में एवं बाएं हाथ में कुछ पकड़े हुए हैं। सभी पारदर्शक वस्त्र में हैं। शाक्यमुनि के सिर पर घुंघराले केश एवं प्रस्णीय का अंकन अवलोकितेश्वर ने मुकुट धारण किया हुआ है। आंखों में चांदी का अंकन किया गया है।

इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त भी बुद्ध, पंचध्यावी बुद्ध, तारा एवं मंजूश्री, अवलोकितेश्वर इत्यादि प्रतिमाओं को विभिन्न तरह से कलाकारों ने उत्कीर्ण किया है तथा इसमें कला के हुनर को देखा जा सकता है।

पाषाण कला

गणेश प्रतिमा–आठवीं शताब्दी–पाषाण–वेरीनाग, कश्मीर

श्री प्रताप सिंह संग्रहालय क्र.सं.3092

गणेश की यह प्रतिमा आठवीं शताब्दी में निर्मित है। यह अनंतनाग जिले के वेरीनाग नामक स्थल से प्राप्त हुई है। इस प्रतिमा का निर्माण गहरे भूरे रंग के छिद्र युक्त चमकदार पत्थर

से किया गया है। व्याघ्र मुख सिंहासन पर गणेश विराजमान हैं जिसमें बायां पैर पालथी मुद्रा में मुड़ा हुआ है एवं पंजे के पास में नर सेवक का अंकन किया गया है। चतुर्भुज स्वरूप में तीन हाथ बिल्कुल सुरक्षित हैं। एक हाथ आंशिक रूप से खंडित है, दाहिनी भुजा में माला लिये हुए हाथ मुड़ा है। एक हाथ में सर्प दंड का अंकन किया गया है, बायां हाथ मुड़ा परंतु खंडित है। संभवतः चीवर या कोई चीज पकड़े हुए हैं, आगे के हाथ में मोदक से भरा हुआ कटोरा है। दोनों हाथों में कड़े का अंकन किया गया है। गले में बाघ नखरूपी हार अंकित है। पूर्व की भांति यहां पर भी सूंड़ में त्रिनेत्र का अंकन किया गया है। कानों का अंकन सामान्य रूप से हाथी की तरह है, परंतु अंदर में केले के स्वरूप का रेखांकन प्राप्त होता है। किरीट (मुकुट) की गोलाई रूप में नक्काशीदार अंकन किया गया है। यहां यह विचारणीय है कि उत्तर भारत में निर्मित हो रही गणेश प्रतिमा में शिव लांछन का प्रयोग नहीं किया गया है। परंतु यहां पर शिव लांछन जैसे सर्पदंड, त्रिनेत्र, सर्प यज्ञोपवीत का अंकन प्राप्त होता है।

'सप्तमातृका'—आठवीं शताब्दी में सप्तमातृका के अंतर्गत देवी वाराही, वैष्णवी, देवी चामुंडा, देवी इंद्राणी, माहेश्वरी की प्रतिमा प्राप्त होती है, परंतु यहां पर सिर्फ देवी वैष्णवी का उल्लेख किया जा रहा है।

वैष्णवी—आठवीं शताब्दी—पाषाण—कश्मीर

श्री प्रताप सिंह संग्रहालय—क्र.सं.4009

श्री प्रताप सिंह संग्रहालय में प्रदर्शित पांचवीं शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी तक की मूर्तियों में संभवतः यह पहली मूर्ति है, जिस पर अभिलेख अंकित है। इस मूर्ति पर शारदा लिपि में विवरण लिखा गया है। सातवीं शताब्दी के पूर्व शारदा लिपि का अंकन प्राप्त नहीं होता है। ललितादित्य मुक्तापीड के शासनकाल में निर्मित यह प्रथम प्रतिमा है, जिस पर लेख अंकित है। देवी वैष्णवी दो बाघों के ऊपर अर्द्धपद्मासन मुद्रा में पालथी लगाए हुए विराजमान हैं। देवी के पैरों के नीचे कमल पुष्प का अंकन किया गया है। दाहिनी तरफ बाघ के अंकन से उनकी रौद्रता दिखती है, जैसे वह आक्रमण मुद्रा में दांतों को खोले हुए हैं। बाईं तरफ का बाघ शांत मुद्रा में बैठा हुआ है जिसमें उसका सिर उसके दोनों पैरों के ऊपर आसीन है। देवी चतुर्भुज रूप में हैं, दाहिनी भुजा में पीछे की तरह कमलरूप में चक्र, आगे की तरफ वरद मुद्रा में अक्षमाला है। बाएं हाथ में अमृत घट (कलश) एवं संभवतः शंख को पांच उंगलियों के माध्यम से पकड़े गए हैं। दोनों भुजाओं में तीव्र

का अंकन है एवं कानों में नक्र-कुंडल अंकित किया गया है। सिर पर किरीट मुकुट तथा नेत्र एवं मुस्कान के साथ सौम्यता का भाव। शरीर सौष्ठव पूर्ण रूप से उचित मापदंड के अनुसार उकेरा गया है, जो युवा स्वरूप को दिखा रहा है। कमर पर कटिबंध के साथ पारदर्शक वस्त्रों का प्रयोग किया गया है। संपूर्ण मूर्ति को इसप्रकार से सज्जित किया गया है जैसे मानो देवी संवाद कर रही हैं। सिंह पर आसीन होने के कारण इन्हें सिंहवाहिनी लक्ष्मी भी कह सकते हैं।

अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा (निचला भाग)—आठवीं शताब्दी, पाषाण एस.पी.एस. संग्रहालय, श्रीनगर कश्मीर—प्राप्ति स्थल—अवंतीपुरा क्रमांक संख्या 3075

अर्द्धनारीश्वर स्वरूप का धारण शिव जी ने ब्रह्मा को प्रकृति एवं पुरुष के विषय बिंदु को समझाने हेतु किया था। इसका उल्लेख 'विष्णु पुराण' के तृतीय खंड के अनुच्छेद 55 में श्लोक संख्या दो से चार में किया गया है।

अवंतीपुरा से प्राप्त खंडित अर्द्धनारीश्वर की यह प्रतिमा गहरे भूरे रंग के पाषाण से निर्मित है, जिस पर चमकदार पॉलिश की गई है। इस प्रतिमा पर लगी पॉलिश मौर्य काल एकाश्म स्तंभों की याद दिला देती है। शिव के अर्द्धनारीश्वर स्वरूप की इस प्रतिमा में ऊपर का भाग खंडित है। शास्त्रानुसार बाईं तरफ उमा का अंकन किया गया है। उमा के हाथों में नक्काशीदार चूड़ी एवं अंगूठे को अंदर की तरफ मुड़ते हुए देवी की उंगलियां मुद्रा भाव में प्रदर्शित हैं। संभवतः देवी ने घट भी पकड़ा हुआ है। घट के नीचे कार्तिकेय का अंकन किया गया है। कार्तिकेय अपने वाहन मयूर के साथ एवं मण्यादिजीत मुकुट धारण किए हुए हैं। मुख पर अग्नि के समान तेज का अंकन है, दाहिने हाथ में मुद्गल एवं मृसृंठी तथा बाएं हाथ में खड्ग एवं शर का अंकन है। प्रत्यालीढम मुद्रा के साथ वरमाला से सुशोभित दर्शाया गया है। दाहिने तरफ का शिव का भाग जो पूर्णतः खंडित है, परंतु नंदी का बहुत सुंदर अंकन किया गया है। नंदी यहां पर त्रिनेत्रधारी हैं। नंदी के मस्तक पर पंचमोतियों से अलंकरण टीका रूप में किया गया है। नंदी के नीचे प्रलंबपाद मुद्रा में श्री गणेश विराजमान हैं। कश्मीर की कला की विशेषता के अनुरूप ही गणेश को विशेष मुकुट एवं प्रलंबपाद आसन में दिखाया गया है। गणेश चतुर्भुज हैं जिसमें दाईं एवं बाईं तरफ की एक भुजा घुटने पर रखे हुए हैं तथा बाईं तरफ मोदक पात्र है। सूंड़ में मोदक एवं दाहिने हाथ में भी संभवतः मोदक पात्र को ही पकड़े हुए हैं। गणेश त्रिनेत्री हैं एवं उनके कानों का आकार केले के गुच्छे जैसा है। धोती, यज्ञोपवीत का भी स्पष्ट अंकन है। प्रतिमा में सर्प माला का प्रयोग किया गया है तथा त्रिभंगी मुद्रा में यह प्रतिमा विराजमान है।

लिंगाद्भव मूर्ति–आठवीं शताब्दी, पाषाण–कश्मीर, क्लोराइट
कुकलीन म्यूजियम, यू.एस. ए.–क्रमांक संख्या 78.209

ब्रह्मा एवं विष्णु की सृष्टि–विधातृत्त्व का पारस्परिक झगड़ा चल रहा था कि सहस्र ज्वाला वाला अभय स्तंभ प्रकट हुआ। दोनों क्रमशः हंस और कच्छप के रूप को धारण कर पता लगाने लगे कि इस स्तंभ का आदि और अंत कहां है? अथवा विश्व का आदि और अंत कहां है? क्योंकि दोनों लोगों को यही लगता था कि विश्व की उत्पत्ति उन दोनों के द्वारा हुई है। परंतु जब दोनों लोग स्तंभ के चारों तरफ घूमते हुए आदि और अंत का पता नहीं लगा पाए तब थककर स्तंभ लिंग की प्रार्थना करने लगे। तत्पश्चात् महेश्वर का आविर्भाव हुआ और उन्होंने कहा, तुम दोनों ही मुझसे पैदा हुए हो और इसप्रकार हम तीनों एक ही हैं। प्राप्त प्रतिमा में ब्रह्मा एवं विष्णु के जिन गुणों को दर्शाया गया है, वह शिव को लिंगम रूप में देखते हैं। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव देवता हैं। परंपरागत रूप में ब्रह्मा को सृष्टिकर्ता, विष्णु को पालनकर्ता एवं शिव को संहारक के रूप में माना जाता है। ब्रह्मा को एक तपस्वी ब्राह्मण पुजारी के रूप में दिखाया गया है। ब्रह्मा के घुंघराले केश एवं कानों में बड़े-बड़े झुमके हैं। गुप्तकालीन शैली के अनुसार ही संन्यासी जैसे पारदर्शक वस्त्रों का प्रयोग किया गया है। बाएं हाथ में कमंडल, दाहिना हाथ नीचे की तरफ सीधा परंतु खंडित है। पैरों के पास में दो कलश दिखाए गए हैं। केंद्र में शिव का प्रतीक लिंग है तथा दाईं ओर चार भुजाधारी विष्णु हैं। विष्णु अपनी विशेषताओं के साथ किरीट (मुकुट) एवं कुंडल पहने हुए हैं। गले में हार, दाहिने हाथ में शंख एवं बाएं हाथ में कमल धारित है। पृथ्वी की छोटी छवि को उनके पैरों के बीच दिखाया गया है। विष्णु के पैरों के पास दो भक्तगण हैं, जिसमें दाईं तरफ महिला एवं बाईं तरफ पुरुष आकृति है। 'विष्णु पुराण' के अनुसार इसप्रकार की ब्राह्मण प्रतिमा को सत, तम एवं रजस का प्रतिनिधित्व करने की संज्ञा दी गई है।

त्रिदेव मूर्ति–आठवीं एवं नौवीं शताब्दी–कश्मीर, पाषाण–मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम
क्रमांक संख्या 1985.85

कश्मीर कला में निर्मित त्रिदेव की यह मूर्ति अत्यंत अनोखी एवं सुंदर है, जो मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम में प्रदर्शित की गई है। ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों देवताओं को यहां त्रिमुखी स्वरूप में दिखाया गया है। यहां पर तीनों प्रतिमाएं त्रिभंगी मुद्रा में हैं। ब्रह्मा के सिर पर जूड़े का अंकन है, जबकि शिव एवं विष्णु मुकुट धारण किए हुए हैं। तीनों देवताओं को वरमाला पहनाई गई है। ब्रह्मा ने संन्यासियों की तरह वस्त्र धारण किया है। आगे की बाईं भुजा खंडित है। दाहिने हाथ में अक्षमाला पकड़े हुए हैं, बाएं पैर के नीचे हंस का अंकन है। हंस ब्रह्मा जी की सवारी है। बीच में शिव दाहिने हाथ में त्रिशूल पकड़े हुए हैं तथा बाएं हाथ में संभवतः रुद्राक्ष माला धारण किए हैं। दाहिने मुख को भैरव रूप में निर्मित किया गया है एवं बाएं मुख को उमा रूप में निर्मित किया गया है। कश्मीरी शैली के अनुसार कानों में लंबा कुंडल एवं गले में हार के साथ यज्ञोपवीत है। दाहिने पैर के नीचे वृषभ का अंकन किया गया है। विष्णु जी के दाहिने तरफ वराह मुख एवं बाईं तरफ कच्छप, मुख्य कानों में कुंडल, गले में हार, दाहिनी तरफ कमल एवं बाएं हाथ का लांछन स्पष्ट नहीं है। बाईं तरफ दंड पुरुष, दाहिनी तरफ भोग देवी एवं विष्णु के पैरों के नीचे पृथ्वी का अंकन किया गया है।

यम अथवा धर्मराज प्रतिमा–पाषाण, आठवीं-नौवीं शताब्दी–कश्मीर

क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट–फोटो क्रमांक : आर.वाई.फाई.आर 74

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के तृतीय खंड, अनुच्छेद-51, श्लोक संख्या-15 में यम के प्रतिमा आकार का वर्णन किया गया है। यम सूर्यपुत्र हैं एवं दक्षिण दिशा में कपाल होने के नाते इन्हें दक्षिणावर्ती भी कहा जाता है। पुराण में यम के कई नामों का उल्लेख किया गया है जैसे धर्मराज मृत्यु, अंतका, वैयवस्वाता एवं काल आदि। यह प्रतिमा क्लीवलैंड म्यूजियम ऑफ आर्ट में रखी हुई है। प्रतिमा में यम को बीच में बैठाया गया है, इसके बाईं और दो स्त्री प्रतिमा एवं दाहिनी तरफ एक स्त्री प्रतिमा है। परंतु साथ ही दाहिनी तरफ का भाग खंडित भी है। सभी लोग प्रलंबपाद मुद्रा में आसीन हैं। यमराज के केश घुंघराले एवं दो चोटी जैसा केशों का अंकन किया गया है। आंख पूर्ण रूप से खुली हुई हैं, जबकि दोनों घुटनों पर दंड जैसा कुछ रखा हुआ है एवं दाहिने हाथ में लगाम जैसा कुछ पकड़े हुए हैं। बायां हाथ वर मुद्रा में नीचे की तरफ तथा बाएं कंधे पर संघाटी का अंकन है। यम के दाहिनी तरफ की स्त्री के सिर पर मुकुट, दाहिने हाथ में पाश तथा बाएं हाथ में लंबी गोल मुंह वाली कटोरी है। यह पात्र बाकी दोनों स्त्रियों के हाथ में नहीं है। बाईं तरफ की एक स्त्री के दाहिने हाथ में त्रिशूल है। त्रिशूल का आकार ऊपर एवं नीचे दोनों तरफ है। अन्य के हाथ में छोटा खट्वांग है। सभी स्त्रियों ने छोटा टियारा जैसा वस्त्र पहन रखा है एवं इनके क्रमशः नाम हैं–हेमा, माला, सुशीला एवं विजया। यहां पर चित्रगुप्त का अंकन नहीं दिख रहा है। संभवतः चित्रगुप्त की प्रतिमा खंडित हो गई होगी।

दुर्गा महिषासुरमर्दिनी–शैलखट पाषाण–कश्मीर

जेरेमी क्नोव्लेस गैलरी, लंदन

यहां दुर्गा को सोलह भुजाओं (उनमें से अधिकांश टूटी हुई और गायब) में अंकित किया गया है। देवी को यहां पर महिषासुर का वध करते हुए चित्रित किया गया है। आलिड़ा मुद्रा में खड़ी है और अपने वाहन सिंह के साथ हैं। अपने दाहिने हाथ में वह महिषासुर पर एक त्रिशूल (टूटा हुआ और गायब) के साथ हमला करने वाली है। अपने दूसरे दाहिने हाथ में वह एक लंबी खड्ग (तलवार), एक तरकश, जिसमें तीर और एक गदा है। बाएं हाथ में तीर है। बचे हुए हाथों में वह काकड़ा, बेल, धनुष धारण किए हुए हैं, जबकि अन्य बचे हुए हाथ को कात्यालविता मुद्रा में रखा गया है। दुर्गा मुस्कराते हुए शांत हो जाती हैं, क्योंकि वह शक्तिशाली आकाशीय रथ पर सवार सुशोभित हैं। छवि के निचले भाग को आश्चर्यजनक विवरण तथा आश्चर्यजनक रूप से सूक्ष्मता में रचा गया है, जो पहले वर्णित टेंगपुरा छवि के शिल्पशास्त्रीय विवरण से तुलनीय है, इस प्रतिमा में भैंस के रूप में पराक्रमी महिषासुर की उपमा दिख रही है, जो दुर्गा के वाहन सिंह द्वारा आक्रमण से भयाक्रांत भी है तथा बौखलाया भी। महिषासुर के वध के पश्चात् देवी के क्रोध को शांत करने हेतु शिव देवी के पैरों के नीचे लेट जाते हैं। जिस पर देवी का पैर पड़ने से उनका क्रोध शांत हो जाता है।

विष्णु प्रतिमा–विष्णु मधु एवं कैटभ वध–पाषाण–आठवीं शताब्दी- कश्मीर

माप-18 3/4 13 1/2 (47.63X33.02X8.89 से.मी.)–लॉस एंजेल्स काउंटी म्यूजियम ऑफ आर्ट–क्र.सं. (एम 83.72)

विष्णु की यह प्रतिमा हैरी काहन द्वारा एंजेल्स काउंटी म्यूजियम ऑफ आर्ट में उपहारस्वरूप प्रदान की गई थी।

मधु-कैटभ के वध से संबंधित अनेक कथाएं 'हरिवंश पुराण', 'मार्कंडेय पुराण', 'दुर्गा सप्तशती' इत्यादि ग्रंथों में प्राप्त होती हैं। जिसमें वर्णन मिलता है कि विष्णु के कानों के मैल से मधु एवं कैटभ नामक दो दैत्यों का जन्म हुआ, जो ब्रह्मा जी को डराने लगे; तब ब्रह्मा जी ने कमल नाल हिलाकर विष्णु जी को नींद से जगाया; तब विष्णु ने दोनों दैत्यों से वर मांगने को कहा, जिस पर दैत्यों ने बोला कि हम शक्तिशाली हैं, तुम मुझसे वर मांगो, जिस पर विष्णु जी ने कहा, तुम दोनों की मृत्यु मेरे हाथों से ही हो, दैत्यों ने इसे स्वीकार किया। तब जाकर विष्णु ने मधु एवं कैटभ को अपनी जंघा पर रखकर उनके मस्तक को सुदर्शन चक्र से काट दिया। यह कथा 'महाभारत' के वनपर्व के 'मार्कंडेयसमख्या पर्व' के अंतर्गत अध्याय 203 में बताई गई है।

विष्णु की यह प्रतिमा अप्रतिम सौंदर्य को स्वयं में समेटे हुए है। विष्णु प्रलंबपाद आसन में विराजमान हैं तथा अष्टभुजाधारी हैं। ऊपर के दोनों हाथों में सूर्य एवं चंद्रमा का अंकन है, जिसे पुरुष एवं प्रकृति समझना चाहिए। अन्य हाथ में धनुष एवं बाण का अंकन है। दो भुजाओं से मधु एवं कैटभ को पकड़े हुए हैं तथा अपनी जांघों की तरफ वध हेतु खींचकर ला रहे हैं, जिससे दोनों दैत्यों के चेहरे पर भय स्पष्ट दिख रहा है। सामने के दोनों हाथों में शंख को पकड़े हुए ऊपर की तरफ ऐसे शंखनाद करने की प्रक्रिया में हैं जैसे युद्ध के लिए तैयार हों। विष्णु की प्रतिमा के पीछे प्रभामंडल का अंकन है। विष्णु किरीट मुकुट के साथ कानों में लंबा कुंडल, गले में हार, बाजूबंद, कड़ा, लंबी वनमाला पहने हुए हैं। मुख-मुद्रा शांत एवं सौम्य रूप धारण किए हुए है। दोनों पैरों के नीचे मातृभूमि का अंकन किया गया है। विष्णु की यह प्रतिमा अपने आप में अद्वितीय प्रतिमा है।

गजेंद्र मोक्षाना विष्णु–पाषाण–आठवीं/नवीं शताब्दी

माप-31/4 (8.3 से.मी.) 23/4 (7 से.मी.) 1/2 (1.3 से.मी.)

मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट

गजेंद्र मोक्ष की कहानी को शिल्पकार ने अत्यंत आकर्षण के साथ उकेरा है। चतुर्भुज विष्णु के बाएं हाथ में ऊपर की तरफ गोलाकार पद्म एवं गदा, नीचे के हाथ में शंख तथा उसके नीचे का हाथ गज को सूंड़ से खींचते हुए अंकित है। दाहिना हाथ कुछ पकड़े हुए दर्शाया गया है। विष्णु के सिर पर छोटा-सा मुकुट एवं कानों में बड़ा-सा कुंडल है। वनमाला कंधे के पीछे से होते हुए दोनों पैरों के बीच में नीचे तक लटकता हुआ है। दोनों पैरों के बीच मातृभूमि का अंकन है। गज के आगे का बायां पैर ऊपर की तरफ उठा हुआ एवं उसके नीचे मकर का अंकन किया गया है। 'नीलमत पुराण' में इस प्रतिमा को गजेंद्र मोक्ष प्रतिमा कहा गया है।[10]

स्थापत्य कला

मार्तंड मंदिर

मार्तंड मंदिर में प्रवेश द्वार के पश्चात् एक कुंड बनाया गया है, जिसमें जल भरा रहता था और सूर्य ग्रहण के पश्चात् उस जल से मंदिर को साफ किया जाता था। इस कुंड का जल प्रत्येक दिन बदला जाता था। इसके निकास के लिए पतली नाली बनी हुई है, जो आज भी द्रष्टव्य है।

मार्तंड मंदिर की बाहरी दीवारों तथा प्रकोष्ठ पर विभिन्न देवी-देवताओं का अंकन किया गया है। स्थानीय लोगों का कहना है कि यहां पर 365 देवी-देवताओं का अंकन किया गया था, जो वर्ष के प्रत्येक दिवस के अनुसार पूजनीय थे। आज भी कृष्ण, गणेश, लक्ष्मी, विष्णु तथा अन्य देवी-देवताओं के अंकन स्पष्ट रूप में प्राप्त होते हैं। इनके साथ ही गंगा तथा यमुना का भी अंकन है। गंगा-यमुना एवं अन्य आकृतियां उचित ढंग से रखरखाव न होने के कारण धूमिल पड़ चुकी हैं। परंतु अभी भी ये आकृतियां विराजमान हैं। गिरे हुए स्तंभ के किनारों पर भारवाहक यक्ष, द्वारपालिका, हाथी जैसे अंकन भी मिलते हैं। स्पष्ट रूप में यहां देवी लक्ष्मी, विष्णु, शिव, गणेश, कृष्ण इन सभी देवताओं की मूर्तियों का कोई भी मनुष्य स्वयं प्रत्यक्ष अवलोकन कर सकता है।

मार्तंड मंदिर स्थापत्य एवं अपनी तकनीकी विशेषताओं के कारण भी निस्संदेह अत्यंत उन्नत कोटि की स्थापत्य शैली का उदाहरण है। मार्तंड मंदिर में शिवलिंग भी देखने को मिलता है और कई शिवलिंग यहां अभी भी प्राप्त होते हैं।

कहने के लिए सूर्य मंदिर था, परंतु इस सूर्य मंदिर में ललितादित्य ने लगभग सभी हिंदू देवी-देवता एवं नवग्रह की स्थापना करवाई। जिस हिसाब से स्तंभों को एक-दूसरे से जोड़ने के लिए तकनीक का प्रयोग किया, नालियों का प्रयोग किया, कुंड का प्रयोग किया; वर्तमान समय में ऐसे अवशेष शायद ही किसी अन्य मंदिर में देखने को प्राप्त होंगे। मार्तंड मंदिर के पीछे के हिस्से में चार पंक्ति का लिखा हुआ अभिलेख भी प्राप्त होता है। गर्भगृह में प्रवेश हेतु ऊंची सीढ़ियों का प्रयोग किया गया है। यहां पर प्रदक्षिणा पथ, भोग मंडप के अवशेष भी मिलते हैं। ऐसा लगता है कि यहां पर नाट्य मंडप भी रहा होगा। इसका आधार यहां से प्राप्त ऊंचा चबूतरा है; संभवतः ऐसा भी प्रावधान रहा हो कि प्रत्येक प्रकोष्ठ में अलग-अलग झांकियां रखी गई होंगी।

शारदा पीठ

शारदा पीठ मंदिर कृष्णगंगा नीलम घाटी पाक अधिकृत जम्मू-कश्मीर में स्थित है। शारदा शब्द का अर्थ जहां सरस्वती देवी है, वहीं प्रभा या धारा भी होता है, क्योंकि यह तीन धाराओं के संगम पर स्थित है। शारदा पीठ न केवल मंदिर था वरन् ऐतिहासिक ग्रंथों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह एक प्रसिद्ध अध्ययन केंद्र था, साथ ही यहां एक बड़ा पुस्तकालय भी था। 11वीं शताब्दी में वैष्णव संत स्वामी रामानुज ने 'ब्रह्मसूत्र' का उल्लेख करने के लिए श्रीरंगम से शारदा पीठ की यात्रा की थी। शारदा पीठ का मंदिर रूप में वर्णन सर्वप्रथम 'नीलमत पुराण' से प्राप्त होता है। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि शारदा मंदिर का निर्माण प्रथम चरण में कुषाण काल में तथा द्वितीय चरण में ललितादित्य मुक्तापीड के शासनकाल में हुआ था, परंतु अधिकांश विद्वानों का मत है कि शारदा पीठ मंदिर का निर्माण पूर्ण रूप से ललितादित्य मुक्तापीड के द्वारा ही किया गया था। वर्तमान स्थिति में शारदा पीठ पूर्ण रूप से खंडित हो चुका है। केवल गर्भगृह का ही भाग है। उसी प्राप्त भाग की स्थापत्य शैली के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह वही स्थापत्य शैली है जिसका प्रयोग ललितादित्य द्वारा मार्तंड मंदिर में किया गया है। मार्तंड मंदिर का प्रवेश द्वार, मेहराब एवं स्तंभों का जिस प्रकार से प्रयोग किया गया है, ठीक उसी तकनीक एवं वास्तु संरचना का प्रयोग शारदा पीठ मंदिर में किया गया है। प्राप्त अवशेषों के ध्यानपूर्वक अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसकी संरचना मार्तंड मंदिर की तरह है, परंतु इस विषय पर अधिक शोध की आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों के कारण इस पर पुरातात्त्विक अध्ययन एवं ऐतिहासिक अध्ययन नहीं हो पाया, लेकिन पुरातात्त्विक आधार को रखते हुए संरचना शैली पर बिना किसी हिचकिचाहट के स्वयं में ही परिलक्षित होता है कि इस मंदिर का निर्माण ललितादित्य

द्वारा कराया गया होगा। शारदा पीठ मंदिर की बाहरी दीवार चौड़ी और 11 फीट लंबी है तथा 8 फीट ऊंचाई वाली मेहराब इस मंदिर में अंकित है।

उषकपुर

कल्हण ने अपनी पुस्तक 'राजतरंगिणी' में उषकपुर का वर्णन किया है कि उषकपुर की स्थापना कुषाण राजा हुविष्क द्वारा की गई तथा इसका नाम हुशकपुरा था। हुशकपुरा के लिए स्टीन महोदय ने कहा है कि चीनी यात्री ओ.यू. कांग ने इस स्थल को 'औंग-ती-बी-होओ-लो' कहा है जिसे स्टीन महोदय द्वारा इसी रूप में चिह्नित किया गया है। यह यात्री आठवीं शताब्दी में ललितादित्य के शासनकाल में आया था। 11वीं शताब्दी में आने वाले आगंतुक अलबरूनी ने इस स्थल को उष्कारा के नाम से संबोधित किया है, यह स्थल बारामूला के निकट स्थित है। उष्कारा में एक स्तूप है जिसका अवशेष वर्तमान समय में भी प्राप्त होता है। यह स्तूप ललितादित्य के शासनकाल में बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए निर्मित किया गया था।

परिहासपुर

परिहासपुर जिसका शाब्दिक अर्थ है—हंसता अथवा मुस्कराता हुआ नगर। कल्हण ने वर्णन किया है कि परिहासपुर की स्थापना ललितादित्य द्वारा की गई थी। परिहासपुर में स्थित स्तूप राज विहार एवं चैत्य के विशाल अवशेष अभी भी बिखरे हुए हैं।

स्तूप का निर्माण ललितादित्य की तिब्बत विजय के पश्चात् हुआ। चाकुण नामक एक तिब्बती सैनिक, जो इस विजय के पश्चात् ललितादित्य का विश्वासपात्र बन गया था, को राज्य द्वारा उपहारस्वरूप यह स्तूप प्रदान किया गया। उसे चाकुण अर्थात् मंत्री बनाया गया। स्तूप का आधार चौकोर है, बीच में सीढ़ी के द्वारा ऊपर की तरफ जाने का मार्ग है जिसके दोनों तरफ भारवाहक यक्ष का अंकन किया गया है।

स्तूप के भग्नावशेष के आधार से स्वतः परिलक्षित होता है कि स्तूप कितना विशाल रहा होगा। सम्राट ललितादित्य ने तिब्बत पर विजय प्राप्त की थी। इसका साक्ष्य न केवल 'राजतरंगिणी' में अपितु यहां स्तूप पर चित्रांकित किए हुए ड्रैगन के माध्यम से भी संभवतः स्पष्ट होता है, क्योंकि कोई भी राजा अपनी स्थापत्य शैली में किसी संस्कृति को तब सम्मिलित करता है, जब शासक कहीं और से आया हो या उसने उस स्थल को विजित किया हो। ऐसे बहुत-से उदाहरण कुषाण काल में ही प्राप्त होते हैं। ड्रैगन का अंकन तिब्बत एवं चीन में ही किया जाता है।

परिहासपुर स्तूप पर ड्रैगन का अंकन इस बात का प्रमाण हो सकता है कि ललितादित्य ने तिब्बत विजय की थी।

राज विहार

राज विहार में 26 कोठियों के साक्ष्य वर्तमान में प्राप्त होते हैं। इसके आकार से ही लगता है कि यह मठ काफी बड़ा एवं चौकोर ढांचे वाला रहा होगा। कक्ष के समक्ष एक बड़ा बरामदा है, जिसके सम्मुख एक ऊंचा पठार है तथा व्यापक संख्या में पत्थरों के अवशेष बिखरे हुए हैं। एक मिट्टी के घड़े में रखे हुए चांदी के सिक्के एक कोठरी से प्राप्त हुए थे। ऐसा वर्णन भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण से प्रकाशित जम्मू एंड कश्मीर मानव मैंस एंड साइज, नई दिल्ली 2019 के पृष्ठ 57 पर उल्लेखित है।

दो स्तरीय आधार पर चैत्य का निर्माण किया गया है जिसमें एक वर्गाकार गर्भगृह है, जो चारों तरफ से घेरे में है। गर्भगृह के पूर्व की ओर प्रवेश हेतु सीढ़ियां जाती हैं। यहां पर भी प्रवेश द्वार की सीढ़ियों पर ही भारवाहक यक्ष का अंकन किया गया है। भारवाहक यक्ष का अंकन परिहासपुर के स्तूप में भी दिखता है।

ललितादित्य ने अपने शासनकाल में ललित कला को भी पर्याप्त संरक्षण प्रदान किया था। ऐसे कई उदाहरण 'राजतरंगिणी' में प्राप्त होते हैं। लद्दाख क्षेत्र में भी स्थापत्य कला के नमूने यथा स्तूप संरचना मिली है जिसका आधार आठवीं शताब्दी का ही माना जाता है और ऐसा भी प्रतीत होता है कि तिब्बत विजय के पश्चात् ही इस क्षेत्र में यह कार्य किया गया होगा। इस क्षेत्र में स्थापत्य के अनेक साक्ष्य मिले हैं, जो श्रीनगर की धरा से लेकर विदेशों के संग्रहालय में शोभायमान हैं।

साहित्यिक साक्ष्यों में 'राजतरंगिणी' के अतिरिक्त 'फतेहनामा सिंध', अलबरूनी का 'तारीख-ए-हिंद', चीन के टेंग वंश का उल्लेख करने वाली पुस्तक 'जिंग टेंग शु' में ललितादित्य मुक्तापीड के अदम्य शौर्य तथा उसके शासन में संस्कृति के विविध क्षेत्रों में विकास का उल्लेख मिलता है।

आधुनिक युग में रमेश चंद्र मजूमदार तथा अन्य इतिहासकारों ने सर्वप्रमुखता से स्वीकार किया है कि ललितादित्य मुक्तापीड ने कन्नौज सम्राट यशोवर्मन को परास्त किया था जबकि यशोवर्मन एक प्रतापी शासक था। रानी रट्टा ने विदेशी आक्रमणकारियों से रक्षा हेतु ललितादित्य से सहायता मांगी जिसे ललितादित्य ने पूर्ण किया तथा मित्रता भी की, यह रानी रट्टा और कोई नहीं बल्कि राष्ट्रकूट रानी भवांना थी, ऐसा कई इतिहासकार मानते हैं।

ऐसे अनेक साक्ष्य हैं, जो हमारे इतिहास में धूमिलावस्था में हैं, जिनके संकलन मात्र से स्पष्ट होगा कि सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड किसी भी प्रकार से किसी अन्य ख्याति प्राप्त सम्राट से पीछे नहीं थे वरन् वे संभवतः सबसे शक्तिशाली थे, संदर्भ ग्रंथों का उल्लेख नहीं है। कश्मीर के इतिहास के संबंध में और शोध के माध्यम से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है।

संदर्भ सूची–

1. पाठक, विशुद्धानंद, (2011). 'उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास', 190, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान
2. मिश्र, उमेश कुमार, (2009). 'राजतंरगिणी और कश्मीर नरेश', 55, हिंदुस्तानी एकेडेमी
3. वही, पृ. 55
4. चंद्र, सुनील राय, (1957). 'अर्ली हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ कश्मीर', 47, कलकत्ता
5. कनिंघम, 'एन्सिएंट ज्योग्राफी', पृ. 90-92 एवं विशुद्धानंद पाठक, 5 वही, पृ. 191
6. मजूमदार 'क्लासिकल एज', पृ. 133 एवं भरत सिंह (क्वार्टर की रिव्यू ऑफ दी हिस्टीरिकल स्टडीज, पृ. 89)
7. विरमानी, मदनलाल, 'दिग्विजय सम्राट ललितादित्य मुक्तापीड, पृ. 19
8. पांडेय, रामतेज शास्त्री, (2005). 'राजतरंगिणी', 85-88, वाराणसी : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान
9. सिंह, ओंकारनाथ, 'गुप्तोत्तरकालीन उत्तर भारतीय मुद्राएं' (600-1200 ई.), 020-121, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन
10. Kumari, Dr. Ved, the Nilmat Puran, Jammu and Kashmir Academy of Art Culture and Languages Srinagar 1973, IIV 1199-1207.

□

कला वैशिष्ट्य

अवतार मोटा

अनुवाद–नंदिनी सिन्हा

कश्मीर एक ऐसी जगह है, जो प्राचीन प्राकृतिक सुंदरता से संपन्न है। यहां के विविध मौसमों के माध्यम से इसके वैभव को देखा जा सकता है, जो इसके परिदृश्य पर विभिन्न रंगों को प्रस्तुत करता है। कश्मीर में वसंत का मतलब रंगीन फूलों की बहुतायत है तो हल्की गर्मी में चारों तरफ हरियाली रहती है, राजसी चिनार के पेड़ों के माध्यम से भव्य शरद ऋतु के सुनहरे रंग परिलक्षित होते हैं और सर्दी के मौसम में हर जगह सफेद बर्फ का आकर्षण रहता है। कश्मीर के बारे में, संस्कृत के कवि कालिदास लिखते हैं–''यह जगह स्वर्ग से भी अधिक सुंदर है और यह परम आनंद और खुशी देने वाली है। ऐसा लगता है कि मैं यहां अमृत की झील में स्नान कर रहा हूं।''

ग्यारहवीं शताब्दी के संस्कृत के कवि बिल्हण कहते हैं कि–''निश्चित रूप से, कविता और केसर (कुमकुम) एक मां से पैदा होने वाले अकेले असली भाई होते हैं। मैंने उन्हें शारदा देश (कश्मीर) को छोड़कर कहीं भी एक साथ बढ़ते नहीं देखा है।''

'राजतरंगिणी' (1148-50) में कल्हण ने कश्मीर को अपनी श्रद्धांजलि इस तरह दी–

''यह एक ऐसा देश है जहां सूर्य हल्के से चमकता है, कश्यप (कश्यप ऋषि) द्वारा निर्मित स्थान, यहां के बड़े और शानदार घर, केसर, बर्फीले ठंडे पानी और दुर्लभ अंगूर की इस स्वर्ग में बहुतायत है। कैलाश (यहां शिव के निवास को नंदिक्षेत्र में संदर्भित करता है) का तीनों लोकों (त्रिलोक) में सबसे उत्तम स्थान है, कैलाश में हिमालय सर्वश्रेष्ठ स्थान है और हिमालय में सबसे उत्तम स्थान कश्मीर है।'' कल्हण, नंदिक्षेत्र, द्रास के बर्फ से ढके पहाड़ों के क्षेत्र, महादेव, बालटाल को कैलाश से या कश्मीर में शिव के निवास से जोड़ते हैं।

कश्मीर की यात्रा कर चुके कई यात्रियों और उल्लेखनीय लोगों द्वारा इस विवरण को दोहराया गया है। रचनात्मक क्षेत्रों से जुड़े लोगों के लिए यहां की नदियां, घास के मैदान, पहाड़ियां, बर्फ से ढकी चोटियां, झीलें, फूल, वनस्पतियां और जीव प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, जो किसी भी व्यक्ति को प्रकृति से जोड़ने के लिए पर्याप्त हैं। प्राचीन काल से ही विभिन्न क्षेत्रों जैसे साहित्य, कला और कश्मीर की सदियों पुरानी सांस्कृतिक विरासत के रूप में ऐसी प्रेरणा के चिह्न दिखाई देते हैं।

कश्मीर का 'नीलमत पुराण', हमें प्राचीन कश्मीर की मूर्तिकला और चित्रकला के बारे में

बताता है। इस पुस्तक में केशव (विष्णु), सेसा, कामदेव, ब्रह्मा, अनंत और बुद्ध के पत्थरों और धातुओं जैसे तांबे, पीतल, चांदी और सोने से बनाए गए चित्रों के कई उद्धरण मौजूद हैं। साथ ही यह भी पुष्टि करता है कि इन चित्रों को चैत्य में सजाए जाने के अलावा, कपड़ों (पट) पर भी चित्रित किया गया था।

'नीलमत पुराण' : ''आषाढ़ के महीने में, केशव (विष्णु) की मूर्ति, सेसा के रूप में शय्या पर सोते हुए, पत्थर, मिट्टी, सोना, लकड़ी, तांबा, पीतल, चांदी से बनी होनी चाहिए या उन्हें चित्र में चित्रित किया जा सकता है।'' ('नीलमत पुराण', डॉ. वेद कुमारी घई, वॉल्यूम 2, पृष्ठ 109)

''चैत्र के 13वें दिन एक कपड़े पर चित्रित कामदेव की पूजा विभिन्न प्रकार की मालाओं और विविध धूपों के साथ की जानी चाहिए।'' ('नीलमत पुराण', डॉ. वेद कुमारी घई, वॉल्यूम 2, पृष्ठ 171)

यह किसी भी संदेह से परे सिद्ध है कि शिल्पशास्त्र, नाट्यशास्त्र और वास्तुशास्त्र के मूलभूत सिद्धांतों का उपयोग प्राचीन और मध्यकालीन कश्मीर में कला और शिल्प, मंदिर वास्तुकला, चित्र, मूर्तिकला और हिंदू मूर्ति शिल्प (आइकॉनोग्राफी) में किया गया था। इस संदर्भ में, चित्रसूत्र और नाट्यशास्त्र का प्रभाव कश्मीर के चित्रों और मूर्तियों में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

कई विद्वानों और कला इतिहासकारों द्वारा यह माना गया है कि मंदिर निर्माण, चित्रकारी और चित्र कला पर सबसे प्राचीन पाठ, जिसे 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के चित्रसूत्र के रूप में जाना जाता है, का संकलन कश्मीर के विद्वान ब्राह्मणों द्वारा किया गया था। यह प्राचीन भारत के हिंदू मूर्ति शिल्प पर सबसे विस्तृत पाठ है। यह पाठ एक मूल मार्गदर्शिका है, जिसमें बताया गया है कि कैसे पुरुषों और महिलाओं को एक पेंटिंग में चित्रित किया जाना चाहिए। कलाकारों के लिए चित्रसूत्र में स्पष्ट दिशा-निर्देश दिए गए हैं कि देवताओं, राजाओं और अन्य लोगों की छवियों से संबंधित व्यापक विशेषताएं कैसे बनाई जानी चाहिए। हमें बताया गया है–

1. ''एक महिला की आकृति को एक पैर के साथ दर्शाते हुए कैसे एक शांत मुद्रा में बनाया जाना चाहिए और कूल्हों तथा फैले हुए कमर के भाग के साथ कामुक क्रीड़ा करते हुए दर्शाना चाहिए।''

2. ''आंखों को सुकून देने के लिए बनाई गई चित्रकला को बड़ी बुद्धिमत्ता और सरलता के साथ उकेरा गया है और इसके गुण खुशी देने वाले होते हैं, जिसमें सुंदरता और आकर्षण उल्लेखनीय हैं।

चित्रसूत्र में विस्तृत दिशा-निर्देशों के अलावा, कश्मीर के कलाकारों और मूर्तिकारों को नाट्यशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। कश्मीर में बनाई गई पत्थर या धातु की मूर्तियां नाट्यशास्त्र में बताई गई स्थायीभाव और रस पर आधारित हैं। मूर्तियों में भी मानव आकृतियों के चेहरे, पोज, स्टांस और बॉडी लैंग्वेज पर ध्यान देने वाली बात स्थायीभाव और रस को प्रकट करती है। कश्मीर में अवंतीपोरा की मूर्तियां और नक्काशी नाट्यशास्त्र का पर्याप्त प्रभाव दिखाती हैं। पांचवीं और छठी शताब्दी ई. से संबंधित कुछ टेराकोटा छवियों में नाट्यशास्त्र के दिशा-निर्देश मिले हैं। हालांकि इनमें से

अधिकांश कीमती खजाने कश्मीर से बाहर ले जाए गए हैं, जिसे दुनिया भर में कई व्यक्तियों या संग्रहालयों के संरक्षण में रखा गया है। यह उल्लेख करना काफी प्रासंगिक है कि नाट्यशास्त्र पर अभिनव भारती का सबसे अधिक अध्ययन किया गया है जिसे कश्मीर के अभिनवगुप्त द्वारा लिखा गया है, जिन्होंने नाट्यशास्त्र को नाट्यवेद के रूप में संदर्भित किया है।

डॉ. जॉन गाइ, सीनियर क्यूरेटर, मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट, न्यूयॉर्क, बताते हैं–

''भारत में कश्मीर से शुरू हुई मंदिर की मूर्तियां दक्कन तक भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुरूप नृत्य रूपों को दर्शाती हैं। प्राचीन काल से मंदिर वे स्थान हैं, जिनमें उस विशेष क्षेत्र में प्रचलित कई नृत्य रूपों का वर्णन किया गया था।''

ऐसी भूमि जो इतनी सुंदर है, वह अपने वास्तविक अभ्यास से अनभिज्ञ नहीं रह सकती है। यह भी एक तथ्य है कि प्राचीन भारतीय सौंदर्यशास्त्र में कश्मीर मूल के कुछ सबसे बड़े योगदानकर्ता थे।

प्राचीन और प्रारंभिक मध्ययुगीन कश्मीर अब पूरे दक्षिण एशिया में कला के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण केंद्र के रूप में पहचाना जाने लगा है। कला की यात्रा, अनिवार्य रूप से मूर्तियां (पीतल, कांस्य और पत्थर), चित्रकला, सचित्र पांडुलिपियां और कश्मीर से तिब्बत, चीन और मध्य एशिया तक की दीवार पेंटिंग अब एक तथ्य के तौर पर मौजूद है। गुप्त काल के बाद के मध्य एशिया और अफगानिस्तान के कुछ हिस्सों के साथ कश्मीर के मजबूत संबंध भी स्थापित हुए थे। कल्हण ने अपनी पुस्तक 'राजतरंगिणी' के काव्य श्लोकों में कश्मीर में कई धातु की मूर्तियों और प्रतिमाओं के बारे में बताया है। पीतल, कांस्य और पत्थर की कई मूर्तियों को श्रीनगर के एस.पी.एस. संग्रहालय में रखा गया है, जबकि कई मूर्तियों को दुनिया भर के संग्रहालयों में देखा जा सकता है। बोधिसत्त्व के कई चित्र (पेंटिंग) लद्दाख, तिब्बत और पश्चिमी हिमालय के मठों में पाए गए हैं, जिन्हें कश्मीर में वापस देखा जा सकता है।

बौद्ध धर्म के साथ संबद्धता

ज्ञान और बौद्ध धर्म का प्रसार करने के लिए कश्मीर से कई विद्वान वर्तमान कोरिया की तरह अन्य दूर देशों में गए। उन सभी को दुनिया भर में वर्तमान बौद्ध विद्वानों द्वारा उच्च सम्मान दिया गया। तिब्बती विद्वान-अनुवादक रिनचेन जंगपो की जीवनी कश्मीर, तिब्बत, लद्दाख, गिलगिट और अन्य स्थानों के बीच प्राचीन और मध्ययुगीन सभ्यता और संस्कृति पर अधिक प्रकाश डालती है। जंगपो (958-1055 ई.) कश्मीर के शैव विद्वान अभिनवगुप्त के समकालीन थे। यह पुस्तक हमें बताती है कि कश्मीरी ब्राह्मणों ने हिमालय में दीवार पेंटिंग, छवि और भित्ति निर्माण और परचित्र बनाने की कला विकसित की। यह जंगपो था, जिसने कश्मीरी चित्रकारों को दीवार पेंटिंग और मूर्तियां बनाने की कला से जोड़ा। तिब्बत, लद्दाख और हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में कुछ मठों के साथ कश्मीर में उपलब्ध मूर्तियों या चित्रित पैनलों के बीच शैलियों और रूपों की समानता निर्णायक रूप से एक कड़ी को स्थापित करती है। तिब्बत में उपलब्ध सबसे प्रबुद्ध पांडुलिपियां कश्मीरी शैलियों के लिए पर्याप्त गवाही देती हैं।

कोलंबस में ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर सुसान एल. हटिंगटन और 'द आर्ट ऑफ एनशिएंट इंडिया : बौद्ध, हिंदू, जैन' के लेखक लिखते हैं : ''कश्मीर की बौद्ध कला ने उत्तरी और पूर्वी आंदोलनों के लिए कल्पना और प्रभाव के स्रोत के रूप में कार्य किया। चीन में यूकांग (Yunkang) गुफाओं, आंतरिक एशिया के विभिन्न स्थलों से दीवार पेंटिंग, विशेष रूप से क्विझल (Qizil) और तुन-हुआंग (Tun-huang) और जापान से कुछ मूर्ति-भजन संबंधी (आइकॉनोग्राफिक) पांडुलिपियों का मूल्यांकन कश्मीर को एक संभावित स्रोत के रूप में, ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। एशिया के माध्यम से बौद्ध कला के प्रसारण की पूरी समझ कश्मीरी कला के अधिक से अधिक ज्ञान को विकसित करने पर निर्भर है।''

गिलगिट पांडुलिपि पेंटिंग्स की खोज ने 7वीं शताब्दी और पहले की अवधि से संबंधित कश्मीर की पेंटिंग्स की व्याख्या के लिए एक विश्वसनीय आधार प्रदान किया। इस काल की कश्मीरी पत्थर की मूर्तियां गिलगिट पांडुलिपि चित्रों के साथ शैली और विषय में समानताएं रखती हैं। इस अवधि के चित्रों और मूर्तियों में शरीर की मांसपेशियों, गहने, वेशभूषा और शरीर के अंगों को उजागर करने जैसी विशेषताएं पाई जाती हैं, जबकि दोनों की प्रतिमा भारतीय परंपरा में निहित है। मंग-नग (Mang-Nang) की दीवार पेंटिंग और थालिंग (Thaling) की पांडुलिपि के चित्र, जिसकी खोज पश्चिमी तिब्बत में की गई, उन्हें कश्मीर के चित्रकारों द्वारा बनाए जाने की बात को अब स्वीकार किया गया है। इन चित्रों ने चित्रकारों के कश्मीर के साथ स्पष्ट संबंध को बताया है। इन चित्रों में कश्मीर में उस समय की कांस्य छवियों का पर्याप्त प्रतिबिंब है, इसके अलावा समकालीन डिजाइनों और आभूषणों के साथ समकालीन कश्मीरी परिधान हैं।

कश्मीर में सम्राट ललितादित्य और अवंतिवर्मन के काल में कला

ललितादित्य ने दक्षिण कश्मीर में मट्टन शहर के पास पठार पर मार्तंड सूर्य मंदिर का निर्माण किया। मंदिर का स्थान उस काल के कश्मीरी शिल्प कौशल की योग्यता और विशेषज्ञता को साबित करता है। ऐसा कहा जाता है कि इस मंदिर से पूरी लिद्दर घाटी और वर्तमान के बिजबेहरा शहर के पास स्थित विजयेश्वर मंदिर परिसर को देखा जा सकता है।

ऐसा माना जाता है कि मार्तंड सूर्य मंदिर चित्रों से सजाया गया था। माना जाता है कि यह सूर्य मंदिर, रोमन, बाइजेंटाइन, सासानी और गुप्त काल की धाराओं का परिणाम है। दुर्भाग्य से, कई मंदिरों की तरह, कश्मीर के सुल्तान सिकंदर बुतशिकन के शासन के दौरान इसका विध्वंस कर दिया गया।

ललितादित्य ने श्रीनगर शहर के पास एक पठार पर परिहासपुर नामक नगर की स्थापना की जिसमें विष्णु, शिव और बुद्ध की पत्थर की नक्काशीदार मूर्तियां और चित्र थे। कल्हण की 'राजतरंगिणी' के चौथे तरंग के 136 से 216 श्लोक के अनुसार, इस बस्ती के मंदिरों में परिहासकेशव, मुक्त केशव और गोवर्धनधरा की छवियां थीं, जो चांदी और सोने से बने गरुड़ (विष्णु का प्रतीक) के साथ होती थीं। वर्तमान में संपूर्ण परिहासपुर एक खंडहर बन चुका है।

ललितादित्य के बाद अवंतिवर्मन (855-883 ई.) के शासन के दौरान कश्मीर की काफी

समृद्धि हुई। अवंतिवर्मन ने दो मंदिरों का निर्माण करवाया और उन्हें कश्मीर के ब्राह्मणों को भेंट में दिया। अवंतिस्वामिन विष्णु को समर्पित था, जबकि अवंतिश्वर शिव को। श्रीनगर शहर से लगभग 20 किलोमीटर दूर अवंतिपुरा में श्रीनगर-जम्मू राजमार्ग पर स्थित अवंतिस्वामिन और अवंतिश्वर मंदिरों की खुदाई में कुछ दिलचस्प मूर्तियों की खोज की गई थी। अवंतिस्वमिन मंदिर से नक्काशी की हुई मूर्तियां बड़ी संख्या में प्राप्त हुई। मंदिर की संरचनाएं वर्तमान में एक खंडहर में तब्दील हो गई हैं। अवंतिपुर में खुदाई की गई पत्थर की छवियों की जांच से यह ज्ञात होता है कि कश्मीर ने अवंतिवर्मन के शासन के दौरान मूर्तिकला में एक विशिष्ट शैली को अपनाया था। दोनों मंदिर एक-दूसरे के करीब हैं।

श्रीनगर-बारामूला मार्ग पर पट्टन के पास अवंतिवर्मन के पुत्र शंकरवर्मन द्वारा निर्मित नक्काशीदार पत्थर के चित्रों के साथ सुगंदेश और शंकर गौरीसा मंदिरों के खंडहरों को भी देखा जा सकता है।

श्रीनगर के एस.पी.एस. संग्रहालय और देश के कुछ अन्य संग्रहालयों के अलावा, मैंने यू. एस. के कई संग्रहालयों में कश्मीर की धातु (विशेष रूप से पीतल और कांस्य) की मूर्तियां देखीं। न्यूयॉर्क के मेट्रोपॉलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट में कश्मीर की पत्थर और धातु की मूर्तियों का समृद्ध संग्रह है। न्यूयॉर्क के 17वीं स्ट्रीट वेस्ट में स्थित रुबिन म्यूजियम में मध्ययुगीन कश्मीर, पश्चिमी हिमालय और तिब्बत की कुछ दुर्लभ कलाकृतियां हैं। कश्मीर की गजदंत मूर्तियों को तब तक पहचान नहीं मिली जब तक कि अमेरिका और यूरोप के विभिन्न संग्रहालयों में कुछ ऐसी कलाकृतियां नजर नहीं आने लगीं।

कश्मीर की चित्रकला

कश्मीर में चित्रकला की यात्रा को इस भूमि के इतिहास को जानने के बाद अच्छे से समझा जा सकता है। हम इसे चार चरणों की यात्रा के रूप में संक्षेप में प्रस्तुत कर सकते हैं : विकासक्रम, विकसितक्रम, दमन और अंततः पुनर्जन्म। इन अवधियों को इसप्रकार विभाजित किया जा सकता है; जिसमें प्राचीन में विकासक्रम, मध्ययुगीन में विकसित होना, 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी के अंत तक दमन और उपेक्षा (सुल्तान जैनुल आब्दीन के शासन के अपवाद के साथ) और अंत में मुगलों के आगमन के साथ शुरू हुआ पुनर्जन्म।

कश्मीर की कलात्मक परंपरा की उपेक्षा और दमन 14वीं शताब्दी से शुरू हो गया जब कश्मीर का सिंहासन सुल्तानों के हाथों में आ गया। आधिकारिक संरक्षण की कमी और धार्मिक उत्पीड़न ने इस अवधि के दौरान कला के ह्रास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सुल्तान सिकंदर 'बुतशिकन' के शासन के दौरान मंदिरों के विध्वंस और उसके बाद कश्मीर के कलात्मक खजाने के साथ खिलवाड़ हुआ। पुराने हिंदू और बौद्ध कलात्मक साक्ष्य कश्मीर घाटी के परिदृश्य से लगभग मिट गए। इतिहास की किताबों में कई संदर्भ सामने आते हैं, जो हमें बताते हैं कि कश्मीर घाटी में अनगिनत मूर्तियां थीं, जिनमें सुंदर मूर्तियां, पत्थर की नक्काशी और दीवार पर की गई चित्रकारी थी। चूंकि मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया था और जमीन पर गिरा दिया गया था, इसलिए कोई

भी दृश्य प्रमाण कहीं भी मौजूद नहीं है। इस अवधि को कश्मीर में दृश्य कला के लिए काला समय कहा जा सकता है। इतिहास की किताबों में या और कहीं कश्मीर के किसी भी मध्यकालीन सुल्तान के बारे में उल्लेख करने लायक कोई भी संदर्भ नहीं पाया जा सकता है, जो कला और मूर्तिकला को प्रोत्साहित करता है, शानदार सुल्तान जैनुल आब्दीन को छोड़कर जब यह कश्मीर की पारंपरिक कलाओं जैसे शॉल बनाया, अखरोट की लकड़ी पर नक्काशी, पेपर मैशे, कालीन की बुनाई, नमदा बनाना और तांबे की नक्काशी को निखारा गया। हमें सुल्तान जैनुल आब्दीन के शासन के दौरान इतिहास की पुस्तकों में चित्रों के कुछ संदर्भ मिलते हैं। मुल्ला जामिल, उनके दरबारी संगीतकार भी एक प्रसिद्ध संगीतकार थे।

कश्मीरी लोगों के सौभाग्य से एक विकसित कागज उद्योग है। पेपर मैशे उद्योग में कागज का इस्तेमाल कच्चे माल के रूप में कई शताब्दियों से किया जाता था। पेपर मैशे फ्रेंच भाषा का शब्द है जिसका मतलब चबाया हुआ कागज है। पेपर मैशे एक मिश्रित सामग्री है जिसमें कागज के गूदे के साथ गोंद मिलाया जाता है, जो सूखने पर जम जाती है, और फिर एक कुशल कलाकार द्वारा उस पर पेंट किया जाता है। पेपर मैशे में अभी भी सोने की पेंट के साथ अति सुंदर पेंटिंग की जाती है, जिसमें शाखाओं और पत्तियों या पुरुषों और जानवरों की आकृति के साथ छोटे पेड़ों की शृंखला को बनाया जाता है। यह कला ज्यादातर कश्मीर में शिया समुदाय द्वारा की जाती थी, जो बहुत विस्तृत होती है।

अपने शासन के दौरान सुल्तान जैनुल आब्दीन ने कई धार्मिक ग्रंथों को प्रकाशित और चित्रित करवाया। मध्य एशिया और यूरोप के कुछ संग्रहालयों या पुस्तकालयों में, सुल्तान जैनुल आब्दीन के काल से संबंधित कश्मीरी मूल की सचित्र पांडुलिपियां रखी गई हैं। ये पांडुलिपियां कश्मीर में इस उदार सुल्तान के शासन के दौरान संरक्षण और समृद्ध कला के बारे में बताती हैं, जो खुद कला शिल्प के महान संरक्षक थे। सुल्तान जैनुल आब्दीन के शासन के दौरान हुए शिल्पगत कार्यों को कागज पर दर्ज किया गया, तदुपरांत उनका दस्तावेजीकरण किया गया, जिसका उपयोग बाद में कारीगरों ने वास्तुकला, कालीन बुनाई, शॉल बनाने, अखरोट की लकड़ी की नक्काशी और पेपर मैशे पर बनाई पेंटिंग में किया। यह शाही संरक्षण उनकी मृत्यु के बाद गायब हो गया और इस कला और शिल्प का विकास व्यक्तियों (कलाकारों) पर छोड़ दिया गया।

मुगल शासन के दौरान कश्मीर में कला

मुगलों के आने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि कश्मीरी कलाकारों ने एक बार फिर से अपनी कोशिश शुरू की। मुगल राजा कश्मीर घाटी की अपनी यात्रा पर कई दरबारी चित्रकारों को अपने साथ ले आए। उन्होंने घाटी में चित्रकारी की और फारसी में पांडुलिपियों को तैयार किया। स्थानीय कलाकारों के साथ उनकी बातचीत कहीं भी दर्ज नहीं की गई, हालांकि कई किताबें हमें बताती हैं कि अकबर, जहांगीर और शाहजहां के पास कश्मीर के कई कलाकार थे। इस श्रेणी में कुछ प्रमुख नाम मुहम्मद हुसैन जरीन कलम, जैनुल आब्दीन, कमल कश्मीरी, हैदर कश्मीरी, दाउद कश्मीरी और याकूब कश्मीरी हैं। जहांगीर के दरबार में कुछ कश्मीरी कलाकार थे।

मुगल शासन में कला के पुनरुद्धार के बाद, कश्मीरी कलाकारों द्वारा कश्मीर में या कश्मीर के बाहर किए गए चित्रों को शारदा, गुरुमुखी, फारसी और संस्कृत में लिपिबद्ध सचित्र/प्रबुद्ध धार्मिक पांडुलिपियों में देखा जा सकता है। इन पांडुलिपियों में 'रामायण', 'महाभारत', 'गुरु ग्रंथ साहिब', 'शिव पुराण', 'भागवत पुराण' और हिंदू व सिख धर्मों से संबंधित कई संदर्भ हैं। इन चित्रों को हाफिज शेख सादी, निजामी, खमसा और कई अन्य चित्रकारों ने बनाया जिसे फारसी ग्रंथों की सचित्र/प्रबुद्ध पांडुलिपियों में भी देखा जा सकता है। ये पेंटिंग ज्यादातर अज्ञात कश्मीरी ब्राह्मण या मुस्लिम कलाकारों द्वारा बनाई गई हैं। इन सभी पांडुलिपियों में पेंटिंग का श्रेय कश्मीरी चित्रकारों और शास्त्री को दिया गया है, जो कश्मीर घाटी में या वहां से बाहर रहते थे। ये पेंटिंग कश्मीरी पंडितों की पुरानी कुंडली में भी देखी जाती हैं। कश्मीर के लघुचित्रों को सजावटी रूपांकनों और पैटर्न से जोड़ा गया था, जो आमतौर पर मुख्य विषय के ढांचे का गठन करते थे।

मोटे तौर पर, कश्मीर के चित्रों की कुछ प्रमुख विशेषताएं हैं–

1. इनमें कई शैलियों का सम्मिश्रण है। एक पहाड़ी सार के साथ मुगल तत्त्वों के निशान दिखाई देते हैं।
2. चित्रों में सजावट या फूलों का किनारा होता है, लेकिन अक्सर कलाकार इन किनारों के भीतर अपने मूल कार्य को नहीं करता है।
3. इन कलाकारों के पास चित्रों में जगह की कमी की धारणा है।
4. कलाकार का यथार्थवाद या प्रकृति के प्रति प्रतिबद्धता भी सख्त नहीं है।
5. इनमें मानव आकृतियां छोटी होती हैं और कुछ कहानियों या धार्मिक कहानियों को बताने पर ज्यादा जोर देते हैं।
6. कश्मीरी चित्रों में इस्तेमाल किए गए रंग विशिष्ट हैं। केसरिया, हरा, हल्का पीला और नीले रंगों का उदारतापूर्वक उपयोग किया जाता है।
7. आमतौर पर, कालोफोन पर हस्ताक्षर करने की अनिच्छा कलाकारों में होती है और अधिकतर अज्ञात रहना ही चुनते हैं।

17वीं से 19वीं शताब्दी में निर्मित विशिष्ट कश्मीरी कला में पहाड़ी, बौद्ध, फारसी, अफगान और मुगल शैलियों का सम्मिश्रण था। चूंकि ये पेंटिंग इतने सारे स्थानों पर फैली हुई हैं और विभिन्न संग्रहालय और पुरालेख में या व्यक्तियों के पास हैं, इसलिए उन सभी को देखना और उनके विकास पर टिप्पणी करना आसान काम नहीं है।

प्राचीन और मध्ययुगीन काल के दौरान किए गए कश्मीरी चित्र गांधार, गुप्त और बौद्ध प्रभावों से भरे हैं, जो इस अवधि की मूर्तिकला के साथ मिलकर चल रहे हैं। इस अवधि की मूर्तियों और चित्रों में, महिलाओं को मांसल और कुशल विशेषताओं के साथ दर्शाया गया है। उनके शरीर के अंग जैसे पैर और स्तन को उजागर किया गया है। उनकी आंखें धनुषाकार भौंहों के साथ बादाम के आकार की दर्शायी गई हैं। वे आभूषण पहनती हैं। उनके लंबे और सुनहरे बाल चित्रों में देखे जा सकते हैं, वहीं उनके मोटे होंठ और गाल होते हैं। कलाकारों द्वारा बनाए गए चित्रों में एक स्पष्ट

उत्साह है, जो शरीर की रूपरेखा को आकार देता है। यह चित्रसूत्र दिशा-निर्देशों के सख्त कार्यान्वयन का परिणाम प्रतीत होता है। यह उस चीज के विपरीत है जिसे हम कश्मीर के चित्रों में बाद में 17वीं से 20वीं शताब्दी के बीच में देखते हैं।

कश्मीर की इस्लामिक कला के बारे में सुल्तान जैनुल आब्दीन द्वारा संरक्षित किए गए हस्तशिल्प, कालीन बुनाई, पेपर मैशे कला, अखरोट की लकड़ी पर नक्काशी आदि की कहानी, कश्मीर में मुगलों के आने तक लगभग एक जैसी है। इसका कारण राजनीतिक अशांति और उथल-पुथल है। मुगलों के कश्मीर पर विजय प्राप्त करने के बाद इस कला को नया आयाम मिला। प्रसिद्ध निशात और शालीमार बाग की बारादरी (गर्मियों के घरों) में मुगल काल से संबंधित कश्मीर की दीवार चित्रकारी के उदाहरण अब भी मौजूद हैं।

मंदिरों की चित्रकारी एकदम से पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। बीसवीं सदी में किसी भी मंदिर में फ्रेस्कोस या चित्रकारी देखी जा सकती थी। मैंने इसे अली कदल राम जी मंदिर, रैणावारी, शिव मंदिर, श्री रामचंद्र जी मंदिर बर्बर शाह, बाबा धर्म दास मंदिर, प्रतापेश्वर मंदिर, राम कौल मंदिर (हारी पर्वत) और कई और मंदिरों में देखा है, जो डोगरा शासन के दौरान 19वीं शताब्दी में या 20वीं शताब्दी की शुरुआत में बनाए गए थे।

भले ही 14वीं शताब्दी के बाद कश्मीर स्कूल ऑफ आर्ट कायम नहीं रहा, लेकिन यह अन्य माध्यमों से कायम रहा। कश्मीरी पंडितों के परिवार में चित्रकला और कला अनुष्ठानों का एक हिस्सा बन गई है। गौरी तृतीया के दिन कुल के पुरोहित के द्वारा (परिवार के पुजारी) यजमान को एक पेंटिंग दी जाती थी। गौरी तृतीया के दिन एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में प्रत्येक लड़के और लड़की को परिवार के पुजारी के द्वारा चमकीले रंग के देवी-देवताओं के चित्रों को दिया जाता था। हिंदू विक्रम पंचांग के अनुसार माघ शुक्ल पक्ष के तीसरे दिन गौरी तृतीया-पर्व मनाया जाता था। गौरी तृतीया के पहले दिन को 'रंग दोई' के नाम से जाना जाता था। रंग दोई कश्मीरी पंडितों द्वारा सफेद कागज पर हाथी, मोर, पेड़, हंस और सरस्वती देवी की रंगीन छवियां बनाने के लिए समर्पित थी।

इसी तरह विवाह और मेखला (पवित्र धागा) समारोहों के दौरान दरवाजे और खिड़कियों पर पुष्प डिजाइन चित्रित किए जाते थे। इन चित्रों को क्रोल के रूप में जाना जाता है। विवाह के दौरान आंगन में रंगीन रंगोली का चित्रण कश्मीरी पंडितों के बीच एक बहुत पुरानी परंपरा है। रंगोली हमेशा ब्रह्मांडीय चक्र पर बनाई जाती थी।

क्रूल (Krool) घर के मुख्य द्वार या दरवाजे पर बनाई गई कलात्मक सजावट है। यह विवाह समारोह की शुरुआत से ठीक पहले की जाती है। आमतौर पर प्रवेश द्वार पर शुभ आभा देने के लिए चमकीले रंगों में फूल, पत्तियां और शाखाएं खींची जाती हैं। यह भी माना जाता है कि क्रूल बनाने से दंपत्ति का वैवाहिक जीवन आनंदित रहेगा। व्यूग (Vyoog) का उल्लेख कश्मीर के 'नीलमत पुराण' में मिलता है। इस प्रथा को प्राचीन कश्मीर में भूमि-शोभा के नाम से जाना जाता था। द्वार-शोभा (कश्मीरी में क्रूल [krool]) और भूमि-शोभा (कश्मीरी में व्यूग (Vyoog)) का उल्लेख हिंदुओं के कई प्राचीन ग्रंथों में मिलता है।

मुगल शासन के बाद कश्मीर में की गई लघु चित्रकारी, विभिन्न शैलियों का एक मिश्रण है। ये फारसी और पहाड़ी प्रभाव को अवशोषित करते हुए बौद्ध काल की पुरानी परंपरा को आगे बढ़ाती हैं। कश्मीर के धार्मिक लघु चित्रों में सचित्र/प्रकाशित पांडुलिपियों की एक लंबी और समृद्ध परंपरा है। कई अज्ञात चित्रकारों ने श्रीकृष्ण के जीवन के दृश्यों को दर्शाने वाले चित्रों के साथ 'श्रीमद्भगवद्गीता' और 'भागवत पुराण' सहित कई चित्र और प्रबुद्ध धार्मिक ग्रंथ तैयार किए हैं।

मुगल शासन से मानव शरीर के अलावा, पुष्प डिजाइन, पशु, पक्षी, वनस्पति और जीव, परिदृश्य आदि कश्मीर के चित्रों में दिखाई देने लगे। यह मुगल शैली का प्रभाव हो सकता है, जो कला की साफविद (Safavid) परंपरा से उत्पन्न हुई है। हालांकि, लघु कला में, साफविद कलाकारों ने मानव शरीर की उपेक्षा नहीं की।

दुर्भाग्य से कश्मीर के चित्रों के इस समृद्ध खजाने को न तो सावधानी से संरक्षित किया जा सका और न ही इसने कला इतिहासकारों और आलोचकों का ध्यान आकर्षित किया। जम्मू और कश्मीर राज्य में आधिकारिक स्तर पर इस क्षेत्र में किसी भी शोध के लिए कोई पहल न की गई थी और न की गई है जिससे एक गंभीर प्रयास के रूप में इसका पुनरुद्धार हो।

चित्रों को संगृहीत करने के लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली द्वारा कुछ उपयोगी कार्य किया गया है। कश्मीर के 343 चित्रों को एक रेप्रोग्राफी रूप (स्लाइड्स) में कैप्चर (Capture) करके और एक डिजिटल रिकॉर्ड बनाकर रखा गया है। ये स्लाइड जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज, कश्मीर यूनिवर्सिटी (सेंटर फॉर सेंट्रल एशियन स्टडीज), जे. एंड के. स्टेट आर्काइव्स और एस.पी.एस. म्यूजियम श्रीनगर द्वारा रखे गए संग्रहों से बनाए गए हैं। यह चित्रकारी ज्यादातर 18वीं और 19वीं शताब्दी के बीच की अवधि से संबंधित है।

हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी कला और कश्मीर

कला इतिहासकार एम.एस.रंधावा लिखते हैं—''औरंगजेब के शासन के अंतिम वर्षों के दौरान इस्लाम की समृद्धि अपने चरम पर थी। 17वीं शताब्दी की अंतिम तिमाही और 18वीं शताब्दी की पहली तिमाही में, कई कश्मीरी ब्राह्मण कश्मीर से कांगड़ा घाटी में चले गए और कांगड़ा एवं अन्य पहाड़ी राज्यों के राजाओं के दरबार में आश्रय की तलाश की। इस बात की काफी संभावना है कि पंडित शिव उनमें से एक था।''

परिवार के मुखिया पंडित शिव रैणा कला की पाला शैली और मुगल शैली में पारंगत थे। उन्होंने गुलेर के राजा दलीप सिंह (1695-1741 ई.) से शरण मांगी। नैनसुख (नाना) और माणकू (माणा) उनके पुत्र थे जिन्होंने बाद में गुलेर, बशोली, जसरोटा और पश्चिमी हिमालय के विभिन्न पहाड़ी राज्यों में शामिल होकर पहाड़ी कला में क्रांति ला दी।

क्या पंडित सिव (शिव) रैणा मुगल दरबार में कुछ काम कर रहे थे या वह सीधे कश्मीर से आए थे? यह एक चकित करने वाला प्रश्न है, लेकिन निश्चित रूप से, शिव रैणा को यह पता नहीं था कि उनके बेटे और उनकी प्रजा पहाड़ी कला के इतिहास की रचना करेंगे जिसकी आज हिमाचल प्रदेश में एक पहचान है। रैणा-राजदान कबीले, जिन्होंने पश्चिमी हिमालय के विभिन्न

राज्यों में दरबारी चित्रकारों के रूप में काम किया, उनमें अत्र, निक्का, रांझा (राम दयाल), छज्जू, हरकू, सौदागर, काम, गोधू, चेतु, खुसाल, किरु, गुरुसहाय और फत्तू शामिल हैं।

कश्मीर के प्रवासी ब्राह्मणों का यह समूह शायद देश के मैदानी इलाकों की ओर नहीं बढ़ पाया, क्योंकि नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों से मृत्यु और विनाश का मंजर कायम था। वे वर्तमान हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी राज्यों तक ही सीमित रहे। कश्मीरी पंडित वंश के इन कलाकारों ने पहाड़ी स्कूल ऑफ मिनिएचर आर्ट यानी लघु कला के विकास में पर्याप्त योगदान दिया। कलाकार पी.एन. काचरू लिखते हैं–

''पंडित शिव रैणा की छह पीढ़ियों में लगभग छत्तीस बच्चों का जन्म हुआ जिसमें वे सभी कलाकार थे, जिन्होंने अपनी प्रतिभा को हिमाचल रियासतों के मील के पत्थर के रूप में बहुत गहराई तक प्रवेश किया। उनके सभी ट्रैक को सहेजने के लिए अभी भी एक ग्रंथ की आवश्यकता है। नैन सुख इस रैणा कबीले के सबसे प्रमुख और प्रभावशाली चित्रकार हैं।''

पंजाब में कश्मीरी कलाकार

19वीं और 20वीं शताब्दी की शुरुआत में पंजाब में कश्मीर के कई अज्ञात कलाकार और लेखक सक्रिय थे। वे या तो पंजाब में सर्दियों के दौरान आते थे या तो स्थायी रूप से अमृतसर, लाहौर, गुजरांवाला, सियालकोट और कई अन्य शहरों में निवास कर रहे होते थे। उन्होंने धार्मिक पांडुलिपियों या चित्रों, चित्रित/प्रकाशित करके अपनी आजीविका अर्जित की। कश्मीरी शैली में इन अज्ञात कलाकारों द्वारा निर्मित कई चित्रों और प्रबुद्ध/सचित्र पांडुलिपियां, दुनिया भर के विभिन्न संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। कई को देश के विभिन्न संग्रहालयों में देखा जा सकता है।

19वीं शताब्दी में पंडित हरदास कौल तोता, पंडित दया राम कौल तोता और पंडित राजा राम कौल तोता (जिसे हरदास तोता नक्काश, दया राम तोता नक्काश और राजा राम तोता नक्काश भी कहा जाता है) और कौल तोता परिवार में कुछ और प्रसिद्ध चित्रकार, सुलेखक थे, जो लाहौर में बसे कश्मीर के कलाकारों में से थे। उनके चित्र और प्रबुद्ध/सचित्र पांडुलिपियां कुछ निजी संग्रहकर्ताओं के पास होने के अलावा दुनिया के कुछ संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं। तोता कलाकारों को फारसी आती थी। राजा राम कौल तोता ने 'राजतरंगिणी' का फारसी में अनुवाद कर प्रकाशित किया, जो कि रागमाला के राष्ट्रीय पुस्तकालय में प्रदर्शित है, यहां राजा राम कौल तोता द्वारा प्रकाशित एक और पांडुलिपि है।

राजा राम कौल तोता लाहौर के कोहिनूर प्रेस में एक सुलेखक थे। वह बहुत अच्छे कलाकार थे। उन्होंने गुरु गोविंद सिंह का जफरनामा लिखा। इस पुस्तक में सभी चित्र और दृष्टांत उनके द्वारा निर्मित हैं। उनके द्वारा किए गए कामों में गुलगाशात-ए-पंजाब (Gulgashat-e-Punjab) है, जिसे 1864 ई. में लिखा गया। यह 1849 ई. में पंजाब की उद्घोषणा के पहले से पंजाब का इतिहास है। इसके बाद फिर दीवान किरपा राम द्वारा लिखित 'गुलाबनामा' और 'गुलजार-ए-कश्मीर' को उनके द्वारा प्रेषित किया गया था। 'महाशिव-पुराण' की पांडुलिपि संवत् 1929 में लाहौर साम्राज्य के संरक्षण में राजा राम कौल तोता के पिता दया राम कौल तोता द्वारा तैयार की गई थी।

कश्मीर में कलात्मक परंपरा का पुनर्जागरण और आधुनिक कला में अनावरण

हालांकि 20वीं शताब्दी की पहली तिमाही के अंत तक, वान गाग, एडवर्ड मानेट, पॉल गाउगिन, पॉल सेजेन, क्लाउड मोनेट जैसे कलाकारों द्वारा बनाई गई पेंटिंग में आधुनिक रुझान और बहुत कुछ कश्मीर में लगभग अविदित थे, फिर भी घाटी के कई प्रतिभाशाली व्यक्ति वहां गतिविधियों से परे देखने की इच्छा रखते थे। कुछ उद्यमी व्यक्तियों ने इस दिशा में कदम उठाया और कुछ कर गुजरने का साहस किया। 20वीं शताब्दी की पहली और दूसरी तिमाही में, कई व्यक्ति लाहौर, ग्वालियर, कोलकाता और अन्य शहरों में संगीत और अन्य ललित कला सीखने के लिए गए। उस काल में कला के क्षेत्र में एक प्रमुख नाम पंडित महेश्वर नाथ धर (1888-1971) का है, जो 1910 में ग्वालियर में चित्रकला का कौशल सीखने गए थे। कश्मीर में एक कलाकार सह मूर्तिकार नारायण काचरू मूर्तगर थे, जो 19वीं के उत्तरार्द्ध और 20वीं शताब्दी के शुरुआत में थे।

महाराजा प्रताप सिंह के शासन के दौरान, श्रीनगर में सर अमर सिंह तकनीकी संस्थान का उद्घाटन कश्मीर की कलात्मक परंपराओं के पुनरुद्धार के लिए उठाया गया एक ऐतिहासिक कदम था। इस संस्थान ने स्थानीय लोगों को आधुनिक कलात्मक प्रवृत्तियों और शैलियों को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। नया खोला गया यह संस्थान, द सिटी एंड गिल्ड्स इंस्टीट्यूट, लंदन से मान्यता प्राप्त था। इस संस्थान द्वारा छात्रों को फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा प्रदान किया गया। इस संस्थान का नेतृत्व फ्रेड्रिक एच. एंड्रयूज ने किया, जिन्होंने 1923 में भारत छोड़ा था। उनके बाद जे. सी. मुखर्जी, ललित कला के क्षेत्र में एक और सक्षम और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। वे बंगाल स्कूल के जाने-माने कलाकार थे। उनकी वजह से स्थानीय कलाकार बंगाल स्कूल से परिचित थे। शिव नाथ रैणा, संसार चांद बारू, केशव मलिक, पी.एन. काचरू, सत लाल कम्पासी, जे.एन. सप्रू, जे.एन. मट्टू, मोहन रैणा, डी.एन. वल्ली, सोमनाथ खोसा, मनोहर कौल, काशीनाथ भान, नीलकंठ जाडू, कैलाश नाथ फोतेदार, अमर नाथ वैष्णवी, मोहिउद्दीन, गुलाम रसूल, सोमनाथ मुंशी, शंभू नाथ भान, राधा कृष्णन रैणा और मेहराज उद्दीन इस संस्थान के कुछ उल्लेखनीय छात्र थे। जून 1942 में सर अमर सिंह तकनीकी संस्थान को अमर सिंह महाविद्यालय में परिवर्तित कर दिया गया।

सैयद हैदर रजा की कश्मीर यात्रा प्रगतिशील कलाकार संघ के गठन के रूप में पराकाष्ठा पर पहुंची। उनकी यात्रा ने एक उत्प्रेरक कारक के रूप में काम किया। उन्होंने कला के आधुनिक रुझानों में कश्मीर के कुछ युवा कलाकारों को प्रशिक्षित करके अग्रणी काम किया। 1948 में एस.एच. रजा और पर्सी ब्राउन, तीन युवा कलाकारों (जिनके नाम हैं) : एस.एन. बट, त्रिलोक कौल और पी. एन. काचरू के समर्थन से द प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट एसोसिएशन का गठन किया गया। मई 1949 में, इस एसोसिएशन ने अपनी पहली कला प्रदर्शनी श्रीनगर में आयोजित की। अक्तूबर 1949 में, इस एसोसिएशन ने राज्य के बाहर एक प्रमुख कला प्रदर्शनी का आयोजन किया। नई दिल्ली में अक्तूबर 1949 में आयोजित प्रदर्शनी का उद्घाटन प्रोफेसर हुमायूं कबीर ने किया था। श्रीनगर में मई 1949 की प्रदर्शनी में एस.एच. रजा ने भी भाग लिया, जो पहले से ही बॉम्बे प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के सदस्य थे जिसमें एम.एफ. हुसैन, एस.के. बाकरे, एफ.एन. सौजा, एच.ए. गेड और कई अन्य सदस्य थे।

आधुनिक कला को कश्मीर में लाने के लिए डॉ. पर्सी ब्राउन की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। उन्होंने लाहौर संग्रहालय के संग्रहाध्यक्ष (क्यूरेटर) और मेयो कॉलेज ऑफ आर्ट, लाहौर (1899-1909) के प्रमुख के रूप में एक बहुत ही सराहनीय काम किया था। बाद में उन्होंने गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स, कोलकाता के प्राचार्य के रूप में पदग्रहण किया।

अपनी सेवानिवृत्ति के बाद, डॉ. पर्सी ब्राउन अपनी पत्नी के साथ कश्मीर में बस गए। पर्सी ब्राउन की कश्मीर में उपस्थिति स्थानीय कलाकारों खासकर त्रिलोक कौल, पी.एन. काचरू, एस.एन. बट और डी.एन. वल्ली के लिए काफी मददगार साबित हुई। वह कश्मीर के कुछ ज्ञात कलाकारों और चित्रकारों के संपर्क में रहे, जो अक्सर उनसे मार्गदर्शन लेने के लिए उनके पास जाया करते थे। डॉ. पर्सी ब्राउन की मृत्यु 1955 में हो गई, उन्हें श्रीनगर के अमीरा कदल के शेख बाग कब्रिस्तान में दफनाया गया। पर्सी ब्राउन के अलावा एन.एस. बेंद्रे, हर्मन गोएत्ज, एच.ए. गेड और मुल्कराज आनंद जैसे प्रसिद्ध कलाकारों और कला इतिहासकारों ने भी कश्मीर का दौरा किया और कुछ समय तक वहां रहे। वे स्थानीय कलाकारों के लिए प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत थे।

बड़ौदा के लड़के

1951 में, रतन परिमू कश्मीर से बड़ौदा जाने वाले पहले व्यक्ति थे जहां उन्होंने कला में स्नातक और स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी की। 1959 में वे एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा में एक संकाय सदस्य के रूप में शामिल हुए और कला इतिहास और सौंदर्यशास्त्र विभाग के प्रमुख बने। विख्यात कलाकार नैना दलाल से उन्होंने शादी की।

रतन परिमू के बाद त्रिलोक कौल आए। त्रिलोक कौल को जम्मू और कश्मीर राज्य में आधुनिक कला का एक अग्रणी नाम माना जाता है। त्रिलोक कौल के बाद जी.आर. संतोष और किशोरी कौल आए।

गयूर हसन, वी.आर. खजूरिया, मंजूर राथर, शुबन काव, भूषण कौल, जहूर जरगर, कुलदीप कौल, वीर मुंशी, ए.आर. जॉन, किशन जी काव, नसरीन मोहसीन, सुनील वेसिन, प्रीति वेसिन और कई और लोग बड़ौदा कला सीखने के लिए गए।

1947 के बाद राज्य में कला परिदृश्य में बेहतरी के लिए बदलाव आए। 1958 में जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज की स्थापना के साथ संगीत और ललित कला संस्थान के शुरू होने से राज्य में कला को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। कश्मीर में आयोजित नियमित कला शिविरों से स्थानीय कलाकारों को काफी मदद मिली। एम.एफ. हुसैन, लक्ष्मण पाई, बीरेन डे, शांति दवे, तैयब मेहता, के.के. हेब्बर, जतिन दास, वी.एस. गायतोंडे, बाल छाबड़ा, बिमल गुप्ता, राम कुमार, होमी पटेल, जे. स्वामीनाथन, रतन परिमू, जी. एम. शेख, कश्मीरी खोसा, मनू पारीख, किशोरी कौल, शमशाद हुसैन, बी.सी. सान्याल, जी.आर. संतोष जैसे दिग्गजों ने इन शिविरों में भाग लिया। अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजेज ने भी कलाकारों के कार्यों को अर्जित करना शुरू कर दिया।

बीसवीं शताब्दी के अंत में राज्य में द स्कूल ऑफ डिजाइन की शुरुआत पारंपरिक हस्तशिल्प का डिजाइन विकसित करने के लिए की गई। इस स्कूल में पुराने डिजाइनों के

पुनरभिविन्यास के अलावा नए डिजाइन बनाए गए। स्कूल ऑफ डिजाइन ने हजारों नए डिजाइन तैयार किए, जिससे डिजाइन या क्राफ्ट म्यूजियम का एक खजाना घर तैयार हो गया। इस स्कूल में प्रगतिशील कलाकार तिकड़ी—त्रिलोक कौल, एस.एन. बट और पी.एन. काचरू कार्यरत थे। बाद में सूरज विकू, ए.के. रैणा कुछ और सहित कलाकारों ने स्कूल ऑफ डिजाइन में पदग्रहण किया।

सरकार ने जम्मू और श्रीनगर में संगीत और ललित कला संस्थान खोला। दोनों संस्थानों में चित्रकला और मूर्तिकला का एक स्वतंत्र विभाग है। 1950 के बाद इन व्यापक पहलों के परिणामस्वरूप, हमारे पास राज्य में चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में इतने प्रतिभाशाली कलाकार हैं जिन्होंने राज्य या राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय कला परिदृश्य पर एक छाप छोड़ी।

आखिर कश्मीर की कला कहां गई?

सदियों से भारत में कला, लूट की शिकार होती रही है। कड़े कानूनों के बावजूद इस क्षेत्र में सक्रिय अपराधी देश से बहुमूल्य कला-संपदा को बाहर भेजने में कामयाब हो रहे हैं। कश्मीर में, बौद्धों और हिंदू काल की प्राचीन कलाकृतियों, चित्रों और मूर्तियों की लूट की हदें बहुत हद तक स्पष्ट हैं। बहुत बार ऐसा हुआ भी है। कश्मीर में कलात्मक विरासत के नुकसान की भयावहता को समझने के लिए, दुनिया के विभिन्न संग्रहालय का दौरा करने की आवश्यकता है।

कई इतिहासकारों का मानना है कि कश्मीर के कलाकारों और शिल्पकारों की एक बड़ी संख्या जुल्चू (Zulchu) (1323 ई.) के आक्रमण के दौरान नष्ट हो गई। जुल्चू की लूट के बाद कश्मीर घाटी में कला की बर्बादी और लूट शुरू हुई और कलाकारों को भूखे मरने की नौबत आ गई।

चौदहवीं सदी के कश्मीर ने हिंदुओं के दमन और उनके पूजा स्थलों के बड़े पैमाने पर विध्वंस को देखा है। यह विध्वंस और विनाश 15वीं शताब्दी में अन्य शासकों और उनके सहयोगियों द्वारा फिर से किया गया था। इन मंदिरों में पड़ी कई सुंदर मूर्तियां और आकृति बर्बाद हो गईं। इन विध्वंसों का ब्योरा फारसी क्रोनिकल्स बहारिस्तान-ए-शाही, तोहफतउल अहबाब, वकात कश्मीर, त्वारिख-ए-कश्मीर जैसे कई ऐतिहासिक ग्रंथों में दिया गया है। इन सभी फारसी राजवंशों का विभिन्न विद्वानों द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है। कश्मीर में कुछ भव्य मंदिरों को जमीन पर गिरा दिया गया और पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया। कश्मीर घाटी के कुछ प्रमुख पुरातात्त्विक स्थलों की वर्तमान स्थिति को देखकर, इतने बड़े पैमाने पर हुए विध्वंसों के लिए पर्याप्त गवाही मिलती है। इसके अलावा कश्मीरी पंडितों के बीच प्रचलित कई लोकगीत भी इस इतिहास से जुड़े हैं। ये उस समय को दर्शाते हैं, जब कश्मीर के एक मध्यकालीन सुल्तान ने धार्मिक ग्रंथों को झील के पानी में डुबोकर डल झील का तटबंध बनाया।

नित्यानंद शास्त्री, कश्मीर अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'उन्मेष' (Unmesh) पत्रिका के जनवरी 1998 के अंक में अपने लेख में लिखते हैं—

कश्मीर स्कूल ऑफ आर्ट का कोई व्यवस्थित अध्ययन अब तक नहीं किया गया है और न ही किसी ने भी इन लघुचित्रों की एल्बम को तैयार करने का काम किया है, इसके बावजूद भारतीय कला के इतिहास के समग्र संदर्भ में उनके महत्त्व को देखते हुए, कांगड़ा और पहाड़ी शैली (Style)

की शाखा के रूप में कायम हैं। जबकि बड़ी संख्या में ऐसी पेंटिंग खो गई हैं। उनके बेईमान मालिकों या अन्य लोगों द्वारा विदेशों में या निजी कला संग्राहकों को सबसे अधिक बेची जाती हैं। इस संस्थान ने लगभग दो दर्जन कश्मीरी चित्रों और एन.एस.के.आर.आई. (NSKRI) का अधिग्रहण करने में कामयाबी हासिल की है और आगे और अधिक कामयाबी पाने के लिए प्रक्रिया में हैं।

19वीं शताब्दी से यूरोपीय आगंतुक कश्मीर आने लगे। एक भी आगंतुक खाली हाथ नहीं गए। कुछ पांडुलिपियां, कला के कुछ टुकड़े या कुछ मूर्तियां या तो उन्हें उपहार में दी गईं या उनके द्वारा स्वतंत्र रूप से ले जाई गईं, क्योंकि इस महत्त्वपूर्ण विरासत के संरक्षण या संरक्षण जैसा कुछ भी कश्मीर घाटी में मौजूद नहीं था। पश्चिम के व्यक्ति नियमित रूप से कश्मीर आते रहे और इन पुरानी पांडुलिपियों और चित्रों की खोज करते रहे हैं।

यह जानकर दुःख होता है कि कश्मीर में चित्रकला के शानदार स्कूल होने के बावजूद पत्थर, धातु, टेराकोटा और लकड़ी (हिंदू और बौद्ध दोनों धर्मों के लिए बनाई गई) डेल कृतियों में कुछ भी उद्देश्यपूर्ण तथ्यात्मक सामग्री बची नहीं। इनमें से कई मूर्तियों को संग्रहालय में देखा जा सकता है, इनमें कई मूर्तियां टूटी हुई हैं और ध्वस्त मंदिरों के स्थलों से पुनः प्राप्त की गईं। दुनिया का शायद ही ऐसा कोई संग्रहालय हो जिसमें कश्मीरी पेंटिंग या कलाकृतियां प्रदर्शित न हों।

श्रीनगर के एस.पी.एस. संग्रहालय में कई बार (1917, 1937, 1973, 1989 और 2003) सेंध मारी गई और कुछ अमूल्य सामान चोरी कर लिये गए। 1995 में, शालीमार के चंद्पोरा में एक संदिग्ध आतंकवादी ठिकाने पर छापे के दौरान सुरक्षा बलों ने 8वीं से 10वीं शताब्दी ई. के बीच की 35 प्राचीन वस्तुओं को बरामद किया। इन्हें नई दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया और राष्ट्रीय संग्रहालय को सौंप दिया गया।

हालांकि, यह संतोषजनक है कि यूरोप और अमेरिका के अधिकांश संग्रहालयों के द्वारा कश्मीर की बेशकीमती पांडुलिपियों, चित्रों, मूर्तियों और अन्य कलाकृतियों के संरक्षण के लिए प्रयास किए गए हैं। क्या इस अनमोल खजाने की कुछ सूची कभी बनाई जा सकती है? क्या यह कभी कला के इतिहास में अपना उचित स्थान पाएगी?

'मैं एक संस्कृत श्लोक, जिसे मंगल मंत्र के नाम से जाना जाता है, के साथ समापन करता हूं'–

स्वस्तिप्रजाभ्यःपरिपालयन्तांन्यायेनमार्गेणमहींमहीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यःशुभमस्तुनित्यंलोकाःसमस्ताःसुखिनोभवन्तु॥

अर्थात् ईश्वर करे कि हरेक व्यक्ति सदैव प्रसन्न और सुरक्षित रहे, जिनके पास शक्ति हो, वह न्याय करे! ज्ञानी और गुणी जन सफल रहें, विश्व में सभी प्राणी सुखी व संपन्न हों।

□

कश्मीरी कलाकृतियां

श्रीमद्भगवद्गीता का एक पन्ना 19वीं शताब्दी में विक्टोरिया के मेलबोर्न के नेशनल गैलरी ऑफ आर्ट में है जिसे एक कश्मीरी चित्रकार द्वारा चित्रित किया गया था। (स्रोत : इंटरनेट)

ध्वस्त मार्तंड सूर्य मंदिर के अवशेष (फोटो : अवतार मोटा)

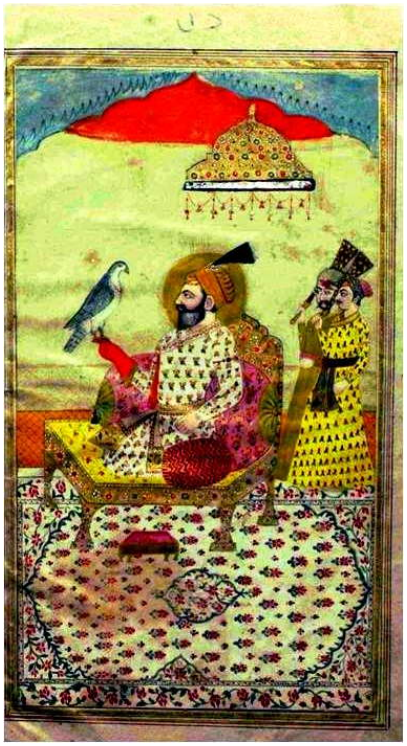

पंडित राजा राम कौल तोता द्वारा चित्रित फारसी 'राजतरंगिणी' की एक कलाकृति (सौजन्य : विनायक राजदान)

1650 ई. में चित्रित 'एक राजकुमार का शिकार के दौरान साधु से मुलाकात' की तस्वीर, जो कला संस्थान, शिकागो में सुरक्षित है। (सौजन्य : आर्टनेट)

कश्मीर की लघु चित्र शैली में बनी एक कलाकृति, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण को कलिनाग मर्दन का वध करने के बाद दिखाया गया है। (सौजन्य : नित्यानंद शास्त्री, कश्मीर अनुसंधान संस्थान)

एक कश्मीरी पंडित द्वारा लघु चित्र शैली में बनाई गई जन्म कुंडली की एक कलाकृति। (फोटो : अवतार मोटा)

पैपियर माचे के डिब्बे के ढक्कन पर बनाई गई कलाकृति
(फोटो : अवतार मोटा)

1860 ई. में पंचमुखी शिव या शिव योगेश्वरा की लघु चित्र शैली में बनाई गई कलाकृति। (सौजन्य : इंटरनेट)

□

सांगीतिक वैभव

अप्रमेय मिश्र

ऐसा कहा जाता है कि महर्षि भरत हिमालय के आस-पास (संभवतः कश्मीर) के निवासी थे। यह अनायास ही नहीं है कि नाट्यशास्त्र के टीकाकार भट्टोदभट्ट, लोल्लट, मातृगुप्त, शंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, भट्टयंत्र इत्यादि सभी आचार्य कश्मीरी थे और उसमें भी विशेष बात यह है कि गीत, वाद्य, नृत्य के आदि ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित भरत का 'नाट्यशास्त्र' भारतीय संगीत की आत्मा को शास्त्र में निरूपित करने वाला एकमात्र ग्रंथ है जिसमें कला-शास्त्र का निरूपण विशुद्ध वैज्ञानिक प्रणाली के द्वारा हुआ है। इसी परंपरा के अग्रगण्य शिष्य बारहवीं शताब्दी के महान आचार्य शारंगदेव के नाम पर प्रायः यह पढ़ने और सुनने को मिल जाता है कि उनकी पैदाइश क्योंकि दक्षिण में हुई, फलतः वे दाक्षिणात्य संगीत के विद्वान थे। इस बात को कहने वाले यह भूल जाते हैं कि आचार्य शारंगदेव का परिवार विशुद्ध कश्मीरी परंपरा के उन गिने-चुने महान आचार्यों का रहा जिनकी ज्ञान की धारा संपूर्ण भारत के साथ दक्षिण में तो बही पर उसका बिंदु स्थान कश्मीर ही रहा। यह सर्वविदित ही है कि ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी के आस-पास भारत के उत्तरी भाग की राजनीतिक स्थिति अत्यंत गंभीर थी। यवनों के आक्रमण के फलस्वरूप कश्मीर से विद्वानों का विस्थापित होना स्वाभाविक था। बहुत सारे विद्वान परिवारों ने अपने जीवन की अमूल्य पूंजी अर्थात् ग्रंथों को छुपाए दक्षिण की शरण ली। उन्हीं परिवारों में से एक आचार्य शारंगदेव का परिवार भी था जिन्होंने दक्षिण की शरण ली थी। भारतीय संगीत परंपरा की अंतःधारा के सूत्र, जो एक समय में कपोल-कल्पित कहकर नकार दिए गए थे, वे आज इसीलिए भारतीय गौरव के बोध समझे जा रहे हैं, क्योंकि इन आचार्यों ने उसे हर संभव प्रयास से बचाए रखा। आचार्य भरत से पल्लवित हुई यह परंपरा महान वीणावादक एवं शास्त्रकार अभिनवगुप्त से पुष्पित होती हुई मतंग तक और फिर आचार्य शारंगदेव तक सुरक्षित हाथों में रही। भारतीय सांगीतिक तत्त्वों की अविरल धारा ने जिन आर्ष स्वरूपों एवं तत्त्वों को अपने शास्त्र में संयोजित रखा, उसे उसी रूप में भारत को देने के कर्तव्य को निभाने में आचार्य शारंगदेव ने कोई कसर नहीं छोड़ी। उस समय की परिस्थिति को अगर ध्यान में लाया जाए तो इस बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि आचार्य शारंगदेव ने अपने पूर्वजों की महती परंपरा को निर्जीव होने से कैसे बचाए रखा! आचार्य शारंगदेव के समय तक भरत की संगीत प्रणाली का प्रयोग न्यूनतम रह गया था। दिल्ली के दरबार हों अथवा समस्त दक्षिण भारतीय संगीत में ईरानी संगीत का मिश्रण बहुतायत में होने लगा था। नवाबों एवं श्रोताओं के 'कान' इसी मिश्रित प्रणाली के संगीत को सुनने-सुनाने

के अभ्यस्त हो चुके थे। तमाम दरबारों में ऐसे गायकों का अपना ही दबदबा था। ऐसे में विशुद्ध भरत संगीत को आधार बनाकर कलाकारों को जीवनयापन करना कितना मुश्किल रहा होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जीवन को चलाने और अपने आर्ष सिद्धांतों को बचाए रखने तथा उसकी स्थापना हेतु तत्कालीन समय में आचार्य शारंगदेव के समक्ष यह विकट समस्या रही होगी कि वे संगीत संबंधी अनेक असंगत मतों का निराकरण करें। कश्मीर से निकले हुए संगीतकार, जिसकी परंपरा में शारंगदेव अन्यतम हैं, उनके शास्त्र में सुरक्षित मूर्च्छना पद्धति का ज्ञान दक्षिण के महान विद्वान संगीत शास्त्री गोपाल नायक को भली-भांति था। भारत में एक खेमा बार-बार यह कहते हुए नजर आता है कि दक्षिण के प्रसिद्ध संगीतकार गोपाल नायक को अमीर खुसरो के निमंत्रण पर दिल्ली आना पड़ा था, जहां भारतीय स्वर पद्धति और ईरानी मुकाम पद्धति के बीच स्वरों और श्रुतियों की वैज्ञानिक स्थिति पर बात रखने और उनके प्रयोगों को सिद्ध करना था; जिसमें गोपाल नायक हार गए थे और उन्होंने ईरानी पद्धति से भारतीय संगीत की प्रयोगधर्मिता को स्वीकार कर लिया था। वहीं दक्षिण में ऐसी मान्यता है कि अमीर खुसरो को भारतीय स्वर-सारणा पद्धति समझ में ही नहीं आई थी और उन्होंने गोपाल नायक की बात स्वीकार कर संगीत के भारतीय मानकीकरण को स्वीकार कर कुछ ईरानी पद्धति को भी उसमें शामिल किया था।

यह धारणा संगीत जगत् में आम है कि दोनों पद्धतियों के आपसी संयोगों के फलस्वरूप आधुनिक गान शैली ने आज अपना एक अलग ही रूप ग्रहण किया है। इसका कारण भी है, भारतीय संगीत के आधार तत्त्व, जो कि भरत सिद्धांत में सुरक्षित हैं, उन्हें समझना कालानुक्रम में प्रयोग में न आ पाने के कारण इतना दुरूह हो चला कि उन्हें सार्वजनिक तौर पर कपोल-कल्पित धारणा समझकर अपना पिंड छुड़ा लिया। पूर्वजों की असीम अनुकंपा ने भारतीय संगीत के आधार तत्त्वों को समझाने के लिए कुछ ऐसे शिष्यों को अपना कृपा-पात्र बनाया जिन्होंने सभी आचार्यों की पुनर्प्रतिष्ठा कर समस्त भारतीयों का हृदय गौरव से भर दिया। आचार्य अभिनवगुप्त की 'अभिनव भारती' तथा बारहवीं शताब्दी के आचार्य शारंगदेव की 'संगीत रत्नाकर' के सिद्धांत इसलिए भी संगीत जगत् में आप्त वचन-से लिये जाते हैं, क्योंकि ये दो ऐसे भवन हैं जहां प्राचीनता और आधुनिकता के द्वार खुलते हैं।

बीसवीं शताब्दी के महान आचार्य भातखंडे ने भारतीय शास्त्रीय संगीत की शास्त्र परंपरा को एकत्रित व संकलित करने का जो बीड़ा उठाया, उसका प्रयोजन अधुना प्रचलित रागों के नियमों तथा रचनाओं के स्पष्टीकरण और संकलन से था। तत्कालीन प्रचलित भारतीय संगीत जिसे मानक के तौर पर लिया जा रहा था, उसके बहुविध आयामों, नियमों और मर्यादाओं का स्पष्टीकरण पारंपरिक शास्त्र की कसौटी पर कहां तक ठीक है और जो नए आधार उसमें आकर जुड़ चुके थे, उसकी उपादेयता, वैज्ञानिकता, सौंदर्यबोध, शास्त्रज्ञता कला की दृष्टि से परखने के साथ-साथ पारंपरिक बंदिशें, जिसका स्वरूप जाति गायन से होता हुआ प्रबंधों तक और फिर रुवपद तथा खयाल तक आया, उनमें गान के बदलते स्वरूप को समझकर उसे संगीत जगत् के लोगों की सहमति से प्रतिष्ठित करना भी था।

प्रचलित संगीत को सुनने और उसके पारंपरिक शास्त्र को देखकर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति यह सहज ही अनुमान लगा सकता था कि शास्त्र और प्रयोग में काफी अंतर है। यही नहीं,

नवीन सिद्धांतों को भाषा के स्तर पर संस्कृतनिष्ठ करके जो प्रमाण के रूप में उसे स्थापित करने का प्रयास अपने-अपने हिसाब से किया जा रहा था, उसे भी सर्वसम्मति से स्थापित करना था। इस लिहाज से आचार्य भातखंडे ने आधुनिक एवं पारंपरिक संगीत के भेद को समझकर उसे एक सूत्र में पिरोने का जो कार्य किया, वह नित्य स्मरणीय है। यह दिखने में आसान पर विस्मय में डाल देने वाला तथ्य है कि प्राचीन संगीत शास्त्र में निबद्ध जिस संगीत के आधार को आचार्य बृहस्पति ने रेखांकित किया और नवीन सिद्धांतों के बीच उन्हें तर्कों एवं प्रमाणों द्वारा पुनर्स्थापित किया, उसकी प्रतीक्षा आचार्य भातखंडे सहित तमाम पंडित वर्ग तथा साथ ही साथ समस्त भारत के लोगों के बीच हजारों वर्षों से थी।

आचार्य शारंगदेव ने जिस भारतीय परंपरा के सप्तक के प्राण को पकड़े रखा, वह आधुनिक संगीत में अपना रूप बदलकर अर्थात् अष्टक स्वर सिद्धांत के आधार पर विकसित हुआ और इसे कहने में कोई गुरेज नहीं कि इसका सप्रयोग उद्घाटन प्रमाणों सहित आचार्य बृहस्पति की प्रतिभा के द्वारा ही संपन्न हुआ। पुराने और व्यर्थ कहे जा रहे शास्त्रों की तरफ पुनः पंडितों का ध्यान आकृष्ट हुआ। फलस्वरूप नए-नए तथ्य संगीतकारों के बीच आने लगे। अब लोगों का नजरिया अपने पूर्वजों के लिए बदल चुका था, जिस शास्त्र को निरुपयोगी कहकर बहिष्कृत किया जा रहा था, उसके विषय में अब बड़े गर्व से यह कहा जाने लगा कि 'जिस संगीत को आज हम सुनकर मंत्रमुग्ध हुए जा रहे हैं, वह तो केवल मूल संगीत के समक्ष अंश मात्र है।'

आचार्य भातखंडे ने अपने अदम्य साहस के बल पर संपूर्ण भारत का भ्रमण किया और अपनी जिजीविषा के बल पर कई खंडों में संपूर्ण भारत में प्रचलित संगीत के विधि-विधानों-विधाओं को एकत्रित कर उसकी व्याख्या की। प्रचलित संगीत को देखने से जो एक बिंदु स्पष्ट तौर पर दिखाई पड़ता है, वह उसके कालानुक्रम विधान के अंतर्गत सर्जना का भी प्रतिफल माना जा सकता है, किंतु भारतीय आत्मा के मूल में उपस्थित अध्यात्म और सांगीतिक तत्त्वों का आर्ष विमर्श एवं उसे समझने और प्राप्त करने की उत्कंठा शास्त्रों में निरूपित होती हुई प्रयोग के आधार पर जस की तस बनी रही, जिसे देखकर कोई भी आश्चर्य में न पड़ जाए, ऐसा संभव नहीं लगता। आचार्य भरत से लेकर अभिनव तक और फिर शारंगदेव तक तथा आधुनिक समय में आचार्य बृहस्पति तक, यह वही परंपरा है जिसने संगीत के स्वरों में मोक्ष मूलक तत्त्व को देखा। नाद-ब्रह्म की अवधारणा और उसका आध्यात्मिक अर्थ संगीत के प्रयोग में कैसे सुरक्षित रह पाए, इसका तंत्र ही सर्जना के आधार पर और संगीत के आधार पर हमेशा से निबद्ध किया जाता रहा। यह अनायास ही नहीं है कि भारत के महान तंत्र उपासक एवं महान वीणावादक आचार्य अभिनवगुप्त भारतीय संगीत शास्त्र के कीलित हुए विधानों को संगीत शास्त्र तथा आध्यात्मिकता के आधार पर उत्कीलित करते हुए भारतीय हृदय को एक विशेष रूप में संस्कारित कर रहे थे। आचार्य भातखंडे इन सब तथ्यों से परिचित थे। उन्होंने हिंदुस्तानी संगीत-पद्धति के अंतिम भाग के उपसंहार में यह बात बहुत विनम्रता से स्वीकार की है कि ''आचार्य शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' को अभी स्पष्ट किया जाना शेष है। मेरी खोज से अभी किसी निर्णय तक नहीं पहुंचा जा सकता। अतः उन तथ्यों के विषय में निर्णयात्मक स्थिति तक पहुंचना भावी पीढ़ी का कर्तव्य है।''

मैं जब भी भारतीय संगीत को समग्रता में देखने की कोशिश करता हूं तो मेरा मन अनायास

ही आह्लादित हो उठता है। जिसका मूल कारण समग्र भारत में इतनी विविधताओं-विभिन्नताओं के बावजूद शास्त्रीय संगीत ही वह एकमात्र धारा रही जो कभी अलग नहीं रही। आज जो दो धाराएं 'उत्तर भारतीय संगीत' एवं 'दक्षिण भारतीय संगीत' हमें दिखाई पड़ती हैं, उसे दो न मानकर अगर संगीत की भाषा में कहूं तो 'स्थायी' और 'अंतरा' के भेद में रखकर समझ लिया जाए तो बहुत सारे प्रश्नों के अर्थ स्वयं ही उद्घाटित हो जाएंगे। यह विस्मय में डाल देने की बात है कि भारतीय समाज के इतने विशाल विविध रहन-सहन, कहन के बीच 'राग' गायन के व्याकरणिक आधारों में कभी कोई अंतर नहीं दिखाई पड़ा। शायद इसीलिए भारतीय समाज ने इस परंपरा को श्रुति परंपरा में रखते हुए आज तक जीवित रखा है।

संपूर्ण जगत् की सांगीतिक परंपराओं में 'राग' जैसी कोई परंपरा कभी नहीं रही और अगर कभी होगी भी तो उसे भारतीय लोक की आत्मा से ही दीक्षित होना पड़ेगा। जीवन को भौतिकता की आंख से देखने वाले लोगों के ध्यान में जब तक 'भाव' के विज्ञान का अर्थ प्रकट नहीं हो जाता तब तक 'राग' का साक्षात्कार उन्हें न हो सकेगा। भारतीय परंपरा ने रागों को देवी-देवता की तरह पूजा है। उनके ध्यान स्वरूप को मंत्रों की तरह अभ्यानर्षण किया है। एक-एक स्वरों को बीजाक्षर मंत्र की तरह उद्घाटित करते हुए सुबह-दोपहर-शाम उनका आह्वान किया है। यहां यह स्मरण दिलाने में मुझे हर्ष का अनुभव हो रहा है कि दुनिया में सर्वप्रथम धैवत और निषाद स्वर का दर्शन भारतीय आर्ष परंपरा के आचार्य 'तुंबुरु' को हुआ था और स्वरों की वैज्ञानिक प्रणाली से जो लोग परिचित हैं, वे यह जानते हैं कि इन दो स्वरों का आगमन तभी संभव है (विशेष क्रम के आधार पर) जब इसके पहले के स्वरों की प्राप्ति (षड्ज, ऋषभ इत्यादि) की जा चुकी हो। इस प्रसंग में पुनः आचार्य शारंगदेव की कृति 'संगीत रत्नाकर' को इसलिए भी स्मरण में लिया जाना चाहिए, क्योंकि स्वरों के नामकरण के वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक क्रम की ओर उन्होंने शास्त्रकारों का ध्यान आकृष्ट कराया। धैवत शब्द की व्युत्पत्ति मतंग द्वारा हुई, यह तो लोक में प्रचलित रहा, पर इसके प्रमाण को खोजने के लिए मतंग कृत 'बृहद्देशी' को देखेंगे तो वह पाठ वहां से लुप्त मिलेगा। आचार्य बृहस्पति ने इस ओर इशारा करते हुए कहा है कि यह तो देवाधिदेव की अत्यंत कृपा है कि 'कल्लिनाथ की टीका (संगीत रत्नाकर की टीका)' में यह पाठ सुरक्षित है। धैवत स्वर का अर्थ है 'धीवान' (बुद्धिमान) व्यक्तियों से संबंध रखने वाला स्वर। यहां यह ध्यान में रखने वाली बात है कि धैवत स्वर की यह प्राप्ति संपूर्ण सारणा सिद्धांत के ऐतिहासिक प्रयोग की कुंजी है, जिसमें सप्तक के आधार पर मूर्च्छना पद्धति एवं षड्ज-मध्यम ग्राम में मध्यम स्वर की वैज्ञानिकता का सूत्र निबद्ध है। बहुत समय तक मध्यम ग्राम को भी गांधार ग्राम के सदृश कल्पना और दुरूहता के आग्रह में उपेक्षित किया जा चुका था। 'गांधार ग्राम' की चर्चा भरत तथा भरत के मानने वालों ने नहीं की है जिसका आशय बाद के लोगों ने यह लगाया कि यह भी विशुद्ध कल्पना का ही रूप है। यह ध्यान में रखने की बात है कि आचार्य भरत जिस प्रयोजन से नाट्यशास्त्र लिख रहे थे, वहां नाट्य, संगीत एवं नृत्य के तथ्यों को प्रयोगात्मकता की दृष्टि से भी विकसित करना था। अभिनवगुप्त ने गांधार ग्राम के इस परित्याग का कारण इस ग्राम की अतिमंद्रता, अतितारता और विस्वरता बताया है। स्वर और श्रुति के भेद को जानने वाले यह जानते हैं कि कोई भी अनुरणनात्मक ध्वनि चाहे वह रंजक हो अथवा अरंजक, श्रुति के अंतर्गत ही आएगी, जबकि स्वर की रंजकता ही उसका प्रमाण है। इस आधार पर गांधार ग्राम

में श्रुतियों एवं स्वरों का निर्धारण लोक में प्रयोग के स्तर पर थोड़ा कठिन तो है पर असंभव नहीं। यहां यह भी ध्यान में लाने की आवश्यकता है कि जिस नाट्य को आधार बनाकर आचार्य भरत ग्रामों की चर्चा कर रहे थे, उसका आधार इनके संप्रदाय में प्रचलित गान विधाओं की ध्वनियों का ग्राम के अंतर्गत वर्गीकरण से था। उस समय प्रचलित सभी ध्वनियां इन दो ग्रामों में व्यवस्थित हो चुकी थीं, फलतः गांधार ग्राम की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। आचार्य बृहस्पति ने इस ग्राम के ऋषभ और धैवत को भरत के ऋषभ धैवत से एक-एक श्रुति उतरा हुआ तथा इसके निषाद और गांधार भरत के निषाद-गांधार से एक-एक प्रमाण श्रुति चढ़ा हुआ बताया है।

यह ध्यान में रखने की बात है कि कश्मीर के इन महान आचार्यों अभिनवगुप्त एवं शारंगदेव के शास्त्रों के आधार पर ही यह गुत्थियां कालांतर में सुलझाई जा सकीं। मध्यम स्वर की 'मध्यम-अवस्था' का इन ग्रंथों के सहारे ही सूत्र निकल पाया। श्रुति-स्वर संवाद के गहनतम अर्थ भी इसी मध्यम-स्थिति के अर्थ को जानकर ही आसान हो पाए। कहा जाता है कि मध्यम की इस मध्यमत्व की स्थिति की समझ से ही ऋषि 'तुम्बुरु' को यह धैवत की ध्वनि उपध्वनि के रूप में सुनाई पड़ी जिसकी चर्चा 'संगीत रत्नाकर' में उपलब्ध है।

भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों के आलोक में कश्मीर की सांगीतिक परंपरा का अन्वेषण जिन आधारों पर किया जाना चाहिए उसे प्राथमिक स्तर पर वाद्यों, सांगीतिक विधाओं एवं उसमें प्रयुक्त विशेष शैली के आधारों तथा शास्त्रकारों, चिंतकों के योगदान पर दृष्टि डालने से तो प्राप्त होगा ही, पर उससे भी महत्त्वपूर्ण वह 'रूप', 'तत्त्व' जिसको अपरोक्ष रूप से शब्दों में नहीं, अपितु क्रियाओं में, प्रयोग में तंत्रित करने का काम हमारे पुरोधाओं विशेषकर कश्मीरी ऋषियों ने चुपचाप किया, उसे भी समझना होगा। आज इन पक्षों को समझना और उसकी खोज करना शोध की दृष्टि से हमारे दायित्वों को और भी बढ़ा देता है। आधुनिक समय के तथाकथित कलाकारों, बुद्धिजीवियों के सांगीतिक व्याख्याओं को देखने पर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने गंभीरता से अपनी परंपरा को पलटकर देखने की जहमत नहीं उठाई। भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की परीक्षा से लेकर बैंक मैनेजरों की भर्ती तक के पर्चों को देखने से तो इसी प्रमाण पर पहुंचा जा सकता है, जहां सितार से लेकर तबले तक और खयाल गायकी से लेकर ठुमरी गायकी तक सभी को या तो बाहर से आयातित घोषित कर दिया अथवा उसे किसी बड़े गायक की प्रतिभा के नाम समर्पित कर दिया गया। इस प्रसंग में आचार्य बृहस्पति की एक टिप्पणी उल्लेखनीय है, जहां उन्होंने कहा है कि—''आचार्य भरत ने श्रुति स्थापन हेतु जिस स्वर सारणा के प्रयोग हेतु आधार वाद्य की बात कही है, उसमें 'मत्तकोकिला' का स्थान सर्वोपरि है। यह वही वाद्य है जिसे नारद का वाद्य 'महती' वीणा के नाम से जाना जाता है। मुझे तुम्हारे युग के चित्रकारों पर दया आती है, जो मुंडित सिर पर एक खड़ी हुई शिखा बनाकर किसी बाबा जी के कंधे पर सितार रख देते हैं और नारद की तथाकथित आकृति बना डालते हैं।'' कश्मीर का यह लोक वाद्य हजारों सालों से, जिसे हम आज स्वरमंडल के आधार पर समझ सकते हैं, वही संतूर में कुछ बदले हुए रूप में देखा जा सकता है। भरत द्वारा निर्दिष्ट संगीत एवं दसवीं शती के आस-पास आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा व्याख्यायित वृत्ति की परंपरा को आचार्य शारंगदेव ने न केवल समझकर निर्दिष्ट किया अपितु विशुद्ध संगीतज्ञों-ग्रंथकारों (मतंग इत्यादि) द्वारा शास्त्रीय संगीत में चली आ रही नवीन सर्जनात्मक प्रक्रिया की विविध

पद्धतियों को संगृहीत व शास्त्रबद्ध किया। संगीत की दृष्टि से नाट्यशास्त्र ग्रंथ का मूल सिद्धांत विशेषतया नाट्य को आधार बनाए हुए संगीत की क्रियात्मकता और उसके अनुशीलन को केंद्र में रखे हुए था। वहीं आचार्य अभिनव, भरत मत के दुरूह हो गए लक्षणों को पुनर्स्थापित कर रहे थे। आचार्य अभिनवगुप्त (दशम शती ई.) के समय में यह समझा जाता था कि नाट्य-संबंधी प्रमुख संप्रदाय तीन हैं—ब्रह्ममत, सदा-शिव मत एवं भरत मत (इन्हें क्रमशः वैदिक परंपरा, आगम-पुराण-परंपरा एवं आर्ष परंपरा कहा जा सकता है)। पंडितों का एक वर्ग ऐसा मानता रहा कि भरत का नाट्यशास्त्र दरअसल तीन अलग-अलग संप्रदायों की विशेषताओं का संग्रह किया हुआ ग्रंथ मात्र है। आचार्य बृहस्पति ने अपने ग्रंथ 'भरत का रस सिद्धांत' में इस मान्यता को विभिन्न तर्कों के आधार पर खंडित किया है। अभिनवगुप्त ने भी इस आशय पर इन लोगों को 'नास्तिकघुर्य' कहा है। सामान्य रूप से ऐसा देखने में आता है कि एक विशेष वर्ग, जो पदार्थों को केंद्र मानकर अपनी वैज्ञानिकता का दंभ भरता आ रहा है, उनके समक्ष जब भी पदार्थों की सूक्ष्मतम अवस्था की बात को लाया जाता है तो वह इसे कल्पना कहकर उपहास का विषय बना डालते हैं। पंद्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन खिलजी (राज्यकाल 1469-1500 ई.) के दरबार में संगीतज्ञों की एक समिति ने भी आचार्य भरत से लेकर शारंगदेव तक की श्रुति-सिद्धांत पद्धति का उपहास किया था, जिसे 'संगीत रत्नाकर' के ही प्रसिद्ध टीकाकार विट्ठल के पिता ने बाईसों श्रुतियों का प्रदर्शन करके संतुष्ट किया था और एक सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं प्राप्त की थीं। अस्तु, भारतीय शास्त्रीय संगीत में कश्मीर उस गंगोत्री की तरह है, जहां से संगीत की गंगा प्रवाहित होती है। यह और बात है कि लोक में आकर उसमें अनेक धाराएं जुड़ती गईं, किंतु जैसे गंगा अपने आप में आध्यात्मिक देवापगा है, उसी तरह शास्त्रीय संगीत भी न केवल मन का रंजक है अपितु आत्मा का आनंद भी है, जो परम रस परमात्मा का बोध कराता है।

□

कश्मीरी नाटकों का इतिहास : एक विहंगम दृष्टि

शशिशेखर तोषखानी

पंडित नंद लाल कौल के पौराणिक विषय पर आधारित नाटक 'सतूच क'हव'ट' (सत्य की कसौटी) में पारसी रंगमंच के प्रभाव के अंतर्गत शिल्प, शैली और संवेदना का जो धरातल उभरता है, वह धीरे-धीरे बदलकर मुहीउद्दीन हाजिनी के 'ग्रीस्त सुंद गर' (किसान का घर) में कुछ अधिक यथार्थवादी रंग ग्रहण करता है, लेकिन 'ग्रीस्त सुंद गर' आधुनिक कश्मीरी नाटक का प्रारंभ नहीं माना जा सकता, जैसा कि शफी शौक और नाजी मुनव्वर ने कश्मीरी साहित्य के अपने इतिहास में सिद्ध करने को कोशिश की है। सतूच क'हव'ट' की शैली में लिखे नाटकों का सिलसिला बहुत देर तक चलता रहा। इनमें दीनानाथ द्वारा लिखे गए 'हब्बा खातून', 'अक, नन्बुन', 'सत्यवान सावित्री' तथा सर्वानंद भान का 'औलाद' आदि नाटक शामिल हैं। 1945 में 'इप्टा' (इंडियन पीपुल्स थियेटर एसोसिएशन) की स्थानीय शाखा स्थापित करने के प्रयत्नों के बीच कश्मीरी में मौलिक यथार्थवादी नाटकों की आवश्यकता अत्यंत तीव्रता से महसूस की गई। इस संदर्भ में प्रायः प्रेमनाथ परदेसी द्वारा लिखे नाटक 'बत् हर' (रोटी की लड़ाई) का नाम लिया जाता है जिसके गीत कथित रूप से महजूर ने लिखे थे। यह भी कहा जाता है कि खाद्य समस्या को लेकर लिखे गए इस नाटक को कश्मीर के तत्कालीन गवर्नर ने मंचित होने की अनुमति नहीं दी और लेखक को इसे नष्ट करना पड़ा, लेकिन लगता है कि इस नाटक के लिखे जाने और कागज से मंच पर उतरने के असफल प्रयास की कहानी सिर्फ एक कहानी है।

प्रेमनाथ परदेसी के नाटक

कश्मीर में कबाइली आक्रमण के बाद 1947-48 में एक ऐसा बदलाव आया जिसने यहां के राजनीतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक जीवन को एक नई गति प्रदान की। एक नए स्वर्ण-युग के स्वप्न देखे गए और भारतव्यापी प्रगतिवादी आंदोलन के अंतर्गत लेखन को उसे (स्वप्न) साकार करने का उपकरण माना गया। प्रगतिवादी विचार-दृष्टि के प्रक्षेप के लिए यहां 'कौमी-कल्चरल महाज' नाम की संस्था की स्थापना हुई, जो बाद में 'कल्चरल कॉन्फ्रेंस' और 'कल्चरल कांग्रेस' के नाम से सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रेरित-प्रभावित करती रही। नाटक को अपने वैचारिक आग्रहों के प्रचार का एक सशक्त माध्यम मानते हुए इस संस्था ने कश्मीर में एक नया रंगमंच शुरू किया जिसके अंतर्गत परदेसी का ही नाटक 'शहीद शेरवानी' 1949 में व्यापक

स्तर पर मंचित हुआ। कबाइली आक्रमण का विरोध करते हुए नृशंसता से मारे गए मकबूल शेरवानी के जीवन पर केंद्रित इस नाटक में हिंदू-मुस्लिम संबंधों का आदर्श रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न है। नाटक का स्पष्ट प्रचारवादी तेवर सामंती शासन को समाप्त करके सत्ता संभालने वाली लोक सरकार की स्थिति को सुदृढ़ करने के प्रयोजन के साथ जुड़ा है। यह नाटक कई देहातों में भी खेला गया और वहां के दर्शकों में इसको खासी लोकप्रियता मिली, पर जहां तक नाटकीय शिल्प-संरचना का संबंध है, 'शहीद-शेरवानी' एक बेहद शिथिल नाटक था। वस्तु-संयोजना की दृष्टि से भी यह एकदम सतही रचना थी। परदेसी के और दो नाटक 'डालर साहब' और 'त्रे बटा चोर' (तीन बटा चार) पूरे विचारधारात्मक जोश के साथ जगह-जगह खेले गए। इनकी सीधी प्रचारात्मकता इनके साहित्यिक महत्त्व को बिल्कुल नगण्य बना देती है। पहले नाटक में 'डालर साम्राज्य' की साजिश और उसके राजनीतिक उद्देश्य को नंगा किया गया है। दूसरे में किसानों में जमीन पर अपने अधिकार के प्रति चेतना फैलाने की कोशिश की गई है। भूमि-सुधारों को विषय बनाकर लिखे गए इस नाटक का संदेश है कि किसान फसल के तीन चौथाई भाग का मालिक है। परदेसी के ये तीनों नाटक प्रकाशित नहीं हुए। इन्हें कश्मीरी नाटक साहित्य के अंतर्गत नहीं बल्कि कश्मीरी रंगमंच के संदर्भ में देखा जाता है।

गीत-नाट्य

अपनी अत्यंत धीमी यात्रा में कश्मीरी नाटक 1953 में एक नए मोड़ पर आ पहुंचा जब दीनानाथ नादिम ने 'बोम्बुर यम्ब रजल' (भंवरा और नरगिस) लिखकर गीत-नाट्यों का एक सिलसिला शुरू किया। इन गीत-नाट्यों में प्रायः स्थानीय लोक-कथा अथवा लोक-विश्वासों का प्रगतिवादी दौर की राजनीतिक मान्यताओं के प्रतिपादन के लिए नारेबाजी के स्तर पर प्रयोग किया गया है। 'बोम्बुर यम्ब रजल' में शांति के मसले को रूपकबद्ध किया गया है और यह दिखाया गया है कि शांति की युद्ध पर, सत्य की असत्य पर और न्याय की अन्याय पर सदा विजय होती है। युद्धकामी और शांति-समर्थक शक्तियों की उसमें एक विशिष्ट दृष्टिकोण से व्याख्या की गई है। जिससे कश्मीर की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति के संदर्भ में पक्षधरता की एक स्पष्ट भंगिमा प्रकट होती है। भौंरे और नरगिस के विरुद्ध तूफान और पतझड़ के संघर्ष का गुलालाला तथा अन्य फूलों की सहायता से विफल हो जाना और नव-वसंत के आगमन पर उनके मिलन का जो दृश्य इस गीत-नाट्य में प्रस्तुत किया गया है, वह अपनी समस्त प्रतीकात्मकता के बावजूद एक अत्यंत स्पष्ट सरलीकरण मात्र है। फिर भी संगीतात्मकता और गान के तत्त्व 'बोम्बुर यम्ब रजल' में काफी सफलता से विन्यस्त हैं और इसे एक विशिष्ट कृति बना देते हैं। पूर्व नियोजित ही सही, प्रतीक पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया और घात-प्रतिघात के कारण नाटकीयता का एक धरातल भी उसमें उभरता है। 'बोम्बुर यम्ब रजल' कश्मीरी में लिखा गया पहला गीत-नाट्य है। मंच पर इसका तेरह बार प्रभावी प्रस्तुतीकरण किया जा चुका है। इनमें रूसी नेताओं, बुल्गानिन और ख्रुश्चेव के कश्मीर आगमन के अवसर पर किया गया प्रस्तुतीकरण भी शामिल है।

1956 में दीनानाथ नादिम ने नूर मुहम्मद रोशन के सहयोग से एक और गीत-नाट्य 'हीमाल-ना गराय' (हीमाल और नागराय) लिखा। यह गीत-नाट्य कश्मीर की एक प्रसिद्ध लोक-कथा पर आधारित है। शिल्प और गठन की दृष्टि से यह गीत-नाट्य उतना ही कमजोर है, जितना कि

गीतात्मकता की दृष्टि से सशक्त है। गीत-नाट्य, छाया-नाटक और मंचीय नाटक—इन तीनों विधाओं की तकनीक के एक साथ प्रयोग ने इसे असंतुलित बना दिया है। इसके अतिरिक्त 'नीकी बंदी' (नेकी-बदी) नाम का एक अन्य गीत-नाट्य नादिम ने लिखा, जिसका कथ्य नेकी की बदी पर विजय और मनुष्य और मनुष्य के बीच स्नेहपूर्ण संबंधों की स्थापना है।

नादिम ने अपने गीत-नाट्यों का सिलसिला 'व्यथ' (वितस्ता), 'सफरत, शेहंजार' (सफर और छाया) तथा 'शिहिल्य कुल' (छायादार वृक्ष) लिखकर आगे भी जारी रखा। इनमें 'व्यथ' (वितस्ता) विशेष रूप से उल्लेखनीय माना जा सकता है। इस गीत-नाट्य में, जो 1970 में लिखा गया, नादिम ने वितस्ता नदी को शांति व सौंदर्य और बंधुत्व का प्रतिनिधित्व करनेवाली कश्मीर की सांस्कृतिक परंपरा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। कश्मीर को एक भूखंड नहीं, एक विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक बनाकर नादिम ने इस गीत-नाट्य में वह गहराई लाने की कोशिश की है, जो उनके पहले के गीत-नाट्यों में नहीं मिलती। संगीत, नृत्य, गान और नाटक का रंगमय परिदृश्य इसमें एक विशिष्ट प्रभाव के साथ प्रस्तुत किया गया है। तकनीक की दृष्टि से यह पूर्वी और पश्चिमी शैली दोनों की विशेषता से युक्त है।

गीत-नाट्य लिखने का प्रयोग अमीन कामिल और रहमान राही ने भी किया। कामिल ने एक कश्मीरी लोक-कथा पर आधारित 'बो'म्बुर-लोलरे' नाम के गीत-नाट्य की रचना की जिसमें रोमानी काव्यमयता ने नाटकीय स्थिति को उभरने का कोई अवसर नहीं दिया है। शायरी भी अनेक स्थानों पर सतही और सपाट है।

राही के गीत-नाट्य 'ये' लि मोत लोलस फो 'र' (जब मौत ने प्रेम को लूटा) में भी विषय और संवेदना का धरातल रोमानी है। गोर्की की कविता पर आधारित यह रचना राजनीतिक दृष्टिकोण के सीमित दायरे से मुक्त है, लेकिन नाटकीय संवेदना की तीव्रता का कोई एहसास नहीं दे पाती। वस्तुतः इन गीत-नाट्यों का कश्मीरी नाटक के विकास के संदर्भ में उल्लेख केवल ऐतिहासिक है और कश्मीर में रंगमंच के अभियान से संबंधित है।

कश्मीर उत्सव और अख्तर मुहीउद्दीन के नाट्य-प्रयास

गीत-नाट्यों की यह बाढ़ मंच के लिए उपयुक्त नाट्य-आलेखों के उपलब्ध न होने के कारण ही उमड़ आई थी। तत्कालीन सरकार द्वारा जश्ने-कश्मीर अथवा कश्मीर-उत्सव के आयोजन से उस दौर के कुछेक रंगमंचीय नाटक भी कश्मीर-उत्सव की ही उपज कहे जा सकते हैं। इनमें अख्तर मुहीउद्दीन के नाटक 'शीश-त-सं' गिस्तान' (शीशा और पत्थर) तथा 'नस्ति हुंद सवाल' (नाक का सवाल) इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं कि इनमें यथार्थ के अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय धरातल का स्पर्श है। 'नस्ति हुंद सवाल' (नाक का सवाल) एक यूनानी मिथक पर आधारित प्रतीकात्मक नाटक है। इसकी गति बहुत धीमी है और चरित्रांकन सपाट और शिथिल है। अख्तर मुहीउद्दीन ने अपनी ही एक कहानी 'आपन होर जंग' (आपा ने जंग हारी) का नाट्य रूपांतरण भी किया। यह एक प्रहसन था जिसमें मध्यवर्गीय परिवेश में पली-बढ़ी स्त्रियों के आचरण पर व्यंग्य है।

प्रोत्साहन के सरकारी प्रयास

इससे पूर्व 1955 में राज्य सरकार द्वारा बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए शुरू किए गए अभियान के अंतर्गत अली मोहम्मद लोन का नाटक 'विज छ सा'न्या'(बेला हमारी है) और पुष्कर

भान के 'यातन या तडाख' मंचित हुए, जो बेहद मामूली स्तर के हैं।

इस बीच 1960 में रवींद्र शतवार्षिकी के अवसर पर एक प्रेक्षागृह टैगोर हॉल की स्थापना हुई जिससे कश्मीर में नाटकों के मंचन और प्रस्तुतीकरण के लिए रंगकर्मियों को विशेष सुविधा प्राप्त हुई। राज्य की सांस्कृतिक अकादमी ने भी वार्षिक नाट्योत्सवों तथा नाट्य-आलेख प्रतियोगिताओं का आयोजन करके कश्मीरी लेखकों को मंच के लिए नाटक रचने का प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया। इससे कश्मीरी नाटक को गति अवश्य मिली किंतु परिणाम बहुत अधिक प्रेरणाजनक नहीं रहा। हद से हद यही कहा जा सकता है कि सरकार की ओर से किए गए इन प्रयत्नों से नाटक के क्षेत्र में रचनाशीलता के लिए एक प्रेरक वातावरण तैयार हुआ।

अकादमी के नाट्योत्सव और रहबर के नाटक

अकादमी के नाट्योत्सवों के लिए लिखने वालों में अवतार कृष्ण रहबर ने नाटक की दिशा में अपनी रचनात्मक क्षमता का परिचय दिया। उनके 'तलाश' बछुसचर' (मैं एक चोर हूँ) 'बो' ल ह 'रिश' (उलझाव) और 'अवलाद' (औलाद) की मंच पर सफलता यद्यपि उनकी साहित्यिक श्रेष्ठता का प्रमाण नहीं मानी जा सकती, इन कृतियों ने आधुनिक यथार्थवादी नाट्य-शिल्प के अनुरूप रचना-प्रवृत्ति को प्रेरित करने में एक भूमिका जरूर निभाई है। गठन और संरचना की दृष्टि से ये नाटक पूर्ववर्ती कश्मीरी नाटकों से अलग और विशिष्ट हैं। रहबर का एक ऐतिहासिक नाटक 'बडशाह' भी मंचित हुआ, लेकिन बिखराव के कारण वह अधिक प्रभावकारी नहीं रहा। रहबर के ये नाटक अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं, इस कारण विस्तार से उनकी परख प्रस्तुत नहीं की जा सकती। फिर भी इनमें 'तलाश' का कथ्य और शिल्प की दृष्टि से एक महत्त्व है। इस नाटक में आदमी के अमानवीकरण को निर्ममता से उघाड़ने की कोशिश की गई है।

कुछ अप्रकाशित किंतु सफल मंचीय नाटक

रहबर ही नहीं अन्य कई लेखकों के नाटकों का मंचित होकर भी अप्रकाशित रहना उन्हीं तक सीमित एक घटना न होकर कश्मीरी नाटक के संपूर्ण परिदृश्य का एक दिलचस्प पक्ष है। बहुत कम कश्मीरी नाट्य आलेख ऐसे भी हैं, जो मंचित होने के साथ प्रकाशित भी हुए हैं। इनमें से अधिकांश यद्यपि चर्चित होने के योग्य नहीं, कुछेक नाटक ऐसे अवश्य हैं जिनका अपना महत्त्व है। जैसे अली मुहम्मद लोन का नाटक 'तकदीर साज', मोतीलाल क्यमू का 'नगर बौ'दा'स्य' (उदास नगर) और हरिकृष्ण कौल का 'नाटक क'रिव बन्द' (नाटक बंद करो)। लोन के 'तकदीर साज' में आज की राजनीतिक पैंतरेबाजी और जल का मुखौटा उतारने की कोशिश है। जनता के भाग्य विधाता बन बैठे समाज के तथाकथित प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सिद्धांतहीनता पर इस नाटक में चोट की गई है। मोतीलाल क्यमू का 'नगर बौ'दा'स्य' एक ऐतिहासिक नाटक है, लेकिन इसमें इतिहास मानवीय संबंधों के तनावों को प्रस्तुत करने के लिए एक पार्श्वभूमि मात्र है। हरिकृष्ण कौल ने राम-कथा में हनुमान के चरित्र को वर्तमान संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए एक नया आयाम प्रदान किया है और उसके माध्यम से हर अन्याय और असत्य को निर्विरोध सहने वाले आज के आम आदमी के अपनी स्थिति के प्रति विद्रोह और मोहभंग को उद्घाटित किया है। तीनों नाटकों में वस्तु और शिल्प की प्रयोगात्मकता तथा भंगिमाएं विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। इनका अब तक प्रकाशित न हो पाना भी कश्मीरी नाट्य साहित्य की स्थिति की ओर एक तरह का इंगित है।

रेडियो नाटक

कश्मीरी में नाटक मंच से अधिक प्रसारण माध्यम का आश्रय लेकर विकसित हुआ है। पिछले तीन-चार दशकों में कश्मीरी में रेडियो-नाट्य विधा इस तीव्रता से विकसित हुई है कि कश्मीरी नाटक की कोई भी चर्चा उसे केंद्र में रखे बिना करना असंभव है। साहित्य के इतिहास में उनका उल्लेख कहां तर्कसंगत है, यह कहना मुश्किल है, पर रेडियो की तृप्ति के लिए लिखे गए सैकड़ों नाटकों में से कुछेक ऐसे अवश्य हैं, जो अपनी रचनाशीलता के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें अली मुहम्मद लोन के 'म्यानि जिगरिकि दादि वौथ' (ओ मेरे दिल के दर्द जाग), अख्तर मुहीउद्दीन के 'आदम छु अजब जाथ' (एक अजब जीव है आदमी), शंकर रैणा के 'हरुद' (सतझड़), हरिकृष्ण कौल के 'ये'लि बतन छु खुर इवान' (जब राहें उलझ जाती हैं) और शांत के 'येलि पन रोव' (खोया हुआ सूत्र) में कश्मीरी में नाट्य-रचना की संभावना और उपलब्धि का एक पूरा क्षितिज उभरता है। सोमनाथ जुत्शी और वंशी निर्दोष के भी कुछ ऐसे नाटक रेडियो से प्रसारित हुए हैं, जो उल्लेखनीय माने जा सकते हैं। इनमें जुत्शी का 'विजिवाब' और निर्दोष का 'दा'न थ'र' (अनार का गाछ) काफी चर्चित हुए हैं। अनेक नाटक राष्ट्रीय प्रसारणों में भी स्थान पा चुके हैं, जिनमें अली मुहम्मद लोन का 'सुय्या' और मोतीलाल क्यमू का 'लल ब' द्रायस लोलरे' पहले रेडियो पर प्रसारित हुए हैं और बाद में मंच पर प्रस्तुत किए गए।

पुष्कर भान का 'मचामा' प्रहसन

लोकप्रियता को अगर कसौटी माना जाए तो पुष्कर भान की 'मचामा' शृंखला का कश्मीरी रेडियो नाटकों में विशेष स्थान माना जा सकता है। इसका कारण संभवतः इसकी रेडियो प्रस्तुति में भाग लेने वाले कलाकारों के अभिनय की निजी विशेषताएं हो सकती हैं। इस नाट्य-शृंखला को रंगमंचीय नाटकों का भी रूप दिया गया और इसका पुस्तक के रूप में प्रकाशन भी किया गया, जिस पर भान को साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। इन नाटकों का केंद्रीय पात्र मचामा एक ऐसा व्यक्ति है जिससे कश्मीर के आम लोगों ने अपना तादात्म्य-सा अनुभव किया, क्योंकि उसकी कमजोरियों और आकांक्षाओं में उन्होंने अपने आप को देखा। मचामा स्वयं लेखक के शब्दों में "लाखों का कारोबार करने वाला अथवा नैतिकता की अपने मतलब से व्याख्या करने वाला नायक नहीं, बल्कि वह ऐसा नायक है जो अपने आप को और अपने परिवार को खुश देखना चाहता है। आकाश छूने वाली अट्टालिकाओं के अंदर जिसका दम घुटता है, जिसने फाके सहे हैं, जिसकी बीवी कार्तिक के चांद-सी पीली पड़ी है। मेरा नायक अपने मां-बाप की अंतिम आशा है। मेरे नायक को भी अपने जीवन में एक छोटे से बंगले की चाह है, वह अच्छे कपड़े पहनना चाहता है। कब तक वह धन वालों के चेहरे की ओर देखता रहेगा...।''

'मचामा' प्रहसन को कश्मीरी हास्य और व्यंग्य साहित्य की विशिष्ट देन कहना प्रशंसा का अतिरेक है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हास्य और व्यंग्य के बारे में इसके प्रशंसकों की परिकल्पना क्या है। स्वयं भान ने हास्य को कभी खाने का जायका बढ़ाने वाली चटनी कहा है तो कभी एक ऐसा तीर जिसकी चुभन आदमी कभी भूल ही नहीं सकता। जहां तक उनके प्रहसन का संबंध है, उसके प्रस्तुतीकरण का स्तर चाहे जो रहा हो, उसके हास्य का स्तर केले के छिलके पर फिसलने पर हंसनेवाले का-सा है—सामान्य और कहीं-कहीं बहुत भोंड़ा। उर्दू अथवा अंग्रेजी शब्दों के

गलत उच्चारण से पैदा हास्य का स्तर क्या हो सकता है, इस पर टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। जीवन की विसंगतियों और विद्रूपताओं को नंगा करने वाले व्यंग्य का रूप इसमें कहीं उपलब्ध नहीं होता। 'मचामा' हद से हद एक कैरिकेचर है जिसकी सृष्टि करते हुए लेखक की दृष्टि मनोरंजन की अवधारणा से आगे नहीं गई है। प्राणकिशोर के शब्दों में वह ''हंस-हंसकर लोट-पोट कर देने वाला पात्र है।'' 'मचामा' की प्रशंसा में लिखे गए शब्द अनजाने में ही इसके बारे में सब कुछ कह गए हैं। इसका उद्देश्य हल्की गुदगुदाहट है, जीवन की विद्रूपताओं को उघाड़कर तिलमिलाहट पैदा करना नहीं।

मोतीलाल क्यमू की रंग-यात्रा

कश्मीरी नाटक को समकालीन जीवन की वास्तविकता से जोड़कर उसे नए और सार्थक शिल्प प्रयोगों में प्रस्तुत करने में मोतीलाल क्यमू (जन्म 1933) विशेष रूप से सफल रहे हैं। क्यमू आधुनिक एब्सर्ड नाटक तथा कश्मीरी लोक-नाट्य रूप 'भांड पा'थर' के रंग तत्त्वों के अनोखे समन्वय द्वारा अपने आस-पास के जीवन की बेहूदगियों को नाटक में पकड़कर अपनी रचनाशीलता का एक प्रभावशाली आयाम उद्घाटित करते हैं। वस्तुतः कश्मीरी रंगमंच को अपने विशिष्ट रंग-प्रयोगों द्वारा गति देने में क्यमू की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही है। आधुनिक पश्चिमी नाटक और समकालीन भारतीय लोक तथा साहित्यिक नाटकों से भी वे बखूबी परिचित हैं और अपने शिल्प में आवश्यकतानुसार उनके तत्त्वों को विन्यस्त करते हैं।

□

लोक-वार्ता में होती है जनजीवन की सांस्कृतिक धुरी

वरिष्ठ कश्मीरी नाटककार पद्मश्री मोती लाल क्यमू से अग्निशेखर की बातचीत

पारंपरिक कश्मीरी लोक नाट्य-रूप 'भांड पांथुर' और 'एब्सर्ड नाटक' के मेल से एक नई रंगमंचीय शैली अथवा दृष्टि के प्रस्तोता और प्रेरक मोतीलाल क्यमू सर्वाधिक सफल और लोकप्रिय रंगपुरुष हैं। अपने समय और समाज में व्याप्त अनेकमुखी समस्याओं को केंद्र में रखकर उन्होंने मिथक, इतिहास, लोक-कथाओं के ताने-बाने से युगीन चेतना और परिवेश को अपने नाटकों में एक प्रश्नाकुलता के साथ उद्घाटित किया है। कश्मीर की लोक नाट्य परंपरा में सर्वाधिक लोकप्रिय विधा 'भांड पांथुर' को साठ के दशक में दम तोड़ने से बचाने, बनाए रखने के लिए वातावरण निभाने का श्रेय उन्हें जाता है।

अग्निशेखर : क्यमू साहब, देश की आजादी के दो-सवा दो महीने के बाद कश्मीर के भारत में विलय और पाकिस्तानी कबाइली-आक्रमण के परिणामस्वरूप जम्मू-कश्मीर के लोगों के राजनीतिक, सामाजिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक जीवन में लगभग वैसे ही बदलाव आए, जो देश विभाजन से पैदा हुए थे। कश्मीर बंट गया, जम्मू बंट गया, विस्थापन हुए, हिंसा, आतंक, आगजनी, लूटपाट, नरसंहार हुए। फिर एक ऐसा दौर आया जिसमें तमाम कवि, लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी, राजनेता सक्रिय हुए। एक 'यूटोपिया' सामने था, 'कौमी कल्चरल महाज' बना, जो 'कल्चरल कांग्रेस' में बदला। ऐसे में आप 1964 में बड़ौदा यूनिवर्सिटी से नाट्य-प्रशिक्षण में स्पेशलाइजेशन करके आते हैं तो अपने नाट्य कर्म में लग जाने के कश्मीरी लोक नाट्य रूप 'भांड पांथुर' पर ही अपना ध्यान क्यों केंद्रित किया?

मोतीलाल क्यमू : संसार की किसी भी संस्कृति की तरह कश्मीर के जन-जीवन की सांस्कृतिक धुरी उसकी लोक-वार्ता में देखी जा सकती है। उसकी धड़कनें आप इसमें सुन सकते हैं, सांसें गिन सकते हैं, चूंकि नाटक और रंगमंच से मैं बचपन से ही लगाव महसूस करता रहा हूं, जिस दौर की तरफ आप संकेत कर रहे हैं, यानी 1947-48 के बाद आए साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक बदलाव के दिनों में, मेरे बड़ौदा जाने और वहां से लौटने तक के कालखंड में कश्मीरी रंगमंच और नाट्य लेखन में, इप्टा की स्थानीय शाखा की 1945 में

स्थापना के आसपास, एक गतिविधि परवान चढ़ रही थी। नंदलाल कौल, दीनानाथ, सर्वानंद कौल, प्रेमनाथ परदेसी के नाटक चाव से खेले जा रहे थे। दीनानाथ नादिम के गीत-नाट्य 'बोंबुर-यंबरजल' (भंवरा और नरगिस) जैसी रचनाएं सराही जा रही थीं। इनमें से अधिकांश नाटकों में मैंने भी अभिनय किया था, नृत्य किए थे; कोरियोग्राफी की थी, फिर भी परिणाम बहुत ज्यादा प्रेरणाजनक नहीं था। वातावरण जरूर प्रेरक बनता जा रहा था, ऐसे में मेरा ध्यान 'भांड पांथुर' की तरफ गया। इसमें अपार संभावनाएं थीं।

अग्निशेखर : आजादी के बाद के शुरुआती वर्षों में आए जिस बदलाव की हम बात कर रहे हैं, उस दौर में एक समाजवादी समाज की स्थापना का स्वप्न देखा जा रहा था। भूमि सुधार कानून लागू हुआ और लेखकों, कवियों, कलाकारों, बुद्धिजीवियों में आसन्न सर्वहारा क्रांति का भ्रम पैदा हुआ। सभी में इस आधुनिक स्वप्न को लेकर बहुत उत्साह था। उस दौर के कश्मीर में आपने 'भांड पांथुर' जैसे पारंपरिक लोक नाट्य में इसी स्वप्न को देखा तो इसकी क्या वजह थी?

मोतीलाल क्यमू : वहां उन दिनों मुहम्मद सुब्हान भगत-सा प्रतिनिधि लोक कलाकार मौजूद था। अकिनगाम में सुब्हान भगत और उनके साथियों में उदासीनता जरूर थी, पर वे लोग कौंध बचाए हुए थे। वहां संभावना थी, उत्साह जगाया जा सकता था, और जाग भी गया। 1972 तक सुब्हान भगत मेरे साहचर्य में खूब निखरा, उसके नाटक आए। खूब एक्सपोजर दिया। आधुनिक नाट्य शिल्प के उसने भी प्रयोग किए। देखा-देखी में 'भांड पांथुर' की नए सिरे से कश्मीर घाटी में एक हवा बनी। नौ-दस तरह के नाटक इस लोक नाट्य रूप में खेले जाने लगे, जैसे—'वातल पांथुर' (भंगियों का नाटक), 'गोसांत्य पांथुर' (साधुओं का नाटक), 'राजु पांथुर' (राजाओं के नाटक), 'हांथ पांथुर'(मांझियों के नाटक), 'आरमेन्य पांथुर' (सब्जी बेचने वालियों के नाटक), 'शिकारगाह पांथुर', 'ऊंटवाल्य पांथुर' (ऊंट वालों के नाटक), 'बट्ट पांथुर/बुहुर्य पांथुर' (दरद जाति के लोगों के नाटक) आदि। इस तरह भांड पांथुर को जीवनदान मैंने दिया।

अग्निशेखर : कश्मीरी समाज में अगर 'भांड पांथुर' जैसा सशक्त लोक नाट्य रूप आज तक बचा हुआ है, तो बाकी कलाएं, जिन्हें हम 'क्लासिकल' कहते हैं, वे क्यों नहीं हैं हमारे पास? या कि वो थीं ही नहीं?

मोतीलाल क्यमू : शास्त्रीय कलाएं क्यों नहीं थीं हमारे पास! कल्हण की 'राजतरंगिणी' खोलिए या उससे भी पूर्ववर्ती 'नीलमत पुराण' में देखिए, नृत्य, संगीत, नाट्य गतिविधियों से हमारी आंखें खुलती हैं। आचार्य अभिनवगुप्त की 'अभिनव भारती' का ही संदर्भ देखें। श्रीनगर के पास हरवन के पुरातत्त्व अवशेषों में नर्तकियों को देखिए। भांड किसकी खिल्ली नहीं उड़ाते रहे हैं—राजाओं से लेकर राजकुमारों तक! चौदहवीं शताब्दी तक ललद्यद और नुंदऋषि के काव्य में भी रंग-प्रसंग मिलते हैं। फिर आप स्वयं अच्छी तरह जानते हैं कि यहां मध्ययुगीन इतिहास की बर्बरताओं की भेंट कितना कुछ चढ़ा है। सुल्तान जैनुल आब्दीन का शासनकाल एक अपवाद है, जिनमें कलाएं फली-फूलीं।

अग्निशेखर : देखा जाए तो धर्म-आधारित अलगाव के नाम पर कश्मीर घाटी में हिंसा,

घृणा, आतंक, विध्वंस की, जो पाकिस्तान-समर्थित आंधी चली, उसने कश्मीर की संस्कृति, उसके सामाजिक ताने-बाने को तहस-नहस कर डाला। लाखों लोगों का जबरिया विस्थापन हुआ। सांस्कृतिक गतिविधियां प्रतिबंधित हुईं। ऐसे में 'भांड पांथुर' जैसा लोक नाट्य रूप कैसे अपने को बनाए और बचाए रख सका?

मोतीलाल क्यमू : आतंकवाद के शुरुआती दौर में 1990 से 1996 तक कश्मीर घाटी में 'भांड पांथुर' सहित कोई भी सांस्कृतिक गतिविधि नहीं रही। प्रतिबंध था। दहशत थी। मौत का डर था। धमकियां थीं। श्रीनगर में टैगोर हॉल पर ग्रेनेड से हमले हुए, राज्य की अकादमी की लालमंडी स्थित इमारत जला दी गई, पांडुलिपियां जलीं। आर्टिफैक्ट्स गायब हुए। कलाकार धमकाए गए। कुछ मार भी डाले गए। मैंने सुना यह भी है कि मुहम्मद सुब्हान भगत के लंबे बाल काटे गए। सब कुछ ठप हो गया। मुहम्मद सुब्हान भगत इसी गम से बीमार रहा और चल बसा, लेकिन मैंने निर्वासन में रहते हुए भी वाथुरा, बुमई के भांडों से संपर्क स्थापित किया, फोन किए, पत्र लिखे। अकिनगाम के भांडों से ज्यादा संवाद नहीं बन पाया। दहशत थी। मैंने 1998 में एम. के. रैणा से कहा कि मेरे नाटक 'भांड दुहाई' में काम करने के लिए कश्मीर से भांडों को किसी तरह बुलाओ। वे तड़प रहे थे अभिनय करने के लिए। धीरे-धीरे गांवों में पारंपरिक मेलों का आयोजन शुरू हुआ। मैं 1999 में पहली बार कश्मीर गया। संपर्क स्थापित किया। जुलाई 2001 और अगस्त 2004 में दो कार्यशालाएं कर दो नाटक खेले। मौत का डर भी था और रंगमंच का जुनून भी। अब तो रंगोत्सव भी हो रहे हैं। एम. के. रैणा ने पिछले वर्ष दिल्ली से वहां जाकर मेरा नाटक 'छाय' (छाया) भी खेला। आजकल भी कुकरनाग में भांडों के साथ काम कर रहे हैं।

अग्निशेखर : कश्मीर से विस्थापन के बाद इधर के वर्षों में आपने एक नाटककार के रूप में, रंगकर्मी के रूप में क्या किया? कोई हस्तक्षेप किया?

मोतीलाल क्यमू : राजनीतिक कारणों से हुए जबरिया विस्थापन की पीड़ा काफी दारुण होती है। मैंने पहले भी कहा है कि मैं शरणार्थी जीवन में हंसना ही भूल गया। जिंदगी की बेहूदगियों पर हंसने और हंसाने वाला खुद हंसना भूल गया। मैंने कुछ 'वर्कशॉप्स' किए। केंद्रों में गया। विषम परिस्थितियों में अपना जीवन, कहना चाहिए जानवरों की जिंदगी जीने को अभिशप्त लोग सड़ रहे थे। एक दिन मैं एक कैंप में 'वर्कशॉप' कर रहा था कि एक विस्थापित बच्चा दौड़ता हुआ आकर मेरे सामने बैठे युवा कलाकारों को पेयजल का टैंकर पहुंचने की सूचना दे गया। सुनते ही सब कलाकार अपना अपना 'रोल' वहीं छोड़कर अपने तंबुओं की तरफ भागे। उनके रोजमर्रा के जीवन में मेरे नाटक से ज्यादा जरूरी पीने का पानी था। बाद में मैंने उनकी इन्हीं दारुण स्थितियों पर नाटक तैयार किया। कई नाटक खेले...लेकिन वो बात कहां जो अपनी मातृभूमि में थी!

अग्निशेखर : मैं दरअसल हिंसा, आतंक और विस्थापन के खिलाफ साहित्यिक-सांस्कृतिक कर्मियों के हस्तक्षेप की तरफ आपका ध्यान आकर्षित कर रहा था। ऐसा क्यों है कि जम्मू-कश्मीर के परिदृश्य में इसकी कमी रही? या ऐसे कहूं, अभी इंग्लैंड से प्रसिद्ध रंगकर्मी जोनाथन चेडविक

जम्मू-कश्मीर आए और यहां आतंकवाद, हिंसा, विस्थापन से प्रभावित लोगों से मिले। वे यहां रंगमंच की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण करना चाहते हैं। हमारे यहां के भारतीय संस्कृतिकर्मी इस विभीषिका से क्यों प्रभावित नहीं हुए?

मोतीलाल क्यमू : क्या कहलवाना चाहते हो मुझसे! मसलहते हैं...पूर्वाग्रह हैं...दुराग्रह हैं...पैसा है...खतरे हैं...। अब हमारे अपने ही अधिकांश कश्मीरी कवियों को लो, वे क्यों लीला-काव्य लिख रहे हैं? समस्या के कारक तत्त्वों से बचना चाहते हैं?...कुछ कवि इसलिए भी खुलकर नहीं लिखना चाहते, उन्हें छवि के बिगड़ जाने का खतरा लगता है, साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलने की आशा से हाथ धो बैठने का भय है...वो पारंपरिक सह-अस्तित्व, वो धर्मनिरपेक्ष भावना आज कहां है, कोई बेबाक होने का जोखिम क्यों उठाए!...औरों की बात क्यों करें!...जब तव्वकु ही उठ गई गालिब, क्यों किसी का गिला करे कोई...?

□

हर तरह से हारा हुआ है कश्मीरी हिंदू

वरिष्ठ इतिहासकार पद्मश्री के.एन. पंडित से अमित कुमार विश्वास की बातचीत

फारसी विद्वान, लेखक, अनुवादक और इतिहासकार के रूप में अंतरराष्ट्रीय पहचान रखने वाले प्रो. के.एन. पंडित 'माई ताजिक फ्रेंड्स', 'ईरान और सेंट्रल एशिया' और 'बहारिस्तान-ए-शाही' जैसी प्रसिद्ध किताबों के लेखक हैं। वे इंडो-ताजिक संस्कृति के दूत हैं। प्रो. पंडित जम्मू और कश्मीर विश्वविद्यालय में फारसी विभाग और मध्य एशियाई अध्ययन केंद्र में प्रोफेसर रहे। प्रस्तुत है उनसे हुई बातचीत के प्रमुख अंश—

क्या कारण है कि 1998 में 'फ्रेंड्स ऑफ कश्मीर' को भंग कर एशियन-यूरोपियन ह्यूमन राइट्स फोरम नामक संस्था बनाने की जरूरत आ पड़ी?

सन् 1990 में घाटी से हमारे पलायन के बाद, मुझे लगा कि हमें एक स्वयंसेवी संस्था की आवश्यकता है, जो विस्थापित समुदाय के सामने आने वाली कई समस्याओं को उजागर करे। हमने 'फ्रेंड्स ऑफ कश्मीर' नाम से एक स्वयंसेवी संस्था का गठन किया। हमने इसी नाम से एक पत्रिका भी निकाली, जिसमें हमने कश्मीर के नरसंहार और जातीय सफाई से संबंधित लेख और सामग्री प्रकाशित की।

मैंने जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (अब परिषद्) में भाग लिया, जहां कश्मीर-उग्रवाद और कश्मीरी पंडितों के पलायन पर हस्तक्षेप किया। मुझे पता चला कि जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र संघ में मानव अधिकार आयोग में नियमित रूप से हस्तक्षेप करने के लिए हमें संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् (ECOSOC) के स्तर का अपना स्वयं का स्वयंसेवी संगठन होना चाहिए। मैं इस विषय पर 1998 तक सोचता रहा। फिर मैंने अपना एनजीओ भारत सरकार के नॉन प्रॉफिटेबल सोसाइटीज के रजिस्ट्रार के नई दिल्ली के कार्यालय में पंजीकृत करवाने का निर्णय लिया। जब मैंने इस प्रक्रिया को शुरू किया तो मुझे पता चला कि 'फ्रेंड्स ऑफ कश्मीर' नाम का एक एनजीओ पहले से ही लंदन में मौजूद है और इसकी शाखा उप-महाद्वीप में कहीं है। तब यह आवश्यक लगा कि मैं इस नाम को छोड़ दूं और इस एनजीओ का कोई नया नाम रखूं। एक नए नाम की तलाश करते समय मुझे यह एहसास हुआ कि सोवियत यूनियन के 1991 में टूट जाने के पश्चात् पांच मध्य एशियाई एवं दो एशियाई राज्यों ने सोवियत संघ से अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की थी। मैं मध्य एशियाई अध्ययनों में पेशेवर रूप से विशेषज्ञ था और यह माना जाता था कि नए स्वतंत्र मध्य

एशियाई और बाल्टिक राज्य अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक रणनीतियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले थे। इसलिए मैंने एनजीओ को एक नाम देने का फैसला किया, जो इस नए विशाल स्वतंत्र क्षेत्र को भी अपने दायरे में लेता। भौगोलिक दृष्टि से इसे यूरेशिया कहा जाता है और इसके साथ मैंने एशियाई-यूरेशियन मानवाधिकार फोरम के नए नामकरण पर ध्यान केंद्रित किया। यह इस नाम के तहत है कि हमने एनजीओ को नई दिल्ली में रजिस्ट्रार ऑफ सोसाइटीज के साथ पंजीकृत किया और फिर 2000 में हमने न्यूयॉर्क में ECOSOC (आर्थिक और सामाजिक परिषद्) के दर्जे के लिए आवेदन किया, जो हमें चौदह साल के लंबे संघर्ष के पश्चात् और एनजीओ कमेटी के दो सत्रों में पाकिस्तान द्वारा घातक विरोध का मुकाबला करने के बाद 2014 में मिला जिसके न्यूयॉर्क में हुए दो सत्रों में मैं व्यक्तिगत रूप से शामिल हुआ।

जम्मू और कश्मीर का संविधान राज्य के किसी भी समुदाय को अल्पसंख्यक के रूप में मान्यता नहीं देता है। इसमें अल्पसंख्यकों को कोई विशेषाधिकार देने का प्रावधान ही नहीं है। दूसरी ओर, भारतीय संविधान ने धर्म के आधार पर भारत में चार (अब पांच) अल्पसंख्यकों की पहचान की है। जम्मू-कश्मीर में अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में किसी भी समुदाय की पहचान करने से इनकार करते हुए, जम्मू-कश्मीर संविधान राज्य में धार्मिक अल्पसंख्यकों पर भारतीय संविधान खंड के आवेदन को खारिज नहीं करता है। इसका मतलब है कि एक कश्मीरी मुस्लिम राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक है, लेकिन क्षेत्रीय स्तर पर बहुमत में है। इसलिए एक कश्मीरी मुसलमान दो विशेषाधिकार प्राप्त करता है। दूसरी ओर एक कश्मीरी हिंदू राष्ट्रीय स्तर पर बहुसंख्यक और स्थानीय स्तर पर अल्पसंख्यक है। गोया वह हर तरह से हारा हुआ है।

संयुक्त राष्ट्र मानव संसाधन आयोग के जिनेवा सम्मेलन में आपने कश्मीर के रिवर्स माइनॉरिटीज का मुद्दा उठाया, इस पर आपकी टिप्पणी?

मैंने जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (अब परिषद्) के अल्पसंख्यकों से जुड़े कार्यकारी समूह के साथ इस मुद्दे को उठाया। मैंने लगभग दो वर्षों तक इस मामले को उठाया, जिसके दौरान कई बार हस्तक्षेप किए और इस कार्य समूह की कई चर्चाओं में शामिल हुआ। समूह के अध्यक्ष स्कैंडेनेविया के प्रसिद्ध प्रोफेसर ईदी थे। मैंने उनके सचिव के माध्यम से, जिन्हें मैं जानता था और जिन्हें मैंने अपने विषय की जानकारी दी थी, दो साक्षात्कार मांगे। अंत में, अल्पसंख्यकों पर कार्यदल के अध्यक्ष के रूप में प्रो. ईदी ने समूह के सत्र में एक प्रस्ताव रखा, जिसमें उन्होंने कहा कि अल्पसंख्यक की मौजूदा परिभाषाओं में एक और परिभाषा को जोड़ा जाना है और वह था—रिवर्स अल्पसंख्यक भारत में कश्मीरी पंडित। इसका अर्थ था—क्षेत्रीय आधार पर अल्पसंख्यक परंतु राष्ट्रीय आधार पर बहुमत में। यह संयुक्त राष्ट्र द्वारा स्वीकार किया गया और इसके अधिकांश दस्तावेजों में कश्मीरी पंडितों के विषय में इसी परिभाषा का उपयोग किया जाता है।

कश्मीरी पंडितों के विस्थापन के आईने में क्या आप इससे सहमत हैं कि विस्थापन से न केवल इंसानों की जिंदगी ही तहस-नहस होती है, अपितु संस्कृति भी नेस्तनाबूद होती है?

आबादी के विस्थापन के मुद्दे पर संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार की जनसंख्या की आवाजाही से संबंधित इकाइयां विस्तृत चर्चा करती हैं। यही बात भारत सरकार ने उस वक्तव्य में कही है जो इंटरनेशनल कमीशन ऑफ ज्यूडिस्ट को पेश किया गया। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग से

जुड़े इस गैर-सरकारी संगठन ने 1994 में कश्मीर का दौरा किया था। कश्मीर में वास्तव में एक छोटे से समुदाय का नरसंहार किया गया है और उसपर अन्य अत्याचार किए गए हैं। अंत में उन्हें अपने घरों से ही हटा दिया गया है। वे अपने ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में शरणार्थी बनकर रह रहे हैं। यह याद रखना होगा कि इस समुदाय का कश्मीर के स्वदेशी होने का लगभग पांच हजार वर्षों का लिखित इतिहास है। जब उन्हें अपने घरों से बाहर कर दिया गया, तो यह न केवल उनका व्यक्तिगत विनाश था, बल्कि उनकी चल-अचल संपत्ति का सर्वनाश भी था। इन सबसे ऊपर, इसका तात्पर्य था कि उनकी हजारों वर्ष पुरानी सभ्यता, धर्म, मंदिर, तीर्थस्थल, अग्रहार या तीर्थ संपत्ति, परंपराएं, रीति-रिवाज, शिक्षा और सामाजिक त्योहार सब को नष्ट करना था। शायद ही कोई कश्मीरी हिंदू परिवार ऐसा था जिसने कोई छोटा या बड़ा पुस्तकालय संरक्षित न किया हो। इस पूरी संपत्ति को लूट लिया गया और वजन से बेचा गया जहां इसमें किराने का सामान बेचने के लिए इसे कागज के बैग के रूप में इस्तेमाल किया जाना था। विस्थापित समुदाय के लिए और क्या त्रासदी हो सकती है? उनके निर्जन घरों में पहले बर्बरता की गई और फिर उनके अस्तित्व के सभी निशानों को मिटाने के लिए आग लगा दी गई।

जम्मू और कश्मीर के पुनर्गठन के बाद कश्मीरी पंडितों को क्या न्याय मिलेगा, क्या उनकी समस्याओं पर ध्यान दिया जाएगा?

कश्मीरी हिंदू समुदाय की कश्मीर में वापसी और पुनर्वास एक बहुत ही जटिल प्रश्न है। कोई भी कश्मीरी मुसलमान, घाटी में उनकी वापसी नहीं चाहता है। घाटी के राजनीतिक नेतृत्व ने पंडितों के खिलाफ इतनी घृणा फैलाई है। कांग्रेस सरकार ने इसे सात दशकों तक प्रोत्साहित किया। चूंकि इस देश के लिए लोकतंत्र ही सर्वोच्च है, इस कारण घाटी के 99.9 प्रतिशत मुस्लिमों के पास हमेशा अंतिम शब्द होगा। वे कश्मीर के मध्यस्थ हैं। कोई भी अल्पसंख्यक समुदाय बहुसंख्यकों की सद्भावना के बिना सुरक्षित नहीं हो सकता, लेकिन वह सद्भावना कश्मीर में कहीं नहीं मिलती है।

इसके अलावा, कश्मीर को पूरी तरह से इस्लामी बना दिया गया है, बल्कि कश्मीर का वहाबीकरण किया गया है। यह पाकिस्तान और सउदी अरब की लगभग एक छोटी कॉलोनी है। जीवन शैली बदल गई है, मुहावरा बदल गया है, सोच बदल गई है, स्थानीय मुस्लिम आबादी के लिए मानसिकता बदल गई है। वे भारत और हिंदू के नाम से जुड़ी किसी भी चीज से नफरत करते हैं। नए जन्मे लड़कों और लड़कियों के नाम, घरों और संरचनाओं के नाम, सड़कों और गलियों के, दुकानों और स्कूलों के, व्यापार केंद्रों के, अस्पतालों, क्लीनिकों और औषधालयों, स्कूलों, कॉलेजों, संस्थानों, पुस्तकालयों के, सब कुछ सउदी अरब से उधार लिया जाता है अर्थात् वहीं के नाम अपनाए जाते हैं। सरकारी भूमि पर या हिंदुओं के मंदिरों की संपत्ति से जबरदस्ती छीन ली गई भूमि पर या निष्कासित हिंदुओं की व्यक्तिगत संपत्ति पर हजारों नई मस्जिदें बनाने के लिए सउदी स्रोतों से भारी धनराशि प्रवाहित हुई। यहां तक कि रेवेन्यू रिकॉर्ड भी बदल दिए गए हैं और हिंदुओं को 'मुफ़र' के रूप में वर्गीकृत किया गया है जिसका अर्थ है—फरार। फारूक अब्दुल्ला जैसा नेता भी यह कहता है कि पंडितों को तत्कालीन राज्यपाल जगमोहन ने कश्मीर से निकाल दिया।

2019 के पुनर्गठन अधिनियम का कश्मीरी हिंदुओं की वापसी और पुनर्वास की घटना पर

कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। बेशक, इसका एक नकारात्मक प्रभाव है और वह यह कि घाटी के मुस्लिम बहुमत ने यह प्रचार किया है कि पंडितों ने मोदी सरकार को अनुच्छेद 370 और 35-ए को निरस्त करने के लिए प्रेरित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

विभिन्न भाषाओं के साहित्य को समृद्ध करने में जम्मू-कश्मीर की जो भूमिका रही है, उसे आप किस रूप में देखते हैं?

कश्मीर की मूल भाषा संस्कृत थी। हिंदू काल में कश्मीर ने संस्कृत भाषा में ज्ञान के भंडार अर्जित किए। कश्मीर के इस संस्कृत भाषा विज्ञान ने देश की विभिन्न भाषाओं में लिखी गई कविता, गद्य, नाटक, इतिहास, दर्शन, समाज, खगोल विज्ञान, ब्रह्मांड विज्ञान आदि पर स्थायी प्रभाव छोड़ा है, जो मुख्य रूप से संस्कृत भाषा की ही धाराएं हैं। संस्कृत इस विशाल देश के लोगों को आपस में जोड़ने वाली एकमात्र भाषा है।

हालांकि, 1339 में कश्मीर में मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद फारसी ने संस्कृत को आधिकारिक भाषा और अभिजात वर्ग की भाषा के रूप में प्रतिस्थापित किया। अभियोजित समुदाय फारसी भाषा में भी बहुमूल्य योगदान देता है। हालांकि, मुस्लिम शासन की समाप्ति और ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के उदय के बाद, फारसी को भी त्याग दिया गया और अंग्रेजी शुरू की गई।

मुस्लिम शासन के तहत कश्मीर की त्रासदी यह थी कि जब फारसी को बढ़ावा दिया गया था, तब कश्मीरी भाषा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। प्राचीन संस्कृत विद्वानों ने शारदा लिपि को तैयार किया था, जो वास्तव में बोली जाने वाली कश्मीरी को व्यक्त करती थी और पिछली दो या तीन सदियों से हिंदू शासन में शारदा मान्यता प्राप्त प्रामाणिक लिपि के रूप में उपयोग में थी। मुस्लिम शासकों ने शारदा लिपि को बिखेर दिया और इसे अरबी लिपि से बदल दिया, जो कश्मीरी ध्वनिविज्ञान का प्रतिनिधित्व करने के लिए सबसे अवैज्ञानिक है। आज तक यह कमी बनी हुई है और यही वजह है कि कश्मीरी भाषा किसी भी मान्यता को जीतने में सफल नहीं हो सकी, क्योंकि शारदा को अस्वीकार करने के बाद इसकी कोई वैज्ञानिक लिपि नहीं है।

□

संस्कृत साहित्य में कश्मीर का अवदान

योगेश शर्मा

कश्मीर भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रमुख केंद्र रहा है, जहां भारतीय दर्शन, साहित्य एवं तंत्रागम के रूप में ऐसे विमर्श विकसित हुए जिन्होंने कश्मीर को विश्व मंच पर विशेष स्थान प्रदान किया। ऐतिहासिक गवेषणा के आधार पर यह बौद्धों का प्रमुख केंद्र माना गया है। नाट्य एवं काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों को इस क्षेत्र ने जन्म दिया, इनमें भामह, रूद्रट, उद्भट, वामन, आनंदवर्धन, क्षेमेंद्र, अभिनवगुप्त, कुंतक, रूय्यक, मम्मट आदि प्रमुख हैं। शैव दर्शन के क्षेत्र में आचार्यों की लंबी शृंखला है, जिनमें आचार्य वसुगुप्त, सोमानंदनाथ, कल्लट, उत्पल, लक्ष्मणगुप्त, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, योगराज, जयरथ, भास्करकंठ आदि प्रमुख हैं। भक्ति के क्षेत्र में आचार्य उत्पल, अभिनवगुप्त, क्षेमराज, योगराज, लल्लेश्वरी एवं नुंद ऋषि प्रमुख हैं। कश्मीर का ज्ञानात्मक एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध इतिहास रहा है, जिसमें सामाजिक जीवन की परिकल्पना का एक उदात्त स्वरूप परिलक्षित होता है, जिसके मूल में कश्मीर शैव दर्शन का प्रभाव भी जनसामान्य तक दृष्टिगोचर होता है। चाहे वह आठवीं-नवीं शताब्दी का समय हो, जहां ललितादित्य एवं अवंतिवर्मा जैसे राजाओं के द्वारा भी कला, साहित्य, संस्कृति एवं दर्शन पर विशेष बल दिया गया या फिर चौदहवीं, पंद्रहवीं शताब्दी में लल्लेश्वरी एवं नुंद ऋषि जैसे लोक कवियों की कविता के रूप में परिलक्षित दर्शन हो। इस समृद्ध परंपरा ने निश्चित रूप से कश्मीर को विशेष गौरव प्रदान किया एवं कला, साहित्य, संस्कृति एवं दर्शन के क्षेत्र में संपूर्ण भारत को एक नवीन दिशा दी। ऐसे में वर्तमान में जो परिदृश्य कश्मीर का है, उसका इतिहास के आलोक में परीक्षण किया जाना आवश्यक-सा हो जाता है। कश्मीर कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन के साथ सामाजिक समरसता का प्रमुख केंद्र रहा है। इसलिए इसके इतिहास की स्मृतियां, वर्तमान में व्याप्त जटिलताओं के समाधान के लिए हमें अनुप्रेरित कर सकती हैं।

कश्मीर का ज्ञानात्मक चिंतन बहुआयामी अंतः अनुशासनात्मक एवं अंतर्विषयक भी रहा है, जहां कला, साहित्य, संस्कृति एवं दर्शन (सिद्धांत एवं प्रयोग) आदि सभी पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। यहां के चिंतन की विशेषता रही है कि सभी विमर्शों में सभी प्रस्थानों के तत्त्व अनुस्यूत से परिलक्षित होते हैं। यहां कुछ आचार्य ऐसे भी हुए हैं जिनकी काव्यशास्त्र एवं तंत्रागम दर्शन दोनों की परंपरा में समानांतर भूमिका रही है। इनमें अभिनवगुप्तपादाचार्य एक ऐसे आचार्य हैं जिनके चिंतन में दर्शन, साहित्य, कला, साधना एवं शास्त्र आदि की दृष्टि से समग्रता एवं समावेश परिलक्षित होता है।

किसी शब्द की व्याख्यान शैली का विस्तार उनके चिंतन में इसप्रकार प्रतीत होता है जैसे कि वह शब्द बहुआयामी एवं सर्जनात्मक है।

कश्मीर के साहित्य में उल्लिखित कवि एवं काव्य प्रक्रिया

कश्मीर के संस्कृत काव्यशास्त्र में जिस उन्मुक्तता एवं प्रौढ़ता के साथ शास्त्रीय सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया, वह सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक प्रासंगिकता को स्थापित करता है। चाहे वह काव्यलक्षण करने की प्रक्रिया हो, काव्यास्वाद की प्रक्रिया हो या स्वयं कवि एवं उसके द्वारा काव्यलेखन की प्रक्रिया हो।

कश्मीर का संस्कृत साहित्य को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवदान यही कहा जा सकता है कि इसमें कवि एवं काव्य प्रक्रिया को सर्जनात्मक एवं शास्त्रीय साहित्य में विस्तार से प्रकाशित किया गया है। इसलिए कवि एवं काव्य प्रक्रिया का कश्मीरी आचार्यों एवं कवियों के साहित्य की पृष्ठभूमि में विमर्श का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है।

कश्मीर के चिंतन में कवि की एक लंबी शृंखलाबद्ध एवं बहुआयामी अवधारणा है, जिसे परमात्मा के पर्याय के रूप में भी देखा गया है। वहीं कभी वह क्रांतिद्रष्टा के रूप में व्याख्यायित है तो कभी रससिद्ध के रूप में प्रसिद्ध भी है। कवि लोकानुवर्तनीय मार्ग का प्रकाशक है, इस रूप में कि उसे अपने मानसिक लोक की अभिव्यक्ति जो करनी होती है। परंतु यह अभिव्यक्ति विशुद्ध काल्पनिक भी नहीं कही जा सकती, क्योंकि लोक भी उसके काव्य-स्फुरण का आधार होता है। यही कारण है कि कवि की सृष्टि में समकालीन संस्कृति एवं युगबोध के अनेक ऐसे तत्त्व प्रतिबिंबित होते हैं जो देश और काल की सीमा से मुक्त हों। एक प्रकार से कवि शाश्वत एवं चिरंतन सांस्कृतिक परंपरा का ऐसा कुशल प्रस्तोता है जिसमें जीवन के उदात्त, सरस एवं श्रेष्ठ मार्ग की छवियां प्रतिभासित होती हैं, जिसमें सरस्वती का एक ऐसा अलौकिक प्रतिभा तत्त्व होता है, जो कारण के बिना ही अपूर्व वस्तु की रचना और विस्तार किया करता है, पाषाणवत् नीरस वस्तु को रस के आधिक्य से सारवत् बना देता है। प्रतिभा और अभिव्यक्ति के प्रसार से संपूर्ण जगत् को रमणीय बना देता है अर्थात् कवि का स्थान ब्रह्मा से भी ऊपर प्रतीत होता है, क्योंकि कवि बिना कारण संबंध के सर्वथा नूतन रूप का प्रकाशन करता है, परंतु विधाता की सृष्टि में उपादानादि कारणों का संबंध सर्वविदित है। दृश्यमान सृष्टिकर्ता में वह सामर्थ्य नहीं कि बिना कारण सामग्री की सर्जना कर दे, क्योंकि स्थान-स्थान पर उसकी स्थिति नियति के नियमों से नियंत्रित परिलक्षित होती है।

विधाता की सृष्टि में अपूर्वता का अभाव है, क्योंकि वह दृष्ट एवं श्रुत वस्तुओं की ही सर्जना करता है जैसे कि दृश्यमान जगत् जो पत्थर के सदृश नीरस एवं कठोर दिखता है, कवि अपनी रस-संपत्ति से उसे सारवान बना देता है। इस प्रसंग में कश्मीर के नवीं शताब्दी के आचार्य एवं ध्वन्यालोककार स्वयं आनंदवर्धन भी इसी बात की पुष्टि करते हैं—कवि कृत सृष्टि (काव्य) में पहले देखे हुए अर्थ/वस्तु भी रस के परिग्रह से नवीन प्रतीत होते हैं जैसे कि वसंत मास में वृक्ष—

दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्था काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभांति मधुमास इव द्रुमाः ॥[1]

मम्मट आदि विद्वानों के द्वारा भी कवि निर्मिति को ब्रह्म निर्मिति से उत्कृष्ट सिद्ध करते हुए उसे नियतिकृत नियमों से स्वतंत्र, हृद्य, अनन्य, परतंत्र एवं नवरसरुचिरा कहा गया है। इसलिए

कवि में लोक एवं लोकोत्तर सभी तत्त्वों का समावेश अपेक्षित है।

प्रतिभा से उसके समस्त अतीत और अनागत वर्तमान हो जाते हैं। वह वास्तव में विश्वस्रष्टा के सदृश सर्जन करता है, जिस प्रकार ध्यानावस्थित विश्वस्रष्टा समस्त विश्व का निर्माण करता हुआ आनंद का अनुभव करता है। समस्त देश काल उसके लिए वर्तमान हो जाते हैं। संपूर्ण परिस्थितियां उसके ही आश्रित हो जाती हैं। जैसे विश्व की वह कल्पना करता है, अपनी प्रतिभा से वैसा ही वह अभिव्यक्त कर देता है। उसी प्रकार की स्थिति कवि की भी होती है। ध्यानावस्थित होकर कवि भी कलाकृति के रूप में आत्मगत भावों का ही प्रतिसृजन करता है, न कि किसी बाह्य विषय का। उसे जिस रूप का प्रकाशन काव्य में करना है, पूर्व में वह उस स्थिति में रहकर ध्यानावस्थित होता है, उसका वह अनुभव ही पूर्णतः काव्यरूप परिणाम है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कवि में अतीत अनागत एवं वर्तमान सभी विषयों का समावेश रहा है। भारतीय चिंतन में कवि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उसमें उक्ति वैचित्र्य एवं यथार्थ का एक सरस समावेश होता है। इसके साथ सांस्कृतिक बोध एवं सामाजिक बोध भी उसकी कविता में प्रतिबिंबित होते हैं। अपने देश-काल की उपेक्षा करके अथवा देश-काल में आबद्ध होकर न तो विचार सार्वभौम होता है और न कोई कलाकृति और न ही कोई कलाकार।

कवि में विचार एवं अनुभूति का साम्य, संतुलन एवं अनुपूरकता सबसे सहज स्वाभाविक अनुबंध है। ग्यारहवीं शताब्दी में आचार्य कुंतक ने कवि के इसी स्वरूप को स्वीकार किया कि कवि न तो पूर्णरूप से स्वतंत्र हो सकता है जिससे कि वह यथार्थ/वास्तविकता से बहुत दूर हो जाए, न ही वह इतना यथार्थवादी हो कि काव्य अत्यंत सीधा वैचित्र्यहीन प्रतीत हो। यही स्थिति संभवतः कवि को अपूर्व का निर्माता एवं लोक का प्रस्तोता बनाती है। कवि ही ज्ञान के सर्वाधिक समीप होता है, क्योंकि उसमें प्रकृति एवं प्राकृतिक रहस्यों के अवबोध की क्षमता होती है। एक दार्शनिक भी तभी सफल हो सकता है जब वह कवि भी हो।

भारत की ज्ञान परंपरा में कवि का यह स्वरूप कदाचित् इसीलिए इसप्रकार का है, क्योंकि उसमें समावेश है, समग्रता है, अखंडता है, अभेद है एवं परस्परानुप्रवेश है। कवि एक विद्वान वैयाकरण भी है, दार्शनिक भी है, तो काव्यशास्त्र की समझ भी रखता है। आचार्य अभिनव इसी कोटि में आते हैं।

कश्मीर के संस्कृत काव्यशास्त्र में कवि को इस रूप में देखा गया है कि उसमें सर्जक, सर्जन एवं श्रोता के समान अनुभव की अखंडता हो, यही कारण है कि आचार्य भट्टतौत कवि-श्रोता-नायक तीनों के समान अनुभव को काव्य प्रक्रिया की पूर्णता मानते हैं। तात्पर्य यह है कि कवि की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह उक्ति वैचित्र्य एवं अपूर्व के उपस्थापन के साथ लोकपरक दृष्टि से कितना समर्थ है, समकालीन संस्कृति एवं युगबोध का प्रतिबिंब उसकी कविता में कितना प्रतिबिंबित है तभी तो वह सार्वदेशिक, सार्वभौमिक एवं लोक का कवि बनता है और शाश्वत रूप से जीवित रहता है।

कश्मीर के संस्कृत साहित्य में अभिव्यक्त भारतीय परंपरा एवं सांस्कृतिक बोध

कश्मीर में संस्कृत साहित्य की कुछ मौलिक प्रवृत्तियों के विकास की स्थिति परिलक्षित होती है। इनमें ऐतिहासिक महाकाव्य की परंपरा, काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में दार्शनिक विमर्श, दार्शनिक ग्रंथों में कलाशास्त्रीय चिंतन एवं संस्कृति के प्रति निष्ठा और उत्साह वास्तव में भारतीय साहित्य के फलक पर कश्मीर को भारत का किरीट सिद्ध करते हैं।

संस्कृति एवं परंपरा के प्रति यहां के कवियों एवं आचार्यों की निष्ठा इस रूप में प्रतिभासित होती है कि कोई भी प्रास्थानिक विमर्श हो, किंतु उनका उल्लेख निश्चित रूप से अत्यंत मनोरम शैली में किया जाता है। उदाहरणार्थ तंत्रालोक में आचार्य अभिनवगुप्तपादाचार्य द्वारा कश्मीर की सांस्कृतिक परंपरा का उल्लेख। जिसमें कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य एवं ज्ञान परंपरा का परिलक्षण होता है। तंत्रालोक के आह्निक 37 में आचार्य अभिनव के द्वारा कहा गया है कि इस दृश्यमान और अदृश्य की अलौकिक शक्तिमत्ता से ओतप्रोत मुक्तावली परमशिव की छत्तीस तत्त्वात्मक शक्ति से ही प्रसूत है। विश्वेश्वर की नैसर्गिक कला का यह कमनीय प्रकल्पन है। इसकी सीमा के संबंध में विचार करने से बुद्धिवाद भी मूक हो जाता है। यह ब्रह्मांड अत्यंत मनोरम है। इसकी विविध विचित्रताओं के चमत्कार से कोई भी वंचित नहीं रह सकता। इसकी रमणीयता में प्रत्येक सहृदय भावात्मक रूप से रमण करता है, वह इसके रम्य भाव का महत्त्व है।[2]

नारङ्गारूणकांति पांडुविकचद्वल्लावदातच्छवि।
प्रोद्भिन्नामलमातुलुङ्गकनकच्छायाभिराम प्रभम्।
केरीकुंतल कंदली प्रतिकृति श्यामप्रभा भास्वरं।
यस्मिञ्शक्तिचतुष्टयोज्ज्वलं मद्यं महाभैरवम् ॥

अर्थात् रक्त, श्वेत, पीताभ एवं श्याम वर्ण कश्मीर की प्रकृति को भी अलंकृत करते हैं। ये चारों सिद्ध चतुष्टय रूप चारों शक्तियों में शाक्त प्रभाव की भूमिका के दिग्दर्शक हैं और चर्या में शिवांबुसुधा के आस्वाद के उद्भावक हैं। इसप्रकार उपर्युक्त वर्णन में प्राकृतिक पौधों में विराज अनुरञ्कता उपास्यों की वर्णमाला के सहज आकर्षण और कश्मीर के तत्कालीन सामाजिक संदर्भ सबका एक साथ श्लिष्ट वर्णन उपलब्ध होता है।

कश्मीर में संस्कृत के प्रमुख कवि एवं उनका काव्यात्मक अवदान

कश्मीर के रचनात्मक लेखकों की भी सुदीर्घ शृंखला है, जिसके प्रमाण 'नीलमतपुराण', 'राजतरंगिणी', 'सुवृत्ततिलक' एवं 'श्रीकंठचरित' में उल्लिखित हैं। इन कवियों में कुछ तो कवि राजा हैं (जो राजा होते हुए भी काव्य कर्म करते थे) जिनमें मातृगुप्त एवं लङ्कक प्रमुख हैं।

'राजतरंगिणी' के अनुसार भर्तृमेंठ एवं मातृगुप्त समकालीन हैं और भर्तृमेंठ के मातृगुप्त अत्यंत प्रशंसक भी हैं। 'राजतरंगिणी' के तृतीय तरंग के इस प्रसंग में इसकी पुष्टि होती है कि—एक समय भर्तृमेंठ कवि द्वारा स्वरचित 'ह्यग्रीववध' नामक काव्य मातृगुप्त को सुनाया गया। जब तक मातृगुप्त ने पूर्ण ग्रंथ नहीं सुना तब तक उसने काव्य के गुण-दोषों के विषय में कोई टिप्पणी नहीं की। जैसे ही भर्तृमेंठ के द्वारा काव्य को समाप्त कर पुस्तक को एकत्र किया गया वैसे ही राजा मातृगुप्त ने सुवर्णपात्र पुस्तक के नीचे इसलिए रखवा दिया कि ग्रंथ के काव्यामृत का रस भूमि पर गिरकर बह न जाए।[3]

'राजतरंगिणी' के ही पंचम तरंग में नवीं शताब्दी के तीन प्रमुख कवियों का उल्लेख मिलता है जो राजा अवंतिवर्मा (855-885 ई.) की सभा को सुशोभित करते थे।[4]

इनमें शिवस्वामी यमक कवि के रूप में संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध हैं एवं अपने पूर्ववर्ती कवियों रघुकार (कालिदास) एवं भर्तृमेंठ की छाया भी उन पर दिखती है।[5]

रत्नाकर कवि की तीन रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। इनके नाम इसप्रकार हैं—

(क) हरविजय

(ख) वक्रोक्तिपंचाशिका

(ग) ध्वनिगाथापत्रिका

रत्नाकर कवि की सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके महाकाव्य 'हरविजय' के लिए है, जो संभवतः लौकिक संस्कृत साहित्य में आर्षकाव्य (रामायण एवं महाभारत) के पश्चात् सबसे बड़ा महाकाव्य है जिसमें पचास सर्ग हैं। 'हरविजय' का महत्त्व इस रूप में है कि अलक के द्वारा विषमपदोद्योतनी नामक टीका इस ग्रंथ पर लिखी गई।

कवि रत्नाकर को संस्कृत साहित्य में उनकी ललित, मधुर, सालंकार, प्रसादमनोहर, विकट यमक एवं श्लेष से मंडित, चित्रमार्ग की अद्वितीय वाणी के लिए ख्याति प्राप्त है–

ललितमधुराः सालंकाराः प्रसादमनोहराः
विकटयमकश्लेषोद्धार प्रबंधनिरर्गलाः।
असदृशमतीश्चित्रे मार्गे गमोद्गिरतो गिरो
न खलु नृपते चेतो वाचस्पतेरपि शङ्कते ॥[6]

रत्नाकर को संस्कृत साहित्य में वसंततिलका छंद का मुख्य प्रयोक्ता भी कहा जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य क्षेमेंद्र के द्वारा रत्नाकर के वसंततिलका वृत्त की प्रशस्त प्रशंसा की गई।[7]

अपने ग्रंथ के विषय में स्वयं रत्नाकर ने अकवि पाठक को कवि तथा महाकवि बनाने की प्रतिज्ञा की है।[8]

आनंदवर्धन को साहित्यशास्त्र के क्षेत्र में विश्वसाहित्य के पटल पर सर्वाधिक मौलिक एवं परम सैद्धांतिक आचार्य के रूप में जाना जाता है जिनके द्वारा ध्वन्यालोक लिखकर साहित्यशास्त्र के सैद्धांतिक पक्ष को अत्यंत समृद्ध बनाकर प्रकाशित किया गया।[9] परंतु आनंदवर्धन को अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के लिए भी प्रसिद्धि प्राप्त है। इनके द्वारा 'अर्जुनचरित', 'विषमबाणलीला' एवं 'देवीशतक' नामक सरस काव्य की रचना भी की गई।

इन तीन कवियों के अतिरिक्त इनके पूर्ववर्ती एक और महत्त्वपूर्ण महाकवि हैं–कवि भल्लट। कवि भल्लट का समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है, क्योंकि आनंदवर्धन (नवीं शती) के द्वारा इनके श्लोकों का उल्लेख ध्वन्यालोक में किया गया–

परार्थे यः पीडामनुभवति भङ्गेऽपिमधुरो
यदि यः सर्वेषामिह खलु विकारोऽप्यभिमतः।
न संप्राप्तो वृद्धिं यदि स भृशमक्षेत्रपतितः
किमिक्षोर्दोषोऽसौ न पुनरगुणाया मरूभुवः ॥[10]

कवि भल्लट का संस्कृत साहित्य में एक ही ग्रंथ उपलब्ध है–'भल्लटशतक'। यह मुक्तक पद्यों का संग्रह है। पद्यों में अन्योक्ति की बहुलता है। संसार की निस्सारता एवं आशा-निराशा आदि मनःस्थितियों का सुंदर प्रकाशन भल्लट की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उदाहरणार्थ श्लोक उद्धृत है–

विशालं शाल्मल्या नयनसुभगं वीक्ष्य कुसुमं
शुकस्यासीद् बुद्धिः फलमपि भवेदस्य सदृशम्।

इति ध्यात्वोपास्तं फलमपि च दैवात्परिणतं
विपाके तुलोऽन्तः सपदि मरूता सोऽप्यपध्तः ॥

अर्थात् विशाल शाल्मली के वृक्ष में नयनाभिराम पुष्पों को देखकर शुक ने सोचा कि जब पुष्प इतने सुंदर हैं तो फल कितना सुंदर होगा। इसी विचार से उसने शाल्मली वृक्ष की सेवा की एवं भाग्य से उसमें फल भी आ गए। शुक को आशा बंधी कि पकने पर अवश्य ही सुंदर एवं मधुर होंगे, परंतु पकने पर केवल रुई ही निकली। उसे भी पवनदेव उड़ा ले गए। उपर्युक्त पद्य में आशा की निराशा में परिणति एवं सांसारिक वास्तविकता की ओर संकेत किया गया है।

आचार्य मम्मट के द्वारा भी कवि भल्लट के अनेक पद्यों को काव्यप्रकाश के दशम उल्लास में अलंकारों के उदाहरणस्वरूप उल्लेखित किया गया है।

कश्मीर की कवियों की शृंखला में क्षेमेंद्र का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। क्षेमेंद्र आचार्य अभिनवगुप्त के शिष्य थे एवं इनकी गणना कश्मीर ही नहीं भारत के उन विद्वानों में होती है जिन्होंने सर्जनात्मक (लक्ष्यग्रंथ) साहित्य के साथ-साथ शास्त्रीय चिंतन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्हें औचित्य सिद्धांत के प्रतिष्ठापक आचार्य के रूप में जाना जाता है। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में इनके द्वारा औचित्यविचारचर्चा एवं कविकंठाभरण ग्रंथ लिखे गए। लक्ष्यग्रंथों में इनके द्वारा 'बृहत्कथामंजरी', 'बौद्धिसत्त्ववदानकल्पलता', 'दशावतारचरित', 'रामायणमंजरी' तथा 'भारतमंजरी' लिखे गए। क्षेमेंद्र के साहित्य में समकालीन युगबोध, लोककला एवं संस्कृति का पर्याप्त प्रकाशन मिलता है। 'कलाविलास' एवं 'सुवृत्ततिलक' इसके महत्त्वपूर्ण उदाहरण कहे जा सकते हैं। 'बृहत्कथामंजरी' से उद्धृत एक श्लोक दर्शनीय है–

लक्ष्मीरंभा कुठारस्य भोगाम्भोदनभास्वतः।
विलासवनदावाग्नेः को हि कालस्य विस्मृतः ॥
न गुणा हीनविद्यानां श्रीमतां क्षीण संपदाम्।
कृतांतपण्यशालायां समानः क्रयविक्रयः ॥[11]

जैसा कि पूर्व में ही उल्लेख किया गया है कि कश्मीर ऐतिहासिक काव्यलेखन के लिए भी अत्यंत प्रसिद्ध है। इनमें कवि बिल्हण, कल्हण एवं जयानक प्रमुख हैं।

कवि बिल्हण के द्वारा 18 सर्गात्मक 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य लिखा गया जिसमें चालुक्यवंशी राजाओं का वर्णन है। विक्रमादित्य एवं उनके वंश के चरित के उल्लेख के रूप में 'विक्रमांकदेवचरितम्' महाकाव्य को प्रामाणिक प्रलेख माना जा सकता है। ग्रंथ में माधुर्य गुण एवं वैदर्भी रीति का प्रयोग मुख्य रूप से किया गया है। इस ग्रंथ में कवि समीक्षा विषयक काव्यशास्त्रीय विमर्श भी दृष्टिगत होता है। बिल्हण ने 'विक्रमांकदेवचरितम्' में कवियों के लिए सबसे आवश्यक हेतु के रूप में नैसर्गिक प्रतिभा को माना है। महाकवि नैसर्गिक प्रतिभा के धनी होते हैं। अतः अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा वह नवीन काव्यों की रचना करने में प्रवृत्त होता है। जो कवि अपनी नैसर्गिक प्रतिभा के द्वारा काव्य का निर्माण करता है, वे काव्य सभी को आनंद देने वाले होते हैं। बिल्हण ने व्युत्पत्ति का समर्थन नहीं किया है, वे व्युत्पत्ति के द्वारा रचित काव्य को केवल विद्वानों की समझ के लिए ही मानते हैं। जबकि प्रतिभासंपन्न कवि के द्वारा लिखे गए काव्य का आस्वादन सामान्य जन भी कर लेते हैं, प्रतिभाविहीन के द्वारा लिखे गए काव्य का नहीं–

कथासु ये लब्धरसाः कवीनां ते नानुरज्यंति कथांतरेषु।
न ग्रंथिपर्णप्रणयाश्चरंति कस्तूरिकागंध मृगास्तृणेषु ॥ (विक्रमाङ्कदेवचरितम् 1.17)

इसके अतिरिक्त बिल्हण के द्वारा कर्णसुंदरी नाटिका, चौरपंचाशिका गीतिकाव्य भी लिखा गया।

कवि कल्हण तो एक ऐसे कवि हैं, जिनके द्वारा प्राचीनकाल से बारहवीं शताब्दी तक के कश्मीर के इतिहास की जानकारी का आठ तरंगों में विभक्त 'राजतरंगिणी' में प्रामाणिकता के साथ उल्लेख कर दिया गया है। तिथिगत दृष्टि से 813-14 ई. से 1150 ई. तक की घटनाएं अर्थात् लगभग चार सौ वर्षों का इतिहास पूर्ण प्रामाणिक, तार्किक एवं वैज्ञानिक है। कवि बिल्हण के सदृश इनके द्वारा कवि विषयक चर्चा 'राजतरंगिणी' में की गई है, जो काव्य की कसौटी का निर्धारण करती है। कल्हण 'राजतरंगिणी' में कवि की ख्याति को चिरस्थायी कहते हैं। उनके अनुसार सुकवियों के गुण अमृत के प्रवाह को भी तुच्छ कर देते हैं। कवि के काव्यामृत का पान करने पर स्वयं अपनी रचना के द्वारा एवं उसमें वर्णित उत्तम गुण वाले पात्रों का शरीर यश को प्राप्त कर चिर स्थायी हो जाता है।[12] कवि मनीषी है। सभी के अंतर्भावों को देखने की दृष्टि उसे प्राप्त है। उन भावों को समझकर वह अपनी नवनवोन्मेषशाली प्रतिभा एवं प्रज्ञा के द्वारा नए-नए अर्थों से परिपूर्ण काव्यों की रचना करता है।[13]

'पृथ्वीराजविजय' के लेखक कवि जयानक भी कश्मीर निवासी ही हैं जो पृथ्वीराज का आश्रय प्राप्त कर अजमेर आ गए थे। इनके द्वारा 'पृथ्वीराजविजय' नामक बारह सर्गात्मक महाकाव्य लिखा गया जिस पर परवर्ती कवि विद्वान जोगराज के द्वारा वृत्ति भी लिखी गई।

कश्मीरी साहित्य के क्षेत्र में महाकवि मखंक का नाम भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने 'श्रीकंठचरित' नामक पच्चीस सर्गात्मक एक महाकाव्य लिखा। उसमें भगवान शंकर एवं त्रिपुर के युद्ध का अत्यंत मनोरम साहित्यिक वर्णन किया गया है। महाकवि मखंक संस्कृत काव्यशास्त्री एवं कश्मीर के ही निवासी आचार्य रूय्यक के शिष्य थे एवं दोनों ही गुरु-शिष्य कश्मीर के राजा जयसिंह (1129-50 ई.) के राज में विद्वान के रूप में समादृत थे।

महाकवि मखंक इस रूप में प्रशंसनीय हैं कि उनके द्वारा अपने ग्रंथ 'श्रीकंठचरित' के पच्चीसवें सर्ग में कश्मीर के लगभग सभी पूर्ववर्ती राजाओं का उल्लेख किया गया है। जिससे कश्मीर में संस्कृत की समृद्ध साहित्यिक परंपरा का बोध होता है। 'श्रीकंठचरित' में उल्लिखित कवि इसप्रकार हैं–

नंदन, रूय्यक, लङ्कक, रम्यदेव, लोष्टदेव, प्रभाकर देवधर, मंडन, श्रीगर्भ, श्री आनंद, सुहल, आनंद, गर्ग, गुन्न, गोविंद, जनकराज, जल्हण, जिंदुक, जोगराज, तेजकंठ, त्रैलोक्य, दामोदर, प्रकट, षष्ठ, कल्याण एवं शंभु।

इसके अतिरिक्त आचार्य क्षेमेंद्र एवं कल्हण आदि के द्वारा भी अनेक कवियों का उल्लेख किया गया है जिनमें अभिनंद, चंद्रक, जयंतभट्ट, नायक (भट्टनायक), बिल्हण, शंकुक आदि प्रमुख हैं।

कश्मीर के संस्कृत साहित्य में स्रोत्रों का भी महत्त्वपूर्ण अवदान है। इन स्रोत्रों में शितिकंठ, आचार्य उत्पलदेव, आनंदवर्धन, भट्टनारायण, अभिनवगुप्त, लोष्ठक, जगद्धरभट्ट एवं अवतार प्रमुख हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कश्मीर को न केवल संस्कृत साहित्य अपितु संपूर्ण भारतीय साहित्य का प्रामाणिक एवं प्रेरक स्रोत माना जा सकता है। संस्कृत साहित्य में कश्मीर के अवदान का आकलन इस रूप में लगाया जा सकता है कि संस्कृत

काव्यशास्त्र का लगभग 80 प्रतिशत भाग कश्मीर से उद्भूत है जिसमें प्रत्यभिज्ञा एवं स्पंददर्शन का प्रतिबिंब प्रायः यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। साथ ही संस्कृत काव्यशास्त्र के सभी प्रस्थान बिंदुओं (रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य) का उद्गम एवं विमर्श का क्षेत्र कश्मीर रहा है। दार्शनिक प्रस्थान में भी काव्यादि कला, चिंतन का प्रभाव पूर्णतः दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त व्याकरण, संस्कृति एवं इतिहासादि का प्रभाव भी देखने को मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि कश्मीर न केवल भौगोलिक दृष्टि से भारत का किरीट है अपितु साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं संपूर्ण ज्ञानात्मक विमर्श की दृष्टि से भी भारत का किरीट है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. आनंदवर्धन, (2014). 'ध्वन्यालोक', पृ. 567, (व्या. जगन्नाथ पाठक), वाराणसी : चौखंबा विद्याभवन।
2. षट्त्रिंशता तत्त्व मृता यद्यप्यनन्ता भुवनावलीसम्।
   ब्रह्माण्डमत्यन्तमनोहरं तु वैचित्र्यवर्जं नहि रम्यभावः // अभिनवगुप्त, (1986). 'तंत्रालोक' (विवेक टीकोपतः), पृ. 3693, संपा. रामचंद्र द्विवेदी तथा नवजीवन रस्तोगी, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
3. ह्यग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन्न्वम्।
   आसमाप्ति ततो नापत् साध्वसाध्विति वा वचः ॥
   अयं ग्रथयितुं तस्मिन्पुस्तकं प्रस्तुते न्यधात्
   लावण्यनिर्माणधिया तदधः स्वर्णभाजनम् ॥
   कल्हण, (1975). 'राजतरंगिणी', पृ. 528, (भाष्यकार रघुनाथ सिंह), वाराणसी : हिंदी प्रचारक संस्थान।
4. मुक्ताकणशिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः।
   प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥
   कल्हण, (1975). 'राजतरंगिणी' पृ. 129, व्या. रामतेजशास्त्री पांडेय, दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।
5. विदितबहुकथाश्चित्र काव्योपदेष्टा
   यमककविरगम्यश्चारू सन्दानमानी।
   अनुकृत रघुकारोऽभ्यस्तस्तमेण्ठप्रचारो।
   जयति कविरूदारो दण्डिदण्डःशिवाङ्कः ॥
   कल्हण, (1975). 'राजतरंगिणी', पृ. 129, (व्या. रामतेजशास्त्री पांडेय), दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।
6. उपाध्याय बलदेव, (1948). 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ. 154, काशी : शारदा प्रकाशन।
7. वसन्ततिलकारूढा वाग्वल्लीगाढसंगिनी।
   रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥ वही, पृ. 155
8. हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबंधे।
   अपि शिशुरकविः कविः प्रभावाद् भवति कविश्च महाकविः क्रमेण ॥ वही, पृ. 155
9. ध्वनिनातिगभीरेणय काव्यतत्त्वनिवेशिना।
   आनंदवर्धन कस्य नासीदानंदवर्द्धन ॥
   श्रीमदारोहकभग दत्त जल्हण, (1938). 'सूक्तिमुक्तावली', पृ. 46, (संपा. कृष्णमाचार्य), बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।
10. आनंदवर्धन, (2014). 'ध्वन्यालोक', पृ. 154, व्या. जगन्नाथ पाठक, वाराणसी : चौखंबा विद्याभवन।
11. क्षेमेंद्र (1931). 'बृहत्कथामंजरी' पृ. 608, संपा. शिवदत्त पंडित तथा काशीनाथ पांडुरंग परब, मुंबई, निर्णय सागर प्रेस।
12. वन्द्यः कोऽपि सुधास्यन्दास्कंदी स सुकवेगुणिः।
   येनायाति यशःकायः स्थैर्यं स्वस्य परस्य च ॥
   कल्हण, (1975). 'राजतरंगिणी', पृ. 3, (भाष्यकार - रघुनाथसिंह), वाराणसी : हिंदी प्रचारक संस्थान।
13. न पश्येत्सर्वसंवेद्यान्भावान्प्रतिभया यदि।
   तदन्यदि्दव्यदृष्टित्वे किमिव ज्ञापकं कवेः ॥ वही, पृ. 4

□

महामाहेश्वर अभिनवगुप्त

क्षमा कौल

इस वर्ष की निर्जला एकादशी को महामाहेश्वर भगवान अभिनवगुप्त का एक हजार चार वां प्राकट्य दिवस था। यह दिन हम भारतीयों के लिए विशेष दिवस है तथा कश्मीरियों के लिए अति विशेष है। यह हमारी पहचान के प्रमाण तथा पुनर्प्रकाश का दिवस है। आज के दिन वास्तव में ही हमें अपने घरों में दीप जलाने चाहिए, क्योंकि एक महाभैरव के रूप में स्वयं शिव का अवतरण अभिनवगुप्त नाम से हुआ।

कश्मीर की जीवन पद्धति प्रागैतिहासिक काल से शिव तंत्र की रही है। यही भारत से संलग्न सनातन पद्धति से जीने वाले अन्य क्षेत्रों की भी रही है। पर बहुत काल तक यह मौखिक ही रही। पहले स्वयं शिव ने श्रीकंठ के रूप में इस दर्शन में जीवन पद्धति के लिए ऋषि दुर्वासा को प्रेरित किया। दुर्वासा ने अपने शिष्य जिनके नाम थे त्र्यंबक, आमर्दक तथा श्रीनाथ, में यह अवतरित किया। इनमें से त्र्यंबक ने विवाह किया और उसको पुत्री प्राप्त हुई। अतः तीन मठिकाओं के योग में इस पुत्री द्वारा स्थापित मठिका को अर्ध माना गया। इसप्रकार साढ़े तीन मठिकाओं की स्थापना हुई। इसप्रकार यह दर्शन के रूप में विधिवत रूप से प्रसारित होना प्रारंभ हुआ।

कालांतर में यह चौदह पीढ़ियों तक चलता रहा। जिसके क्रम में संगमादित्य, वर्षादित्य, सोमानंद, उत्पलदेव, वसुगुप्त, लक्ष्मणगुप्त, अभिनवगुप्त, क्षेमराज एवं अन्य।

महामाहेश्वर भगवान अभिनव के साथ 'गुप्त' पदवी उनके पूर्वज महामाहेश्वर अत्रिगुप्त से पारंपरिक रूप से चली आ रही थी। गंगा और यमुना के मध्य दोआब क्षेत्र को अंतर्वेद कहते थे। अत्रिगुप्त वहीं के निवासी थे। उस समय कन्नौज में यशोवर्मन का राज था। अत्रिगुप्त इनके संपर्क में भी थे। अत्रिगुप्त सर्व शास्त्र पारंगत थे, संपूर्ण भारतवर्ष में इनकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि थी। कश्मीर के तत्कालीन सम्राट श्रीमान ललितादित्य (725-781) भी उनसे प्रभावित थे। अतः उन्होंने अत्रिगुप्त से कश्मीर आने का सविनय अनुरोध किया। श्री परमहंस हंस के शब्दों में 'उन्होंने अपनी राज्य लक्ष्मी का सारस्वत शृंगार किया तथा प्रतिष्ठापूर्वक अपने साम्राज्य में बुलाया एवं राजधानी में अधिष्ठित किया।'

वितस्ता के तट पर इनका भव्य आवास निर्मित किया गया। भगवान शीतांशुमौलि मंदिर के पास आजीविका के लिए इन्हें बहुत सारी भूमि दी गई। अब इस परिवार का संबंध कन्नौज से विच्छिन्न हुआ। कश्मीर में श्रीनगर इनका स्थायी निवास बन गया। इस परिवार का इतिहास कश्मीर का स्वर्णिम इतिहास बन गया। इस परिवार में अनेक विद्वान तथा दार्शनिक का जन्म हुआ। लगभग डेढ़ सौ से अधिक वर्षों के बाद इस परिवार में आविर्भाव हुआ एक महान विभूति महामाहेश्वर भगवान अभिनवगुप्त का। इनके पिता श्री नरसिंहगुप्त व्याकरण के प्रसिद्ध विद्वान थे। उससे पूर्व अभिनवगुप्त के एक पितामह थे—वराह गुप्त, जो अतिप्रसिद्ध थे। इसप्रकार परंपरा से यह परिवार 'प्रतिभा पुरस्कृत महापुरुषों' का जन्मदाता बना रहा।

महामाहेश्वर भगवान अभिनवगुप्त का जन्म

अपने जन्म के विषय में अभिनवगुप्त अलग ढंग से तथा सोद्देश्य लिखते हैं। वे कहते हैं कि पिता नरसिंह गुप्त थे, जो कि चुखलुक नाम से परम प्रसिद्ध थे तथा सचमुच नर सिंह थे। शिव के परम भक्त थे। व्याकरण की शिक्षा अभिनवगुप्त ने इन्हीं से प्राप्त की।

उनकी माता विमलकला की आश्रयदाता थीं। कुछ लोग कहते हैं कि माता का नाम भी विमलकला था, उस स्थिति में संभवतः अभिनवगुप्त माता का नाम माता पर घटित होने के सुखद आश्चर्य को व्यक्त कर रहे हों, जैसे पिता नरसिंह के संदर्भ में। अपनी बृहदाकार तथा महान, विश्वप्रसिद्ध कृति 'तंत्रालोक' के आरंभ में अपने माता-पिता तथा अपने जन्म की प्रक्रिया को अभूतपूर्व ढंग से कहते हुए कहते हैं कि पिता नरसिंह बोधमय थे एवं माता विमलकलामयी योगिनी थीं। इन दोनों के संघट्ट से प्रादुर्भूत अभिनवगुप्त योगिनी भू थे। इस मिलन को वे अद्वय विसर्ग बताते हुए कहते हैं कि उससे 'मैं' अर्थात् अभिनवगुप्त उत्पन्न हुआ। इसप्रकार के उत्पन्न हुए को योगिनी भू की संज्ञा दी जाती है अर्थात् चित्त के विमल रूप की आश्रयी योगिनी अभिनव जैसे बालक को जन्म देती है।

कहने का तात्पर्य कि यदि नरसिंह जैसे बोधमय पिता हों तथा विमल चित्त की माता तो इस शिवशक्ति के मिलन से जो बालक उत्पन्न होंगे, वे निश्चय ही अभिनव से परम शिवप्रकाश के पात्र, भक्त एवं भाग्यशाली होंगे। यह समाज को एक निर्देश सूत्र है, जो कि इस श्लोक से स्पष्ट होता है—

शिवशक्त्यात्मकं रूपम् भावयेच्च परस्परम्
न कुर्याद् मानवी बुद्धि रागमोहादिसंयुतम्
ज्ञानभावनया सर्वम् कर्तव्यं साधकोतमैः ॥[1]

अर्थात् बोधयुक्त होकर शिव-शक्ति के यामाल भाव विसर्ग में स्वात्मानुसंधान से शुक्र-शोणित में विलक्षणता घटित होती है। इस पद्धति से उत्पन्न संतति योगिनी भू कहलाती है। जैसे कि स्वयं अभिनवगुप्त। इसप्रकार अभिनवगुप्त एक तो उस समय के कश्मीरी समाज का महान चित्र खींचते

हैं तथा पुरुष वर्ग का भी उच्चतापूर्ण उल्लेख करते हैं, जो कि अत्यंत धर्ममय तथा शिवप्रकाश के पुंज थे। साथ ही भविष्य के लिए यह महान निर्देश वह देते हैं कि मानव संसाधन का निर्माण कैसे और किस संवेदनशीलता के साथ धर्ममय होकर किया जाए ताकि इस सृष्टि का कल्याण सुनिश्चित हो। इसप्रकार की झलक आज भी हमारे समाज की स्त्रियों में मिलती है।

महामाहेश्वर भगवान अभिनवगुप्त ने जब अपना अध्ययन आरंभ किया उस समय तक उनमें भैरवत्व का स्वतः उद्रेक हो चुका था अर्थात् भैरवावस्था उनमें आ चुकी थी तथा इन्होंने उच्च प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर ली थी। इनका वैलक्षण्य दीप्त हो चुका था।

उन्होंने श्री तंत्रालोक में कश्मीर शैव दर्शन का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशद प्रतिपादन किया है। ये शैवविमर्श के शक्तिपुंज हो गए थे। इनके एक दक्षिण भारतीय शिष्य मधुराज ने अपनी पुस्तक 'गुरुनाथ परामर्श' में इनके विलक्षण, अद्वितीय शक्तिपात का उल्लेख करते हुए लिखा है, ''मैंने वेदांग का कोई अध्ययन नहीं किया था, पर मेरे गुरु ने मेरे अज्ञान को इस सीमा तक दूर किया कि मैं गुरु (अभिनवगुप्त) के उपदेशों को समझ सका तथा दृढ़तापूर्वक अपने हृदय में धारण भी कर सका।''

महामाहेश्वर भगवान अभिनवगुप्त ने बहुत से ग्रंथ लिखे जिनमें 'श्रीतंत्रालोक' का आकार सबसे बड़ा है तथा इसकी श्रेष्ठता भी उतनी ही है। जयरथ राजानक द्वारा लिखे भाष्य समेत यह एक आठ पुस्तकों (खंडों) का विशाल ग्रंथ है। इस पुस्तक को अभिनवगुप्त ने सैंतीस आह्नीकों में रचा है क्योंकि वे सृष्टि के सैंतीस तत्त्व मानते हैं, न कि मात्र छत्तीस। यह पुस्तक भी शिव और पार्वती के बीच संवाद पद्धति में रची गई है। यह ग्रंथ शैव अद्वय आगमों के दर्शन पक्ष एवं कर्मकांड की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचना करता है।

इस पुस्तक का आधार मालिनी विजयतंत्र के परंपरागत प्रामाणिक आख्यान तथा मुख्यतया महामाहेश्वर के अपने आध्यात्मिक अनुभव हैं। इस ग्रंथ को 'श्रीतंत्रालोक' नाम इसलिए दिया गया है, क्योंकि यह पाठक को तंत्रों द्वारा बताए गए मार्ग पर आलोक अर्थात् प्रकाश डालता है। विशद रूप से समझाता है। "आलोकमासाद्य यदीयमेष लोक सुखं संचरिता क्रियासु।'' यह ग्रंथ मनोरथ अभिनव के चचेरे भाई तथा मंद्र एवं अन्य शिष्यों की प्रार्थना पर प्रवरपुर अर्थात् वर्तमान में श्रीनगर के पूर्वी भाग में मंद्र के घर पर लिखा गया है। इस ग्रंथ में बंधन का कारण, मोक्ष का मार्ग, बिंब प्रतिबिंबवाद, शैव कर्मकांड, आत्मवृत्त संबंधी सूचनाएं, जगत् की अभिव्यक्ति, मुद्राएं, मंत्र, यज्ञ, लोक शास्त्र से इनके अंतर संबंध एवं आश्रिति इत्यादि का विशद वर्णन है।

यह पुस्तक विश्व की अत्यंत चमत्कारिक कृति है। इसके स्वाध्याय से साधक अथवा जिज्ञासु स्वयं को, ब्रह्म को, जगत् को जान लेता है। इसके स्वाध्याय से यह स्पष्ट हो जाता है कि तंत्र को नकारात्मकता के साथ अज्ञान के कारण जोड़ा गया है, वास्तव में यह शिवशक्ति के इस पूरे वैश्विक उपक्रम की वात्सल्य विद्या है। यह मां पिता की गोद है। मां (पार्वती) पिता (शिव) से रहस्य (ज्ञान) की जिज्ञासाएं करती हैं, समझती हैं ताकि वह अपने वत्स वर्ग को सुगमता के साथ,

सुबोध बनाकर समझा सकें कि साधक में सरलता से चेतना का विस्तार हो, उसका बौद्धिक, भौतिक, आध्यात्मिक विकास सुनिश्चित हो, और वह द्विजत्व के लिए तैयार हो जाएं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात इस कश्मीर शैव दर्शन में जो प्रतिपादित है, तथा जो आज के भारतीय परिप्रेक्ष्य में जातिवाद जैसी विषाक्त राजनीति से मोक्षदायक है, वह है शैव जीवन शैली/पद्धति। जहां जातिभेद/प्रथा का कोई स्थान नहीं है। यह बात कश्मीरी पंडित के रक्त में, डीएनए में गहरे से विद्यमान है।

कश्मीरी पंडित समाज भारतवर्ष का एकमात्र ऐसा समाज है जहां जातिभेद नहीं। आप आजीविका के लिए कोई भी कर्म अपना लो, आपका ब्राह्मणत्व अक्षुण्ण है। किसी भेदभाव की कोई आशंका अथवा विचार की कोई संभावना नहीं। पंद्रहवें आह्नीक में महामाहेश्वर कहते हैं–

येन सर्वमिदम् बद्धम् प्रकृतिविकृतिश्च या
गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्रह्मणं विदुः।
अभयं सर्वभूतेभ्यः सर्वेषामभयं यत्तः
सर्वभूतात्मभूतो यस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥[2]

कि शिव-जीवन पद्धति ऐसी है कि जातिप्रथा की कोई रूढ़ि अथवा आग्रह नहीं।
कि जिसने प्रकृति एवं विकृति के सारे रहस्यों को जान लिया है, समस्त भूतत्त्वों की गति का जानकार है, जो निर्भीक है तथा किसी को भयभीत नहीं करता, ऐसे पुरुष को ब्राह्मण कहते हैं।

योनिःन कारणं तत्र शांतात्मा द्विज उद्यतें।[3]

कि ब्राह्मण की उत्पत्ति में योनि कारण नहीं हो सकती। अतः यह हमारे डीएनए में गहरे से है। अतः कहते हैं महामाहेश्वर को शूद्र होते हुए भी शील संपन्न तथा विशिष्ट गुणों से विभूषित होने पर ब्राह्मण ही कहा जाता है–

शूद्रोऽपि शील संपन्नो गुणवान्ब्राह्मणो भवेत्।
अतः ब्रह्मणेन कृतम् पापम् शूद्रेण सुकृतम् कृतम्।
किं तत्र कारणं जाति धर्माधर्मेषु शास्यते ॥[4]

अतः ब्राह्मण पापी है तथा शूद्र सत्कर्मी तो यहां जाति का कोई अर्थ नहीं। संवित्प्रकाश, शिवप्रकाश में प्रवेश के अधिकार में जाति का अर्थ नहीं। यह जो वैज्ञानिक दृष्टि है, कश्मीर शैव समाज में गहरे व्याप्त है। इसका हमें बहुत गर्व होना चाहिए, है भी। आज हम कश्मीरेतर भारतीय हिंदू समाज में जातिभेद देखकर दंग रह जाते हैं। बहुत ही आश्चर्यचकित होते हैं, हम दुःखद रूप से कि यह जातिभेद का कैसा विष है हमारे भारत देश में जिसने इसके भीतर बैठे शत्रु को ताकत दी है। यह कैसी विडंबना है। कश्मीर से निष्कासन के बाद हम इसके शिकार हो गए। जबकि हम इस संदर्भ में बिल्कुल अबोध थे। निरे अबोध। हमें जिहाद के हाथों जिनोसाइड के शिकार होने के बाद शेष भारत में शरण लेने पर इस भेदभाव का शिकार होना पड़ा तथा यह विष पीना पड़ा। इस

संबंध में मैंने अपने कुछ कटुतम अनुभवों को अपने नए उपन्यास में अभिव्यक्त किया है।

तो कहने का तात्पर्य है कि हमें हमारी युवा पीढ़ी में शिवदृष्टि तथा तद्नुसार जीवन शैली को उतारना चाहिए ताकि एक सम्यक् ईको सिस्टम तैयार हो। भारतीयता के संदर्भ में शिव अद्वय ही हमें वह ईको सिस्टम दे सकता है, जो हमें भारत विरोधी ईको सिस्टम से लड़ने के लिए चाहिए। जिसकी घोर आवश्यकता है, इस क्षण भारत को। यह वास्तविक अद्वय है। इससे हमारी गिरी हुई चेतना भी ऊर्ध्वगामी होगी। भारत भूमि शिवशक्ति के अद्वय विसर्ग के बोध से खिलेगी तथा राजनीति द्वारा उपजाए अवसाद एवं उलझाव भी सुलझ जाएंगे। भारतीय गण सहज हो जाएंगे तथा राज्य की भी उलझन या उलझाने की वृत्ति भी अनावृत होकर धूमिल हो जाएगी। शिव का सनातन तथा निर्बाध उजास छा जाएगा।

वस्तुतः शिव का अर्थ ही कल्याण है। पारस्परिक व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अभेद, अद्वय संविति का भावबोध, विरलता की संभाव्यता में चिद्प्रकाश का दमकना ही शिवदर्शन है। यही मोक्षदायी इसप्रकार है जैसे कोई बहुत सरलता से वृक्ष से परिपक्व फल हस्तगत करता है।

जातिभेद संबंधी व्याकुलता, असहजता, चिंता तो भारतीय समाज के आभ्यंतर में है ही, दूसरा संकट जो इससे उद्भूत है, वह यह कि संकट काल की अनुध्वनि से व्याप्त बधिरता। जिसके फलस्वरूप जिस चैतन्य को अखंड रूप होना चाहिए, वह खंड-खंड हो उठा है तथा इसका विखंडन करने वाले अशिव इच्छाधारी उत्पन्न हो गए हैं, उनको सफलता मिल रही है। हम धरा और धर्म अर्थात् कश्मीर जो कि सनातन धर्म की स्थली है, तथा धर्म, जो कि शैवसनातन है, अतः अपने स्थान से बेदखल किए जाने के कारण हमारे जीवन रथ के दोनों पहिए टूटे हैं। यही हाल सारे देश का हो रहा है धीरे-धीरे। कोई कहे कि ऐसा नहीं है, नहीं, ऐसा ही है।

मुझे स्वयं को जानना है, पहचानना है, कि मैं शिव हूं, सो कैसे हूं। अतः मुझे स्वयं प्रयास कर, इच्छाशक्ति से काम करना है। शिव तंत्र में डुबकी मारनी है। अतः श्री तंत्रालोक में प्रवेश किया। इसलिए नहीं कि मुझे मोक्ष मिले बल्कि इसलिए कि मुझे मेरा देश, धर्ममय देश पुनः प्राप्त हो। तथा यह भी कि क्या मेरे तंत्र में, मेरे धर्महीन तथा धराहीन होने की स्थिति की कोई औषधि द्वारा निवारणार्थ है।

इस संदर्भ में भी अभिनवगुप्त समाधान देते हैं। क्योंकि यह समय राजा हर्ष के राजकाज के अनुभवों से सद्यः गुजरा था, जिसकी विकृत कार्य पद्धति ने कश्मीर के समाज तथा सेना में इस्लाम की घुसपैठ संभव की थी तथा समाज में विकृतियां एवं धर्मविरोधी हलचल शुरू हो चुकी थीं जिसका समाधान महामाहेश्वर अभिनवगुप्त ने 'श्रीतंत्रालोक' के पंद्रहवें आह्नीक के अंतर्गत दिया है, जिसमें उनका सुझाव है कि म्लेच्छों से संग-साथ के भयावह परिणामों को रोकने के लिए आवश्यक है कि योग तथा सनातन धर्म के प्रचार संस्थानों का निर्माण किया जाए।

यथा स्वभावतो म्लेच्छा अधर्मपथ वर्तिनः
तत्र देशे नित्यत्येथं ज्ञानियों गौ स्थिति क्वचित ॥[5]

इस कथन का मर्म यह है कि जैसे म्लेच्छ स्वभावतः अपने धर्म का प्रचार करने में प्रवृत्त होते हैं तथा दूसरों को भी उसका अनुसरण करवाने में संलग्न रहते हैं, तथा नियमित उस देश में अधर्म का आचरण ही सर्वजन विषय बन जाता है, वहीं उसके उत्तर में धर्म की रक्षा के लिए देश में ज्ञान तथा योग के संस्थान, खोलने चाहिए, क्योंकि ज्ञान एवं योगशालिनी दिव्य शक्तियों के पीठ इस अधर्म के प्रसार का यथोचित उत्तर तैयार करेंगे, अर्थात् अधर्म के इस आक्रमण को विफल कर देंगे। क्योंकि–

यथा चातन्मयोप्येति पापितां तै समाततात्
तथा पीठस्थितोऽप्येति ज्ञानयोगादिपात्रताय ॥[6]

ऐसा कैसे होगा कि म्लेच्छों के अधर्म प्रचार का विष ज्ञान एवं योग पीठों के निर्माण से काटा जा सकता है, इस बात का सम्यक् बोध कराते हुए वे समझाते हैं कि जैसे अतन्मय अर्थात् पापी, अधर्म प्रवृत्त व्यक्ति के संसर्ग में रहने वाला व्यक्ति अभी अधर्म में लिप्त न हो पर संग-दोष के कारण धीरे-धीरे पाप-भाव को प्राप्त कर लेता है, उसी तरह यदि कम धर्म प्रवृत्त अर्थात् जड़ चेतना के लोगों के लिए इन पीठों एवं संस्थानों में धर्म-प्रवृत्त लोगों का संग सुलभ होगा तो कालांतर में ये भी जड़ता का त्याग कर धर्म, योगादि की योग्यता को प्राप्त कर लेगा, इसप्रकार बोध का प्रसार ही धर्म की स्वतः रक्षा करेगा।

आज के संदर्भ में यह कितनी सटीक नीति हो सकती है। आज हम देखते हैं कि शिक्षण संस्थानों (मदरसों) की भरमार है, जबकि कोई गुरुकुल नहीं। अतः इसका परिणाम हमारा देश भुगत रहा है। भारतीय समाज भुगत रहा है। इसप्रकार महामाहेश्वर अभिनवगुप्त ने अपने इस महाग्रंथ में इस भविष्य की महाविभीषिका की ओर संकेत कर रखा है तथा उसका समाधान भी दिया है, जो किसी अन्य धर्मग्रंथ में नहीं। संभवतः इसलिए कि तब ऐसी आशंकाओं की भनक भी न थी।

'श्रीतंत्रालोक' में अद्भुत भारत वर्णन है। सैंतीसवें आह्नीक में वे कहते हैं कि कन्याकुमारी भुवन में भारत देश आता है। अतः

कन्याह्वयेऽपिभुवनेऽत्र परं महीयान
देशः स यत्र किल शास्त्रवराणि चक्षु।
जात्यंधसद्मनि न जन्म न कोऽभिंदिः
दि्भन्नांजनायितर विप्रमुखप्रकाशे ॥[7]

अर्थात् यह (भारत) देश अत्यंत पावन तथा महामहनीय देश है। इस देश का वैशिष्ट्य है कि यहां विश्व रहस्य दर्शन के लिए, इसके स्वरूप के निरूपण के लिए दिव्यातिदिव्य अभिनव आंखें

उपलब्ध हैं। ये आंखें स्वयं शिव द्वारा प्रवर्तित शास्त्र हैं। वे नई दृष्टि देते हैं। उनसे जांच-परख कर साधक सर्वोत्तम प्राप्य को पा लेता है। यह सत्य है कि अंधे के घर कोई अंधा बनकर जीना नहीं पसंद करता। जहां ज्ञानात्मक प्रकाश के लिए सूर्य की रश्मियां जन-जन की आंखों में अंजन लगाने के लिए मचल रही हों, वह देश कितना स्पृहणीय हो सकता है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। सौभाग्य से ही ऐसे देश में जन्म होता है। इस सदृश कोई दूसरा देश इस भूमंडल में नहीं, क्योंकि इसमें कश्मीर जैसा अप्रतिम क्षेत्र भी है। जहां कि–

यत्र स्वयं शारदचंद्रशुभ्रा
श्रीशारदेति प्रथिता जनेषु
शांडिल्यसेवारस सुप्रसन्ना
सर्व जने स्वैभिवैयुनक्ति ॥[8]

कश्मीर के उस (शारदा, वर्तमान पाकिस्तान अधिकृत जम्मू-कश्मीर) क्षेत्र में स्वयं देवी सरस्वती का विग्रह विद्यमान था। समाज में उसकी बड़ी मान्यता थी। महामाहेश्वर का 'जनेषु' प्रयोग तत्कालीन विद्याप्रेमी समाज की ओर ही संकेत करता है। ऐसे समाज में मां शारदा की प्रसिद्धि न हो, यह सोचा भी नहीं जा सकता। मां सरस्वती की वह प्रतिमा श्वेत संगमरमर जैसे मूल्यवान श्वेत धातु की रही होगी। इसी आधार पर शास्त्रकार ने उसे शरत पूर्णिमा की पूर्ण और आकर्षक सुषमा से समन्वित ऐसा प्रयोग किया है।

मां शारदा की आराधना में शांडिल्य गोत्रीय विप्र वर्ग का व्यक्ति नियुक्त था। आराधना आराध्य की होती है। सेवा माता सदृश्य पूज्य गुरुजनों की होती है। यहां का शांडिल्य गोत्रोत्पन्न विप्र सेवाधर्म से भी परिचित था। भक्तों का स्वागत, अभिनंदन गुरुजनों की सेवा कहलाती है। कश्मीर की अद्‌भुत सुषमा, सौंदर्य के विषय में महामाहेश्वर कहते हैं–

स्थाने स्थाने मुनिभिरखिलैश्चक्रिरे यन्निवासा
यच्चाध्यास्ते प्रतिपदमिदम् स स्वयं चंद्रचूड़ः
तन्मन्येऽहं समभिलाषिताशेषसिद्धेर्नसिद्धयै
कश्मीरेभ्यः परमव्य पुरम् पूर्णवृत्तेर्न तुष्टयै ॥[9]

ललितादित्य शासित शांत सुव्यवस्थित कश्मीर राज्य में स्थान-स्थान पर मननशील मुनियों के आश्रम थे। एक तरफ भगवान भूतभावन चंद्रचूड़ की लीलास्थली का प्रतीक था, तो दूसरी ओर यह पावन ऋषियों की तपःस्थली भी थी। तपःस्थली तो स्थान-स्थान पर थी, पर चंद्रचूड़ प्रतिपद अध्यासीन थे। इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर महामाहेश्वर की महनीय महीयसी मही थी। शास्त्रकार कहते हैं कि मेरी मान्यता तो यह है कि केवल छोटी-मोटी सिद्धियों की ही नहीं अपितु सम्यक् रूप से अभिलषित अशेष अर्थात् संपूर्ण सिद्धियों को प्रदान करने वाला कश्मीर से बढ़कर कोई स्थान इस ब्रह्मांड मंडल में नहीं है। इसी के साथ यह भी ध्यान देने की बात है कि जब तक मनुष्य में तुष्टि

का अनुत्तर आनंद न हो, सारी सिद्धियां व्यर्थ हो जाती हैं। इस दृष्टि से भी समस्त वृत्तियों की पूर्णतः ख्यातिमयी तुष्टि का ही सर्वाधिक महत्त्व है। शास्त्रकार कह रहे हैं कि इसप्रकार की तुष्टि प्रदान करने वाला कश्मीर भारतीयता का स्रोत है। अतः मुकुटमणि है। इसकी रक्षा के साथ भारत की रक्षा आबद्ध है। यह महामाहेश्वर अभिनवगुप्त का स्थानबोध व्यक्त करता है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक 1, 12, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
2. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक श्लोक 513 का जयरथ का भाष्य, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
3. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक श्लोक 513, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
4. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक 15, श्लोक 513 की जयरथ द्वारा पुनः विवेचना, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
5. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक -15ए कारिका - 18, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
6. वही, 19।
7. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक 37, श्लोक 37, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
8. 'हंस', डॉ. परमहंस मिश्र, 'श्रीतंत्रालोक', आह्नीक 37, श्लोक 41, वाराणसी : संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय।
9. वही, श्लोक - 40।

□

अभिनवगुप्त का सौंदर्यशास्त्रीय अवदान

मयंक शेखर

भारतीय सौंदर्यशास्त्र की परंपरा एक सुदूर पूर्ववर्ती काल से अविच्छिन्न रूप से परिवर्धित एवं परिमार्जित होती हुई अद्यतन विकास पथ पर आरूढ़ है। इस सुदीर्घ परंपरा में चिंतकों ने अपनी सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से सौंदर्य संबंधी अनेक मूलतत्त्वों का अन्वेषण किया है। प्रत्येक आचार्य के चिंतन अपने आप में मौलिक थे। यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि इन्हीं आचार्यों की निरंतर, अग्रगामी चिंतन सरणि ने उत्तरकालीन पीढ़ी को एक मौलिक, सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ सिद्धांत के प्रस्तुतीकरण में सामर्थ्यवान बनाया।

कालावधि में कुछ क्षण ऐसे होते हैं जिनका आकलन कठिन होता है। इतिहास में ऐसा ही एक समय अभिनवगुप्त (950 ई.-1015 ई.) का है जिन्होंने भारतीय सौंदर्यशास्त्र को अपनी शैवदर्शन की पीठिका पर रखते हुए एक नई दिशा दी। अभिनवगुप्त की कृतियां अपनी जटिल, भाव-गांभीर्य के साथ-साथ दर्शनशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र व रहस्यशास्त्र के अंतःमिश्रण के कारण वैश्विक अध्येताओं का ध्यान आकर्षित करती हैं। भारतीय सौंदर्यशास्त्र की सुदीर्घ परंपरा में अभिनवगुप्त एक आधार स्तंभ की भांति हैं। अरिंदम चक्रवर्ती ने अभिनवगुप्त की कृतियों के अध्ययन को ध्यान का एक ऐसा रूप बताया है जिसमें स्व-परिवर्तन होता है, यह आत्मविश्रांति का स्वाद है।

आचार्य अभिनवगुप्त की कृतियों के अध्ययन से यह विदित होता है कि आचार्य की सारस्वत साधना बहुविध रूपों में प्रस्फुटित हुई है। अभिनवगुप्त ने अपनी कालजयी कृतियों की रचना से अपने आप को सिर्फ स्थापित ही नहीं किया, अपितु परवर्ती प्रज्ञा-परंपरा को काफी हद तक प्रभावित किया। वे भारतीय विद्या की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने सौंदर्यशास्त्र के विभिन्न पक्षों का न केवल परिष्कार किया बल्कि स्वयं अनुभूत सिद्धांतों की स्थापना भी की। इन्होंने लगभग 42 ग्रंथों का प्रणयन किया। अपनी कृतियों के आधार पर वे आगमशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र और भक्तिशास्त्र के व्याख्याता के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

अभिनवगुप्त ने सौंदर्यशास्त्र से संबंधित दो ग्रंथ लिखे, पहला आनंदवर्धन के 'ध्वन्यालोक' की व्याख्या लोचन एवं दूसरा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र की व्याख्या 'अभिनवभारती'। इन दोनों ग्रंथों

में वे सौंदर्य चिंतन को दर्शन के समकक्ष रखते हुए साहित्य के विभिन्न विवेच्य पक्षों और उस संदर्भ में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों को अपने दर्शन के आलोक में एक नवीन अर्थच्छाया प्रदान करते हैं। अभिनवगुप्त की उपलब्धियों पर दृष्टिपात करने से पूर्व यह जानना अति आवश्यक है कि उनके अनुसार मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है स्वात्मा को जानना। मोक्ष को परिभाषित करते हुए वे कहते हैं कि अपने स्व-स्वरूप को जानना ही मोक्ष है। आत्मा ही संवित् है। अतः आत्मलक्षण ही मोक्षलक्षण है। यह आत्म-प्रथन दर्शनशास्त्र से तो होता ही है, काव्य से भी हो सकता है। 'लोचन' एवं 'अभिनवभारती' मे जहां एक ओर साहित्यशास्त्रीय विषयों का प्रतिपादन है तो दूसरी ओर उनमें शैव दर्शन के परिपाक भी हैं। जहां वे 'लोचन' के चार उद्योतों के अंत में वाक् के चतुर्विध रूप परा, पश्यंती, मध्यमा एवं वैखरी की शैवदर्शनालोक में अद्भुत व्याख्या करते हैं, वहीं 'अभिनवभारती' के छत्तीस अध्यायों में शैवदर्शन अभिमत 36 तत्त्वों का वर्णन करते हैं।

परवर्ती युग को 'लोचन' एवं 'अभिनवभारती' के आधार पर ही 'रसस्वरूप' का विवेचन प्राप्त होता है। लोल्लट की उत्पत्तिवाद, शङ्कुक की अनुमितिवाद और भट्टनायक के भुक्तिवाद की सोपान-परंपरा से आनंदवर्धन की अभिव्यक्तिवाद की भूमिका तक रस निरूपण की जो यात्रा है, जो संतति है, जो निरंतरता है, वह एकमात्र अभिनवगुप्त के इन दो ग्रंथों की देन है। परवर्ती सौंदर्यशास्त्र में ऐसा कोई भी विचार या सिद्धांत दिखाई नहीं पड़ता जिसे अभिनवगुप्त ने न कहा हो। वे इन दोनों ग्रंथों में सौंदर्यशास्त्र के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों का प्रतिपादन बड़ी ही विद्वत्तापूर्ण शैली में करते हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि उनके द्वारा प्रतिपादित समस्त विषय अपने आप में पूर्ण एवं अंतिम हैं। अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र की व्याख्या न करते हुए चार श्लोक उद्धृत करते हैं, जो उनकी उदारवादी दृष्टि की परिचायिका है।[1] उनका यह मानना है कि किसी भी परंपरा में प्रत्येक चिंतक एक सोपान की भांति होता है। इसी सोपान पर आरूढ़ होकर उत्तरवर्ती चिंतक एक नए अर्थ का दर्शन करता है। इस शोध-पत्र में 'लोचन' एवं 'अभिनवभारती' इन दो ग्रंथों को केंद्र में रखते हुए अभिनवगुप्त के कुछ महत्त्वपूर्ण सौंदर्यशास्त्रीय अवदानों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

हृदय, सहृदय, हृदयसंवाद एवं तन्मयी भवन की अवधारणा

'ध्वन्यालोकलोचन' में 'सहृदय' के स्वरूप को बताते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि काव्य के अनुशीलन के अभ्यासवश जिनके विशदीभूत अर्थात् स्वच्छ या निर्मल मनरूपी दर्पण में वर्णनीय वस्तु के साथ तन्मयीभवन की योग्यता हो, अपने हृदय का ही संवाद (प्रमाण) के रूप में भजन करने के कारण ऐसे लोग 'सहृदय' कहे जाते हैं।[2] सहृदय का सामान्य अर्थ है—हृदय के साथ होना (हृदयेन सह)। अपने त्रिक दर्शन के आलोक में अभिनवगुप्त कलाशास्त्रीय अवधारणाओं की अभूतपूर्व व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं अवधारणाओं में से एक 'हृदय' की अवधारणा है। कश्मीर शैव दर्शन में हृदय समस्त वस्तु जगत् की प्रतिष्ठा का स्थान है। अभिनवगुप्त के परमेष्ठी गुरु उत्पलदेव अपनी 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' में कहते हैं कि देश, काल से निरपेक्ष, नित्य स्फुरणशील, महासत्ता एवं सार रूप में स्थित हृदय तत्त्व है।[3] यह स्फुरता जिसे त्रिक दार्शनिक शब्दावली में 'स्पंद' भी कहा जाता है,

परमशिव का स्वातंत्र्य है, विमर्श है। हृदय त्रिकालातीत होता है, अर्थात् यह भूत, वर्तमान व भविष्य से अनालिप्त होता है, इसमें तीनों काल के पदार्थों की उपस्थिति हो सकती है। इस हृदय तत्त्व में आनंद शक्ति का समावेश होता है, जिससे वे सहृदय कहे जाते हैं। सहृदय का चित्त या हृदय एक स्वच्छ दर्पण की भांति होता है। स्वच्छ दर्पण में जिस प्रकार विश्व की वस्तु सत्ता का प्रतिबिंबन होता है,[4] ठीक उसी प्रकार सहृदय के चित्तरूपी दर्पण में वर्णनीय वस्तु का प्रतिबिंबन होता है। इस प्रतिबिंबन के लिए दो शर्तें हैं, पहला समान गुण वाला होना एवं दूसरा बिंब की अपेक्षा अधिक विमल (स्वच्छ) होना।[5] अभिनवगुप्त इस स्वच्छता के लिए दो उपादानों की चर्चा करते हैं। पहला, काव्यानुशीलन के अभ्यास से एवं दूसरा प्राक्तन पुण्य के परिपाक से।[6] काव्यानुशीलन के अभ्यास में कालगत दैर्घ्य एवं नैरंतर्य दोनों अपेक्षित हैं।[7] दीर्घकाल तक एवं निरंतरता से किए गए काव्यपाठ से मन स्वच्छ या निर्मल होता है। अभिनवगुप्त अपने 'तंत्रालोक' में कहते हैं कि अपने प्रकाश को न छोड़ते हुए अपने में अभेद रूप से भिन्न वस्तुओं का दर्शन करा पाने की क्षमता ही स्वच्छता है।[8] इस स्वच्छता को हृदय की निर्मलता या विमलता भी कहा जाता है। 'तंत्रालोक' के व्याख्याकार जयरथ प्रतिबिंब ग्रहण की क्षमता को निर्मलता कहते हैं।[9] 'अभिनवभारती' में अभिनवगुप्त इस हृदयनैर्मल्य को सुकुमारता नाम से अभिहित करते हैं एवं एक दृष्टांत के माध्यम से समझाते हैं। कठोर, कंकरीले एवं कंटीले स्थान में संचरणशील व्यक्ति को देखकर एक सुकुमार हृदयवाली प्रमदा को उस संचरणशील व्यक्ति के चित्त में अनुप्रवेश से अत्यंत खेद का अनुभव होता है, इसी प्रकार सहृदय भी कविचित्त में अनुप्रवेश कर विषयों का आस्वादन करते हैं। सुकुमारता, जो वैमल्य का अपरपर्याय है, वहीं सहृदय की सहृदयता है। कविहृदय के साथ तादात्म्यापत्ति की योग्यता है।[10]

हृदय की निर्मलता से सहृदय में वर्णनीय वस्तु के साथ तन्मयीभवन की योग्यता आती है, अर्थात् वह वर्ण्य विषय में डूब जाता है, एकाकार हो जाता है। इस तन्मयीभवन की स्थिति में वह निराकांक्षी हो जाता है।[11] जिस प्रकार व्यक्ति दर्पण में अपने मुख को बार-बार देखते हुए उसके साथ एकात्म भाव को प्राप्त कर लेता है एवं उसे अपना मुख मान लेता है, उसी प्रकार ध्यान, पूजा, अर्चना, जप आदि रूपी दर्पण में साधक अपने को निमग्न कर एकात्म भाव प्राप्त कर लेता है। इसे ही तांत्रिक शब्दावली में 'अनुत्तरतत्त्वप्राप्ति' कहते हैं। काव्यजगत् में ठीक इसी तरह सहृदय अपने सम्मुख उपस्थापित वर्ण्य विषय में अपने चित्त को डुबा देता है, उसके साथ एकाकार हो जाता है। यही तन्मयीभवन की स्थिति है। इसके विपरीत जिनमें तन्मयीभवन की योग्यता का अभाव होता है, वे 'अहृदय' कहे जाते हैं।[12] 'तंत्रालोक' के टीकाकार जयरथ इसी बात को दुहराते हुए कहते हैं कि जिन पुरुषों को आह्लाद के कारण भूत राग-रागिनियों के माधुर्य की स्थिति में भी तन्मयीभवन का उदय नहीं होता है, ऐसे लोग अहृदय कहे जाते हैं।[13] इसी संदर्भ में अपने ग्रंथ 'तंत्रालोक' में अभिनवगुप्त एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं कि मधुर गीत के श्रवण से, या चंदनादि के स्पर्श से हृदय में एक स्पंद की लहर उठती है, ऐसी एकतानता आती है जिसमें व्यक्ति खो जाता है, विषय को अपना बना लेता है, ताटस्थ्य का परिहार हो जाता है। इस स्थिति को माध्यस्थ्य विगम कहते हैं। इसे ही आनंदशक्ति कहते हैं

जिसके कारण व्यक्ति सहृदय कहे जाते हैं।[14] जयरथ अपने 'तंत्रालोकविवेक' में इस संदर्भ की अद्भुत व्याख्या करते हुए इसे सौंदर्यशास्त्र से जोड़ देते हैं।[15] ध्यान देने की बात है कि 'तंत्रालोक' के इस पद्य के माध्यम से अभिनवगुप्त कलासर्जना से लेकर कलास्वादन तक की संपूर्ण प्रक्रिया का संकेतन कर देते हैं जिसे अधोलिखित चित्र के द्वारा देखा जा सकता है[16]–

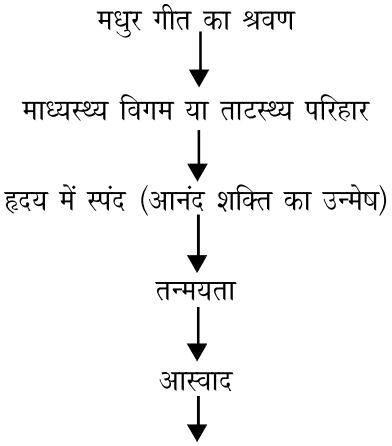

इस संदर्भ में हमें एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि इस तन्मय होने की स्थिति के पूर्व सहृदयों के हृदय का विषय के साथ संवाद स्थापित होता है, जिसे अभिनवगुप्त 'हृदयसंवाद' नाम से अभिहित करते हैं। इस हृदयसंवाद के बाद ही तन्मयीभवन हो पाता है। वस्तुतः इस हृदयसंवाद में सात क्रियाएं होती हैं जिनका उल्लेख जयरथ अपनी 'विवेकटीका' में करते हैं। ये सात क्रियाएं अधोलिखित हैं–

- स्वात्मसंविद् में औन्मुख्य
- जागतिक वस्तुओं का संविद् संघट्ट
- समस्त वस्तु सत्तात्मक जगत् संविद रूपी पारमार्थिक सत्ता में प्ररोह
- चिन्मय बोध का उल्लास
- पूर्ण आवेश के कारण चित्त के संकोच का क्षय एवं शिव में विलय
- चित्त का चिति में परिवर्तन
- चित्त का सर्वथा प्रलय

काव्य में यह हृदयसंवाद गुणालंकार युक्त मनोहर शब्दार्थ से होता है, तो वहीं नाट्य में रमणीय गीत, वाद्य, चतुर्विध अभिनय आदि के बल पर होता है।[17] अभिनवगुप्त अपनी सौंदर्यशास्त्रीय प्रक्रिया को स्पष्ट करने हेतु हृदयसंवाद शब्द का प्रयोग करते हैं। नाट्यशास्त्र के छठवें अध्याय में भरतमुनि एक कारिका में इस शब्द का प्रयोग करते हैं, किंतु इस भाग पर अभिनवगुप्त की व्याख्या प्राप्त नहीं होती है।[18] अपनी लोचनटीका में भी सहृदय को परिभाषित करते समय अभिनवगुप्त इसे उद्धृत करते हैं, किंतु यहां भी इसकी व्याख्या नहीं करते हैं। इसकी व्याख्या उत्तुङ्गोदय की 'कौमुदी

टीका' में प्राप्त होती है, जो संभवतः 'अभिनवभारती' का अनुपलब्ध अंश है।[19] कवि की वर्णना में अधिरूढ़ विभावादि ही अर्थ हैं। इन्हीं अर्थों के साथ सहृदय के हृदय का संवाद होता है। दूसरे शब्दों में, हृदयसंवाद के विषय ये विभावादि ही बनते हैं। इस संवाद के फलस्वरूप सहृदय के निर्मल हृदय में कविनिबद्ध विभावादि अर्थ समुन्मिषित होने लगते हैं जो रसोत्पत्ति के हेतु बनते हैं। इस रसरूपी अर्थ से न केवल हृदय अपितु शरीर का प्रत्येक अवयव व्याप्त हो जाता है और यह व्याप्ति झटिति ही होती है जिस प्रकार अग्नि एक सूखी लकड़ी के टुकड़े को ही व्याप्त कर लेती है, शिलादि को नहीं।

'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में अभिनवगुप्त ने अधिकारी के स्वरूप लक्षण पर सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करते हुए शास्त्र के अर्थ एवं अधिकारी के बीच बिंब-प्रतिबिंब भाव की कल्पना की है। अभिनव की दृष्टि में अधिकारी की चार कक्षाएं होती हैं जिनसे होकर वह गुजरता है एवं अंत में स्वसंविद में एकाकार हो जाता है। अधिकारी 'आरोग्यकामाः शिवां सेवन्तां सेवध्वम्' अर्थात् आरोग्य की कामना से शिव की सेवा करें—इस वाक्य को सुनता है। यह वाक्यश्रवण अधिकारी की प्रथम कक्षा है। द्वितीय कक्षा में अधिकारी के चित्त में इस वाक्य का अर्थ प्रतिबिंबित होता है। वह एक सही अर्थ में अधिकारी है, अतः प्रथम कक्षा में सुने गए वाक्य, जो कि मध्यम पुरुष (सेवध्वम्) प्रथम पुरुष (सेवंताम्) में है, वह अब उसे उत्तम पुरुष में (सेवामहै) पर्यवसित होकर ही प्रतीत होता है।[20] अगर वह सही अर्थ में अधिकारी नहीं है तो प्रथम कक्षा में ही वह विरमित हो जाता है, द्वितीय कक्षा में आरोहण संभव नहीं होगा।[21] इस द्वितीय कक्षा, जो कि मध्यम पुरुष (सेवध्वम्) से उत्तम पुरुष (सेवामहै) में पर्यवसान है, के बाद अधिकारी इस परिणति (अर्थात् मुझे भी करना चाहिए) को अपने इच्छित अंतिम अर्थ के प्रति उपायभूत मानते हुए इसका सेवन या आचरण (शिव की सेवा) करता है। सेवन या आचरण रूपी अर्थ ही अधिकारी की तृतीय कक्षा है। चतुर्थ कक्षा इस आचरण का आरोग्यरूपी फल है, जो कि मूलतः तृतीय कक्षा में ही साकार होने लगता है, या स्वात्मीकृत हो जाता है। इस तृतीय एवं चतुर्थ कक्षा में काल का क्रम नहीं है इस कारण यह चतुर्थ कक्षा अकालकलित है। इस चतुर्थ कक्षा में अधिकारी अपने आरोग्यरूपी फल को प्राप्त करते हुए, पूर्णता के अभिमान के साथ स्वसंविद् के साथ एकाकार हो जाता है।[22] इसी प्रकार, सहृदय किसी पद्य को सुनकर इन चार कक्षाओं से संक्रमित होता हुआ अंत में स्वसंविद्मय हो जाता है। अभिनवगुप्त की सहृदय की अवधारणा एवं शैव पृष्ठभूमि में अधिकारी की अवधारणा में परस्परान्विति देखने को मिलती है। अभिनवगुप्त की सौंदर्यशास्त्रीय प्रक्रिया में सहृदय, हृदयसंवाद, तन्मयीभवन एवं आनंदशक्ति का उदय ये सभी अंतः मिश्रित एवं अन्योन्याश्रित हैं।

काव्य का प्रयोजन

संभवतः भामह से प्रेरणा लेते हुए अभिनवगुप्त काव्य-प्रयोजन को समझाने के लिए द्विआयामी समीकरण प्रस्तुत करते हैं। भामह के 'काव्यालंकार' के एक पद्य का संदर्भ देते हुए अभिनवगुप्त काव्य-प्रयोजन को कवि के दृष्टिकोण से एवं सहृदय के दृष्टिकोण से विभक्त करते हैं। अभिनवगुप्त का स्पष्ट मानना है कि कवि के लिए कीर्ति (यश) प्रयोजन है, किंतु इस कीर्ति से भी

वह प्रीति का ही संपादन करता है, क्योंकि कीर्त्ति स्वर्गरूपी फल को देने वाली है।[23]

सहृदय के पक्ष में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ प्राप्ति, कलाओं में निपुणता एवं प्रीति काव्य के मूल प्रयोजन हैं। किंतु यहां भी प्रीति अर्थात् आनंद ही मुख्य प्रयोजन है, अन्यथा प्रभुसम्मित वेदादिशास्त्र, मित्रसम्मित इतिहास-पुराणादि शास्त्र जो व्युत्पत्ति के हेतु हैं, इनसे व्युत्पत्ति के हेतु काव्य का कांता सम्मितत्त्वरूप में क्या भेद रह पाएगा?[24] शैली भेद के आधार पर वाङ्मय की त्रैविध्यमूलकता प्रसिद्ध है। वेदादि शास्त्रों की शैली प्रभुसम्मितवत् होती है जिनमें शब्दों की प्रधानता होती है। वेद वाक्यों से जो कुछ कहा जाता है, उसका अक्षरशः पालन अनिवार्य होता है। ऐसे शास्त्र शब्दप्रधान होने से राजाज्ञा के समान या प्रभुसम्मित कहे जाते हैं। इतिहास-पुराणादि शास्त्रों की शैली सुहृत्सम्मित या मित्रसम्मित होती है जिनमें अर्थ की प्रधानता होती है। 'इस कर्म से इसका यह फल हुआ' इसप्रकार युक्तियुक्तक कर्म एवं फल के मध्य संबंध का ज्ञापन ऐसे शास्त्र करते हैं। इनमें अभिप्राय पर विशेष बल होता है। इस संसार में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्हें वेद, स्मृति, इतिहास, पुराणादि के द्वारा व्युत्पन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये शास्त्र सरस नहीं होते। किंतु उन्हें व्युत्पन्न बनाना है, क्योंकि वे प्रजा के संचालक होते हैं। ऐसे सुकुमार राजकुमार आदि को व्युत्पन्न काव्य के माध्यम से किया जाता है। काव्य की शैली विलक्षण होती है जिसे कांतासम्मित कहा जाता है। इस तीसरे प्रकार की शैली में न तो शब्द की प्रधानता होती है, न ही अर्थ की अपितु शब्द व अर्थ दोनों को अप्रधान बनाते हुए रस की प्रधानता होती है। गुरु आदि के अधीन कांता जिस प्रकार अपने निजचातुर्य, कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि से सरसता को लाते हुए अपने प्रेमी को स्वाभिमुख करते हुए अपने में प्रवर्तित कर देती है, उसी प्रकार काव्य भी ललित पदसमूह से प्रदर्शित शृंगार रस से नीतिशास्त्रादि से विमुख सुकुमार राजकुमार आदि को मधुर रस का आस्वाद कराते हुए सरस उपदेश में प्रवर्तित कर देता है। अभिनवगुप्त की स्पष्ट मान्यता है कि वेद, स्मृति, इतिहास, पुराणादि से विलक्षण होता हुआ काव्य यद्यपि चतुर्वर्ग-व्युत्पत्ति का साधक है तथापि आनंद ही इसका पार्यंतिक फल है।[25] इस संदर्भ में अपनी लोचन व्याख्या में अभिनवगुप्त एक महत्त्वपूर्ण स्थापना करते हुए कहते हैं कि इस आनंद (प्रीति) एवं व्युत्पत्ति में कोई मौलिक भेद नहीं, क्योंकि इन दोनों का विषय एक है।[26] इसे स्पष्ट करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि संसार में राजपुत्र आदि ऐसे होते हैं जिन्हें वेद, स्मृति, इतिहास, पुराणादि के द्वारा व्युत्पन्न नहीं किया जा सकता है क्योंकि ये शास्त्र सरस नहीं होते। किंतु उन्हें व्युत्पन्न बनाना है, क्योंकि वे प्रजा के संचालक होते हैं। इन व्यक्तियों में ऐसी वस्तु के माध्यम से ही व्युत्पत्ति का आधान संभव है, जो सीधे हृदय में प्रवेश करें। हृदय में अनुप्रवेश रसास्वाद रूप ही होता है। यह रसास्वाद कविनिबद्ध विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी के सम्यक् संयोजन से ही संभव होता है, जो चतुर्वर्गव्युत्पत्ति के नांतरीयक उपाय हैं। दूसरे शब्दों में, कविनिबद्ध विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी के सम्यक् संयोजन से रस निष्पन्न होता है एवं इन्हीं विभावादि के माध्यम से चतुर्वर्ग व्युत्पत्ति का आधान भी कराया जाता है। इसप्रकार रसोचित विभाव आदि के उपनिबंधन में रसास्वाद का वैवश्य ही स्वभावतः होने वाली व्युत्पत्ति में प्रयोजक बनता है। यह प्रीति एवं व्युत्पत्ति भिन्न रूप नहीं हैं अपितु

एक रूप ही हैं, क्योंकि इनका विषय एक है। विभावादि का औचित्य ही रस का कारण है और ये विभावादि ही सहृदयों के हृदय में चतुर्वर्ग व्युत्पत्ति के आधायक हैं। इसप्रकार चतुर्वर्गव्युत्पत्ति रसास्वादमय ही होता है।[27]

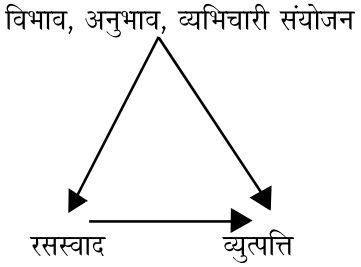

इसी संदर्भ में अभिनवगुप्त अपने गुरु भट्टतोत के कथन को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि प्रीति (आनंद) ही रस की आत्मा है, सार है; रस नाट्य है, और नाट्य वेद है।[28] अभिनवगुप्त बार-बार इस बात को दुहराते हैं कि नाट्य रस है, रस नाट्य है[29] एवं व्युत्पत्ति इसका फल है।[30] नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने नाट्य की उत्पत्ति वेदों से बताते हुए कहा है कि ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत एवं अथर्ववेद से रसों को ग्रहण करके नाट्यवेद[31] की रचना की गई जिसे पंचम वेद भी कहा जाता है।[32] उपदेश का हेतु होने से अभिनवगुप्त भी नाट्य को नाट्यवेद से अभिहित करते हैं।[33]

नाट्य का प्रयोजन

नाट्य के प्रयोजन का उल्लेख करते हुए भरतमुनि कहते हैं कि यह नाट्य उत्तम, अधम व मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के कर्म का आश्रय लेने वाला, हितकारी उपदेश देने वाला एवं धृति (धैर्य), क्रीड़ा, सुख आदि का जनक है।[34] दुःखार्त, श्रमार्त, शोकार्त एवं तपस्वियों को यह नाट्य विश्रांति देने वाला है।[35] नाट्य शास्त्र के इस भाग पर प्रकाश डालते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि नाट्य सदैव लोकाश्रित होता है या लोकवृत्त का अनुसरण करता है। लोक में धर्मादि की प्रतीति बिना आश्रय के नहीं होती है। अतः लोक में जो धर्मादि के रूप में प्रसिद्ध हो गए हैं, ऐसे राम, सीतादि शब्दों का आश्रय इस नाट्य में लिया जाता है जिससे प्रेक्षक या सहृदयों को धर्मादि की प्रतीति हो सके।[36]

इसप्रकार का यह नाट्य विभिन्न प्रकार के प्रेक्षकों के लिए—जो व्याधि आदि से उत्पन्न दुःख, मार्ग की थकावट से उत्पन्न क्लेश, बंधु आदि की मृत्यु से उत्पन्न शोक से पीड़ित हैं एवं तपस्वी जनों के लिए जो विभिन्न प्रकार के चांद्रायण आदि व्रतों के पालन से अत्यंत दुर्बल एवं खिन्न हो गए हैं—विश्रांति देने वाला होता है।[37] इस संदर्भ में, अभिनवगुप्त विश्रांति का अर्थ दुःख के प्रसारण का विधातक करते हैं।[38] जिनके दुःख प्रतिहत हो गए हैं, ऐसे प्रेक्षकों में यह नाट्य आह्लादात्मक धृति, क्रीड़ा, सुख, मतिविवर्धन आदि का संचरण करता है। शोकार्त प्रेक्षक के लिए यह नाट्य धैर्य का, व्याध्यार्त के लिए क्रीड़ा का, श्रमार्त के लिए सुख का एवं तपस्वियों के लिए मतिविबोध का साधन बन जाता है।[39]

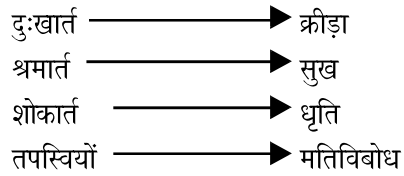

इतना ही नहीं, कालांतर में भी यह नाट्य उपदेश के माध्यम से सुख देता है। इसप्रकार, अभिनवगुप्त की दृष्टि में, यह नाट्य दुःखियों के दुःख का नाश करते हुए उन्हें धैर्य, क्रीड़ा, सुख, मतिविबोध प्रदान करता है एवं कालांतर में भी सुखलाभ देता है।[40] अभिनवगुप्त यह भी बताते हैं कि जो व्यक्ति दुःखादि से सर्वथा मुक्त हैं, ऐसे राजकुमारादि के लिए यह नाट्य लोकव्यवहार अर्थात् धर्मादि उपाय का साधन बनता है।[41] अभिनवगुप्त एक महत्त्वपूर्ण स्थापना करते हुए कहते हैं नाट्य या काव्य गुरुवत् उपदेश नहीं करते अपितु सहृदयों की बुद्धि का विवर्धन करते हैं।[42]

काव्य की सर्जना

ध्वन्यालोकलोचन के मंगलश्लोक में अभिनवगुप्त काव्य के स्वरूप पर नूतन दृष्टि से विचार करते हुए कहते हैं कि जो बिना किसी कारण-सामग्री के अपूर्व वस्तु का प्रथन करता है, पाषाणतुल्य नीरस जगत् को भी अपने रस से सारवान बना देता है, प्रख्या व उपाख्या के क्रम से सुभग होता हुआ जगत् को भासित करता है; कवि एवं सहृदय द्वारा आख्यात ऐसा सरस्वती का तत्त्व सर्वोत्कर्षशाली है।[43] इस श्लोक के माध्यम से अभिनवगुप्त तीन चरणों की बात करते हैं जिनसे होकर काव्य की अभिव्यक्ति होती है, जो इसप्रकार हैं–

1. **प्रथयति**–अभिनवगुप्त के विचार में, सर्वप्रथम कवि अपने स्वरूप का प्रथन करता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में अपने स्वरूप का प्रथन करने का अर्थ है–अपने स्वरूप को जानना। इस दर्शन में स्वरूप का अर्थ है अपनी चेतना या संविद् को जानना। कश्मीर त्रिकदर्शन का परम सत् संविद् है, जो प्रकाश और विमर्श–इन दो अविभाज्य तत्त्वों का संघट्ट है। इस दर्शन में प्रकाश के दो अर्थ हैं–प्रकाशते व प्रकाशयति–अर्थात् स्वयं को प्रकाशित करना एवं दूसरों को भी प्रकाशित करना।[44] प्रकाश सत्ता का पर्याय है।[45] जो प्रकाशित होता है, वही सत् है।[46] यह प्रकाश अर्थ की आत्मा है[47] एवं समस्त वस्तु जगत् इस संविद् के प्रकाश से प्रकाशित होता है।[48] दूसरे शब्दों में, समस्त अर्थजगत् इसी संविद् में प्रतिष्ठित होकर ही भासमान होता है एवं जो भासमान नहीं होते, उनकी सत्ता नहीं है।[49] कश्मीर शिवाद्वयवाद में परम सत् का दूसरा अवियोज्य तत्त्व विमर्श है जो वि + मृश् (आमर्शने) + घञ् प्रत्यय से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ स्पर्श, परामर्श, आमर्श आदि है। उत्पलदेव अपनी 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका' में विमर्श को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि अवभास या प्रकाश के स्वभाव को विमर्श कहते हैं। इस विमर्श के अभाव में प्रकाश से उपरक्त वस्तु भी जड़ ही रहती है, क्योंकि उसमें चमत्कार का अभाव होता है।[50] इसे प्रत्यवमर्श, स्वरसोदिका परा वाक्, चित्, चैतन्य, स्वातंत्र्य, ऐश्वर्य, कर्तृत्त्व भी कहा जाता है।[51] रामकंठ अपनी 'स्पंदकारिकावृत्ति' में इस प्रत्यवमर्श के बारे में कहते हैं कि वाक् के द्विविध रूप हैं, पहला जो मुख्य अर्थ अर्थात् चैतन्य के प्रकाश से संबंधित है,

दूसरा जो इस विश्व व इसके विभिन्न गुण, धर्म, क्रियादि से संबंधित है। जब वाक् मुख्य अर्थ से संबंधित होता है तब उसे प्रत्यवमर्श एवं जब वह विश्व के गुणधर्म से संबंधित होता है तब उसे विकल्प के नाम से जाना जाता है। यह प्रत्यवमर्श जो अहं-परामर्श के रूप में होता है, व्यक्ति का स्वभाव या स्वरूप है। इसे ही स्वातंत्र्य शक्ति कहते हैं। यह स्वातंत्र्य शक्ति ही समस्त बहिर्मुखी अर्थ जगत् को भाषित करती है। प्रत्यवमर्श की स्थिति में प्रमाता समस्त अर्थजगत् को स्व-संविद् में अंतर्भाषित करता है और यही उसका स्वरूप है। स्व-संविद् में अर्थ जगत् को समेटना ही प्रथन है, चित्त का प्रसार है। इस प्रसार में समस्त भाव जगत् स्वसंविद् में विश्रांत होते हैं।[52]

2. सारयति—कवि जब अपने स्व-स्वरूप में स्थित होता है तो उस समय उसके संविद् में समस्त भाव राशि प्रतिष्ठित होती है। ऐसे प्रतिष्ठित भाव राशि को कवि अपने चिद् रस से सरस बनाता है ताकि वह रस की चर्षणा करा पाने में समर्थ हो सके।

3. भासयति—यह कला सर्जना का अंतिम चरण है। सर्वप्रथम एक कवि अपने चित्त का प्रथन करते हुए समस्त भाव जगत् को स्व-संविद् में प्रतिष्ठित करता है, उसके बाद ऐसे भाव जगत् को अपने चिद् रस से सरस बनाते हुए सहृदयों के सम्मुख भासित करता है ताकि सहृदय भी कविहृदय का अनुभव कर सके। यही भासन है। कवि द्वारा अनुभूत विषय का अभिव्यक्तीकरण ही इस संदर्भ में काव्य सर्जना का निहितार्थ है।

ध्यातव्य है कि ये तीन चरण अर्थात् प्रथन, सारण व भासन कवि के संदर्भ में है, लेकिन सहृदय के संदर्भ में यह क्रम उलट जाता है, अर्थात् सबसे पहले भासन, फिर सारण एवं अंत में प्रथन अर्थात्, सहृदय के सम्मुख सर्वप्रथम कवि की रचना भासित होती है, उसके बाद उसका हृदय उसी रस से भर जाता है जिस रस की अभिव्यक्ति कवि ने की है, एवं अंत में सहृदय हृदय भी प्रथित हो जाता है।

मंगलश्लोक में अभिनवगुप्त 'प्रख्योपाख्याप्रसरसुभग' पद का प्रयोग करते हैं जो काव्यसर्जना को समझने हेतु अनिवार्य है। उतुङ्गोदय की कौमुदी एवं रामषारक की बालप्रिया व्याख्याएं 'प्रख्या' को प्रतिभा एवं 'उपाख्या' को वचन के रूप में व्याख्यायित करती हैं।[53] ये दोनों व्याख्याएं संभवतः उत्पलदेव की प्रख्या व उपाख्या की संकल्पना से प्रभावित हैं। उत्पलदेव प्रख्या को प्रकाश एवं उपाख्या को विमर्श रूप कहते हैं।[54] प्रख्या एवं उपाख्या को परिभाषित करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि स्व-स्वरूप को जानना प्रख्या है एवं इसे दूसरों के लिए उद्घाटित करना उपाख्या है।[55] अभिनवगुप्त के टीकाकार भास्कर भी प्रख्या व उपाख्या का अर्थ इसी रूप में करते हैं।

प्रख्या (प्रकाश) प्रमाता या कवि का ऐसा आंतरप्रत्यवमर्श रूप है जिसमें समस्त वस्तु जगत् अंतर्लीन होता है। उपाख्या वचन रूप है, जो प्रमाता के नित्य सान्निध्य में रहता है। प्रख्या के द्वारा कवि स्व-स्वरूप को जानता है एवं स्वरूप को जानने के बाद इसे दूसरों के लिए उन्मीलित करना चाहता है। यह उन्मीलन उपाख्या या वचन के द्वारा होता है। इसी प्रख्योपाख्या के क्रम से हृद्य होता हुआ काव्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है।

लोचन के एक उद्धरण में, अभिनवगुप्त 'रामायण' के क्रौंचवध के संदर्भ को लेते हुए आदिकवि वाल्मीकि के हृदय में समुत्पन्न शोक किस प्रकार श्लोक में परिणत हो गया—के माध्यम से सर्जना प्रक्रिया की अभूतपूर्व व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। तमसा नदी के तट पर स्नानार्थ गए महर्षि वाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी के जोड़े को विचरण करते हुए देखा। वे दोनों पक्षी आपस में रतिक्रीड़ा में आबद्ध थे। देखते-देखते ही एक व्याध ने उनमें से एक पक्षी (सहचरी) को सहसा मार डाला। अपनी सहचरी के मारे जाने से अर्थात् साहचर्य के ध्वंस हो जाने से क्रौंच नर के हृदय में उत्पन्न शोक रूप स्थायी भाव निरपेक्ष होने के कारण शृंगार एवं विप्रलंभ आदि से भिन्न है। वह शोक (पक्षी का) अनुकूल विभाव (सहचरी का हनन), एवं उससे उत्पन्न आक्रंदनादि अनुभाव की चर्वणा से हृदयसंवाद व तन्मयीभवन के क्रम से आस्वाद्यमानता को प्राप्त होता हुआ मुनि के हृदय में करुण रस में परिणत हो जाता है। यह शोक लौकिक शोकादि से सर्वथा भिन्न रूप है। ऐसी स्थिति में जब मुनि का चित्त करुण रस से भर गया। जिस प्रकार जल से भरा हुआ घड़ा छलक जाता है एवं जिस प्रकार चित्त वृत्ति के ही निःष्यंद रूप वाग्विलापादि होते हैं, उसी प्रकार 'समय' (संकेत) की अपेक्षा न रखते हुए भी चित्तवृत्ति के व्यंजक होते हैं, इस न्याय से अकृत्रिम रूप से आवेश के कारण समुचित शब्द, छंद, वृत्त आदि से नियंत्रित होता हुआ वह शोक श्लोक रूप में परिणत हो जाता है।[56]

अभिनवगुप्त की शैव पीठिका को ध्यान में रखते हुए इस संदर्भ में हमें यह समझना पड़ेगा कि मुनि का चित्त करुण रस से भर जाने के कारण वह स्वयं को भूल गए एवं उनका चित्त, जो जागतिक अवस्था में परिमित था, वह अब अपरिमित हो गया। यह अपरिमित चित्त ही अहंप्रत्यवमर्श है जो व्यक्ति का स्वरूप है। इस अहंप्रत्यवमर्श के कारण ही मुनि अपने स्वरूप का स्पर्शन करते हैं। कश्मीर त्रिक दर्शन में यह अहंप्रत्यवमर्श शब्द स्वरूप (परा वाक् स्वरूप) होता है। इस परा वाक् की स्थिति में किसी भी संकेत की अपेक्षा नहीं होती है। यह संकेत निरपेक्ष होता है। यह परा वाक् ही अपने आप को स्थूल रूप में अभिव्यक्त करते हुए वैखरी वाणी के रूप में श्लोक रूप में परिणत होती है।

शोक एवं श्लोक के शाश्वत समीकरण को हम इस चित्र के माध्यम से समझ सकते हैं—

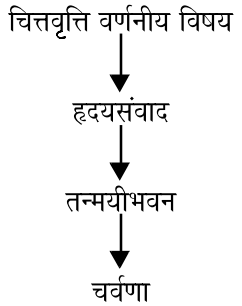

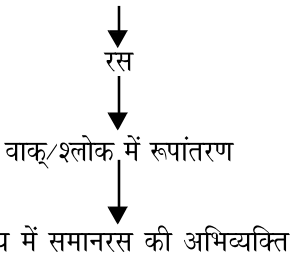

कला के अनुकरण सिद्धांत का खंडन

नाट्यशास्त्र में यह बताया गया है कि ब्रह्मा से नाट्यवेद को अच्छी तरह से सीखकर भरतमुनि ने अपने सौ पुत्रों को इस नाट्यवेद के तत्त्व एवं इसके प्रयोग की शिक्षा दी। अपने सौ पुत्रों तथा स्वाति एवं नारद के साथ भरतमुनि ने पुनः ब्रह्मा के पास जाकर उनको यह बताया कि वे अब इस नाट्यकला को भली-भांति सीख चुके हैं। ब्रह्मा ने उन्हें इस नाट्यकला के प्रयोग को इंद्र के ध्वज महोत्सव में करने का आदेश दिया। अपने सौ पुत्रों तथा स्वाति व नारद के साथ भरतमुनि ने इस अवसर पर ध्वजमहोत्सव नामक नाट्य का प्रयोग किया, जिसमें असुरों पर देवताओं की विजय दिखाई गई। अपनी पराजय को देखकर दैत्यगण विक्षुब्ध हो गए। वे सभी विरुपाक्ष के नेतृत्व में ब्रह्मा के पास गए एवं उनसे अपने क्लेश को बताते हुए कहा कि हे भगवन्! आपने जिस नाट्यवेद की रचना की है, उसमें हमारा तिरस्कार हुआ है। आपको ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि आपके लिए जैसे देवगण हैं वैसे ही हम भी हैं, क्योंकि सभी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं। दैत्यों के वचन को सुनकर ब्रह्मा ने कहा कि आप अपने क्रोध को त्याग दें। मैंने जिस नाट्यवेद का निर्माण किया है, वह आपके एवं देवताओं के शुभ व अशुभ कर्मों को बतलाने वाला, कर्म एवं भाव की अपेक्षा करने वाला है। इसमें न तो आप लोगों का, न ही देवताओं का अनुकरण हुआ है, बल्कि यह नाट्य तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन है। यह नाट्य विभिन्न भावों, अवस्थाओं से युक्त होते हुए इस लोक का अनुकरण है।

अभिनवगुप्त अपनी 'अभिनवभारती' में नाट्य को अनुकरण रूप मानने वालों का तर्कपूर्ण खंडन करते हुए अपने गुरु भट्टतोत का उल्लेख करते हैं। अभिनवगुप्त कहते हैं कि मैंने जो विचार यहां रखा है, वह मेरे गुरु का मंतव्य है जिन्होंने अपने ग्रंथ काव्यकौतुक में इस अनुकरण सिद्धांत का जोरदार खंडन किया है।[57]

अपने गुरु का अनुसरण करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि नाट्य को अनुकार (अनुकरण) मानने का भ्रम नहीं करना चाहिए। नाट्य को देखते समय प्रेक्षक हृदय में ऐसी बुद्धि का उदय नहीं होता है कि इस नट या नटी ने किसी राजपुत्र का अनुकरण किया है। इसप्रकार की बुद्धि तो नाट्य को विकृत करती है एवं विकरण के नाम से प्रसिद्ध है। यह विकरण तो प्रेक्षकों के लिए हासमात्र का कारण बन जाता है। इसी अभिप्राय से भरतमुनि ने भी कहा है कि दूसरों की चेष्टा का अनुकरण करने से हास उत्पन्न होता है। नाट्य को अनुकरण मान लेने के कारण ही ध्वज महोत्सव

में अपनी पराजय को देखकर दैत्यगण यह सोचते हुए कि 'हम हास के पात्र बन गए हैं', देवताओं के ऊपर क्षुब्ध हो गए थे। अतः नाट्य किसी व्यक्ति-विशेष का अनुकरण नहीं है।[58]

पूर्वपक्ष कह सकता है कि नाट्य भले ही व्यक्ति-विशेष का अनुकरण न हो, किंतु सामान्य का अनुकरण तो हो सकता है। अभिनवगुप्त इस मत का खंडन करते हुए कहते हैं, असंभव के अतिरिक्त इसमें कोई हानि नहीं है, अर्थात् सामान्य का अनुकरण करना असंभव है।[59] इसके पश्चात् 'अनुकरण' शब्द का अर्थ करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि सदृशकरण, अर्थात् समान वस्तु की उत्पत्ति ही अनुकरण है। ऐसा अर्थ करने पर तार्किक रूप से एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'किसके समान'।[60] अभिनवगुप्त पूर्वपक्ष की ओर से तीन विकल्प देते हुए उनका खंडन करते हैं।

1. पूर्वपक्ष यह कह सकता है कि—नाट्य में राम, सीतादि का अनुकरण होता है। इस पर अभिनवगुप्त का कहना है कि ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि कोई भी नट राम, सीतादि की पुनरुत्पत्ति नहीं कर सकता है।[61]

2. पूर्वपक्ष यह है कि नाट्य में रामादि के चित्तवृत्ति का अनुकरण होता है। यह कथन भी सही नहीं है। नट अपने अंदर राम, सीता के शोक के सदृशा की उत्पत्ति नहीं कर सकता है। नट के अंदर जो शोक विद्यमान रहता है वह सर्वथा उसका अपना शोक है।[62]

3. पूर्व पक्ष यह कह सकता है कि नाट्य में रामादि के अनुभाव के समान अनुभाव की उत्पत्ति नट करता है। इस मत का खंडन करते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं कि नट जिस अनुभाव की उत्पत्ति करता है, वे रामादि के अनुभाव के समान नहीं होते अपितु उसी जाति या वर्ग के होते हैं। एक होते हुए अनेकों में विद्यमान होना ही जाति है। अनुभाव सार्वभौमिक वस्तु है, सबके लिए समान है, जाति-स्वरूप है। अगर यह कहा जाए कि नट रामादि के अनुभाव का अनुकरण करता है तो इसका यह अर्थ है कि वह अनुभावरूपी जाति का अनुकरण कर रहा है, जो कि उचित नहीं है, क्योंकि जाति का अनुकरण असंभव है।[63] सार्वभौमिक वस्तुएं, जो सबके लिए समान होती हैं, के संदर्भ में 'समानता' एवं 'किसके समान' का क्या अर्थ है, अर्थात् कोई अर्थ नहीं है।[64]

इसप्रकार नाट्य में न तो सामान्य का, न व्यक्ति-विशेष का, न ही उसकी चित्तवृत्तियों का, एवं न ही अनुभावों का अनुकरण संभव है। इन सभी पक्षों का तार्किक खंडन करने के पश्चात् अभिनवगुप्त स्वसम्मत विचार देते हुए कहते हैं कि नाट्य सहृदयों के लिए विशेष ज्ञान का विषय बनता हुआ अनुव्यवसायवत् है।[65] तर्कसरणि का आलंबन लेते हुए अभिनव नाट्य को अनुव्यवसाय के तुल्य सिद्ध करते हुए कहते हैं कि—

1. मंच पर जब कोई नट विशेष उपस्थित होता है तो उसके आहार्य अर्थात् वेशभूषा आदि के कारण देश काल में उपस्थित उस नट विशेष का प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है, अर्थात् प्रेक्षक उस नट विशेष को नट रूप में नहीं देखते हैं।[66]

2. प्रथम चरण में प्रत्यक्ष की निवृत्ति हो चुकी है। नियम है कि बिना विशेष के प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अतः पुनः प्रत्यक्ष कराने के निमित्त रामादि शब्द जो प्रसिद्ध अर्थ के अभिव्यंजक

हैं, का उपयोग किया जाता है। इस प्रसिद्ध शब्द के उपयोग से असंभावना का निराकरण हो जाता है। इसके बाद उस नट का पुनः प्रत्यक्षीकरण होना प्रारंभ होता है। यह पुनः प्रत्यक्ष ही अनुव्यवसाय है।[67]

3. प्रत्यक्षकल्प नाट्य मनोहर गीत, वाद्य, आदि से अनुस्यूत होने से चमत्कार का स्थान होता हुआ हृदय में प्रवेश करने की योग्यता से सर्वथा युक्त होता है। गीतवाद्यादि रंजक सामग्री के मध्य में, चतुर्विध अभिनय से स्व-स्वरूप का आच्छादन किए हुए नट सहृदयों के हृदय में उनके संस्कारवश, हृदय संवाद एवं तन्मयीभवन के क्रम से अनुव्यवसाय उत्पन्न करता है।[68] यह अनुव्यवसाय सुख, दुःखादि के आकार से आकारित चित्तवृत्तियों से युक्त, निजसंविद के आनंद से प्रकाशित होता है एवं रसना, आस्वादन, चमत्कार, चर्वणा, निर्वेश एवं भोग आदि शब्दों से व्यपदिष्ट होता है।[69] इसप्रकार नाट्य कीर्तन रूप है जिसका स्वरूप अनुव्यवसायात्मक है एवं विकल्प ज्ञान से युक्त है।[70]

नाट्य के स्वरूप को समझाने के लिए अभिनवगुप्त अनुव्यवसाय शब्द का प्रयोग करते हैं। अनुव्यवसाय भारतीय दर्शन का शब्द है जिसका प्रयोग न्याय, सांख्य, योग एवं शैव दर्शन में प्रचुरता से हुआ है। 'न्याय दर्शन' में ज्ञानमीमांसा को समझाते हुए कहा गया है कि जब हम भूतल पर घट को देखते हैं तो यहां घट विषय है। चक्षुरिंद्रिय एवं घट के संयोग से उत्पन्न हुआ 'अयं घटः' यह ज्ञान व्यवसाय है। इसके व्यवसाय के पश्चात् 'घटज्ञानवान् अहम्' इसप्रकार मानसनिश्चय 'अनुव्यवसाय' कहा जाता है।[71] योगदर्शन में अनुव्यवसाय को मनोधर्म माना गया है, जिसके कारण ऐंद्रिक संवेदनाओं का विभेदन, संयोजन व एकीकरण होते हुए एक निश्चयात्मक अवधारणा का निर्माण होता है। शैव दर्शन में संविद् ही प्रमाता है, जो सूत्र रूप में कार्य करता है। इसी संविद् में सभी ज्ञान प्रतिष्ठित होते हैं। यह संविद् ही सभी संवेदनाओं का अधिकरण है। इन सभी संवेदनाओं का संयोजन व एकीकरण करना ही अनुव्यवसाय है जो संविद् का निजधर्म है। इसप्रकार यह अनुव्यवसाय वह व्यापार है जिसमें समस्त ऐंद्रिक संवेदनाओं को मिलाकर एक भावात्मक निश्चयात्मक अवधारणा का जन्म होता है, जो ज्ञान का एक वैध प्रमाण है। ठीक इसी प्रकार, नाट्य में भी सहृदय का चित्त विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को ग्रहण करते हुए एक निश्चयात्मक अवधारणा उत्पन्न करता है कि 'मुझे राम जैसा व्यवहार करना चाहिए, रावण जैसा नहीं'—यहीं अनुव्यवसाय है।

काव्यस्यात्मा ध्वनि की प्रस्थापना एवं ध्वनि के पांच अर्थ

संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा में आचार्य वामन सर्वप्रथम काव्यात्मविषयक चर्चा प्रारंभ कर एक नए युग का सूत्रपात करते हैं। वामन ने जिस 'रीति' तत्त्व को काव्यात्मा कहा, वह भी काव्य का नाभि केंद्र न होकर उसकी परिधि ही था। दसवीं शताब्दी में आनंदवर्धन अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में पूर्ण निष्ठा के साथ 'ध्वनि' को काव्यात्मा के रूप में स्थापित करते हैं। कविता के संदर्भ में भारतीय साहित्यशास्त्र में 'शब्द एवं अर्थ'—इन दोनों की परस्पर स्पर्धा पर प्रारंभ से ही बल दिया जाता रहा है। इस कारण प्रत्येक साहित्यशास्त्री कविता की परिभाषा 'शब्दार्थौ' से शुरू करता है। शब्द एवं अर्थ ही काव्य या कविता के शरीर हैं। इस शब्दार्थ के वैचित्र्य समर्थन में अलंकार, रीति

जैसे संप्रदायों का विकास हुआ। इन संप्रदायों में अर्थ-तत्त्व का फलक सीमित प्रतीत होता है। आनंदवर्धन काव्यस्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'विशिष्ट अर्थ की प्रतिपत्ति में समर्थ शब्द समूह ही काव्य होता है।[72] यह विशिष्ट अर्थ सहृदयहृदयाह्लादि होता है। आनंदवर्धन इस अर्थतत्त्व के आयाम की समीक्षा करते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में काव्य में इसी अर्थतत्त्व की प्रधानता है। उनकी दृष्टि में शब्द का महत्त्व केवल इस कारण से है कि वह विवक्षीभूत अर्थ की प्रतीति कराने में माध्यम बनता है। 'प्रख्या' एवं 'उपाख्या'—ये दो तत्त्व बड़े महत्त्व के हैं। कवि जिस तत्त्व का दर्शन करता है, वह उसे मूर्त रूप देने के लिए शब्दों का प्रयोग करता है। कवि का अपना भाव ही इन शब्दों में निहित रहता है। कवि के उस भाव या अभिप्राय को जो यथारूप में आत्मसात् कर लेता है, वह उतना ही उत्तम सहृदय होता है। कवि एवं सहृदय के मध्य भावों के संप्रेषण में शब्द ही कड़ी हैं। कवि ऐसे शब्दों का चयन करते हैं, जो अपने भीतर व्यापक परिधि को समाविष्ट करता है। प्रत्येक शब्द को सुनने से एक अर्थबोध होता है, किंतु यह अर्थ का प्रारंभिक रूप ही है। उसका समग्र व्यक्तित्व और भी है। उसका आयाम अपनी वास्तविकता में केवल उतना ही नहीं है जितना शब्दकोश या शब्दानुशासन के बल पर शब्द शक्ति प्रस्तुत करती है। वह उससे भी अधिक विस्तृत होता है।

ध्वन्यालोक की 13वीं कारिका में ध्वनिकाल क्षण करते हुए आनंदवर्धन कहते हैं कि जहां शब्द अपने अर्थ को एवं अर्थ अपने आप को गुणीभूत कर किसी अन्य अर्थ को अभिव्यंजित करते हैं, उस 'काव्यविशेष' को विद्वान 'ध्वनि' पद से अभिहित करते हैं।[73] आनंद इसकी वृत्ति में यही बात दुहराते हैं—यत्रर्थोवाच्य विशेषः वाचक विशेषः शब्दो वा तमर्थं व्यङ्क्तः, स काव्य विशेषो ध्वनिरिति। किंतु अभिनवगुप्त 'यत्रार्थःशब्दो वा...' कारिका में प्रयुक्त 'काव्यविशेष' का विग्रह दो रूपों में करते हुए 'ध्वनि' के पांच अर्थ करते हैं।[74] वे 'काव्यविशेष' पद की व्युत्पत्ति दो रूपों में इसप्रकार करते हैं—

(क) काव्यं च तद्विशेषश्चासौ

(ख) काव्यस्य विशेषः।

'काव्यं च तद्विशेषश्चासौ' का अर्थ है—काव्य और उसका विशेष। काव्य क्या है? काव्य का अर्थ है विशिष्ट अर्थ या सहृदयश्लाघ्य अर्थ की प्रतीति में समर्थ विविध वाच्यवाचक रचना। यहां काव्य का विशेष है—शब्द, अर्थ। काव्य के शब्द व्यवहार में आनेवाले शब्दों से भिन्न होते हैं। इसे समझाते हुए अभिनवगुप्त कहते हैं—रस की चर्वणा काव्यात्मक शब्द को निचोड़ने से ही होती है। ऐसा देखा जाता है कि सहृदय एक ही काव्य को पुनः-पुनः पढ़ते हैं एवं आस्वादित होते हैं। अतः 'कार्य पूरा हो जाने पर उपाय के रूप में स्वीकृत वस्तुओं का त्याग कर देने' का जो व्यवहार जगत् में प्रसिद्ध है, वह काव्य में लागू नहीं होता है। काव्य में शब्द के द्वारा अर्थ प्रतीति करा दिए जाने के अनंतर भी उसकी सहकारिता बनी रहती है।[75] शब्द की व्यंजकता में अर्थ की सहभागिता एवं अर्थ की व्यंजकता में शब्द की सहकारिता व्यंजनावाद का मौलिक सिद्धांत है। यही कारण है

कि ध्वनिकार अपने ध्वनि लक्षण में 'व्यङ्क्तः' इस द्विवचन का प्रयोग करते हैं। अविवक्षितवाच्यध्वनि में मूलतः शब्द ही व्यंजक होता है, तथापि अर्थ की सहकारिता भी बनी रहती है। वही विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि में मूलतः अर्थ व्यंजक होता है एवं शब्द की सहकारिता भी बनी रहती है।[76] ध्वननव्यापार में शब्द एवं अर्थ दोनों की उपयोगिता है। काव्य में विभावादि की प्रतीति होते ही सहृदय अपने साथ उनका संवाद कर लेता है एवं आस्वादानुभव करने लगता है। काव्य से होने वाली प्रतीति अन्य शास्त्रप्रतीतियों से भिन्न होती है; क्योंकि अन्य प्रतीतियों में उत्तर कर्तव्यता का दायित्व होता है, जबकि काव्य में इसप्रकार की उत्तर कर्तव्यता का कोई दायित्व नहीं होता। अभिनवगुप्त के शब्दों में, काव्यास्वाद तो ऐंद्रजालिक पुष्प के समान होता है, जो तत्कालानुबंधिनी होता है।[77] अभिनवगुप्त के अनुसार, काव्य के शब्दों का पर्यवसान 'अभिप्राय' में होता है, न कि अभिप्रेत में।[78] स्पष्टतः काव्य में प्रयुक्त शब्द (वाचक), अर्थ (वाच्य) विशेष ही होते हैं, सामान्य नहीं। अभिनवगुप्त इस व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द एवं अर्थ को ध्वनि कहते हैं। व्यंग्य अर्थ का समावेश कदाचित अर्थ की कोटि में कर उसे भी ध्वनि कह देते हैं।

दूसरी व्युत्पत्ति 'काव्यस्य विशेषः' से व्यंजना व्यापार को ध्वनि मानते हैं, क्योंकि काव्य में व्यंजना व्यापार की ही प्रधानता होती है। भट्ट नायक जैसे ध्वनि विरोधी आचार्य भी काव्य में व्यापार की ही प्रधानता स्वीकार करते हैं।[79]

ध्वनिकार काव्य में अभिधा, लक्षणा, तात्पर्य व्यापार के अतिरिक्त व्यंजना व्यापार की सत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके ध्वनि सिद्धांत की प्रतिष्ठा इसी व्यापार पर अवलंबित है। ध्वनिकार इस व्यंजना व्यापार को अभिधा, लक्षणा, तात्पर्य से विलक्षण एवं प्रधान मानते हैं। उनके व्यंग्यार्थ की प्रतीति व्यंजना व्यापार से ही होती है। अभिनवगुप्त इस आधार पर व्यंजना व्यापार को काव्य का विशेष स्वीकार करते हुए ध्वनि कहते हैं।

आनंदवर्धन स्वतः यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ध्वनि सिद्धांत की प्रेरणा वैयाकरणों से ग्रहण की है। व्याकरणशास्त्र का 'स्फोटवाद' ही ध्वनि सिद्धांत का मूल प्रेरक है। महाभाष्यकार शब्द के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जो वैखरी ध्वनियों से अभिव्यक्त होता हुआ सींग, पूंछ, खुर आदि से युक्त पशु-विशेष रूप अर्थ का वाचक होता है, उसे शब्द कहते हैं। वैयाकरण इसे 'स्फोट' पद से अभिहित करते हैं। ध्वनियां व्यंजक हैं एवं इन ध्वनियों से अखंड, नित्य स्फोट व्यंग्य होता है। वैयाकरण इन दोनों में व्यंग्य-व्यंजक भाव स्वीकार करते हैं। वैयाकरणों के इसी व्यंग्य-व्यंजक भाव को आनंदवर्धन काव्य में व्यवस्थित करते हैं। उनके अनुसार वैयाकरण प्रधानभूत स्फोट रूप व्यंग्य के व्यंजक शब्द के लिए 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार करते हैं। इनके मत का अनुसरण करने वाले काव्यतत्त्ववेत्ताभीवाच्य, वाचक, सम्मिश्रण (व्यंग्य अर्थ), शब्द व्यापार व्यंजना और काव्य को व्यंजकत्व की समानतावश ध्वनि कहते हैं। अभिनवगुप्त अपने ग्रंथ 'लोचन' में वैयाकरणों के 'स्फोट सिद्धांत' को ही आधार बनाकर ध्वनि का प्रयोग पांच अर्थों में करते हैं।

1. अभिनवगुप्त काव्य में प्रयुक्त व्यंजक शब्द एवं अर्थ को 'ध्वनि' पद से अभिहित करते

हैं। उनका कहना है कि वैयाकरण स्फोट रूपी व्यंग्य के व्यंजक वर्णों को नाद या ध्वनि कहते हैं। उसी प्रकार काव्य में प्रतीयमान अर्थ के व्यंजक शब्द एवं अर्थ को भी ध्वनि कहा जा सकता है।[80]

2. शब्द को कार्य मानने वाले अनित्य स्फोटवादियों के अनुसार कंठ, तालु आदि के संयोग अथवा विभाग से उत्पन्न होने वाला प्रथम शब्द स्फोट कहलाता है। इस स्फोटरूपी प्रथम शब्द के अनंतर वीचीतरंगन्याय से उत्तरोत्तर उत्पन्न होकर कर्णशष्कुली तक पहुंचने वाले शब्द को ध्वनि कहते हैं। उदाहरणस्वरूप, सरोवर में छोटा पत्थर फेंकने से सर्वप्रथम एक तरंग उत्पन्न होती है, इस प्रथम तरंग से दूसरी तरंग, दूसरी से तीसरी तरंग उत्पन्न होती रहती हैं। किनारे पर पहुंचने वाली तरंग तरंगज तरंग ही होती है, न कि प्रथम तरंग। इसीप्रकार प्रथम उत्पन्न शब्द स्फोट कहलाता है, उसके अनंतर उत्पन्न होने वाला स्फोटज शब्द ध्वनि कहलाता है। इसी मंतव्य को ध्यान में रखकर अभिनवगुप्त अपने ग्रंथ 'लोचन' में कहते हैं[81] कि जैसे घंटे पर जब चोट की जाती है तो दो ध्वनियों का अनुभव होता है। एक तो वह ध्वनि जो आघात से तत्काल उत्पन्न होती है। दूसरी ध्वनि वह है जो 'टननननन' के रूप में सुनाई देती है। इसी दूसरी ध्वनि को 'अनुरणन' (रणन के बाद का रणन) कहा जाता है। उसी प्रकार काव्य में वाच्यार्थ के अनंतर सहृदय हृदय में प्रतीयमानरूपी अनुरणन सुनाई पड़ती है। अनुरणन रूप से उपलक्षित इस प्रतीयमान अर्थ को अभिनव ध्वनि कहते हैं।

3. व्यंजना व्यापार के लिए भी अभिनवगुप्त 'ध्वनि' का व्यवहार करते हैं। वे अपने ग्रंथ 'लोचन' में व्यंजना व्यापार के लिए ध्वनि नाम की सार्थकता का विवेचन करते हुए कहते हैं[82] वैयाकरणों के अनुसार ध्वनियां दो प्रकार की होती हैं—प्राकृतध्वनि एवं वैकृतध्वनि। प्राकृतध्वनियां ही स्फोट की व्यंजक होती हैं। कहने का तात्पर्य है कि प्राकृत ध्वनियों के उच्चारण के अनंतर ही अर्थबोध हो जाता है। फिर भी कोई व्यक्ति किसी वाक्य को शीघ्रता से बोलता है और उसी वाक्य को अपने शिष्य को समझाने हेतु विलंबित वृत्ति का आश्रयण करता है, चिंतन में मध्यमा वृत्ति का आश्रय लेता है। इन सभी अवस्थाओं में उच्चारण काल में भेद होने पर भी अर्थबोध (वाक्यस्फोट) में भेद नहीं होता। इसका आशय यह है कि वृत्ति भेद होने पर भी स्फोटाभिव्यक्ति में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वृत्तिभेद का कारण वैकृत ध्वनियां हैं। इन वैकृत ध्वनियों का स्फोटाभिव्यक्ति से कोई संबंध नहीं होता है। वैकृतध्वनियां वक्ता की अभ्यधिक व्यापार हैं। अभिनवगुप्त इस आधार पर व्यंजना को अभ्यधिक व्यापार मानते हुए ध्वनि कहते हैं। काव्य में शब्द के स्वार्थ प्रत्यायन के लिए अभिधा व्यापार ही समर्थ है। इसके अतिरिक्त अर्थ प्रत्यायन कराने वाले अन्य सभी व्यापार अभ्यधिक हैं। इस आधार पर लक्षणा, तात्पर्य भी अभ्यधिक व्यापार सिद्ध होते हैं। इसका समाधान यह है कि—जिस प्रकार व्याकरण दर्शन में वाक्य स्फोट की अभिव्यक्ति कराने वाली प्राकृत ध्वनि आवश्यक तत्त्व है और इसके अतिरिक्त वैकृत ध्वनि अभ्यधिक हैं, उसी प्रकार आलंकारिकों के अनुसार वाक्यार्थ बोध तक कराने वाला व्यापार आवश्यक व्यापार है। इसके अतिरिक्त अर्थ का बोध कराने वाला व्यापार अभ्यधिक है। इस दृष्टि से अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्य वाक्यार्थ बोध तक आवश्यक व्यापार हैं। जैसे—गंगायां घोषः इस वाक्य में सर्वप्रथम अभिधा व्यापार से गंगा शब्द का अर्थ 'जलप्रवाह' प्रस्तुत होता है,

किंतु जलप्रवाह में घोष का रहना संभव नहीं है, अतः अर्थ में बाधा आती हैं। इस बाधा को दूर करने के लिए लक्षणा व्यापार का आश्रय लेना पड़ता है। इस लक्षणा द्वारा इस वाक्य का अर्थ होता है—गंगातटे घोषः। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि वाक्यार्थ बोध के लिए अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्य आवश्यक व्यापार है। इससे अधिक शैत्यपावनत्त्वादि अर्थ की प्रतीति जिस व्यंजना व्यापार से होती है, वह निश्चित रूप से अभ्यधिक है। इस अभ्यधिक व्यापार को अभिनवगुप्त ठीक उसी प्रकार 'ध्वनि' नाम दे देते हैं जिस प्रकार वैयाकरण वैकृत रूप अभ्यधिक व्यापार को वैकृत ध्वनि।

अभिनवगुप्त उक्त चतुष्टय अर्थ आनंदवर्धन की वृत्ति 'वाच्यवाचकसम्मिश्रः शब्दात्मा काव्यमिति व्यपदेश्योव्यजकत्त्वसाम्याद् ध्वनिरित्युक्तः' को आधार मानकर भी करते हैं। अपने ग्रंथ 'लोचन' में वे कहते हैं कि[83] 'वाच्यवाचकसम्मिश्रः' में मध्यम पदलोपी समास है। यहां 'च' का प्रयोग न होने पर भी समुच्चय है। अभिनवगुप्त अपना यह मंतव्य संभवतः महाभाष्य के उद्धरण से निकालते हैं।

अभिनवगुप्त अपने ग्रंथ 'लोचन' में स्पष्टतः उद्घोषित करते हैं कि कारिका में आनंदवर्धन ने तो मुख्य रूप से काव्य विशेष को ही 'ध्वनि' कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि अभिनवगुप्त अपने दार्शनिक सिद्धांत एवं आनंदवर्धन के काव्य शास्त्रीय सिद्धांतों में समरसता स्थापित करते हुए ध्वनि का प्रयोग पांच संदर्भों में करते हैं एवं अंत में स्पष्टरूपेण कहते हैं कि भेद व्यपदेश्य (काव्य विशेष भी ध्वनि है, वाच्य, वाचक आदि भी) एवं अभेद व्यपदेश्य (काव्य ही ध्वनि है एवं वाच्य, वाचक, व्यंग्यार्थ, व्यंजना नहीं) दोनों युक्त हैं।[84]

अभिनवगुप्त के लिए यह आवश्यक था कि ध्वनि विरोधियों का खंडन करते हुए ध्वनि की सत्ता को स्थापित किया जाए। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों में यदि ध्वनि का सद्भावन ही दिखा सके तो फिर 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा कैसे कह सकेंगे? रस भी तो शब्द में नहीं रहता, वह तो चित्गत है। काव्य में निबद्ध शब्दरूपी विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों से वह व्यंजित होता है। फिर भी किसी कवि को रस सिद्ध कवि कहा जाता है। इनके रस सिद्धत्व का व्यवहार शब्द प्रयोग को ही लेकर होता है। अतः ध्वनि को शब्दगतत्व नहीं सिद्ध कर पाएं तो लाभ क्या होगा? अभिनवगुप्त के समक्ष ये सारे प्रश्न विद्यमान थे। उन्हें इन सब का समाधान करना था। वास्तविकता तो यही है कि आनंदवर्धन के ध्वनि सिद्धांत को अभिनवगुप्त जैसे अद्वितीय व्याख्याकार नहीं मिलते तो अलंकारशास्त्र में ध्वनि सिद्धांत खड़ा ही नहीं होता। आनंदवर्धन की यह स्पष्ट मान्यता है कि अत्यंत सारभूत अर्थ को व्यंग्य रूप से ही दिखाया जाना चाहिए, क्योंकि स्वशब्दानभिधेयत्व रूप से प्रकाशित होकर ही वह शोभाकारी हो पाता है। कवि ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है, जो उनके विवक्षीभूत अर्थ के बोधन में सर्वथा समर्थ होता है। लोक व्यवहार के शब्द प्रायः अभिधाशक्ति द्वारा बंधे होते हैं। यदि उस अभिधा रूपी बंधन को विगीर्ण कर दिया जाए तो वही शब्द अनंत अर्थों को देने में समर्थ हो जाता है। काव्यगत शब्दकोश व्याकरणादि से बंधे होते हुए भी अनंत संभावनाओं से युक्त होते हैं।

अभिनवगुप्त ने शताब्दियों को आलोड़ित किया है, प्रकाशित किया है, भारत की मेधा को विश्व पटल पर स्थापित किया है। वे अपनी साहित्यिक कृतियों में एक विस्तृत फलक का स्पर्श

करते हुए हृदय, सहृदय, हृदयसंवाद, तन्मयीभवन, काव्य का प्रयोजन, नाट्य का प्रयोजन, काव्य की सर्जना, कला के अनुकरण सिद्धांत का खंडन, काव्यस्यात्मा ध्वनि की प्रस्थापना एवं ध्वनि के पांच अर्थ का जो आलेखन प्रस्तुत करते हैं, वह उनका भारतीय सौंदर्यशास्त्र में अप्रतिम योगदान है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. आम्नायसिद्धे किम पूर्वमेतत्संविद्विकासेऽधिगतागमित्त्वम्।
इत्थं स्वयंग्राहयमहार्हहेतुद्वन्द्वेन किं दूषयिता न लोकः ॥
ऊर्ध्वोर्ध्वमारुहय यदर्थतत्त्वं धीः पश्यति श्रान्तिमवेदयंती ॥
फलं तद्दद्यैः परिकल्पितानां विवेकसोपानपरंपरांणाम्
चित्रं निरालम्बनमेव मन्ये प्रयेमसिद्धौ प्रथमावतारम्।
सन्मार्गलाभे सति सेतबन्धपरप्रतिष्ठादि न विस्मयाय ॥
तस्मात्सतामत्र न दूषितानि मतानि तान्येव तु शोधितानि।
पूर्वप्रतिष्ठापितयोजनासु मूलप्रतिष्ठाफलमामनंति ॥
भरतमुनि (1926). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', (भाग-1), पृ. 278, संपा. एम. रामकृष्णकवि, बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।
2. येषांकाव्यानुशीलनाभ्यासवशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः। यथोक्तम-योऽर्थोहृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः। शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना ॥
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांजना सहित), पृ. 38-39, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरीज।
3. सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालाविशेषिणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः ॥
उत्पल (2002). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका वृत्ति के साथ', पृ. 23, (अनु. राफेलटोरेला), दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास।
4. नर्मले मुकुरे यदवद्भान्ति भूमिजलादयः।
अमिश्रास्तद्वेदकस्मिंश्चिन्नाथे विश्ववृत्तयः ॥
अभिनवगुप्त (1921). 'तंत्रालोक', जयरथ की टीका के साथ, द्वितीय भाग, पृ. 4, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।
5. समानगुणं बिंबकापेक्षया च विमले प्रतिबिंबसंक्रांतिदर्शनात्...।
अभिनवगुप्त (1998). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी', उत्पलदेव कृत कारिका एवं भास्कर कंठ कृत भास्करी के साथ, (संपा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर और के. सी. पांडेय), भाग-1, पृ. 109, वाराणसी : सरस्वती भवन ग्रंथमाला।
6. तेन ये काव्याभ्यासप्राक्तनपुण्यादिहेतुबलादिति (भिः) सहृदयाः...।
भरतमुनि (1926). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', भाग-1, पृ. 287, (संपा. एम. राम कृष्णकवि), बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।
7. स तु दीर्घकालनैरंतर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः।
पतंजलि (2002). 'योगसूत्र, व्यास भाष्य के साथ', पृ. 55 (संपा. सुरेशचंद्र श्रीवास्तव), वाराणसी : चौखंबा सुरभारती प्रकाशन।
8. स्वस्मिन्नभेदादभिन्नस्य दर्शनक्षमतैव या।
अत्यक्तस्वप्रकाशस्य नैर्मल्यं तद्गुरुदितम् ॥
अभिनवगुप्त (1921). 'तंत्रालोक', जयरथ की टीका के साथ, द्वितीय भाग, पृ. 9, (संपा. मधुसूदन कौलशास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।
9. ...प्रतिबिंबग्रहणसहिष्णुता तदेव नैर्मल्यम् ॥
वही, पृ. 9
10. यथा हि कर्कशशर्करानिकरकंटकिते देशे दुस्संचरे संचरज्जनं पश्यंत्या अपि सुकुमारहृदयायाः प्रमदायास्तदात्मानुप्रवेश इव जायमानं खेदमतितरामादत्ते प्रहारपातादौ वा, तथा सहृदयस्य स एव मार्गः, सुकुमारता हि वैमल्यापरपर्याया सहृदयत्त्वं हृदयस्य हि कविहृदयस्यतादात्म्यापत्तियोग्यतैव उत्कर्षः।
भरतमुनि (1934). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', भाग-2, पृ. 339, (संपा. एम. रामकृष्ण

कवि), बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।

11. तन्मयीभवनं नाम प्राप्तिः सानुत्तरात्मनि।
पूर्णत्वस्य परा काष्ठा सेत्यत्र न फलांतरम्।
अभिनवगुप्त (1921). 'तंत्रालोक', जयरथ की टीका के साथ, तृतीय भाग, पृ. 237, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

12. येषां न तन्मयीभूतिस्ते देहादिनिमज्जनम्।
अविदन्तो मग्नसंविन्मानास्तु अहृदया इति ॥
अभिनवगुप्त (1921). 'तंत्रालोक', जयरथ की टीका के साथ, द्वितीय भाग, पृ. 228, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

13. लोके हि सातिशये गीतादौ विषये तन्मयीभावेन सचमत्काराणां 'सहृदया' इति, अन्यथा 'परहृदयगा' इति प्रसिद्धिः।
वही, पृ. 228

14. तथाहि मधुरे गीते स्पर्शे वा चंदनादिके।
माध्यस्थ्यविगमे यासौ हृदये स्पंदमानता।
आनंदशक्तिः सैवोक्ता यतः सहृदयो जनः ॥
वही, पृ. 200

15. इह खलु यस्य कस्यचन प्रमातुः, गीतादौ विषये यदा माध्यस्थ्यविगमः ताटस्थ्यपरिहारेण तदेकतानता, तदा येयं हृदये विश्वप्रतिष्ठास्थाने बोधे, स्पंदमानता तन्मयतया परिस्फुरद्रूपता, सैवेयमानन्दशक्तिरुक्ता सर्वशास्त्रेषु अभिहितेत्यर्थः। यदुक्तम्- गीतादिविषयास्वादासमसौख्यैकतात्मनः ॥ योगिनस्तन्मयत्त्वेन मनोरुढेस्तदात्मता ॥
वही, पृ. 200

16 इस चित्रण की प्रेरणा प्रो. नवजीवन रस्तोगी की पुस्तक अभिनवगुप्त का तंत्रागमीय दर्शन : इतिहास-संस्कृति-सौंदर्य और तत्त्व-चिंतन से मिली है।

17. (क) काव्ये तु गुणालंकारमनोहरशब्दार्थशरीरे लोकोत्तररसप्राणके हृदयसंवादवशात्...।
भरतमुनि (1926). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', भाग-1, पृ. 36, संपा. एम. राम कृष्णकवि, बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।
(ख) नाट्ये तु...उचित गीतातोद्य चर्वणाविस्मृतसांसारिकभावतया...॥
वही, पृ. 36

18. योऽर्थोहृदयसंवादी तस्य भावो रसोद्भवः।
शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठमिवाग्निना ॥
वही, पृ. 348

19. यो विभावादिरूपः सत्कविवर्णनाधिरूढोऽर्थः। हृदयसंवादी हृदयसंवाद विषयी भवनशीलः, तस्यार्थस्य भावः निर्मलहृदय मणिमुकुरसीमनि समुन्मेषः, रसोद्भवः रसोत्पत्तिहेतुर्भवति, तेन च तथाभूतेनार्थेन न केवलं हृदयमेव व्याप्यते, तद्व्याप्तिपूर्वकं कृत्स्नमेव शरीरं व्याप्नोति, तत्र कात्स्न्र्येन झटित्येव तदैकरूप्येण च व्याप्तौ दृष्टांतः- ''शुष्कं काष्ठमिवाग्निना'' इति; काष्ठमेव च व्याप्यते, न शिलादिकम्; तेन च दार्ष्टान्तिके रत्यादिवासनाविरहितहृदयस्य श्रोत्रियादेः सहृदयत्त्वाभावः; शुष्कमिति काव्यानुशीलनकृतमनोवैशद्यशालित्त्वं सूचितम्, अग्निनेति गुणालंकारसंबन्धसौन्दर्यनिबन्धनं विभावत्त्वं दर्शितम् ॥
आनंदवर्धन (1944). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-कौमुदी-उपलोचनसहित), पृ. 77-78, (संपा. एस. कुप्पुस्वामी शास्त्री, टी. आर. चिंतामणि), मद्रास : कुप्पुस्वामी शोध केंद्र।

20. इतीत्थमेव हि अधिकारिणि शास्त्रार्थस्य बिम्बप्रतिबिम्बवत् संक्रांतिः, लोड्लिङादीनां विषयीभवति प्रथमपुरुषार्थ उत्तम-पुरुषार्थे पर्यवसति, न तु ताटस्थ्येन; अधिकार्यनधिकारिणोः प्रतिपत्तौ विशेषाभावप्रसङ्गात्। आरोग्यकामाः शिवां सेवन्तां सेवध्वम्- इति वा वाक्यार्थस्य सेवामहे—इत्येवंरूपेण अधिकारिणि द्वितीय कक्ष्या संक्रान्तौ।
अभिनवगुप्त (1998). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी', उत्पलदेव तकारिका एवं भास्कर कंठ तभास्करी के साथ, (संपा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर और के. सी. पांडेय), भाग-1, पृ. 44, वाराणसी : सरस्वती भवन ग्रंथमाला।

21. अनधिकारी तु प्रथम सोपान एव विश्राम्यति।
अभिनवगुप्त (1938). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी', भाग 1, पृ. 24, (संपा., मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

22. तृतीय कक्ष्यामेव भाविकोटिपतितामपि पुरुषार्थसंपत्तिम अकालकलितस्वरूपानुप्रवेशेन स्वात्मीताम अभिमन्यमाने, तत

एव विततसंवित्सुंदरपरामर्शे पूर्णताभिमानप्रतिलंभात।

अभिनवगुप्त (1998). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी', उत्पलदेव तकारिका एवं भास्कर कंठ तभास्करी के साथ, (संपा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर और के. सी. पांडेय), भाग 1, पृ. 45-46, वाराणसी : सरस्वती भवन ग्रंथमाला।

23. तत्र कवेस्तावत्कीर्त्यापि प्रीतिरेव सम्पाद्या। यदाह-'कीर्ति स्वर्गफलामाहुः' इत्यादि।
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांजनासहित), पृ. 40, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरीज।

24. श्रोतृणां च व्युत्पत्तिप्रीती यद्यपि स्तः, यथोक्तम्-धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च। करोति कीर्त्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्॥ इति॥ तथापि तत्र प्रीतिरेव प्रधानम्। अन्यथा प्रभुसम्मितेभ्यो वेदादिभ्यो मित्रसम्मितेभ्यश्चेतिहासादिभ्यो व्युत्पत्ति हेतुभ्यः कोऽस्य काव्यरूपस्य व्युत्पत्तिहेतोर्जायासम्मितत्त्वलक्षणो विशेष इति प्राधान्येनानन्दः एवोक्तः।
वही, पृ. 40

25. चतुर्वर्गव्युत्पत्तेरपि चानन्द एव पार्यन्तिकं मुख्यं फलम्।
वही, पृ. 40

26. न चौते प्रीतिव्युपत्ती भिन्नरूपे एव, द्वयोरप्येकविषयत्त्वात्।
वही, पृ. 336

27. इह प्रभुसम्मितेभ्यः श्रुतिस्मृतिप्रभृतिभ्यः कर्त्तव्यमिदमित्याज्ञामात्रपरमार्थेभ्यः शास्त्रेभ्यो ये न व्युत्पन्नाः, न चाप्यस्येदं वृत्तममुष्मात्कर्मण इत्येवं युक्तियुक्तकर्मफलसंबंधप्रकटनकारिभ्यो मित्रसम्मितेभ्य इतिहासशास्त्रेभ्यो लब्धव्युत्पत्तयः, अथ चावश्यं व्युत्पाद्याः पजार्थसम्पादनयोग्यताक्रन्ता राजपुत्रप्रायास्तेषां हृदयानुप्रवेशमुखेन चतुर्वर्गोपायव्युत्पत्तिराधेया। हृदयानुप्रवेशश्च रसास्वादमय एव। स च रसश्चतुर्वर्गोपायव्युत्पत्तिनान्तरीयकविभावादिसंयोगप्रसादोपनत इत्येवं रसोचितविभावाद्युपनिबन्धे रसास्वादवैवश्यमेव स्वरसभाविन्यां व्युत्पत्तौ प्रयोजकमिति प्रीतिरेव व्युत्पत्तेः प्रयोजिका। प्रीत्यात्मा च रसस्तदेव नाट्यं, नाट्यमेव वेद इत्यस्मदुपाध्यायः। न चौते प्रीतिव्युपत्ती भिन्नरूपे एव, द्वयोरप्येकविषयत्त्वात्। विभावाद्यौचित्यमेव हि सत्यतः प्रीतेर्निदानमित्यसदवोचाम। विभावादीनां तद्रसोचितानां यथास्वरूपवेदनं फलपर्यन्तीभूततया व्युत्पत्तिरित्यच्यते।
वही, पृ. 337

28. प्रीत्यात्मा च रसस्तदेव नाट्यं, नाट्यमेव वेद इत्यस्मदुपाध्यायः।
वही, पृ. 336

29. नाट्यमेव रसाः। रससमुदायो हि नाट्यम्। नाट्य एव च रसाः।
भरतमुनि (1926). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', भाग 1, पृ. 290-91, (संपा. एम. रामकृष्णकवि), बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।

30. तेन रस एव नाट्यम्। यस्य व्युत्पत्तिः फलमित्युच्यते।
वही, पृ. 267

31. जग्राहपाठ्य मृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
भरतमुनि (1926). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', भाग 1, पृ. 14, (संपा. एम. रामकृष्णकवि), बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।

32. तस्मात्सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥
वही, पृ. 11

33. प्रसिद्धा चास्य नाट्यवेदसंज्ञा विदिता। अत एवोपदेशहेतुत्त्वाद् वेदः।
वही, पृ. 7

34. उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्।
हितोपदेशजननं धृतिक्रीडासुखादिकृत्॥
वही, पृ. 40

35. दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रांतिजननं कालेनाट्यमेतद्भविष्यति॥
वही, पृ. 40

36. लोकावृत्तानुसारेण यत इयं नाट्यक्रिया लोके च धर्मादयो ना (नाना) श्रयाः न संवेदनयोग्याः तेन धर्मादिविषये यो यथा

रामादिः स शब्दमात्रोपयोगित्त्वेन मुख्यया प्रणालिकया गृहीतः।
वही, पृ. 39

37 एवंभूतं यन्नाट्यं तत्प्रेक्षकाणां दुःखेन व्याध्यादितेन श्रमेणाध्वक्लेशादिजेन शोकेन बन्धुमरणादितेनार्तानां पीडितानां तथा तपस्विनामनवरतकृच्छ्रचान्द्रायणाद्याचरणकलितदौर्बल्यातिशयपरिखिन्नहृदयानां विश्रान्तिजननं दुःखप्रसरणविघातकम्।
वही, पृ. 39

38 विश्रांतिजननं दुःखप्रसरणविघातकम् ।
वही, पृ. 39
विश्रांति का अर्थ है—विगता श्रांति यस्मात् सा अवस्था विश्रांति, अर्थात् ऐसी अवस्था जिसमें श्रम, थकावट का नितांत अभाव हो। 'विश्रांति' शब्द अभिनवगुप्त के तंत्रागमयी दर्शन की केंद्रीय अवधारणाओं में से एक है। विश्राम—यह क्रियापद अभिनवगुप्त के बहुअर्थीय दार्शनिक शब्दावली 'विश्रांति' का मूल है, जो उनकी प्रमाण चिंतन, तत्त्व चिंतन, सौंदर्य-चिंतन एवं याज्ञिक चिंतन में सर्वत्र देखने को मिलता है।
Chakrabarti, Arindam (2006). 'The Heart of Repose, The Repose of the Heart : A Phenomenological Analysis of the Concept of Visranti' pp - 27, in Samarasya : Studies in Indian Arts, Philosophy and Interreligious Dialogue, (edited by Sadanand Das) New Delhi : D.K. Printworld.

39. प्रतिहतदुःखानां चाह्लादात्मकधृत्यादिकारणं यथायोगम्। तद्यथा—शोकार्त स्यधृतिर्व्याध्यार्तस्य क्रीडा। श्रमार्तस्य सुखम्। आदिग्रहणेन तपस्विनो मतिविबोधादय इति मंतव्यम्।
भरतमुनि (1926). नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित, (भाग-1), पृ. 39, संपा. एम. राम कृष्णकवि, बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।

40. नचौतादेव यावत्कालान्तरेऽपि परिपाकं सुखम्पदेशजं जनयति इत्येवं दुःखितानां तत्प्रशमसुखवितरणकालान्तरसुखलाभाः प्रयोजनम्।
वही, पृ. 39-40

41. ये पुनरदुःखिताः सुखभूयिष्ठवृत्तय एव राजपुत्रद्यास्तेषां लोकवृत्ते धर्माद्युपायवर्गे उपदेशकार्ये तन्नाट्यम्। लोकशब्देन लोकवृत्तम्।
वही, पृ. 40

42. ननु किं गुरुवदुपदेशं करोति। नेत्याह। किन्तु बुद्धिं विवर्धयति। स्वप्रतिभामेव तादृशीं वितरतीत्यर्थः।
वही, पृ. 40

43. अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विनाकारणकलाम्
जगद्ग्रावप्रख्यं निजरसभरात् सारयति च।
क्रमात्प्रख्योगगबपाख्याप्रसरसुभगं भासयति
तत्सरस्वत्यास्तत्त्वं कविसहृदयाख्यं विजयते ॥
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांगजनासहित), पृ. 1, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरीज।

44. तस्मात् स्वयं प्रकाशते बोधरूपतया निर्भासते, परं प्रकाश्यतीति स्वातंत्र्यावभासितपरभावेन घटाद्यत्मनाप्रकाशते इति।
अभिनवगुप्त (1941). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी', भाग-2, पृ. 176, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

45. वस्तुतस्तु सत्ताप प्रकाशविश्रान्तैव।
अभिनवगुप्त (1938). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी', भाग 1, पृ. 65, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

46. स्फुरद्रूपता हि सत्ता। स्फुरद्रूपता च प्रकाशमानता...। शिवदृष्टिवृत्ति, पृ. 148 (इनका संकेत प्रो. नवजीवन रस्तोगी ने अपनी पुस्तक काश्मीर शिवाद्वयवाद की मूल अवधारणाएं में किया है)
उत्पलदेव (1934). 'श्रीसोमानंदनाथ रचित श्रीशिव दृष्टि विवृत्तिकेसाथ', पृ. 148, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

47. प्रकाश एव अर्थस्य आत्मा।
अभिनवगुप्त (1941). 'ईश्वरप्रयभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी', भाग 2, पृ. 68, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

48. यः प्रकाशः स सर्वस्य प्रकाशत्त्वं प्रयच्छति।
न च तद्व्यतिरेक्यस्ति विश्वं सदवभासते ॥
अभिनवगुप्त (1921). 'तंत्रालोक', जयरथ की टीका के साथ, द्वितीय भाग, पृ. 2-3, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

49. (क) अध्वा समस्त एवायं चिन्मात्रे सम्प्रतिष्ठितः। यत्तत्रनहि विश्रान्तं तन्नभः कुसुमायते ॥
अभिनवगुप्त (1922). 'तंत्रालोक', जयरथ की टीका के साथ, पंचम भाग, पृ. 3, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

50. स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा ।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपि स्फटिकादिजडोपमः ॥
उत्पल (2002). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका वृत्ति के साथ', पृ. 22, (अनु. राफेलटोरेला), दिल्ली : मोतीलाल बनारसी दास।

51. एष एव च विमर्शः चित्, चैतन्यम्, स्वरसोदितापरावाक्, स्वातन्त्र्यम्, परमात्मनोमुख्यमश्वर्यम्, कर्तृत्त्वम्, स्फुरत्ता, सारो, हृदयम्, स्पन्दः, इत्यादिशब्दैरागमेषुउद्घोष्यते...।
क्षेमराज (1918). 'पराप्रवेशिका', पृ. 22, (संपा. महामहोपाध्याय मुकुंदराम शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

52. इह भावानां सत्त्वं, असत्त्वं वा व्यवतिष्ठमानं संविद्विश्रान्तिमन्तरेण न उपपद्यते। संविद्विश्रांता हि भावाः प्रकाशमाना भवंति।
अभिनवगुप्त (1938).'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृत्तिविमर्शिनी' भाग 1, पृ. 4-5, (संपा. मधुसूदन कौलशास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।

53. (क) प्रख्या प्रकृष्टा ख्यानं प्रतिभात्मकं; प्रकर्षश्च विशिष्टव्यापारशालित्त्वम्; यद्वक्ष्यति—''या व्यापारवती'' इत्यादि। उपाख्या वचनमभिधानलक्षणम्। प्रख्या चोपाख्या च प्रख्योपाख्ये तयोर्यः क्रमात्प्रसरः। प्रथमं हि प्रख्या, तदंतरमुपाख्येति क्रमः। तेन प्रसरणसुभगं हृद्यं यथा भवति तथा यत्कविसरस्वतीतत्त्वं पूर्वसिद्धानपूर्वसिद्धानप्यर्थान् भासयति। अत्र च प्रख्योपाख्याप्रसरस्य न विशिष्ट भासनमात्रे हेतुत्त्वं विवक्षितम्; किंतु अपूर्ववस्तुनिर्माणे सरसतापादने च।
आनंदवर्धन (1944). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-कौमुदी-उपलोचन सहित), पृ. 7, (संपा. एस. कुप्पुस्वामीशास्त्री, टी.आर. चिंतामणि), मद्रास : कुप्पुस्वामी शोध केंद्र।
(ख) प्रख्या कवेः प्रतिभा, उपाख्या वचनं प्रथमं प्रख्या पश्चादुपाख्येति तयोर्यः क्रमात्प्रसरः तेन सुभगं हृद्यं सद्...सद्
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांगजनासहित), पृ. 2, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरिज।

54. प्रख्योपाख्या च सत्ता यद्यदसत्ता विपर्ययः। नैतत्स्वरूपं स्पृशति वस्तुनो ज्ञातृगाम्यदः।। अजडप्रमातृसिद्धि, 2
उत्पलदेव (1921). 'सिद्धित्रयी', पृ. 1, (संपा. मधुसूदन कौल शास्त्री), काश्मीर संस्कृत ग्रंथावली।
प्रकाशविमर्शलक्षणाभ्यां प्रख्योपाख्याभ्यां तदभावेन च भावानां सदसत्तयोर्व्यवस्थापयितुमिष्टयोरपि वस्तुनः स्वरूपस्पर्शाभावः, यतस्तत्प्रख्यादि ज्ञातुर्धर्मस्ततस्तत्स्वरूपव्यवस्थानाभावः ॥
वही, पृ. 2

55. तथापि तदेव तथाविधं रूपं प्रख्योपाख्याक्रमेण स्वात्मपरावभासविषयभावजिगमिषया...।
अभिनवगुप्त (1998). 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी', उत्पलदेव तकारिका एवं भास्कर कंठ तभास्करी के साथ, (संपा. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर और के. सी. पांडेय), भाग-1, पृ. 21, वाराणसी : सरस्वती भवन ग्रंथमाला।

56. क्रौञ्चस्य द्वन्द्वविवियोगेन सहचरीहननोद्भूतेन साहचर्यध्वंसनेनोत्थितो यः शोकः स्थायिभावो निरपेक्ष भावत्त्वा द्विप्रलम्भ-श्रृङ्गारोचितरतिस्थायिभावादन्य एव, स एव तथाभूतविभावतदुत्थाक्रन्दाद्यनुभावचर्वणया हृदयसंवादतन्मयी भवनक्रमादास्वाद्यमानतां प्रतिपन्नः करुण रसरूपतां लौकिकशोकव्यतिरिक्तां स्वचित्तद्रुतिसमास्वाद्यसारां प्रतिपन्नो रसपरिपूर्णकुम्भोच्चलनवच्चित्तवृत्तिनिःष्यन्दस्वभाववाग्विलापादिवच्च समयानपेक्षत्त्वेऽपि चित्तवृत्ति व्यञ्जकत्त्वादिति नयेनातकतयैवा वेशवशात्समुचितशब्दच्छन्दोवृत्तादिनियन्त्रितश्लोकरूपतां प्राप्तः। मा निषाद प्रतिष्ठां त्त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांगजना सहित), पृ. 85-86, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरीज।

57. भट्टतोत ने काव्य कौतुक नाम का एक स्वतंत्र ग्रंथ लिखा है, जो संभवतः नाट्यशास्त्र की व्याख्या है। उनके शिष्य अभिनवगुप्त ने इसकी विशद व्याख्या करते हुए 'काव्य कौतुक विवरण' नाम का ग्रंथ लिखा है। दुर्भाग्यवश, ये दोनों ग्रंथ आज अनुपलब्ध हैं। मोक्षफलत्त्वेन चायं परमपुरुषार्थनिष्ठत्त्वात् सर्वरसेभ्यः प्रधानतमः। सचायम स्मदुपाध्यायभट्टतौतेन

काव्यकौतुके, अस्माभिश्चत द्विवरणे बहुतरतनिर्णयपूर्वपक्षसिद्धान्त इत्यलं बहुना ॥
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांगजना सहित), पृ. 394, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरिज।

58. नानुकार इति भ्रमितव्यम्। अनेन भाण्डेन राजपुत्रस्यान्यस्य वानुकृतेऽन्यादिबुद्धेरभावात्। तदविकरण मिति प्रसिद्धं हासमात्रफलं मध्यस्थानाम्। यदभिप्रायेण मुनिर्वक्ष्यति-परचेष्टानुकरणात् हासस्समुपजायते। (अ. 7.10) इति ॥
तत्पक्षीयाणान्तु तदेव द्वेषासूया वृत्त्यादिफलम्। तद्बुद्धयैव हि दैत्यानां हृदयक्षोभः 'एवम्भूता वयमुपहासभाजनम्' इति। उपहासभीरवश्च निवर्तन्ते ततः, न तूपदेशेन।
भरतमुनि (1926). 'नाट्यशास्त्र अभिनवगुप्त की अभिनवभारती सहित', भाग 1, पृ. 36-37, (संपा. एम. रामकृष्णकवि), बड़ौदा : ओरियंटल इंस्टीट्यूट।

59. नन्वेवं तावता नियतानुकारो माभूत्। अनुकारेण तु किमपराद्धम्। न, किञ्चिदसम्भवादृते।
वही, पृ. 37

60. अनुकार इति हि सदृशकरणम्। तत्कस्य।
वही, पृ. 37

61. न तावद्रामादेः। तस्याननुकार्यत्त्वात्। एतेन प्रमदादिविभावानामनुकरणं पराकृतम्।
वही, पृ. 37

62. न चित्तवृत्तीनां शोकक्रोधादिरूपाणाम्। न हि नटो रामसदृशं स्वात्मनः शोकं करोति। सर्वथैव तस्य तत्राभावात्। भावे वाननुकारत्त्वात्। न चान्यद्वस्त्वस्ति यच्छोकेन सदृशं स्यात्।
वही, पृ. 37

63. अनुभावांस्तु करोति। किंतु सजातीयानेव। न तु तत्सदृशान्।
वही, पृ. 37

64. साधारणरूपस्य कः केन सादृश्यार्थः। त्रैलोक्यवर्तिनः सदृशत्त्वन्तु न विशेषात्मना यौगपद्येनोपपद्यते।
वही, पृ. 37

65. तेनानुव्यवसायवत् विशेषविषयीकार्यं नाट्यम् ।
वही, पृ. 37

66. तथा चाहार्यविशेषादिना निवृत्ते तद्देशकालचौत्रमैत्रदिनटविशेषप्रत्यक्षाभिमाने...।
वही, पृ. 37

67. विशेषलेशोपक्रमेण च विना प्रत्यक्षाप्रवृत्तेरायाते रामादिशब्दस्यात्रोपयोगात् प्रसिद्धतदर्थतयाऽऽदरणीयचरितवाचकस्यासम्भावनामात्रनिराकरणेनानुव्यवसायस्य...।
वही, पृ. 37

68. प्रत्यक्षकल्पनाट्ये ध्वगीताद्यनुस्यूततया चमत्कारस्थानत्त्वात् हृदयानुप्रवेशयोग्यत्वमभिनयचतुष्टयेन स्वरूपप्रच्छादितस्वस्वभावेन प्राक्प्रवृत्तलौकिकप्रत्यक्षानुमानादिजनितसंस्कारसहायेन सहृदयसंस्कारसचिवेन हृदयसंवादतन्मयीभावनासहकारिणा प्रयोक्त्राश्यमानेनयोऽनुव्यवसायो जन्यते...।
वही, पृ. 37

69. सुखदुःखाद्याकारचित्तवृत्तिरूपरूषितनिजसंविदानन्दप्रकाशमयः अत एव विचित्रो रसनास्वादन चमत्कारचर्वणा निर्वेशभोगाद्यपरपर्यायः तत्र यदवभासते वस्तु नाट्यम्।
वही, पृ. 37

70. तस्मादनुव्यवसायात्मकं कीर्तनं रूषितविकल्पसंवेदनं नाट्यम्। तद्वेदनवेद्यत्वात्। न त्वनुकरणरूपम्।
वही, पृ. 37

71. सर्वत्र प्रत्यक्षविषये ज्ञातुरिन्द्रियेण व्यवसायः, पश्चात् मनसाऽनुव्यवसायः।
गौतम (1986). 'न्यायदर्शन, वात्स्यायन भाष्य सहित', पृ. 15, दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।

72. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
आनंदवर्धन (1940). 'ध्वन्यालोक' (लोचन-बालप्रिया-दिव्यांगजना सहित), पृ. 300, (संपा. पट्टाभि रामशास्त्री), वाराणसी : हरिदास संस्कृत सीरीज।

73. व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ॥
वही, पृ. 103

74. काव्यं च तद्विशेषश्चासौ काव्यस्यवा विशेषः। काव्यग्रहणाद् गुणालङ्कारोपस्कृतशब्दार्थपृष्ठपाती ध्वनिलक्षण 'आत्मे' त्युक्तम्। अर्थोऽपि वाच्यो वा ध्वनतीति, शब्दोऽप्येवम। व्यङ्ग्योवा ध्वन्यत इति व्यापारोवा शब्दार्थयोर्ध्वननमिति। कारिकया तु प्रधान्येन समुदाय एव काव्यरूपो मुख्यतया ध्वनिरिति प्रतिपादित्।
वही, पृ. 103

75. काव्यात्मकशब्दनिष्पीडनेनैव तच्चर्वणा दृश्यते। दृश्यते हि तदेव काव्यं पुनः पुनः पठंश्चर्व्यमाणश्च सहृदयो लोकः, न तु काव्यस्य; तत्र 'उपादायापियेहेया' इतिन्यायेन तप्रतीतिकस्यानुपयोग एवेति शब्दस्यापीह ध्वननव्यापारः।
वही, पृ. 158-159

76. व्यङ्क्तः इति द्विवचनेनेदमाह-यद्यप्यविवक्षितवाच्ये शब्द एव व्यञ्जकस्तथाप्यर्थस्यापि सहकारिता न त्रुटयति, अन्यथाअज्ञातार्थोऽपिशब्दस्तद्वयञ्जकः स्यात। विवक्षितान्यपरवाच्ये च शब्दस्यापि सहकारित्वं भवत्येव, विना तस्यार्थस्याव्यञ्जकत्वादिति सर्वत्र शब्दार्थयोरुभयोरपि ध्वननं व्यापारः।
वही, पृ. 104

77. इह तु विभावादिचर्वणाद्भुतपुष्पवत्तत्कालसारैवोदिता न तु पूर्वापरकालानुबन्धिनीति लौकिकादास्वादाद्योगि विषयाच्चान्य एवायं रसास्वादः।
वही, पृ. 160

78. काव्यवाक्येभ्यो हि न नयनानयनाद्युपयोगिनी प्रतीतिरभ्यर्थ्यते, अपितु प्रतीतिविश्रान्तकारिणी, साचाभिप्राय निष्ठैवनाभिप्रेत वस्तुपर्यवसाना।
वही, पृ. 442

79. शब्दप्राधान्यमाश्रित्य तत्र शास्त्रं पृथग्विदुः।
अर्थतत्त्वेन युक्तं तु वदन्त्याख्यानमेतयोः ॥
द्वयोर्गुणत्वे व्यापारप्राधान्ये काव्यधीर्भवेत्।'
वही, पृ. 87

80. तथा श्रूयमाणा ये वर्णा नादशब्दवाच्या अन्त्यबुद्धिनिर्ग्राह्यस्फोटाभिव्यजकास्ते ध्वनिशब्देनोक्ताः।
यथाह भगवान् स एव-प्रत्यैरनुपाख्येयैर्ग्रहणानुगुणैस्तथा। ध्वनिप्रकाशते शब्दे स्वरूपवधार्यते ॥ इति।
तेनव्यञ्जकौ शब्दार्थावपीह ध्वनि शब्देनोक्तौ।
वही, पृ. 133-134

81. श्रोत्रशष्कुलीं सन्तानेनागताअन्त्याः शब्दाः श्रूयन्तइति प्रक्रियायां शब्दजाः शब्दाः श्रूयमाणाइत्युक्तम्। तेषां घण्टानुरणन रूपत्वं तावदस्ति; ते च ध्वनिशब्देनोक्ताः। यथाह भगवान् भर्तृहरिः- यः संयोगविभागाभ्यां करणैरुपजन्यते। स स्फोटः शब्दजाशब्दा ध्वनयोऽन्यैरुदाधृताः ॥ इति। एवं घण्टादिनिर्हृदस्थानीयोऽनुरणनात्मोपलक्षितो व्यङ्ग्योऽर्थो ध्वनिरिति व्यवधृतः।
वही, पृ. 133

82. तेषु तावत्स्वेव श्रूयमाणेषु वक्तुर्योऽन्यो द्रुतविलम्बितादिवृत्तिभेदात्मा प्रसिद्धादुच्चारणव्यापारादभ्यधिकः स ध्वनिरुक्तः। यदाह स एव-शब्दस्योर्ध्वमभिव्यक्तेर्वृत्तिभेदे तु वैकृताः। ध्वनयः समुपोहन्तेस्फोटात्मातैर्नभिद्यते ॥ इति। अस्माभिरपिप्रसिद्धेभ्यः शब्द यापारेभ्योऽभिधातात्पर्यलक्षणारूपेभ्योऽतिरिक्तो व्यापार ध्वनिरित्युक्तः।
वही, पृ. 133

83. वाच्यवाचक सहितःसम्मिश्र इति मध्यमपदलोपी समासः। 'गामश्वं पुरुषं पशुम्' इतिवत्समुच्चयोऽ त्र चकारेण विनापि। तेन वाक्योऽपि ध्वनिः, वाचकोऽपि शब्दो ध्वनिः, द्वयोरपि व्यञ्जकत्वं ध्वनतीति कृत्वा। संमिश्रयते विभावानुभावसंवलनयेति व्यङ्ग्योऽपि ध्वनिः, ध्वन्यते इति कृत्वा। शब्दनं शब्दःशब्दव्यापारः, न चासावभिधादिरूपः, अपित्वात्मभूतः, सोऽपिध्वननं ध्वनिः। काव्यमिति व्यपदेश्यश्च योऽर्थः सोऽपि ध्वनिः, उक्तप्रकारकध्वनिचतुष्टयमयत्वात्।
वही, पृ. 135

84. कारिकया तु प्राधान्येन समुदाय एव काव्यरूपो मुख्यतया ध्वनिरिति प्रतिपादितम्।
वही, पृ. 106

□

ध्वनि में रस और रस में जीवन की तलाश

उदय प्रताप सिंह

आचार्य अभिनवगुप्त कश्मीर के निवासी थे। उनका जीवनकाल दसवीं से ग्यारहवीं (990-1015 ई.) शती माना जाता है। वह प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रमुख आचार्य थे। यद्यपि इस दर्शन का प्रवर्तन आचार्य सोमानंद ने किया था पर इसे लोक और काव्य के व्यावहारिक धरातल पर लाने का गंभीर प्रयास अभिनवगुप्त ने ही किया था। अभिनवगुप्त ने ध्वनि, रस और आनंद का एक त्रिकोण बनाया था। 'अभिनवभारती', 'ध्वन्यालोकलोचन' और 'तंत्रालोक' इत्यादि 37 ग्रंथों की रचना कर साहित्य में आनंदवाद की प्रतिष्ठा की थी। हजार वर्ष पूर्व का कश्मीर उनके इस दर्शन से पर्याप्त प्रभावित था। बाद में कई आचार्यों और अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों ने इसका अनुगमन किया। आज उनके जीवन के हजार वर्ष बीत चुके हैं! आज जरूरत है अभिनवगुप्त के दर्शन को जीवन में उतारने की। वह काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य थे। काव्य को सीधे लोकजीवन से जोड़ देने में उन्हें महारत हासिल थी। उनकी सहस्राब्दी पर इसी की चर्चा आगे की गई है।

समाज के विकास के साथ साहित्यिक सृजन के प्रतिमानों का परीक्षण और निरीक्षण एक सहज प्रक्रिया है। इस उपक्रम में कविता क्या है? काव्य के उद्देश्य क्या हैं? काव्य के सिद्धांत और काव्य के प्रयोजन क्या हैं? जैसे स्वाभाविक प्रश्न उठते रहते हैं। साहित्य के प्रतिमान और परंपरा के मूल्यांकन में नए विचार जन्म लेते हैं, समीक्षा की नई समस्याएं और कविता के नए प्रतिमानों के प्रश्न उठते हैं, पुराने सिद्धांतों का समयानुकूल विमर्श भी होता है। इस दौरान साहित्य के विकास में सृजन एवं आलोचना के बीच सहभागिता, तनाव और द्वंद्वात्मक संबंधों की एक सहज प्रक्रिया भी चलती रहती है। यही कारण है कि सर्जना की ऐतिहासिक परंपरा, समसामयिकता, गतिशीलता, सांस्कृतिक कसौटी और वैचारिक सत्ता से आलोचना अथवा समीक्षा का द्वंद्व भी होता रहता है। वस्तुतः आलोचना (काव्य-सिद्धांत) सृजन के विधात्मक अनुशासन में बंधी हुई मानव सत्य की खोज और उसका सामाजिक प्रक्षेपण है, परंतु इस सत्य की तलाश में तल्लीन आलोचना से प्रायः हर कालखंड के साहित्यकारों को शिकायत रही है।

साहित्य-सृजन के लिए आवेश, उद्वेग, सहानुभूति, करुणा, परदुःखकातरता और प्रतिभा की आवश्यकता होती है। इन सनातन मूल्यों से साहित्य बनता है और साहित्य से वैचारिक क्रांति का

जन्म होता है। धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य के निर्माण में भी इन कारकों का महत्त्व कम नहीं है। भाव और विचार वस्तुपरक के साथ आत्मपरक और आत्मपरक के साथ अध्यात्मपरक भी होते हैं। हिंदी में भक्तिकाल और छायावाद क्रमशः इसके उदाहरण बन सकते हैं। दोनों कालखंड के साहित्य वस्तुतः मानव सत्य की ही खोज करते हैं। लौकिकता एवं आध्यात्मिकता के इसी दुर्लभ योग से उच्चकोटि का साहित्य बनता है। जीवन की भावात्मक आलोचना साहित्य है, तो साहित्य की आलोचना उस जीवन की पुनर्समीक्षा है। उसका क्षेत्र व्यापक वस्तुपरक तथा कालसापेक्ष होता है। साहित्य में स्थित मूल्यपरक विचार आलोचना की कसौटी बन सकते हैं। साहित्य की अबाधित परंपरा होती है और उसके साथ जीवन का एक इतिहास बोध भी। भारतीय वाङ्मय पर दृष्टि डालते ही ऐसे अनेक प्रश्न उठते हैं, जिनका संबंध इस बोध से जुड़ा रहता है।

हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में बाहरी आलोचना के बढ़ते दबाव ने साहित्य को कमजोर किया है। कहा जा सकता है कि भारतीय साहित्य पर तमाम आड़ी-तिरछी बहिरागत रेखाओं ने उसकी स्वाभाविकता को अपहृत कर लिया है। इन सिद्धांतों ने आलोचना के एकपक्षीय स्वरूप को उभरने का अवसर दिया है जिसका मूल स्वर 'साहित्य का समाजशास्त्र' है। बाहरी चकाचौंध में हमें सहस्राब्दियों के अपने साहित्य सिद्धांत विस्मृत हो गए हैं। आचार्य अभिनवगुप्त (990-1015 ई.) का ध्वनिवादी रसवाद अप्रासंगिक लगने लगा है। काव्यप्रकाशकार मम्मट (1050 ई.) को हम कालबाह्य मान चुके हैं। महत्त्वपूर्ण यह है कि इन्हीं हजार वर्षों में साहित्य चिंतन के निगूढ़ तत्त्वों का विशद विवेचन भारतीय आचार्यों ने किया है। इन विमर्शों के इतने आयाम हैं कि पाश्चात्य काव्यशास्त्री वहां तक पहुंच ही नहीं सके हैं। भरतमुनि (300 ई. पूर्व), दंडी (650 ई.), भामह (700 ई.), वामन (800 ई.), उद्भट (800 ई.), आनंदवर्धन (850 ई.), रुद्रट (850 ई.), मुकुलभट्ट (883-925 ई.), भट्टनायक (935-985 ई.), अभिनवगुप्त (990-1015 ई.), क्षेमेंद्र (1019-1050 ई.), धनंजय (1000 ई.), भोजराज (1005-1050 ई.), कुंतक (950-1000 ई.), मम्मट (1050 ई.) इत्यादि आचार्यों ने काव्य सिद्धांतों की एक से एक विशेषताओं का उद्घाटन अपने जीवनकाल में किया है। 'वक्रोक्तिकाव्यजीवित' लिखकर कुंतक ने काव्य-चिंतन का अद्यतन स्वरूप प्रस्तुत कर दिया। उनका मत था कि काव्य की भाषा लोक-व्यवहार और शास्त्र दोनों से अलग होती है। इसे वह विचित्र अभिधा कहते हैं। कुंतक सिद्धांतकार के साथ आलोचक भी थे। अतः उनके विचार आधुनिक आलोचना के लिए भी प्रेरणास्रोत हैं। अभिनवगुप्त ने ध्वनिवाद के माध्यम से रस को काव्य की जिस केंद्रीय धुरी में स्थापित किया था, उस मत के समर्थक आचार्यों की संख्या सर्वाधिक है।

भारतवर्ष में काव्य-सिद्धांतों के विमर्श ईसा पूर्व सदियों से होते रहे हैं। यही कारण है कि इसके विकास के विविध आयाम दिखते हैं। यद्यपि पाश्चात्य काव्यशास्त्र को अधिक व्यापक, सुनिर्दिष्ट और अद्यतन माना जाता है, पर भारतीय काव्य सिद्धांतकारों ने कुछ ऐसे निष्कर्ष दिए हैं, जहां यूरोपीय सिद्धांतकार खड़े होने में भी असमर्थ हैं। यह स्वीकार करने से परहेज नहीं करना चाहिए कि भारतीय काव्य सिद्धांतों में आधुनिक चिंतन की आवश्यकता है। इसके बावजूद रस के

आस्वादपरक विवेचन की व्यापकता और ध्वनि संबंधी विविध चिंतन पाश्चात्य काव्यशास्त्र को बहुत पीछे छोड़ देते हैं। कहना है कि पश्चिम में रस के आस्वाद, ध्वनि के वर्गीकरण और काव्य भाषा का इतना सूक्ष्म विश्लेषण नहीं मिलता है। यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धात अत्यंत पुराने हैं। उनमें समयानुकूल नया चिंतन करने की आवश्यकता तो है ही, वर्तमान समाज व लोक की चित्तवृत्तियों को आधुनिक संदर्भ में व्याख्यायित करने की भी जरूरत है। मात्र प्राचीन काव्य-सिद्धांतों से बंधकर आज के साहित्य का मूल्यांकन अधूरा होगा। एक बात और है—आज पश्चिमी काव्य सिद्धांतों के आलोक में भारतीय काव्य-सिद्धांतों की उपेक्षा की जा रही है। यह प्रवृत्ति काव्य के व्यापक उद्देश्य में घातक है। हिंदी आलोचना पर इसका प्रभाव दिखने लगा है। पश्चिमी काव्यालोचन से कुछ सीखना, ग्रहण करना एक बात है और उसे अपना प्रतिमान घोषित कर देना पूर्णतः दूसरी बात। इस प्रवृत्ति से अपनी चिंतन परंपरा संकटग्रस्त दिखती है और काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का विकास भी बाधित होता है। हमें काव्य के क्षेत्र में रूढ़िबद्धता से मुक्त होते हुए अपनी परंपरा में निहित जीवन मूल्यों को स्मरण रखना होगा।

भारतीय काव्य सिद्धांतों का निर्माण, भरतमुनि (200-300 ई. पूर्व) से माना जाता है। उनका 'नाट्यशास्त्र' भारत में प्रचलित सभी काव्य सिद्धांतों का मूल स्रोत है। यही कारण है कि 'नाट्यशास्त्र' का विमर्श-प्रतिविमर्श हजारों वर्षों से चल रहा है। आज भी उसकी प्रक्रिया बंद नहीं है। भरतमुनि के बाद भामह को (6ठी-7वीं शती) अलंकारवादी आचार्य कहा जाता है, पर डॉ. शंकरन इत्यादि विद्वानों का मत है कि भामह का कोई अलग संप्रदाय नहीं है। इसी प्रकार भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' में रस का सांगोपांग विवेचन हुआ है। ध्वनिवादी आचार्य अभिनवगुप्त के ध्वनि सिद्धांत का पर्यवसान रस संप्रदाय में दिखाई पड़ता है। भिन्न-भिन्न नाम और चिंतन के होते हुए भी रस की उपेक्षा किसी भी आचार्य ने नहीं की है। अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति तथा औचित्य इत्यादि का काव्य-क्षेत्र में अपना विशिष्ट महत्त्व है; पर रस सिद्धांत का अद्वितीय महत्त्व है। रस रहित काव्य शुष्क व नीरस होता है। इसप्रकार सभी काव्य सिद्धांतों का रस से प्रगाढ़ संबंध है। यह संबंध अदृश्य होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय मनीषा की इसी भावभूमि में आचार्य अभिनवगुप्त का 'ध्वन्यालोकलोचन' ध्वनिवाद के प्रवर्तक आनंदवर्धन के काव्य सिद्धांत को पर्याप्त विस्तार के साथ महत्त्वपूर्ण बना देता है। यह विस्तार 'ब्रह्मानंद सहोदर' एवं 'रसो वै सः' की व्यंजना तो कराता ही है, व्यावहारिक जीवन में रस के महत्त्व और उपयोगिता को प्रतिष्ठित भी करता है। अभिनवगुप्त की आलोचना की जाती है कि वह स्वयं ही शिव बन जाते हैं और स्वयं आनंद के उपभोक्ता भी।[1] पर यह नहीं भूलना चाहिए कि 'लोचन' ग्रंथ (भाष्य) लिखकर उन्होंने जीवन में रस को व्यापक प्रतिष्ठा दिलाई। वह प्रतिभाशाली आचार्य थे। अतः ध्वनि को रस (आनंद) में बदल देने का जबरदस्त संकल्प उन्हें अग्रणी आचार्यों में परिगणित करा देता है। उन्होंने आदर के साथ अपने पूर्ववती आचार्यों का स्मरण किया है और अपनी प्रतिभा के बल पर ध्वनि सिद्धांत को एक सुविचारित संप्रदाय के रूप में विकसित भी किया

है। उनकी इस बौद्धिकता से ध्वनिवाद को जटिल बनाने का आरोप भी लगता है, पर ध्वनियों से रस की पूर्ण प्रतीति कराने में वह अद्वितीय आचार्य रहे हैं। रसानंद की यह अनुभूति हजारों वर्ष बाद हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद के काव्य में उतरती दिखाई पड़ती है। इससे प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रभाव का आकलन सहज ही हो जाता है–

समरस थे जड़ या चेतन सुंदर साकार बना था।
चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था (कामायनी, आनंद सर्ग)

कश्मीर के शैव संप्रदाय की प्रत्यभिज्ञा-शास्त्र शाखा के प्रवर्तक आचार्य सोमानंद थे; पर इस दर्शन के प्रमुख आचार्य अभिनवगुप्त थे। उनका प्रतिपादन था कि हम सब ईश्वर के अंश या वस्तुतः ईश्वर हैं, पर हम इस तथ्य की प्रत्यभिज्ञा नहीं कर पाते हैं–जान नहीं पाते हैं। उनका विचार था कि जीव ईश्वर के स्वरूपगत विशुद्ध आनंद का अनुभव नहीं कर पाता, क्योंकि उसे यह ज्ञात नहीं होता कि वह स्वयं ईश्वर है और जो गुण ईश्वर में हैं, वे उसमें भी हैं। परंतु जब गुरु के उपदेशों से मनुष्य को ज्ञान हो जाता है कि वह भी ईश्वर के गुणों से युक्त है, तब वह स्वयं में ईश्वर की प्रत्यभिज्ञा करने में समर्थ हो जाता है; ऐसी स्थिति में उसमें उत्कृष्ट आनंद का उदय होने लगता है। कश्मीर के शारदाधाम में अभिनवगुप्त के इस आनंदवादी दर्शन का हजार वर्षों से निरीक्षण और परीक्षण होता रहा है। उनके इस दर्शन से लोकजीवन में उपजे आनंद के साथ साहित्य पर भी जबरदस्त प्रभाव दिखाई देता है। उसका एक बड़ा कारण था आचार्य अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व में वैदुष्य एवं कवित्व का अद्‌भुत संयोग। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तंत्रालोक' में अभिनवगुप्त ने इसकी स्थापना की है। यही कारण है कि भारतीय विद्वत जगत् में उनकी प्रतिभा का विशेष सम्मान किया जाता है। ध्वनिवाद के प्रवर्तक आनंदवर्धन के वह प्रमुख भाष्यकार और प्रत्यभिज्ञा दर्शन के तत्कालीन सबसे बड़े पंडित थे। यद्यपि उनके चिंतन में पूर्ववर्ती आचार्यों की उपेक्षा का संकेत मिलता है, पर उनकी तर्कणा शक्ति की प्रशंसा किए बिना उनसे मतभेद रखने वाला आचार्य भी नहीं रह सकता है। ऐसा भी नहीं कि वह परंपरा व अध्यात्म के विरोधी थे; पर अपनी प्रतिभा से वह नवीन मार्ग का अन्वेषण कर लेते थे। अतः परंपरावादी होते हुए भी वह गतानुगतिक नहीं थे। उनके कतिपय शिष्य भी उनसे सहमत नहीं थे, पर विद्वानों का एक बड़ा समुदाय था, जो उनके ध्वनिवाद की नई और सुग्राह्य व्याख्या से प्रभावित था। उनका अनुगमन करते हुए इन विद्वानों ने ध्वनिवाद को काव्य-समीक्षा के केंद्र में रखा। कालांतर में मम्मट, रुय्यक, शोभाकरमित्र, जयरथ, जयदेव, वाग्भट्ट, श्रीविद्यानाथ, अप्पय दीक्षित इत्यादि परवर्ती आयार्यों ने ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करते हुए अभिनवगुप्त के तर्क, प्रमाण और गुणवत्ता को आगे बढ़ाया। काव्य में ध्वनि के माध्यम से रसानुभूति कराने के संदर्भ में स्वयं अभिनवगुप्त लिखते हैं–'तेन रस एव वस्तुतः आत्मा, वस्त्वलंकारध्वनि तु सर्वदा रसं प्रति पर्यवस्येते इति वाच्यात् उत्कृष्टौ तौ, इत्यभि प्रायेण ध्वनि काव्यस्यात्मा इति सामान्येन उक्तम्', अर्थात् रस ही काव्य की आत्मा है। वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि का तो इनमें पर्यवसान हो जाता है, इसलिए ये वाच्य से उत्कृष्ट अवश्य होते हैं। ध्वनि को

काव्य की आत्मा कहना तो औपचारिक है। रस ध्वनि के अंतर्गत नवरस आते ही हैं—भाव, भावभास, भावोदय, भावसबलता, भावसंधि इत्यादि सभी का इसमें समावेश किया जाता है। इसीलिए रसनिष्पत्ति के संदर्भ में आचार्य मम्मट अभिनवगुप्त का नाम बड़े आदर के साथ लेते हैं—'इतिश्रीमद्भिनवगुप्तपादाचार्याः'।

अभिनवगुप्त ने 'नाट्यशास्त्र' पर लिखी हुई अपनी टीका 'अभिनवभारती' और आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक पर 'ध्वन्यालोकलोचन' लिखकर ध्वनि के माध्यम से काव्य में रस की बलवती प्रतिष्ठा की है। इन भाष्यों में रसविषयक विवेचना को बहुत महत्त्व दिया गया है। अभिनवगुप्त ने भट्टनायक द्वारा खोजे गए शब्दों के दो क्रिया व्यापारों को अमान्य सिद्ध करते हुए उन्हें व्यंजना का अभिन्न अंग स्वीकार कर लिया है। उनकी दूसरी आपत्ति रस के संबंध में भट्टनायक की रसप्रतीति पर है; भट्टनायक ने प्रतीति को 'स्वगत' और 'परगत' भेदों में विभक्त किया है। वस्तुतः रसानुभूति और 'रसप्रतीति' में अर्थ के स्तर पर कोई भेद नहीं है। उदाहरण के लिए कहा जा सकता है कि—'वह भात पकाता है'—में चावल पर भात का आरोप किया जाता है वैसे ही रस पर प्रतीति का। यह प्रतीति सहृदय में उत्पन्न होती है। रस प्रतीति का कारण घनन व्यापार होता है, न कि अभिधा-व्यापार। अतः रस भुक्ति नहीं अभिव्यक्ति है। रस के संबंध में आचार्यों ने प्रायः तीन तर्कों को प्रतिष्ठित किया है—1. रस की स्थिति की पात्रता, 2. उसकी प्रक्रिया एवं 3. उसका स्वरूप क्या है? इस संदर्भ में लोल्लट और शंकुक की अवधारणाएं प्रायः समान हैं। दोनों ने रस प्रसंग को नाटक के प्रसंग में उठाया है। आचार्य भरतमुनि तो मंच पर घटित होने वाले समस्त क्रियाकलाप को नाट्य या रस ही मानते हैं। लोल्लट रस की स्थिति को अनुकृति या नाट्याभिनय में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में अनुकार्य का स्थायी होना ही रस है—यह विभावादि के संयोग से बनता है। नट रसादि के रूप का आरोप करता है। उसमें वासनावश रस का जन्म होता है। वह स्वयं भी रसास्वादन करता है। दर्शक बाहर से उसे ग्रहण करता है। शंकुक का दर्शक नट में रस का अनुमान 'चित्रतुरंग' न्याय से करता है; पर अभिनवगुप्त रस की निष्पत्ति सहृदय में स्वीकार करते हैं। सहृदय उसका आनंद भोक्ता होता है। अभिनवगुप्त ने रसानुभूति को नाट्य क्षेत्र के आगे काव्यक्षेत्र तक पहुंचाया और शब्दों के प्रयोग-अनुप्रयोग का महत्त्व बताया। उन्होंने रस को आनंदवाद से अभिन्न कर दिया। वह 'ब्रह्मानंद' का सगा भाई बन गया।

आज एक बड़ा प्रश्न आनंद, अनिर्वचनीयता, लोकोत्तर आनंदानुभूति को लेकर उठाया जाता है। कहा जाता है कि काव्य और नाटक में वर्णित रसानुभूति जीवन की जटिलता में कितनी उपयोगी बन सकती है? इस अवधारणा के मूल में, साहित्य को समाज-सापेक्ष घोषित करना है। इस स्थिति में आनंदानुभूति का औचित्य कितना रह जाता है? रस को अलौकिक, चिन्मय, ब्रह्मानंद इत्यादि दार्शनिक शब्दावली से इतना बांध दिया गया है कि जटिल जीवन और प्रपंचपूर्ण जगत् से उसका सीधा संपर्क ही भंग हो जाता है। सहृदय भले ही काव्य का श्रवण कर, नाटक को देखकर लोकोत्तर अनुभूति करे, पर वास्तविक जीवन से उसका विलगाव हो जाता है। फिर भी जीवन में आनंद की

उपेक्षा संभव नहीं। विज्ञान जगत् की नीरसता, उद्योग जगत् का शोरगुल और भौतिक जीवन की आपाधापी में काव्य और नाटक से उत्पन्न आनंद, जीवन में शांति और समचित्तता का सृजन करता है। इस दृष्टि से अभिनवगुप्त का चिंतन आज भी प्रासंगिक है।

किसी भी नए चिंतन में तत्कालीन कारकों का अपना प्रभाव व दबाव होता है। इस दृष्टि से अभिनवगुप्त को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने से उनके काव्यमत की सार्थकता समझ में आती है। उनका जीवनकाल 10वीं से 11वीं शती माना जाता है। उस समय का जनजीवन आज की अपेक्षा अधिक स्थिर, निश्चित और शांत था। राजा-महाराजा और सामंत समाज की लोकवृत्ति और चिति को प्रभावित करते थे। लोकजीवन के साथ राजन्य वर्ग में भी आनंद की प्रतिष्ठा थी। अतः अभिनवगुप्त का शैवागम दर्शन भी जीवन-जगत् के आर-पार आत्मानंद में लीन था। यदि समकाल के दबाव से साहित्य प्रभावित होता हो तो अभिनवगुप्त का काव्य सिद्धांत इसका अपवाद क्यों बने? आनंद की प्राप्ति मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र की प्रियतम मनोभूमि होती है। इन अर्थों में आनंदवाद को कैसे अस्वीकृत किया जा सकता है? किसी भी कला की प्राथमिकता उसके सृजन से उपजे आनंद में निहित होती है। सृजनात्मकता में वास्तविक आनंदानुभूति होती है। हिंदी के अप्रतिम कवि तुलसीदास 'स्वांतःसुखाय रघुनाथगाथा' लिखकर इसी तर्क को पुष्ट करते हैं, पर प्रत्यभिज्ञा दर्शन में आनंद की सीमा यहीं रुक नहीं जाती। जीवन के विविध क्षेत्रों में इसका न्यूनाधिक प्रभाव देखा जा सकता है। रसानुभूति में जिस साधारणीकरण की अहम भूमिका होती है, वह आज पेचीदा बन गई है। स्थायीभाव तो सनातन हैं, जो बदले नहीं, पर विभाव आदि में व्यापक परिवर्तन देखा जा रहा है। इस परिवर्तन में संचार माध्यमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। शब्दों के अर्थ तेजी से बदल रहे हैं—उनका अभिप्राय भी कम परिवर्तनशील नहीं है। अतः कविकर्म के समक्ष पहाड़ जैसी समस्याएं खड़ी हैं। राम-सीता, दुष्यंत-शकुंतला, राधा-कृष्ण जैसी आदर्शप्रियता कहां है? न वह मर्यादा है, न प्रेम की एकनिष्ठता, सरलता व सहजता तो गायब ही हैं। अतः रसानुभूति वही न होकर समस्याओं एवं प्रश्नों के कूटजाल में उलझ गई है। पहले की अपेक्षा आकुलता बढ़ी है, विश्वास डिगे हैं और विश्वसनीयता घटी है। अब वह तन्मयता नहीं है। काव्य पढ़कर और नाटक देखकर रसानुभूति के साथ एक बेचैनी भी बनी रहती है—उसका कारण है समकाल की समस्याओं का मकड़जाल।

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल काव्य की काल्पनिक रसानुभूति (आनंदमयता) के विरुद्ध थे। वह काव्य के आनंद को लोकजीवन से जोड़कर देखते हैं। अतः समूचा तुलसी साहित्य उन्हें लोकजीवन का प्रेरणा स्रोत दिखता है। वह कहते हैं कि "मेरी समझ में रसास्वादन का प्रकृत स्वरूप आनंद शब्द से व्यक्त नहीं होता। लोकोत्तर, अनिर्वचनीय आदि विशेषणों से न तो उसके अवाचकत्त्व का परिहार होता है और न प्रयोग का प्रायश्चित्त। क्या क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनंद के रूप धारण करके ही श्रोता के हृदय में प्रकट होते हैं, अपने प्रकृत रूप का सर्वथा विसर्जन कर देते हैं, उसे कुछ भी लगा नहीं रहने देते? क्या कोई दुखांत कथा पढ़कर बहुत देर तक उसकी खिन्नता नहीं बनी रहती? चित्त का द्रुत होना क्या आनंदगत है? इस आनंद शब्द ने काव्य के महत्त्व

को बहुत कम कर दिया है।" स्पष्ट है कि शुक्ल जी काव्य के आनंद को लोकजीवन के बीच में ही देखना चाहते हैं। रसानुभूति के संदर्भ में उनकी आधुनिक व्याख्या विशेष महत्त्व रखती है। वह रस के आनंद को लोकजीवन की प्राणवायु मानते हैं।

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद

ध्वनि अपने प्रौढ़तम रूप में रसानुभूति की व्यंजना कराने लगती है—यह अभिनवगुप्त की महत्त्वपूर्ण स्थापना है। 'अभिनवभारती' में भरतमुनि के रससूत्र की व्यापक व्याख्या हुई है। 'नाट्यशास्त्र' के रस संबंधी भाष्यकारों में अभिनवगुप्त चौथे विद्वान हैं। वे अपने पूर्ववर्ती आचार्य भट्टनायक के भुक्तिवाद का खंडन करते हैं और रस के संदर्भ में अभिव्यक्तिवाद की स्थापना। आनंदवर्धन व्यंजना के आधार पर रसाभिव्यक्ति की स्थापना पहले ही कर चुके थे, पर बाद में भट्टनायक उनका विरोध करते हुए भावना और भोगीकरण की कल्पना करते हैं। अभिनवगुप्त इसे खारिज करते हुए व्यंजना से ही काम चला लेते हैं और दोनों शब्दों को अनावश्यक मानते हैं। भट्टनायक द्वारा प्रयुक्त दो शब्दों—'भावना' और 'भुक्ति' पर अभिनवगुप्त को विशेष आपत्ति है। अभिधा उनके यहां विचारणीय नहीं है, जबकि भट्टनायक की अभिधा विशिष्ट प्रकार की है, जो शास्त्रीय अभिधा से एकदम अलग है। निष्कर्षतः अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद इसी रूप में देखा जा सकता है। भावना और भोग का अंतर्भाव व्यंजना में ही हो जाता है। रस का आस्वादन करते समय सहृदय मुक्तावस्था में रहता है। स्थायी भाव सहृदय में समान रूप से विद्यमान होते हैं और 'ब्रह्मानंद सहोदरत्त्व' भी उसमें उपस्थित रहता है। सब मिलाकर यह स्मरण रखना अपेक्षित है कि अभिनवगुप्त काव्य को लोक की सामान्य भावभूमि पर ही प्रतिष्ठित करने के समर्थक हैं। यदि सहृदय में अपेक्षित संस्कार का अभाव है तो वह काव्य को सही ढंग से समझने में असमर्थ होता है। उसमें रसानुभूति की मात्रा भी सीमित होती है।

आचार्य अभिनवगुप्त की नवता यही है कि आनंदवर्धन के ध्वनिवाद को उन्होंने रसवाद के विशाल फलक पर फैला दिया और ध्वनि को रसरूप में पर्यवसित कर दिया। काव्यसिद्धांत के क्षेत्र में यह स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने की यात्रा है। आगे उन्होंने यह भी इंगित किया कि ध्वनि तो वस्तुरूप है ही और अलंकाररूप भी। 'ध्वन्यालोकलोचन' में वह ध्वनि प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्धन से भी आगे दिखते हैं। अभिनवगुप्त की दूसरी सबसे बड़ी देन आनंदवर्धन के मौन को मुखर बनाना है। ध्वनिकार आनंदवर्धन ने ध्वनियों की गणना छोड़ दी थी—उसे पूरा किया अभिनवगुप्त ने। उन्होंने ध्वनियों की संख्या अनंत बताकर विराम लगा दिया; पर अभिनवगुप्त ने शैवागम की 35 संख्या को ध्वनि में अंतर्भुक्त कर उनकी संख्या गुणीभूतव्यंग्य इत्यादि के रूप में 7420 तक पहुंचा दी है। इस परिगणन शैली में विद्वानों ने उनकी कमियों की ओर संकेत तो किया ही, उन पर इस सिद्धांत को जटिल बनाने का आरोप भी मढ़ दिया।

भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' पर अभिनवगुप्त की लिखी 'अभिनवभारती' उनकी विद्वत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण है। यह भाष्य, मूल पुस्तक 'नाट्यशास्त्र' से भी विशाल है। यद्यपि यह खंडित रूप

में ही प्राप्त है; पर इसकी व्याख्या ने रसशास्त्र पर एक प्रामाणिक, त्रुटिरहित स्थापना से ध्वनि और रस को सहोदर बना दिया, परस्पर पूरक सिद्ध कर दिया। रसशास्त्र पर इस पुस्तक के कुछ अंश का उल्लेख हेमचंद्राचार्य ने 'काव्यानुशासन' में किया है। अभिनवगुप्त ने साहित्य का पाठ भट्टेंदुराज नामक महामनीषी से पढ़ा था। वह चाहते तो साहित्यशास्त्र पर ग्रंथ लिख सकते थे, पर उन्होंने अपनी दो टीका पुस्तकों 'ध्वन्यालोकलोचन' व 'अभिनवभारती' द्वारा काव्य सिद्धांतों के दो प्रमुख संप्रदायों पर पर्याप्त प्रकाश बिखेरकर आचार्यों की अग्रणी पंक्ति में अपना नाम अंकित करा लिया है।

ध्वनि, नाटक एवं जीवन में रस के जबरदस्त साधक आचार्य अभिनवगुप्त और उनके दर्शन में निमग्न थे तमाम विशेषताएं पुनः दिखने लगी हैं। आज आवश्यकता है उनके दर्शन के पुनर्पाठ की, पुनः स्मरण करने की।

संदर्भ ग्रंथ–

1. द्विवेदी, रेवाप्रसाद, (2002). 'संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास', पृ. 180, कालिदास संस्थानम्।

□

संवाद परंपरा के प्रतिमान 'अभिनवगुप्त'

जयप्रकाश सिंह

भारतीय परंपरा में संचारक को अपेक्षाकृत विस्तृत परिप्रेक्ष्य में परिभाषित किया जाता रहा है। यह परंपरा संचारक की भूमिका में व्यक्ति की अनेक गतिविधियों को स्थान देती है। कंठ केंद्रित संचार में दक्ष लोगों के अतिरिक्त परंपरा का परिष्कार कर उसे सामयिक कलेवर देने वाले भाष्यकार, विभिन्न ज्ञान धाराओं और ज्ञान परंपराओं के बीच संवाद सेतु स्थापित करने वाले संश्लेषक और नई अवधारणाओं का योगदान देने वाले दार्शनिकों तथा गुरु-शिष्य परंपरा के प्रवाह को अखंड बनाए रखने वाले आचार्यों को भी यह परंपरा संचारक की श्रेणी में रखती है।

स्पष्ट है कि इस परंपरा में संचारक केवल वक्ता ही नहीं है, वह लेखक, दार्शनिक और भाष्यकार भी हो सकता है। यह परंपरा संचारक से त्वरित और दीर्घगामी, दोनों तरह के प्रभाव पैदा करने की अपेक्षा रखती है। भाष्य, अवधारणाएं तथा ग्रंथ त्वरित प्रभाव तो नहीं पैदा करते, लेकिन इनकी अंतर्वस्तु का प्रभाव कई पीढ़ियों तक बना रहता है। इस परंपरा में संचारक का सम्मोहक होना आवश्यक नहीं है। इसकी बजाय उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता को बढ़ाए। आचार्य अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व में ऐसी अनेक गतिविधियों का समावेश है। इन गतिविधियों का अध्ययन करके उनके संचारक व्यक्तित्व का परिचय पाया जा सकता है।

अभिनव व्यास : आचार्य अभिनवगुप्त को ज्ञान की विभिन्न धाराओं के संश्लेषण, उनके संग्रहण और व्यवस्थित संपादन के लिए अभिनव व्यास की संज्ञा दी जा सकती है। कभी महर्षि वेदव्यास ने उपलब्ध ज्ञान को संगृहीत कर उसका व्यवस्थित संपादन किया था। यह संपादन कार्य इतना महत्त्वपूर्ण साबित हुआ कि विपरीत से विपरीत समयावधि में भी भारतीय संस्कृति यहां से बल प्राप्त करती रही और अपने सातत्य को बनाए रख सकी। महर्षि को महाभारत और पुराणों का रचनाकार तो माना ही जाता है, उन्होंने वेद विद्या को अपेक्षाकृत सहज बनाने के लिए उसको चार भागों में विभक्त भी किया।

महर्षि वेदव्यास को भारतीय संस्कृति की मौखिक परंपरा को एक हद तक लिखित परंपरा में रूपांतरित करने का श्रेय दिया जाता है। उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण कार्य का संपादन मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों और सीमाओं को ध्यान में रखते हुए बहुत सुव्यवस्थित ढंग से किया। पुराणों की रचना में तो उनकी निर्भ्रांत मनोवैज्ञानिक समझ का बहुत स्पष्ट रूप से दर्शन होता है। एक ही तत्त्व को

विविध प्रवृत्तियों के लोगों को अनुभूत कराने के लिए उन्होंने अठारह पुराणों की रचना की। भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग और कर्म मार्ग की अलग-अलग प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने के लिए विविध पुराणों की रचना की गई।

उपलब्ध ज्ञान धाराओं के संश्लेषण और उन्हें सहज रूप से संप्रेषित करने का विश्व में सबसे बड़ा उदाहरण 'महाभारत' है। इस ग्रंथ में संपूर्णता और संश्लेषण की प्रक्रिया इतने सटीक ढंग से अभिव्यक्त हुई है कि बहुत अधिकार के साथ कहा जाने लगा कि 'महाभारत' में संसार की सभी प्रवृत्तियों के दर्शन हो जाते हैं और यदि कोई प्रवृत्ति यहां नहीं है तो उसका संसार में अन्यत्र दर्शन होना मुश्किल ही है। इसीलिए व्यास की प्रतिभा की स्तुति करते हुए कहा गया है कि–

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे भरतर्षभ। यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥[1]

(जीवन के चतुर्विध पुरुषार्थों से संबंध रखने वाला जो कुछ ज्ञान 'महाभारत' में है, वही अन्यत्र है। जो 'महाभारत' में नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगा।)

महर्षि वेदव्यास ने सनातन ज्ञान को मनोवृत्तियों के अनुसार व्यवस्थित श्रेणियों में संहिताबद्ध किया। यह संहिताकरण ज्ञान के संरक्षण और संवर्धन के लिए अमृत का स्रोत बन गया। सनातन ज्ञान को श्रेणियों में विभाजित करके महर्षि वेदव्यास ने भारत की सभ्यतागत धारा को अक्षुण्ण बनाए रखने की सांस्कृतिक व्यवस्था की। उनके इस ज्ञान-विभाजन के कारण भारतीय विद्वत जगत् में विशेषज्ञता की प्रवृत्ति ने जन्म लिया और सब कुछ सीखने की मनोवृत्ति से छुटकारा मिला। रुचि और विशेषज्ञता को स्थान मिलने के कारण भारतीय बौद्धिक जगत् में नई सक्रियता ने जन्म लिया और चिंतन के नए शिखरों की रचना हुई। अपने ज्ञान क्षेत्र में विशिष्ट प्रयोगों को करने को बढ़ावा मिला और इसके कारण एक क्षेत्र विशेष से विशेषीकरण की सैकड़ों अन्य शाखाओं ने जन्म लिया।

महर्षि वेदव्यास ने वैदिक ज्ञान का विभाजन-संपादन किस उद्देश्य को लेकर किया और उनके इस कार्य से किस तरह लोककल्याण हुआ, इसका बहुत सुंदर उल्लेख 'श्रीमद्भागवत' में किया गया है। इसके केंद्र में ज्ञान को अधिक से अधिकतम लोगों तक पहुंचाने की भावना तो थी ही, जनमानस में विभ्रम को मिटाने का ध्येय भी इस कार्य का हेतु था। महर्षि की इच्छा थी कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में निहित संभावनाओं और उनको साकार करने के मार्गों की सटीक जानकारी से परिचित हो–

स कदाचित् सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचि। विविक्तदेश आसीन उदिते रविमंडले ॥
परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा। युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥
भौतिकानां च भावानाम् शक्तिह्रासं च तत्कृतम्। अश्रद्दधानान्निः सत्तवानं दुर्मेधान् ह्रसितायुषः ॥
दुर्भगाश्च जनान् वीक्ष्य मुर्निदिव्येन चक्षुषा। सर्ववर्णाश्रमाणां यछश्यौ हितममोघदृक् ॥
चार्तुहोत्रम् कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकं। व्यदधाद् यज्ञसंतत्यै वेदमेकं चर्तुविधम् ॥
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदश्चत्त्वार उद्धृताः। इतिहासपुराणां च प्श्चमो वेद उच्यते ॥
तत्रग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः। वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत् ॥
अर्थवांगिरसामासीत् सुमंतुर्दारूणो मुनिः। इतिहासपुराणां पिता में रोमहर्षणः ॥

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्न्ननेकधा। शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिर्ववेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥
त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यंते पुरुषैर्यथा। एवं चकारं भगवान् व्यासः कृपणवत्सलः ॥[2]

(अर्थात् एक दिन वे पुराणमुनि व्यास सूर्योदय के समय सरस्वती के पावन जल में स्नानादि करके एकांत में पवित्र स्थान पर बैठे हुए थे। वे महर्षि भूत और भविष्य के ज्ञाता तथा दिव्य दृष्टि से संपन्न थे। उन्होंने उस समय देखा कि जिसका परिज्ञान लोगों को नहीं होता, ऐसे समय के फेर से प्रत्येक युग में धर्मसंकट रहा और उसके प्रभाव से भौतिक पदार्थों की शक्ति का क्षय होता रहता है। सांसारिक जन श्रद्धाविहीन और शक्तिहीन हो जाते हैं। उनकी बुद्धि कर्तव्य-निर्णय में असमर्थ एवं आयु अल्प हो जाती है। लोगों की इस भाग्यहीनता को देखकर उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टि से समस्त वर्णों और आश्रमों का हित कैसे हो? इस पर विचार किया। उन्होंने सोचा कि वेदोक्त चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मादि द्वारा, संपादित होने वाले अग्निष्टहोमादि यज्ञ)—कर्म लोगों का हृदय शुद्ध करने वाले हैं, अतः यज्ञों का विस्तार करने के लिए उन्होंने एक ही वेद के चार विभाग ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व के रूप में किए। इतिहास और पुराण को पांचवां वेद कहा जाता है। उनमें से प्रथम स्नातक ऋग्वेद के पैल, सामवेद के जैमिनि, यजुर्वेद के वैशंपायन और अथर्ववेद के सुमंतु हुए और सूतजी के पिता रोमहर्षण इतिहास पुराणों के स्नातक हुए। इन सब महर्षियों ने अपनी-अपनी वैदिक शाखाओं को अनेक भागों में विभक्त कर दिया। इसप्रकार शिष्य, प्रशिष्य तथा उनके शिष्यों द्वारा वेदों की अनेक शाखाएं बन गईं। अल्प बौद्धिक शक्ति वाले पुरुषों पर कृपा करके भगवान वेदव्यास ने वेदों का यह विभाग इसलिए किया, जिससे दुर्बल स्मरण शक्ति वाले तथा धारणा शक्ति वाले भी वेदों को धारण कर सके।)

आचार्य अभिनवगुप्त ने भी विभिन्न ज्ञान धाराओं को संहिताबद्ध करने और ज्ञान की गुत्थियों को खोलकर उन्हें सहज-सरल रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करने का कार्य असाधारण सिद्धता के साथ और अविश्वनीय पैमाने पर किया है। उन्होंने ज्ञान की विभिन्न धाराओं का अध्ययन किया। वह स्वयं उत्कट साधक भी थे। स्वाध्याय और साधना के संयोग के कारण वह तुलनात्मक विवेचन करने में सक्षम तो थे ही, अपनी अंतःदृष्टि से किसी भी ज्ञान परंपरा के मर्म को आलोकित करने की प्रतिभा भी थी। इन दोनों अद्भुत क्षमताओं के कारण आचार्य ने विपुल साहित्य की रचना की।

अभिनवगुप्त ने शैव-दर्शन के हर आयाम पर लिखा। लगभग 44 पुस्तकों को उनके नाम के साथ जोड़ा जाता है। उनका महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है—तंत्रालोक। 'परात्रिंशिका विवरण', 'परमार्थ सार', 'तंत्रसार' और 'गीता संग्रह' उनकी अन्य प्रचलित पुस्तकें हैं। 'परमार्थ सार', 'शेष की कारिका' पर आधारित है तो 'गीता संग्रह' श्रीमद्भगवद्गीता पर उनकी टीका है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर अभिनव भारती और आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक पर 'लोचन' लिखकर अभिनवगुप्त सामान्य शैव दार्शनिक से काफी आगे निकल जाते हैं।[3]

आचार्य अभिनवगुप्त, महर्षि वेदव्यास की तरह इतना विशाल साहित्य रच सके, तो इसका एक बड़ा कारण उनका जीवन ध्येय भी था। बाल्यकाल में ही माता-पिता के निधन के कारण आचार्य अभिनवगुप्त बहुत जल्द ही साधना और स्वाध्याय की तरफ मुड़ गए थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन ही शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन, ग्रंथों की रचना और आध्यात्मिक साधनाओं

को समर्पित कर दिया था। इस स्पष्टता और एकनिष्ठता के कारण ही वह 'तंत्रालोक' जैसे विश्वकोशीय ग्रंथ की रचना कर सके।

'तंत्रालोक', 'शिवद्वयशास्त्र', 'त्रिशास्त्र' और 'तंत्रशास्त्र' का विश्वकोश है। इस ग्रंथ की इसी महनीयता के कारण परवर्ती आचार्यों ने इसके नाम के साथ इसके नाम के पूर्व श्री शब्द जोड़ दिया। 'तंत्रालोक' का अध्ययन तथा इसके अनुसार जीवनयापन करने वाले श्री अर्थात् समस्त सांसारिक अभ्युदय प्राप्त कर अंत में जीवनमुक्त होते हुए परमशिवसामरस्य को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। तंत्र के इस आलोकमय महासमुद्र में जो साधक जिस इच्छा से अवगाहन करता है, उसकी वह इच्छा पूरी होती है।[4]

एक संचारक की कई भूमिकाएं हो सकती हैं। उनमें से कुछ से हम परिचित हैं। जैसे कि एक संचारक में मौखिक रूप से जनमानस के प्रबोधन की क्षमता होनी चाहिए। उसमें हाव-भाव तथा भाषा के माध्यम से लोगों को सम्मोहित करने की क्षमता होनी चाहिए। अद्‌भुत सांस्कृतिक-सामाजिक समझ के बल पर लोगों को आंदोलित करने की क्षमता रखने वाले व्यक्ति को भी हम संचारक मानते हैं। आधुनिक संदर्भों में देखें तो मीडिया के प्रत्येक प्लेटफॉर्म की समझ रखने वाला और प्रत्येक प्लेटफॉर्म के अनुरूप अंतर्वस्तु के सृजन की क्षमता रखने वाले व्यक्ति को संचारक माना जाता है, लेकिन संचारक के केवल इतने ही रूप नहीं हैं।

सांस्कृतिक और बौद्धिक संदर्भों में ज्ञान का संरक्षण और अगली पीढ़ियों तक उसे सौंपने का संपादकीय कार्य भी एक अति महत्त्वपूर्ण संचारकीय भूमिका है। इस संदर्भ में आचार्य अभिनवगुप्त एक शीर्ष भारतीय संचारक बन जाते हैं। उन्होंने ज्ञान के सरंक्षण और संवर्धन के लिए अपना पूरा जीवन ही समर्पित कर दिया था। आचार्य अभिनवगुप्त ने ज्ञान संरक्षण के लिए तांत्रिक ग्रंथों के लिखने की बात स्वयं भी स्वीकार की है–

गुरुवक्त्रच्च बोद्धव्यं करणं यद्यपि स्फुटम। तथाप्यागमरक्षार्थं तदग्रे वर्णयिष्यते।[5]

(यद्यपि करण स्पष्ट रूप से गुरुमुख से जानने योग्य हैं तथापि आगम की रक्षा के लिए आगे उसका वर्णन किया जाएगा।)

ज्ञान संपदा का आचार्य के द्वारा किया गया संहिताकरण भारत की सांस्कृतिक धारा के लिए एक महत्त्वपूर्ण संबल साबित हुआ। तंत्र को तो वैसे भी गुह्य विषय माना जाता है और आगम की संहिताकरण के प्रयास बहुत दुर्लभ रहे हैं। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा आगम की गुह्य परंपराओं और दर्शनों को एक ही जगह संहिताकरण किया जाना तथा ज्ञान की विविध परंपराओं पर समान सिद्धता के साथ प्रकाश डालना उन्हें अभिनव व्यास बना देता है।

नाट्य विचारक–भारत बहुत आध्यात्मिक प्रकृति का देश है। आध्यात्मिक अनुभूतियों की जितनी विविधता और गहराई भारत में देखने को मिलती है, उसकी कोई तुलना नहीं है। शब्दों में आध्यात्मिक अनुभवों की अभिव्यक्ति करने का सीमित सामर्थ्य होता है। इसलिए, उनकी अभिव्यक्ति निकटतम संकेतों के माध्यम से ही संभव है। इस प्रवृत्ति के कारण भारत में सांकेतिकता अथवा प्रतीकवाद की एक समृद्ध परंपरा विकसित हुई है। प्रतीकों का उपयोग मुख्य तौर पर जटिल, अमूर्त विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

सांकेतिकता की इस प्रवृत्ति का प्रसार भारतीय सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हुआ है।

सामान्य श्रोताओं को भी जटिल व अमूर्त विचार प्रतीकों के माध्यम से प्रेषित किए जाने की परंपरा यहां पर विकसित हुई है। यहां तक कि राजनीति में भी जटिल व विरोधाभासी गतिविधियों में संकेतों का उपयोग व्यापक तौर पर किया जाने लगा। हर प्रतीक के अनगिनत अर्थ और महत्त्व होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में भारत में उपयोग किए जाने वाले ज्यादातर प्रतीकों के महत्त्व को जानना बेहद आवश्यक हो जाता है। देश में भाषायी व भौगोलिक बाधाओं को पार करते हुए ये प्रतीक सर्वत्र एक ही अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं।

भारतीयों में यह दुर्लभ योग्यता है कि वे किसी भी समय में कई कालखंडों को सहजता से समावेशित किए रह सकते हैं। उनके विचारों, दर्शन, दृष्टिकोण और धार्मिक मान्यताओं की पिछले पांच हजार से भी ज्यादा वर्षों तक की अटूट निरंतरता रही है। भारतीय इतिहास युद्धों व संघर्षों से पैदा होने वाली बाधाओं से भरा रहा है। यहां हमला करने वाले हर आक्रमणकारी इस देश में अपना कोई न कोई चिह्न छोड़ गया, लेकिन कोई भी भारतीय संस्कृति और उसकी जीवनशैली को मिटाने में सफल नहीं रहा। यदि भारतीय परंपरा अक्षुण्ण बनी रही है तो इसका सबसे बड़ा कारण, इस परंपरा का सशक्त प्रतीकों से समृद्ध होना रहा है।

नाट्य परंपरा इस प्रतीकवादी अभिव्यक्ति का सबसे बड़ा माध्यम है और आचार्य अभिनवगुप्त इसके सबसे प्रामाणिक व्याख्याकार रहे हैं। नाट्य, प्रतीकों का खेल है। इसमें अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों, मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। नाट्य में तो परंपराएं भी प्रतीक का रूप धारण कर लेती हैं। इसके कारण यह प्रतीकों और संकेतों का व्यापार बन जाता है। इस व्यापार को वही ठीक ढंग से समझ सकता है और समझा सकता है, जो प्रतीकों के मर्म से पूरी तरह परिचित हो। प्रतीकों का मर्म समझने के लिए परंपरा में दीक्षित होने के साथ अंतःदृष्टि से संपन्न होना भी आवश्यक है।

आचार्य अभिनवगुप्त गुरु-शिष्य परंपरा के उत्कृष्ट उत्पादों में से एक माने जाते हैं। गुरु-शिष्य परंपरा और कुछ नहीं, बल्कि परंपरा के प्रवाह का हिस्सा बनना है, पारंपरिक ज्ञान को सकारात्मक दृष्टिकोण से समझना है। इसके अतिरिक्त आचार्य अपनी साधना के कारण विभूति संपन्न भी थे। परंपरा में दीक्षित होने और अंतस के उन्नत होने के कारण आचार्य संकेतों और प्रतीकों के सटीक व्याख्याता बन जाते हैं। उन्होंने नाट्य के विविध पक्षों पर बहुत अधिकार के साथ प्रकाश डाला है।

आचार्य अभिनवगुप्त नाट्य-शास्त्र पर इतने प्रामाणिक ढंग से लिख सके तो इसका एक प्रमुख कारण उनका जीवनदर्शन भी था। वह तंत्र परंपरा के साधक थे। तंत्र दर्शन संपूर्णता की स्वीकृति पर आधारित है। यह परंपरा विरोध नहीं, बल्कि संतुलन पर बल देती है। यह स्वर्ग और अपवर्ग दोनों को साधने में विश्वास रखती है। संपूर्णता का साधक होने के कारण आचार्य अभिनवगुप्त का व्यक्तित्व नीरस नहीं था। वह मानवीय भावनाओं-संवेदनाओं के प्रति पूरी तरह से सजग थे।

नाट्य-शास्त्र की विषयवस्तु भी सरस है। यह भावनाओं-संवेदनाओं की अभिव्यक्ति से संबंधित है और स्वस्थ मनोरंजन इसका ध्येय है। आचार्य अपने विशेष तांत्रिक जीवनदर्शन के कारण नाट्य-व्यापार को बहुत अच्छी तरह समझ-समझा सकते थे। इन अनेक कारणों से आचार्य

अभिनवगुप्त नाट्य के सौंदर्य पक्ष और प्रतीक पक्ष पर प्रामाणिक ढंग से प्रकाश डाल सके। एक नाट्य भाष्यकार के रूप में संचार के विविध पक्षों पर आचार्य अभिनवगुप्त ने बहुत सूक्ष्मता से प्रकाश डाला है। उनका ग्रंथ 'अभिनवभारती', विभिन्न संचारीय आयामों को स्पर्श करता है और उन्हें एक संचार मनीषी के रूप में स्थापित करता है।

इस कारण आचार्य अभिनवगुप्त स्वत्त्वाधारित-संश्लेषण की भारतीय संचार परंपरा के निकटतम-आदर्श प्रतिमान बन जाते हैं और वर्तमान-संचारीय प्रक्रिया में स्वत्त्वाधारित-संश्लेषण की स्थापना के लिए एक आदर्श प्रेरक भी। नई परिस्थितियों में निर्णयन प्रक्रिया संचार और राजनीति के संयुक्त क्षेत्र का विषय हो गई है। इस संयुक्त क्षेत्र को संकल्पनात्मक स्तर संनीति कहा जा सकता है। निर्णय प्रक्रिया के इस नए और बड़े स्पेक्ट्रम के कारण संचारीय प्रक्रिया का भारतीयकरण एक आवश्यक बौद्धिक और सांस्कृतिक कर्म बन जाता है। भारत और भारतीयता की विशिष्टता में विश्वास और उसे स्थापित करने के लिए प्रयासरत लोगों के समक्ष यह प्रश्न एक जटिल चुनौती बनकर उभरा है।

इसके अतिरिक्त, एक अन्य कारण से भी संचारीय प्रक्रिया का भारतीयकरण आवश्यक हो गया है। आधुनिक जनमाध्यमों के उभार के कारण सूचना का हथियारीकरण हो गया है। इस नई परिघटना में साभ्यतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, कूटनीतिक मोर्चे पर सूचना के प्रवाह और परिप्रेक्ष्य को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। संघर्षों की दुनिया और सूचना का संसार सदैव से संबंधित रहे हैं। देश के आदर्श माने जाने वाले 'रामायण' और देश का दर्शन माने जाने वाले 'महाभारत', यदि सुखद समापन तक पहुंच सके तो इसका बड़ा कारण यह रहा कि इन युद्धों के निर्णायक क्षणों में सूचना का कुशलतम रणनीतिक उपयोग किया गया है। द्रोणाचार्य-वध सूचना-रणनीति का श्रेष्ठतम उदाहरण है।

हालिया दौर में देखें तो विश्व युद्ध के बाद अमरीका और सोवियत संघ के बीच करीब आधी सदी तक शीत युद्ध चला। इस दौरान दोनों ही खेमों ने एक-दूसरे से निपटने के लिए तरह-तरह के हथकंडे आजमाए, लेकिन आपको शायद ही यकीन हो कि दोनों खेमों ने शीत युद्ध के दौरान कला के क्षेत्र में भी मोर्चेबंदी की। असल में अमरीका और सोवियत संघ में लड़ाई ताकत के साथ-साथ विचारधारा की भी थी। इसीलिए कला और संस्कृति की मोर्चेबंदी भी वाजिब ही थी। बीसवीं सदी के पचास और साठ के दशक में न्यूयॉर्क में कलाकारों की एक टोली अचानक ही मशहूर हो गई। इस टोली ने कला के एक विशिष्ट रूप को आगे बढ़ाना प्रारंभ किया जिसे दुनिया ने एब्सट्रैक्ट एक्सप्रेसनिज्म के नाम से जाना गया। ये पेंटर्स की वो टोली थी, जिसे न कामयाबी मिली थी और न ही शोहरत, लेकिन पचास के दशक में अचानक इनके काम को सराहा जाने लगा। इस टीम में विलेम डे कूनिंग, जैक्सन पोलॉक और मार्क रोथको शामिल हैं।[6]

मशहूर ब्रिटिश कला समीक्षक डेविड अनफाम के अनुसार एब्सट्रैक्ट एक्सप्रेसनिज्म को सीआईए की शह हासिल थी। अनफाम के मुताबिक एब्सट्रैक्ट एक्सप्रेसनिज्म से जुड़े सभी कलाकार, बागी माने जाते थे। वो उस दौर के हर नियम-कायदे को चुनौती देते थे। ऐसे में सीआईए ने एब्सट्रैक्ट एक्सप्रेसनिज्म को बढ़ावा दिया, ताकि यह जताया जा सके कि अमरीका में हर इंसान को कुछ भी करने की आजादी है। वहां के मुकाबले सोवियत संघ में लोगों को ये आजादी हासिल नहीं है।[7]

ग्लास्नोस्त और पेरेस्त्रोइका की नीति के कारण मीडिया को सोवियत संघ में थोड़ी-सी स्वतंत्रता मिली और मीडिया की स्वतंत्रता के कारण सोवियय संघ को अपने पुराने नेताओं एवं व्लादीमिर लेनिन, जोसेफ स्टालिन, ब्रेझनेव के अलग कार्ल मार्क्स, जो कम्युनिस्ट विचारधारा के प्रमुख विचारक थे, के पुनर्मूल्यांकन की दिशा में अग्रसारित किया। इसके कारण अक्तूबर 1917 की क्रांति और सोवियत विचारधारा के प्रति भी नकारात्मक दृष्टिकोण पनपा।[8]

सूचना संबंधी नीतियों के कारण महाशक्तिशाली और विशाल देश देखते ही देखते विखंडित हो गए। उनके सारे नाभिकीय हथियार, सैन्य क्षमता धरी की धरी रह गई। सूचनाओं के जरिए पहली बार नागरिकों को तुलनात्मक आधार और नए परिप्रेक्ष्य मिले। उसको पहली बार यह आभास हुआ कि वह कितना पीछे अथवा कितना आगे है। अमरीका को पचास सालों तक चुनौती देने वाला देश, उसके हथियारों के दबावों को सहने वाला देश, सूचना के घातक हथियार के वार को संभाल नहीं सका। ग्लास्नोस्त की नीति का अमरीका ने अपने पक्ष में भरपूर उपयोग किया था। दरअसल, अमरीका शीत युद्ध के शुरुआती दिनों से ही सूचना के जरिए सोवियत संघ में असंतोष पैदा करने की कोशिश करता रहा है।

संचार-प्रवाह के नीति-निर्णयन की प्रक्रिया में अतिशय हस्तक्षेप तथा सूचनाओं के हथियारीकरण के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि भारत जैसा विशिष्ट प्रकृति वाला देश अपने स्वभाव के अनुरूप संचारीय प्रक्रिया का गठन करे। आचार्य अभिनवगुप्त का चिंतन, दर्शन और व्यक्तित्व इस कार्य में सर्वाधिक सहयोगी साबित हो सकता है। भारत में संचार का एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में अध्ययन नहीं है। इस अनुशासन से संबंधित संकल्पनाओं का अध्ययन आगम और नाट्य के अंतर्गत हुआ है और इसी कारण आचार्य अभिनवगुप्त संचारीय दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि उनके चिंतन का क्षितिज आगम से लेकर नाट्य तक विस्तृत है।

आचार्य अभिवनगुप्त का संग्राहक और संश्लेषक चिंतन इस कार्य में पाथेय की तरह है। वर्तमान संचार-प्रवाह उपभोक्तावादी प्रवृत्ति से अत्यधिक प्रभावित है और इसमें भारतीय संस्कृति का चित्रण एक निषेधात्मक संस्कृति के रूप में किया जाता है। ऐसी स्थिति में उपभोग की प्रति सम्यक् दर्शन आज भारत के लिए महत्त्वपूर्ण साभ्यतिक प्रश्न बन गया है। आचार्य अभिनवगुप्त का दर्शन इस निषेधात्मक-नकारात्मकता की छवि को बदल सकता है। वहां पर उपभोग का पूर्णतः निषेध नहीं है और न ही उपभोग को जीवन का अंतिम लक्ष्य माना गया है। इस तरह आचार्य अभिनवगुप्त का दर्शन वर्तमान सूचना-प्रवाह और भारतीय संस्कृति के बीच संवाद के सामयिक सेतु बन जाते हैं।

सम्यक् उपभोग का दर्शन विकसित करना पर्यावरणीय दृष्टि से ही नहीं, साभ्यतिक और संचारीय दृष्टि से भी सर्वोच्च प्राथमिकता बन गया है। कारण बहुत स्पष्ट है वर्तमान में किसी विशिष्ट सभ्यता-संस्कृति से संबंधित छवियां आधुनिकता और स्वतंत्रता के पैमाने से निर्धारित होती हैं। इससे भी घातक बात यह है कि इन दोनों शब्दों को उपभोग की प्रक्रिया और उपभोग के स्तर के विशेष संदर्भों से संबंधित कर इनके अर्थों को सीमित कर दिया गया है। ऐसे परिदृश्य में यदि किसी संस्कृति के पास जीवन के सभी अनुभवों को स्पेस प्रदान करने वाला तथा उन सभी अनुभवों के बीच उचित समन्वय स्थापित करने वाला समावेशी और संतुलित उपभोग-दर्शन नहीं है, तो उसके

सांस्कृतिक संहार की संभावनाएं बढ़ जाती हैं। उपभोग के सम्यक् दर्शन के अभाव में किसी संस्कृति को या तो उपभोक्तावाद के अंधड़ का हिस्सा बना दिया जाएगा या उसे प्रतिगामी और निषेधात्मक बताकर अप्रासंगिक साबित कर दिया जाएगा। आचार्य अभिनवगुप्त उपभोग के आत्यंतिक ध्रुवों का निषेध करते हैं। उनके चिंतन में सम्यक् उपभोग के सूत्र निहित हैं। ऐसे सूत्र जो उपभोग को भी उत्कर्ष का सहायक बना देते हैं। इसलिए उनका दर्शन साभ्यतिक और संचारीय, दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

इसके अतिरिक्त वाक् और रस जैसी अवधारणाओं पर उनके प्रामाणिक भाष्य, भारतीय संचार दर्शन की पहचान में बहुत सहायक हैं। वाक् की संकल्पना, संचारीय परिप्रेक्ष्य में इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि वाक् का स्थूलतम रूप, वैखरी भाषिक संचार, शाब्दिक संचार से संबंधित है। वैखरी ही कंठ के जरिए व्यक्त होकर सांसारिक संचार का आधार बनती है। वाक् की पूर्ण संकल्पना को समझे बिना उसमें व्यक्त वैखरी के स्वरूप को भी ठीक ढंग से नहीं समझा जा सकता है। वैखरी, वर्णों के रूप में अभिव्यक्त होती है। भारतीय मनीषा, विशेषतः तंत्र विज्ञान में प्रत्येक वर्ण के स्वरूप को विशिष्ट प्रकार की शक्तियों की अभिव्यक्ति माना जाता है।

वर्णों के इस शक्ति स्वरूप को वाक् की संपूर्ण संकल्पना में ही समझा जा सकता है। हमारे यहां शब्द को ब्रह्म मानने की, विधिवत उच्चारण पर अत्यधिक जोर दिए जाने की, एक भी शब्द के अर्थ के संधान में सफलता प्राप्त करने पर मोक्ष प्राप्ति की, भाषा संयम की और निष्ठुर न बोलने की विभिन्न परंपराएं, जो कि प्रायः धार्मिक मान्यताओं के रूप में हमारे सामने उपलब्ध होती हैं, को तब तक ठीक ढंग से नहीं समझा जा सकता, जब तक कि हम वाक् की संकल्पना को ठीक ढंग से नहीं समझ लेते। तंत्र परंपरा से संबंधित होने के कारण आचार्य अभिनवगुप्त ने वाक् परंपरा पर भी बहुत गहराई से चिंतन किया है। आचार्य के जरिए इस अमूर्त, आध्यात्मिक, लेकिन महत्त्वपूर्ण घटना को अपेक्षाकृत आसानी और प्रामाणिकता से समझा जा सकता है।

वाक् की अवधारणा मूलतः तांत्रिक अवधारणा है। आचार्य अभिनवगुप्त तांत्रिक परंपराओं से गहरे रूप से जुड़े रहे हैं। उनके विशद ग्रंथ 'तंत्रालोक' को तंत्रशास्त्र का विश्वकोश माना जाता है। इस ग्रंथ में उनके वाक् संबंधी सूक्ष्म चिंतन के दर्शन होते हैं। तांत्रिक चिंतन की एक परंपरा वाक् को त्रिविध मानती है और केवल पश्यंती, मध्यमा और वैखरी के रूप में वाक् को स्वीकार करती है। वाक् चिंतन की दूसरी परंपरा वाक् को चतुर्विध मानती है। पश्यंती, मध्यमा और वैखरी के साथ परा को भी वाक् का एक स्वरूप मानती है। आचार्य अभिनव ने भी वाक् के चार रूपों को स्वीकार किया है। उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि परा ही पश्यंती, मध्यमा और वैखरी का रूप धारण करती है। परा ही सभी अनुभूत वाक् कोटियों का आदिस्रोत है और वही वैखरी के भौतिक रूप में हमारे सामने प्रकट होती है–

प्राक्पश्यंत्यथ मध्यान्या वैखरी चेति ता इमाः। परा परपरा देवी चरमा त्त्वपरात्मिका।[9]
(अर्थात् जो पहले पश्यंति, फिर मध्यमा और वैखरी हैं, वे परा, परपरा देवी है और अंतिम अभिव्यक्ति, अर्थात् वैखरी तो अपरा है।)

वाक् के तीन अथवा चार रूपों की अनुभूति-विभेद पर भी वह आचार्य प्रकाश डालते हैं। वह स्पष्ट कहते हैं कि वाक् उपस्थित तो चार रूपों में है, लेकिन उसके तीन रूपों की अनुभूति ही

प्रायः हो पाती है। वैखरी की अनुभति तो नित्यप्रति होती रहती है। मध्यमा, पश्यंती और वैखरी के बीच का सेतु है। वह मंत्रमयी पृष्ठभूमि है। साधना के उच्चतर अवस्था में मंत्र की नादात्मक सत्ता प्रत्यक्ष होती है और साधक उनकी अनुभूति करता है। पश्यंती प्रथम स्पंदन है, जिससे सृष्टि का विस्तार होता है। साधना की उच्चतर स्थितियों में इसके भी दर्शन हो जाते हैं, लेकिन परा परम सत्ता की निष्कल स्थिति में समाहित होती है, इसलिए उसकी अनुभूति नहीं हो पाती। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार वाक् को त्रिविध रूपों में स्वीकार करना उसकी अनुभूति से ही जुड़ा हुआ प्रश्न है, उपस्थिति के स्तर पर तो वाक् चार रूपों में ही होता है। परा का आभास नहीं हो पाता, इसलिए वाक् को त्रिविध माना जाता है—विभागाभासने चास्य त्रिधा वपुरुदाहतम्। पश्यंती, मध्यमा स्थूला वैखरीत्यभिशब्दितम्।।[10]

ज्ञान संपदा का आचार्य के द्वारा किया गया संहिताकरण भारत की सांस्कृतिक धारा के लिए एक महत्त्वपूर्ण संबल साबित हुआ। तंत्र को तो वैसे भी गुह्य विषय माना जाता है और आगम की संहिताकरण के प्रयास बहुत दुर्लभ रहे हैं। आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा आगम की गुह्य परंपराओं और दर्शनों को एक ही जगह संहिताकरण किया जाना तथा ज्ञान की विविध परंपराओं पर समान सिद्धता के साथ प्रकाश डालना उन्हें अभिनव व्यास बना देता है।

आचार्य अभिनवगुप्त स्वत्त्व आधारित संवाद के प्रतीक पुरुष होने के कारण भी संचारीय प्रक्रिया के भारतीयकरण में सहयोगी हैं। स्वत्त्व आधारित संवाद की परंपरा सदैव से भारतीय संस्कृति के मूलाधारों में से एक रही है। यह परंपरा अपने स्वत्त्व को बचाए रखते हुए दूसरों के अस्तित्व को सहृदयतापूर्वक स्वीकार करती है और दूसरों के सहायक-पूरक बनने में विश्वास करती है—संवाद का मतलब होता है कि दूसरे को खुले मन से समझने का प्रयास करना। संवाद बहुत ही दुर्लभ और सुंदर घटना है, क्योंकि उससे दोनों ही समृद्ध होते हैं। सच तो यह है कि जब तुम बोल रहे होते हो तो या तो यह बहस हो सकती है, एक शाब्दिक झगड़ा, मैं ठीक और तुम गलत यह सिद्ध करने का प्रयास या फिर संवाद। सत्य तक पहुंचने के लिए एक-दूसरे का हाथ थाम लेना, राह ढूंढ़ने में एक-दूसरे की मदद करना संवाद है। यह साथ होना है, यह सहयोग है, सत्य को पाने के लिए यह लयबद्ध प्रयास है। यह किसी तरह से झगड़ा नहीं है, किसी हालत में नहीं। यह मित्रता है, सत्य पाने के लिए साथ-साथ चलना, सत्य पाने में एक-दूसरे की मदद करना। अभी किसी के पास सत्य नहीं है, लेकिन जब दो लोग ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं, सत्य के बारे में एक साथ खोजने लगते हैं, यह संवाद है और दोनों ही समृद्ध होते हैं। और जब सत्य मिलता है, तब वह न तो मेरा होता है, न ही तुम्हारा। जब सत्य पाया जाता है, यह उन दोनों से बड़ा है जिन्होंने खोजने में सहभागिता की, यह दोनों से बड़ा है, यह दोनों को घेर लेता है और दोनों समृद्ध होते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने समय में अस्तित्व में रही अधिकांशतः ज्ञान धाराओं से संवाद किया। उनके स्वत्त्व को आत्मसात करने की कोशिश कर बृहत्तर सत्य तक पहुंचने की कोशिश की। उनकी इसी संश्लेषक और संवादक भूमिका के कारण वह कश्मीर की सर्वज्ञ पीठ पर अधिष्ठित हुए थे। इस पीठ की विशिष्टता और उत्कृष्टता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आदि शंकराचार्य के बाद केवल आचार्य अभिनवगुप्त ही इस पीठ पर अभिषिक्त हो सके। शब्द ब्रह्म की अवधारणा हो, वचन को प्राण से भी अधिक प्रिय मानने की मान्यता हो,

संचार प्रक्रिया में चरित्र को निर्णायक मानने की परंपरा हो, अथवा संचार की प्रक्रिया का नैसर्गिक प्रवृत्तियों के परिष्कारक के रूप में स्वीकृति हो, इन्हें तब तक ठीक ढंग से नहीं समझा जा सकता, जब तक वाक् और रस के मर्म से परिचय न हो। इन्हीं दोनों अवधारणाओं पर भारतीय संचार दर्शन तथा परंपराओं का सृजन हुआ है, आचार्य अभिनवगुप्त एकमात्र ऐसे दार्शनिक हैं, जिन्होंने इन दोनों अवधारणाओं पर समान अधिकार के साथ भाष्य लिखे हैं। अतः वह भारतीय संचार दर्शन को समझने के लिए एकमात्र प्रामाणिक चिंतक के रूप में उन्हें स्वीकार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्धि को मानव-व्यवहार का प्रमुख निर्धारक मानकर आचार्य संचार की प्रक्रिया के एक कठोर मनोवैज्ञानिक धरातल से भी हमारा परिचय कराते हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

1. 'महाभारत', आदिपर्व, 62/53
2. 'श्रीमद्भागवत' 1/4/15-24
3. कौल, जवाहर लाल, (2015). 'अभिनवगुप्त और शैव दर्शन का पुनरोदय', नई दिल्ली : जम्मू-कश्मीर अध्ययन केंद्र।
4. चतुर्वेदी, राधेश्याम, (2012). 'श्रीमद्भिनवगुप्तपादाचार्यविरचितः तंत्रालोकः', प्रथम खंड, पृ. 33, वाराणसी : चौखंबा विद्याभवन।
5. तंत्रालोकः, 5/130
6. http://www.bbc.com/hindi/vert-cul-37728731
7. http://www.bbc.com/hindi/vert-cul-37728731
8. David Marples, The Collapse of the Soviet Union, 1985-1991. (Harlow: Pearson Education, 2004) 19-20.
9. तंत्रालोकः, 1/271
10. वही, 3/236

□

फारसी साहित्य में कश्मीर का अवदान

के.एन. पंडित

अनुवाद–शंभू जोशी

परिचय : फारसी (Farsi) साहित्य में कश्मीर के योगदान को फारसी साहित्य में भारत के योगदान के अंश के रूप में ही देखा जाना चाहिए। भारत में फारसी भाषा एवं साहित्य की शुरुआत एवं प्रचार-प्रसार का सीधा संबंध मुस्लिम शासन के पहले उत्तरी भाग एवं बाद में भारत के अन्य भागों में स्थापित हो जाने से है।

आगे बढ़ने से पहले हमें इस बात को विस्तार से जानना चाहिए कि हम पर्सियन (Persian) साहित्य को फारसी साहित्य (Farsi Literature) क्यों कह रहे हैं? पर्सिया शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द पेरसिस/पर्सिस (Persis) से हुई है, इसका अर्थ है–पूर्व में उदयमान ग्रीक दिव्यता। यूरोपीय और खासकर औपनिवेशिक इतिहासकारों ने यह शब्द हेरोडोटस से लिया है, लेकिन इसे पर्सिया शब्द की तरह प्रयोग किया जिसका अर्थ होता है–पेरसिस/पर्सिस की भूमि। ईरानी इतिहासकारों ने पेरसिस/पर्सिस लोगों की भूमि के लिए पार्स (Pars) शब्द का प्रयोग किया जबकि अरबी लोगों ने इसके लिए फार्स (Fars) शब्द का प्रयोग किया। पार्स के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा पर्सी (Parsi) कहलाई। 652 ई. में ईरान के अंतिम देशज आर्य साम्राज्य-सासानी साम्राज्य के पतन के पश्चात् अरब इतिहासकारों का कार्य ज्यादा प्रसिद्ध हुआ। ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता द्वारा पर्शियन (Persian) को बोलचाल की भाषा के रूप में लोकप्रिय बनाया गया। पहलवी शासन वंश के संस्थापक रजा शाह पहलवी (15 मार्च, 1878-26 जुलाई, 1944) ने अपने आदेश द्वारा पर्सिया (Persia) के स्थान पर ईरान और ईरानी भाषा को फारसी (Farsi) के रूप में प्रतिस्थापित किया।

वर्तमान अफगानिस्तान के छोटे-से कस्बे गजनी का सेनापति मुस्लिम आक्रमणकारियों में मुहम्मद बिन कासिम सर्वप्रथम था। 997-1030 ई. के बीच तुर्क-मंगोल वंश से ताल्लुक रखने वाले महमूद गजनवी ने भारत पर लगभग सत्रह बार आक्रमण किए। उसका मकसद हिंदू मंदिरों की लूट, चोरी और विध्वंस था। महमूद के इतिहासकार अल-उत्बी ने अपनी रचना 'तारीखे-ए-यामिनी' (1020 ई.) में उसे शिक्षा का आश्रयदाता बताया परंतु तेहरान विश्वविद्यालय में समकालीन ईरान के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विद्वान मेरे गुरु डॉ. साफा ने पांच खंडों की अपनी रचना 'तारीख-ए-आबिदी-ईरान' (ईरान

का साहित्यिक इतिहास) में स्पष्ट किया कि महमूद एक लालची लुटेरा था, जिसका शिक्षा से कोई लेना-देना नहीं था।

महमूद गजनवी के उदय से मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बीच 170 वर्षों का समय है। किसी भी सेनापति द्वारा उनके आधिपत्य क्षेत्र में स्थानीय निवासियों को फारसी (Farsi) भाषा के अध्ययन के लिए बाध्य करने का प्रयास नहीं किया गया। यह भी स्पष्ट नहीं है कि इन दोनों आक्रमणकारियों एवं उनके सैनिकों की भाषा या बोली क्या थी, क्योंकि उनकी सेना में तुर्क, उगर, मंगोल, ताजिक, अफगान, तुखार आदि नस्ल के लोग एक साथ थे।

दिल्ली सल्तनत की नींव 1206 ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा रखी गई जो मुहम्मद गोरी का तुर्क सैनिक दास था। पांच मुस्लिम वंशों ने भारत पर 1206 ई. से 1526 ई. तक शासन किया। ये सभी मध्य एशियाई तुर्क-मंगोल वंश के थे एवं तुर्किस्तानी भाषा की अलग-अलग बोलियां बोलते थे। ये शासक अपनी सल्तनत की सीमाओं को बढ़ाने में लगे रहे, एक के बाद एक भारतीय शासकों पर आक्रमण किए, मंदिरों और हिंदू सभ्यता के प्रतीकों को नष्ट किया तथा अपने सेनापतियों व प्रशासकों को बड़ी जागीरें प्रदान कीं। यद्यपि अपने शासकीय पत्राचार में वे फारसी (Farsi) भाषा का प्रयोग करते थे, लेकिन मुश्किल से बोल पाते थे। इस कारण हम यह कह सकते हैं कि भारत में फारसी भाषा का परिचय इस सल्तनत काल में हो चुका था परंतु इसकी स्थिति इतनी खास नहीं थी कि कोई सार्थक योगदान कर सकें।

खुरासान के सैयदों ने भारत पर 75 वर्षों (1451-1526) की अवधि तक शासन किया और फारसी को शासकीय भाषा बनाया। सारे शासकीय कार्य इस भाषा में संपन्न किए। दरबारियों और दरबार (शासन) से जुड़े लोगों को प्रोत्साहित किया कि वे इस भाषा को सीखें। इसका सीधा कारण था कि वे खुरासान के बैहक से आए थे जो शिया धार्मिक पढ़ाई एवं धर्मविद्या के लिए प्रसिद्ध था। हम देखेंगे कि बैहकी सैयदों ने अपने प्रभाव को कश्मीर तक भी फैलाया और कुछ समय तक यहां शासन भी किया।

मुगल शासन के दौरान ही फारसी ने शासकीय भाषा के रूप में अपनी महत्ता प्राप्त की। संपूर्ण प्रशासनिक और राजस्व कार्य इसी भाषा में संपन्न किए जाने लगे। इस दौरान महान कवि, गद्य लेखक, इतिहासकार, धर्मशास्त्री, सूफी चिंतक, जीवनीकार, रोजना चेह नवीसन (डायरी लेखक) और पत्र लेखक सामने आए। हालांकि इनका वर्णन करना इस अध्ययन का विषय नहीं है अतएव इसको अलग रखते हुए हम सीधे कश्मीर पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

कश्मीर : सभ्यतागत रूपांतरण

मध्य एशिया क्षेत्र एवं ईरान से आए मुस्लिमों के साथ फारसी कश्मीर में आई। 1339 ई. में खास्यज सेनापति पीर पंचाल क्षेत्र की दक्षिणी तलहटी के पंचघावरा (वर्तमान में राजौरी-बुधिल) इलाके में अपने राजनीतिक शत्रुओं के साथ लड़ाई में व्यस्त था। उसने अपने कुनबे के साथ मूल स्थान को छोड़ दिया और कश्मीर का द्वार कहे जाने वाले बारामूला में निवास करने लगा।

इस उथल-पुथल वाले समय में उत्तर से आने वाले आक्रमणकारियों द्वारा जब कश्मीर तबाह किया जा रहा था, तब शाहमीर पहाड़ियों के खास्यज समुदाय सहित कोटा रानी की सेवा में चला

गया। शाहमीर एक निर्भीक लड़का था और स्थानीय सेनानायकों पर उसने अंतिम विजय प्राप्त की। उसने क्षण (Bhikshana) की भी हत्या की, जो कोटा रानी का पालक भाई और सेनापति था। वह अपनी सेना की कमान संभालते हुए अंदरकोट के किले तक आया और रानी को चारों ओर से घेर लिया। 1339 ई. में उसे कैद कर खुद को कश्मीर का शासक घोषित कर दिया। इसप्रकार पांच हजार साल पुराने हिंदू कश्मीर साम्राज्य की डोर मुस्लिमों के हाथ में चली गई। कश्मीर सल्तनत की स्थापना शाहमीर द्वारा रखी गई जिसने अब अपना नाम सुल्तान शम्सुद्दीन शाहमीर रख लिया था।

कश्मीर में मुस्लिम शासन के साथ ही इसके दरवाजे मध्य एशिया और ईरान से आने वाली इस्लामिक मिशनरियों, उलेमा (धार्मिक विद्वानों), मुहाद्दीस (धर्मशास्त्रियों), कादी/काजी (विधिवेत्ताओं) और वैज (इस्लामिक उपदेशकों) के लिए खोल दिए गए। जो शासकीय संरक्षण उन्हें मिला, वह उनकी उम्मीदों से कहीं ज्यादा था। उन्होंने स्थानीय कश्मीरियों के प्रति बहुत आदर दर्शाते हुए उनका धर्मांतरण किया और इन नव-धर्मांतरित लोगों को नए विश्वास, नई संस्कृति और नई जीवन-शैली का अगुआ बताया।

सुल्तान कुतुबुद्दीन शाहमीर की छठवीं पीढ़ी का शासक था और उसने 37 वर्षों तक राज किया। इस अवधि में शारदा लिपि में संस्कृत कश्मीर की व्यावहारिक भाषा बनी रही। तथापि बुलबुल शाह (1327 ई.) के समय से ही मुस्लिमों की छाया कश्मीर पर पड़ चुकी थी, इसलिए फारसी जल्दी ही संस्कृत को प्रतिस्थापित करने वाली थी। आज विद्यमान उस समय के कुछ कब्र के पत्थरों पर उकेरे गए स्मृतिलेख संस्कृत (शारदालिपि) और फारसी दोनों भाषाओं में हैं। ऐसे पत्थर नौहट्टा, श्रीनगर के बहाउद्दीन साहिब कॉम्प्लेक्स में 1980 के दशक तक देखे गए थे।

सुल्तान कुतुबुद्दीन (1373-1389 ई.) का शासन फारसी भाषा के इतिहास में मील का पत्थर है। कश्मीर के इतिहासकार बताते हैं कि कुतुबुद्दीन फारसी में छंद रचना कर सकता था। सभी प्रसिद्ध इतिहासकारों ने सुल्तान के निम्नलिखित पद उद्धृत किए हैं–

ऐ बेगिर्द-ए-शाम-ए रूयत आलमी परवानेह-ए
वज लब-ए शिरीन-ए तु सुरिस्तए दर हर खनेह-ए

(पूरा विश्व पतंगा बनकर तुम्हारे चेहरे की शमा के चारों ओर चक्कर काट रहा है और हर घर में तुम्हारे मधुर होंठों की बातें हो रही हैं।)

यह संकेत करता है कि इसके रचनाकार के पास भाषायी पकड़ थी और उसने खूबसूरती से शब्दों और मुहावरे का चयन किया, साथ ही साथ छंद के नियमों के साथ उन्हें बेहतरीन तरीके से पिरोया है, जो फारसी छंद रचना में बहुत मायने की बात है। दुर्भाग्यवश, उसका काव्य या अन्य रचनाएं समय के साथ लुप्त हो गईं।

सुल्तान कुतुबुद्दीन के शासन की महत्ता यह थी कि इस अवधि में और 1381 ई. में पश्चिमी ईरान के हमदान के सर्वाधिक प्रमुख ईरानी विद्वान सूफी अमीर सैयद अली तजाकिस्तान के कुलब होते हुए पहली(?) बार कश्मीर आए। कश्मीर आने वाले मिशनरियों में से वह सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थे, जिन्होंने कश्मीर के इस्लामीकरण के मिशन का काम अपने हाथों में

लिया। कश्मीरी इतिहासकारों ने उसे शाह-ए-हमदान कहा और उसे बहुत सम्मान दिया। अल्लामा इकबाल अपनी छोटी फारसी कविता में कहते हैं कि 'वह क्षेत्र (कश्मीर) में ज्ञान, कला, संस्कृति और धर्म लाए'—

खीत्तेह रा अन शाह-ए दरया आस्तीकन/दाद इल्मरओ सनत ओ तहजीब ओ दीन

अद्यतन शोध दर्शाते हैं कि सैयद अली वास्तविक अर्थों में सूफी नहीं थे, क्योंकि उन्हें इस बात का पता नहीं था कि उन्होंने सूफी मत की औपचारिक शिक्षा किनसे ली थी और वह किस पीर (गुरु) के शागिर्द थे। संभावना है कि उन्हें धर्मविद्या और इस्लामिक व्यवहारों का ज्ञान था। कश्मीर में आने के बाद उन्होंने पाया कि मुक्तिप्रदाता इस्लामिक मत के प्रचार-प्रसार और हिंदुओं को इस मत में धर्मांतरित करने के उनके मिशन के लिए बहुत संभावनाएं मौजूद हैं। इसलिए उन्हें कुबरविया या अन्य मत के सूफी कहने के बजाय इस्लामी प्रचारक/मिशनरी कहना ज्यादा ठीक होगा।

सैयद अली ने श्रीनगर के फतेह कदाल के काली मंदिर परिसर के विशाल अहाते के एक कोने में अपने लिए जगह बनाई, जहां वह नव धर्मांतरित लोगों को अपने उपदेश सुनाने लगे। इस समय मध्य एशिया और ईरानी प्रांतों से बड़ी संख्या में इस्लामिक विद्वान कश्मीर आने लगे। कश्मीर के मुस्लिम शासन ने सहयोग और मनवांछित सुविधाएं उपलब्ध कराईं। यह उल्लेखनीय है कि मीर सैयद के धर्मोपदेश फारसी में दिए जाते थे, जो उनकी मातृभाषा थी। यह संभावना है कि नव-धर्मांतरित लोगों में से कुछ ने इस फारसी भाषा और व्याकरण को सीखा और इस योग्य हो गए कि सैयद के कथनों का सार लोगों को स्थानीय भाषा (संस्कृत/कश्मीरी) में बता सकें।

'तोहफतुल अहबाक' के रचयिता हमें बताते हैं कि मीर सैयद और उनके पुत्र मीर मुहम्मद शिया मत के अनुयायी थे और मीर मुहम्मद कश्मीर में सुल्तान सिकंदर के शासनकाल में आए थे जो एक मूर्तिभंजक कट्टर सुन्नी था, इसलिए दोनों के मत नहीं मिले। सिकंदर के शासनकाल में मध्य एशियाई क्षेत्र से कश्मीर आने वाले लगभग एक दर्जन प्रमुख धार्मिक विद्वानों के नामों का उल्लेख देदामारी ने किया।

सुल्तान जैनुल आब्दीन (1473 ई.) को कश्मीरियों के बीच बडशाह-यानी महान शासक के नाम से जाना जाता है। कश्मीर में इसी सुल्तान के शासनकाल में फारसी साहित्य की विविध विधाओं और ज्ञान की शाखाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य शुरू हुआ। वह कश्मीर के सुल्तानों में से पहला था जिसने फारसी के प्रचार-प्रसार में रुचि ली। विद्वान उसके दरबार में इकट्ठा होते और वह उनसे चर्चाएं करता।

सुल्तान जैनुल आब्दीन ने जब 1421 में सत्ता संभाली तब तक अधिकांश शिक्षित एवं विद्वान हिंदू इस्लाम में धर्मांतरित हो चुके थे। साथ ही इस नई व्यवस्था में भी सत्ता के प्रमुख पदों पर वे काबिज थे, उन्होंने तेजी से फारसी भाषा सीखी और उस पर पकड़ बनाई। जोनाराज से हमने जाना कि शासकीय दरबार से जुड़े प्रमुख विद्वान इस समय तक द्विभाषी (संस्कृत एवं फारसी) थे। बहुत ही थोड़े समय में और शासकीय संरक्षण में फारसी विशेष स्कूलों में पढ़ाई जाने लगी और धर्मांतरित समुदाय के बौद्धिक लोगों को उन स्कूलों में भेजा जाने लगा ताकि वे इस नई भाषा को तेजी से सीख सकें।

यहां दो सामाजिक आयामों पर दृष्टिपात आवश्यक है। पहला, यह कि इस समय विदेशी मिशनरियां कश्मीर में इस्लामिक सूफीवाद का प्रचार-प्रसार करने को उत्सुक थीं, उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि कश्मीरी हिंदू वैश्विक दृष्टि के साथ शैववाद को मानते थे जिसमें ज्यादा व्यापक रहस्यवादी व्यवस्था विद्यमान थी। यह विश्ववाद/सर्वहितवाद का प्रचार-प्रसार करती थी। इसकी तुलना में जिस सूफीवाद को वे अपने साथ लेकर आए थे, वह कमोबेश इस्लाामिक विश्वास और व्यवहारों का ही प्रचार-प्रसार करता था। कश्मीर में ऋषिवाद स्थानीय रहस्यवाद का स्वरूप था और लोग उत्साह से इसका अनुगमन करते थे। अतएव इस्लामिक मिशनरियों ने कश्मीर में नव धर्मांतरित लोगों के इस पक्ष का ज्यादा विरोध नहीं करने का निर्णय लिया, परंतु विचार का ऐसा रूप गढ़ा जिसमें वे शैववादी चिंतकों को सूफी रहस्यवाद के साथ जोड़ सके। इसका परिणाम ऐसी संश्लिष्ट दर्शन धारा के रूप में सामने आया, जो कश्मीर में इस्लाम के शुरुआती दिनों में दिखाई देती है। फारसी इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया के परिणामों के रूप में लल्लेश्वरी और अन्य ऋषियों का उल्लेख किया। यही कारण है कि उनके बोलने में संस्कृत, कश्मीरी और फारसी शब्दों का मिश्रण है। धर्मांतरित ऋषियों-संन्यासियों ने अद्वैत के मूल दर्शन को बनाए रखा और साथ ही इस्लामिक रहस्यवाद के वहदहु ला शरीक को भी साथ लिया।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात कि संस्कृत और हिंदू परंपरा के बड़े विद्वान आचार्य कहलाते थे, उन्हें धर्मांतरण के बाद मुल्ला की उपाधि दी गई। सामान्य तौर पर लोग सोचते हैं कि मुल्ला का अर्थ मुस्लिम पंडित से है, जो इस्लामिक कर्मकांड करवाता है। यह संभवतः बाद की व्याख्या रही होगी, परंतु सत्य तो यही है कि शुरुआती इस्लामी अवधि में मुल्ला का तात्पर्य आचार्य या विद्वान व्यक्ति से था।

साहित्य

कश्मीर में मुस्लिमों ने इतिहास लिखना कब शुरू किया? इसका कोई सटीक उत्तर देना कठिन है, क्योंकि बाद के ऐतिहासिक रिकॉर्डों में दर्शाए गए शुरुआती तीन इतिहास लेखन अप्राप्त हैं। बताया गया है कि सुल्तान जैनुल आब्दीन (1450 ई.) के दरबारी इतिहासकार मुल्ला अहमद नादेरी ने अपने शासक का इतिहास लिखा। यह रचना अब मौजूद नहीं है। इसी शासक के काल में किया गया 'राजतरंगिणी' का फारसी अनुवाद भी अप्राप्त है।

साहित्य की जिस विधा में कश्मीरी रचनाकारों ने सर्वाधिक रुचि दिखाई, वह इतिहास लेखन था। उत्तर मध्ययुगीन काल में फारसी में कश्मीर के लगभग दो दर्जन इतिहास लिखे गए जिसमें से अधिकांश मौजूद हैं। कश्मीर पर अंग्रेजी में लिखने वाले इतिहासकार फारसी इतिहास ग्रंथों से ही सामग्री प्राप्त करते हैं। तथापि, इसमें से तीन या चार को छोड़कर शेष सभी फारसी में ही हैं और अंग्रेजी में अनूदित नहीं हुए हैं। कुछ प्रमुख फारसी इतिहास कश्मीर में लिखे गए। फारसी भाषा एवं साहित्य में कश्मीर के विशिष्ट योगदान को सामने लाना जरूरी है, जो अशांत समय के दौर के बावजूद हमारे पास मौजूद समृद्ध इतिहास लेखन पर आधारित हो। हमने केवल यहां इसका उल्लेख ही किया है, क्योंकि उपलब्ध सभी फारसी इतिहासों की चर्चा इस आलेख के क्षेत्र से परे है।

मध्यकालीन कश्मीर के अधिकांश ज्ञात इतिहास फारसी में लिखे गए हैं जिसमें सैयद अली

(1579 ई.) की 'तारीख-ए-कश्मीर', मुल्ला हुसैन नादेरी (1580 ई.) की 'तारीख-ए-कश्मीर', मुल्ला अली रैणा की 'तजकिरात-उल-आरेफीन' (1587 ई.), निजामुद्दीन (1592) की 'तबक त-ए-अकबरी', 'तारीख-ए-नारायण कौल अजीज' (1710 ई.), मुहम्मद अली कश्मीरी (1560 ई.) की 'तोहफतुल अहबाब', मिर्जा हैदर दुगलत (1592 ई.) की 'तारीख-ए-रशीदी', मुहम्मद अली (1622 ई.) की 'बहारिस्तान-ए-शाही' शामिल है।

बाद के समय के इतिहास में हम मिस्कीन (1892 ई.) की तारीख-ए-कबीर, देदामारी (1747 ई.) की 'वक्क-ए-कश्मीर', पीर गुलाम हसन खुहामी (1890 ई.) की 'तारीख-ए-कश्मीर', बीरबल काचरू (1835 ई.) की 'मज्म-उत-तारीख' और कृपाराम (1857-1885 ई.) की 'गुलाबनामा' शामिल कर सकते हैं।

हम पहले ही कह चुके हैं कि शुरुआती इस्लामिक अवधि का मूल्यवान फारसी इतिहास लुप्त हो चुका है। मुल्ला नादेरी के इतिहास का जिक्र हम कर चुके हैं जिसे कल्हण की 'राजतरंगिणी' का अनुवाद/व्याख्या कहा जाता है और सुल्तान जैनुल आब्दीन (1473 ई.) के शासनकाल में लेखक ने 52 सालों में यह काम किया। अबुल फजल की 'आइन-ए-अकबरी' में कश्मीरी इतिहास का बहुत मूल्यवान एवं तुलनात्मक रूप से निष्पक्ष वर्णन है। अबुल फजल ने मुल्ला नादेरी के इतिहास को देखने का जिक्र किया था। मध्यकालीन कश्मीरी इतिहास के मेरे शोध के दौरान मुझे आश्चर्य हुआ कि कश्मीर के प्रारंभिक इस्लामी समय के कुछ महत्त्वपूर्ण फारसी इतिहास (इस अवधि के संस्कृत इतिहास भी) को केवल समय के साथ लुप्त होना बताया जाता है और इसमें मानवीय स्वभाव की भूमिका देखी भी नहीं जाती है।

आलोचना

मध्यकालीन कश्मीर के फारसी इतिहासकारों में से किसी ने भी मुश्किल से ही अपने काम पर इस्लाम-पूर्व इतिहास लेखन की कला दृष्टि के प्रभावों की चर्चा की है। इसका कारण है कि संस्कृत हिंदू काल के अंतिम समय में विकसित हुई जो शारदा लिपि में लिखी जाती थी। अरबी और फारसी भाषाओं के फलने-फूलने के साथ यह तेजी से अपना महत्त्व खोती गई। इन भाषाओं के फलने-फूलने का पहला कारण अरबीस्तान, आमू-पार या ट्रांसऑक्सेनिया और ईरान से आए मुस्लिम मिशनरियों का जोरदार प्रयास तथा दूसरा कारण सुल्तानों एवं उनके गैर-कश्मीरी मंत्रियों एवं सलाहकारों की सरपरस्ती था। बेहकी सैयदों के उभार के साथ ही सत्ता के पदों और दरबारों में उनके प्रभावों के चलते स्थानीय द्विभाषी (संस्कृत/शारदा व फारसी) इतिहासकारों की संख्या तेजी से घटती गई। स्थानीय कश्मीरी संस्कृति को बेहकी सैयद (1554 ई.) निम्नतर संस्कृति मानते थे और इस बात को कश्मीरी इतिहासकारों ने नहीं छिपाया।

कमोबेश जैनुल आब्दीन (1470 ई.) के अंत समय में जिन विद्वानों ने अपने द्विभाषिक कौशल का बेहतर प्रयोग किया, उन्हें उनके नाम के आगे मुल्ला की पदवी से जाना जाने लगा। कश्मीर पर मुस्लिम शासन के डेढ़ सौ सालों के दौरान ऐसे कई नाम देखे गए। मुल्ला शब्द ट्रांसऑक्सेनिया में पहले से ही व्यापक तौर पर प्रयुक्त होता था। इसका अर्थ विद्वान से था, न कि कर्मकांडी पुरोहित, जैसा कि सामान्य तौर पर समझा जाता है। संभावना है कि खुरासान और ईरान

में इस्लाम में धर्मांतरित हुए जोरोस्ट्रीयन मोबिडो को यह स्थानीय नाम दिया जाता था। कश्मीर के मामले में यह संस्कृत शब्द पंडित और आचार्य का सटीक फारसी अनुवाद है। अनुमान है कि हिंदू काल में एक संस्कृत विद्वान द्वारा इस्लाम अपनाने के बाद मुल्ला पदवी दी जाती थी और नए सामाजिक निर्माण में वह अपनी बौद्धिक गतिविधियां जारी रख सकता था। कोई अनुमान लगा सकता है कि जो लोग इस काल में यह मुल्ला शब्द अपने नाम के आगे लगाते थे, वे पंडित (हिंदू विद्वान) थे या पुरोहित (विद्वान पुजारी) जो इस्लाम में धर्मांतरण के बाद अपनी विद्वत यात्रा जारी रखने का प्रयास करते थे। ऐसे समय में भी जब सामान्य सेक्युलर अध्ययन से हटकर धार्मिक और संप्रदाय संबंधी अध्ययन पर जोर दिया जाने लगा था।

'बहारिस्तान-ए-शाही' के लेखक ने बताया कि सुल्तान जैनुल आब्दीन ने हिंदू विद्वानों के महत्त्वपूर्ण कार्यों को जुटाया। इस रचना के अनुवादक और टीकाकार लिखते हैं, ''वेदों और शास्त्रों की प्रतियां भारत से हासिल की गईं और फारसी में उनका अनुवाद किया गया। अनेक अरबी और फारसी किताबों का संस्कृत में अनुवाद किया गया। इस संदर्भ में मुल्ला अहमद के 'राजतरंगिणी' और 'महाभारत' के अनुवाद का जिक्र किया जा सकता है। सुल्तान ने पंडित जोनाराजा को कल्हण के इतिहास पर उपसंहार लिखने को कहा। इसमें जयसिम्हाज के समय से तत्कालीन समय तक की घटनाओं का इतिवृत्त लिखा गया था।''

मुहम्मद आजम देदामारी (1745 ई.) की 'वक्त-ए-कश्मीर' (तारीख-ए-उज्मा), पंडित बीरबल काचरू की 'तारीख-ए-कश्मीर' और गुलाम हसन खैहामी (1892 ई.) की किताब 'तारीख-ए-कश्मीर' में फारसी इतिहास कश्मीर के हिंदू राजाओं के उल्लेख के साथ शुरू होता है, लेकिन उनमें से अधिकांश इतिहास हिंदू राज के 4000 सालों को एक या दो पन्नों में ही सिमटा देते हैं। उनके नजरिए से कश्मीर का सार्थक इतिहास मुस्लिम मिशनरियों के आगमन और उनके द्वारा लाए गए विश्वास के साथ ही शुरू होता है। यह बहुत दुःखदायी है कि हिंदू राजपूत की श्रेष्ठ सूरज वंश से अपना नाता जोड़ने वाले छदौरा के हैदर मलिक भी अपने इतिहास में हिंदू राज के काल को खारिज करते हैं और अपने पुरखों की कहानी लगभग बेमन से ही बताते हैं।

इन टिप्पणियों के बाद हम मध्यकालीन कश्मीर इतिहास लेखन के कुछ प्रमुख लक्षणों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। यह द्रष्टव्य है कि मध्यकालीन इतिहासकार और यहां तक कि परवर्ती काल के इतिहासकार फारसी में तथा आंशिक अपराधबोध की दशाओं के अधीन लिख रहे थे। उन्हें हिंदू अवधि के 3000 सालों के इतिहास से परहेज रखने को बाध्य किया गया। एक तो संस्कृत स्रोतों से जानकारी पाने के लिए उनके पास संस्कृत का ज्ञान नहीं था और दूसरे उन पर मुस्लिम शासन के इतिहास लेखन के गैर-सेक्युलर ढंग से जुड़ने का दबाव था।

इसप्रकार कश्मीर का मध्यकालीन इतिहास 14वीं और 15वीं शताब्दी में कश्मीरी समाज के सभ्यतागत रूपांतरण की परिघटना पर लापरवाह ढंग से मौन है। इस खाई को भरा नहीं जा सका है। ऐतिहासिक दस्तावेजों की सत्ता के बीच के अंतर ने कई विवादों, गलत समझ और खोखले अनुमानों को जन्म दिया है। कुछ सीमा तक इसने कश्मीरी इतिहास के अनेक तथ्यों और उनकी समझ को विद्रूप किया है। केवल प्रामाणिक सेक्युलर विद्वान, जो पर्याप्त भाषिक कौशल व पेशेवर

ईमानदारी रखता हो, वह इस दिशा में बेहतर काम कर सकता है।

निस्संदेह इन विसंगतियों को दूर करने के लिए कुछ इतिहासकारों ने मामूली प्रयास किए हैं। 'तोहफतुल अहबाब' (1642 ई.), 'बहारिस्तान-ए-शाही' (1614 ई.) एवं 'तारीख-ए-हसन' (1892 ई.) ये तीन इतिहास ग्रंथ इस सभ्यतागत रूपांतरण की परिघटना में झांकने का प्रयास करते हैं।

काव्य

15वीं शताब्दी के बाद कश्मीर में फारसी काव्य काफी समृद्ध रहा है। विद्वानों द्वारा कश्मीर के शानदार फारसी कवियों के बारे में कई किताबें लिखी गईं। कश्मीरी फारसी कवियों के लिए महान ईरानी कवियों-दार्शनिकों के कार्य काव्य प्रारूप, चिंतन प्रक्रिया और भाषा प्राथमिकता हेतु आदर्श बने रहे। सादी, हफीज, मौलाना रूम, उर्फी, नजीरी और फिरदौसी (शाहनामा के रचनाकार) ऐसे ही कुछ महान आदर्श थे।

लोग अक्सर यह सवाल पूछते हैं कि कश्मीरियों में फारसी कविता इतनी लोकप्रिय कैसे बन गई कि कश्मीरी भाषा में इसके सैकड़ों मुहावरे और वाक्य पाए जाते हैं? यह बहुत रोचक प्रश्न है। पहले, हमें यह समझना चाहिए कि फारसी का मूल अवेस्ता और संस्कृत यानी आर्य भाषा में है, लेकिन संस्कृत से अलग विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में इसका व्याकरण सबसे सरलतम है। दूसरे, ईरानी कविता उसमें भी शास्त्रीय (क्लासिकल) कविता मानववाद से पूरित और मानवीय तत्त्वों को समाहित किए हुए है। यह मनुष्यों के बीच शांति, प्रेम, सहयोग और एक-दूसरे की परवाह और भ्रातृत्व की कविता है। निश्चित रूप से इसी कारण कश्मीरी मानस में इसे प्यार मिला। उस काल के कश्मीरी बौद्धिकों के लिए यह उपयुक्त था कि वे मानवीय मूल्यों और रिश्तों का गान करें। कश्मीर में फारसी कविता की रचना सेक्युलर साहित्य का एक बेहतरीन उदाहरण है। किसी को भी अचरज हो सकता है कि फारसी कविता आश्चर्यजनक रूप से सेक्युलर है, लेकिन इतिहास या जीवनियों या डायरियों के रूप में लिखा गया गद्य लेखन, अधिकांशतः एकांगी दृष्टिकोण वाला था। उत्तर मध्यकालीन युग (मुख्यतः जब मुगल कश्मीर पर शासन कर रहे थे 1586-1717 ई.) में कश्मीर में लिखे गए फारसी काव्य के व्यापक मूल्यांकन से पहले मैं उन कुछ उत्कृष्ट फारसी कवियों का उल्लेख करना चाहूंगा, जिन्होंने कश्मीर में फारसी काव्य को समृद्ध करने में समुचित योगदान दिया।

कश्मीर के सर्वाधिक उत्कृष्ट फारसी कवि मुल्ला ताहिर गनी कश्मीरी (जिन्हें गनी के नाम से ज्यादा जाना जाता है) का जन्म 1630 ई. में एक सम्मानित कश्मीरी मुस्लिम परिवार में हुआ। यह मुल्लाशिर मोहसिन फानी के शिष्य बताए जाते हैं। गनी ने अपनी फारसी गजलों का दीवान लिखा था। कश्मीर के लगभग सभी तजकिरा लेखकों ने उसके काव्य कौशल एवं गहन विचारों की प्रशंसा की। गनी संतोषी प्रवृत्ति के थे और यह कहा जाता है कि औरंगजेब के शासकीय दरबार के आमंत्रण को भी ठुकरा दिया था। महान समकालीन ईरानी विद्वान डॉ. साफा ने अपने 5 खंडों की महत्त्वपूर्ण रचना 'तारीख-ए-अबीदी-ए-ईरान' में गनी कश्मीरी पर पूरा एक पृष्ठ समर्पित किया है।

प्रमुख फारसी कवि मुल्ला मोहसिन फानी (1671 ई.) दाराशिकोह के दरबार में रहे। कवि होने के अलावा उन्होंने 'दाबिस्तान-उल-मजाहीब' नामक शानदार रचना भी लिखी। इसमें अपने

समय में कश्मीर में मौजूद विभिन्न धार्मिक पंथों को बताया। इसमें अन्यों के अलावा यहूदियों और पारसियों का भी उल्लेख है। इसे 17वीं शताब्दी में कश्मीर के सामाजिक जीवन से जुड़ा मूल्यवान दस्तावेज माना जाता है। उनकी फारसी गजलों में से शेर नमूने के रूप में प्रस्तुत हैं–

सर्व इस्ताडदेह बेह चु तू रफ्तार मीकुनि/टूटी खामोश बेह चु तू गुफ्तार मीकुनि

(जब तुम (प्रेयसी) चलती हो तो अच्छा है कि देवदार खड़ा ही रहे/जब तुम बोलती हो तो अच्छा है कि गुनगुनाती चिड़िया चुप ही रहे।)

मुहम्मद अमीन मुस्तगनी बादशाह अकबर के समकालीन थे। वह कश्मीरी राजा यूसुफ शाह चक के दरबार के साथ जुड़े। यह कहा जाता है कि उन्होंने अपने जीवन का एक हिस्सा लाहौर में बिताया और 1624 ई. में उनकी मृत्यु हुई। मौलाना नमी एक अन्य उत्कृष्ट फारसी कवि थे, जो हसन शाह चक के समकालीन थे। वह न केवल कवि थे बल्कि व्याकरणशास्त्री भी थे और उन्होंने दीवान भी लिखे। उनमें ऐंद्रिक झुकाव देखा जा सकता है जिसका उदाहरण नीचे दिया गया है–

हरगिज दीलाम बेगैर-ए तू मिल नामी शावद/वज दीदेह नक्श-ए रू-ए तु जैल नमिश्वौद अज दूरियात चीह बाक कीह अ बोब-ए जाहिरी/अस्ल/नात मियां-ए मान ओ तु हेल नमिश्वालद (मेरा मन तुम्हारे शरीर के अलावा किसी ओर के प्रति आकर्षित नहीं होता/तुम्हारी छवि मेरी आंखों से नहीं हट रही है, दूरी से क्यों डर रही हो कि दूरियां दिख रही हैं/ये दूरियां तुम्हारे और मेरे बीच नहीं आएंगी)।

बादशाह अकबर के समकालीन मुल्ला मजहरी ने भी लगभग एक हजार शेर का दीवान लिखा था। वह ईरान में लगभग सात साल रहे और काफी सम्मान पाया। 1616 ई. में उनकी मृत्यु हुई और श्रीनगर के पास बुलबुल लंकार में उन्हें दफनाया गया। मुल्ला आवजी कश्मीरी भी बादशाह अकबर के समकालीन थे। इन्होंने फारसी साकी नामेह रचा। उनके नाम फारसी गजलों का दीवान भी है। 1622 ई. में उनकी मृत्यु हुई। वे कहते हैं–

आवजी चारगाह-ए उम्र बे अफसानेह सुखतेम
करी ना करदेहेम ओ दामिदान गिरिफ्त सोभ

(ओ आवजी, बकवाद में ही मेरे जीवन की शमा जल गई। मैंने कुछ नहीं किया और भोर होने वाली है)।

मुल्ला मुहम्मद सालेह नदीमी बादशाह शाहजहां के शासनकाल में कश्मीर में रहते थे। गजलों में अपना उपनाम नदीम अपनाया। उनके नाम गजलों के कई दीवान हैं और उन्होंने शाहजहां के लिए प्रशस्ति गाथा भी लिखी जिसमें उनके शासनकाल में कश्मीरियों की पतित दशा का सजीव वर्णन किया। हम उनमें से एक पद यहां प्रस्तुत कर रहे हैं–

जीर-ए दस्तक अजारी-ए जारि कीह दर कश्मीर शुद/
नेय इम निशापुर व बाल्ख अन शुद ना दर मेरव फराह

(कश्मीर में जिस तरह का अत्याचार किया जा रहा है/निशापुर या बाल्खु या मेरव या फराह में, कहीं भी ऐसा अत्याचार नहीं है।)

अकबर और हुमायूं के दौर के फसीही, फहमी, आशना, जुया, दरब और अन्य कवियों को

भी इस सूची में शामिल किया जा सकता है। शेख याकूब सर्फी (1521-1595 ई.) एक सूफी कवि और दार्शनिक थे जिन्होंने न केवल कश्मीर में बल्कि अकबर के अन्य दरबारियों में भी प्रसिद्धि पाई। कश्मीर के अन्य प्रसिद्ध एवं प्रभावी फारसी कवियों में हबीबुल्लाह गनाई (1556-1617 ई.), मिर्जा दरब बेग जुया (1707 ई.), मिर्जा अकमल कामिल (1645-1719 ई.), मुहम्मद असलम सलीम (1718 ई.), मुल्ला मुहम्मद तौफीक (1765 ई.), मुहम्मद आजम देदामारी (1765 ई.), मुल्ला मुहम्मद हामिद (1848 ई.) और बीरबल काचरू वरस्त (1865 ई.) शामिल हैं।

निस्संदेह कश्मीरी पंडितों ने भी सेक्युलर फारसी काव्य को समृद्ध करने में अपना योगदान दिया है। बीरबल काचरू के अलावा दूसरी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक शख्सियत पंडित ताबा राम तुर्की (1776-1847 ई.) बेताब हैं। गजलों के दीवान के साथ ही 'जंगनामा' नामक महाकाव्य भी उनके द्वारा रचा गया था। ताबा राम तुर्की दूसरे प्रसिद्ध कश्मीरी फारसी कवि मुल्ला मुहम्मद तौफीक ('शाहनामा-ए-कश्मीर' के लेखक) के व्यक्तिगत मित्र थे। तौफीक श्रीनगर की जामा मस्जिद के पास ही रहते थे। वह मुल्ला सती के शिष्य थे और अपने समय के प्रसिद्ध कवि बन गए। कुछ अध्ययन कर्ता तौफीक को गनी के समकक्ष बताते हैं। हमें दो कवियों के बारे में एक किस्सा मिला है, जो इसप्रकार है—

एक अवसर पर कोई व्यक्ति मुल्ला तौफीक का एक शेर कह रहा था जिसे सभी ने पसंद किया। राज काक धर (मंत्री) ने श्रोताओं को एक चुनौती दी कि क्या कोई इसी प्रकार का बेहतरीन शेर कह सकता है। ताबा राम तुर्की बेताब ने चुनौती स्वीकारी और शानदार शेर पेश किया। राज काक ने कहा कि उन्हें उचित पुरस्कार दिया जाएगा। राज काक ने अपने अधीनस्थों से बेताब के घर धान के 100 खारवार भिजवाने का हुक्म दिया।

तौफीक का शेर था—

शिकस्तेह रंगीय-ए मन ब तबीब दर जंग अस्त
इलाज-ए दर्द-ए हुस्न-ए संदली रंग अस्त

(मेरे चेहरे की उड़ी रंगत किसी हकीम के वश की नहीं है/मेरी बीमारी का इलाज तो चंदन रंग की खूबसूरती है)

ताबा राम तुर्की बेताब ने झट कहा—

सियाह बख्तुम व अज बेखत-ए खेश खुरसंदम
चारा कीह बख्ते मन ओ जुल्फे यार हम रंग अस्त

(चाहे मैं कितना ही कमजोर हूं, मेरी बदकिस्मती से खुश हूं, क्योंकि मेरी बदकिस्मती और प्रेमिका की लटों का रंग एक है)

बेताब ने 'रंजीतनामा' और 'अकबरनामा' भी लिखी। 'अकबरनामा' अफगान प्रांत के पश्तोभाषी राजा वजीर अकबर खान या आमिर अकबर खान (1816-1845 ई.) से संबंधित है। 1861 में पंडित ताबा राम तुर्की की मृत्यु के 14 साल बाद उनका दीवान प्रकाशित हुआ।

यह कश्मीर के फारसी कवियों का संक्षिप्त परिचय है। द्रष्टव्य है कि कश्मीर में 1586 ई. में मुगल शासन के आरंभ के साथ ही अधिकांश मात्रा में कविता, इतिहास, जीवनी या संस्मरण

आदि फारसी साहित्य रचे गए और यह परंपरा 19वीं सदी के अंत तक बनी रही। बड़ी संख्या में रचनाएं लिखने का पहला कारण था कि मुगलों द्वारा कश्मीर में फारसी को शासकीय भाषा के रूप में स्थापित किया गया था। दूसरा, फारसी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए मुगल गवर्नरों द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। शाहजहां के शासनकाल में ईरान के कई प्रमुख कवि कश्मीर आए और इस धरती की प्रशंसा की। इनमें कसान के कलीम, इसफहान के सायब, निशापुर के नाजीरी और मेशाद के तोगारा प्रसिद्ध हैं। जहांगीर के दरबारी कवि उर्फी ने कश्मीर की प्रशंसा में कसीदा लिखा, इस उत्कृष्ट काम को सभी विद्वानों और आलोचकों ने सराहा है। यह इस पंक्ति के साथ शुरू होता है–

हर सुख्तेहि जानी कीह बे कश्मीर दरयाद/गर मुर्ग-ए किबाबस्तर कीह बे बाल ओ पर आयद

(कोई आपदाह व्यक्ति जो कश्मीर में आता है/यदि वह भुना गोश्त भी है तो उसे नए पर मिल जाएंगे)।

ईरान के मिथ्याभिमानियों ने कश्मीर सहित भारतीय फारसी रचनाकारों और कवियों के योगदान को कभी नहीं सराहा। यह उनके साहित्य की वैश्विक दृष्टि में कमी को ही बताता है। भारत के सारे फारसी साहित्य के विस्तार का सबक नामक फारसी शब्द देकर एक शैली में समेट दिया। ईरानी अदूरदर्शी आलोचकों ने तमाम भारतीय फारसी साहित्य-विशेषतः कविता को लेकर एक अलग वर्गीकरण शैली का निर्माण किया और उसे 'सबक-ए हिंदी' (भारतीय शैली) नाम दिया। इस वर्गीकरण की बुनियाद कश्मीर सहित भारत में लिखे गए फारसी काव्य के नकारात्मक आयामों को इंगित करना है। मसलन, वे जोर देते हैं कि भारतीय काव्य जटिल, टेढ़ा, दिग्भ्रमित, शब्द प्रयोग मात्र और अस्पष्ट है। इनमें से कोई भी आलोचना मजबूत नहीं है, क्योंकि हर व्यक्ति और समुदाय व्यापक जनता के साथ संवाद की अलग शैली और स्वभाव को अपनाता है।

यह मनोग्रंथि अधिकांश ईरानी साहित्य आलोचकों में दिखाई देती है। परंतु इसके बाद ईरानी आलोचकों की एक नई पीढ़ी आती है जो भारतीय फारसी साहित्य की मात्रा एवं गुणवत्ता को महत्ता देती है और आश्चर्यजनक रूप से यह पीढ़ी ईरान में रचित फारसी साहित्य से ज्यादा भारतीय फारसी साहित्य को वजनदार मानती है। इस नई दृष्टि और विचार के प्रमुख व्यक्तित्व प्रो. जबीहुल्लाह साफा थे जिन्होंने 'सबक-ए-हिंदी' के वर्गीकरण को अस्वीकार किया और इस बात को पुरजोर तरीके से रखा कि भारत में गहन आत्म-चिंतन और दार्शनिक विचार की परंपरा रही है। ईरानियों को इसकी प्रशंसा करनी चाहिए।

फारसी कश्मीरियों की मातृभाषा नहीं रही, फिर भी शताब्दी के छोटे-से समय में अधिकांश कश्मीरी बौद्धिकों ने न केवल इस भाषा को सीखा बल्कि शानदार तरीके से इसमें प्रवीणता भी प्राप्त की। उन्होंने ईरानी साहित्य के महान रचनाकारों को पढ़ा, उनकी प्रशंसा की और उनके स्तर तक पहुंचने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया को आज की शब्दावली में वैश्वीकरण कह सकते हैं।

साहित्य की अन्य विधाओं मसलन–तजकीरा (संस्मरण/वृत्तांत), तिब्ब (चिकित्सा), नजूम (ज्योतिष), खत्तमती (सुलेखन), तर्जुमा (अनुवाद), तफसीर (कुरान की व्याख्या), सियर(जीवनी) आदि में भी कश्मीर ने सराहनीय योगदान दिया है।

इस विशेष निबंध को समाप्त करने से पूर्व यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि कश्मीर में ईरानी और मध्य एशियाई विद्वानों और कश्मीरी हिंदू (पंडितों) के बीच लंबी पारस्परिकता और विमर्श के परिणामस्वरूप उनमें से कई विद्वानों ने स्थानीय हिंदुओं के दार्शनिक विचारों और सांस्कृतिक विशिष्टताओं की प्रशंसा की। उनमें से एक कश्मीर के मुगल प्रशासक अली मरदान खान कश्मीरी हिंदुओं (पंडितों) के शैव दर्शन से काफी प्रभावित थे और उन्होंने भगवान शिव के शारीरिक वर्णन एवं प्रशंसा में एक खूबसूरत फारसी कविता भी लिखी। यह कविता कश्मीर के हिंदुओं (पंडितों) में इतनी लोकप्रिय हुई कि उन्होंने इसे हृदय से स्वीकार और कंठस्थ किया। जब भी वे मंदिरों या घरों में प्रार्थनाएं करते तब इसे गाते। फारसी में लिखी यह कविता इस पद से प्रारंभ होती है–

हमान अस्लो-ए महेश्वर बूद शब शाह-ए कीह मन दीदम
गजनफर चर्म दर बर बूद शब शाह-ए कीह मन दीदम

वास्तव में, रात में तन्मयावस्था में व्याघ्रचर्म पहने हुए जिसे देखा वह महेश्वर ही थे।

कविता इस पद के साथ समाप्त होती है–

मनम मरदान अली खानम गुलाम-ए शाह-ए शाहनम
अजब असरार मी बीनम शब शाह-ए कीह मन दीदम

मैं मरदान अली खान उस राजाओं के राजा का दास हूं, उस राजा को देखते हुए मैं उस अद्वितीय रहस्य को निहार रहा हूं जिसे रात में तन्मयावस्था में मैंने देखा था।

□

उर्दू कहानी में जम्मू-कश्मीर का अवदान

दीपक बुदकी

अनुवाद–मिथिलेश कुमार

अखिल भारतीय स्तर पर कहानी समय के साथ कदमताल कर रही है। जम्मू-कश्मीर में उर्दू कहानी के पितामह प्रेमनाथ परदेसी के समय से लेकर आज तक इसकी शैली शास्त्रीय, रोमानी, देशभक्ति, सिद्धांत आधारित, यथार्थवादी, प्रगतिशील, मनोवैज्ञानिक, आधुनिकतावादी और उत्तर-आधुनिकतावादी आदि कई चरणों से होकर आगे बढ़ी है। स्वतंत्रता से पहले सामंतवाद, गरीबी और सामाजिक रीति-रिवाजों के खिलाफ कहानियां लिखी जाती थीं। प्रगतिशील लेखन के दौर में, भूमिहीन श्रमिकों के अलावा पर्यटकों पर निर्भर रहने वाले नाविकों और झील निवासियों की दुर्दशा पर ध्यान केंद्रित किया गया था, जिन्हें अक्सर सर्दियों में राज्य के बाहर रोजगार की तलाश होती थी। चूंकि जम्मू और कश्मीर (अब लद्दाख को अलग करते हुए एक केंद्र शासित प्रदेश) भूमिहीन किसानों को भूमि देने वाले कानूनों को बढ़ावा देने वाला पहला राज्य था, इसने प्रगतिवादियों के विषय-क्षेत्र को बहुत सीमित कर दिया, हालांकि राजनीतिक अस्थिरता, गैर-प्रतिनिधि सरकारें, नौकरशाही, भाई-भतीजावाद, लाल-फीताशाही, अशिक्षा, भ्रष्टाचार और बेरोजगारी जैसी राज्य की अपनी समस्याएं थीं। दुर्भाग्य से, ऐसे माहौल में जहां लोकतंत्र पूरी तरह से लागू नहीं था, यह उन लेखकों के लिए मुश्किल था, जो अधिकतर उपर्युक्त समस्याओं पर स्वयं को व्यक्त करने के लिए, अन्य आर्थिक अवसरों की कमी के कारण सरकारी नौकरियों पर निर्भर थे। उन्होंने आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के अनुरूप अभिव्यक्ति के प्रतीकात्मक और अमूर्त रूप को अपनाया।

जम्मू-कश्मीर एक-सी दिखने वाली इकाई नहीं है, लॉर्ड बर्डवुड के शब्दों में कहें तो यह एक 'भौगोलिक दैत्य' सा है। राज्य में कई क्षेत्र हैं जिसमें विभिन्न भाषाओं जैसे लद्दाख में बोधि, बल्ती और शीना, जम्मू में डोगरी, पहाड़ी, गोजरी और पंजाबी, और कश्मीर में कश्मीरी भाषा के लोग रहते हैं। इसलिए उर्दू को न केवल एक बोली-भाषा के रूप में बल्कि तत्कालीन डोगरा शासक द्वारा एक आधिकारिक भाषा के रूप में भी लागू किया गया था और स्थिति आज तक कमोबेश वही है। कश्मीरियों के बीच से कई ऐसे कवि और लेखक निकले और उनमें से कइयों ने मुगल और अवध दरबारों में उच्च पदों को भी सुशोभित किया। दुर्भाग्य से, वे कश्मीरी लेखक (इसमें कश्मीर घाटी सहित अन्य क्षेत्रों के लोग भी शामिल हैं), जो राज्य तक ही सीमित रह गए, उन्हें दिल्ली और लखनऊ के उर्दू लेखकों की प्रभुसत्ता की वजह से उर्दू की दुनिया में वह पहचान कभी नहीं मिली, जिसके वे

अधिकारी थे। इनमें शामिल हैं—प्रेमनाथ परदेसी, हकीम मंजूर, पुष्कर नाथ, प्रो. हामिदी कश्मीरी, वीरेंदर पटवारी, नूर शाह, सोमनाथ जुत्शी, बंसी निर्दोष, रफीक राज, आनंद लेहर, अब्दुल गनी शेख, दीपक कंवल, तरन्नुम रियाज और दीपक बुदकी। इसके विपरीत, अवध, दिल्ली या पंजाब में बस चुके कई कश्मीरी लेखक उर्दू साहित्य में सितारों की तरह चमकते रहे—उदाहरण के लिए दया शंकर नसीम, बृज नारायण चकबस्त, बृजमोहन दत्तात्रेय कैफी, किशन प्रसाद कौल, पं. बद्री नाथ सुदर्शन, आगा हश्र कश्मीरी, सर मोहम्मद इकबाल, सआदत हसन मंटो, प्रेमनाथ धर, कश्मीरी लाल जाकिर आदि, यहां तक कि रामानंद सागर, कृष्ण चंदर, उनके भाई मोहिंदर नाथ—जो जम्मू-कश्मीर में पैदा तो नहीं हुए थे, लेकिन यहां अपने बचपन और जवानी का अधिकांश समय बिताया, ने उर्दू की दुनिया में एक उत्कृष्ट मुकाम हासिल किया।

1990 से शुरू हुए उग्रवाद के आरंभ में कश्मीर के साहित्यिक परिदृश्य में एक नाटकीय बदलाव देखा गया। जिसने राज्य में तूफान जैसी उथल-पुथल मचा दी, लेकिन जैसे ही स्थिति कुछ सामान्य-सी हुई, लेखकों ने कश्मीर में अशांति के पक्ष और उसके विरोध में स्वयं को व्यक्त करना शुरू कर दिया। आधुनिकतावादी लेखकों ने स्थिति को भांपते हुए उग्रवाद के तथ्यात्मक स्थिति का प्रतिनिधित्व करते हुए यथार्थवादी कहानियां लिखनी शुरू कर दीं। जम्मू-कश्मीर में 1990 के बाद से स्थिति असामान्य बनी हुई है; कुछ लेखकों ने उन लोगों की समस्याओं को उजागर किया है, जो सीमा (एलओसी) पर रोजाना बमों की बारिश का सामना कर रहे हैं, तथा गोलाबारी के कारण अपनी फसलों एवं जान-माल की बर्बादी झेल रहे हैं (मजहमती अदब)। कुछ लेखक कश्मीरी पंडितों की दुर्दशा को उजागर करते हैं, जो सामूहिक रूप से उग्रवाद के कारण घाटी छोड़कर चले गए हैं (मुहाजरी अदब)। जबकि कुछ राज्य में घुटन भरे माहौल के कारण निर्दोष लोगों के सामने आने वाली मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं (गैर वाबस्ता अदब)। जैसे इतना सब कुछ काफी न था कि घाटी को 2008 में बहुत भयंकर भूकंप का सामना करना पड़ा और इसके बाद 2014 में बाढ़ का प्रकोप भी झेलना पड़ा, जिसने घाटी और इसके निवासियों को तबाह कर दिया। इससे मानव और समाज को कैदियों की तरह घुटन महसूस करने का भय (क्लॉस्ट्रोफोबिया), दूसरे लोगों-समुदायों का भय (जेनोफोबिया), ईश्वर का असीम भय, प्रकृति की विनाशकारी क्षमताओं और अस्तित्ववाद के विघटन का एहसास पैदा हुआ।

जहां तक कहानीकारों का सवाल है, कई ऐसे हैं जो मातृभाषा कश्मीरी में लिखने लगे, कुछ कालकवलित हो गए, कुछ ने अपनी कलम को विश्राम दे दिया या फिर ऐशो-आराम के लिए बॉलीवुड या अन्य जगहों की तरफ कूच कर गए हैं। इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण नाम हैं—प्रेमनाथ परदेसी, प्रो. हामदी कश्मीरी, डॉ. बृज प्रेमी, रामानंद सागर, ठाकुर पूंछी, तेज बहादुर भान, मखमूर हुसैन बदख्शी, शबनम कय्यूम, हरि कृष्ण कौल, अमर मालमोही, पुष्कर नाथ, कात्याल, किशोरी मनचंदा, बृज नाथ, राम कुमार अबरोल, मोहन यावर, यश सरोज, ओ.पी. शर्मा सारथी, मोहम्मद जमान आजुर्दा, बशीर शाह, शम्सुद्दीन शमीम, ज्योतेश्वर पथिक आदि। इस आलेख में जम्मू-कश्मीर में कथा की दुनिया के उन लोगों के बारे में बताया गया है, जो अतीत और वर्तमान में सक्रिय रहे हैं।

प्रेमनाथ परदेसी : पूरा नाम मधुसूदन साधु, जिन्होंने शुरू में 'रौनक' और बाद में 'परदेसी' के नाम से लेखन किया। मूलतः पत्रकार, साहित्यकार, कवि, कथाकार और नाट्य-लेखक (आकाशवाणी

के लिए नाटक और फीचर लिखे)। प्रेमनाथ जी का जन्म 1909 में श्रीनगर में हुआ और 9 जनवरी, 1955 को इनकी मृत्यु हुई। अपने पिता की मृत्यु के कारण मैट्रिकुलेशन के बाद पढ़ाई छोड़ दी, अपने वकील चाचा के सहायक के रूप में काम की शुरुआत की और बाद में राज्य के आबकारी और सीमा शुल्क विभाग में महालदार के रूप में नौकरी कर ली, जिसके कारण उन्हें कश्मीर के किसानों की जीवन शैली से रू-ब-रू होने का मौका मिला। जब श्रीनगर में ऑल इंडिया रेडियो की स्थापना हुई तो उन्हें वहां प्रोग्राम असिस्टेंट के रूप में नियुक्त किया गया और उन्होंने सफलतापूर्वक रेडियो नाटक लिखने की शुरुआत की। इस समय तक वह खुद को जम्मू-कश्मीर के एक लोकप्रिय और प्रभावशाली कहानीकार के रूप में स्थापित कर चुके थे, इतना ही नहीं, लोग उन्हें 'जम्मू-कश्मीर में कहानी के पितामह' के रूप में भी जानने लगे थे। चूंकि वह एक सरकारी कर्मचारी थे, इसलिए वह अक्सर बाबू, अल्लई और बालक राम बारी के छद्म नाम से कॉलम और लेख लिखा करते थे और उनके लेख 'वितस्ता', 'हमदर्द', 'रणबीर' और 'अखबार-ए-आम' में प्रकाशित होते थे। उनका साहित्यिक जीवन 1924 में एक कवि के रूप में शुरू हुआ था। आठ साल बाद परदेसी ने अपनी पहली कहानी के माध्यम से कथा लेखन के क्षेत्र में कदम रखा, अप्रैल 1932 में दैनिक 'रणबीर' (जम्मू) में प्रकाशित 'शुचि प्रार्थना' से उन्होंने निर्विरोध ख्याति प्राप्त की। जनवरी 1946 में उनकी एक कहानी 'टैंक बटनी' लाहौर से प्रकाशित 'हुमायूं' पत्रिका के वार्षिकांक में प्रकाशित हुई थी और इसे इनकी सर्वश्रेष्ठ कृतियों में गिनी जाती है। इनका झुकाव धीरे-धीरे रोमांटिकतावाद और भावनात्मकता से यथार्थवाद की ओर होता गया और गरीब कश्मीरियों के जीवन का इन्होंने बेजोड़ शैली और निपुणता के साथ चित्रण किया। इन्होंने अक्सर अपनी बात को पैनी करने के लिए रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग किया। जम्मू-कश्मीर प्रगतिशील लेखक संघ से अभिन्न रूप से जुड़े होने के अलावा परदेसी सांस्कृतिक मोर्चे एवं राजनीतिक गतिविधियों में भी सक्रिय रहे। उनका गीत 'हमलावर खबरदार, हम कश्मीरी हैं तैयार' राज्य पर कबाइली हमले के दौरान लोकप्रिय रहा। उनकी महत्त्वपूर्ण प्रकाशित पुस्तकें हैं–'दुनिया हमारी', 'शाम-ओ-सहर', 'बहते चिराग' (कहानी संग्रह), 'चौरंगी', 'चार बेटे', 'चार जांबाज बच्चे', 'किरणें' (बच्चों के लिए), पोते (उपन्यास)। इसके अलावा आकाशवाणी के लिए ('संग तराश', 'स्वामी', 'संघर्ष' आदि) दर्जनों नाटक लिखे।

प्रेमनाथ धर : पत्रकार और कहानीकार प्रेमनाथ धर का जन्म श्रीनगर में जुलाई 1914 में हुआ तथा 6 सितंबर, 1976 को इनकी मृत्यु हुई। इनकी प्रारंभिक शिक्षा एस.पी. स्कूल श्रीनगर से हुई तथा आगे की पढ़ाई एस.पी. कॉलेज श्रीनगर से हुई। जम्मू-कश्मीर के स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हुए, लेकिन 1938 में नौकरी की तलाश में लाहौर जाना पड़ा, जहां वे उर्दू लेखकों और बुद्धिजीवियों के संपर्क में आए तथा मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित हुए। इस दौरान प्रेमनाथ धर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के संपर्क में आए और पार्टी के राष्ट्रीय सम्मेलन में शामिल हुए और 'हल वाला झंडा' को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में प्रेमनाथ धर दिल्ली आ गए और जहां उनका विवाह हुआ, यहां वह 'द हिंदुस्तान टाइम्स' और 'द स्टेट्समैन' जैसे अंग्रेजी अखबारों से जुड़ गए। इसके बाद 'द इंडियन लिसनर' और 'आवाज' के संपादक के रूप में ऑल इंडिया रेडियो से जुड़े। प्रेमनाथ धर केंद्रीय सूचना सेवा के भी सदस्य बने। वह उपमहानिदेशक (दृश्य-श्रव्य प्रसार) के रूप में सेवानिवृत्त हुए। 1975 में जब शेख अब्दुल्ला ने फिर से राज्य की सत्ता की बागडोर संभाली,

तो धर उनके प्रेस और प्रचार सलाहकार बन गए जो एक कैबिनेट मंत्री के समतुल्य ओहदा था। समाजवादी विचार के उनके गहन अध्ययन ने उन्हें परदेसी और प्रगतिशील लेखकों के अलावा कश्मीर के स्वतंत्रता आंदोलन के करीब ला दिया। यहां तक कि दिल्ली में उन्होंने सीताराम बाजार में अपने आवास पर हलका-ए-अरबाब-ए-जौक की बैठकें कीं, जहां कई प्रसिद्ध लेखक मिलते थे। इस दौरान, उन्होंने कहानी लिखनी शुरू की और उनकी पहली कहानी 'गलत फहमी' 1945 में अदबी दुनिया लाहौर में प्रकाशित हुई, जिसके संपादक सलाहुद्दीन ने भविष्यवाणी की कि एक महान लेखक उर्दू कहानी के क्षितिज पर आ गया है। धर अक्सर अपनी कहानियों में मानव मनोविज्ञान को एक उपकरण और चेतना की धारा को एक तकनीक के रूप में इस्तेमाल करते थे। उनकी कुछ प्रकाशित पुस्तकों के नाम हैं—'कागज का वासुदेव और दीगर अफसाने', 'नीली आंखें', 'चिनारों के साए में' (कहानी संग्रह), 'घर की बात' (हिंदी में उपन्यास), 'जे गबर' (कश्मीरी में ओपेरा)।

प्रो. हामिदी कश्मीरी : कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और आलोचक प्रो. हामिदी का वास्तविक नाम हबीबुल्लाह है। इनका जन्म 29 जनवरी, 1932 को श्रीनगर में हुआ। योग्यताः जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय से एम.ए. (अंग्रेजी), पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए. (उर्दू) और CIE से अंग्रेजी शिक्षण में प्रमाण-पत्र। अंग्रेजी शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए और बाद में उर्दू विभाग में स्थानांतरित किए गए। 1966 में 'जदीद उर्दू नज्म और यूरोपी असरात' पर शोध प्रबंध लिखकर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। अंग्रेजी साहित्य के उनके ज्ञान ने उनके सामने एक नया ज्ञान क्षेत्र खोला। उन्होंने 1954 से 1959 तक एस.पी. कॉलेज श्रीनगर में अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के व्याख्याता के रूप में काम किया, फिर सहायक सचिव, सांस्कृतिक अकादमी, जम्मू-कश्मीर और 'शीराज' पत्रिका के संपादन से जुड़े रहे, उसके बाद में वह उर्दू विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय में शिक्षक के रूप में नियुक्त हुए, बाद में कश्मीर विश्वविद्यालय के कुलपति और शेख-उल आलम पीठ के प्रमुख के रूप में कार्य किया। अंग्रेजी, उर्दू और कश्मीरी में वह एक समान पारंगत हैं। हालांकि हामदी ने एक गद्य लेखक के रूप में अपने कैरियर की शुरुआत की थी, लेकिन अंततः कविता और आलोचना लिखना शुरू कर दिया और उसी के होकर रह गए। इसमें उन्होंने एक अलग तकनीक ईजाद की, जिसे 'इख्तिशाफी तन्कीद' कहा जाता है। उनकी पहली कहानी 'ठोकरें' 1951 में मासिक 'शुआएं' (दिल्ली) में प्रकाशित हुई थी। उनकी कुछ पुस्तकों के नाम हैं—'वादी के फूल', 'सराब', 'बर्फ में आग' (कहानी संग्रह), 'बहारों में शोले', 'पिघलते ख्वाब', 'अजनबी रास्ते', 'बुलंदियों के ख्वाब', 'परछाइयों का शहर' (उपन्यास), 'अंजुमन-ए-आरजो' (यात्रा-वृत्तांत)। कई कविता संग्रह के अलावा साहित्यिक आलोचना पर लगभग 27 पुस्तकें प्रकाशित। उनके नाटक, गीत और पुस्तक समीक्षा भी आकाशवाणी से प्रसारित हुए। वह 'तामीर' और 'जहात' पत्रिकाओं से भी जुड़े रहे। उनकी कहानियां घाटी की प्राकृतिक सुंदरता, कश्मीर में जीवन, गरीबी और भूख, भ्रष्ट पुलिस और नौकरशाही, गरीबी से ग्रस्त कलाकारों और ईमानदार मेहनती शिक्षकों पर केंद्रित हैं।

पुष्कर नाथ : कहानी और नाट्य लेखक पुष्कर नाथ का वास्तविक नाम पुष्कर नाथ तिकू था। इनका जन्म 31 मई, 1934 को हुआ तथा 19 सितंबर, 2005 को मृत्यु हुई। जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय से स्नातक करने के बाद जम्मू में महालेखाकार कार्यालय में सेवा दी। वह अन्य लेखकों के साथ हलका-ए-अरबाब-ए-जौक की स्थानीय इकाई से भी जुड़े रहे। प्रगतिशील लेखन से शुरुआत

करते हुए वे आधुनिकतावादी लेखन की ओर मुड़े और अक्सर सांकेतिक और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का इस्तेमाल करते थे। पुष्कर नाथ की पहली कहानी 'और कहानी अधूरी रह गई' डॉ. बृज प्रेमी की चुनौती के फलस्वरूप लिखी गई थी। फरवरी 1953 में इसे 'बीसवीं सदी' में प्रकाशित किया गया था। 'मौत के सौदागर', 'परदानशीं', 'डल के वासी', 'आस निरास', 'गालवान गली', 'नीले अंबर तले', 'अबाबील', 'शहरे बन चिराग' आदि उनकी लेखनी के चंद नमूने हैं। उन्होंने पर्यावरणीय मुद्दों के अलावा मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक और व्यवहार संबंधी पहलुओं, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं, नैतिक मूल्यों के पतन, भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद आदि पर लिखा। उनकी अधिकांश कहानियां गरीबी, अज्ञानता, अशिक्षा, मासूमियत को दर्शाने वाले कश्मीरी चरित्रों पर केंद्रित थीं और इसमें घाटी का सुंदर वर्णन है, जिसमें उनकी गहरी अवलोकन शक्ति दिखाई देती है। पुष्कर नाथ ने शैली और तकनीक के नए प्रयोग किए। अक्सर अपनी कहानियों में उन्होंने चेतना तकनीक का प्रयोग किया। पुस्तकों के नाम : 'अंधेरे उजाले', 'डल के वासी', 'इश्क का चांद अंधेरा बाद में', 'सात रंग के सपने' शीर्षक से भी छपी, 'कांच की दुनिया' (कहानी संग्रह), 'दश्त-ए-तमन्ना' (उपन्यास) के अलावा लगभग 70 रेडियो नाटक भी लिखे जिसमें से एक 'सावन जले भादों जले' को अखिल भारतीय आकाशवाणी पुरस्कार भी मिला।

डॉ. बृज प्रेमी : कहानीकार, स्तंभकार, आलोचक, शोधकर्ता और मंटो साहित्य के विशेषज्ञ बृज प्रेमी का पूरा नाम बृज किशन आइमा था। इनका जन्म 24 सितंबर, 1935 को श्रीनगर में हुआ था तथा 20 अप्रैल, 1990 को इनकी मृत्यु हुई। शैक्षिक योग्यता : एम.ए. (ऑनर्स), बी.एड., पी-एच. डी.। राज्य सरकार की सेवा में बतौर शिक्षक के रूप में शामिल हुए और बाद में कश्मीर विश्वविद्यालय में रीडर के रूप में काम किया। उनकी पहली कहानी 'आका' 1949 में स्थानीय पत्र 'ज्योति' में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने अक्सर दैनिक 'नौजीवन' श्रीनगर में युगदीप के छद्म नाम के साथ स्तंभ लिखा। बृज प्रेमी ने खुद को प्रगतिशील लेखन आंदोलन से भी जोड़ा। उनकी कहानियों में गरीब कश्मीरी किसानों और मजदूरों की दुर्दशा को दर्शाया गया था और उन्होंने अक्सर कृष्ण चंदर की शैली का अनुकरण करने की कोशिश की। उन्होंने 60 से अधिक कहानियां लिखी हैं। उर्दू साहित्य में उनके सबसे बड़े योगदान के रूप में सआदत हसन मंटो पर लिखी गई उनकी थीसिस मानी जाती है, जो बाद में किताब के रूप में 'सआदत हसन मंटो—हयात और कारनामे' नाम से प्रकाशित हुई। प्रकाशित पुस्तकें : 'सपनों की शाम' (कहानी संग्रह), 'हर्फ-ए-जुस्तजू', 'जलवा-ए-सदरंग', 'कश्मीर के मजामीन', 'जौके-नजर', 'जम्मू व कश्मीर में उर्दू अदब की निशो नुमा', 'चंद तहरीरें', 'मंटो कथा', 'मुबाहिस'। इसके अलावा प्रेमनाथ परदेसी की कश्मीरी में भी किताबें प्रकाशित हुई।

अब्दुल गनी शेख : 6 मार्च, 1936 को लेह में जन्म; लद्दाख के इतिहास पर कहानियां, उपन्यास, निबंध, हास्य और व्यंग्य, जीवनी बहुविध साहित्य लिखा। योग्यता : मैट्रिकुलेशन, उर्दू, अंग्रेजी और हिंदी के जानकार। इन्होंने भारतीय सूचना सेवा के अंतर्गत आकाशवाणी में कार्य किया और 20 नवंबर, 1991 को दिल्ली से सेवानिवृत्त हुए। शेख ने लद्दाख की संस्कृति और सभ्यता पर व्याख्यान देने के लिए विदेशी विश्वविद्यालयों का दौरा किया। उनकी पहली कहानी 1958 में 'देश' (श्रीनगर) में प्रकाशित हुई थी। शेख ने अब तक 70 से अधिक कहानियां लिखी हैं, जो जमीनी हकीकत के करीब हैं और लद्दाख की भूमि और लोगों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उनकी कई

कहानियों का हिंदी, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती और जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ है। प्रकाशित पुस्तकें : 'जोजिला के उस पार', 'दोराहा', 'दो मुल्क एक कहानी' (कहानी संग्रह), 'दिल ही तो है', 'वो जमाना' (उपन्यास), 'सोनम नरबू' (जीवनी), 'कलम', 'कलमकार और किताब', 'इस्लाम और विज्ञान' (निबंध), 'लद्दाख-तहजीब और सकाफत', 'लद्दाख 1947 के बाद', 'लद्दाख- मुहक्किकों और सय्याहों की नजर में', 'लद्दाख की तारीख के अहम गोशे' (इतिहास) और 'लद्दाख की सैर', 'किताबों की दुनिया', 'गांधी जी और उनका फलसफा'। अब्दुल गनी शेख ने 'रिफ्लेक्शंस ऑन लद्दाख', 'तिब्बत एंड मिडिल एशिया' पर अंग्रेजी में एक पुस्तक भी लिखी है। डॉ. रवीना अग्रवाल ने उनकी कहानियों का 'फोर्सकिंग पैराडाइज' शीर्षक के तहत अंग्रेजी में अनुवाद किया है।

नूर शाह : 9 जुलाई, 1936 को श्रीनगर में जन्म; कहानियां, नाटक, समाचार पत्रों में लेख, डायरियां, जैव-रेखाचित्र और स्मृति आलेख लिखते हैं। स्नातक स्तर की पढ़ाई के बाद राज्य सरकार की नौकरी की और मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जम्मू-कश्मीर ऊर्जा विकास एजेंसी के रूप में सेवानिवृत्त हुए। 1958 में स्त्रीलिंग छद्म नाम से लिखना शुरू किया। नूर शाह एक अनुभवी लेखक हैं जो पिछले कई दशक के उस साहित्यिक और सामाजिक उथल-पुथल के गवाह रहे हैं, जिसमें क्रांतियां/विद्रोह हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक खास समुदाय पर घोर विपत्तियां आई हैं और अपने लोगों को खोने का दर्द शामिल है। अपने अधिकांश लेखन में वे रोमानी हैं और 'सत्यम, शिवम और सुंदरम' की खोज में नजर आते हैं। वह न केवल स्त्री सौंदर्य से प्रभावित हैं, बल्कि उस प्रकृति से भी प्रभावित हैं, जिसमें वह पैदा हुए हैं। अपनी कई कहानियों में इन्होंने अपने पात्रों के असामान्य यौन व्यवहार को भी चित्रित किया है। नूर शाह ने अपनी रोमानी रचनाओं में कश्मीर की उस जमीनी हकीकत को दर्शाया है, जिससे कश्मीरियों को हर रोज गुजरना पड़ता है। उनकी प्रमुख पुस्तकें हैं—'बे घाट की नाव', 'वीराने के फूल', 'मन का आंगना उदास-उदास', 'एक रात की मलिका', 'गीले पत्थरों की महक', 'बे समर सोच', 'आसमान', 'लहू और फूल' (कहानी संग्रह), 'नीली झील के साए', 'पायल के जख्म' (उपन्यास), 'आओ सो जाएं', 'आधी रात का सूरज', 'लम्हे और जंजीरें' (उपन्यास), 'इंतेखाब अदब उर्दू', 'रियासत जम्मू व कश्मीर 1947-71- एक जायजा', 'बंद कमरे की खिड़की', 'कहां गए वो लोग'। रियासत जम्मू व कश्मीर के अफसाना निगार—तारुफ, फन और मकालमे लिखे। इसके अलावा, उन्होंने आकाशवाणी के लिए लगभग 60 नाटक, 30 गीतों भरी कहानियां और दूरदर्शन के लिए कुछ टेली-धारावाहिक लिखे हैं।

वीरेंदर पटवारी : सोपोर में 11 सितंबर, 1940 को जन्म; कहानियां, उपन्यास, नाटक, कविता और टीवी पटकथा लेखक के रूप में ख्यात। वह मूल रूप से एक सिविल इंजीनियर हैं जो राज्य सरकार की सेवा से सेवानिवृत्त हुए। इन्होंने उर्दू, हिंदी और अंग्रेजी में लिखा है। इनका लेखन कार्य 1965 में शुरू हुआ और अब तक लगभग 270 कहानियां लिखी हैं। पटवारी एक आधुनिकतावादी लेखक हैं। अपने लेखन को धार देने के लिए प्रतीकों, रूपकों और पौराणिक उपाख्यानों का उपयोग करते हैं। वह हिंदू पौराणिक कथाओं और सौंदर्यशास्त्र से बहुत प्रभावित हैं, जिसे वह अपनी कहानियों में अक्सर उद्धृत करते हैं। उनकी अधिकांश कहानियां कर्म पर आधारित हैं, जिसमें कर्म और भाग्य तथा सत्य-असत्य के मध्य रस्साकशी है। दुर्भाग्य से, उन्हें दो गंभीर दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा, एक में उन्होंने अपनी जवान बेटी को खो दिया और दूसरी में स्वयं अपाहिज हो गए। सामाजिक और

सामुदायिक समस्याओं तथा घाटी से पलायन के अलावा उनके अस्तित्व के दर्द को उनके लेखन में देखा जा सकता है। 'सजा', 'दस्तक' और 'दुश्मन' जैसी कई कहानियां घाटी में आतंकवाद से संबंधित हैं। खोपड़ी, कंकाल, हांगुल और कुत्ते जैसे कई प्रतीक प्रभावित लोगों के आतंक और भय को दर्शाते हैं। दर्द के बावजूद, वे शांति के लिए तरसते रहते हैं। उनके द्वारा लिखी गई किताबें : 'फरिश्ते खामोश हैं', 'दूसरी किरण', 'बेचैन लम्हों का तन्हा सफर', 'आवाज सरगोशियों की', 'एक अधूरी कहानी', 'उफक', 'दायरे', 'लाला रुख़' (कहानी संग्रह), 'आखिरी दिन', 'इन्सान' (नाटक) और 'कब भोर होगी' (हिंदी कविताएं)। वीरेंदर पटवारी ने 13 रेडियो नाटक, 6 मंच नाटक, 7 टेलीविजन नाटक, 6 टेली-फिल्में और 4 टेली-धारावाहिक लिखे हैं।

डॉ. जहूरुद्दीन : कहानीकार, शोधकर्ता और आलोचक डॉ. जहूरुद्दीन का जन्म 1942 में जम्मू में हुआ। हाल ही में इनका इंतकाल हुआ है। योग्यता : अंग्रेजी और उर्दू में स्नातकोत्तर और पी-एच. डी.। वह जम्मू विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष थे। डॉ. जहूरुद्दीन एक आधुनिकतावादी लेखक थे जिन्होंने सामाजिक विषयों पर लिखने के बजाय मनोवैज्ञानिक, अस्तित्ववादी, अति यथार्थवादी और अभिव्यक्तिवादी विषयों पर कहानियां लिखीं जिसमें खोज के क्षेत्र के रूप में अवचेतन और अचेतन मन को एक विषय बनाया। उन्होंने प्रतीकात्मकता, रूपकों और चेतना की धारा को अपने उपकरण और तकनीक के रूप में इस्तेमाल किया। उनकी प्रतीकात्मक कहानियों में किसी को वर्तमान समय की उलझन और दर्द, अस्तित्व की व्यर्थता, बदलते मूल्यों और जीवन-मूल्यों के टूटन का पता चल सकता है। उन्होंने बड़े मनन के बाद अपने विषयों का चयन किया तथा उर्दू साहित्य को 'नजात', 'बदरुह', 'दुर्र-ए-शहवर', 'बागवाला' और 'नरभक्षी' जैसी कुछ विश्वसनीय कहानियां दीं। उनकी किताबें हैं—'तलाफी', 'कैनिबल', 'आखिरी कील' (कहानी संग्रह) और 'जम्मू की खिते में उर्दू जबान-ओ-अदब का इर्तिका' (निबंध)। उनके लेख आकाशवाणी जम्मू से भी प्रसारित होते थे।

शहजादा बिस्मिल : श्रीनगर में 13 सितंबर, 1942 को जन्म; शहजादा बिस्मिल का वास्तविक नाम गुलाम कादिर खान है। अखबारों में कहानियां, निबंध और कॉलम लिखते हैं। मैट्रिक करने के बाद उन्होंने विश्वविद्यालय में क्लर्क के रूप में नौकरी की शुरुआत की और बाद में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के संयुक्त निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए। बिस्मिल ने 1970 के आसपास लिखना शुरू किया। उनकी कहानियों का पहला संग्रह 'रक्स-ए-बिस्मिल' 1985 में प्रकाशित हुआ था। इन्होंने अपनी कहानियों में गांव के जीवन को चित्रित किया है, जिनके पात्र मनोवैज्ञानिक समस्याओं से घिरे होने के बावजूद रोमांच से भरे हुए हैं। वह अक्सर अपने लेखन में कश्मीरी शब्दों, मुहावरों, उपमाओं और उपाख्यानों का उपयोग करते हैं। उनकी कहानियों में उग्रवाद के अलावा महिलाओं की समस्याओं, रिश्तों की टूटन, प्राकृतिक तबाही का जिक्र मिलता है। पुस्तकों के नाम : 'रक्स-ए-बिस्मिल', 'खुशबू की मौत' (कहानी संग्रह)।

दीपक कंवल : वास्तविक नाम दया कृष्ण कौल; जन्म 19 जनवरी, 1944 को बडगाम कश्मीर में; कहानियां, उपन्यास, टीवी पटकथा और आत्मकथा लेखन के लिए ख्यात। प्रारंभिक शिक्षा (मैट्रिक) के बाद वह जम्मू-कश्मीर राज्य सड़क परिवहन निगम में नौकरी करने लगे और वहीं से सेवानिवृत्त हुए। वह आकाशवाणी और दूरदर्शन श्रीनगर से भी जुड़े थे। दीपक कंवल ने 1990 में उग्रवाद के कारण कश्मीर से पलायन कर लिया और प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता दिलीप कुमार के यहां

शरण ली। आजकल वह जवाहर फिल्म्स और टेलीविजन के साथ एक फ्रीलांसर के रूप में जुड़े हुए हैं। उनकी पहली कहानी 'चित्र' फिल्म पत्रिका में साप्ताहिक रूप से प्रकाशित हुई थी और उसके बाद एक और कहानी, 'ये किसका लहू है', 'हमारा अदब' पत्रिका (श्रीनगर) के एक विशेषांक में प्रकाशित हुई थी। दीपक कंवल की कहानियां आशावाद, सांप्रदायिक सौहार्द, मानवतावाद और प्रयोजनवाद को चित्रित करती हैं, वहीं वे जड़ों से उखड़ने के दर्द, दलितों की समस्याओं और मानवीय भावनात्मक संघर्षों को भी दर्शाते हैं। पुस्तकों के नाम : 'बर्फ की आग', 'पम्पोश' (कहानी संग्रह), 'कशमकश', 'तमाशा', 'नया सफर', 'तरंग', 'दुरदाना', 'हम तेरे हो गए सनम', 'तुम मिल गए', 'सलामदीन का हाउसबोट' (उपन्यास) और 'दिलीप साहब' (जीवनी)।

उमर मजीद : अब्दुल मजीद के नाम से प्रसिद्ध। अब्दुल मजीद मीर का जन्म 1944 में श्रीनगर में हुआ तथा 23 दिसंबर, 2008 को इनका निधन हो गया। इन्होंने कहानियां और समाचार-पत्रों में स्तंभ लेखन किया। स्नातक स्तर की पढ़ाई के बाद इन्होंने टिंडल बिस्को मेमोरियल स्कूल, अमीर कडल में शिक्षक के रूप में कार्य किया, जहां से वे प्रधानाध्यापक (हेडमास्टर) के रूप में सेवानिवृत्त हुए। उनकी पहली कहानी 'एक बूढ़ा वूलर के किनारे' 1965 में स्थानीय दैनिक पत्र 'आफताब' में प्रकाशित हुई थी। इन्होंने उस दैनिक में 'ख्याल अपना-अपना' और 'कश्मीरनामा' नामक कॉलम लिखे, जिसने पाठकों के बीच काफी लोकप्रियता हासिल की। उमर मजीद आधुनिकतावाद से बहुत प्रभावित थे और अपने लेखन में प्रतीकों और रूपकों का भी उपयोग करते थे। कथात्मकता के विस्तार को कभी नहीं छोड़ा। बाद के दिनों में वे कई घातक उग्रवादी घटनाओं के गवाह बने, जो उन्होंने अपनी कहानियों में बड़ी शिद्दत से पेश की। इन घटनाओं ने उनकी मानसिक स्थिति को भी प्रभावित किया। उमर मजीद ने उग्रवाद, राज्य प्रायोजित आतंकवाद, घरेलू हिंसा, यौन अपराध, वैवाहिक कलह, हीन भावना, उपभोक्तावाद के कारण मूल्यों के ह्रास, पुराने लोगों को हाशिए पर रखने के दर्द और वर्तमान शैक्षिक प्रणाली के दोषों को अपनी लघु कथाओं में चित्रित किया। उनकी कई कहानियां जैसे 'मेरी गली का गम', 'शहर का इघवा', 'मोहम्मद शमीम को कश्मीर जाना है', 'मुर्दा चिनार', 'गुमशुदा जन्नत और वतन' बेहतरीन कृतियां हैं। प्रकाशित पुस्तकें : 'उजालों के घाव', 'उमर मजीद के अफसाने' (कहानी संग्रह) और 'ये बस्ती ये लोग', 'दर्द का दरिया' (उपन्यास)।

खालिद हुसैन : 1 अप्रैल, 1945 को उधमपुर में जन्म; कहानियां और निबंध लिखते हैं। उन्होंने बी.ए. (ऑनर्स) और पत्रकारिता में डिप्लोमा किया और कश्मीर प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए, जहां उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण पदों पर रहकर प्रशंसनीय कार्य किया। वह एक बहुभाषाविद् होने के साथ उर्दू और पंजाबी दोनों भाषा में लिखते हैं जिसके कारण वह सरहद के दोनों ओर लोकप्रिय हैं। 'ठंडी कांगडी' नामक उनकी पहली पंजाबी कहानी अमृता प्रीतम द्वारा 'नाग मणि' में प्रकाशित की गई थी, जबकि उनकी पहली उर्दू कहानी 'कोई बतलाओ कि हम बतलाएं क्या' सरदार जाफरी द्वारा संपादित 'गुफ्तगू' में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने पंजाबी में लगभग 150 और उर्दू में 60 कहानियां लिखी हैं, जिनमें से कुछ का अंग्रेजी, हिंदी, मलयालम और तेलुगु में भी अनुवाद हुआ है। आधुनिकतावाद के प्रभाव के तहत, वह अपने लेखन में प्रतीकों, रूपकों और शास्त्रीय उपाख्यानों का भी उपयोग करते हैं, हालांकि वे अमूर्त और अवास्तविक कथ्य पर जोर नहीं देते। उनकी कहानियों में विभाजन का दर्द, वर्तमान समय की निराशा, आधुनिक समाज में आतंकवाद, महिलाओं के शोषण के अलावा मानव

मनोविज्ञान और यौन व्यवहार से संबंधित विषय शामिल हैं। प्रकाशित पुस्तकें : 'ठंडी कांगडी का धुआं', 'इश्तिहारों वाली हवेली', 'सतीसर का सूरज' (उर्दू कहानी संग्रह), और 'ते झेलम वागदा रेहिया', 'गोरी फस्ल दे सौदागर', 'ढोंगे पैंया दा दुःख', 'बलदी बर्फ दा सेक', (पंजाबी कहानी संग्रह), 'माटी कदम करणदी यार' (आत्मकथा), 'गवांची झांझर दी चौक' (उपन्यास), 'नूरी रेशम' (पैगंबर की जीवनी), 'खालिद हुसैन दा कथा जगत्', 'मेरे रंग दे अखर और इश्क मलंगी'।

ओ.पी. शाकिर : वास्तविक नाम ओम प्रकाश 'शाकिर'; 4 अक्तूबर, 1946 को सोंगल, डोडा में जन्म; कहानियां, नाटक और कविताएं लिखते हैं। पढ़ाई के बाद 1971 में जम्मू-कश्मीर राज्य के शिक्षा विभाग में मुलाजिम हुए जिसने उन्हें गांव के जीवन को करीब से परखने का अवसर प्रदान कियाा। 1968 में उन्होंने अपना पहला नाटक 'बदला' लिखा जिसका मंचन आर.आर.एल., जम्मू में किया गया और उसके बाद नाटक और मंच के साथ उनका जुड़ाव जारी रहा। उनके कई नाटक आकाशवाणी द्वारा प्रसारित किए गए थे। शाकिर अक्सर अपने नाटकों में अभिनय करते थे। उन्होंने 'कुर्बानी' तथा 'कर्मचारी' नामक फिल्मों में भी काम किया। उनकी कहानियां समाज की सामाजिक-राजनीतिक विषमताओं को दर्शाती हैं। न्याय व्यवस्था–जो न्याय नहीं देती है, की आलोचना करती हैं और नैतिकता तथा मानवीय संबंधों को फिर से स्थापित करने का प्रयास करती हैं। प्रकाशित पुस्तकें : 'मौसम-ए-सरमा की पहली बारिश', 'जीता हूं मैं' (कहानियां/उपन्यास) और 'हदीस-ए-दिल' (कविता संग्रह)।

वेहशी सैयद : मोहम्मद सैयद ट्राम्बू वेहशी सैयद के नाम से प्रसिद्ध; श्रीनगर में 16 नवंबर, 1946 को जन्म। उन्होंने कश्मीर विश्वविद्यालय से उर्दू में स्नातकोत्तर किया और फिर व्यवसाय और होटल प्रबंधन के अपने पुश्तैनी पेशे में शामिल हो गए। शुरुआत में कॉलेज पत्रिका 'प्रताप' के प्रभारी बने और बाद में उन्होंने अपनी पत्रिका 'नगीना' शुरू की। उसी समय स्थानीय समाचार पत्र 'आफताब' में उनकी कहानियां प्रकाशित हुईं। राज्य के बाहर प्रकाशित उनकी पहली लघु कहानी 'जमूद का जनाजा', 'शायर' (मुंबई) में प्रकाशित हुई थी। शुरू में उन्होंने रोमांस, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याओं को अपने लेखन के विषय में विशेष रूप से मुंबई जैसे बड़े शहरों में रहनेवाले गरीब और वंचित वर्ग को शामिल किया, जहां उन्होंने अपना अधिकांश समय बिताया। 1990 के बाद, उनकी लघु कथाएं कश्मीरी लोगों और आतंक से सामना करने वाली समस्याओं से संबंधित थीं। प्रकाशित पुस्तकें : 'सड़क जा रही है', 'कंवारे अल्फाज का जजीरा', 'ख्वाब हकीकत', 'माजी और हाल–1 और 2', 'आसमां मेरी मुठ्ठी में' (कहानी संग्रह) और 'पत्थर-पत्थर आईना' (उपन्यास)।

के.डी. मैनी : पूरा नाम–खुशदेव मैनी; 11 अक्तूबर, 1947 को गुंडी गांव, सुरनकोट, पुंछ में पैदा हुए। उन्होंने गणित में स्नातकोत्तर किया और उर्दू, पहाड़ी और अंग्रेजी भाषाओं के अच्छे जानकार हैं। मैनी कश्मीर प्रशासनिक सेवा में शामिल हुए और जम्मू-कश्मीर के राज्य सरकार के अतिरिक्त सचिव के पद से सेवानिवृत्त हुए। इन्होंने इतिहास, भूगोल और सूफी संस्कृति में विशेष रुचि दिखाई और इन विषयों पर कई किताबें लिखीं जो ज्यादातर पुंछ और राजौरी से संबंधित थीं। उनकी कई कहानियां जैसे 'चांद', 'इरफान', 'पहला पत्थर', 'ढोक की रात' पाठकों के बीच लोकप्रिय हुईं। विभिन्न भाषाओं में 21 पुस्तकों का लेखन; 'चादर', 'गप्पन' (उर्दू कहानी संग्रह), 'ब्रूटन', 'रमजान', 'उदेकन', 'टिचकरन' (पहाड़ी कहानियों का संग्रह), 'चांद के साथ' (उर्दू कविता),

'सेगन' (पहाड़ी कविता), 'जुतियां' (हास्य), 'मता ऐ फिक्र-ओ-दानिश दरबार बाबा साहब जी-तारीख की रोशनी में' (शोध), 'पुंछ की तारीख', 'राजौरी की तारीख', 'शाहदरा शरीफ की तारीख', 'कबाइत्यों की तारीख' (उर्दू/हिंदी इतिहास) और 'पुंछ : द बैटल फील्ड ऑफ कश्मीर' अंग्रेजी में लिखी गई इतिहास की पुस्तक। इसके अलावा, उन्होंने आकाशवाणी के लिए 275 नाटक और वृत्तचित्र, 19 टीवी धारावाहिक, डीडी कश्मीर चैनल के लिए 152 वृत्तचित्र, दूरदर्शन जम्मू और श्रीनगर के अलावा अपना चैनल इंग्लैंड के लिए खूब लिखा।

डॉ. अशोक पटवारी : 2 अक्तूबर, 1948 को सोपोर में जन्म, डॉ. अशोक पटवारी मूलतः कहानियां एवं नाटक लिखते हैं। एम.बी.बी.एस., एम.डी. और डी.सी.एच. डिग्री प्राप्त करने के बाद उन्होंने डॉक्टर के रूप में प्रैक्टिस शुरू की। वे अंग्रेजी, उर्दू और हिंदी के अच्छे जानकार हैं। 1968 में उनकी पहली लघु कहानी छपी। अशोक पटवारी एक प्रगतिशील लेखक हैं, जो गरीब, दलित और मजदूर वर्ग के बारे में गहराई से लिखते हैं और इसलिए उनकी कहानियां गरीबी, बेरोजगारी और गरीबों के शोषण के बारे में हैं। कई बार वह सूक्ष्म तरीके से हास्य और व्यंग्य का इस्तेमाल करते हैं। एक डॉक्टर होने के नाते, उनके पास मानव व्यवहार और मनोविज्ञान की गहरी समझ है और अपने विभिन्न पात्रों के बीच ऐसे विषयों से रू-ब-रू होते हैं। वह अक्सर प्रतीकों का उपयोग करते हैं ताकि एक मुकम्मल तस्वीर पेश की जा सके। पटवारी ने लगभग 75 कहानियां अंग्रेजी में भी लिखीं। उनके कई नाटक आकाशवाणी जम्मू और उर्दू सेवा से प्रसारित हुए। पुस्तकें : 'कुछ लम्हे कुछ साए' (उर्दू कहानी संग्रह) 'बहता पानी', 'रेसकोर्स के घोड़े' (हिंदी कहानी संग्रह)।

बलराज बख्शी : वास्तविक नाम बलराज कुमार बख्शी; 10 दिसंबर, 1949 को उधमपुर के नगरोटा में जन्म हुआ, हालांकि उनके पूर्वज मूल रूप से पुंछ (पी.ओ.के.) के थे। अपनी बी. एस-सी. की डिग्री प्राप्त करने के बाद वे पत्रकारिता करने लगे और दूरदर्शन के लिए पटकथा लेखक, निर्माता और निर्देशक के रूप में काम किया। वे उर्दू, हिंदी, अंग्रेजी, डोगरी, पहाड़ी और पंजाबी भाषाएं जानते हैं। उनकी पहली कहानी 'चांदी का दुआं' 1969 में 'शायर' (मुंबई) में प्रकाशित हुई थी। लंबे अवकाश के बाद वह 'एक बूंद जिंदगी' नामक लघु कहानियों के संग्रह के साथ लेखकीय संसार में वापस आए। बलराज बख्शी लंबे समय तक आधुनिकतावाद के प्रभाव में रहे, लेकिन बाद में इसकी निरर्थकता का एहसास हुआ और फिर उन्होंने सामाजिक यथार्थवाद पर व्यंग्य के साथ लेखन किया। उनका व्यंग्य ज्यादातर समाज, परंपराओं और रीति-रिवाजों, राजनीति और नौकरशाही के खिलाफ दिखता है। विभाजन के कारण दर-ब-दर होना पड़ा तथा शरणार्थियों के प्रति सरकारी एजेंसियों के अमानवीय रवैये से दो-चार होना पड़ा। उनकी कुछ उत्कृष्ट कहानियां 'डेथ सर्टिफिकेट', 'मुक्ति', 'जिच' और 'अलमिया' हैं। पुस्तकें : 'एक बूंद जिंदगी' (कहानी संग्रह), 'मेरे गुनाह सभी' (कविता संग्रह) 'रूशात' (आलोचना) और 'वतन फ्राई' (नाटक)।

दीपक बुदकी : 15 फरवरी, 1950 को श्रीनगर में पैदा हुए। दीपक का पूरा नाम दीपक कुमार बुदकी है; कहानियां, पुस्तक समीक्षा, आलोचनात्मक और शोध-आधारित निबंध और आत्मकथा लिखते हैं। जामिया उर्दू अलीगढ़ से अदीब-ए-माहिर के अलावा कश्मीर विश्वविद्यालय से एम.एस-सी. (वनस्पति विज्ञान) और बी.एड. की डिग्री प्राप्त की। नेशनल डिफेंस कॉलेज, नई दिल्ली से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और मुंबई के भारतीय बीमा संस्थान के एसोसिएट भी बने।

1971 में कश्मीर सरकार आर्ट्स एम्पोरियम के प्रबंधक के रूप में काम शुरू किया और बाद में 1976 में भारतीय डाक सेवा के लिए अर्हता प्राप्त की, जहां से वे सदस्य, डाक सेवा बोर्ड के रूप में सेवानिवृत्त हुए। लगभग 9 वर्षों के लिए बुदकी सेना की डाक सेवा में भी प्रतिनियुक्ति पर थे, जहां वे लेफ्टिनेंट कर्नल के पद तक पहुंचे। इनकी पहली कहानी 'सलमा' दैनिक 'हमदर्द' (श्रीनगर) में प्रकाशित हुई। दीपक बुदकी ने अब तक लगभग 140 कहानियां, 60 आलोचनात्मक और शोध-आधारित लेख और 250 से अधिक पुस्तक समीक्षाएं लिखी हैं। वह उर्दू, हिंदी, अंग्रेजी और कश्मीरी भाषाओं के जानकार हैं। उनकी कहानियों का हिंदी, अंग्रेजी, तेलुगु, मराठी, कश्मीरी और पहाड़ी भाषाओं में अनुवाद किया गया है। वह प्रगतिशील और यथार्थवादी हैं, हालांकि कई बार प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का उपयोग करते हैं। बुदकी ने सामाजिक और राजनीतिक विषयों के अलावा पलायन और जड़ों से उखड़ने के दर्द, मनोवैज्ञानिक व्यवहार और कुंठा पर कहानियां लिखी हैं। उनकी कुछ प्रशंसित कहानियां हैं, 'एक निहत्थे मकान का रेप', 'घोंसला', 'अधूरी कहानी', 'जेबरा क्रॉसिंग पर खड़ा आदमी', 'डॉक्टर आंटी', 'डॉग हाउस', 'अब मैं वहां नहीं रहता' और 'जड़ों की तलाश'। प्रकाशित पुस्तकें : 'अधूरे चेहरे', 'चिनार के पंजे', 'जेब्रा क्रॉसिंग पर खड़ा आदमी', 'रेजा रेजा हयात', 'रूह की कब्र', 'अब मैं वहां नहीं रहता', 'जड़ों की तलाश', 'मुट्ठी भर रेत' (कहानी संग्रह), 'असरी तहरीरें', 'असरी शऊर', 'असरी तकाजे', 'असरी तनाज़ुर', 'असरी नकूश', 'अदबी मुबाहिसे', 'असरी जाविए', 'जम्मू व कश्मीर का असरी अदब' (आलोचनात्मक निबंध और पुस्तक समीक्षा), 'उर्दू के गैर मुस्लिम अफसानानिगार' (शोध-आधारित) और 'लौह-ए-हयात' (आत्मकथा)।

शेख बशीर अहमद : श्रीनगर में 9 मार्च, 1950 को जन्मे कहानीकार शेख बशीर अहमद ने स्नातक के बाद राज्य शिक्षा विभाग में काम किया और वहां से सेवानिवृत्त हुए। 1969 में दैनिक 'चिनार' (श्रीनगर) में पहली कहानी प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था 'और उसने अपनी मौत का जवाब तलाश कर लिया'। उनका लेखन जमीनी वास्तविकताओं के करीब है तथा वे निरंतर सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के बारे में लिखते हैं जिसे पलायन के कारण कश्मीरी समाज के एक वर्ग द्वारा झेला जा रहा है। हालांकि, कई बार वे अपने लेखन में उपदेशात्मक/नीतिपरक हो जाते हैं। प्रकाशित पुस्तकें : 'बंद मुट्ठी से भागा परिंदा', 'शीशे की दीवार', 'कली की बेकली', 'दिल का आईना' (कहानी संग्रह)।

आनंद लेहर : पूरा नाम श्याम सुंदर आनंद है; 2 जुलाई, 1951 को पुंछ में पैदा हुए, पिछले साल मृत्यु हो गई। बी.एस-सी., बी.ए. (उर्दू) और एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की और जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में वकालत की। लेहर, कॉलेज के दिनों से नाटक, वाद-विवाद और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते थे। उन्होंने 1972 में कॉलेज की पत्रिका में 'पत्थर के आंसू' नामक एक प्रगतिशील कहानी के साथ लेखन की शुरुआत की, लेकिन बाद में आधुनिकतावाद से प्रभावित हुए और पौराणिक पात्रों और उपाख्यानों के अलावा उनकी बाद की कहानियों में अमूर्त और प्रतीकात्मक भाषा का इस्तेमाल मिलता है। आनंद लेहर ने अक्सर अपनी कहानियों में अस्तित्व की व्यर्थता, व्यक्तिगत पीड़ा, वर्ग तनाव और आर्थिक असमानता को उजागर किया। उन्होंने सीमावर्ती क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के संघर्ष, उनकी दर-बदरी, दो पड़ोसी देशों के बीच तनाव और शांति और शांति के लिए तरस रहे लोगों को भी चित्रित किया है। उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं—'सरहद के उस

पार', 'गोरी', 'जिंदगी', 'तंदूर', 'जिस्म', 'अब थाना चलना पड़ेगा', 'फायर ब्रिगेड' और 'गवाहों का व्यापारी'। पुस्तकें : 'सरहद के उस पार', 'गोरी', 'इंहिराफ', 'कोर्ट मार्शल', 'बंटवारा', 'अगली ईद से पहले', 'सरहदों के बीच', 'यही सच है', 'मुझसे कहा होता' तथा 'नामदेव'।

वाजिदा तबस्सुम गोरकू : 1 नवंबर, 1952 को श्रीनगर में जन्मी; कहानीकार, कवि और एक सामाजिक कार्यकर्ता। इन्होंने उर्दू में एम.ए. और कश्मीरी में डिग्री के साथ कंप्यूटर में डिप्लोमा कोर्स भी किया। दूरदर्शन में सेवा की जहां से वह प्रशासनिक अधिकारी के रूप में सेवानिवृत्त हुईं। शुरुआत में गोरकू दैनिक 'आफताब' (श्रीनगर) के महिलाओं के लिए प्रकाशित परिशिष्ट अंक के साथ भी जुड़ी हुई थीं और बाद में उन्होंने साप्ताहिक 'अल अतीक' को संपादित किया। उन्होंने मुशायरों में भी भाग लिया और दूरदर्शन, श्रीनगर के लिए टेली-फिल्मों, धारावाहिकों और नाटकों की पटकथाएं लिखीं। वाजिदा की कहानियां प्रेम, सामाजिक-राजनीतिक समस्याओं, अस्तित्व की समस्याओं और मौजूदा विषम परिस्थितियों में कश्मीरियों की दुर्दशा पर आधारित हैं। पुस्तकें : 'डोलती नैया', 'दिल आज भी रोता है', 'मेरे आंगन में' (कहानी संग्रह)।

गुलाम नबी शाहिद : 15 दिसंबर, 1952 को श्रीनगर में जन्म; आई.टी.आई. से मैट्रिक और डिप्लोमा पास किया। एक हिंदू मित्र की मृत्यु ने लिखने के लिए प्रेरित किया। 1973 में दैनिक 'आफताब' में पहली कहानी 'कितने झंडे' प्रकाशित हुई। शुरुआती दौर में वे रोमांटिक और यथार्थवादी थे और विषय के साथ बड़ी खूबसूरती से जुड़ते थे, लेकिन उनके बाद के लेखन में परिपक्वता आ गई जो पूरी तरह से अवलोकन और अध्ययन पर आधारित थी तथा वास्तविकताओं के करीब थी। 'ऐलान जारी है' में उनकी कहानियां कश्मीर के उग्रवादी दौर, आम नागरिकों पर हुए आघात, बम विस्फोटों, आगजनी की दैनिक घटनाओं, पूछताछ और लापता व्यक्तियों को दर्शाती हैं। इस पुस्तक में शामिल कहानी 'आजादी' उनकी उत्कृष्ट कृतियों में से एक है। शाहिद आकाशवाणी और दूरदर्शन से भी जुड़े हुए हैं। पुस्तकें : 'मिट्टी के दीये' (संयुक्त रूप से प्रकाशित) और 'ऐलान जारी है'।

जाहिद मुख्तार : कवि, कहानीकार और पत्रकार जाहिद का जन्म 15 जनवरी, 1956 को अनंतनाग में हुआ। इन्होंने कश्मीर विश्वविद्यालय से स्नातक किया। उन्होंने साप्ताहिक 'अल मुख्तार' और बाद में 'लफ्ज-लफ्ज' का संपादन किया। जाहिद की कहानियों में कश्मीर में महिलाओं के शोषण के अलावा गरीबी और भ्रष्टाचार का चित्रण है। कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियां : 'झेलम का तीसरा किनारा', 'आंगन', 'सूरज का पहला अंधेरा', 'लम्हे का सफर', 'निमरोद' आदि हैं। पुस्तकें : 'झेलम का तीसरा किनारा', 'आंगन', 'सूरज का पहला अंधेरा' (कहानी संग्रह), 'खुशबू का सफर' (उपन्यास), 'इबतेदा', 'सुलगते चिनार' (कविता) और 'तेम्बरी हलम' (कश्मीरी कविता)।

जिनफर खोखर : 19 दिसंबर, 1957 को पुंछ मेंदर में जन्म। योग्यता : एम.ए., बी.एड। राज्य शिक्षा विभाग में काम किया। जिनफर सीमा रेखा यानी राजौरी के पास जम्मू-कश्मीर के एक सुदूर इलाके से उर्दू कहानियों की एक सशक्त स्त्री स्वर हैं। आतंकवाद के खिलाफ अपनी पीड़ा व्यक्त करने और एल.ओ.सी. के पार से रोज होने वाली बमबारी और तबाही की भयावह घटना के गवाह के रूप में अपनी पीड़ा की सशक्त अभिव्यक्ति प्रकट की है। जिनफर के लेखन में पलायन, जड़ों को खोने का दर्द, घरों और फसलों का विनाश शामिल है जो सीमा पार से होने वाली गोलाबारी और उग्रवाद से जुड़ा हुआ है। उनका लेखन दर्शाता है कि इस अमानवीय हिंसा का अधिकतम बोझ

महिलाओं द्वारा ही वहन किया जाता है। वह महिलाओं की खराब स्थिति, उनकी गरीबी, अशिक्षा और दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली पर भी लिखती हैं। हास्य और व्यंग्य का उनका प्रयोग उनकी पहचान है। इनकी कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं—'ख्वाबों के उस पार', 'तशवीश', 'घर', 'बड़ी बहू', 'रियायत', 'दड़बा', 'सेकेंड हैंड', 'पांच सौ रुपये' और 'कांच की सलाख'। प्रकाशित पुस्तकें : 'ख्वाबों के उस पार', 'कांच की सलाख', 'इबरत'।

डॉ. नीलोफर नाज नेहवी : पूरा नाम नीलोफर नाज नेहवी कादरी है। जन्म 1958 में श्रीनगर में हुआ था। शैक्षिक योग्यताएं : एम.ए. (फारसी), पी-एच.डी. हैं। वह महिला कॉलेज, श्रीनगर से एसोसिएट प्रोफेसर और विभाग प्रमुख, फारसी विभाग के रूप में सेवानिवृत्त हुईं। नीलोफर ने अपनी पहली कहानी मैट्रिक के तुरंत बाद 'जवान बूढ़ा' लिखी थी। डॉ. नीलोफर ने समाज के सामने आने वाली सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को महसूस करते हुए बच्चों के मनोविज्ञान पर ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने बुजुर्गों की स्थिति और महिलाओं के शोषण पर भी लिखा है। कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं—'कश्मकश', 'एक और बेगुनाह', 'इकरार', 'अंधेरी सुबह', 'काले साए', 'गन मैन', 'जन्मदिन', 'कहर', 'सकूत' और 'परवरिश'। पुस्तकें : 'चिनार के बर्फीले साए', 'खामोश आसमान', 'चांद मेरे रोजन पर' (उर्दू कहानी संग्रह), 'गनी कश्मीरी-हयात' और 'शायर', 'फारसी के तरफ पहला कदम', 'फारसी की तरफ दूसरा कदम', 'शहर है नूर' (फारसी की किताबें)।

डॉ. मुश्ताक अहमद वानी : डॉ. मुश्ताक का जन्म डोडा के बाहुता में 3 मार्च, 1960 को हुआ। योग्यता : एम.ए., बी.एड., पी-एच.डी., डी.लिट्। इन्होंने अपने साहित्यिक कैरियर की शुरुआत कहानी लेखन से की और बाद में आलोचनात्मक और शोध आधारित निबंधों की ओर रुख किया। वह विचार के किसी भी धड़े (स्कूल) के प्रति आग्रही नहीं हैं और उनकी अपनी शैली और कल्पना है, जो उनकी धार्मिक और नैतिक मान्यताओं से प्रभावित है। वह वर्तमान समय की अनुज्ञा, नैतिकता के ह्रास, व्यक्तिगत बेईमानी और सामूहिक विनाशकारी रवैये से चिंतित हैं। 'पांच साल का वनवास', 'अंदर की बातें और चेहरा छुपाए लोग' उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं। प्रकाशित पुस्तकें : 'हजारों गम', 'मीठा जहर', 'अंदर की बातें' (कहानी संग्रह), 'तक्सीम के बाद उर्दू उपन्यास में तहजीब बुहरान', 'आईने दर आईना', 'एतबार-ओ-मैअयार', 'उर्दू अदब में तिनीसियत', 'शूऊर-ए-बसीरत' (आलोचना)।

तरन्नुम रेयाज : 1963 में श्रीनगर में पैदा हुईं; कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, संपादक और अनुवादक। शिक्षा : एम.ए., एम.एड., इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़ी हैं। व्यक्तिगत जीवन के साथ-साथ सामुदायिक जीवन से भी गहरा जुड़ाव है। वह एक नारीवादी हैं, जो जोर-शोर से पितृसत्ता के खिलाफ बोलती हैं। एक तरफ वह कश्मीर में अपने लोगों द्वारा अनुभव किए गए दर्द के बारे में लिखती हैं जबकि दूसरी तरफ वह महानगरीय जीवन को भी चित्रित करती हैं। तरन्नुम की कहानियों में समकालीन जीवन, महिलाओं (विशेष रूप से माताओं), कश्मीर की त्रासदी, आधुनिक वैवाहिक जीवन में विसंगति, बड़े शहरों में अकेलेपन और विचित्रता आदि समस्याओं का चित्रण किया गया है। वह अपनी सोच को दर्शाने के लिए प्रतीकों का भी उपयोग करती हैं जैसा कि 'यम्बरजल', 'मुजस्म' और 'यह तंग जमीं' में देखा जा सकता है। प्रकाशित पुस्तकें : 'यह तंग जमीं', 'अबाबीलें लौट आएंगी', 'यम्बरजल', 'मेरा रख्ते सफर' (कहानी संग्रह), 'मूर्ति', 'बर्फ आशना परिंदे', 'फरेब खिताए गुल' (उपन्यास), 'पुरानी किताबों की खुशबू' (कविता), 'बीसवीं

सदी में ख्वातीन का उर्दू अदब' (संपादित), 'गोसाई बाग का भूत', 'हाउस बोट पर बिल्ली', 'सेहरा हमारी आंख में' (अनुवाद) और 'चश्म-ए-नक्शे कदम' (आलोचना)।

डॉ. रियाज तौहीदी : पूरा नाम रियाज अहमद भट्ट। 1 दिसंबर, 1973 को हंदवाड़ा में पैदा हुए। कहानीकार और आलोचक। शिक्षा : एम.ए.(उर्दू), एम.फिल., पी-एच.डी.। वह राज्य शिक्षा विभाग में व्याख्याता के रूप में काम करते हैं। उनकी पहली लघुकथा का शीर्षक 'कत्ल, कातिल और मकतूल' था, जो 2005 में 'कश्मीर उजमा' में प्रकाशित हुई थी। वह प्रसिद्ध कवि दार्शनिक डॉ. मोहम्मद इकबाल से प्रभावित हैं। रियाज की कहानियां अधिकतर इस्लामोफोबिया, अशांत कश्मीर, राज्य उत्पीड़न और आजादी पर केंद्रित हैं। वह अपनी कहानियों में सफेद हाथी, अवसाद, तीसरी जंग-ए-अजीम से कब्ल और पौराणिक कथाओं में प्रतीकों का उपयोग करते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियां हैं—'मां', 'मसलूब धड़कनें', 'नाकाबंदी', 'बबूल के कांटे' आदि। प्रकाशित पुस्तकें : 'काले पेड़ों का जंगल', 'काले देवों का साया' (कहानी संग्रह), 'जहान-ए इकबाल', 'तहकीक-ओ-तंकीद', 'डॉ. खलीफा अब्दुल हकीम शनास इकबाल ब-हैसियत-ए इकबाल शिनास' (आलोचना)।

उपर्युक्त कहानीकारों के अलावा कई अन्य लेखक हैं जिन्होंने कहानी विधा शैली में किसी न किसी समय योगदान दिया है। इनके नाम इसप्रकार हैं : हसन साहू, फारूक रेंजू, राजिंदर पटवारी, गिरधारी लाल खयाल, तालिब हुसैन रिंद, जान मोहम्मद आजाद, राजा नजीर बोनयारी, जसवंत मिन्हास, प्रो. मोहम्मद असदुल्लाह वानी, डॉ. नजीर मुश्ताक, मुश्ताक मेंहदी, राणी अब्दुल रशीद राहगीर, मुश्ताक अहमद वानी केनी, इकबाल नाजिश, अशरफ आसारी, मंसूर अहमद मंसूर, मोहम्मद शफी अयाज, राजा यूसुफ, शफीक मसूद, परवेज मानूस, डॉ. सैयदा निकहत फारूक नजर, इस्सार कश्मीरी, मकबूल साहिल, पुष्कर नाथ पीर कश्मीरी, तारिक शबनम, शफी सागर, मनोज शीरी, जुनैद जजिब, उमर फरहत, मिर्जा जान वकार, शमी शायर, केवल पंडित, इलियास मुजमिर, मिस्बाही शब्बीर, बिलकीस मुजफ्फर, जुबैर कुरैशी, आदिल नसीर, नासिर जमीर, सुहैल सलीम और मुदस्सिर रशिद फीरोज।

ऊपर आई फेहरिस्त में नई पीढ़ी के कहानीकार भी शामिल हैं। विषय, तकनीक, शैली और भाषा के स्तर पर पहले के लेखकों के मुकाबले इनमें बहुत सुधार दिखता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि दुनिया अब एक वैश्विक गांव में बदल गई है और वे न केवल स्थानीय बल्कि वैश्विक समस्याओं के भी संपर्क में आए हैं। पाश्चात्य साहित्य के एक्सपोजर ने भी उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाया है। हालांकि, सोशल मीडिया ने उन्हें एक और वास्तविकता के अनुकूल बना दिया है और वह है पाठकों के पास समय की कमी और सोशल मीडिया पर जगह की कमी के अनुरूप लेखन। इसलिए, उन्होंने कहानी शैली का एक छोटा संस्करण पेश किया है जिसे 'अफसांचा' या 'मिनी स्टोरी' कहा जाता है। इस शैली ने नई पीढ़ी के कई लेखकों को आकर्षित किया है। एक और प्रवृत्ति जो ध्यान में आई है, वह यह कि 1990 में घाटी से कश्मीरी पंडितों के पलायन के कारण, इस समुदाय ने उर्दू भाषा के साथ अपनी जड़ें भी खो दी हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं है कि कश्मीरी पंडितों की पिछली पीढ़ी जो उर्दू जानती और लिखती है, वह हमारी है और इसके बाद शायद आपको इस समुदाय से निकलने वाले कोई लेखक नहीं मिलेंगे, जिन्होंने पहले उर्दू साहित्य में बहुत योगदान दिया है।

□

उर्दू साहित्य में कश्मीर का अवदान

प्रेमी रोमानी
अनुवाद–हिमांशु शेखर

कश्मीर में उर्दू से पहले फारसी भाषा का सदियों तक बोलबाला था, लेकिन इस भाषा के वर्षों तक जनसाधारण में प्रचलित रहने के बाद डोगरा काल के प्रारंभ तक इसमें कमी आने लगी थी और इसके बदले उर्दू भाषा धीरे-धीरे लोगों के दिलों पर राज करने लगी थी। यह भाषा जल्द ही न सिर्फ राज्य में बल्कि हिंदुस्तान के दूसरे प्रांतों में भी संवाद का माध्यम बन गई। यहां जगह-जगह पर प्रकृति के अनगिनत रंग और उसकी चित्रकारी है। यहां की सज-धज, चाल-ढाल, रंग-रूप एक जमाने से अपनी पहचान बना चुके हैं। प्रकृति ने अपने कलात्मक हाथों से इसको सृजित करते हुए अपनी संपूर्ण कला और कौशल का परिचय दिया है, लेकिन कश्मीर की इस खूबसूरती, इस खुशबू, ज्ञान एवं साहित्य के अमिट आयाम को समय के उपेक्षित परदों ने हमारी आंखों से ओझल रखा है।

जम्मू-कश्मीर में उर्दू भाषा और साहित्य की शुरुआत सौ-सवा साल पूर्व हुई। महाराजा रणबीर सिंह (1857-1885) को कला और ज्ञान से बहुत लगाव था। उन्होंने डोगरी और संस्कृत के साथ-साथ उर्दू भाषा को भी सींचने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनके प्रधानमंत्री दीवान कृपाराम अपने दौर के प्रसिद्ध साहित्यकार भी थे। वे कई फारसी किताबों के लेखक थे। फारसी के साथ-साथ उनका उर्दू भाषा से भी गहरा लगाव था। उनके संरक्षण में उर्दू भाषा को फलने-फूलने और विकसित होने के अधिक अवसर सुलभ हुए। वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सभी प्रशासनिक रिपोर्ट और सरकारी कार्यवाही उर्दू में संकलित करवाई। इन्हीं रिपोर्टों से प्रांत में उर्दू की शुरुआत होती है। दीवान कृपाराम के बारे में प्रोफेसर अब्दुल कादिर सरवरी अपनी किताब 'कश्मीर में उर्दू' में लिखते हैं–

''इन विद्वानों में सबसे पहले जिनका नाम लिया जा सकता है वह दीवान कृपाराम हैं। जो महाराजा के भरोसेमंद दीवान थे। उन्हें फारसी भाषा पर समान अधिकार प्राप्त था और वे फारसी में चार-पांच किताबों के लेखक भी हैं। उनकी रचनाएं 'गुलाबनामा', 'तारीखे कश्मीर', 'हदीयतुत तहकीक', 'तहकीके तनासुख' और 'रद्दे इस्लाम' हैं। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण 'गुलाबनामा' है, जो जम्मू और कश्मीर के संस्थापक महाराजा गुलाब सिंह के दौर के इतिहास और राज्य की तत्कालीन परिस्थितियों पर आधारित है। यह लगभग डेढ़ सौ पन्नों की किताब सरकारी प्रकाशन श्री रणबीर प्रकाशन, जम्मू से 1875 में प्रकाशित हुई। उसकी लेखन शैली में हिंदुस्तान के फारसी लेखकों की छाप झलकती है। इसी शैली को दीवान कृपाराम की दूसरी रचना में भी अपनाया गया है।''

इस उद्धरण से दीवान कृपाराम के उर्दू भाषा से असीम प्रेम का पता चलता है। उर्दू की लोकप्रियता देखकर सरकार ने उस जमाने में एक अनुवाद विभाग स्थापित किया और न सिर्फ साहित्य बल्कि चिकित्सा, इंजीनियरिंग, धर्म, इतिहास, सभ्यता और संस्कृति जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर बहुत-सी किताबें लिखवाईं। इसी दौर के आसपास चौधरी मेहता, शेर सिंह ने अपना यात्रा वृत्तांत 'बुखारा' को भी प्रकाशित कराया जो प्रोफेसर अब्दुल कादिर सरवरी के अनुसार सरकारी तौर पर प्रांत की सबसे पहली गद्य रचना है।

1882 ई. में विद्याविलास प्रेस को स्थापित किया गया एवं देवनागरी और उर्दू में विद्याविलास सरकारी गजट जारी हुआ जो उस दौर की एक उपलब्धि मानी जाती है। इसके बाद जहां एक तरफ उर्दू भाषा और साहित्य की ओर लोगों की रुचि बढ़ने लगी तो दूसरी तरफ कवियों और साहित्यकारों की पद्य और गद्य रचनाएं भी लोक पटल पर आने लगीं। वर्षों बाद आज इनमें से ज्यादातर लेख और मसौदे गुमनामी के कोने में पड़े हुए हैं। इस तरह से हम एक बड़ी साहित्यिक और सांस्कृतिक धरोहर से वंचित हो गए हैं। निस्संदेह उर्दू साहित्य का कोई भी इतिहास उस समय तक प्रामाणिक नहीं माना जा सकता जब तक कि उसमें जम्मू और कश्मीर के रचनाकारों के नाम और उनके साहित्यिक अवदान का उल्लेख न हो। प्रांत के प्रसिद्ध रचनाकारों के साथ-साथ कुछ ऐसे लेखकों की भी सूची सामने आती है जिन्होंने उर्दू भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास और उन्नति में अपना भरपूर योगदान दिया, लेकिन वह काल के गाल में समा गए। (समय के बेरहम हाथों ने इनकी रचनाओं को समय की मोटी चादर में कहीं छुपा लिया।) अधिक दूर की बात न करते हुए अगर हम सिर्फ 19वीं सदी की बात करें तो हमारे रचनाकारों की एक बड़ी सूची है जिन्होंने कई साहित्यिक रचनाएं कीं, लेकिन उनकी रचनाओं पर समय की धूल जमी हुई है, ऐसे लेखकों में हरगोपाल कौल खस्ता, सालिग राम कौल सालिक, पंडित ठाकुर प्रसाद वांचू मफ्तून, कृष्ण नारायण दराबिर, जानकीनाथ मदन बेजान, शिवनारायण शमीम, जवाहरलाल साकी, चंद्रभान ब्राह्मण, बशीमबर नाथ सप्रू साबिर, जगमोहन रीना शौक, रतननाथ दरिया, गंगाप्रसाद कश्मीरी रिंद, ब्रजकिशोर जुत्शी शोर, त्रिभुवन नाथ जार कश्मीरी, विश्वनाथ दरजमोई, दीनानाथ दिलगीर, ताराचंद तर्सिल सालिक, जनार्दन टेंग सागर, अमरनाथ मदन साहिर, सुंदर नारायण मिश्रा फर्रुखाबादी, राधे नाथ कौल, गुलशन कश्मीरी, भैया जी कौल यास, निरंजन नाथ मुश्ताक जैसे अनेक रचनाकारों के नाम लिये जा सकते हैं, हालांकि इनमें से कुछ कवियों और साहित्यकारों की रचनाएं पुस्तक के रूप में छप चुकी हैं, लेकिन अधिकतर रचनाएं अब दुर्लभ हैं और सामान्य पाठकों की पहुंच से बाहर हैं। 'बहारे गुलशन-ए-कश्मीर' (2 भागों में), जैसे संदर्भ ग्रंथ इस सिलसिले में हमारे लिए बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं। बहारे गुलशन-ए-कश्मीर के बारे में उर्दू के प्रसिद्ध साहित्यकार, शोधकर्ता और आलोचक प्रो. अकबर हैदरी लिखते हैं—

''तजकिरा बहारे गुलशन-ए-कश्मीर के नाम से अधिकतर लोग अनजान हैं। यह दो मोटे भागों में है। दोनों भाग बड़े साइज में एक हजार सात सौ छत्तीस (1736) पन्नों पर आधारित हैं। यह भाग क्रमशः 1931 और 1932 में उर्दू के मशहूर कवि और साहित्यकार पंडित ब्रजकिशन कौल बेखबर और पंडित जगमोहन नाथ रीना शौक ने बहुत ही मेहनत और लगन से संकलित करके इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद से प्रकाशित करवाया।''

''यह उर्दू और फारसी का दुर्भाग्य है कि 'बहारे गुलशन-ए-कश्मीर' के दोनों भाग दुर्लभ होते जा रहे हैं। कहीं एकाध भाग बच भी गया हो तो आसानी से उपलब्ध नहीं हो सकता। काश कोई संस्था इस दुर्लभ ग्रंथ को फिर से प्रकाशित कर पाती।''

यह ग्रंथ अभी हाल ही में उर्दू भाषा विकास परिषद्, नई दिल्ली द्वारा चार भागों में प्रकाशित किया गया है।

'खुमखाना-ए-जावेद' का हाल भी ऐसा ही है। इस ग्रंथ का पहला भाग लाला श्रीराम और पांचवां भाग पंडित बृजमोहन दत्तात्रेय कैफी ने मखजन प्रेस, दिल्ली से 1940 में संपादित कर प्रकाशित करवाया। इन पांच भागों में भी कश्मीर के कई कवियों एवं साहित्यकारों के व्यक्तित्व और साहित्यिक कृतित्व को उजागर किया गया है, लेकिन ये सभी भाग दुर्लभ होने की वजह से हमारी नई पीढ़ी उस काल के कवियों और साहित्यकारों के व्यक्तित्व और उनकी शैक्षणिक एवं साहित्यिक गतिविधियों से अनजान है। इस तरह से हमारी बहुत-सी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धरोहर मात्र स्मृति बनकर रह गई हैं। 19वीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के प्रारंभ में हमारी शैक्षणिक और सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाने में जिन कवियों और साहित्यकारों ने पहल की और उसको आगे बढ़ाया उनमें श्यामलाल वली तीर्थ कश्मीरी, दीनानाथ वली शाहिद कश्मीरी, नंदलाल कौल बेगर्ज, कामगार किश्तवाड़ी, गंगाधर बट देहाती, वीरवेश्वर, दया कृष्ण गर्दिश, श्यामलाल इमा श्याम, गुलाम हैदर चिश्ती, इशरत कश्मीरी, मौलवी अब्दुल्लाह वकील, ताराचंद कौल बुलबुल कश्प बंधु, रिसा जावदानी, कैस शीरानी, कौसर सीमाबी, गुलजार अहमद फिदा, अजीज काश, महमूद हाशमी, बद्रीनाथ निशात, काशीनाथ कंवल निशात किश्तवाड़ी, मनोहरलाल दिल आदि के नाम लिये जा सकते हैं। इन्होंने जम्मू-कश्मीर में उर्दू भाषा और साहित्य के विकास और संकलन में अहम भूमिका निभाई। 1990 ई. में पंडितों या विद्वानों के कश्मीर छोड़ने से अधिकतर सुप्रसिद्ध साहित्यकारों की दुर्लभ पुस्तकें और अप्रकाशित पांडुलिपियां कश्मीर में ही रह गईं। जो बाद में लूट ली गईं और इन लूटी गई कीमती पांडुलिपियों को कबाड़ियों को बेच दिया गया। इस बारे में अपने एक परिचित के पत्र का संदर्भ यहां देना आवश्यक समझता हूं, वे लिखते हैं–

''इतने में श्रीनगर के एक प्रसिद्ध पुस्तकों के विक्रेता और शैक्षणिक एवं साहित्यिक पुस्तकों के प्रकाशक कमरे में दाखिल हुए, कॉलेज पुस्तकालय के लिए पुस्तकें खरीदनी थीं, लेकिन बात नहीं बनी। क्योंकि वह ज्यादा कमीशन मांग रहा था। उन्होंने कमरे से जाते हुए कहा कि आपको पुरानी किताबें खरीदनी हों तो कबाड़खाने में 2 रुपया किलो के हिसाब से बिकती हैं... ये सभी असामाजिक तत्त्वों की करतूतें हैं... जहां एक तरफ पंडित भाग गए वहां इन्हीं लोगों ने इनका सब सामान लूट लिया बल्कि इनके मकानों पर भी कब्जा कर लिया। ये उन्हीं विद्वानों की किताबें हैं, उन्हीं की सदियों की संभाली हुई दुर्लभ पांडुलिपियां हैं, जो बेमोल बिक रही हैं।''

खोई हुई इन पांडुलिपियों में श्यामलाल वली तीर्थ कश्मीरी की कई छोटी-बड़ी किताबें, कहानी संग्रह और उपन्यास शामिल हैं, जो कश्मीर के सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य और धार्मिक परंपरा पर आधारित थीं। तीर्थ कश्मीरी एक सुलझे हुए कथाकार और उपन्यासकार थे। उनके बहुत से उपन्यास उनके रिश्तेदारों के पास सुरक्षित थे, लेकिन वह पूरी सामग्री 1990 में बर्बाद हो गईं। दीनानाथ वली शाहिद कश्मीरी एक नाटककार थे। उनका नाटक 'रुक्मणी हरण' बहुत पहले दैनिक अखबार 'मार्तंड' (श्रीनगर) में शृंखलाबद्ध प्रकाशित हो चुका है। नंदलाल कौल बेगर्ज अपने

दौर के प्रतिष्ठित उपन्यासकार थे। उनका एक उपन्यास 'ताजियाना इब्रत', जो अभी तक अप्रकाशित था, लेकिन यह पांडुलिपि भी कश्मीर के 1990 की दहशतगर्दी की नजर हो गई। ब्रज प्रेमी के अनुसार 'ताजियाना इब्रत' की गिनती कश्मीर के प्रारंभिक उपन्यासों में होती है, जो पंडित रतननाथ सरशार की शैली में लिखा गया है। इस उपन्यास के कुछ अंश उस दौर के समाचार-पत्र 'मार्तंड' (श्रीनगर) में छप चुके हैं। गंगाधर देहाती बट, जो दिलकश कश्मीरी के नाम से कविता कहते थे, एक अच्छे कवि होने के साथ-साथ एक निपुण कथाकार भी थे। उन्होंने कई नाटक भी लिखे, वह एक पत्रकार के रूप में भी जाने जाते हैं। उनकी रचनाएं मासिक पत्रिका 'देहाती दुनिया', 'स्वस्तिका' (श्रीनगर), रोजनामा 'ज्योति' (श्रीनगर), 'बहारे कश्मीर' और 'मानसरोवर' (लाहौर) पत्रिका में छप चुकी हैं। वे ग्राम विकास विभाग, जम्मू और कश्मीर प्रांत के अंतर्गत प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'देहात सुधार' के प्रथम संपादक भी रह चुके हैं। उनकी सभी रचनाएं, जो उनके रिश्तेदारों के पास सुरक्षित हैं, अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। हजरत जोश मलीहाबादी, शायर-ए-कश्मीर मजहूर, मास्टर जिंदा कौल साबित, वीश्वेश्वर जैसे उस दौर के उच्चतर कोटि के साहित्यकारों ने उनके कौशल को अपनी लेखनी में सराहा है और उनकी रचनाओं की बेहद प्रशंसा की है और उनको एक उत्कृष्ट साहित्यकार और पत्रकार माना है। दयाशंकर गर्दिश एक उच्च कोटि के कवि होने के साथ-साथ लेखक और पत्रकार भी थे। वे वर्षों तक लाला नरसिंह दास नरगिस के संपादन में प्रकाशित होने वाले अखबार 'रोजनामा चांद' में वर्षों अपनी सेवाएं देते रहे और इसके साथ-साथ अपनी गद्य और पद्य रचनाओं से एक नई दुनिया को लाभान्वित कराते रहे, लेकिन आज उनकी रचनाएं भी गुमनामी के अंधेरे कोने में पड़ी हुई हैं। पंडित श्याम लाल ईमा भी उस दौर के एक उत्कृष्ट कवि एवं कथाकार थे। वे 'श्याम' उपनाम रखते थे। वह एक कवि और साहित्यकार होने के साथ-साथ समाजसेवी तथा स्वाधीनता आंदोलन के एक सिपाही भी थे। उनकी कहानियां 'गुरबत', 'अय्यार डाकू', 'लो आप अपने दाम में सय्याद आ गया', और 'तख्तएदार पर लटकाए जाने के बाद फिर जिंदा हो गया', नुंद ऋषि और लल्लेश्वरी के व्यक्तित्व और उनके शिक्षण पर लेख आजादी से बहुत पहले दैनिक 'मार्तंड' (श्रीनगर), 'रणबीर' (जम्मू), 'बहारे कश्मीर' (लाहौर) और 'रतन' (जम्मू) में निरंतर प्रकाशित होते रहे हैं। श्याम कई पाठ्य पुस्तकों के लेखक और संपादक भी थे। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं और संपादित कीं। स्वर्गीय प्रो. अब्दुल कादिर सरवरी इनके बारे में लिखते हैं–

''शाहिद के एक और समकालीन पंडित श्यामलाल ईमा थे, जो उन्हीं की तरह विविध अभिरुचियों के मालिक थे, उनकी अधिकतर कहानियां और लेख भी 'मार्तंड' में ही प्रकाशित होते रहे...'मार्तंड' के अलावा जम्मू से प्रकाशित बच्चों की पत्रिकाएं 'रतन' और 'फूल' में बच्चों की पसंद की कहानियां प्रकाशित करते रहे। उनकी कहानियों में 'अय्यार डाकू', 'लो आप अपने दाम में सय्याद आ गया', 'गुरबत' और 'तख्तएदार पर लटकाए जाने के बाद फिर जिंदा हो गया' जैसे कई दिलचस्प लेख भी लिखे हैं।''

लेकिन ये सभी कहानियां और लेख बर्बाद हो गए हैं। उन्होंने 'गिलगिट के सफरनामे' भी लिखा था, लेकिन वह भी नष्ट हो गया। महमूद हाशमी प्रांत के एक और उल्लेखनीय रचनाकार थे, जो मीरपुर में पैदा हुए। वे प्रांत के कई कॉलेजों में लेक्चरर के रूप में काम कर चुके हैं। अभी बर्मिंघम में रह रहे हैं। उनका रिपोर्ताज 'कश्मीर उदास है' एक समय में बहुत लोकप्रिय हुआ था।

यह पुस्तक स्वतंत्रता से पहले कश्मीर की राजनीतिक, शैक्षणिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक हलचल को विस्तृत रूप से सामने लाती है। रिसा जावदानी, इशरत किश्तवाड़ी, नरसिंह दास नरगिस, निशात किश्तवाड़ी और गोनी गोरगानवी उर्दू कविता और साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। रिसा की नातिया कविता और इशरत की गद्य और पद्य रचनाएं पूर्ण रूप में कहीं भी उपलब्ध नहीं। प्रेमनाथ परदेसी को प्रांत के शुरुआती दौर के कहानीकारों में शामिल किया जाता है, जिन्होंने विषय और स्वरूप के लिहाज से उर्दू कहानियों को जमीन से जोड़ा। इसीलिए वे 'कश्मीर के प्रेमचंद' के नाम से भी जाने और पहचाने जाते हैं। परदेसी ने विपुल साहित्य रचा और इस तरह से वे उर्दू भाषा और साहित्य के माध्यम से अपनी मातृभूमि की सेवा करते रहे। वह मानवतावादी लेखक थे। उनको लोग सिर्फ उनकी कहानियों के माध्यम से जानते हैं, लेकिन वे एक उपन्यासकार भी थे। डॉक्टर ब्रज प्रेमी के अनुसार उनका उपन्यास पोती के नाम से लाहौर के एक प्रकाशक ने 1947 में 'कौमी कुतुब खाना' प्रकाशित किया, लेकिन विभाजन के दौरान यह उपन्यास बर्बाद हो गया। परदेसी के दो नाटक 'सवाली' और 'मुजाहिद शेरवानी' एक समय में राष्ट्रीय सांस्कृतिक मंच पर खेले गए। यह दोनों नाटक उस दौर में खूब पसंद किए गए, उनका एक रिपोर्ताज 'पांच दिन' अभी तक अप्रकाशित है। उनकी अनगिनत कहानियां, साहित्य और आरेख विभिन्न समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं। उन सभी कहानियों को किताब के रूप में प्रकाशित करने की जरूरत है। डॉक्टर ब्रज प्रेमी के अनुसार उनके दो कहानी संग्रह 'कीचड़ का देवता' और 'धूल' प्रकाशित होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जिसके लिए वह प्रकाशकों से पत्राचार भी कर रहे थे, लेकिन मालूम नहीं अब वह सामग्री कहां है। परदेसी एक अच्छे कवि भी थे, लेकिन उनकी भी कविता पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाई है। उनकी कुछ कविताओं के नमूने देखिए। जिनमें विचार और कला की गहराई है और कला की नजाकत, उदाहरणस्वरूप—

निगाह मस्त उनकी खूब पुरतासीर होती है।
कि बीमार मोहब्बत के किए अकसीर होती है।।
लिखा नामे में उस वादा शिकन को मैंने बस इतना।
मेरी हमराज फुर्कत में तेरी तस्वीर होती है।।
मचल न जाए कहीं देखकर रौनक।
जिया-ए-हुस्न को जेरे नकाब रहने दे।।
कब तलक हो गुरुर-ए-रअनाई।
नाजिश हुस्न और जामा जेबाई।।

शायरे कश्मीर महजूर को लोग कश्मीरी भाषा के युग प्रवर्तक कवि के तौर पर जानते हैं, लेकिन बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि वे उर्दू के सुलझे हुए कवि और लेखक भी थे 'हयाते रहीम' के नाम से उनकी एक रचना वर्षों पहले प्रकाशित हो चुकी है। कुछ शोधकर्ताओं के अनुसार यह किताब कश्मीर में उर्दू की पहली गद्य पुस्तक है। तजकिरा 'शोरा-ए-कश्मीर', 'आईना इत्तेहादे कश्मीर', यात्रा-वृत्तांत 'लद्दाख और इंकलाब-ए-कश्मीर' आदि महजूर की कुछ अप्रकाशित गद्य रचनाएं भी महत्त्वपूर्ण हैं। उनकी उर्दू कविताएं भी अभी तक पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं हुई हैं, जिस पर ध्यान दिया जाना है। महजूर कश्मीरी पद्य के महान शायर हैं, लेकिन उन्होंने फारसी और उर्दू भाषा में भी अपनी कविताओं से एक दुनिया पर जादू किया और अपनी एक अलग

पहचान बनाई। पंजाब की यात्रा के दौरान मौलाना बिस्मिल की शरण में रहे और इस तरह से उन्हीं के माध्यम से उनकी मुलाकात अल्लामा शिबली नोमानी से भी हुई और उनके विचारों को विस्तार मिला। वे उर्दू में लगातार काव्य रचना करते रहे। जिससे उनकी व्यापक सोच का पता चलता है। कविताओं की कुछ पंक्तियां गौरतलब हैं–

आज मुझ पर सितम होने लगा।
दूर जब से वह सनम होने लगा।।
जब से वह दिलबर जुदा मुझसे हुआ।
हमनशीं रंजो-अलम होने लगा।।
तश्ना-ए-गम् के लिए वस्ल का जाम अच्छा है।
अंदलिबों के लिए गुल का पयाम आया।।
दिल से बेहतर है कि आंखों पे बिठाएं उनको।
ओज पर हुए अगर माहे तमाम अच्छा है।।

(संदर्भ : 'कश्मीर में उर्दू', भाग 2, प्रोफेसर अब्दुल कादिर सरवरी, पृ. 214)

महजूर ने उस दौर में कश्मीर और पंजाब के मुशायरे में भी भाग लेकर प्रसिद्धि हासिल की और बड़ी कामयाबी के साथ अपना कदम आगे बढ़ाया, लेकिन उनकी उर्दू कविताएं भी अभी तक प्रकाशित नहीं हो सकीं, जो उर्दू साहित्य का बहुत बड़ा नुकसान है। नाट्यकला के क्षेत्र में मुहम्मद उमर नूरे इलाही की 'मसाई' को कौन भुला सकता है। उनकी रचना 'नाटक सागर' उर्दू साहित्य में मील का पत्थर है। यह रचना नाट्यशास्त्र के आरंभिक इतिहास में शामिल की जाती है, जो 1924 ई. में प्रकाशित हुई। प्रांत में कई ऐसे नाटककार भी पैदा हुए, जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र में सराहनीय काम किया है। इनमें दीनानाथ वार्को शाहिद कश्मीरी, जगदीश कंवल, अजीज काश, नरसिंह दास नरगिस और आजर अस्करी उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अनगिनत नाटक लिखे और अत्यंत सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए। रेडियो और टेलीविजन के आने से नाट्य कला को और ताकत मिली। असंख्य नाटक और धारावाहिक लिखे गए और सफलतापूर्वक प्रस्तुत किए गए। उस दौर के कुछ अहम नाटकों में जेड सीमी का 'जहांगीर की मौत', दीनुबाई पंत का 'स्वर्ग की खोज', नरहरी रामजादा का 'पुराने दीप नए उजाले', विजय सुमन का 'अंगमान', राजकुमार अब्रोल का नाटक 'इंसान जीत गया', 'धरती और हम' और 'चक्की के पाट', अली मोहम्मद लोन के नाटक 'घरौंदे', 'दीवाने का ख्वाब' और 'चट्टान' उल्लेखनीय हैं। पुष्कर नाथ के असंख्य नाटक उर्दू भाषा के अहम कारनामों में गिने जाते हैं। इनमें से कुछ नाटक ऐतिहासिक श्रेणी के हैं। कुछ पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन अधिकतर नाटक अभी भी अप्रकाशित हैं। इस दुर्लभ सामग्री को प्रकाशित कर सामने लाने की जरूरत है। दरअसल प्रांत के साहित्य, सभ्यता और संस्कृति की उन्नति में नाटकों की महती भूमिका रही है, लेकिन अफसोस की बात है कि यह नाटक समय बीतने के साथ अब याद बनकर गए हैं। प्रांतीय संस्कृति अकादमी ने बहुत पहले 'शीराजा' की नाट्य शृंखला प्रकाशित कर कुछ महत्त्वपूर्ण नाटकों को बर्बाद होने से बचाया, लेकिन फिर भी बहुत से नाटक अभी भी अप्रकाशित हैं। उन सभी नाटकों पर नए सिरे से काम करने की आवश्यकता है। नाटक के साथ-साथ अगर संगीत शास्त्र की चर्चा न की जाए तो बात अधूरी होगी। सूफी संगीत कश्मीर का लोकप्रिय संगीत है। जिसका न सिर्फ कश्मीरी आनंद लेते हैं बल्कि प्रांत के बाहर के लोग भी इस विशेष रंग के संगीत को सुनकर मस्त-मग्न हो

जाते हैं और घंटों तक उनके दिलो-दिमाग पर इसका प्रभाव रहता है। इस तरह संगीत में न सिर्फ सूफी कवियों के काव्य को ही गाया जाता है बल्कि उर्दू-फारसी और कश्मीरी की बेहतरीन रचनाओं को भी साजों में ढालकर प्रस्तुत किया जाता है। उस्ताद मोहम्मद अब्दुल्लाह तिब्बत वकाल, उस्ताद रमजान जू, उस्ताद गुलाम मोहम्मद कालीन बाफ और उस्ताद कमाल बट इस कला के महत्त्वपूर्ण नाम हैं। रेडियो और टेलीविजन से सूफी संगीत के कार्यक्रम नियमित रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ लोग मनोरंजन के लिए सूफी संगीत की महफिलों का आयोजन करते हैं और आनंद लेते हैं। हालांकि, अब बदलते समय के साथ-साथ इन महफिलों का चलन समाप्त हो गया है, लेकिन फिर भी राज्य अकादमी समय-समय पर सूफी संगीत के कार्यक्रम आयोजित करती रहती है। रेडियो और टेलीविजन पर भी कभी-कभी सूफी संगीत के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, लेकिन आजकल लोगों का रुझान गजलों और फिल्मी गीतों की तरफ ज्यादा है। नए कलाकार सूफी संगीत की तरफ कम ध्यान दे रहे हैं। इस तरह से संगीत का यह विभाग अत्यधिक प्रभावित हुआ है। वर्षों पहले संस्कृति अकादमी ने संगीत की इस विधा को संरक्षित करने के लिए पुरजोर कोशिश की थीं। आधिकारिक तौर पर इस संस्था ने सूफी संगीत की कक्षाएं शुरू की थीं, इससे कुछ नौजवान कलाकार सामने आए, लेकिन अब शास्त्रीय संगीत की इस महत्त्वपूर्ण विधा की तरफ नौजवानों का ध्यान कम होता जा रहा है। रुबाब, सारंगी, नोट (अर्थात् मटका) और संतूर विशुद्ध कश्मीरी साज हैं। इनकी जगह अब नए और पश्चिमी साज ले रहे हैं। कुछ साल पहले संस्कृति अकादमी ने 'शीराजा' का सूफी संगीत की शृंखला प्रकाशित करके इस विधा की महत्ता का एहसास दिलाया, जो अध्ययन करने लायक है। चित्रकारी के क्षेत्र में भी जम्मू-कश्मीर देश के किसी और प्रांत से कम का दर्जा नहीं रखता। यहां बड़े-बड़े कलाकार पैदा हुए हैं जिन्होंने न सिर्फ हिंदुस्तान में बल्कि दुनिया में भी अपनी ईश्वर प्रदत्त क्षमता से अपनी कला का लोहा मनवाया और प्रांत का नाम रोशन किया है और साथ ही साथ प्रांत की मिश्रित संस्कृति और सभ्यता को मजबूती प्रदान की है। गुलाम रसूल संतोष, त्रिलोक कौल, बंसी पार्मू और किशोरी कौल चित्रकारी की दुनिया में कुछ महत्त्वपूर्ण नाम हैं जिन्होंने इस विभाग में उत्कृष्ट काम किया है। बाद के वर्षों में शबन कौल, शुजाय सुल्तान, गय्यूर हसन, निसार अजीज आदि ने ललित कला की इस विधा को मजबूती दी और अपने-अपने प्रयासों को नए रंगों से संवारा। इन चित्रकारों की कृतियों की प्रशंसा न सिर्फ देश में बल्कि विदेशों में भी हो रही है। राज्य संस्कृति अकादमी ने ललित कलाओं के विभिन्न विभागों को आगे बढ़ाने के लिए जम्मू और श्रीनगर में संबंधित विधाओं की संस्थाएं स्थापित की हैं, जहां बेशुमार नए कलाकार शिक्षा ग्रहण करके ललित कला की विभिन्न विधाओं को सींचने में लगे हुए हैं।

जम्मू और कश्मीर प्राचीन काल से ही सुलेख कला का केंद्र रहा है। वैदिक युग में भोजपत्र पर लिखने का चलन सामान्य था। कनिष्क के समय में बौद्ध विद्वानों की अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन की कार्यवाही ताम्र के बड़े-बड़े पत्रों पर अंकित की गई और उन पत्रों को वहीं किसी अनजान जगह पर दफना दिया गया। मोहम्मद यूसुफ टैंग के अनुसार पिछली एक सदी के दौरान सर अलेक्जेंडर कनिंघम से लेकर रामचंद्र काक तक बहुत-से पुरातत्त्वविदों ने इस बड़े खजाने की पहचान करने की बड़ी कोशिश की, लेकिन नाकाम रहे। इस तरह से हम कश्मीर की उस महान सांस्कृतिक विरासत से वंचित रह गए। संस्कृति अकादमी ने कुछ वर्ष पहले 'शीराजा' की सुलेख शृंखला प्रकाशित करके सुलेख कला के दुर्लभ नमूने सामने लाकर लोगों का ध्यान इस कला की ओर आकृष्ट किया।

महाराजा प्रताप सिंह के दौर में (1879 ई.) जब उर्दू को सरकारी भाषा बनाया गया और समाचार-पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगे तो सुलेख कला को भी मजबूती मिली। 1947 के बाद इस कला के कई चाहने वाले पैदा हो गए और बहुत से लोगों के लिए यह रोजगार का साधन बन गया। सुलेख कला को संरक्षित रखने के लिए प्रांतीय संस्कृति अकादमी के प्रयास सराहनीय हैं। इस साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थान ने महलों, ऐतिहासिक दीवारों, मीनारों, कब्रों के तख्तों और विभिन्न दरगाहों पर जाकर सुलेख कला के बेहतरीन नमूने जमा किए। इस संस्था ने हिजरी प्रदर्शनी का आयोजन किया। उन सभी सुलेख के नमूनों का एल्बम 1978 में 'शीरीं कलम प्रथम भाग' के नाम से प्रकाशित किया। इस संस्था ने मुगल काल, पठान काल, चक और शहमीरी काल के सिक्कों, कब्रों की तख्तियों, प्राचीन कश्मीरी जेवरात के चित्र जमा करके 'शीरीं कलम भाग द्वितीय' 1980 में प्रकाशित कर इस संस्कृति की विरासत को संरक्षित करने का प्रशंसनीय कार्य किया। इसके अलावा उर्दू कश्मीरी शब्दकोश (12 भागों में) पुरानी पांडुलिपियों को क्रम से व्याख्यात्मक सूची, विभिन्न कवियों की कब्रों पर पुस्तकें लिखवाकर राज्य के इतिहास, सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को विकसित करने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। इस लेख में अगर प्रांत में प्रकाशित होने वाले अखबारों की बात न की जाए तो अन्याय होगा। क्योंकि अखबार और पत्रिकाओं ने ही किसी देश के साहित्य, सभ्यता और सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने में सराहनीय भूमिका निभाई है। अभी भी यह सिलसिला जारी है, लेकिन पुराने अखबार और पत्रिकाएं अब किसी पुस्तकालय में मुश्किल से मिलती हैं। अखबार 'रणबीर' और 'दैनिक वितस्ता' के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता है। ये दोनों अखबार अब किसी भी पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं हैं। यह बात गौरतलब है कि 'रणबीर', 'वितस्ता', 'मार्तंड', 'रतन' और 'प्रेम' जैसे अखबार एवं पत्रिकाओं में लिखने वालों में बाद के सालों में ऐसे-ऐसे लोग हुए, जिन्होंने साहित्य की दुनिया में अपना लोहा मनवाया। इनकी तमाम साहित्यिक धरोहर इन्हीं समाचार-पत्रों के पन्नों में दफन है। प्रांत के शैक्षणिक और साहित्यिक संस्थानों, पत्र लेखन, जम्मू-कश्मीर में मुहर्रम की मजलिसों और डल झील में तैरते हुए शिकारों (बड़ी नावों) में होने वाले मुशायरों की घटनाओं को भी संजोने की जरूरत है, क्योंकि ये भी हमारी विरासत हैं। उम्मीद है कि गुणीजन इसमें रुचि लेंगे और अपने देश की सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेंगे।

संदर्भ ग्रंथ–

1. माजिद, डॉ. हुसैन, 'बहारे गुलशन-ए-कश्मीर' (संपादित)।
2. सरवरी, प्रो. अब्दुल कादिर, 'कश्मीर में उर्दू'।
3. ब्रज प्रेमी, डॉक्टर, 'जम्मू-कश्मीर में उर्दू अदब की नशों-नुमा'।
4. कैफ्वी, हबीब, 'कश्मीर में उर्दू'।
5. शीराजा सूफियाना मौसीकी नंबर व खन्ताती अंक, जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी।
6. 'रोजनामा मार्तंड', श्रीनगर (फाइल)।
7. 'रोजनामा रणबीर जम्मू', (फाइल)।

□

हिंदी साहित्य में कश्मीर का योगदान

कृपाशंकर चौबे

कश्मीर और हिंदी का संबंध सदियों पुराना है। कश्मीर से हिंदी के संबंध को देखने से पहले प्राकृत से उसके संबंध को देखें तो दसवीं शताब्दी के कश्मीर के प्रसिद्ध कवि आनंदवर्धन प्रणीत 'देवीशतक' का 76वां पद्य संस्कृत में पढ़ा जा सकता है और प्राकृत में भी। संस्कृत में उसे इस तरह पढ़ा जाएगा—

महदे सुरसन्धं मे, तम्, अव समासङ्गम् आगमाहरणे।
हर बहुशरणम् तम् चित्तमोहम् अवसरे उमे सहसा ॥[1]

यानी हे आनंददायिनी गौरी, वेद-विद्या के उपार्जन में मेरे अनुराग को बनाए रखें और अवसर पर उस प्रसिद्ध चित्त के मोह को तुरंत मिटा दें।

प्राकृत में इसे इस तरह पढ़ा जाएगा—

मम देहि रसं धर्मे तमोवशाम् आशां गमागमात् हर नः।
हरवधु शरणं त्वं चित्तमोहोऽपसरतु मे सहसा ॥[2]

यानी हे पार्वती, आपकी शरण में हैं, आप धर्म में मेरा प्रेम बनाए रखें और संसार से हमारे चित्त के अज्ञान को दूर करें।

ग्यारहवीं शताब्दी के कश्मीर के प्रसिद्ध कवि बिल्हण ने कहा है—

यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव।
प्रत्यावासं विलसति वचः संस्कृतं प्राकृतं च ॥[3]

यानी जहां स्त्रियां भी दूसरी जन्मभाषा (कश्मीरी) की तरह अपनी घर-गृहस्थी में संस्कृत और प्राकृत बोला करती हैं। ग्यारहवीं शताब्दी में कश्मीरी स्त्रियां घर-गृहस्थी में जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग करती थीं, उसने समय-समय पर तीन रूप धारण किए—प्रथम प्राकृत-पालि, द्वितीय प्राकृत-शौरसेनी और तृतीय प्राकृत-अपभ्रंश। अपभ्रंश से हिंदी अस्तित्व में आई, कश्मीरी अस्तित्व में आई। कश्मीर में हिंदी के उत्तरोत्तर प्रचलन और प्रभाव का आरंभिक श्रेय काशी के पुराने आचार्यों को, तदनंतर भारतीय साधु-संत समाज और तत्पश्चात् हिंदीभाषी पर्यटकों को है। पृथ्वीनाथ मधुप और प्रो. जे. डी. जाडू ने लिखा है, ''चिरकाल से काशी और कश्मीर का पारस्परिक संबंध रहा है। दोनों विद्या के केंद्र

माने गए हैं। धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक समस्याओं की जटिलता को सुलझाने में यहीं के आचार्य प्रवीण माने जाते हैं। विद्या केंद्र होने के कारण यहां के आचार्यों तथा विद्वानों का भिन्न-भिन्न विषयों के संदर्भ में विचार-विनिमय होना आवश्यक था। असीम विद्यानुराग, दीर्घकालीन दुर्गम यात्रा के क्लेशों की अवहेलना करते हुए यहां के आचार्य एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते थे। दोनों स्थानों के पंडित एक-दूसरे के साहित्य भंडार के समालोचक थे। ये समालोचनाएं, तर्क-वितर्क, वाद-विवाद अथवा विचार-विनिमय उस समय की राष्ट्रभाषा संस्कृत अथवा जनता की भाषा हिंदी में होता था। अतः एक सहस्र वर्ष से पूर्व भी कश्मीर में हिंदी भाषा के किसी रूपांतर का आगमन स्वीकार करें तो इसमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती।[4]

सैकड़ों वर्षों से हिंदी यदि कश्मीर में प्रचलित है तो इसका एक बड़ा कारण यह है कि हिंदी समझना या सीखना कश्मीरी के लिए आसान रहा है। हिंदी के तद्भव-तत्सम शब्द कश्मीरी भाषा से भिन्न नहीं हैं। उच्चारण में भले अंतर हो। भोलानाथ तिवारी ने प्रादेशिक भाषाओं के संदर्भ में हिंदी का शब्द समूह शीर्षक आलेख में हिंदी और कश्मीरी के समान तद्भव शब्दों की एक सूची इसप्रकार दी है[5]—

हिंदी	**कश्मीरी**
अक्षर	अछुर
अंडा	अंड
अधिकारी	अदिकारी
अनाज	अनाज
अनुभव	अनुबव
अन्न	अन
अभाव	अबाव
अभिमान	अबिमान
अमावस	अमावश्या
अर्थ	अर्त
अर्ध	अर्द
अस्थान	अस्थान
आंगन	आंगन
आपदा	आपदा
उग्र	व्वग्र
उत्तर	वुत्तर
कलंक	कलंख
करोड़	क्यरोर
कपट	कपठ

इसी सूची में कुछ और शब्द जोड़े जा सकते हैं[6]–

हिंदी	**कश्मीरी**
कान	कन
दांत	दन्द
होंठ	वुठ
आँख	अंछ
नेत्र	निथ्र
मुख	मूख
पढ़ना	परुन
लिखना	लेखुन
हाथ	अथ
पानी	पोन्य
सूर्य	सिर्य
जल	जल
रस	रस
रूप	रूप
सुन्दर	स्वन्दर

इस तरह के और भी उदाहरण दिए जा सकते हैं। दोनों भाषाओं में विदेशी भाषाओं के कई शब्द भी लगभग समान हैं।[7] उदाहरणार्थ–

हिंदी	**कश्मीरी**
अंग्रेजी	अंग्रीजी
अदालत	अदालत
अर्ज	अर्ज
आखिर	आखिर
आजमाइश	आजमोइश
इजलास	इजलास
इज्जत	यजत
खातिर	खोतिर

कश्मीर के जनमानस में हिंदी इतना स्थान बना चुकी थी कि आगे चलकर वहां की राजकाज की भाषा हो गई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर काल में महाराजा रणबीर सिंह ने हिंदी और डोगरी भाषा में देवनागरी लिपि द्वारा अपना सारा राजकार्य चलाया।[8] संस्कृत के ग्रंथों का भी हिंदी में अनुवाद काशी

के आचार्यों से करवाया। महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में उर्दू-फारसी पढ़े हुए मंत्रियों ने अपनी सुविधा के लिए हिंदी-डोगरी को पदच्युत करके उर्दू-फारसी को ही राज्य कार्यवाही के लिए प्रचलित किया।[9] कश्मीर के जनमानस में हिंदी की प्रतिष्ठा को देखते हुए कश्मीरी भाषा के लेखक भी हिंदी में रचनाएं करने लगे। 17वीं शताब्दी की कश्मीरी संत कवयित्री रूपभवानी ने कश्मीरी वाखों के साथ-साथ हिंदी में भी रचना की। महाकवि परमानंद (1791-1879) के कश्मीरी प्रबंध काव्य 'राधा स्वयंवर' में हिंदी की 14 कविताएं हैं। वे कविताएं भक्ति से सराबोर हैं। उदाहरण के लिए एक कविता में महाकवि परमानंद उस दृश्य का मनोहारी वर्णन करते हैं जब श्रीकृष्ण के बाल स्वरूप का दर्शन करने के लिए भगवान शिव योगी के वेश में भी भिक्षा मांगने गोकुल पहुंचते हैं–

भिक्षा मांगन खान बनायो,
आयो शिवजी गोकुल में।
ना कुछ समझा ना कुछ बोला,
खोला नहीं नेत्र विशाल।
मौनी होके धोनी तपायो,
आयो शिवजी गोकुल में।
अंतर्यामी स्वामी देखा
भीतर-बाहर पूरणमय
बालकृष्ण मुख उससे छुपायो,
आयो शिवजी गोकुल में।

परमानंद जी के समकालीन कश्मीरी के कवि श्री लक्ष्मण जुव बुलबुल हिंदी में भी लिखते थे। उनकी हिंदी कविता वैसे कश्मीरी और पंजाबी पुट लिये होती थी–

हरमुख हरनस छे हर चे लाहर,
भीतर-बाहर हर हर ओम।

श्रीकृष्ण दास (श्रीकृष्ण राजदान) की हिंदी कविताएं भी भक्तिपरक हुआ करती थीं। उनकी एक कविता में पार्वती से भगवान शिव कहते हैं कि शिवनाम का मधुर होंठों से जाप न करो, तुम्हें सच्चे धर्म की बात बताता हूं–

शकर वुठव म कर शिवनाथ-शिवनाथ,
सुनाता हूं तुझे अब मैं धर्म की बाथ्।

ठाकुर जू मनवटी (1850-1926) की कविताओं में वेदांत के विचारों तक पहुंचने की आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है–

कर दया तू हे दयालू, दे तू आंखें ज्ञान की,
तम से गम में थम गया हूं, चाह मुझे निर्वाण की।

श्रीठाकुर जू मनवटी के शिष्य श्री हलधर जुव कोकरू की कविताओं में शुरू की दो पंक्तियां

हिंदी में और उसके बाद की दो पंक्तियां कश्मीरी में मिलती हैं–

तुम बिन मुझको ना है करार
आ बन मुझको साक्षात्कार
यरि उर हरि हो मुटुय यलि गले
त्यलि फूलि च्यथ दजि सत् विचार।

आधुनिक कश्मीर के हिंदी साहित्य को पहचान देनेवालों में मास्टर जिंदा कौल, नीलकंठ शर्मा, दीनानाथ नादिम, दुर्गाप्रसाद काचरू, हरिकृष्ण कौल, जवाहर कौल, शची रानी गुर्टू, त्रिलोकीनाथ वैष्णवी, निर्मला कुसुम, पृथ्वीनाथ मधुप, पृथ्वीनाथ पुष्प, मोहनलाल निराश, रतनलाल शांत, त्रिलोकीनाथ गंजु, शांतिवीर कौल, अग्निशेखर, क्षमा कौल, श्याम जुनेजा, मीराकांत, चंद्रकांता, रजनी पाथरे राजदान, शिबन कृष्ण रैणा, दीपक बुदकी, शर्मा जी, जे.एल. हंडु, उपेंद्र रैणा, संजना कौल, महाराज कृष्ण संतोषी, दिलीप कुमार कौल, गौरीशंकर रैणा, राजनाथ भट्ट, महाराज कृष्ण शाह, सतीश विमल और महाराजकृष्ण मुस्सा भरत प्रमुख हैं। इसी कड़ी में 'पतझड़', 'बसंत बहार' और 'तारावली' जैसे काव्य संकलनों के रचयिता जीवनलाल प्रेम, 'दो फूल' और 'बैशाख की रात' जैसे कहानी संग्रहों की लेखिका सत्यवती मल्लिक, 'हम तुम और वह' तथा 'बुझे दीप' जैसे कहानी संग्रहों की लेखिका विमला रैणा, 'चिनार के पत्ते' और 'केसर के फूल' कहानी संग्रहों के लेखक मोहन कृष्ण दर और दो भाग में कश्मीर की लोककथाएं लिखनेवाले नंदलाल चत्ता भी आते हैं।

आधुनिक काल में कश्मीर की हिंदी कविता की बात करें तो मास्टर जिंदा कौल (1884-1965) कश्मीरी के ख्यातिलब्ध कवि थे। कश्मीरी में उनके काव्य संकलन 'स्मरण' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। 1941 में जिंदा कौल की एक पुस्तिका 'पत्र पुष्प' छपी थी। उसमें हिंदी में उनकी पांच कविताएं–नववर्ष, प्रेम कन्हैया, ध्रुव-नारायण संवाद, भ्रातृभाव और पतझड़ में चिनार का पत्ता संकलित थीं। उन कविताओं का पाठकों में समादर हुआ था। मास्टर जिंदा कौल की रचनात्मकता समाज में द्वेष की जगह प्रेम कायम करने की पैरोकार रही है–

प्रेम तो सुख प्रत्यक्ष है, द्वेष प्रकट संताप
प्रेम समान तो पुन नहीं, द्वेष समान न पाप

एक अन्य कविता में वे कहते हैं–

सारे देश में चल पड़े जिससे प्रेम की लहर
सींचे सूखे खेत को यह गंगा की नहर

कश्मीर की हिंदी कविता का मूल स्वर यही है। वह द्वेष की जगह प्रेम कायम करने के लिए आकुल रहती है। हर तरह के दुःख के खात्मे की कामना पंडित नीलकंठ शर्मा भी प्रभु से करते हैं–

नीलकंठ है दास तुम्हारा, त्रास निवारो जी।
दिखलाओ अपना सुंदर मुख, दुःख संहारो जी ॥

नीलकंठ शर्मा की ख्याति कश्मीरी रामायणकार के रूप में है। उनकी भक्तिपरक कविताओं ने भी अपनी अलग जगह बनाई। शर्मा जी के बाद जिस कवि का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है, वे हैं दीनानाथ नादिम (1916-1988)। दीनानाथ नादिम ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता रहमान राही के उस्ताद थे। दीनानाथ नादिम का पूरा नाम दीनानाथ कौल है। वे पहले हिंदी में ही कविताएं करते थे। 'कलिंग से राजघाट तक' शीर्षक उनकी कविता बहुत विख्यात हुई थी। उसी कविता में उन्होंने कहा था–

यह कर दिया
वह कर दिया
यह किसलिए
वह किसलिए
विजय के लोभ के लिए?

इस कविता में परोक्षतः कश्मीर पर हुए सभी आक्रमणों और आक्रमणकारियों की खबर ली गई है। बाद में दीनानाथ कौल उर्दू और कश्मीरी में नादिम नाम से लिखने लगे। कश्मीरी कविता का वह कालखंड नादिम युग के नाम से जाना जाता है। नादिम के बाद आधुनिक कश्मीर के हिंदी कवियों में दुर्गाप्रसाद काचरू का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दुर्गाप्रसाद वही कवि हैं जिन्होंने भू-स्वर्ग कश्मीर की महिमा और उसकी प्राकृतिक सुषमा से मुग्ध होकर लिखा था–

प्रकृति का साक्षात् विनय
दूर गीत की सुमधुर लय
शीतलता का वर संचय
दीन कीव का भाग्योदय
संस्कृति का रसपूत हृदय

कश्मीर की आधुनिक हिंदी कविता अपने समय, समाज और कविता के इतिहास से इतनी जुड़ी हुई है कि वही उससे सार्थक विद्रोह भी कर पाती है। पृथ्वीनाथ पुष्प की कविता कश्मीर के समाज की जद्दोजहद और सभ्यता की करवट से रू-ब-रू कराती है–

वसुधा के मुरझाए मुंह पर
माधव नव आभा ले आया
पतझर से पथराई आंखों में
सोया चेतन अंगड़ाया

आधुनिक कश्मीर की हिंदी कविता की केंद्रीय संवेदना निर्वासन, विस्थापन, निष्कासन से उपजी पीड़ा है। इस पीड़ा की झलक पृथ्वीनाथ मधुप की कविता में हम देख सकते हैं–

बेगुनाह मिले धूल में, पापी रहें उच्चासन पर
चोरों के हों पौ बारह बस अभाव हो साधु के घर

इसी तरह, 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' जैसी कालजयी किताब लिखनेवाले शशिशेखर तोषखानी ने लिखा–

मैं प्रभात का बुझता तारा
मरु में सूख रही जलधारा

'खोटी किरणें' और 'कविता अभी भी है' जैसे काव्य संग्रहों के रचयिता रतनलाल शांत की वेदना है कि रोशनी की उम्मीद में वे कब तक खिड़कियां खोले रखें–

सूरज कभी मेरे यहां से नहीं गुजरा
अपनी अंधेरी कोठरी के झरोखे से
मैंने बाहर झांककर
उषा के फूल संभालती मालिन से
और तारों की बंद होती दुकानों से
जितनी भी किरणें खरीदी थीं
वे सब खोटी निकलीं

'किसी भी समय', 'मुझसे छीन ली गई मेरी नदी', 'काल वृक्ष की छाया में', 'जवाहर टनल' और 'जलता पुल' जैसे महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रहों के एकांत स्रष्टा अग्निशेखर (वास्तविक नाम कुलदीप सुम्बली) ने निर्वासन को जिस मार्मिकता से संबोधित किया है, उसकी एक बानगी देखिए–

मैं तुम्हें भेजता हूं
अपनी नदी की स्मृति
सहेजना इसे
वितस्ता है
कभी यह बहती थी
मेरी प्यारी मातृभूमि में
अनादि काल से
मैं तैरता था
एक जीवंत सभ्यता की तरह
इसकी गाथा में
अब बहती है निर्वासन में
मेरे साथ-साथ
कभी शरणार्थी कैम्पों में
कभी रेल यात्रा में
कभी पैदल
कहीं भी

रात को सोती है मेरी उजड़ी नींदों में
नदी बहती है मेरे सपनों में
शिराओं में मेरी
इसकी पीड़ाएं हैं
काव्य संवेदनाएं मेरी
और मेरे जैसों की
मैं तुम्हें भेजता हूं स्मृतियां
एक जलावतन नदी की

उपर्युक्त पंक्तियां 'एक नदी का निर्वासन' शीर्षक कविता की हैं। अग्निशेखर स्वयं निर्वासित कश्मीरी पंडित हैं। इसीलिए उनकी कविताओं में 19 जनवरी, 1990 के जिनोसाइड और जलावतनी के दुष्प्रभावों की यथार्थ किंतु बेचैन कर देनेवाली अभिव्यक्ति हुई है। अग्निशेखर की कविता अनायास लाखों निर्वासित कश्मीरियों की आवाज बन जाती है। हालांकि तमाम आक्रमणों और निर्वासन, विस्थापन, निष्कासन के बावजूद कश्मीर की हिंदी कविता में उद्दाम जिजीविषा है। मोहनलाल निराश कहते हैं–

निर्माण पर्व है, नया समय
हो रहा धरा पर स्वर्णोदय

श्रीनगर से हिंदू, सिख, बौद्ध विस्थापन की त्रासदी चंद्रकांता की कविता 'यहीं कहीं आसपास', क्षमा कौल की 'कथा एक तिथि की' और रतनलाल शांत की 'कविता अभी भी' में बेचैन आत्मा को हम देख सकते हैं। तन के विस्थापन और मन के निर्वासन का दंश दिल दहला देने वाला है। निर्वासन, विस्थापन और निष्कासन का हाहाकार कश्मीर के हिंदी गद्यकारों की कृतियों में भी है। उस हाहाकार को सुनना समय की मांग है। साहित्य में जिस तरह दलित विमर्श है, आदिवासी विमर्श है, स्त्री विमर्श है, वृद्धावस्था विमर्श है, उसी तरह निर्वासन भी केंद्रीय विमर्श होना चाहिए। हरिकृष्ण कौल की कहानियों में निर्वासित कश्मीरी पंडितों की पीड़ा कई कोणों से अभिव्यक्त हुई है। उसी की एक कड़ी संजना कौल के उपन्यास 'पाषाण युग' से जुड़ती है तो दूसरी कड़ी क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' से जुड़ती है। क्षमा कौल की औपन्यासिक कृति 'दर्दपुर' निर्वासन विमर्श की बुनियाद बन सकती है। 'दर्दपुर' उपन्यास कश्मीरी पंडितों के निर्वासन के दुःख और दर्द को इस तरह अभिव्यक्त करता है कि यह समूचे विश्व के निर्वासितों का दुःख-दर्द बन जाता है। 'दर्दपुर' उपन्यास दो हिस्सों में विभाजित है। पहले में 1990 के कश्मीरी पंडितों के निर्वासन का आंखों देखिन है। दूसरे में सन् 1947 के पाकिस्तानी कबाइलियों द्वारा कश्मीरी पंडितों पर बर्बर आक्रमण और स्त्रियों पर निर्मम अत्याचार की हृदयविदारक कथा है। पाकिस्तान की सीमा से लगे कई पुरुषविहीन गांव उस कथा की पुष्टि आज भी करते हैं। 19 जनवरी, 1990 को संसार का सबसे बड़ा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जिनोसाइड हुआ। कश्मीरी पंडितों को अपने ही देश में, अपनी ही मातृभूमि, अपने ही

जन्मस्थान से रातोंरात खदेड़कर बाहर कर दिया गया। उनका अपराध यह है कि वे एक हिंदू कश्मीरी पंडित थे। इस्लाम की नजर में काफिर थे। जिन्होंने इस्लाम को कबूल किया, वे बच गए और जिन्होंने नहीं कबूल किया, उनके लिए फतवे जारी किए गए। ऐ काफिरो, ऐ जालिमो, कश्मीर हमारा छोड़ दो और इसके साथ यह फरमान भी कि हमें पाकिस्तान समर्थित आजाद कश्मीर चाहिए पंडित महिलाओं के साथ, न कि पंडित पुरुषों के साथ। इतने बड़े धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक देश में रात भर मस्जिदों के लाउडस्पीकरों से यह उद्घोषणा होती रही और हमारे हुक्मरान चैन की नींद सोते रहे। हिंदू मर्द शाम को सकुशल घर नहीं लौटे। स्त्रियों को रौंदा गया। काफिरी का दंड यों पूरा किया गया।

कश्मीर और निर्वासन पर कई रचनाएं हैं किंतु 'दर्दपुर' उपन्यास दो कारणों से विशेष रूप से तात्पर्यपूर्ण बन जाता है। एक, इसे एक निर्वासित कश्मीरी पंडित ने लिखा है। दूसरे, इसे लिखने वाली एक स्त्री है। उपन्यास की नायिका सुधा के कई प्रश्न हैं, जो संपूर्ण कश्मीरी विस्थापित कौम की वेदना से उपजे हैं। कथा कहने की शैली, वर्णन की शैली और चित्रण की शैली 'दर्दपुर' को एक महान उपन्यास बना देती है। विडंबना है कि इस उपन्यास को निमित्त बनाकर निर्वासन विमर्श की शुरुआत करने के बजाय इस पर ज्ञानपीठ द्वारा अघोषित प्रतिबंध लगाया गया। वैसे 14 वर्षों के अघोषित प्रतिबंध के बाद उसे ज्ञानपीठ ने फिर छापा है। निर्वासन और प्रतिबंध की एक समान संवेदना के कारण क्षमा कौल अनायास बांग्लादेश की निर्वासित लेखिका तसलीमा नसरीन के निकट पहुंच जाती हैं।

प्रसंगवश, कश्मीर में हिंदीसेवी संस्थाओं और हिंदी पत्रकारिता का संक्षेप में उल्लेख भी समीचीन है। जम्मू-कश्मीर में हिंदी के प्रचार-प्रसार में वहां 1900 ई. में स्थापित दो संस्थाओं–आर्य समाज श्रीनगर शाखा और सनातन धर्म सभा, 1905 में स्थापित हिंदू सहायक सभा, 1910 में स्थापित जीवन सुधार सभा, चौथे दशक में सक्रिय हुई हिंदी प्रचारिणी सभा, 1956 में स्थापित जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, 1959 में स्थापित अभिनव लेखक मंडल और उसके बाद बनी हिंदी प्रचार सभा का भी उल्लेखनीय योगदान रहा। कश्मीर की हिंदी संस्थाओं और हिंदी प्रचारकों के प्रयास से 'महावीर', 'वितस्ता', 'योजना', 'कश्यप', 'प्रकाश', 'बाल विकास' जैसी पत्रिकाएं बीसवीं शताब्दी में प्रकाशित हुईं। उन पत्रिकाओं के जरिए वहां हिंदी साहित्य पाठकों तक पहुंचा। कश्मीर का पहला साप्ताहिक 'चंद्रोदय' 1939 में पृथ्वीनाथ पुष्प और दुर्गाप्रसाद काचरू द्वारा प्रकाशित किया गया। पाक्षिक 'कश्मीर समाचार' भी निकला। 1989 में हिंदी दैनिक 'कश्मीर टाइम्स' निकला। जम्मूतवी से हिंदी दैनिक 'स्टेट समाचार' भी निकला। इस समय हिंदी के तीन प्रमुख दैनिक 'अमर उजाला', 'दैनिक जागरण' और 'पंजाब केसरी' जम्मू से निकलते हैं। प्रिंट मीडिया ही नहीं, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया व सोशल मीडिया के माध्यम से भी वहां हिंदी का प्रचार-प्रसार निरंतर हो रहा है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. विश्वेश्वर, आचार्य (पुनर्मुद्रण जुलाई 2016), 'काव्यप्रकाश', पृ. 419, वाराणसी : आज भवन।
2. वही
3. विक्रमांकदेवचरितम्, XVIII.
4. भट्ट, मोहनलाल, मेहताब, हरे कृष्ण, जोशी, जेठालाल, चाटुर्ज्या, सुनीति कुमार, दुबे, रामेश्वर दयाल, शर्मा, विनयमोहन, डांगरे, पंढरी, मुकुंद, चतुर्वेदी, सीताराम, जोशी, लक्ष्मण, शास्त्री, गुप्त, सोमनाथ, जोशी, कांतिलाल (संपादक मंडल) (1962)। 'रजत जयंती ग्रंथ', पृ. 224, वर्धा : राष्ट्रभाषा प्रचार समिति।
5. वही, पृ. 479-480।
6. वही, पृ. 225।
7. वही, पृ. 482-483।
8. वही, पृ. 225।
9. वही।

□

कश्मीरी साहित्य का इतिहास

गौरीशंकर रैणा

कश्मीरी भाषा की प्राचीनतम रचना हमें साधना सूत्रों की व्याख्या के रूप में उपलब्ध हुई है। इस पांडुलिपि में 74 सूत्रों की पद्य में व्याख्या हुई है तथा इसे ग्यारहवीं शताब्दी के आस-पास रचा हुआ माना जाता है।[1] यह मूल ग्रंथ के औचित्य-विचार को वर्तिका के रूप में प्रस्तुत करने का उपक्रम था। तब मौलिक चिंतन की भाषा संस्कृत ही थी तथा क्षेमेंद्र (990-1070) एवं अभिनवगुप्त (975-1025) जैसे महान लेखकों का प्रभाव खासा अच्छा था, परंतु आम लोगों तक संस्कृत में रचे गए ग्रंथों की व्याख्या लोकभाषा में पहुंचाने का प्रयास 'छुम्म-सूत्रों'* की व्याख्या से हुई। ये पद्य 'छुम्म' नाम से लोकप्रिय हुए तथा यह कृति कश्मीरी भाषा की प्रारंभिक अवस्था का रूप प्रस्तुत करती है।

वस्तुतः न केवल कश्मीरी में बल्कि पूरे भारत की अन्य भाषाओं में भी व्याख्याओं और टीकाओं का सिलसिला ग्यारहवीं शताब्दी में प्रारंभ होता नजर आता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में लिखते हैं कि इन व्याख्याओं-टीकाओं का उद्देश्य पूर्व लिखित ग्रंथों की समस्त युक्तियों का समर्थन करना था। ''यह निश्चित है कि ग्यारहवीं शताब्दी में इन ग्रंथों, भाष्यों, टीकाओं और उनकी टीकाओं की परंपरा बहुत अधिक बढ़ गई थी।''[2]

कश्मीर में, राजा हर्ष (1089-1101) की हत्या के बाद तथा तेरहवीं शताब्दी में सिंहदेव के शासन की अव्यवस्था के बीच 12वीं-13वीं शती में कश्मीरी भाषा में रचे 'महानय प्रकाश' में दार्शनिक विचारों को लोकभाषा में प्रस्तुत किया गया। इसके रचनाकार शितिकंठ थे। ''नाजी मुनव्वर और शफीशौक ने कश्मीर विश्वविद्यालय के कश्मीरी विभाग द्वारा 1978 में प्रकाशित अपने 'कश्मीरी साहित्य के इतिहास' में लिखा है कि शितिकंठ श्रीनगर से सात-आठ किलोमीटर दूर पाम्पुर नाम के स्थान में रहते थे, उनके पिता का नाम सौदख पंडित था तथा योद्ध पंडित और सिद्ध श्रीकंठ (लल्लेश्वरी के गुरु) उनके दो पुत्र थे।''[3] डॉ. शशिशेखर तोषखानी इस सूचना को प्रामाणिक तथ्य के रूप में स्वीकार नहीं करते परंतु शितिकंठ के ही शब्दों को प्राथमिकता देते हुए लिखते हैं कि महानय प्रकाश-सत्य के महत् अर्थ का उद्घाटन है।[4]

इसके बाद जो भी ग्रंथ तथा साहित्यिक कृतियां, कश्मीरी भाषा में रची गई होंगी, उनमें से

*''छुम्म-संप्रदाय' के सूत्र जम्मू-कश्मीर राज्य के शोध-विभाग के पुस्तकालय में पांडुलिपि के रूप में सुरक्षित हैं। प्रो. पृथ्वीनाथ 'पुष्प'(जब वे इस विभाग के निदेशक थे) ने इन पद्यों के प्रकाशन की व्यवस्था की थी, पर किन्हीं कारणों से यह कार्य पूरा न हो सका।''(डॉ. शशिशेखर तोषखानी, 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', जे. एंड के. अकादमी, पृ. 24)

केवल एक महेश्वरागनंद की 'महार्थ-मंजरी' ही हमें उपलब्ध होती है, जिसका उद्देश्य था कश्मीर शैवदर्शन का सार-मर्म बताना।

चौदहवीं सदी में कश्मीरी की महान कवयित्री लल्लेश्वरी के आविर्भाव के साथ ही कश्मीरी काव्य की दिशा बदल जाती है। प्रो. जियालाल कौल अपनी पुस्तक 'ललद्यद' में सुल्तान अलाउद्दीन के राज्यकाल में लल्लेश्वरी (1344-55) के घर छोड़कर योगिनी बनने और जीवित होने का उल्लेख करते हैं।[5] लल्लेश्वरी के गुरु सिद्ध श्रीकंठ थे, जो वसुगुप्त की शिष्य परंपरा में थे। दीक्षा लेकर, लल्लेश्वरी शैव-दर्शन के अंतर्मुखी भाव में, चित्त में ईश्वर (शिव) का स्वरूप ढूंढ़ने लगीं और सामाजिक मर्यादाओं की कोई चिंता किए बगैर 'वाखों' की रचना करने लगीं। स्वयं एक 'वाख' में कवयित्री कहती हैं—'गुरु ने यही तो कहा कि तू बाहर से आकर भीतर प्रवेश कर'। चार-चार पंक्तियों में रचे गए ये 'वाख' संसार, प्रकृति और आत्मा के संबंधों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हैं। ''इन वाखों की जबान और आज की जबान में कोई ज्यादा फर्क नहीं। इसकी वजह है कि ये वाख हम तक सीना-बसीना* आए हैं। इन्होंने लोगों के जेहन में घर कर लिया है''[6]। प्रो. जियालाल कौल के विश्लेषण का आधार, लल्लेश्वरी के वाखों को परखने की कसौटी यानी उनकी शैली, बिंब तथा वह विचार शक्ति है, जो कवयित्री के काव्य को श्रेष्ठ बनाते हैं। ये 'वाख' निरंतर उपलब्ध होते रहे हैं। सर्वप्रथम वे 60 'वाख' (कविताएं) उपलब्ध हुए, जिन्हें भास्कर राजदान ने आज से 286 वर्ष पहले कलमबंद किया था। फिर ग्रियर्सन ने 'लल्ला-वाक्यानि' में इनके अतिरिक्त 40 और वाख जोड़ दिए। ये मौखिक परंपरा से चले आए हैं और समय-समय पर कलमबंद होते रहे हैं। लोकमानस पर इनका तब से ही गहरा असर रहा है। चाहे निर्धन हों, धनवान हों, निरक्षर हों या पढ़े-लिखे, लल्लेश्वरी के काव्य के स्पर्श से कोई भी अछूता नहीं रहा। यह इस काव्य की शक्ति ही है जो सुनने व पढ़ने वालों को अपनी गिरफ्त में ले लेती है।

कच्चे धागे से मैं अपनी नैया को खींचकर ले जा रही हूं
जाने कब मेरे देव मेरी सुनें और मुझे पार लगाएं
सब वृथा जा रहा है वैसे ही, जैसे
मिट्टी के सकोरों से पानी चूता है
मगर, इतना सब होते हुए भी
मेरा जी मचल रहा है कि
कब अपने घर को चली जाऊं।**

लल्लेश्वरी पर अत्याचारों से संबंधित कई किस्से प्रचलित हैं, परंतु उनके वाखों का अध्ययन करके ही लेखक वेद राही ने 'ललद्यद' शीर्षक से एक पूरा उपन्यास लिख डाला, जिसमें उनके जीवन की व्यथा-कथा प्रस्तुत होती है और जो विश्वसनीय दस्तावेज-सा है। इस उपन्यास के साथ ही लल्लेश्वरी के सृजन और उनकी आध्यात्मिक खोज पर केंद्रित एक पुस्तक, हाल के वर्षों में, रंजीत होस्कोटे ने लिखी है। 'I, Lalla : The Poems of Lal Ded' शीर्षक से प्रकाशित इस पुस्तक में कवयित्री के 146 कश्मीरी वाखों का अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। ''लल्लेश्वरी की

(*मौखिक परंपरा से)

(**कश्मीरी से अनुवाद : शिबन कृष्ण रैणा, 'ललद्यद', पृ.76, साहित्य अकादेमी)

कविता कश्मीरी साहित्य के प्रारंभ काल की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ही नहीं, एक तरह से कश्मीरी काव्य की महानतम उपलब्धि है।''[6]

लल्लेश्वरी के बाद 14वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में शेख नूरउद्दीन (शेख-उल-आलम) के पदों की रचना 'ऋषिनामा' के रूप में प्राप्त होती है। संत-कवि के शिष्यों द्वारा संकलित यह काव्य सूफी कलाम के समान ही है। इनका रूप-रंग ललद्यद के वाखों जैसा ही लगता है और विषय की दृष्टि से भी लगभग एक समान ही हैं, परंतु शेख नूरउद्दीन के पदों में नैतिक उपदेश की प्रमुखता है। ''जिस समय शेख तरुणाई को प्राप्त हुए उस समय लल्लेश्वरी एक प्रतिष्ठित तथा वयः प्राप्त संत-कवयित्री थीं। इससे एक समस्या उठ खड़ी हुई है। शेख और लल्लेश्वरी के अनेक पद परस्पर गड्ड-मड्ड कर दिए गए हैं।...लल्लेश्वरी के पदों की तरह उनके पद भी मौखिक परंपरा से ही चले आए हैं। अतः इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि 'नूर-नामों' और 'ऋषि-नामों' में शेख के नाम से संबद्ध किए गए पद सबके सब उनके नहीं। लल्लेश्वरी से शेख इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्होंने अपने एक पद में उन्हें अवतार तक घोषित कर दिया है।...दोनों कवियों में ईश्वर उस चिरंतन सत्य के रूप में व्यक्त हुआ है जिसका प्रकाश जीवन के हर अंग को प्रकाशित करता है।''[7]

निज स्वातंत्र्य एवं मुक्ति का विचार, जो शैव-दर्शन द्वारा प्रतिपादित हुआ था, उसके प्रभाव में दोनों, लल्लेश्वरी और शेख नूरउद्दीन वली 'वाख' एवं 'श्लोक' रचते रहे। फिर जब 15वीं शताब्दी में बडशाह जैनुल आब्दीन (1420-70) के शासनकाल में साहित्यकारों को सम्मान मिलने लगा तो योद्धभट्ट, नोत्थसोम तथा भट्टावतार जैसे रचनाकार सामने आए। योद्धभट्ट ने कश्मीरी में एक नाटक लिखा। नोत्थसोम ने बडशाह की जीवनी लिखी। भट्टावतार ने राज्यादेशों को पद्यबद्ध किया तथा एक कथाकाव्य 'बाणासुर कथा' की रचना की।

'बाणासुर कथा' की पांडुलिपि, भंडारकर शोध संस्थान, पुणे में सुरक्षित रखी हुई है, परंतु इसके कुछ पन्ने अनुपलब्ध हैं। कश्मीरी में रचित इस कृति के कुल 390 पद्य ही उपलब्ध हैं। यह एक आख्यानक है जिसका कथा-सूत्र कवि ने 'हरिवंश पुराण' से लिया है। इसमें कश्मीरी गीत का प्रारंभिक स्वरूप मिलता है तथा कथा का कलात्मक प्रस्तुतीकरण हुआ है।

हसनशाह के शासनकाल (1475-1487) में एक और कृति उपलब्ध होती है, जो भंडारकर शोध संस्थान, पुणे में सुरक्षित रखी हुई है। यह है गणकप्रशस्त द्वारा लिखित एक काव्य-रचना, जिसका शीर्षक है—'सुख दुःख चरित्'। ''इस कृति के रचनाकार में न तो भट्टावतार जैसी विकसित सौंदर्य चेतना है, न उनके पूर्ववर्ती कवियों, ललद्यद और शेख नूरउद्दीन जैसी दार्शनिक उर्ध्व-दृष्टि।''[8]

पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में एक गीत-विधा विकसित हुई जिसे मर्सिया (शोकगीत) कहा जाने लगा। यह कश्मीरी भाषा का ऐसा गीत-काव्य था जिसमें विषाद के तत्त्वों को जोड़ा गया था। शेख नूरउद्दीन की मृत्यु पर उनकी शिष्या शामबीबी द्वारा लिखा हुआ शोकगीत कश्मीरी का पहला मर्सिया है। मर्सिया गीत एक वर्ग तक ही सीमित थे, परंतु हब्बा खातून के गीतों ने सभी को प्रभावित किया। हब्बा खातून (1553-1605) के काव्य का अंदाज बिल्कुल नया था। उसके गीत अत्यंत लोकप्रिय हुए। हब्बा के गीत संगीतमय और मार्मिक हैं। इन गीतों में तड़प का दर्द मिलता है, क्योंकि उसके प्रेमी-पति यूसुफशाह की, अकबर द्वारा, गिरफ्तारी के बाद वह अकेले ही यूसुफ की याद में गीत गाते हुए जीवन बिताती है और पचपन वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो जाती है। प्रेम और

विरह के गीत गाते हुए वह आंसू बहाती है और शिकायत करती है–

कौन सी मेरी सौत भरमा के ले गई है तुझे?
मुझसे ऐसी वितृष्णा क्यों?
पलक झपकाना भी मुश्किल हो गया है मुझे तो
मेरा तो मूल्य ही गिरा दिया है तूने
गड़ गया है कलेजे में मेरे यही दुःख
मन में सुलगती है जो आग-
उसे तू शांत क्यों नहीं करता?*

हब्बा खातून के समकालीन कवि हबीबुल्लाह नौशहरी (1555-1618) ने भी कई लोकप्रिय गीत लिखे। उनके गीतों की भावधारा सूफी थी, परंतु वे भी 'वचन-गीत' लिखते थे जिन्हें लोग एवं विद्वान भी हब्बा खातून का ही प्रभाव मानते हैं। इस दौर की एक और महत्त्वपूर्ण कवयित्री रूपभवानी (1625-1720) रही हैं जिन्होंने लल्लेश्वरी जैसे ही 'वाखों' की रचना की परंतु उन्होंने कुछ 'वचन-गीत' भी लिखें हों, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। माना जाता है कि उन्होंने कश्मीरी के साथ-साथ संस्कृत, फारसी तथा हिंदी में भी कुछ पद लिखे हैं। एक कश्मीरी पद का हिंदी अनुवाद–

घर से निकली तो तुम मिले
तुमसे नहीं तो किससे कहूं।
अंग-अंग में रंग-रंग के फूल खिले
चित्त में हर्ष, तो किससे कहूं।।[9]

इस युग के एक और प्रसिद्ध कवि हैं, साहिब कौल। उन्होंने गीत विधा को ही अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपनाया, हालांकि कुछ विद्वान उन्हें कश्मीर में 'लीला-काव्य' का प्रथम रचयिता मानते हैं, मगर उनके द्वारा लिखे गए 'जन्मचरित्' की शैली गीतात्मक है। उनके 'जन्मचरित्' की पांडुलिपि श्रीनगर की रिसर्च लाइब्रेरी में उपलब्ध है। ग्रियर्सन ने इनकी एक और कृति 'श्रीकृष्णावतार लीला' का संपादन कर 1926 ई. में इसे एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल से प्रकाशित करवाया था।[10]

सूफी परंपरा के कवि शाह गफूर भी उस दौर के एक उल्लेखनीय कवि हैं। उन्होंने कश्मीरी सूफीवाद के अंतर्गत कई गीत लिखे। अपने एक लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध गीत, 'सूहंमूसू' में वे ईश्वर की तलाश का आग्रह करते हुए कहते हैं कि उसकी तलाश में व्यक्ति स्वयं ही ईश्वर हो जाता है और ईश्वर होने का मतलब शरीर को मारना होता है, लेकिन इससे अलग तरह का गीत-काव्य, उस युग में, अरणिमाल की रचनाओं में मिलता है। अरणिमाल (1737-78) के गीतों का रंग दर्द भरा था। अपने पति से उपेक्षित कवयित्री अपने प्रियतम को मनाने के लिए गीतों की रचना करती थीं और उन्हें गाती भी थीं। इनका बहुत ही लोकप्रिय गीत 'अरणिरंग गोम श्रावण हिए' आज भी गाया जाता है। एक नई तरह की रचना उन्हीं दिनों महमूद गामी (1765-1855) ने स्थापित की जिसमें प्रमुख रूप से मसनवी और गजल में वे प्रयोग शामिल थे, जो फारसी की विभिन्न विधाओं से प्रेरित थे। प्रारंभ में वे फारसी में लिखते रहे, परंतु बाद में उन्होंने कश्मीरी में ही लिखा। वे निरंतर रचनाशील

*कश्मीरी से अनुवाद : डॉ. शशिशेखर तोषखानी

रहे और कश्मीरी साहित्य को समृद्ध किया। उनकी गजलों के अतिरिक्त उनके द्वारा नौ मसनवियां (आख्यान) रची गई हैं—'यूसुफ जुलेखा', 'लैला मजनूं', 'शीरीं खुसरो', 'हारूं रशीद', 'महमूद गजनवी', 'शेख सना', 'शेख मंसूर', 'पहल्यनामा' तथा 'यक हिकायत'।

उस युग के एक और मसनवीकार मकबूलशाह क्रालवारी (1820-1875) भी एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति 'गुलरेज' को माना जाता है। यह दो हजार पद्यों और गीतों पर आधारित कृति है। उनकी अन्य कृतियां 'बहारनामा', 'ग्रीस्तनामा', 'पीरनामा', 'मंसूरनामा' तथा 'अयूबनामा' हैं जिन्हें मसनवी शैली में रचा गया है। क्रालवारी के अतिरिक्त अब्दुल अहद नाजिम, सैफुद्दीन तारबली, महीउद्दीन मिसकीन, लक्ष्मण कौल 'बुलबुल' तथा वहाब परे ने भी मसनवियां लिखीं। इन्होंने इश्किया-मसनवियां (प्रेम), हजलिया-मसनवियां (व्यंग्य) तथा रजमियां-मसनवियां (युद्ध काव्य), तीन प्रकार के आख्यान लिखे। इनमें से कुछ चर्चित मसनवियां 'चंदरबदन', 'सोहनी महिवाल', 'हीर रांझा', 'जेबानिगार', 'नलदमन', तथा 'सामानामा' हैं। वहाब परे रजमिया मसनवीकार के रूप में प्रख्यात हुए, मगर उनका सबसे बड़ा कारनामा 'शाहनामा' का रूपांतर है। इसका अनुवाद चार खंडों में हुआ है। वहाब परे ने इसके अतिरिक्त 'दीवाने वहाब' में संकलित कविताओं के साथ ही 'अकबरनामा' की भी रचना की। ऐसे परिदृश्य में एक अत्यंत लोकप्रिय कवि रसूलमीर प्रकट होते हैं। प्रो. रहमान राही लिखते हैं, ''प्रेम और युद्ध के महाकाव्योचित विषयों से संबंध रखनेवाले मसनवी काव्य का व्यापक स्तर पर उत्कर्ष हुआ। इन मसनवियों में सबसे महत्त्वपूर्ण है मन को मुग्ध कर देने वाली मसनवी 'गुलरेज'। इस बीच गजलगोई की अपनी उत्कृष्ट कला द्वारा रसूलमीर ने क्लासिक फारसी गजल की भावना और शैली का कश्मीरी में बड़ी कुशलता से प्रचलन किया जिसके फलस्वरूप कश्मीरी गजल आधुनिक युग में वयस्कता को प्राप्त हुई।''[11]

इसके साथ ही, मसनवियों और गजलों के दौर में, भक्ति-काव्य की एक धारा बह चली जिसमें प्रकाशराम, परमानंद और कृष्ण राजदान ने रहस्यवाद और अध्यात्म को ऐसे प्रस्तुत किया, जिसकी निश्चित ही कोई मिसाल नहीं। एक तरफ सूफी शायर स्वच्छ क्राल, न्याम साहब, रहीम साहब, रहमान डार तथा अहमद बटवारी, जिन्होंने जीवन की अंधेरी डगर पर ज्ञान का उजाला फैलाया और दूसरी तरफ हृदयनिकेतन की लीला गाई। लीला-काव्य आज भी रचा जाता है, मगर 'शिव-परिणय' (शिव-लग्न) जैसी गीत-कथा का सृजनात्मक कौशल उसमें नहीं मिलता। मानवीय तत्त्वों के समावेश के कारण उस समय के लीला-काव्य को सुनते ही आनंद की अनुभूति होती है। 'शिव-लग्न' में ऐसे काव्य रूप से साक्षात्कार होता है, जिसमें कवि की कला की अंतर्निहित शक्ति का परिचय मिलता है। 'शिव-लग्न' के रचनाकार कवि कृष्ण राजदान (1848-1927), 'कश्मीरी रामायण' की रचना करने वाले प्रकाशराम कुरिगामी (मृत्यु 1885), तथा 'राधा स्वयंवर' व 'सुदामा-चरित' के लिखने वाले परमानंद (1791-1885) ने उत्कृष्ट लीला-काव्य रचा।

'कश्मीरी भाषा में रचित (रामावतार चरित) अथवा पद्यबद्ध रामायण, कश्मीरी श्रुति परंपराओं की विशेषता लिये भक्तिरस से बींधी वही रामकथा है जो उत्तर भारत की नस-नस में समाई हुई है।'[12] प्रकाशराम कुरिगामी के 'रामावतारचरित' का आधार 'वाल्मीकि रामायण' तथा 'अध्यात्म रामायण' है। कश्मीरी का यह रामायण सात कांडों में रचा गया है। अंत में 'लवकुश-चरित' भी इसमें जोड़ दिया गया है। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है जिसमें फारसी के शब्दों का भी प्रयोग है।

यितुय बूजिथ सपुन्य पृथ्वी स्यठाह शाद।
वुछान ऑस कर थव्यम नेत्रन अंदर पाद ॥
दोपुस दीवियि ही शिवजी दया कर।
वनुम अवतार द्यवु नेरयम मनुक शर ॥ 3 ॥*

(यह सुनकर पृथ्वी शाद (प्रसन्न) हो गई और उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगी कि कब उसके नेत्रों पर वे (राम) अपने चरण रखें। तब देवी ने कहा—हे शिवजी! दया कीजिए और मुझे रामावतार की आगे की कथा सुनाइए ताकि मेरे हृदय का दारुण संताप दूर हो जाए) ॥ 3 ॥

''वस्तुतः मसनवी और भारतीय महाकाव्य दोनों के तत्त्वों का 'प्रकाश रामायण' में समावेश है। इससे भी ज्यादा इसका स्वरूप लोक-काव्य सा है—वैसा ही सहज प्रवाह और कथा-रस की विभोर कर देनेवाली व्याप्ति।''[13]

परमानंद का 'राधा स्वयंवर' और 'सुदामा-चरित' लघु काव्य-कृतियां हैं जिनमें कृष्णलीला द्वारा दिव्य आनंद की प्राप्ति, भक्ति तथा आत्मा और ईश्वर के संबंधों का रूप प्रस्तुत हुआ है। कवि कहते हैं—''गोकुल मेरा हृदय है जहां तुम्हारी गायें विचरती हैं। मेरे मन की वृत्तियां गोपियां हैं, जो तुम्हारे पीछे दौड़ पड़ती हैं, ओ चित्त-विमर्श दीप्तमान भगवान!'' 'सुदामा-चरित' में भी एक दार्शनिक विचार प्रस्तुत होता है जो ईश्वर और मनुष्य तथा जीवात्मा और परमात्मा के संबंध के रूप में प्रकट होता है।

कृष्ण राजदान 'शिव-लग्न' की रचना के लिए बहुत लोकप्रिय हुए और आज भी यह कृति क्लासिकल मानी जाती है। इस लोकप्रिय कथा में परंपरा और लोक कथा के तत्त्व गुंथे हुए हैं। यह कथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुनाई जाती रही है, मगर कवि ने इसे अपने अनुपम अंदाज में रचा है। साथ ही, पारंपरिक रीति-रिवाजों को कथा में शामिल कर इसे प्रासंगिक बनाया है। इस काव्य-कृति में एक गीत-लीला इसप्रकार दी गई है—

कभी कहता हूं निर्गुण निराकार
कभी कहता हूं शंभू जटाधार
कभी कहता हूं नहीं कोई अंग
कभी कहूं तेरा काफूर-सा रंग
कभी कहता हूं तू आत्मा और प्राण
कभी कहूं तू योग की पहचान
कौन जाने कौन समझे तेरा आकार
तू जो भी जैसा है तुझको नमस्कार

शिव-पार्वती की पारंपरिक कथा को नए रूप में प्रस्तुत करने के साथ ही कवि कृष्ण राजदान ने भजन, स्तुतियां तथा लंबी कविताएं और गजलें भी लिखी हैं। डॉ. शशिशेखर तोषखानी 'कश्मीरी साहित्य के इतिहास' में लिखते हैं कि ''महजूर से वर्षों पूर्व कश्मीरी कविता को नया स्वर, नई संवेदना, नए विषय देने का प्रयत्न भी कृष्ण राजदान ने किया था, जो विशेष रूप से ध्यातव्य है।''[14]

इस काल में अन्य सूफी कवियों की भांति शम्स फकीर, वाजा महमूद और अहद जरगर

*(कश्मीरी रामायण (रामावतारचरित) पृ. 37; कश्मीरी से अनुवाद—डॉ. शिबन कृष्ण रैणा)

भी रचनाशील रहे। शम्स फकीर (1843-1904) बहुत लोकप्रिय थे। उनकी रचनाएं सूफियाना संगीत महफिलों द्वारा कश्मीर के कोने-कोने में पहुंचीं। उन्होंने अपने सूफी गीतों में मनुष्य की इस संसार में स्थिति तथा सूफी साधना की ओर भी संकेत दिया है। इसी प्रकार वाजा महमूद (1845-1924) ने नए प्रतीकों और बिंबों द्वारा सूफी कविता को गति देने का प्रयास किया। अहद जरगर (1908-84) ने तसव्वुफ की अवधारणाओं को भावपूर्ण काव्य का रूप देकर अच्छे गीतों की रचना की। वे दार्शनिक-धार्मिक शब्दावली का प्रयोग भी करते रहे और इस तरह परमात्मा से ऐक्य की भावना का स्वर उनके काव्य में भी, अन्य सूफी कवियों की भांति, नजर आता है।

गद्य : गद्य का प्रकाशन 19वीं शताब्दी से पहले होता रहा होगा, परंतु कोई भी पांडुलिपि उपलब्ध न होने के कारण 1821 में 'इंजील' के कश्मीरी अनुवाद को ही कश्मीरी गद्य का पहला रूप माना जाता है। इसे शारदा लिपि में छपवाया गया था तथा इसको छपवाने के लिए मिशनरी पादरियों ने कश्मीरी लिपि का टाइप तैयार करवाया था। फिर इसी लिपि में बाइबल का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। इन अनुवादों की विशेषता यह थी कि भाषा सहज और बोलचाल की थी। इन अनुवादों के साथ ही इस्लाम धर्म के उपदेशों तथा कुरान शरीफ का कश्मीरी भाषा में अनुवाद हुआ।

प्रो. रतनलाल शांत के अनुसार, ''मौलिक कश्मीरी लेखन की सचेत शुरुआत कहानी, उपन्यास अथवा निबंध से नहीं हुई, प्रत्युत नाटक से हुई, जो प्रकृति से सामूहिक है।''[15] कुछ इतिहासकार गद्य की पहली मौलिक रचना 'सटुच कहवट' (सत्य की कसौटी) को मानते हैं, परंतु डॉ. शशिशेखर तोषखानी, प्रो. श्रीकंठ तोषखानी द्वारा लिखित लघु उपन्यास 'लीला' को पहली रचनात्मक गद्य कृति मानते हैं। इन्हीं दिनों प्रारंभिक नाट्य रचनाएं भी सामने आईं। जैसे ताराचंद बिस्मिल (1904-1947) के नाटक—'अकनंदुन', 'प्रेमुच कहवट' तथा 'रामावतार'। गुलाम नबी 'दिलसोज' के नाटक 'लैला मजनूं', 'शीरीं खुसरो' तथा 'शोहदा'। 'दिलसोज' के नाटक बहुत ही लोकप्रिय हुए और एक ग्रामोफोन कंपनी ने इन्हें रिकॉर्ड भी कर लिया था।

संस्कृत नाटकों के कश्मीरी अनुवाद भी इस दौर में शुरू हो गए तथा श्रीनगर में इनका मंचन भी होने लगा। इसी बीच प्रो. मुहीउद्दीन हाजिनी ने 1938 में 'ग्रीस्य सुंद गरॅ' शीर्षक से एक नाटक लिखा जिसे कश्मीरी का पहला यथार्थवादी नाटक तथा कुछ विद्वानों ने पहला आधुनिक नाटक कहा। यह किसानों के शोषण को दर्शाता है।

आधुनिक कविता : गुजरे समय और नए युग के बीच एक सेतु बनकर कवि गुलाम रसूल महजूर (1885-1952) आए तो जो गीत परंपरा पुराने कवि छोड़ गए थे, वह आगे बढ़ी। उन्होंने अपनी कविता में बोलचाल की सरल भाषा का प्रयोग करना शुरू किया। वे समझ गए थे कि उन्हें समाज के सत्य को पहचानना होगा और अपनी कविता को नए अंदाज में कहना होगा। महजूर ने जो प्रतीक और बिंब प्रस्तुत किए, उन सभी से कश्मीरी समाज परिचित था। कश्मीर की सुंदरता, फूलों के मैदानों, पक्षियों और बहती नदियों को प्रस्तुत कर नई चेतना के साथ नई कविता प्रस्तुत करने में वे सफल हुए। उनका एक प्रसिद्ध 'ग्राम युवती' पर लिखा गया गीत एक अलग स्वर में प्रस्तुत होता है। ''उसके यौवन को कवि ने लोलुप आंखों से नहीं देखा, न घिसे-पिटे उपमानों का विषय

बनाया, बल्कि रूप और सौंदर्य की एक ऐसी उठान के रूप में प्रस्तुत किया है जिसकी सार्थकता और परिपूर्णता श्रम में है।''[16]

अभिजात ललनाओं की तुझसे समता ही क्या?
वे खिड़कियां-दरवाजे बंद किए घरों के भीतर
बेकार बैठी रहती हैं।
तू खेत में आस्तीन चढ़ाए गुनगुनाती है
गोड़ी करते हुए तेरी बांहें थक-थक चूर तो नहीं हो जातीं?
ओ ग्राम युवती, नाजनीन, ओ सुंदरी!*

उनके गीत गायकों ने जन सामान्य तक, गा-गा कर, पहुंचाए। वे जन आंदोलन से भी जुड़े रहे, मगर उनके गीतों में वह असाधारण बात नहीं थी जो हमें अब्दुल अहद आजाद की कविता में मिलती है। फिर भी आधुनिक युग के कश्मीरी काव्य में उनके महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। उन्हें उनकी देशप्रेम की कविताओं के लिए भी याद रखा जाएगा।

अब्दुल अहद आजाद (1903-48) ने महजूर की प्रेरणा से ही कश्मीरी में लिखना आरंभ किया। अजीज हाजिनी 'समकालीन कश्मीरी कविता' की भूमिका में लिखते हैं, ''आजाद ने भी अपनी कविता का प्रारंभ परंपरा के अनुसार ही किया, मगर उनके जीवन की कठोर घटनाओं ने उनकी संवेदनशीलता को प्रभावित किया और आखिर वे कश्मीरी भाषा के पहले क्रांतिकारी कवि बने।''[17] उनकी एक चर्चित कविता 'दरिया' इस अंदाज में रची गई है—

शिलाओं, धराधर कंदराओं,
घाटियों में चलता हूं मैं दिन-रात
न शाबाशी की कोई चिंता,
न इच्छा मौज-मस्ती की
हों चमगादड़ या बुलबुल हों,
सभी के वास्ते इक-सा
मैं पाता जिंदगी का हूं सोज
सदा ही चलते रहने में।

अब्दुल अहद आजाद इकबाल से प्रभावित थे। राहुल सांकृत्यायन की प्रेमनाथ बजाज द्वारा अनूदित पुस्तकें उर्दू में पढ़ीं तो उनसे विशेष प्रभाव ग्रहण किया। उनकी आकस्मिक मृत्यु के कारण उनकी कई रचनाएं अप्रकाशित रहीं, मगर बाद में समस्त आजाद-काव्य पर आधारित एक विशाल ग्रंथ 'कुल्लियाति आजाद' प्रकाशित किया गया।

उस युग के एक और महत्त्वपूर्ण कवि थे मास्टर जिंदा कौल (1884-1965)। वस्तुतः महजूर, आजाद और मास्टर जिंदा कौल की त्रिवेणी ने आधुनिकता का सूत्रपात किया। डॉ. शशिशेखर तोषखानी लिखते हैं कि ''मास्टर जी की विशिष्टता इस बात में है कि उन्होंने ईश्वर और मनुष्य के रागात्मक संबंधों को आधुनिक धरातल प्रदान किया।''[18]

कश्मीरी कविता के क्षितिज पर जब, दीनानाथ नादिम (1916-1988) प्रकट हुए तो

*(कश्मीरी से अनुवाद : डॉ. शशिशेखर तोषखानी)

उन्होंने विश्वव्यापी मानवीय सरोकारों से कश्मीरी कविता को परिचित कराया। प्रभाकर माचवे लिखते हैं कि ''कविवर श्री दीनानाथ 'नादिम' कश्मीरी भाषा में वही स्थान रखते हैं जो रूसी में माइकोवस्की, बांग्ला में काजी नजरूल इस्लाम और सुकांत भट्टाचार्य, उर्दू में जोश और फैज, मलयालम में वल्लतोल और हिंदी में निराला और मुक्तिबोध रखते हैं। वे 'रोमांटिक रिव्यूल्शनरी', स्वच्छंद विद्रोही कवि हैं, जिन्होंने कविता को जनोन्मुख बनाया।''[19] नादिम की कविताएं सभी को प्रभावित करती रहीं। लोग उन कविताओं को तब से अब तक गाते गुनगुनाते हैं–

तुम 'गुले लाला' हो मेरे गीतों पर
तुम्हारे ही रूप का रंग चढ़ा हुआ है,
लेकिन क्या तुम्हें मालूम है मेरे 'लाला'
मैं कैसे, रोते जीवन के घट को
मरते हुए तुम्हें मदिरा के रूप में लाया?
क्या तुम जानते हो : ऐ नन्हे-से फूल,
मैंने कैसे मृत्यु से बचा-छुपाकर तुम को
अपने छंदों में पिरोकर
अमर कर दिया?
और फिर वही गुनगुनाहट मेरे मुन्ने
के कपोलों पर भूख की आंच से
जो हल्की लाली उभर आई उससे मैंने
तुम्हारी लालिमा में और लाली भर दी।
वे अश्रुकण...जिनको गोद में झुलाया
उन्हीं से मैंने तेरे लिए शबनम का हार गूंथा।
मेरी घायल आकांक्षाओं से जो लहू टपका
उन बूंदों में तुम्हारा ही प्रतिबिंब मैंने झलकते देखा!
अपने कोमल मन की धड़कन और
हृदय के लाल रुधिर को मिलाकर
मैंने तुम्हारा अमिट नाता अपने शहीदों से बनाए रखा!*

नादिम की कविता में इंसान से प्यार, देशप्रेम, शांति और खुशहाली की बात होती है। कश्मीरी को पहली मुक्त छंद कविता (मैं नहीं गाऊंगा आज) उन्होंने ही दी है। इसके साथ ही उन्होंने ओपेरा, गजल, नज्म, रुबाई तथा सॉनेट लिखे। नादिम साहिब ने स्वयं एक साक्षात्कार में कहा है कि उन्होंने पहला ब्लैंकवर्स 'मेरा अफसाना' 1955 में लिखा था, ओपेरा 'बोंबर यम्बरजल' 1953 में लिखा था जिसका रूसी अनुवाद हुआ। इसके बाद 'नेकी त बदी' (नेकी और बदी), 'शुहुल कुल' (शीतल वृक्ष), 'मदन त जूल माल' (कामदेव और रति) और 'वितस्ता' नाम के ओपेरा भी लिखे। फिर 'हिमाल नागराय' लिखा, जिसमें नूर मोहम्मद रोशन ने उनको सहयोग दिया था। उनका पहला सॉनेट था 'चे छिय न लोलु म्याने याद तिम दोह' (मेरे मित्र! क्या तुम्हें वे दिन याद नहीं)। जहां

*(रूपांतर : कमलेश्वर)

तक उनकी भाषा का संबंध है, तो उसमें विस्तार किया और अपनी मिट्टी से जुड़े रहने वाले इस कवि ने जैसे बिंबों की रचना की वैसे शायद ही कोई दूसरा कश्मीरी कवि कर सका हो।

अब्दुल रहमान राही (1925) ने अपनी कविता को उसी दौर में लिखना शुरू किया, जिस दौर में नादिम की कविताओं की गूंज थी और वे भी उसी पथ पर चलने लगे, जिस पर नादिम चल रहे थे, परंतु शीघ्र ही उन्होंने अपनी एक निजी पहचान को विकसित किया।

कश्मीरी में कविता लिखने से पहले राही उर्दू में अपनी कलम चला चुके थे, मगर चिनार की गंध की तरह, अभिव्यक्ति के लिए मातृभाषा उन्हें अपनी ओर खींचती रही। कुछ समय तक प्रगतिशील लेखक संघ के साथ जुड़े रहे, फिर जब प्रगतिशील लेखकों की संस्था से नाता टूट गया तो आधुनिक कविता की उस पताका को आगे ले जाने लगे, जिसे दीनानाथ नादिम ने फहराया था। 1960 ई. से उनकी कविता में नए विचार नजर आने लगे। अपने काव्य-संग्रह 'नव रोजि सबा' (नई सुबह की हवा) में प्रचलित भावात्मकता की जगह बौद्धिक दृष्टि नजर आने लगी।

'नई कविता' के प्रमुख प्रस्तोता के रूप में राही शोषित लोगों के लिए नया संदेश लाते हैं तो आधुनिक जीवन की विसंगतियों को भी रेखांकित करते हैं–

वे सूखी नदी में डूब गए,
किसको क्या बताएं
हम भूख में जहरीली घास चबा गए...

'नस्री नज्म' के साथ ही उन्होंने कुछ कविताएं ड्रामेटिक मोनोलॉग (Dramatic Monologue) के रूप में भी लिखीं। अपने समकालीन कवियों मुहम्मद अमीन कामिल या गुलाम नबी फिराक की तरह वे गजलों और रोमांटिक भावुकता में ही उलझे नहीं रहे। न ही अपने समय के कुछ कवियों की तरह आध्यात्मिकता ही तलाशते रहे। राही आधुनिक जीवन की विषमताओं को प्रस्तुत करते हैं। उनकी चिंता प्रतीकात्मक बिंबों में भले ही छिपी हुई हो, मगर उनमें इंसान की लाचारगी का स्वर साफ सुनाई देता है–

आकाशीय शिखर मालाओं के ऊपर उड़ते सफेद पंछी
गहरे सब्जसायों में अनार रंग जुगनू
वह पाताल की मादक खुशबू
यह चीड़ की ऊपरी टहनी से गुजरने वाला झोंका
पारद लहर बन आकाश छू जाए
लहराएं तो हर तरफ बेरंग झंडे
गुस्सैल सिकंदर भड़क उठे
आक्रमण करते हलाकू पागल हो गए
न मैना न तोते की दुहाई
संसार एक जंगल
जिंदगी एक कू-कू
थेई-थेई
नाच री नाच बिन शरीर पवन

गूंज री गूंज
तेरी बेआवाज गूंज महक उठी है!*

राही मानते हैं कि आधुनिकता 'ऐतिहासिकता की एक निरंतर प्रक्रिया' है। यह जटिल भी है और इसके लिए एक नई भाषा भी चाहिए होती है। रहमान राही, इलियट, एजरा पाउंड तथा गालिब से प्रभावित रहे हैं तथा रसूल मीर, रहमान डार, शम्स फकीर, परमानंद, अहद जरगर, समद मीर, जिंदा कौल, महजूर, नादिम आदि से भी उन्हें प्ररेणा मिली है, मगर उन्होंने परंपरागत अलंकरण के विस्मय को छांट दिया। वे मानते हैं कि जीवन के यथार्थ और परिस्थितियों के आधार पर स्वतंत्र निरीक्षण आवश्यक है, इसलिए विवेचनात्मक प्रतिभा साहित्यकार के लिए जरूरी है।

समकालीन कविता का एक संकलन प्रस्तुत करते हुए अजीज हाजिनी बीसवीं सदी की प्रवृत्तियों जैसे भौतिकवाद, तर्कवाद आदि पर संदेह किए जाने और यांत्रिकीय विकास से मानसिक व मनोवैज्ञानिक समस्याएं पैदा होने के कारण लेखकों एवं कवियों द्वारा चीजों को नए नजरिए से देखने की बात करते हुए लिखते हैं कि ''इसीलिए कश्मीरी कवियों ने कविता की शैली में मूलभूत परिवर्तन शुरू किए और एक नया वातावरण पैदा हुआ।''[20] इस संकलन में महजूर से लेकर वर्तमान समय के कवियों शफी शौक, रफीक राज, नसीम शफाई, ब्रजनाथ बेताब, महफूजा जान, शाद रमजान, बिमला रैणा तथा शहजादा रफीक जैसे कवियों को शामिल किया गया है।

महजूर और वर्तमान के बीच कुछ और ऐसे कवि भी हैं जिनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है, जैसे—रसा जावदानी, गुलाम रसूल नाजकी, मिर्जा आरिफ बेग, गुलाम नबी फिराक, अमीन कामिल, शंभुनाथ भट्ट हलीम, वासुदेव रेह, गुलाम नबी ख्याल, अर्जुन देव मजबूर, हामिदी कश्मीरी, रशीद नाजकी, नाजी मुनव्वर, गुलाम नबी गौहर, मोतीलाल साकी, मरगूब बानहाली, चमन लाल चमन, मोहनलाल आश, फारूख नाजकी, मिशल सुल्तानपुरी, सैयद रसूल पोंपुर, शाहिद बडगामी, जरीफ अहमद जरीफ, मुहम्मद अहसन, प्रेमनाथ शाद, गुलाम मुहम्मद गमगीन, गुलाम नबी आतश, अयाज रसूल नाजकी, बशीर आरिफ, रुखसाना जबीन, अजीज हाजिनी, मजरूह रशीद, ओमकारनाथ शबनम, सुनीता रैणा पंडित, अशोक सराफ घायल, बशर बशीर, रोशनलाल रोशन तथा रविंद्र रवि और अन्य युवा कवि। कुछ पंक्तियों का अनुवाद उदाहरणस्वरूप नीचे दिया जा रहा है—

कोई खिला न सका चट्टानों में फूल यहां, हाय!
चैत की गर्जन नहीं, भादों की हवा नहीं, इस बस्ती में।
(अमीन कामिल)

केवल एक सुबह और एक शाम है जीवन तुम्हारा,
एक सुबह एक शाम ही सही, मगर एक जीवन तो है!
(गुलाम नबी फिराक)

ऐ मेरी नदी!
छीना किसने तेरा पानी?

*(रहमान राही की प्रतिनिधि कविताएं, संपादक : गौरीशंकर रैणा)

ऐ मेरे देवदार,
मत रो, तुम रहना सिर ऊंचा किए हुए।
मेरे घर की खिड़की है खुली
बिन घोंसले के अबाबील
झांक रही है। (अर्जुन देव मजबूर)

मालूम किसे था कि क्या हुआ शहर की सड़कों पर
दरवाजों पर किवाड़ थे, शाम से ही बर्फ पड़ रही थी
(हामिदी कश्मीरी)

मैं, किसी स्रोत के सार-सा उपेक्षित,
या फिर याद किया जाता हूं किसी पुराने किस्से जैसा।
(गुलाम नबी गौहर)

इस मकान में अजीब तरह के नेवले पनपने लगे हैं
जो अचानक निवासियों की आंखें बाहर निकालते हैं
एक ही प्रहार में मकान रक्त-रंजित हो जाता है।
(मोतीलाल साकी)

मेरे इंसान!
मैं वनमानुष हूं
मुझे कातिल न कह
मेरे रोम-रोम में हैं तेज नाखून,
दूसरे के खून को चाटने की चाह
मेरी फितरत यही है।
मैंने मां के खून के साथ-साथ
खूंखार पशुओं का रक्त पिया है। (चमन लाल चमन)

जब कोई साथ न था तेरे, नहीं जाना कि तू जाएगा
तुम गए अकेले यह पूछे बिना कि क्या तू भी आएगा
(शफी शौक)

अफसानों को फिर से सुनाने का वक्त होता
प्यार के कच्चे धागों को बांधने का वक्त होता।
एक पहर फुरसत का काश होता जिंदगानी में
वह पहर एक-दूसरे में खो जाने का होता॥ (नसीम शफाई)

राह के मुसाफिर का गंतव्य स्थान है उपवन
मगर पतझड़-सा हुआ है वसंत वहां
उड़ चुका है फूलों का रंग
शुष्क पड़े हैं पानी के चश्मे और रूठ गए हैं ऋषि सभी।
(अजीज हाजिनी)

पिछले कुछ वर्षों में पूर्व लिखित काव्य-रचनाएं भी प्रकाशित हुई हैं जैसे सरवानंद कौल प्रेमी द्वारा रचा 'कॉशुर रामायण' (कश्मीरी रामायण)। यह 1990 से पहले लिखा गया था, मगर अब 2018 में प्रकाशित हुआ है। यह कवि की मृत्यु के बाद उनके परिवार ने प्रकाशित करवाया है। यह सरल, सहज छंदों में रचा गया है तथा इसके आठ कांड हैं। यह 1910 में प्रकाशित प्रकाशराम कुरिगामी के रामायण से भिन्न है। इसमें गीतों का समावेश नहीं किया गया है बल्कि रामकथा एक निरंतरता में चलती है। सरवानंद प्रेमी ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' का भी उर्दू और कश्मीरी में अनुवाद किया है, मगर उर्दू अनुवाद ही प्रकाशित हो सका है। इसके अतिरिक्त कवि ने 'गीतांजली' का भी कश्मीरी में अनुवाद किया है तथा मौलिक कविताओं का एक संकलन भी 'पांचादर' (झरना) शीर्षक से प्रकाशित है। इनकी करीब 16 पुस्तकें प्रकाशित हैं और इतनी ही अप्रकाशित, जिसमें पुष्किन की कविताओं का अनुवाद भी शामिल है।

आधुनिक गद्य : कश्मीरी गद्य की आयु यद्यपि कम है, मगर इसका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। 1945 के आसपास जब 'इप्टा' की शुरुआत, श्रीनगर में हुई और पारसी रंगमंच के प्रभाव से निकलकर कुछ मौलिक नाटकों की जरूरत महसूस हुई तो प्रेमनाथ परदेसी ने कई नाटकों की रचना की। ये प्रारंभिक अवस्था के नाटक थे जिन्हें रंगमंच की प्रस्तुति हेतु रचा गया था, इनमें साहित्यिक महत्त्व की ऐसी कोई बात नहीं थी। महीउद्दीन हाजिनी का नाटक 'किसान का घर' यथार्थवादी ढंग का नाटक था। दीनानाथ नादिम ने कुछ गीत-नाट्य लिखे जिनमें (भंवरा और नरगिस) सर्वप्रथम है। यह नाटक 1953 में प्रस्तुत हुआ था। आगे चलकर उन्होंने 'हीमाल' और 'नागराय' एवं 'वितस्ता' जैसे गीत-नाट्यों की रचना की और फिर कश्मीरी के गद्यकार भी नाट्य रचना करने लगे। इनमें प्रमुख थे अख्तर महीउद्दीन, अवतार कृष्ण रहबर, हरिकृष्ण कौल, मोतीलाल क्यमू, पुष्कर भान, अली मुहम्मद लोन तथा मुहम्मद सुमहान भगत। आगे चलकर 70-80 के दशक में सजूद सैलानी, फारूक मसूदी, सोहनलाल कौल, गौरीशंकर रैणा तथा भूषण बेताब ने भी कश्मीरी नाटकों की रचना की।

अख्तर महीउद्दीन ने 'शीशॅ तॅ संगिस्थान' (शीशा और पत्थर), 'नस्ति होन्द सवाल' (नाक का सवाल) तथा 'आपन होर जंग' (आपा ने जंग हारी) जैसे नाटक लिखे, जो यथार्थवादी शैली के नाटक थे और मध्यवर्गीय कथाओं का नाटकीय पुनर्लेखन भी थे। कथाकार अख्तर महीउद्दीन ने अपनी ही कहानियों का रूपांतर किया था तथा एक-दो नाटक ही ऐसे रचे जो विशेष रूप से रंगमंच के लिए लिखे गए हों।

नाटककार-कहानीकार, अवतार कृष्ण रहबर रेडियो (आकाशवाणी) में प्रस्तुतकर्ता के तौर पर काम करते थे और वे रेडियो और रंगमंच दोनों के लिए नाटक लिखते थे। उनके नाटक पुराने नाटकों से बेहतर थे। उनके नाटक 'तलाश', 'बॅ धुस चूर' (मैं चोर हूं), 'वोलॅ हरिश (उलझाव) तथा 'अवलाद' (औलाद) सफल भी और लोकप्रिय भी रहे।

हरिकृष्ण कौल का नाटक 'नाटक करिव बंद' (नाटक बंद करो) एक सशक्त नाटक है, जो 'खामोश अदालत जारी है' की लीला बेणारे की तरह अन्याय और असत्य के विरुद्ध प्रश्न करता है। हरिकृष्ण कौल रेडियो और टेलीविजन के लिए भी लिखते रहे तथा उनका एक टेलीविजन नाटक 'दस्तार' (पगड़ी) इतना लोकप्रिय हुआ कि उसके संवादों को लोग, अपनी बात को असरदार तरीके से कहने के लिए इस्तेमाल करते।

मोती लाल क्यमू (1933-2018) ही केवल एक ऐसे नाटककार हैं जो 1966 से 2017 तक निरंतर नाटक लिखते रहे तथा भारतीय लोक तथा साहित्यिक तत्त्वों के समन्वय से कश्मीरी नाटक को श्रेष्ठतम कृतियां देते रहे। उनका पहला नाट्य संकलन 'त्रुनोव' 1966 में प्रकाशित हुआ जिसमें तीन नाटक संकलित थे। इस संकलन का एक सशक्त नाटक है 'मंजल्य निक' (पालने का पूत) जिसमें राजनीति को छल-बल से संचालित करने की तस्वीर प्रस्तुत की गई है। इसके बाद उनका एक और नाटक 'लल बो द्रायस लोलरे' (लल्ला मैं तो प्रेम दीवानी) आया जो समाज में स्त्री की दशा, व्यथा एवं उसकी स्थिति को रेखांकित करता है। कुछ वर्षों बाद उनके द्वारा एक ऐतिहासिक त्रासदी (छाया) के रूप में रची गई। 'छाया' ललितादित्य के समय की कथा को आज के समय से जोड़ते हुए मनुष्य के भय को उजागर करता है। फिर उनकी एक ओर 'नाट्य त्रयी' प्रकाशित होकर आई जिस पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। अगले दशक में भी क्यमूजी के लोक कथाओं पर आधारित नाटक आए परंतु विस्थापन के साथ ही उनके लेखन की दिशा कुछ बदली। उन्होंने 'डख येलि चलन' (भांड दुहाई) जैसा नाटक रचा जो यूनिवर्सल मदरहूड (Universal Motherhood) की बात करता है। इसको हिंदी में रूपांतरित कर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने देश भर में मंचित किया। इस नाटक के लिए उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार मिला। फिर उन्होंने 'शाह पाथर', 'हीमाल नागराय' जैसे नाटक लिखे, परंतु चार अंकों वाला नाटक 'नगर वोदॉस्य' (नगर उदास) सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'राजतरंगिणी' पर आधारित यह नाटक मानव संबंधों की एक त्रासद कथा है और साथ ही समकालीन मनुष्य को इतिहास का आईना दिखाता है। अपने नाटकों के बारे में उन्होंने स्वयं कहा है कि—''जीवन में पनपने वाली समस्याएं, तनाव, विरोध, मूल्यों का विघटन और सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक तनाव तथा दिनोंदिन घटित होनेवाली दुःखद एवं सुखद घटनाएं या हास्यास्पद स्थितियां, सब प्रेरणादायक हैं और मेरे नाटकों का आधार।'' उनका अंतिम नाटक 'विदूषिका' 2017 में प्रकाशित हुआ, जो नारी के आत्मसम्मान की बात करता है।

नाटककार पुष्कर भान मूलतः रेडियो के लिए नाटक लिखते थे। उनके हास्य नाटक रेडियो प्रसारण के कारण इतने लोकप्रिय हो गए थे कि रंगमंडलियों ने उन्हें मंच पर उतारा। 'अभिनव भारती', नाट्य-दल ने उनके नाटक 'मचामा' को सौ से भी अधिक बार मंच पर प्रस्तुत किया। यह नाटक घाटी के अनेक भागों में खेला गया और इसकी मनोरंजक प्रस्तुति के कारण लोग दूर-दूर से देखने आते। 'मचामा' का पात्र उन्हें हंसाता था। इस पात्र के संबंध में शशिशेखर तोषखानी कहते हैं कि ''मचामा हद से हद एक कैरिकेचर है जिसकी सृष्टि करते हुए लेखक की दृष्टि मनोरंजन की अवधारणा से आगे नहीं गई है।''[21]

अली मुहम्मद लोन भी पहले रेडियो के लिए ही नाटक लिखते थे, परंतु उन्होंने मंचीय नाटकों की विशेषताओं को समझकर अपने रेडियो नाटकों को मंच के लिए दोबारा लिखा, जैसे—'अगर गाश सोरि' (यदि रोशनी मंद हो!), 'आदम हव्वा तॅ इबलीस' (आदम हव्वा और इबलीस) तथा 'कंड्य सहराव तॅ वजूद' (कांटे, वीराना और अस्तित्व)। इन नाटकों के अतिरिक्त भी उन्होंने कई और नाटक लिखे परंतु 'सुय्या' ने उन्हें प्रतिष्ठा दिलाई। 'सुय्या' एक ऐतिहासिक नाटक है, जो लेखक के अनुसार यह दर्शाने की कोशिश करता है कि 'देवत्व के प्रभामंडल के पीछे

छिपे आदमी के व्यक्तित्व की विराटता' कैसी होती है। अली मुहम्मद लोन को इस नाट्य रचना के लिए साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला।

मुहम्मद सुमहान भगत ने कश्मीर की 'भांड' शैली के अंतर्गत कई नाटक लिखे। कुछ नाटक लोक कथाओं पर आधारित थे। उनके अधिकतर नाटकों में ग्रामीण जीवन की समस्याओं को दर्शाया गया है जिनमें आधुनिक तकनीक अपनाने की कोशिश हुई है। उन्होंने सात-आठ नाटक लिखे जिनमें से 'तकदीर' एक उल्लेखनीय कृति है, जिसके लिए उन्हें सम्मानित भी किया गया था।

सजूद सैलानी, फारूक मसूदी तथा अन्य नाटककार भी सामने आए, परंतु श्री मोतीलाल क्यमू, अली मोहम्मद लोन तथा अवतार कृष्ण रहबर को ही प्रकांड नाटककारों के रूप में उनके अत्यंत उल्लेखनीय नाटकों के लिए याद रखा जाएगा।

कश्मीरी भाषा में प्रकाशित दो कहानियां, 1950 में, 'कोंगपोश' (केसर के फूल) के मार्च अंक में प्रकाशित हुईं। एक कहानी 'जवाबी कार्ड' दीनानाथ नादिम द्वारा रचित थी तथा दूसरी 'येलि फोल गाश' (जब उजाला हुआ) सोमनाथ जुत्शी (1923-1966) ने लिखी थी। यद्यपि ये कहानियां मार्क्स प्रभावित विचारधारा के अंतर्गत रची गई थी; फिर भी इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। ये दोनों कथाकार 'प्रगतिशील लेखक संघ' की साप्ताहिक बैठकों में जाते तथा समाज के गरीब व परिश्रमी लोगों के कठिन जीवन का चित्रण अपनी रचनाओं में करते थे। नादिम ने 'जवाबी कार्ड' के बाद कुछेक कहानियां लिखीं, मगर आगे चलकर उन्होंने कविता को ही अपनाया तथा कश्मीरी कविता को एक नयापन प्रदान किया। मगर सोमनाथ जुत्शी लगातार कहानी लिखते रहे और शिल्प की दृष्टि से बाद के वर्षों में उनकी उत्कृष्ट कहानियां आईं जैसे—'एक रात का मेहमान', 'छुट छटक-छटक', 'गूंग महल' तथा 'यह कौन दुर्योधन'।

'छुट छटक-छटक' जैसी कहानी में घटनाएं, चरित्र तथा परिवेश Defamiliarise संसार की सृष्टि करते हैं। प्रत्येक वस्तु काफ्काई कल्पना-सी, भिन्न लगने लगती है। एक ऐसी अवस्था का प्रतीक, जो एक ही समय में स्थानीय और प्रभावी तथा अस्थानीय-सी भी लगती है। 'गूंग महल' की कथावस्तु एक पैराडॉक्स (Paradox) प्रस्तुत करती है—दास्तान की-सी संरचना। किसी एक या दूसरे व्यक्ति की कोई विशेष अवस्था प्रस्तुत करने के बजाय स्वयं इंसान के आदि और अंत के संघर्ष को, उद्वेलित करने वाली कहानी।''[22]

अख्तर महीउद्दीन (1928-2001), कश्मीरी के एक उल्लेखनीय कथाकार हैं। उनका पहला कहानी-संग्रह सथ संगर (सात शिखर) प्रकाशित होते ही खूब चर्चा में रहा तथा 1958 में इस के लिए उन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे अपने कथा शिल्प के साथ लगातार प्रयोग करते रहे और कश्मीरी कहानी को प्रगतिवाद के प्रारंभिक दौर से उन्होंने आगे बढ़ाया।

पचास और साठ के दशक में अली मुहम्मद लोन (1926-1987) एक प्रमुख कथाकार के रूप में सामने आए, जिनका ध्यान कहानी के रूप-विधान के साथ ही कश्मीरी समाज के परिवेश को अपनी कहानियों में उभारने की ओर गया, हालांकि उन्होंने नाटक भी लिखे, मगर उनकी कहानियां अधिक प्रभावशाली हैं। उस दौर में अमीन कामिल भी कहानियां लिखने लगे थे, परंतु वे कवि के रूप में ही स्वयं को सिद्ध कर पाए।

बंसी निर्दोष (1928-2005) रेडियो में काम करते हुए रेडियो के लिए नाटक लिखते थे, परंतु

एक नाटककार होने के साथ ही वे एक कहानीकार भी थे। कहानीकार के तौर पर उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। उनकी कहानियां समाज में संदेहशीलता और अविश्वास के कारण पैदा हुई स्थितियों को रेखांकित करती हैं तथा स्त्री-पुरुष के नाजुक संबंधों के दर्शाती हैं। उनके समकालीन कथाकार दीप कौल (1932) ने भी उनके कुछ वर्ष बाद साहित्य जगत् में प्रवेश किया था तथा अपनी कहानियों से पाठकों का ध्यान अपनी ओर खींचने में सफल रहे। उनकी एक कहानी 'सफर और हमसफर' एक महत्त्वपूर्ण कहानी है, जो आदमी के अकेलेपन के दर्द को बखूबी उजागर करती है। वे आज भी सक्रिय हैं और उनका एक नया कथा-संग्रह 2018 में आया जिसमें अनकी 8 कहानियां संगृहीत हैं।

अवतार कृष्ण रहबर (1933) का पहला कहानी संग्रह 'तोबरूक' (तबर्रुक) साठ के दशक में प्रकाशित हुआ था। वे नाटक की लिखते रहे और उनका दूसरा कहानी संग्रह 'येलि पर्द वोथ' (जब पर्दा उठ गया) 2014 में ही प्रकाशित हो पाया जिसमें 70 से 90 तक की और पिछले कुछ वर्षों में रची कहानियां शामिल हैं। इस कथा-संग्रह के लिए उन्हें 2018 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। वे आज भी लिख रहे हैं तथा इस समय उनका एक और कश्मीरी कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन है।

हरिकृष्ण कौल (1934-2009), हृदय कौल भारती (1937) तथा रतनलाल शांत अपनी उल्लेखनीय कहानियों के साथ 60-70 के दशक में, नई कहानी लेकर सामने आए। हरिकृष्ण कौल 'ताप' (धूप) कहानी को लेकर आए तो साहित्य जगत् में एक खलबली-सी मची, क्योंकि मध्यवर्गीय व्यक्ति की पीड़ा को उन्होंने कृति के माध्यम से सबके समक्ष व्यक्त किया। उन्होंने अपनी कहानियों में पीढ़ियों के द्वंद्व, व्यवस्था पर व्यंग्य तथा खो जाने के दर्द को उभारा है। कहानी संग्रह 'यह राजधानी' के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इसमें हरिकृष्ण कौल व्यक्ति के महानगर में आकर धुंधलके में खो जाने और कहीं का न रहने की व्यथा बयान करते हैं।

रतनलाल शांत (1938) ने 1967 में पहली कहानी 'छायि गिव्य' (परछाइयां) से कश्मीरी साहित्य में प्रवेश किया। उससे पहले वे हिंदी में लिखते थे। उनके तब से अब तक चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं तथा 2005 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। 'टूटन' उनकी ऐसी कहानी है जो विस्थापन साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें घर से बेघर हुए लोगों की शारीरिक पीड़ा के साथ ही, उनके कैंप में रहते हुए, मानसिक पीड़ा का दर्द व्यक्त हुआ है। उनका एक और कहानी संग्रह प्रकाशनाधीन है।

हृदय कौल भारती (1937) ने शुरू से ही अपने अफसाने को अलग ढंग से कहने का तरीका अपनाया। इन्होंने कहानी में डिसक्रिपटिव नैरेशन(descriptive narration) के बजाय प्रतीकात्मकता को प्राथमिकता दी तथा जीवन की पेचीदगियों को अपनी कृतियों का विषय बनाया। भारती 60 के दशक में एक प्रतिष्ठित कहानीकार के रूप में स्थापित हो चुके थे। अभी भी सक्रिय हैं तथा इनका एक नया कहानी संग्रह दो वर्ष पहले ही, 2018 में, 'तिलिस्म-ए-खानाबदोश' शीर्षक से आया है।

अस्सी-नब्बे के दशकों में तथा उसके बाद वर्तमान समय तक जिन कहानीकारों ने कहानी लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उनमें अवतार कृष्ण राजदान (1942), फारूक मसूदी (1947), गुलशन मजीद (1947), शम्सुद्दीन शमीम (1949), शफी शौक (1950), महीउद्दीन ऋषि (1951), रूप कृष्ण भट्ट (1951), गौरीशंकर रैणा (1954), निसार नसीम (1958), मजरूह रशीद (1958),

नासिर मनसूर (1958), मुश्ताक अहमद मुश्ताक (1961), सोहनलाल कौल (1961), महफूजा जान (1969) तथा कुछ युवा लेखक प्रमुख हैं, इनकी कहानियां अपनी अलग भाषा और रचनात्मक गुणों के कारण पाठक का ध्यान खींचकर उसके साथ संबंध स्थापित करने में सफल रही हैं।

उपन्यास कश्मीरी भाषा में बहुत कम लिखे गए हैं। डॉ. शशिशेखर तोषखानी के अनुसार पहला उपन्यास 'लीला' था, जो लाहौर से प्रकाशित त्रैमासिक 'बहारे कश्मीर' में किस्तों में छपा था। इसे प्रो. श्रीकंठ तोषखानी ने 1923 में रचा था। इसका उद्देश्य कश्मीरी हिंदू समाज में नारी की दयनीय स्थिति का उद्घाटन करना था। ''कथा-नायिका 'लीला' के माध्यम से लेखक ने समाज और परिवार के घुटन भरे वातावरण से मुक्ति के लिए कश्मीरी नारी की छटपटाहट को व्यक्त करने का प्रयास किया है।''[23]

इसके बाद हबीब कामरान ने 1947 में 'जात बुतराथ', अख्तर महीउद्दीन ने 1957 में 'दोद दग' (दुःख-दर्द) तथा कुछ वर्षों बाद 'जुव तॅ जोलानॅ' (जीव और जंजाल), अमीन कामिल ने 'गटि मंज गाश' (अंधकार में प्रकाश), अली मुहम्मद लोन ने 'अस्य तिछि इंसान (हम भी इंसान हैं), गुलाब नबी गोहर ने 'मुजरिम' (मुजरिम) व म्युल' (मेल) तथा एक-दो और उपन्यास, बंसी निर्दोष ने 'अख दोर' (एक दौर), अमर मालमोही ने 'त्रेश तॅ तर्पण' (तृष्णा और तर्पण), फिर कुछ छिटपुट उपन्यास आए तथा प्राण किशोर कौल द्वारा रचित 'शीन तॅ बतॅ पोद' (बर्फ और पगडंडी) 80-90 के दशक में प्रकाशित हुआ जिसके लिए लेखक को साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ।

हाल के वर्षों में, मक्खनलाल पंडित ने, 2014 में 'साज बोन्येन होंद' (चिनारों का संगीत) नाम से एक उपन्यास रचा है। सोहनलाल कौल ने भी अब तक चार उपन्यास लिखे हैं तथा 'गोनाह' (पाप) नाम का उपन्यास प्रकाशनाधीन है। तीन-चार वर्ष पहले एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास चमन लाल हक्खू ने लिखा, जो 1931 से 1948 की सामाजिक तथा राजनीतिक पृष्ठभूमि में दो व्यक्तियों के संघर्ष की कहानी कहता है। 'वस्तुरवनुक स्ह' (वस्तुर-वन के शेर) शीर्षक से, 667 पृष्ठों के इस बृहत् उपन्यास में दो पात्रों दीनानाथ और अहमद लोन की जद्दोजहद को व्यक्त किया गया है। यह अब तक का सबसे बड़ा और अर्थपूर्ण उपन्यास है।

इस समय कश्मीरी के वरिष्ठ लेखकों के साथ-साथ अनेक युवा लेखक साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हैं और साथ ही कुछ ऐसे भी लेखक हैं, जो लगातार दो भाषाओं में लिखते हैं; जैसे—कश्मीरी-हिंदी, कश्मीरी-उर्दू या कश्मीरी-अंग्रेजी। हिंदी-कश्मीरी में रचना करने वाले प्रमुख कवि हैं—अग्निशेखर, उन्होंने अधिकतर कविताएं हिंदी में लिखी हैं, परंतु कश्मीरी में भी रचना करते हैं। इसी तरह सतीश विमल हिंदी तथा कश्मीरी, दोनों भाषाओं में रचना करते हैं। घाटी तथा घाटी से बाहर कुछ युवा तथा मध्यावस्था में पहुंच चुके कवि, कहानीकारों तथा अन्य विधाओं में रचना करने वाले रचनाकारों ने प्रभावशाली लेखन किया है। इनमें कुछ प्रमुख नाम हैं—'फैयाज तिलगामी, राजेश कौल, यूसुफ जहांगीर, आबिद अशर्फ, शबनम तिलगामी, रिंकू कौल तथा ए.के. नाज।

निबंध लेखन में मुहम्मद जमां आजुर्दा, अब्दुल अहद, गुलाम नबी आतिश तथा के. एल. चौधरी का महत्त्वपूर्ण काम रहा है। आलोचना में मजरूह रशीद, शाकी शौद, रतनलाल तलाशी तथा शाद रमजान ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्रीनगर में जवाहरलाल कौल ने हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उल्लेखनीय कार्य किए।

कश्मीरी भाषा में एक हजार वर्ष पूर्व लिखित साहित्य उपलब्ध है। इस भाषा ने शैव-दर्शन, ऋषिमत, भक्तिवाद तथा सूफीमत को फलने-फूलने दिया। हर युग में नए-नए रचनाकारों ने इसमें नए आयाम जोड़े। कश्मीरी भाषा के साहित्य ने जहां काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि विधाओं का विकास किया, वहीं विश्वव्यापी मानवीय सरोकारों से परिचित कराया। उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले दिनों में और भी अच्छी रचनाओं से न केवल देश बल्कि विश्व के साहित्य में इस भाषा का योगदान रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ–

1. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 24, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
2. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद (2019). 'हिंदी साहित्य की भूमिका', पृ. 21, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 26, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
4. वही, पृ. 27
5. कौल, प्रो. जियालाल, 'ललद्यद', पृ. 329
6. वही, पृ. 37
7. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 51-52, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
8. वही, पृ. 73
9. शास्त्री, डॉ. शिवनाथ शर्मा, 'श्री रूपभवानी रहस्योपदेश', पृ. 9, जम्मू : अलख साहिबा ट्रस्ट।
10. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 91, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
11. राही, प्रो. रहमान, '40वां ज्ञानपीठ पुरस्कार समर्पण अभिभाषण'।
12. रैणा, शिबन कृष्ण (1975)। 'कश्मीरी रामावतारचरित', (भूमिका), पृ. 8, लखनऊ : भुवन वाणी ट्रस्ट।
13. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 151, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
14. वही, पृ. 198
15. वही, पृ. 240
16. वही, पृ. 249
17. हाजिनी, अजीज, 'समकालीन कश्मीरी कविता', (भूमिका)
18. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 257, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
19. सप्रू, प्रो. चमनलाल (संपादक), 'जन्मशताब्दी ग्रंथ-युगकवि दीनानाथ नादिम', पृ. 19
20. हाजिनी, अजीज, 'समकालीन कश्मीरी कविता', (भूमिका)।
21. तोषखानी, डॉ. शशिशेखर (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', पृ. 302, जम्मू : जे. एंड के. अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजेज।
22. राही, प्रो. रहमान, 'जब उजाला हुआ' (भूमिका), पृ. 9.।

□

डोगरी साहित्य का उद्‌भव और विकास

विनोद कुमार गुप्ता (निर्मल विनोद)

डुग्गर : भौगोलिक परिवेश एवं नामकरण—डुग्गर प्रदेश के नामकरण के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। इस संदर्भ में कतिपय विद्वानों ने दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न भी किया है।

शामलाल शर्मा 'डुग्गर' शब्द का संबंध वैदिक परंपरा के अंतर्गत प्रगाथ काण्व के पुत्र 'दुर्गह' से जोड़ते हैं।[1]

डॉ. बालकृष्ण शास्त्री इसे महाभारत के भीष्म पर्व के नवम् अध्याय के बावनवें श्लोक में व्यवहृत 'दुर्गाल' शब्द से संबंधित मानते हैं।[2] कुछ विद्वान ऐसे भी हैं, जो 'डुग्गर' शब्द को 'दुर्गर' से विकसित मानते हैं, जबकि कुछ अन्य 'दुर्गह', 'डूंगर', 'द्विगर्त', 'दुर्गा' या 'डगार' से।

'द्विगर्त' के पक्षधर विद्वान, जम्मू से कुछ किलोमीटर दूर स्थित दो झीलों—सरुईंसर और मानसर को इसका आधार बताते हैं। ये झीलें एक-दूसरे से लगभग 16 किलोमीटर दूर हैं। दो झीलें अर्थात् 'दो गत्त' (द्विगर्त < डुगत्त < डुगट्‌र < डुग्गड़ < डुग्गर)।[3]

यूनानी ज्योतिषी पुलोमी (105 ई.) और सेंट मार्टिन के अनुसार डुग्गर का पुराना नाम 'डगार' है। सर आरेल स्टीन पथरीली, ऊबड़-खाबड़ भौगोलिक स्थितियों में रहने वाले मेहनतकश लोगों की कठिन जीवन-शैली के चलते 'दुर्गर' से ही 'डुग्गर' शब्द का विकास मानते हैं। दुर्गर का एक अर्थ कठिनाई से जीता जाने वाला भू-भाग भी होता है।

डॉ. बालकृष्ण शास्त्री डुग्गर के व्युत्पत्ति पर विचार व्यक्त करते हुए जो मत प्रकट करते हैं, वह इसप्रकार है—दुर्गर < दुग्गर < डुग्गड़ < डुग्गर। सर स्टीन और डॉ. शास्त्री का मत अपेक्षाकृत अधिक वजनी और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से भी यथार्थ प्रतीत होता है। डुग्गर प्रदेश से अभिप्रेत रावी और चिनाब नदियों का मध्यवर्ती भू-भाग है, जिसके डोगरा वीरों की अत्यधिक धाक रही है। उल्लेखनीय है कि चंबा के एक राजा दुर्गेश्वर (1060-1080 ई.) द्वारा प्रदत्त एक ताम्र-पत्र में 'दुर्गर' शब्द अंकित है। इस संदर्भ में एक मान्यता 'दुर्गेश्वर' से संबंधित है; 'दुर्गेश्वर' अर्थात् 'दुर्गर का राजा'। 'दुर्गर' से 'डुग्गर' बना और दुर्गर के निवासी अर्थात् 'दौर्गर'। बाद में सह 'दौर्गर' ही 'डोगरा' बना। दुर्दम- दुर्जेय डोगरों को सेना में भर्ती करने के लिए अंग्रेजों ने डुग्गर प्रदेश को दो भागों में बांटा—1. पूर्वी डुग्गर और 2. पश्चिमी डुग्गर।

1. पूर्वी डुग्गर : इसमें तत्कालीन पंजाब के कांगड़ा, कुल्लू, होशियारपुर और गुरदासपुर के जिले और मंडी-सुकेत तथा बिलासपुर की पहाड़ी रियासतें शामिल थीं। इस बांट की हदबंदी

इसप्रकार बनती है—पश्चिम में रावी नदी, उत्तर में धौलाधार और ऊंचे हिमालय पर्वत की पहाड़ियां, पूर्व में सतलज नदी और दक्षिण में रोपड़ से वाया होशियापुर, गुरदासपुर तक खींची रेखा।

2. पश्चिमी डुग्गर : इस भाग में जम्मू-कश्मीर का सूबा जम्मू, चंबा रियासत और रावी नदी के पश्चिम में गुरदासपुर, सियालकोट जिले के कुछ हिस्से। इसकी हदबंदी के अनुसार पश्चिम की ओर मनावर तवी, उत्तर में पीर पंजाल, पूर्व में रावी और दक्षिण में लाहौर-सियालकोट तक खींची रेखा।

डुग्गर भूमि के तीन प्रकार के खंड हैं—1. उच्च पर्वतीय क्षेत्र, 2. कंढी क्षेत्र जिसमें छोटी पहाड़ियां और बंजर टेकरियां-टिब्बे हैं और 3. शिवालिक पहाड़ियों के चरणों में मैदानी क्षेत्र। पहाड़ी क्षेत्र अनेक जगहों पर खुश्क तथा बंजर है। विभिन्न स्थानों पर हरा-भरा है, जिसमें जहां-तहां नदियां-नाले, सर और बावड़ियां हैं। उधमपुर, रियासी, रामनगर, रामबन, चंबा, धर्मशाला, कुल्लू आदि इस इलाके के प्रमुख नगर-कस्बे हैं।

कंढ़ी क्षेत्र चट्टानी है जिसमें खड्ड-कुएं, बावलियां ऊंची-नीची चढ़ाइयां-ढलानें आदि हैं। इस क्षेत्र में पानी की बहुत कमी रहती है। कांगड़ा, बसोहली, नूरपुर, सांबा, जम्मू, अखनूर, कंढी के कुछ मुख्य नगर-कस्बे हैं। मैदानी इलाकों में नदियां-नाले-नहरें होने के कारण उपज अच्छी होती है। रणबीर सिंह पुरा, कठुआ, पठानकोट, गुरदासपुर, होशियारपुर मैदानी क्षेत्रों के मुख्य नगर हैं।

जहां मैदानी क्षेत्रों में प्रायः राजनीतिक, युद्धक हलचलों की बहुतायत रहती आई है, वहीं पहाड़ी क्षेत्रों के इन सभी प्रकार की हलचलों से दूर तथा वातावरण के अपेक्षाकृत शांत रहने और प्राकृतिक सौंदर्य से युक्त होने से, कला के विकास के लिए उपयुक्त परिवेश मिला। यहां चित्रकारी की दृष्टि से श्लाघनीय कार्य हुआ। बसोहली कलम, कांगड़ा कलम, गुलेर कलम, पुंछ कलम और जम्मू कलम, वास्तव में वे आर्ट-स्कूल हैं जिनसे जुड़े कलाकारों ने दुनिया भर में नाम कमाया, जिनका काम देश-विदेश के संग्रहालयों और कला-वीथियों की शोभा बना हुआ है।

डुग्गर के डोगरे : डुग्गर प्रदेश के निवासी डोगरे, अपनी वीरता, शौर्य और पराक्रम के लिए विश्व भर में जाने ही जाते हैं। उनका अवदान कला के क्षेत्र में भी श्लाघनीय है। वस्तुतः सरल-सहज स्वभाव के डोगरे सादगी, शूरवीरता और पहाड़ी चित्रकला—इन तीन गुणों के लिए प्रसिद्ध हैं। ईसा पूर्व 323 में, सिकंदर बादशाह के साथ भारत आए ज्योतिर्विद 'पुलोमी' ने शिवालिक पर्वतीय शृंखला में बसने वाली एक बहादुर कौम 'डोगरस' की चर्चा की है, परंतु इसके कोई पक्के सबूत उपलब्ध नहीं हैं कि वह 'डोगरस' डोगरा कौम ही थी।

''डोगरे आर्य जाति से संबंधित हैं। गेहुआं वर्ण, तीखे-तराशे नयन-नक्श, मध्यम कद-काठी और सरल स्वभाव के हैं ये लोग। ये बहादुर, हिम्मती, निडर, कठिनाइयों में पलने-बढ़ने के अभ्यस्त, सत्यनिष्ठ, सूझ-बूझ वाले, आज्ञाकारी, परंपराबद्ध, सरल-भोले, कठिन-कठोर श्रम करते हुए भी हंसने के आदी, परंतु स्वाभिमानी हैं। डोगरा वीर सैनिकों का इतिहास उज्ज्वल और गौरवपूर्ण है।''[4]

जम्मू की धरती से डोगरों का संबंध कब से है, इसका ऐतिहासिक लेखा-जोखा करने बैठें तो निराशा ही हाथ लग सकती है, परंतु प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो. सुखदेव सिंह चाड़क[5] के तद्विषयक कथन का अभिप्राय प्रो. रामनाथ शास्त्री[6] द्वारा इन शब्दों में व्यक्त किया गया है—''जम्मू को यह गौरव प्राप्त है कि यह डोगरा राज्य की पहली राजधानी था। चौदहवीं सदी ई. के उत्तरार्द्ध में राजा मालदेव

ने बब्बापुर (बबोर) में अपनी राजधानी छोड़कर जम्मू में प्रशासन केंद्र स्थापित किया था। जम्मू बहुत समय तक एक मामूली गांव के तौर पर कायम रहने के बाद चौदहवीं सदी में जाकर एक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया।

प्रो. चाड़क के अनुसार जम्मू का पहला राजा मालदेव था, जिसका राजतिलक ई. सन् 1360 में हुआ। देव वंश के 11-12 राजा जम्मू की राजगद्दी पर बैठे। यह सिलसिला 460 वर्षों तक चलता रहा। निरक्षर राजा, निरक्षर प्रजा का दौर रहा। राज्य की ओर से शिक्षा का भी कोई प्रबंध नहीं किया गया। कहीं कोई लिखित प्रमाण नहीं। लगता यही है कि राजा के सामने मुआमलों की सुनवाई भी मौखिक ही होती रही और फैसले भी वैसे ही सुनाए जाते रहे। (इस संबंध में हमारा विनम्र निवेदन है कि प्रो. चाड़क का यह कथन अत्युक्तिपूर्ण है) शिक्षा की समुचित व्यवस्था की बात तो अवश्य समझी जा सकती है, परंतु राजा और तत्कालीन समस्त समाज के निरक्षर होने की बात समझ से बाहर है। तब जबकि मठ-मंदिरों-आश्रमों और मस्जिदों जैसे स्थानों पर, पंडित-मौलवियों द्वारा पढ़ाई का चलन सारे देश में था ही, डुग्गर प्रदेश को पूरी तरह निरक्षर करार दे देना विचित्र-सा लगता है। यहीं हम इस सुविदित तथ्य की ओर भी संकेत कर देना चाहते हैं कि डुग्गर प्रदेश में भी संस्कृत में पठन-पाठन और ग्रंथ-लेखन अवश्य हुआ है और इसे नकारे जाने का कोई औचित्य भी दिखाई नहीं देता। हां, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि इतिहास-लेखन और तथ्यांकन की परंपरा हमारे देश में वैसी कभी नहीं रही, जैसी मुस्लिम शासकों के यहां तथा पश्चिम में रही। प्रमाण मिलता है तो मात्र राजा रंजीत देव (1725-1780 ई.) के दौर का।

राजा रंजीत देव के शासन-काल में, मिथिला प्रदेश के श्री सूर्यनारायण नामक विद्वान के डुग्गर प्रदेश में आगमन और भड्डू राज्यांतर्गत सुकराला देवी नामक तीर्थ स्थान पर साधना करने के साथ-साथ कुछ बालकों को ब्रज भाषा और संस्कृत पढ़ाने का उल्लेख मिलता है। इन्हीं बालकों में से एक थे देवीदत्त भड़वाल, जो आगे चलकर कविदत्त/दत्तू कवि के नाम से प्रसिद्ध हुए। बालक देवीदत्त को भाग्यवान ही माना जा सकता है कि उन्हें शिक्षा देने के लिए मिथिलावासी गुरु मानो स्वयं ही आ पहुंचे थे। इसके बाद का लगभग डेढ़ सौ वर्षों का कालखंड ऐसा ही था, जिसमें पठन-पाठन का फिर से कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। 1856-57 ई. में राजा रणबीर सिंह का राज्याभिषेक हुआ। वे यद्यपि मात्र डोगरी पढ़ने-लिखने वाले ही थे, तथापि उन्होंने पहले जम्मू और फिर श्रीनगर में एक-एक हाई स्कूल खोला और श्री रघुनाथ मंदिर, जम्मू में संस्कृत में प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री परीक्षाओं के लिए पाठशाला स्थापित की। इन तीनों कक्षाओं के विद्यार्थी पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर के परीक्षार्थी रहे। रणबीर सिंह 28 वर्ष तक राजा रहे। उनके पश्चात् श्री प्रताप सिंह राजा बने, जिन्होंने जम्मू में 'प्रिंस ऑफ वेल्ज' कॉलेज की स्थापना की। एक कॉलेज श्रीनगर में भी खोला गया।

उल्लेखनीय है कि महाराजा रणबीर सिंह ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ शिक्षा संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य भी किए, जैसे ओरियंटल अनुवाद केंद्र; जिसके माध्यम से ज्ञान-विज्ञान एवं कलाओं से संबंधित पाश्चात्य साहित्य का हिंदी, उर्दू, फारसी, संस्कृत और डोगरी में अनुवाद करवा कर इन भाषाओं को ज्ञान के साहित्य की दृष्टि से समृद्ध करने और जनता को उपलब्ध करवाने का प्रयास; श्री रघुनाथ मंदिर, जम्मू में संस्कृत पुस्तकालय की स्थापना, जिसमें देश के विभिन्न स्थानों से हस्तलिखित पांडुलिपियों को खरीद लाने और सहेजने की व्यवस्था रही; 'विद्या

विलास' नामक विद्वत्मंडल की स्थापना; विद्या विलास मुद्रणालय की व्यवस्था; डोगरी भाषा की टाकरी लिपि में हिंदी की मात्राओं की तर्ज पर सुधार; डोगरी को राजभाषा घोषित करना आदि-आदि। बाद में महाराजा प्रताप सिंह के आदेश पर श्री रघुनाथ मंदिर, जम्मू स्थित संस्कृत पुस्तकालय में एकत्रित की गई। सभी संस्कृत पांडुलिपियों को सूचीबद्ध करने का काम डॉ. सर ऑरेल स्टाइन को सौंपा गया। ये वही विद्वान थे जिन्होंने संस्कृत भाषा के कवि कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया था। अस्तु! महाराज प्रताप सिंह ने महाराजा रणबीर सिंह द्वारा प्रारंभ सारस्वत यज्ञ को जारी रखने में योगदान अवश्य दिया।

डोगरी भाषा और बोलियां : डोगरी, आर्य भाषा परिवार के अंतर्गत शौरसेनी प्राकृत से विकसित बड़ी बेटी के रूप में मान्य है, यद्यपि विभिन्न विद्वानों के अपने-अपने मत तथा तर्क हैं।

डॉ. वेदकुमारी घई डोगरी को खश अपभ्रंश से विकसित मानती हैं। डॉ. बालकृष्ण शास्त्री के विचारानुसार यह शौरसेनी प्राकृत से विकसित भाषा है, जिस पर खश, टक्क, कैकेय और पैशाची अपभ्रंशों का प्रभाव है।

आचार्य किशोरी दास वाजपेयी के मतानुसार आज की डोगरी डुग्गर प्रदेश में प्रचलित रही किसी भिन्न प्राकृत से विकसित है। प्रो. नीलांबर देव शर्मा की मान्यता है कि इस भाषा का मूल वह भाषा-परिवार है, जिससे संस्कृत का विकास हुआ। कतिपय विद्वानों का मत यह भी है कि, यह भाषा उस पहाड़ी प्राकृत का उन्नत रूप है, जो लुप्त हो चुकी है। अस्तु! तथ्य यही है कि डोगरी आर्य भाषा परिवार की वह बेटी है, जो सीमांत पहाड़ी डुग्गर प्रदेश की स्वतंत्र और प्रमुख भाषा के रूप में मान्य रही है।

डोगरी भाषा और बोलियां : कतिपय साक्ष्य : डोगरी भाषा के ऐतिहासिक महत्त्व का सर्वप्रथम उल्लेख, सन् 1317 ई. का है। यह अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) की कृति 'नूह-ए-सिपहर' के तीसरे अध्याय में द्रष्टव्य है। खुसरो का कथन है—

'सिंधी ओ लाहौरी ओ कश्मीरी ओ डूगर' सिंधी, कश्मीरी, लाहौरी भाषाओं के साथ डूगर के उल्लेख का अभिप्राय डुग्गर प्रदेश की भाषा से ही है, इसे सहज ही समझा जा सकता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि इलियट कृत 'History of India' में इसे व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि मैं (अमीर खुसरो) हिंदोस्तान का निवासी हूं और हिंदोस्तान में बोली जाने वाली सभी प्रमुख भाषाओं की स्तुति करता हूं। प्रश्न किया जा सकता है कि 'डुकर' कहा गया है, डोगरी तो नहीं। इस संदर्भ में 'History of India' के पृ. 563-564 पर इलियट ने मानो इस प्रश्न का उत्तर भी दे दिया है। शब्द ध्यान देने योग्य हैं, कश्मीर और लाहौर के बीच का स्थान अथवा झेलम और चिनाब के मध्यवर्ती क्षेत्र को 'डुगर' कहा गया है।

डुग्गर के बाईस राज्यों की यही मान्य भाषा थी—

बाई राज पहाड़ है, जुतु सो सरदार।
हंबीरदेव जंबू पति, रघुवंस को सार ॥

राज्यों की सीमाओं में समय-समय पर हेर-फेर होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। ऐसे ही 'कोस-कोस पर पानी बदले चार कोस पर बानी' जैसे कथन भी समाज में सुने ही जाते हैं। उक्त 22 राज्यों में से, रावी के आर-पार, ग्यारह-ग्यारह राज्य थे। 22 राज्यों के प्रदेश को बृहत्तर डुग्गर माना

जा सकता है, जिसकी भाषा डोगरी ही थी, हालांकि यहां की विभिन्न बोलियों में दूरी बढ़ने के साथ-साथ कुछ भिन्नताएं भी देखी जा सकती हैं। डुग्गर के बाईस राज्य हैं—कोट कांगड़ा, मंडी, सुकेत, कुल्लू, जसुआं, दतारपुर, भगाल, गुलेर, नूरपुर, सीबा, कुटलाहड़, रावी के उस पार और जंबुपुर, लखनपुर, मनकोट, जसरोटा, चनैनी, भडुआ, चंबा, भूती, बिलावर, भद्रवाह और बंधरालता इस पार थे।

अमीर खुसरो के बाद डोगरी के संबंध में उल्लेख विषयक एक लंबा अंतराल रहा, किंतु सन् 1816 में ईसाई मिशनरी केरी ने भारतीय भाषाओं की जो सूची तैयार की, उसमें डोगरी भी सम्मिलित रही। सन् 1867 में आधुनिक भारतीय आर्याई भाषा-विज्ञान के विद्वान जॉन बीम्स ने अपने आलेख, 'आउटलाइंस ऑफ इंडियन फिलॉलोजी' में डोगरी को उन ग्यारह भाषाओं में सम्मिलित किया जो भारतीय-जर्मन परिवार की आर्य शाखा में आती हैं। ये ग्यारह भाषाएं हैं—हिंदी, बंगाली, पंजाबी, सिंधी, मराठी, गुजराती, नेपाली, ओड़िया, असमिया, कश्मीरी और डोगरी। डोगरी भाषा और उसकी बोलियों के विषय में बीम्स का कथन है कि डोगरी और उसकी उपबोलियों का क्षेत्र पंजाब और कश्मीर घाटी के बीच का पहाड़ी इलाका है। इस भाषा की लिपि टाकरी थी जिसकी वर्णमाला में महाराजा रणबीर सिंह के राज्य काल (1856-1885) में सुधार करके 'नमें डोगरी अक्खर' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। टाकरी समस्त पंजाब, डुग्गर और कश्मीर में दसवीं शती में प्रचलित थी जिसमें से बाद में कश्मीर की ओर शारदा लिपि और पंजाबी की गुरमुखी लिपि का विकास हुआ है।

सर्वविदित है कि आधुनिक भाषा-विज्ञानियों के अनुसार राजस्थानी से असमिया तक की जितनी भी बोलियां हैं, ये सभी आठ-नौ सौ साल से पुरानी नहीं हैं। संस्कृत थी—वैदिक संस्कृत, फिर लौकिक संस्कृत, फिर प्राकृत और फिर अपभ्रंश का युग आया और उसके बाद हमारी आधुनिक भाषाएं हिंदी, डोगरी, पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, बांग्ला, मराठी आदि का चलन प्रारंभ होता है। ये 800-900 वर्ष से पुरानी नहीं हैं और सभी बहनें हैं। सन् 1360 में जो राज्य बना, उसे बने लगभग सात सौ वर्ष हो चुके हैं। अमीर खुसरो ने 1317 में यदि आधुनिक भाषाओं का जिक्र किया है तो माना जा सकता है, उसके समय से कम से कम सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले ये भाषाएं अस्तित्व में आ चुकी थीं।

ग्रियर्सन के अनुसार डुग्गर में बोली जाने वाली बोलियां इसप्रकार हैं—

1. **डोगरी :** यह जम्मू और आस-पास के क्षेत्रों की बोली है जिसके क्षेत्र में जफरवाल तहसील के 116 गांव, बजवात, गुरदासपुर जिले की छोटी पहाड़ियां और उसके निकटवर्ती मैदान तथा रियासत चंबा के कुछ भाग भी शामिल हैं।

2. **कंडयाली :** गुरदासपुर के उत्तर-पूर्व के पहाड़ी क्षेत्र तथा शाहपुर कंढी की बोली है।

3. **कांगड़ी :** कांगड़ा जिले की यह बोली डोगरी, पंजाबी, पहाड़ी की मिश्रित-सी बोली है जिसमें ग्रियर्सन ने कश्मीरी का कुछ अंश होने की बात भी कही। यह चंबा राज्य में प्रचलित टाकरी लिपि में लिखी जाती थी।

4. **भाटियाली :** यह जम्मू-कश्मीर राज्य से लगती पुरानी चंबा रियासत के पश्चिमी भाग में बोली जाती है और डोगरी वाली टाकरी लिपि में ही लिखी जाती थी।

5. **सिरमौरी :** यह सिरमौर के जुब्बल की बोली है। उसका लेखन टाकरी लिपि के ही एक प्रकार में होता था।

6. बघाटी : यह सिरमौर से मेल खाती है और बघाट तथ शिमला के दक्षिण-पश्चिम में बोली जाती है।

7. क्योंथली : यह क्योंथल शिमला के आस-पास की बोली है।

8. कुल्लुई : यह कुल्लू क्षेत्र की बोली है।

9 मंडयाली : यह बोली मंडी और सुकेत में प्रचलित तथा पश्चिमी पहाड़ी से अधिक साम्य लिये हुए है। इसकी लिपि भी टाकरी है।

10. चम्याली : यह भद्रवाही, कुल्लुई और जम्मू की डोगरी का मिला-जुला रूप है। इसकी चार उपबोलियां हैं–

(अ) ठेठ चम्याली–यह चंबा वजारत की बोली है।

(आ) भरमौरी–यह भरमौरी क्षेत्र या गद्दी भरमौर वजारत में बोली जाती है।

(इ) चूड़ही–चूड़हा वजारत में प्रचलित है।

(ई) पंगवाली–यह पांगी घाटी की बोली है। चम्याली और इसमें काफी अंतर द्रष्टव्य है।

11. कल्हूरी : यह होशियारपुर जिले की उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों, बिलासपुर, कल्हूर में बोली जाती है। इसे बिलासपुरी भी कहा जाता है।

12. भद्रवाही : यह भद्रवाह क्षेत्र की बोली है।

13. गोजरी : यह डुग्गर के पहाड़ों में बसे गुर्जरों की बोली है।

14. रामपुरी : इसमें कश्मीरी का कुछ अंश भी है।

15. पोंगली : रामपुरी की भांति यह भी कश्मीरी से प्रभावित है।

16. होशियारपुरी पहाड़ी : यह होशियारपुर के पहाड़ी इलाकों की बोली है। यह कांगड़ी और दोआबी का मिश्रित-सा रूप लिये है।

17. लैंह्दा : पुंछ, राजौरी, भिंबर और नौशहरा में बोली जाती है।

उल्लेखनीय है कि, डोगरी, कंडयाली, कांगड़ी और भटयाली में परस्पर बहुत साम्य है। ग्रियर्सन मे कंडयाली, कांगड़ी और भटयाली को डोगरी की उपबोलियां बताया है। भटयाली और डोगरी की एक ही टाकरी लिपि रही। कंडयाली की अलग से कोई लिपि न होने से यह भी जम्मू की टाकरी में लिखी जाती थी, परंतु कांगड़ी के लिए चम्याली वाली टाकरी ही प्रचलित थी।

19वीं शताब्दी में कनिंघम ने इन बोलियों के लिए टाकरी का प्रयोग होते देखा था। 18वीं और 19वीं शताब्दी में डोगरी के लिए टाकरी ही प्रयुक्त होती थी, परंतु साहित्यिक रचनाओं और अनुवाद कार्य के लिए देवनागरी लिपि का उपयोग होता रहा।

ग्रियर्सन का सर्वे निर्दोष नहीं माना जाता, अतः उसके निर्णयों पर आपत्तियां होना स्वाभाविक है।

ग्रियर्सन बनाम सिद्धेश्वर वर्मा : ग्रियर्सन ने डोगरी को पंजाबी को उपबोली माना था, परंतु सन् 1915 से 1943 तक जम्मू के प्रिंस ऑफ वेल्ज कॉलेज (संप्रति गवर्नमेंट गांधी मेमोरियल साइंस कॉलेज) में संस्कृत के प्रोफेसर रहे, भाषा-विज्ञानी, श्रीयुत् सिद्धेश्वर वर्मा ने अपने शोध के आधार पर ग्रियर्सन के फतवे को निरस्त कर, डोगरी को स्वतंत्र सीमावर्ती भाषा करार दिया।

इसमें संदेह नहीं कि ग्रियर्सन का सर्वे अपनी तरह का अकेला ऐसा काम है, परंतु विडंबना

तो देखिए कि पूरी सदी बीत जाने के बाद भी हमारे पास ऐसा दूसरा, सर्वे आधारित काम नहीं है। यद्यपि सन् 2006-2007 में जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी, दिल्ली और सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडियन लैंग्वेजेज, मैसूर की ओर से बड़े स्तर पर भाषाई सर्वे का काम हाथ में लेने की योजना बनाई गई थी, किन्हीं अज्ञात कारणों से संबंधित मंत्रालय द्वारा इतनी महत्त्वपूर्ण योजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया था, जहां वह दम तोड़ चुकी है।

ग्रियर्सन के 'डाटा-कलेक्शन' की निश्चित सीमाएं रही हैं। इस कार्य के दौरान किसी स्थान पर दो-एक दिन रुकना और किसी अहलकार से कहकर उनके 'प्यादों' द्वारा सामग्री संग्रहण करना कितना दोषपूर्ण रहा, इसका उदाहरण यह है कि ग्रियर्सन के पास जो तथाकथित डोगरी गीत पहुंचा, वह वस्तुतः पंजाबी गीत और शब्द ऐसे थे, जो डुग्गर क्षेत्र में कभी भी बोलने-सुनने में नहीं आते।

ग्रियर्सन ने चम्याली, कल्हूरी, मंडयाली, कुल्लूई, भद्रवाही, गोजरी आदि को पश्चिमी पहाड़ी की बोलियां तथा लैंह्दा और होशियारपुरी को पंजाबी पहाड़ी की उपबोलियां करार दिया, परंतु डोगरी-पहाड़ी के निकट होने से इनमें भी डोगरी-पहाड़ी के कुछ अंश होने की बात कही। उधर डुग्गर क्षेत्र की भद्रवाही, पोगली, सिराजी, खासी आदि कुछ ऐसी बोलियां हैं, जिसमें देशज शब्दों की विशेषता तो है ही, डोगरी के अंश भी विद्यमान हैं। कुछ प्रभाव कश्मीरी का भी संभव हो सकता है, जबकि भद्रवाह के अनेक नागरिक कश्मीरी अंशों का प्रभाव होने के पक्ष में नहीं हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि अधिकारी विद्वानों को सर्वे कार्य के लिए नियुक्त किया जाए।

डोगरी भाषा व बोलियों की लिपि : डोगरी और उसकी बोलियां टाकरी लिपि में लिखी जाती रही हैं। टाकरी समस्त पंजाब, डुग्गर और कश्मीर में दसवीं शताब्दी तक प्रचलित रही, ऐसी विद्वानों की मान्यता है। माना जाता है कि बाद में कश्मीर की ओर शारदा लिपि और पंजाब की ओर गुरुमुखी का विकास हुआ।

कनिंघम ने उन्नीसवीं शताब्दी में डुग्गर की बोलियों के लिए टाकरी लिपि का प्रयोग होते देखा था। ईसा की अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में टाकरी के प्रयुक्त होने के प्रमाण उपलब्ध हैं, जहां यह बात ठीक है, वहीं यह भी ध्यातव्य है कि साहित्यिक रचनाओं और अनुवाद कार्य के लिए देवनागरी का ही प्रयोग होता रहा। डोगरी की कुछ बोलियों/उपबोलियों को टाकरी के विभिन्न रूपों में लिखा जाता था।

वर्तमान में डोगरी में साहित्य-लेखन के लिए देवनागरी और शाहमुखी (फारसी)—ये दो लिपियां मान्य हैं, परंतु अधिकतम साहित्य देवनागरी में ही लिखा जा रहा है। यद्यपि महाराजा रणबीर सिंह के शासनकाल में डोगरी के लिए टाकरी लिपि में संशोधन किए गए थे, तथापि उक्त लिपि के चलने में नहीं रह जाने के कारण विद्वानों ने डोगरी को देवनागरी में ही लिखने के पक्ष में निर्णय लिया।

वस्तुतः टाकरी लिपि आठ सदियों से अधिक समय से चलन में रही। इसके अधिकतर वर्ण दसवीं-ग्यारहवीं सदी तक निश्चित हो चुके थे। इस बात का प्रमाण कुल्लू और चंबा से प्राप्त हुए ताम्रपत्रों से मिलता है। ग्रियर्सन के अनुसार शारदा और टाकरी एक ही लिपि से निकली हैं, जबकि व्हूलर टाकरी तथा उससे संबंधित अन्य लिपियों को भी शारदा लिपि से ही विकसित मानते हैं। व्हूलर के मतानुसार शारदा लिपि अधिक पुरानी है।

भारत में विकसित होने वाली सर्वाधिक पुरातन लिपि ब्राह्मी है। डॉ. बाबूराम सक्सेना का कथन है कि यह लिपि यहां के आर्यों की अपनी खोज और अपना आविष्कार है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना है कि ई. सन् 350 के बाद ब्राह्मी लिपि की दो शैलियां विकसित हुईं—उत्तरी शैली और दक्षिणी शैली। उत्तरी शैली का प्रचार-प्रसार उत्तरी भारत में और दक्षिणी शैली का दक्षिणी भारत में हुआ। समय बीतने के साथ इन दो शैलियों से भारत की विभिन्न लिपियों का विकास हुआ। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि डोगरी भाषा के लिए प्रयुक्त होने वाली टाकरी लिपि का उद्‌भव भी ब्राह्मी लिपि से ही हुआ होगा।[7]

गौरी शंकर हीरा शंकर ओझा का कथन है कि शारदा लिपि का विकास ब्राह्मी से और टाकरी का शारदा लिपि से हुआ है।

प्रो. रामनाथ शास्त्री के अनुसार, ''हमें डोगरी की जो सर्वाधिक पुरानी लिखत मिल सकती है, वह है तहसील बसोहली के महानपुर कस्बे में जगदंबा के प्राचीन मंदिर की दीवार के एक छोटे से शिलालेख की लिखत। इस शिलालेख पर विक्रमी संवत् 1583 उकेरा गया है, अर्थात् 1526 ई.।

जम्मू-कश्मीर में डोगरी लिपि के प्रयोग का स्वर्णिम युग महाराजा रणबीर सिंह का शासनकाल (सन् 1856-1885 ई.) था। टाकरी वर्णमाला 'गणमत' कहलाती थी। इसे 'पुराने डोगरे' या 'डोगरे अक्खर' भी कहा जाता था। मूल टाकरी में कुल 34 वर्ण थे। गुरुमुखी और शारदा के 35-35 वर्ण और लंडे के 36 वर्ण थे।

पुरानी डोगरी वर्णमाला के लिखने और लिखे हुए को पढ़ने में कठिनाई को देखते हुए उसमें सुधार करके उसे देवनागरी जैसा बनाने का प्रयत्न हुआ। देवनागरी की बारहखड़ी और मात्राओं के आधार पर नई टाकरी लिपि या नई डोगरी वर्णमाला बनाई गई। सरकारी मुद्रणालय में इसी लिपि के मुद्रण की व्यवस्था की गई। अदालती कामकाज प्रायः फारसी, डोगरी और उर्दू में होता था जबकि सरकारी रिकॉर्ड के अधिकतर दस्तावेज, डीड-प्रोनोट और अन्यान्य कागज सभी सरकारी दफ्तरों से जारी होने वाले हुक्मनामे, बही-खाते, व्यक्तिगत और सरकारी पत्र-व्यवहार महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल तक डोगरी लिपि में होता था। पुस्तक लेखन इस लिपि में नहीं, बल्कि हिंदी-संस्कृत में किया जाता था। महाराजा रणबीर सिंह ने पुरानी डोगरी लिपि में सुधार इसलिए करना चाहा था ताकि इसे लिखने-पढ़ने में कठिनाई न हो और इसका चलन भी बढ़े। इस लिपि को मुकम्मल बनाने के लिए देवनागरी से ऐसे अक्षर भी ले लिये गए जिनकी कमी महसूस की जा रही थी। नई डोगरी लिपि का प्रचार बढ़ा। सरकारी हुक्म हुआ कि अर्जियां डोगरी अक्षरों में ही दी जाएं। यह भी आदेश हुआ कि डोगरा अक्षर न जानने वाले कर्मचारी के वेतन से दस रुपये प्रतिशत के हिसाब से कटौती होगी। महाराजा रणबीर सिंह के शासनकाल में हिंदी-संस्कृत की पुस्तकों का लेखन भी नए डोगरी अक्षरों में करने के प्रयास हुए। सरकारी कामकाज में नई वर्णमाला का चलन तो बढ़ा, परंतु जन- साधारण पुराने अक्षरों से ही काम चलाता रहा। महाराजा रणबीर सिंह के शासनकाल के समाप्त होने पर उर्दू को राजभाषा बना दिया गया, जिससे डोगरी अक्षरों का चलन समाप्त हो गया।

डोगरी में गद्य-लेखन : प्राचीन आर्य भाषाओं में लेखन की अवधि ई. पूर्व 1500 से ई. सन् 1000 तक, संस्कृत में ई. पूर्व 1000 से ई. पूर्व 500 तक तथा प्राकृतों में ई. पूर्व 500 से ई. सन्

500 तक मानी जाती है। इसके पश्चात् अपभ्रंश काल 500 ई. से 1000 ई. तक और फिर आधुनिक भारतीय भाषाओं की उत्पत्ति और विकास का युग है।

डुग्गर प्रदेश में सर्वाधिक प्राचीन उत्कीर्ण लेख हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला से बारह मील दूर मिले हैं, जो ई. पूर्व 300 के आस-पास का माना जाता है। माना जाता है कि यह मौर्यकाल का है। यह लेख एक उद्यान तथा तालाब से संबंधित और ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण माना जाता है। इसके बाद ऐसे शिलालेख और लौह-स्तंभ मिले हैं, जिनपर ब्राह्मी-खरोष्ठी लिपियों में अंकन हुआ है।

डोगरी का आदिकालीन गद्य शिलालेखों, स्तंभ-लेखों, अधिकार-पत्रों, ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में ही उपलब्ध है। देशी/देशज भाषा में लिखा सर्वप्रथम शिलालेख ई. सन् 1170 का है। सैचू नाले पर शाल्ही के शिलालेखों में देवी-देवताओं के अंकित स्वरूपों के नीचे का शब्दांकन, डॉ. वोगेल के अनुसार देशी भाषा में है। सन् 1400 के टाकरी लिपि में लिखे, राजा भोट वर्मन के चार पट्टे (अधिकार-पत्र/सनद) पाए गए हैं। सन् 1526 का एक शिलालेख जम्मू के बसोहली से 15 मील दूर महानपुर के दुर्गा भगवती मंदिर में मिला है। इसकी लिपि टाकरी है। डोगरी भाषा और टाकरी लिपि में समय-समय पर कुछ न कुछ लिखित सामग्री देखने में आती रही है। शोधकर्ताओं के प्रयत्न चलते रहे तो और भी बहुत कुछ मिल सकता है। यहां कुछ और उदाहरणों का भी उल्लेख किया जा सकता है। यथा सन् 1660 में चंबा-सरोल सड़क पर एक चौंतरे (चबूतरे) पर टाकरी में लिखा लेख; सन् 1500-1700 के बीच, चंबा के राजाओं के डोगरी भाषा में लिखे अधिकार-पत्र; राजा बलभद्र (1569-1604) के 42 ताम्र अधिकार-पत्र; चंबा के राधा-कृष्ण मंदिर की प्रतिष्ठा में राजा जीत सिंह की रानी संधा का डोगरी भाषा में उत्कीर्ण लेख; 1655 अथवा 1674 में नूरपुर के राजा जगत सिंह के कनिष्ठ पुत्र भाऊ सिंह का, हरिद्वार निवासी अपने पंडा जी को लिखकर दिया अधिकार-पत्र आदि-आदि। उधर अठारहवीं शती के पहाड़ी कलम के चित्रों का बहुत अच्छा संग्रह चंबा के भूरिसिंह संग्रहालय में देखा जा सकता है। उषा-अनिरुद्ध कथा पर आधारित चित्रों से संबंधित विवरण डोगरी भाषा में देवनागरी लिपि में अंकित है। इसके अतिरिक्त राज-प्रशस्तियां अहदनामे, चिट्ठियां, राजाओं की वंशावलियां; 1818 ई. में विलियम कैरे द्वारा किए गए सर्वे पर आधारित 714 पन्नों की धर्म-पुस्तक डोगरी में अनूदित बाइबल आदि ऐसा बहुत कुछ है जिसके आधार पर डोगरी गद्य के विकास का यथेष्ट अध्ययन किया जा सकता है।

आदिकालीन गद्य की अवधि ई. सन् 1850 तक मान्य है। 1850 से 1950 तक के कालखंड में लिखित गद्य को मध्यकालीन गद्य की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

डोगरी भाषा की उन्नति एवं विकास की दृष्टि से महाराजा रणबीर के शासनकाल (1856-1885) को किसी सीमा तक महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। उन्होंने जहां डोगरी की लिपि में सुधार की ओर ध्यान दिया, वहीं जन-साधारण के हित में अनेक संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद भी करवाया। डोगरी के प्रति सहज प्रेम इसका बड़ा कारण था। उन्होंने डोगरी को सरकारी भाषा का दर्जा दिया। सरकारी कर्मचारियों के लिए डोगरी में ही काम करने, चिट्ठी-पत्री लिखने, रिकॉर्ड रखने आदि के आदेश जारी किए गए। उन्होंने 'राजौली', 'धर्म-पुस्तक' और 'लीलावती' जैसी अनूदित पुस्तकों का प्रकाशन करवाया जो गद्य के तत्कालीन रूप की बानगी प्रस्तुत करती हैं। 'अमर कोश' को टाकरी अक्षरों में लिखवाया। सरकारी कर्मचारियों के लिए 'व्यवहार गीता' का अध्ययन अनिवार्य किया।

श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद डोगरी में उन्हीं के शासनकाल में प्रकाशित हुआ।

डोगरी का शिष्ट साहित्य : यद्यपि डोगरी साहित्य परिणाम की दृष्टि से इस सीमा तक नहीं पहुंच पाया कि उसे अन्यान्य किसी भाषा के साहित्य की भांति उसके 'आदि', 'मध्य' और 'आधुनिक' कालीन विभाग कर दिए जाएं, तथापि सुविधा की दृष्टि से डॉ. जितेंद्र उधमपुरी ने अपने डोगरी साहित्येतिहास में इसप्रकार काल-विभाजन किया है–

आदिकालीन गद्य (सन् 1850 तक)
आदिकालीन पद्य (सन् 1850 तक)
मध्यकालीन गद्य (सन् 1950 तक)
मध्यकालीन पद्य (सन् 1950 तक)
आधुनिक गद्य ते पद्य (सन् 1951-)

हमने पूर्णरूपेण न सही, परंतु किसी सीमा तक इसके अनुसार अपना विषय रखने का प्रयास किया है। हमारे आलेख का विषय बहुत व्यापक है, किंतु सीमित कलेवर में अपना विषय रखने का आग्रह भी है। इसलिए चाहते हुए भी, न तो सभी लेखकों के नामों और न ही उनकी कृतियों के संबंध में खुलकर बात की जा सकती है। इससे भी आगे, महत्त्वपूर्ण है प्रवृत्तियों के विषय में विचार प्रकट करना, वह भी संभव नहीं बन पा रहा। संतोष केवल इस बात का है कि पाठक डुग्गर और डोगरी भाषा तथा साहित्य का कुछ परिचय तो प्राप्त कर ही लेंगे। अस्तु!

डोगरी में साहित्य सृजन : डोगरी में शिष्ट साहित्य के दर्शन यद्यपि सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही हो पाते हैं, तथापि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि अतीव प्रभावी तथा जीवंत लोकसाहित्य प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। यथार्थ जीवन की सहज, स्वाभाविक और प्रभावी अभिव्यक्तियों के साथ-साथ उनमें निहित व्यंग्यात्मकता, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, कल्पनाशीलता, काव्य-सौंदर्य आदि को अनायास लक्ष्य किया जा सकता है। इससे प्रमाणित हो जाता है कि लिखित रूप में रचनाएं उपलब्ध न होने पर भी, अज्ञात सर्जकों की जो कृतियां हम तक, लोक गायकों–'गारड़ी', 'जोगियों' के माध्यम से आ पहुंची हैं, उनके पीछे निश्चित रूप से एक लंबी और समृद्ध परंपरा रही होगी। उदाहरणार्थ 'बावा जित्तो की कारक' एक लोकगाथा को ही लें तो रस-दृष्टि, अर्थ-गांभीर्य, उक्ति-वैचित्र्य, प्रतीकात्मकता, भाषिक संरचना आदि की दृष्टि से यह एक सुष्ठु तथा उत्कृष्ट रचना बन पड़ी है। लगता ही नहीं कि इस प्रदेश में साहित्यिक अभिरुचि का अभाव रहा होगा। ई. सन् 1458 में बावा जित्तो का आत्म-बलिदान होने के बाद किसी लोक कवि के अंतस से फूट पड़ी यह गाथा गत पांच-साढ़े पांच सौ वर्षों से गाई जा रही है।

डुग्गर में लोक गाथा के दो प्रकार हैं–कारक और बार। कारक किसी देवी-देवता, साधु-संत, शहीद, देवता के रूप में मान्य-पूज्य महापुरुष के जीवन-चरित्र से संबंधित लंबी काव्य कृति है जबकि बार किसी शूरवीर, साहसी और पराक्रमी योद्धा के पराक्रम को अभिव्यक्त करने वाली लंबी कविता है। डुग्गर प्रदेश में ऐसी अनेक गाथाएं प्रचलित हैं।

इन दोनों विधाओं के साथ-साथ शृंगारपरक गीत, भक्ति गीत, खेल गीत, पर्व-उत्सवों के गीत, श्रम गीत, ऋतु गीत, सुहाग, घोड़ियां, बिहाइयां, बारहमासा, संस्कार गीत आदि और लोक-कथाओं का भरा-पूरा खजाना लोक-ज्ञान की समृद्ध परंपरा का द्योतक है।

आदिकालीन काव्य : डोगरी में शिष्ट साहित्य की परंपरा का आरंभ सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। आरंभिक रचनाओं की भाषा में डोगरी-हिंदी का मिश्रण मिलता है। डुग्गर प्रदेश में संस्कृत और ब्रजभाषा में काव्य-साधना तो होती रही है, परंतु डोगरी के आदि कवियों में सबसे पहला नाम कवि मानक चंद का है। उनसे सन् 1565 में प्रारंभ हुई काव्य-परंपरा 1850 तक के कालखंड में व्याप्त मानी जाती है। इस कालखंड में अधिकांश कवि प्रायः ब्रजभाषा में ही कविता करते रहे हैं—छिटपुट डोगरी रचनाएं भी मिल जाती हैं। इन कवियों के मानक चंद, गंभीर राय, राजा विक्रम की रानी (रचना इसी नाम से उपलब्ध), देवीदत्ता (दत्तू), मायादास, रघुवीरदास, शिवराम, पं. गंगाराम, रुद्रदत्त, कांशी राम, हाकम जट्ट और लाला रामधन के नाम आते हैं। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में हुए कवि मुख्यतः कांगड़ा, नूरपुर, गुलेर और भद्रवाह से थे। इनके विषय में सर्वप्रथम इसकी जानकारी 1984 ई. में प्रकाशित 'आजादी पैहले दी डोगरी कविता' नामक पुस्तक से प्राप्त हुई।

अठारहवीं सदी के अधिकतर कवि महाराजा रणजीत देव और महाराजा रणबीर सिंह के समकालीन थे, महाराजा रणजीत देव के शासनकाल (1725-1780 ई.) को जम्मू का स्वर्णकाल माना जाता है। रणजीत देव ने सिंहासनारूढ़ होते ही भड्डू के दयापाल मनकोट के अजमलदेव और किश्तवाड़ के हाकिन सैयद अल्लाह को अपने अधीन कर लिया था। दत्तू, रणजीत देव का दरबारी कवि था। उसने राजकुमार ब्रजराज की कांगड़ा के राजा घुमंड चंद कटोच से हुई लड़ाई को प्रत्यक्ष देखने के पश्चात् उसका 'ब्रजराज पंचाशिका' में वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' के 'द्रोण पर्व' का 'वीर विलास' नाम से ब्रज भाषा में अनुवाद किया। वस्तुतः 'वीर विलास' काव्य दत्तू का कीर्ति-स्तंभ है। इसके अतिरिक्त उसने 'बारांमाह', 'दत्त संग्रह', 'भूप वियोग', 'अमृत वियोग' आदि कृतियों की रचना की। 'कमलनेत्र स्तोत्र' उनकी प्रसिद्ध रचना है जिसका पाठ/गायन उत्तरी भारत में बहुत मन से किया जाता है। इसमें डोगरी भाषा के कतिपय शब्द भी मिल जाते हैं। दत्तू के नाम से डोगरी में केवल तीन पद मिल पाते हैं। दत्तू के पौत्र त्रिलोचन ने अपने पितामह के पदचिह्नों पर चलते हुए 'महाभारत' के 'शांति पर्व' का काव्यानुवाद 'नीति विनोद' के नाम से किया।

मध्यकालीन काव्य : सन् 1850 से 1950 तक का दौर नव चेतना, समाज-सुधार, राष्ट्रीयता की भावना, स्वातंत्र्य-कामना, अंधविश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों और शोषण के विरोध का दौर है। देश में प्रगतिवादी चेतना और क्रांतिकारी सोच का उभार पूरे यौवन पर था। इसके साथ-साथ प्रकृति-प्रेम, शृंगार-भावना और गौरवशाली सांस्कृतिक अतीत के स्वर भी परिवेश में अपना प्रभाव दिखा रहे थे। इस युग में आधुनिक और प्रगतिवादी प्रभावों के चलते प्रथम महत्त्वपूर्ण पुरोधा कवि दीनू भाई पंत का डोगरी कविता में उतरना, उनकी ऐतिहासिक महत्त्व की भूमिका के निर्वाह का कारण बना। जहां उन्होंने समाज-सापेक्ष गंभीर और परिवर्तनकारी भावना से ओत-प्रोत काव्य-प्रणयन किया, वहीं हास्य-व्यंग्यपरक शैली की कविताओं के माध्यम से लोकप्रियता के शिखर पर जा बैठे। उनके तेवर जन कवि के रहे और उन्होंने जागीरदाराना शोषण के विरुद्ध झंडा उठाने वालों को सक्रिय नैतिक समर्थन भी दिया। उनकी 'शैइर पैह्लो-पह्ल गे' का जादू लोगों के दिलो-दिमाग पर अब भी अपना असर दिखा रहा है। उनका प्रथम काव्य संग्रह 1944 में छपा। नाम था 'गुतलूं'। इसके बाद मंगूरी छबील (1945) और वीर गुलाब (1946) आदि काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए। इस दौर में सामाजिक चेतना के अन्य कवियों में कैइता मथरा दास, हरनाम दास, संत राम

शास्त्री आदि थे। मध्यकालीन कवियों में आधुनिक चेतना के एक अन्य महत्त्वपूर्ण कवि पं. हरदत्त शर्मा थे। वे छुआछूत, आडंबर, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता, पारस्परिक फूट से सामाजिक विघटन के प्रति जन-जागरण करने और देशप्रेम का संदेश देने वाले कवि थे। इन्हीं की सोच के कवियों में पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम का नाम उल्लेखनीय है। जम्मू में यदि दीनू भाई पंत और हरदत्त थे तो हिमाचल में पहाड़ी गांधी जन-जागरण का शंखनाद कर रहे थे। युगीन स्पंदनों को आत्मसात् कर, डोगरी साहित्यकारों के काफिले को संगठित करने, उनका यथोचित मार्गदर्शन करते अद्‌भुत नेतृत्व-क्षमता के धनी शास्त्री जी एक युगांतरकारी भूमिका में अवतरित हुए महापुरुष थे। उन्होंने कविता, कहानी, नाटक, लेख, निबंध, शोध आदि विधाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनका काव्य भावनामय भी है और चिंतन-प्रधान भी। इस दौर के अन्य महत्त्वपूर्ण कवियों में यश शर्मा, वेद पाल 'दीप', कृष्ण समैलपुरी, परमानंद अलमस्त, बरकत पहाड़ी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से अनेक कवियों की कविता-यात्रा, आधुनिक कालीन डोगरी कविता में भी निरंतर बनी रही और उन्होंने महत्त्वपूर्ण कृतियों से डोगरी कविता के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

आधुनिक डोगरी काव्य : आधुनिक डोगरी कविता का समारंभ सन् 1951 से हुआ। अब तक सतत प्रवाहमान आधुनिक काव्य-धारा में प्रगतिवाद और नई कविता के साथ-साथ परंपरावादी कविता का प्रणयन भी बना रहा। मध्यकालीन दौर के हरदत्त शास्त्री, परमानंद अलमस्त, किशन समैलपुरी, बरकत पहाड़ी, यश शर्मा, वेदपाल 'दीप', प्रो. रामनाथ शास्त्री, दीनू भाई पंत आदि के साथ-साथ अनेकानेक नए कवियों का डोगरी कविता क्षितिज पर उदय इस दौर की महत्त्वपूर्ण घटना भी है और किसी सीमा विशेष तक उपलब्धि भी। इनमें जाज्वल्यमान नक्षत्रों के रूप में जिन उत्कृष्ट कवियों ने विशेष पहचान बनाई और सफलता के झंडे गाड़े उनमें सिरमौर पद्‌मा सचदेव रहीं। देश ही नहीं, विदेशों में भी उन्होंने डोगरी भाषा और साहित्य का नाम जिस तरह से रौशन किया, वह अद्‌भुत है। डोगरी के साथ-साथ हिंदी में भी उनके लेखन का लोहा सभी मानते हैं। अनेकानेक प्रतिष्ठित सम्मान उनकी झोली में आ समाये हैं। वे पूरे डुग्गर प्रदेश की गौरव हैं। विभिन्न विधाओं में सफल लेखन और अनवरत रचनाशील बने रहना सभी के लिए प्रेरणास्पद है। केवल डोगरी में ही वह लगभग पंद्रह कृतियां दे चुकी हैं। अन्य विशिष्ट उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं—वेद पाल 'दीप', के. हरिसिंह मधुकर, यश शर्मा, बरकत पहाड़ी, चरण सिंह, नरसिंह देव जम्वाल, मोहन सिंह, दर्शन दर्शी, प्रकाश 'प्रेमी', शबाब ललित, ललित मंगोत्रा, डॉ. निर्मल विनोद, डॉ. जितेंद्र उधमपुरी, डॉ. शिवराम दीप, रंधीर सिंह, डॉ. चंपा शर्मा, कुंवर वियोगी, ज्ञानेश्वर, वीरेंद्र केसर, ओ.पी. शर्मा सारथी, उषा व्यास, अश्विनी मगोत्रा, पीयूष गुलेरी, डॉ. गौतम व्यथित, शेष अवस्थी, प्रद्‌युम्न सिंह, मोहन लाल सपोलिया आदि-आदि। इनमें अनेक कवियों ने अलग-अलग विधाओं में और अलग-अलग रुझान की कविताएं देने के साथ-साथ अपने-अपने स्तर पर नई जमीन को तोड़ा है।

यदि पुराने छंदों में आधुनिक भाव-बोध की अभिव्यक्तियां आज डोगरी में सहज सुलभ हैं, तो वहीं नवीनतम काव्य रूपों को भी उन्होंने अपनी सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। सॉनेट, हाइकू, नवगीत, नई कविता है, तो दोहे, कुंडलियां और गजलें भी हैं। लघुकाव्य, लंबी कविताएं, खंड-काव्य लिखने वाले अनेक धुरंधर हैं तो प्रकाश प्रेमी, डॉ. जितेंद्र उधमपुरी, शंभु नाथ शर्मा जैसे महाकाव्य-प्रणेता भी निरंतर साधनारत हैं।

गद्य साहित्य : देश में स्वतंत्रता आंदोलन के चलते व्यापक जन-जागरण का ही परिणाम था कि लोग निज भाषा की उन्नति की ओर प्रेरित हुए। प्रो. गौरीशंकर लाहौर स्थित राजकीय डिग्री कॉलेज के संस्कृत विभाग में कार्यरत थे। उन्होंने 1934 में लाहौर से, 'श्रीमद्भगवद्गीता' का डोगरी अनुवाद प्रकाशित करवाया। 1935 में डोगरी का प्रथम नाटक रामनगर के मिडिल स्कूल में पदस्थ अध्यापक विश्वनाथ खजूरिया ने लिखा। देहात में छुआछूत इस नाटक की रचना के केंद्र में था। उस युग में यह बहुत साहसिक कार्य था। इसके पश्चात् सन् 1947 में भगवद् प्रसाद साठे कृत डोगरी का प्रथम कथा संग्रह छपा। विश्वनाथ खजूरिया, रामनाथ शास्त्री, धर्मचंद्र प्रशांत आदि गद्यकार डोगरी में लिख तो रहे थे, परंतु डोगरी में सर्वप्रथम मौलिक गद्य-पुस्तक प्रकाशन का सेहरा साठे के सिर रहा।

आधुनिक गद्य-लेखन का युग 1951 से अब तक का है। लगभग सत्तर वर्ष के इस कालखंड में बहुलता काव्य-कृतियों की रही है, तथापि गद्य-लेखन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ है—विशेष रूप से कहानी के क्षेत्र में। सन् 1944 में डोगरी संस्था और 1947 में जम्मू में रेडियो स्टेशन का कार्य आरंभ, डोगरी भाषा के विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। डोगरी भाषा में लिखने वालों को समुचित मंच मिला और अवसर भी। कहानियां, नाटक, झलकियां, विविध विषयों पर लेख-वार्ताएं, कविताएं, गीत आदि की मांग से लेखक विशेष रूप से सक्रिय हुए।

आधुनिक काल में गद्य की विभिन्न विधाओं में कार्य हुआ है। कहानियां, उपन्यास, नाटक, निबंध, लेख, यात्रा-वृत्तांत, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, शोध, समीक्षा, बाल-साहित्य, अनुवाद आदि क्षेत्र में लेखन कार्य हो रहा है। डोगरी कथाकारों ने यथेष्ट यश अर्जित किया है। डोगरी कहानियों के अनुवाद अन्यान्य भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं में भी हुए हैं। उल्लेखनीय कथाकारों में वेद राही, रामनाथ शास्त्री, नरेंद्र खजूरिया, ओ.पी. शर्मा सारथी, मदनमोहन शर्मा, डी.सी. प्रशांत, बंधु शर्मा, नरसिंह देव जम्वाल, ललित मंगोत्रा, उषा व्यास, छत्रपाल, ओम गोस्वामी, चमन अरोड़ा, कृष्णा प्रेम, निर्मल विक्रम, मनोज शर्मा, शिव मेहता, कृष्ण शर्मा आदि के नाम हैं, तो तेजी से उभर रहे कहानीकारों में जगदीप दुबे, राजेश्वर सिंह राजू, सुनिता भड़वाल, अर्चना केसर, शशि पठानिया, चमन पंथी आदि हैं।

उपन्यासकारों में वेद राही, ओम गोस्वामी, शिव मेहता, प्रो. मदन मोहन, नरसिंह देव जम्वाल, दर्शन दर्शी, देशबंधु डोगरा नूतन, ओ.पी. शर्मा सारथी, नरेंद्र खजूरिया, वत्स विकल ने डोगरी उपन्यास साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध किया है।

डोगरी में रेडियो नाटक तो सैकड़ों लिखे जा चुके हैं जबकि मंच के लिए लिखे गए नाटकों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही कही जाएगी। मोहन सिंह ने नाट्य-लेखन की दृष्टि से प्रशंसनीय कार्य किया है। उन्होंने नुक्कड़ नाटकों के क्षेत्र में विशेष सक्रियता दिखाई है। नरसिंह देव जम्वाल, ललित मगोत्रा, चमन अरोड़ा, नरेंद्र खजूरिया, ओम गोस्वामी, शिव मेहता, दीनू भाई पंत, वेद राही, डी.सी. प्रशांत, पूर्ण सिंह पूर्व, जितेंद्र शर्मा और डॉ. शांता शर्मा का योगदान उल्लेखनीय है। लोक नाट्य-परंपरा डुग्गर में भगतां, रास-लीला, राम-लीला के रूप में तो रही है। जम्मू में पारसी थियेटर कंपनियों और पृथ्वी थियेटर आदि की प्रस्तुतियां पुराने लोगों की स्मृतियों में हैं। यद्यपि वे प्रस्तुतियां डोगरी में नहीं थीं, तथापि मंचीय नाटकों के प्रति जनता की रुचि में वृद्धि होना स्वाभाविक ही था।

आत्मकथाओं में प्रथम कृति विश्वनाथ खजूरिया की थी। उनके पश्चात् इस क्षेत्र में पद्मा सचदेव और नरसिंह देव जम्वाल ने योगदान किया है। जीवनी-लेखन के क्षेत्र में कम कृतियां सामने आई हैं।

शोध, निबंध, लेख, समीक्षा में शामलाल शर्मा, प्रो. शक्ति शर्मा, शिवनाथ, विश्वनाथ खजूरिया, पद्मा सचदेव, प्रो. रामनाथ शास्त्री, प्रो. वेद घई, प्रो. वीणा गुप्ता, प्रो. बाल कृष्ण शर्मा, प्रो. शशि पठानिया, डॉ. ओम गोस्वामी, डॉ. अशोक जेथ, प्रकाश प्रेमी, डॉ. निर्मल विनोद, पं. केदारनाथ शर्मा, डॉ. देवरत्न शास्त्री, प्रो. नीलांबर देव शर्मा, प्रो. लक्ष्मीनारायण, प्रो. बलदेव सिंह, चंचल शर्मा, प्रो. चंपा शर्मा, प्रो. मदनमोहन शर्मा, विद्यारत्न खजूरिया, जितेंद्र शर्मा, सुरेंद्र गंढलगाल, देशबंधु डोगरा नूतन, डॉ. पीयूश गुलेरी, डॉ. बंशी लाल, डॉ. गणेश भार्गव, डॉ. ओमप्रकाश गुप्त, डॉ. जनक गुप्ता, डॉ. शिवदेव मन्हास, डॉ. अर्चना केसर प्रभृति अनेक नामों का उल्लेख किया जा सकता है।

बाल-साहित्य : डोगरी में बाल साहित्य लेखन की ओर विलंब से ही सही, परंतु अनेक वरिष्ठ तथा नए लेखक कथा–कहानी, कविताएं आदि लिख रहे हैं। बच्चों के लिए नाटक और उपन्यास-लेखन की ओर भी ध्यान दिया गया है।

कुछ सुचनाएं, कुछ अपेक्षाएं : डोगरी के आठवीं अनुसूची में सम्मिलित होने के पश्चात् लेखकों की जिम्मेदारियां बढ़ी हैं। आइ.ए.एम., के.ए.एस. की प्रतियोगी परीक्षाओं में डोगरी विषय को स्थान दिया गया है। इधर केंद्र शासित प्रदेश की सरकारी भाषाओं में डोगरी भी स्थान पा गई है। जहां लेखक-वर्ग का दायित्व महत्त्वपूर्ण है, वहीं अपनी स्वदेशी भाषाओं के प्रति स्वाभिमान की भावना समाज में भी हो, यह जरूरी है। न केवल डोगरी अपितु अन्य भारतीय भाषाओं के मामले में भी यह बात पूरी उतरती है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. 'डोगरी भाषा-एक परिचय', 'हमारा साहित्य' (1965). पृ. 129-130, जम्मू : ज.क. कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी।
2. 'विश्व भाषा परिवार डोगरी' ('डोगरी शोध'-1981), जम्मू : जम्मू विश्वविद्यालय।
3. पुरी बलराज, 'डोगरी ते डुग्गर', डोगरी शोध-ग्रंथ, पृ. 2।
4. उधमपुरी, डॉ. जितेंद्र, 'डोगरी साहित्य का इतिहास', द्वितीय संस्करण, पृ. 6।
5. Jammu has the honour of being the capital of the Dogra state atleast from the day of RAJA/MALDEV, who, shifted the headquartes of his government from BABBAPUR to the present site in the last quarter of the 14th century. Jammu remained obsence as the significant village for long and acquired significance only during the 14th century - 'Maharaja Ranjit Dev and Rise and Fall of Jammu Kingdom' [P.79] by Prof. Sukhdev Singh Charak.
6. प्रो. रामनाथ शास्त्री के (मूल डोगरी) आलेख का यशपाल 'निर्मल' द्वारा हिंदी में किया गया अनुवाद, 'शीराजा' (हिंदी) फरवरी-मार्च 2012 अंक।
7. तिवारी, डॉ. भोलानाथ, 'हिंदी भाषा', पृ. 378, इलाहाबाद : किताब महल।

□

डोगरी सृजनशीलता का समकाल

पद्मा सचदेव

डोगरी साहित्य क्षेत्र में जब मैंने पदार्पण किया था तब डोगरी के प्रारंभिक कवियों का समय था। कवि हरदत्त जी का स्वर्गवास हो चुका था, जिन्होंने डोगरी कविता घर-घर पहुंचाकर सहज-सरल कुलवधुओं को भी कंठस्थ करवा दी थी, लेकिन एक धुंधली-सी याद उनकी भी मेरे जेहन में है। मेरे पिता जी मुझे उनके प्रेस में ले गए थे। तब एक बुजुर्ग ने मेरे मुंह से अपनी कविता सुनकर मेरे सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखा था। यही हरदत्त थे और कविता इसप्रकार थी—

बन्नो वेद पुराण पोथियां कलजुग दौड़दा आई गया।

(वेद-पुराण आदि ग्रंथ बांधकर रख लो, कलियुग दौड़ता हुआ आ गया है।)

बाद के कवियों से भी मेरा परिचय पिता जी के परिचितों के तौर पर ही था, जैसे रामनाथ शास्त्री, दीनूभाई पंत और शंभुनाथ शर्मा। इन उस्ताद लेखकों में से पंत जी के सुपुत्र डॉ. मनोज की कहानी सुनकर मुझे 'बड़े मियां-बड़े मियां, छोटे मियां सुबहान अल्लाह' वाली उक्ति याद आ गई और बरसों पहले की एक शाम के अंधेरे में, छत पर बना एक मंच आंखों में कौंध गया, जिसमें मनोज ने मुहल्ले के बच्चों को लेकर कोई ड्रामा खेला था। उन दिनों चीन ने भारत पर हमला किया था और इस नाटक से हुई आय को ये बच्चे सुरक्षा कोष में देना चाहते थे, लेकिन यह कहानी, जिसके हर जुमले पर वाह-वाह हो रही थी, ऐसी कहानी तो पंत जी ने शायद ही कभी लिखी हो। कहानी सुनकर मुझे यूं भी लगा था कि आज के डोगरी लेखकों का यह वर्ग कविता से अधिक कहानी की ओर झुका हुआ है।

डोगरी के विख्यात कहानीकार स्व. भगवत प्रसाद साठे के बाद स्व. नरेंद्र खजूरिया, सर्वश्री मदनमोहन, वेद राही, रामकुमार अबरोल आदि सुप्रसिद्ध कहानीकारों के बाद, जो कहानीकार मेरे जेहन में उभर रहे हैं, वे हैं बंधु शर्मा और ओ.पी. शर्मा। बंधु शर्मा जी की 'रंगली चिड़ी' और ओ.पी. शर्मा की 'सुक्का बरुद' कहानियां मैंने जम्मू में ही उनके मुख से सुनी थीं। दोनों की कहानियों में डोगरा प्रदेशों के रोचक और घरेलू दृश्य थे। ओ.पी. शर्मा को, जो चित्रकार तो हैं ही, संगीत में भी अपना दखल रखते हैं, इस वर्ष की राज्य की सांस्कृतिक अकादमी द्वारा कहानी संग्रह 'सुक्का बरुद' पर पहला इनाम मिला है। दाढ़ी-मूंछ से सुसज्जित, दूर कहीं गुम हुई कोई वस्तु ढूंढ़ते ओ. पी. शर्मा को देख कर मुझे एक झूला याद आता है, जिस पर मेरे हमउम्र इनके छोटे भाई का एकाधिकार होता था और जो एक पैसा लिये बगैर मुहल्ले के किसी भी बच्चे को एक पैंग झूलने नहीं देता था। ''पहले

झूलने दो फिर पैसा दूंगी'', कहकर जो मैं पैंग झूलती रही थी, आज तक उसका पैसा नहीं दिया। शायद इसीलिए मैं खयालों में झूले पर ही झूलती रहती हूं, कभी इस ओर, कभी उस ओर। मेरे मायके और ससुराल के बीच कोई पहाड़ नहीं, लंबा रास्ता है, नहीं तो मैं भी कहती।

खंबे दिए धारे बिंद नीठड़ी होऐआं रोआर मेरे सौरिए ते पार मेरे प्यौ किए।

(चंबा के पहाड़ जरा नीचे हो जाओ, इस तरफ मेरी ससुराल है और उस पार मेरा मायका है।)

बंधु शर्मा ने बहुत कहानियां नहीं लिखीं, लेकिन उनके संग्रह 'परशामें' की सभी कहानियां सुलझी हुई और सहज-सरल हैं। ये दोनों कहानीकार निश्चय ही आज की पीढ़ी में नहीं आते। आज की पीढ़ी के चर्चित कहानीकार हैं छत्रपाल, ओम गोस्वामी, डॉ. मनोज, डॉ. अरविंद, चमन अरोड़ा, रविशंकर रविचंद्र, ललित मंगोत्रा और महिला कहानीकारों में सुदेश, कृष्णा आदि।

लेखकों का परिचय करवाने से पहले मैं आपको यह बता दूं कि जम्मू शहर, जो भारत के नक्शे के माथे पर किसी सुहागिन की बिंदी-सा दमकता है, शहर भले ही छोटा है, पर यहां के लोगों के दिल छोटे नहीं हैं। चाहे दोस्ती करें या दुश्मनी, तहेदिल से करते हैं। डोगरी, हिंदी, उर्दू की साहित्यिक सरगर्मियों से पूरा महीना लदा रहता है। दरबार आने पर कश्मीरी लेखकों से भी साहित्यिक लेन-देन होता रहता है।

छत्रपाल 'धर्मयुग' के पाठकों के लिए नया नाम नहीं है। अन्य पत्र-पत्रिकाओं के पाठक भी उनसे अपरिचित नहीं हैं। बैसाखियों के सहारे चलनेवाले इस नवयुवक की कहानी अपने दोनों मजबूत पैरों पर खड़ी होकर मोरनी जैसी मस्तानी चाल से चलती है। तभी तो भारत की कितनी ही भाषाओं में अनूदित होकर इसने डोगरी को समृद्ध किया है। बड़े ही मिलनसार और नम्र स्वभाव के छत्रपाल देखने में एकदम कहानीकार नहीं लगते। अपनी 'टापू का आदमी' कहानी में उनके व्यक्तित्व की झलक साफ दिखाई देती है।

ओम गोस्वामी 'नई चेतना' (डोगरी पत्रिका) के संपादक भी हैं। उन्होंने मेरी कविता को गजल लिख दिया और कुछेक परिवर्तन करके उसे बना भी गजल ही दिया, सो मैं उनसे बड़ी खफा थी। गजल मुझे बहुत अच्छी लगती हैं, लेकिन सिर्फ उर्दू में। क्योंकि मेरे हिसाब से गजल सिर्फ उर्दू का जामा पहनकर ही संवरती है। बाकी जामों में यूं लगता है, जैसे सुंदर स्त्री ने पड़ोसिन से मांगकर कपड़े पहने हों।

लेकिन साहब, जब ओम गोस्वामी ने अपनी पांच कहानियों और एकांकी की किताबें मुझे थमा दीं और जब मैंने वे कहानियां पढ़ीं, तो मैंने सोचा, ऐसी सशक्त कहानी लिखनेवाले के सातों खून माफ हो सकते हैं, कविता को गजल बना देना, तो बड़ी छोटी-सी बात है। उनकी कहानी 'पटोई दी इट्ट' में बाग का माली, उसकी स्त्री, जिसे बच्चे डायन कहकर चिढ़ाते हैं, और समाज के ठेकेदारों की नंगी तस्वीर के दृश्य बड़े ही सजीव चित्रित हुए हैं। हर कहानी में एक डोगरा परिवार का चित्र है, यही ओम गोस्वामी हैं।

अनंतराम शास्त्री जी के सुपुत्र अरविंद भी नए लेखकों में बड़े चर्चित हैं। शास्त्री जी जम्मू के उन चंद लोगों में से हैं, जिन्होंने बेटे की शादी में दहेज नहीं लिया। शायद इसी से प्रभावित हो अरविंद ने अपनी 'चक्रव्यूह' कहानी लिखी है। नायक की मां का यह कहना, तुम्हारे एक के दहेज न लेने से यह प्रथा बंद नहीं हो जाएगी, न तो खाली नकद ले लें या नायक का पालने में अपनी

बच्ची को देखकर यह सोचना कि यह इतनी ही रहे, बड़ी न हो, आज की समस्याओं का एक यथार्थ पहलू है। लिखने के अलावा अरविंद ने डोगरी कवियों की रचनाएं गा-गाकर कितने सहपाठियों के मन में मातृभाषा के लिए प्रेम जगाया है, यह कौन जानता है! श्रीनगर में जब ये युवक पढ़ रहे थे, तो छुट्टी के दिन गुलाब के बाग में बैठ जम्मू की याद में जब डोगरी 'बिरहे' गाते थे, तो मनोज का स्वर सबसे ऊंचा रहता था।

डोगरी में साहित्यिक सरगर्मी आरंभ होते ही श्रीमती ललिता मेहता ने 'सुई-धागा' नाम की डोगरी कहानियों की किताब लिखी थी, तब से काफी समय बाद तक महिलाओं में इस तरफ कोई अधिक प्रगति दिखाई न दी थी। परंतु अब सुदेश राज, कृष्णा शर्मा आदि के कहानी संग्रह छप रहे हैं। कविता के क्षेत्र में, शीला मंनसोत्तरा, संतोष खजूरिया, कांता शर्मा, उषा व्यास और चंपा शर्मा आदि ने कुछ कविताएं लिखी हैं। बहुत बार ललिता मेहता की तरह न जाने ये लेखिकाएं कहां गुम हो जाती हैं। बातचीत के दौरान किसी ने मुझसे पूछा था, ''आपके बाद कोई भी ऐसी कवयित्री क्यों नहीं पैदा हुई, जो बाकायदा लिखती रही हो।'' तब मैंने हंसकर कहा था, ''शायद मेरा हश्र देखने के बाद किसी ने ऐसी हिम्मत न की, लेकिन अब यह जान लेने के बाद कि हर भाषा में कुछ ऐसे राजनीतिक तत्त्व रहते ही हैं, जिनकी वजह से कुछ प्रतिभाएं तो उभर ही नहीं पातीं और कुछ को आवश्यक प्रोत्साहन नहीं मिलता, यह बताने में मुझे कोई संकोच नहीं कि ऐसे तत्त्वों की डोगरी में भी कमी नहीं है।'' इस मामले में मैं बड़ी भाग्यशाली हूं।

सुदेश राज आकाशवाणी में काम करती हैं। उन्होंने इस बार मुझे बड़े दुःखी स्वर में बताया था कि आकाशवाणी में रहते हुए भी उनकी कहानियां प्रसारित नहीं होतीं। तब मैंने उन्हें यह शेर सुनाकर कहा था—

यह इश्क नहीं आसां इतना तो समझ लीजै,
इक आग का दरिया है, और डूब के जाना है।

जब तक आकाशवाणी में हो, शिवानी क्यों न हो जाओ, लोग तुम्हें सुदेश ही समझेंगे। जिस रोज दिनकर जी का स्वर्गवास हुआ, बंबई में मुझसे दुःखी और कौन था, परंतु आकाशवाणी वालों को उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए मेरी याद नहीं आई—मैं, जो आंखों में आंसू भरे, मुख पर वेदना का बोझ ढोती अपने सफेद आंचल में महाकवि की हजारों स्मृतियों को सहेजे वहीं खड़ी थी।

कहानी पढ़ने में अच्छी लगती है और कविता कवि के मुख से सुनने पर। मैंने देखा है, तरन्नुम में हल्का-फुल्का गीत गाकर वाहवाही लूटनेवाला कवि किताब के पन्नों पर कैसे हूट होता है। डोगरी का अधिक प्रचार कविता से ही हुआ। आज की पीढ़ी के कवि मंच पर उस्तादों की उपस्थिति में जनता पर चाहे उतना प्रभाव न डाल पाएं, परंतु किताबी पन्नों पर वे हूट नहीं हुए हैं, यह मैं जानती हूं।

जवानी में ही वृद्धों जैसी गंभीरता लिये शिवराम 'दीप' ने पहले हिंदी कहानी से लेखन शुरू किया। उसके बाद जनकवि मोहनलाल सपोलिया की कविता की रवानी से प्रभावित होकर डोगरी में कविता लिखना शुरू किया। पूछने पर उन्होंने बताया, वह जमाना चरण सिंह की कविता की नई लहर का था। नरेंद्र खजूरिया तब अकादमी में आ चुके थे। इन दोनों की हौसला-अफजाई और सपोलिया जैसा उस्ताद पाकर उन्होंने कविता के क्षेत्र में चर्चा पैदा कर दी। उनकी दो किताबें छप चुकी हैं।

शिवराम 'दीप' जब सपोलिया की साहित्यिक दुकान पर अपनी कविताएं पढ़कर सुधार करवाया करते थे, तब एक दुबला-पतला लड़का इस कार्यवाही को बड़े ध्यान से देखा करता था। चरण सिंह ने इनकी कविता सुनने के शौक को जरा उभारा, तो ये भी कवि निकले, यानी अश्विनी मंगोत्रा। शायरी शुरू करने से पहले नौकरी जो छोड़ी तो आज तक बेकार हैं। कहते हैं, मुझे गुस्सा बहुत आता है। एक बार गुस्से में आकर अपनी बीस कविताएं फाड़ डाली थीं। अधिक गुस्सा अपने पर ही आता है, क्योंकि दूसरे सहन नहीं करते। इनकी भी कविता और कहानी की तीन किताबें छप चुकी हैं। आज के माहौल (घाटी के) की घुटन पर महाकाव्य लिख रहे हैं।

जगानूं के ही जितेंद्र जब उधमपुर आ बसे, तो उधमपुरी हो गए। उसके बाद जम्मू में उर्दू के मशहूर शायर अर्श सहबाई से प्रभावित हो उर्दू में नज्में लिखीं। फिर जम्मू आकर पद्मा, मधुकर, चरण सिंह से प्रभावित होकर डोगरी में लिखना शुरू किया। (एक ही कवि है, जो मेरा प्रभाव भी मानता है।) उनका कहना है कि उन्होंने कुछ ऐसे मुहावरे इकट्ठे किए हैं, जो डोगरी के कवि मुहावरों के माहिर तारा समैलपुरी के खजाने में भी नहीं हैं। इनकी एक कविता जो मैंने बार-बार सुनी, इसप्रकार है—

स्त्री हूं न !
सजनि मैं इक गहना
टूटा-फूटा बड़ा पुराना
तुम्हारी बांह में ही नहीं
तुम्हारे मन में भी चुभता हूं
पर फिर भी सोना हूं
उतारकर फेंक सकते हो क्या?

जो लड़के शैतान होते हैं, उन्हें डोगरी में 'टल्ली' या 'कफ्फन' कहते हैं, यानी कफन का पैवंद। बचपन में कुलदीप सिंह जंदराहिया यही थे, यह मुझे उन्होंने ही बताया। चलिए बचपन तक तो यह खुद भी कबूल करते हैं, यह क्या कम है! जब छठवीं में पढ़ते थे, तब इनके पिता जी को चंबल निकली तो यह एकाएक कवि भी हो गए। उनकी चंबल से सूजी टांग पर उन्होंने एक फिकरा कसा—

ऐ बुआ चंबलू
जन्निएं तां जा नीं तां जंग होई डमरू।
(ऐ चंबल बुआ, जाती हो तो जाओ, नहीं तो टांग डमरू जैसी हो रही है।)

दसवीं कक्षा में जब वे पढ़ते थे, तब संयोग से उसी दुकान पर जाकर बैठते रहे, जहां चरण सिंह चाय पिया करते थे। चरण सिंह को उन्होंने एक कविता सुनाई। उन्होंने कहा यह गीत है। वही गीत मुशायरे में तरन्नुम से पढ़ा और छा गए। डोगरी के कविरत्न श्री मधुकर जी को वे गुरु मानते हैं। कविताओं के अलावा एक उपन्यास भी लिख रहे हैं। नाम है 'गद्दार'। इसका किस्सा भी बड़ा रोचक है। कुलदीप सिंह जी कॉलेज में प्रोफेसर हैं। लड़कों के इम्तहान हो रहे थे। उनकी ड्यूटी हॉल में लगी हुई थी। पुलिस भी थी और उनमें थे 'गद्दार' के नायक सूबेदार मुहम्मद तकी। मुहम्मद तकी बंटवारे से पहले अस्कर्दू के चतराल स्थान पर किसी

जागीरदार के बेटे थे। ब्रिगेडियर घंसारा सिंह वहां एक बार गए, तो उनसे मुतासिर हो मुहम्मद तकी महाराजा हरि सिंह जी की फौज में एक सिपाही हो गए। दूसरे विश्व युद्ध में लड़ने का मौका भी मिला। वहीं एक शहर से सोना लूटा, तो लॉर्ड मांटगोमरी ने इनाम देने के बहाने सबको बुलाकर सोना हड़प लिया। इस घटना के बाद उस पलटन के तीन हजार सिपाही नेता जी की आजाद हिंद सेना में भर्ती हो गए। इंफाल में जब एडवांस कर रहे थे, तो अंग्रेजी फौजों ने फायर करके गिरफ्तार कर लिया। किसी तरह फांसी से बचे। सन् 1965 में ड्यूटी वहीं कहीं अस्कर्दू में लगी, तो वहां गोलियां भी बरसानी पड़ीं। वहीं, जहां पैदा हुए थे। जहां मुहल्ले की किसी छोटी-सी गुड़िया का हाथ पकड़ गलियां छाना करते थे। अब रिटायर हो गए हैं। वहां जाना चाहते हैं, जहां उन्हें गद्दार कहा जाता है और वहां से जाना चाहते हैं, जहां से चले जाने के बाद गद्दार कहलवाएंगे। मस्त तबीयत के कुलदीप यह बात सुनाने के बाद भी मस्त ही थे और मैं खयालों-ही-खयालों में अस्कर्दू जा पहुंची थी। बर्फ से ढंकी पहाड़ियों की बर्फ क्या मुहम्मद तकी के मन में उबलते लावे से पिघल जाएगी। क्या हम कभी उस पार जा पाएंगे, जहां की यादें हमारे बचपन को और हमारे बड़ों की जवानी को अपने आगोश में गिरवी रखे हुए हैं।

कुछ बरस पहले अपने गले में चांदी का तावीज पहने, अफीम के हल्के नशे में मुस्कराता डोगरी लोकगीतों में प्राण फूंक देनेवाला मस्तराम बस अकेला ही था। उसके जैसी आवाज किसी पहाड़ी गायक की ही हो सकती है। उसकी मृत्यु के बाद जिसे गाते देख वह अलबेला गायक याद आता है, वह प्रद्युम्न सिंह जंदराहिया हैं। उन्होंने पहले लोकगीत गाने शुरू किए, फिर उनसे प्रभावित हो, गीत लिखने शुरू किए। दीनू भाई पंत की रचनाएं उन्हें जबानी याद हैं। पं. शंभुनाथ जी से कविता की सलाह लेते रहे हैं। प्रसिद्ध संतूरवादक पं. शिवकुमार शर्मा के पिता जी स्व. पं. उमादत्त शर्मा से संगीत भी सीखा। वे गूजरों के गीत गाने में भी माहिर हैं, और जरा-सा हेर-फेर करने पर गूजर लगेंगे भी।

विदुषी मां श्रीमती शक्ति शर्मा और श्री शामलाल शर्मा के सुपुत्र भुवनपति शर्मा कॉलेज के दिनों से ही लेखन कार्य में रुचि लेते रहे हैं। पहले, सुनती थी, डोगरी के विषय में समीक्षात्मक लेख लिखते हैं। अब बाकायदा कवि भी हो गए हैं।

इन युवकों में एक सिर्फ समीक्षक भी थे—मदन पाघा, जिन्हें सब लड़के छेड़ रहे थे। जिनसे मैं न सिर्फ प्रभावित ही हुई, बल्कि जिनसे मिलकर प्रसन्न भी बहुत हुई। वे हैं विजय पुरी, जो बाल साहित्य लिखने में संलग्न हैं और बच्चों की एक संस्था उन्होंने बनाई है—डोगरी बाल कला केंद्र। 'वे पनीरी' नामक बच्चों की पत्रिका भी निकालते हैं। पानी देने की जरूरत जड़ को होती है। पत्तों को पानी मूर्ख देते हैं। विजय पुरी के इस प्रयास की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है।

मैं यह सब सोच रही थी तो युवकों के धीरे-धीरे हंसने पर मैंने पूछा, "क्या हुआ है?" तो इन लड़कों में बैठे मेरे भाई ज्ञानेश्वर की तरफ देख अरविंद कहने लगे, ज्ञानेश्वर कह रहा है, हमारी भी सिफारिश कर दी जाए। अब ज्ञानेश्वर जी का ये हाल है कि बड़े भाई से प्रभावित हो आज तक क्रिकेट खेलते रहे। यूनिवर्सिटी के कैप्टन रहे। रणजी ट्रॉफी में भी खेले। उनके बाद जीजा जी (सुरिंदर सिंह) को देख गाने की सूझी। रोज किसी उस्ताद को दूध देने जाते रहे और सा-रे-गा-मा सीखते रहे।

बरफी का बड़ा दोना गुलाब के फूलों से ढंककर उस्ताद के पास बतौर नजराना ले जाते देख, उसकी भाभी उसे रोज छेड़ती रही। सो अब कविता के पीछे पड़े हैं। कुछ छप भी गई हैं। ऐसे कलाकार का जाने मैं क्या बिगाड़ सकूंगी।

हां, तो मैं विजय पुरी की बात कर रही थी। वे और उनके सहयोगी बड़े उत्साहित हैं। उनकी संस्था में छोटे बच्चों की डोगरी कविता, कहानी की प्रतियोगिताएं भी होती हैं और डोगरी का इन बच्चों में प्रचार भी। मां-बाप जाने क्या सोचकर बच्चों से डोगरी में बात नहीं करते? अपनी मातृभाषा की मार्मिकता ही तो उन्हें गहरे संस्कार देगी।

इन्हीं बच्चों में से चुनकर विघना फिर किस काम के वेश में सफेद मिट्टी से लिपी कच्ची दीवार पर गोबर सनी उंगली से लकीरें खींचेंगा जिसमें डोगरी भाषा के लेखकों की चौथी पीढ़ी की उंगलियां स्याही में लिपटकर नया साहित्य सरजने को मचल उठेंगी।

□

कहानी

वे अड़तालीस घंटे

आशीष कौल

15 जनवरी, 1990 के बाद आनेवाला हर दिन पंडितों पर भारी पड़ रहा था। वादी में हर जगह लाउडस्पीकर की आवाजें अपना गला फाड़कर कह रही थीं कि–

''कश्मीर में रहना है तो 'अल्लाह हू अकबर' कहना है...पंडितो, अपनी बीवी और बेटियां हमारे लिए छोड़कर यहां से भाग जाओ...'' और आतंकी भागने का मौका भी नहीं दे रहे थे। वे समूहों में आते, पंडितों के घरों को घेरकर, कत्ल से पहले हिंदुओं के अंग-भंग करते, आंखें निकालते, नाखून खींचते, बाल नोचते और फिर जिंदा जलाते। चमड़ी खींचना, खासकर महिलाओं के स्तनों को गाड़ी से बांधकर घसीटते हुए तड़पा-तड़पाकर मारना आम बात थी। वहशियत भरे उन तीन दिनों के बाद वह काला दिन आया। 19 जनवरी, 1990 सुबह से लाउडस्पीकर पर हिंदुओं को वादी खाली करके जाने के लिए कहा जा रहा था। कर्फ्यू तो लग ही रहे थे, पर हवा में डर का जो माहौल था, उस पर कोई कैसे कर्फ्यू लगा सकता था? बंद घरों में सिसकियां लेते हिंदू परिवार, और जो हो रहा है वो देख न पाने की वजह से अपने आप को घरों में बंद किए कुछ मुस्लिम परिवार, दोनों ही वक्त के सामने लाचार थे। इस लाचारी की परवाह किए बगैर उस दिन अभय प्रताप अपने ऑफिस जाने के लिए निकले, पर फोन की घंटी ने उन्हें रोक दिया। उन्होंने फोन उठाया। दूसरी तरफ से आवाज आई–

''अभय प्रताप, आज कयामत फैसला करेगी।''

''कौन बोल रहा है?'' अभय प्रताप ने पूछा।

''वही बोल रहे हैं, जिनके साथ चाहो तो तुम अब भी चल सकते हो''

''हजार बार कह चुका हूं...कि आपकी आजादी मेरी समझ में नहीं आती। आप मेरा वक्त जाया कर रहे हो।'' अभय प्रताप ने तीखे शब्दों में जवाब दिया।

''वक्त ही नहीं बचा है तुम्हारे पास, अभय प्रताप। तुम्हें जल्दी सोचना होगा। हमारी आजादी की जंग में शामिल हो जाओ। यहां की आवाम तुम्हारी बात मानती है। तुम्हारे इस जंग में शामिल होने से, यहां कि अवाम भी मान लेगी कि हमारी जंग जायज है।'' सामने वाले ने शांति से कहा।

''मतलब यहां की अवाम नहीं मानती कि तुम्हारी जंग जायज है तो जनाब, क्यों नहीं मानते हो?'' अभय प्रताप ने उल्टा सवाल किया।

अब सामने वाला अपना आपा खोकर बोलने लगा–

''तुम्हारे जैसे लोगों ने यहां के मुसलमानों का दिमाग खराब कर रखा है, वो अपना अच्छा-भला नहीं समझते।''

''अवाम अपना अच्छा-भला समझती है, पर आपकी बंदूक से डरती है, लेकिन मैं इस बंदूक से डरनेवाला नहीं हूं। आपकी आजादी जायज होती तो आजादी का झंडा थामने वाला मैं पहला शख्स होता और हिंदुओं को भगाकर नहीं, उनके होने का सम्मान करके आजादी की जंग लड़ता...बिना बंदूक के।''

''हिंदुस्तान से कहकर आप हमें आजादी दो। हम बंदूक छोड़ देंगे।'' सामने वाले ने कहा।

''आप बंदूक छोड़ दो। अपने आप को आजाद महसूस करने लगोगे।'' बहुत ही ठहरी हुई आवाज में अभय प्रताप ने कहा।

अभय प्रताप मानने वाले नहीं, यह समझकर सामने वाले ने कहा–

''तो तू नहीं आएगा हमारे साथ?''

''नहीं। मैं अपने देश के साथ गद्दारी नहीं करूंगा और तुम्हारे जैसे गद्दारों को भी सबक सिखाऊंगा।'' अभय प्रताप ने कड़क आवाज में कहा।

सामने वाले ने अब तेज आवाज में अभय प्रताप को धमकाया–

''गद्दारी हिंदुस्तान ने की है। तुम हिंदुओं ने की है। हम पहले से आजाद रहना चाहते थे। तुम्हारा हिंदू राज हमको मरने के लिए हिंदुस्तान में लेकर आया, जो हमें मंजूर नहीं, और अब तुम्हारा जिंदा रहना भी हमें मंजूर नहीं।''

फोन कट गया।

एक सुरक्षाकर्मी अभय प्रताप की बात सुन रहा था। उसे पूरी तरह से अंदाजा था कि यह जिहादियों का फोन था। अभय प्रताप शांति से अपने ऑफिस के लिए निकले। सुरक्षाकर्मी ने उन्हें रोकते हुए कहा, ''सर, वी रिक्वेस्ट यू। प्लीज, आप बाहर मत जाइए सर।''

''मैं घर पर नहीं रुक सकता सोल्जर। ऐसे में उन्हें गलत मैसेज दूंगा कि मैं डर गया। उससे उनके हौसले और बुलंद हो जाएंगे, जो मैं नहीं चाहता।''

यह बातचीत चल ही रही थी कि फिर एक बार फोन बजा। इस बार फोन पर अभय प्रताप के सहायक कृष्णावतार थे। वे बड़े डरे हुए थे।

''उन्होंने अखबार के ऑफिस को आग लगा दी है, सर! पूरी बिल्डिंग जल रही है। सबकुछ खत्म हो रहा है, सर। आप जल्दी आ जाइए।''

अभय प्रताप कुछ पल एकदम शांत हो गए। इतने सालों की मेहनत से बनाया हुआ मुकाम

अब जलकर खाक होनेवाला था। पल-दो-पल तो उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करना है, पर तुरंत उन्होंने अपना होश संभाला और पूछा–

''तुम कहां हो, बाकी स्टाफ ठीक है न?''

''मैं और बाकी स्टाफ वहां से निकल आए, सर। बाजू की गली से आपको फोन कर रहा हूं। दमकल की गाड़ियों ने भी आने से मना कर दिया। कुछ कीजिए, सर। सब खत्म हो जाएगा।''

''तुम अपने घर पहुंचो, अवतार। मैं कुछ करता हूं।'' अभय प्रताप ने उसका फोन रखकर तुरंत अग्निशामक दल को फोन किया। फोन की रिंग जाती रही, जाती रही और हर एक सेकंड अभय प्रताप मन में कहते रहे...उठाओ, जल्दी उठाओ फोन।

''हैलो'' किसी ने फोन उठाकर कहा।

''हैलो, मैं अभय प्रताप बोल रहा हूं। 'द ट्रुथ' के ऑफिस में आग लग गई है। आप जल्दी वहां गाड़ियां भेज दीजिए। फौरन, मैं भी पहुंचता हूं।''

''नहीं जा सकते...'' सामने से डरी हुई आवाज में जवाब आया।

''क्यों?'' अभय प्रताप ने चिल्लाकर पूछा।

''ड्राइवर नहीं हैं, जनाब।''

''ड्राइवर क्यों नहीं हैं? और ड्राइवर नहीं हैं तो तुम चले आओ।''

''ड्राइवर हैं पर जाएंगे नहीं। उन्होंने यहां कागज चिपकाया है कि जो कोई भी 'द ट्रुथ' के वहां जाएगा...अपनी जान से जाएगा।''

अभय प्रताप ने फोन काटकर सीधा डी.एस.पी. के ऑफिस में फोन लगाया।

''हैलो। हां, मैं अभय प्रताप बात कर रहा हूं।''

''जी बोलिए, सर।'' आसिफ ने उधर से जवाब दिया।

''ये क्या व्यवस्था हो रही है शहर में सुरक्षा की? कोई भी आकर सरकारी मुलाजिमों को धमकाकर जाता है और डर के मारे वे अपना काम नहीं कर रहे।''

''हुआ क्या है?'' आसिफ ने अनजान बनते हुए पूछा।

''जी, मेरे ऑफिस में आग लगी है। आप तुरंत उसे बुझाने का कुछ इंतजाम कीजिए। मैं भी वहां पहुंच रहा हूं।''

''जनाब, अब आपके सिर पर बंदूक रखकर कोई कुछ करने को कहता है तो मजाल है किसी की जो उनकी हुकुम खिलाफी करे? उन बेचारों को क्यों कोस रहे हैं आप?''

''आपके पास तो उस बंदूक का जवाब बंदूक से देने की ताकत है न? कुछ कीजिए,'' अभय प्रताप बरसे।

आसिफ उस तरफ के बेफिक्री से बोले, ''सौ बात की एक बात, जनाब। सच कहूं तो मैं इसमें कुछ कर नहीं सकता। यह मजहबी मामला हो चुका है। मेरा परिवार भी इसी शहर में रहता

है। आप समझ सकते हो। और जनाब, सिर्फ बिल्डिंग ही जली है न...खैर मनाइए कि बिल्डिंग के अंदर आप नहीं थे। क्यों आप अपने साथ दूसरों की जान खतरे में डाल रहे हो? आप समझ रहे हो न मैं क्या कह रहा हूं?''

''जी। जो समझना था, मैं समझ चुका हूं!''

अभय प्रताप ने गुस्से से फोन रख दिया और उतने ही गुस्से से घर के बाहर चले आए और तेज रफ्तार के साथ अपनी गाड़ी की तरफ बढ़े। उन्हें जल्द-से-जल्द अपने ऑफिस पहुंचना था। तभी सेना की एक गाड़ी उनके आंगन में रुकी। कमांडोज ने उन्हें घेर लिया और उनमें से एक ने कहा–

''सर, आपकी जिम्मेदारी हम पर है। हम अभी आपके अखबार की तरफ से ही आए हैं। वो कोई मुजाहिदी नहीं थे। जिहादियों की एक पूरी पलटन थी। जिहाद कर रहे हैं वे। जुनून सवार है उन पर। उनके रास्ते में जो भी आएगा, मारा जाएगा। आपको कुछ हो गया तो सेना पर सवाल उठाए जाएंगे। आप हमारी सहायता कीजिए और प्लीज घर में रहिए सर, वरना मुझे आपको आदेश देना पड़ेगा। जो मैं करना नहीं चाहता। हमारी भी मजबूरी समझिए सर।'' उस ऑफिसर ने अभय प्रताप से कहा।

अभय प्रताप समझ गए थे कि मेरे अहं के लिए मैं सेना का नाम खराब नहीं कर सकता। वे अपने घर के अंदर लौट गए, पर उनका एक-एक पल परेशानी में डूबा था और फिर एक फोन बजा। सामने वही लोग थे–

''तेरी देशभक्ति हमने जलाकर राख कर दी है, अभय प्रताप। अब तो हमारे साथ आ जा।''

''देशभक्ति कागज के चंद पुर्जों में कैद नहीं हो सकती। तुम्हारी जहालत का नमूना पेश किया है तुम लोगों ने। देशभक्ति उस जली हुई बिल्डिंग में नहीं, मेरे विचारों में है, हमारे जमीर में है। मेरे साथ जुड़े ऐसे हजारों लोगों में है।'' अभय प्रताप गरजकर बोले।

''भाषण बंद कर! आज शाम तक का वक्त देता हूं तुमको। हम अभी भी चाहते हैं कि तू हममें शामिल हो जाए। वरना तेरे और तेरे लोगों के साथ जो करेंगे, तू खुद देख ही लेगा। बस, शाम तक का वक्त है...वरना ईशा की नमाज हम तेरे घर आकर पढ़ेंगे।''

फोन फिर एक बार कट गया।

अभय प्रताप का दिमाग गुस्से से भरा हुआ था। घर में ही बैठकर वे अपना नया आर्टिकल लिखने बैठे। जिसका शीर्षक था–

जलते घर को देखने वाले फूस का छप्पर आपका है
आपके पीछे तेज हवा है आगे मुकद्दर आपका है

अभय प्रताप जब भी गुस्से में होते, आरती और अभिमन्यु उनके आस-पास भी नहीं भटकते थे। दोनों ने उन्हें अपने कमरे में अकेला छोड़ दिया। आरती सुरक्षाकर्मियों के खाने के प्रबंध में लग

गई और खुली हवा का आदी अभिमन्यु ऊपर छत पर चला गया। छत से वह अपने पूरे इलाके पर नजर घुमा रहा था। कर्फ्यू के कारण हर गली, हर चौबारा सुनसान पड़ा था। एक खामोशी दूर-दूर तक फैली हुई थी। तूफान आने से पहले जैसे सबकुछ खामोश हो जाता है, वैसी वाली खामोशी थी। आने वाले तूफान की दस्तक और वह तूफान आया!

मगरिब की नमाज के बाद लाउडस्पीकर पर पंडितों को आखिरी चेतावनी दी गई कि पंडितो, भाग जाओ...वरना मर जाओ। हर गली-मोहल्ले में हथियार थामे लोग घूमने लगे थे। उस भीड़ की आवाज ने पूरी वादी में दहशत भर दी थी। वे लोग दो घंटे से लगातार चेतावनी दे रहे थे। हर गली में जुलूस निकल रहे थे। हिंदू लोगों के दरवाजे खटखटाकर उन्हें बाहर निकलने के लिए कह रहे थे। अभय प्रताप के घर का रुख किसी ने नहीं किया।

दो घंटे वादी में आतंक भरे थे। फिर मस्जिदों में ईशा की नमाज की अजान हुई और अजान के बाद कुछ देर सब शांत रहा। इतना शांत कि क्या होने जा रहा है, कोई अंदाजा ही नहीं था।

रात करीब 8:00 बजे ईशा की नमाज के बाद मुख्तार दौड़ता-दौड़ता अभिमन्यु के घर में दाखिल हुआ। वह बहुत घबराया हुआ था। उससे न बोला जा रहा था, न सांस ली जा रही थी। ऐसी भी अवस्था में उसने कहा, ''कत्लेआम का फरमान जारी हुआ है। कुछ कीजिए। आपकी तो सरकार में पहचान है, कुछ तो कीजिए।'' मुख्तार ने लपकर अभिमन्यु का हाथ पकड़ा और उसे अपने साथ खींचते हुए सबसे कहा कि आप सब लोग मेरे घर चलो। यहां बहुत खतरा है। उसके आने से अभिमन्यु को भी लगा कि कुछ कश्मीरियत बाकी है। बहुत देर बाद अभिमन्यु ने थोड़ी खुलकर सांस ली थी। अभय प्रताप मुख्तार के जज्बात समझ रहे थे, पर यह भी जानते थे कि हमें पनाह देने के कारण जिहादी मुख्तार और उसके पूरे परिवार का बुरा हश्र कर सकते हैं। इस वक्त मुख्तार का उनके घर में होना, मुख्तार की जान को खतरा था। अभय प्रताप ने मुख्तार को समझा दिया कि वे सेना की सुरक्षा में हैं। उन्हें कुछ नहीं हो सकता। अपने दरवाजे पर तैनात एक जवान को अभय प्रताप ने कहा कि मुख्तार को सही-सलामत छोड़ आए।

मुख्तार मन से जाने के लिए जरा भी तैयार नहीं था। ऐसी संकट की घड़ी में उसे अभिमन्यु के साथ रहना था, पर मुख्तार अभय प्रताप की बात मानने के लिए बाध्य था। टेंशन का माहौल देख मुख्तार अभय प्रताप को और परेशान करना नहीं चाह रहा था। मुख्तार उस घर से निकलकर जा ही रहा था कि एक ही क्षण में वह पलटा। पलटकर अभिमन्यु के पास जाकर उसका हाथ पकड़ कर कहा—

''तू घर से बाहर जरा भी नहीं निकलना, डर लगे तो तुरंत मेरे घर आ जाना। ठीक है? वरना अभी चल। मेरे घर में तुझे कुछ नहीं होगा!'' अभिमन्यु ने अपने पापा की तरफ ऐसे देखा कि उनके होते हुए उन्हें कुछ नहीं होगा। मुख्तार का डर कम करने के लिए अभिमन्यु ने उससे कहा—

''तू ज्यादा सोच मत। हमें कुछ नहीं होगा। मैं घर से बाहर नहीं निकलूंगा। तेरी कसम।''

अपने लिए मुख्तार की आंखों में जो चिंता थी, उसे देख अभिमन्यु को एक पल के लिए लगा कि मुख्तार के गले लग जाए। वह लगने भी वाला था कि लाउडस्पीकर फिर एक बार चिल्लाया, ''अल्ला हू अकबर'' और उस लाउडस्पीकर के साथ बाहर रास्ते पर खड़ी भीड़ जोर-जोर से नारे देने लगी, ''अल्ला हू अकबर''...अल्लाह हू अकबर।'' मुख्तार के गले लगने की अभिमन्यु की आरजू उस ''अल्ला हू अकबर'' की आवाज में दब गई। बेमन से ही सही, मुख्तार वहां से चला गया।

फोन बज रहा था। बाहर शोर इतना था कि फोन की आवाज भी उस शोर में ठीक-ठीक सुनाई नहीं दे रही थी। अभय प्रताप ने अभिमन्यु से कहा कि दरवाजे-खिड़कियां बंद कर लो...और उन्होंने फोन उठाया। दूसरी तरफ वही आवाज उनकी थी, जिनके नाम नहीं होते।

''क्या तय किया, अभय प्रताप भाईजान? चले आइए हमारे साथ।''

''नहीं...! और दुबारा कभी कॉल नहीं करना।'' अभय प्रताप ने बेहद गुस्से में कहा।

''दुबारा कॉल करने की नौबत नहीं आएगी, अभय भाईजान। कितनी देर सुरक्षा में रहोगे? और आधा घंटा? एक घंटा? और जिनके पास सुरक्षा नहीं, तुम्हारे उन लोगों को कैसे बचाओगे?''

यह बात सुनते ही अभय प्रताप ने झटके से फोन कट किया और ऑफिस में उनके जो सहायक थे, कृष्णावतार, उनके घर फोन डायल करना शुरू किया, उन्हें यह कहने के लिए कि जल्दी-से-जल्दी घर खाली करके वहां से निकल जाओ। पहली दो दफा फोन एंगेज आ रहा था। अभय प्रताप को कृष्णावतार की चिंता खाए जा रही थी। फोन अभी भी एंगेज था, अभय प्रताप लगातार डायल करते रहे। उनकी परेशानी देख आरती बहुत घबरा गई। अभय प्रताप को यकीन था कि उनके अखबार के हिंदू स्टाफ की जान अब खतरे में है। स्टाफ में सिर्फ कृष्णावतार के घर ही फोन था, उस वक्त अभय प्रताप के हाथ में सिर्फ फोन करके उसे आगाह करने के सिवाय कोई उपाय नहीं था।

जब तक कि कृष्णावतार का फोन एंगेज आ रहा था...बाकी लोगों की चिंता भी अभय प्रताप को सता रही थी। पुलिस को कॉल करके कोई फायदा नहीं था, क्योंकि उनके हिसाब से अब यह मजहबी मामला था।

अभय प्रताप ने सीधे राज्यपाल को फोन लगाया। सेक्रेटरी से जवाब मिला कि वे इस वक्त मसरूफ हैं, थोड़ी देर में आपको कॉल बैक करेंगे। अभय प्रताप ने फिर कृष्णावतार को फोन लगाया। इस बार कृष्णावतार के घर के फोन की घंटी बजी और उसी वक्त कृष्णावतार के दरवाजे पर 'हिंदुस्तान मुर्दाबाद। जहरे ए कश्मीर जिंदाबाद' के नारे के साथ दस्तक हुई।

कृष्णावतार जान बचाने के लिए अपनी बेटी और बीवी को लेकर अंदर के कमरे में भागा। फोन की घंटी बजती रही, बजती रही, पर उसे उठाने की हिम्मत कृष्णावतार में नहीं थी, क्योंकि तब तक जिहादी खिड़कियां तोड़कर घर में दाखिल हो चुके थे। जिस कमरे में कृष्णावतार छिपा था,

उस कमरे का दरवाजा तोड़कर जिहादियों ने पहली गोली कृष्णावतार की बीवी को मारी। उसके हाथ में 6 साल की उनकी बेटी थी। बेटी को बचाने कृष्णावतार लपका तो धांय-धांय करती 5-6 गोलियां उसके शरीर के आर-पार निकल गईं और खून में लथपथ कृष्णावतार की लाश उसकी बेटी के सामने गिर पड़ी। उस नन्ही-सी जान ने रोना शुरू किया। उसके रोने का शोर बंद करने के लिए सिर्फ एक गोली काफी थी, जो बंदूक से निकल भी गई।

बाहर बढ़ते 'अल्लाह हू अकबर' के शोर ने अभय प्रताप को जैसे बता दिया था कि मौत उनके घर पर कभी भी दस्तक दे सकती है। अब तो यह आलम था कि घर के बाहर भी मौत थी और घर के अंदर भी। बीतनेवाला हर पल दहशत भरा था कि जाने कब, कोई दरवाजे पर दस्तक दे और उनकी गोलियों से सीना छलनी हो जाए। शायद आरती ने अभय प्रताप की आंखों में मौत को देख लिया था। अब वहां से निकल पाना भी मुश्किल था। आरती ने यह स्वीकार भी कर लिया कि अब इस इंतजार का अंजाम सिर्फ मौत है! डरे हुए अभिमन्यु और आरती को अपनी बांहों में समेटे अभय प्रताप दरवाजे की तरफ देखते रहे।

आरती कभी अपने बेटे को देखती, कभी अपने पति को। अभिमन्यु के सिर पर हाथ फेरते। कम-से-कम उसको जिंदा रखने की आशा में आरती ने झिझकते हुए अभय प्रताप से पूछा, ''कम-से-कम इसे तो कलमा पढ़ने दीजिए, कहने दीजिए इसे ला इलाही इल्लाला...। ये जिंदा रहा तो मेरी आत्मा नहीं भटकेगी।'' आरती के मुंह से वह अल्फाज सुनकर अभय प्रताप को लगा कि मौत शायद इसे कहते हैं। अभिमन्यु ने आगे बढ़कर अपनी मां को गले लगा लिया और आरती की इतने दिन अंदर दबी आवाज झर-झर करते आंसू बनकर आंखों से बहने लगी और उसी वक्त दरवाजे पर जोर-जोर से खट-खट हुई। आरती ने रोते-रोते अभिमन्यु को कसकर अपने सीने से लगा लिया। सोचा, कि अभी दरवाजा तोड़कर वो अंदर आ जाएंगे और फिर इस खौफ का हमेशा के लिए अंत हो जाएगा।

अभय प्रताप ने अपने आप को मौत के लिए तैयार किया, पर अभिमन्यु को अभी भी उम्मीद थी कि उसके पापा सबकुछ ठीक कर देंगे। मां के पल्लू में सिमटा अभिमन्यु दरवाजे की तरफ देखता रहा। उसे अपनी और मम्मी की तेज चल रही धड़कन साफ-साफ सुनाई दे रही थी। उस दहशत को चीरती हुई एक जानी-पहचानी आवाज सुनाई दी माजिद की। अभिमन्यु की रुकी हुई धड़कनों ने फिर धड़कना शुरू किया...और अभय प्रताप ने आगे बढ़कर दरवाजा खोल दिया। घबराया हुआ माजिद घर के अंदर दाखिल हुआ और अभय प्रताप से कहने लगा, ''वे आपकी तरफ बढ़ रहे हैं। चलिए, निकलिए यहां से। वे कभी भी अंदर आ सकते हैं।''

अभय प्रताप खामोश खड़ा रहा। उन्हें मौत के डरकर भागना नहीं था। माजिद ने आरती और अभिमन्यु को देखकर कहा, ''साहब, वे आपसे बहुत नफरत करते हैं। आपका बदला वो आपके परिवार से न ले लें।'' अभय प्रताप की रूह कांप गई। फोन की घंटी ने फिर एक बार अभय प्रताप को जिंदा किया। फोन की दूसरी तरफ खुद राज्यपाल जगमोहन थे। उनकी

आवाज सुनते ही अभय प्रताप ने कहा कि ''सारे हिंदुओं की जान पर बन आई है। कोई एक्शन क्यों नहीं लिया जा रहा है?''

जगमोहन ने जवाब दिया कि ''सारे हिंदुओं को सुरक्षित यहां से ले जाया जा रहा है। एक्शन उसके बाद ही हो सकता है; गोली से बचना है तो गोली मारनी पड़ेगी। तुम समझ रहे हो न मैं क्या कह रहा हूं?''

अभय प्रताप उनका इशारा समझ गए। बाहर तैनात ऑफिसर ने इशारा किया कि जल्दी चलिए, सर। अभय प्रताप को उस वक्त के राज्यपाल जगमोहन की नीतियों का अंदाजा था। उन्हें मैदान साफ मिले, इसलिए अब अभय प्रताप ने एक पल भी देर नहीं की और सब वैसे-के-वैसे दौड़कर जाकर गाड़ी में बैठ गए।

मौत उनका हर गली पर इंतजार कर रही थी, पर उनके साथ सुरक्षाकर्मी थे और उनके सालों पुराने ड्राइवर पर उन्हें सही-सलामत रखने का जुनून सवार था। माजिद ने गाड़ी बाहर निकाल ली। कुछ ही फासले पर मुख्तार का घर था। अभिमन्यु ने माजिद से कहा, ''बस, एक मिनट गाड़ी रोक दो, मैं मुख्तार को बताकर आता हूं।'' सुरक्षाकर्मियों ने गाड़ी से उतरने के लिए बिल्कुल ही मना कर दिया। अभिमन्यु का चेहरा उतर गया। आरती ने अभिमन्यु से कहा कि बस एक-दो दिन की ही तो बात है। मुख्तार समझदार लड़का है। वो समझ जाएगा।

अभय प्रताप ने माजिद को गाड़ी आगे लेने के लिए इशारा कर दिया। अभिमन्यु को महसूस हुआ कि उसका कुछ छूटता जा रहा है। वह मुख्तार के घर को देखता रहा कि शायद मुख्तार जाते-जाते नजर आ जाए, पर मुख्तार अपने घर में ही बैठा रहा था।

छोटी-मोटी गलियों से, हथियारबंद लोगों से बचते-बचाते माजिद ने एक गली में गाड़ी मोड़ दी।

''ये किस तरफ ले रहे हो माजिद?'' अभय ने पूछा।

''अभी हाई-वे से जाना सुरक्षित नहीं होगा साहब! मैं वेरीनाग से गाड़ी निकालूंगा।'' अभय प्रताप को उसका कहना ठीक लगा। सुरक्षाकर्मियों ने उन्हें कस्बे से सुरक्षित बाहर लाकर छोड़ दिया। उनकी गाड़ी अभिमन्यु के कॉलेज के पास रुकी, जहां सुरक्षाकर्मी उतर गए। आगे बाएं जाते तो रास्ता वादी की तरफ जाता था और दाएं मुड़ते तो जवाहर टनल की तरफ, जो वादी से बाहर दूर-दूर ले जाती थी। माजिद ने दाहिने के रास्ते पर गाड़ी मोड़ी। पीछे छूटते कॉलेज को देखकर अभिमन्यु को लगा कि मैं यहां वापस कब आऊंगा, भगवान जाने! मुख्तार का खयाल उसके मन में शुरू हुआ कि मैं जाने से पहले मुख्तार को बता भी नहीं पाया कि मैं निकल रहा हूं।

अपने कॉलेज को ओझल होते देखता-देखता अभिमन्यु अब एक नई राह पर चल पड़ा था जिसकी मंजिल तय नहीं थी। आगे का सफर अब माजिद के भरोसे था। रास्ते में बर्फ जमी होने के कारण माजिद को गाड़ी निकालने में काफी दिक्कतें आ रही थीं। रास्ता भी सुनसान हो चला

था। दूर-दूर तक कोई नजर नहीं आ रहा था। यह रास्ता केवल माजिद को मालूम था। गाड़ी चलाते वक्त वह बार-बार आरती को आईने से देख रहा था। उसकी नजर आरती के कान में पहने जेवर पर जा रही थी। इतने अंधेरे में भी अभय प्रताप ने वह महसूस किया। गहनों को देख माजिद काफी देर कुछ सोचता रहा और अचानक से एक मोड़ पर माजिद ने गाड़ी रोक दी। अभय प्रताप को समझ में नहीं आ रहा था कि वो कर क्या रहा है। उसने पीछे मुड़कर आरती से कहा—

''भाभी, अपने जेवर उतारो!''

अभय प्रताप, आरती और अभिमन्यु एकदम सुन्न हो गए और माजिद को शंका से देखने लगे। अभिमन्यु को लगा कि कहीं माजिद जिहादी तो नहीं! वह अपने साथ कोई बंदूक तो नहीं लाया है! आरती को लगा, अब सब खत्म...माजिद उन लोगों में शामिल है...हमें उनके हवाले करने के लिए ही इस रास्ते से लाया है और उसके पहले हमें लूट रहा है। तीनों को झटका लगा कि बाहर की दुनिया दुश्मन थी ही, अब यह भी वही बरताव कर रहा है।

''तुम्हारा दिमाग तो ठिकाने है माजिद?'' अभय प्रताप ने सख्त आवाज में पूछा। माजिद निडर होकर बोला कि ''जी साहिब! तभी तो भाभी को जेवर उतारने के लिए कह रहा हूं और आप भी अपना जनेऊ उतारकर दे दीजिए, ताकि आगे कोई रोके तो उसे यह न लगे कि आप हिंदू हो वरना मारे जाएंगे।''

अभी भी माजिद को लेकर सबके मन में शंका थी, पर उनके पास दूसरा कोई रास्ता नहीं था। आरती ने एक-एक करके अपने सारे जेवर उतार दिए...अभय प्रताप और अभिमन्यु ने अपने जनेऊ उतार दिए। आरती अपनी देज-होर उतारना नहीं चाहती थी...देज-होर विवाहिता कश्मीरी पंडित महिलाओं के लिए एक अपरिहार्य गहना है जो 'सुहाग' की एक निशानी के रूप में हमेशा पहने रहती हैं।

माजिद ने कहा, ''भाभी, यही तो उतारना जरूरी है, वरना वे समझ जाएंगे कि आप हिंदू हो।'' अभिमन्यु को देख आरती ने अपने देज-होर उतार दिए। उनके जेवर और जनेऊ माजिद ने एक कपड़े में बांधकर डैशबोर्ड में डाल दिए। गाड़ी चल पड़ी। रास्ता बहुत खराब था, पर माजिद को जरा भी परवाह नहीं थी। उसकी गाड़ी ने तेज रफ्तार पकड़ी। आरती, अभिमन्यु और अभय प्रताप एकदम अलर्ट थे। उन्हें माजिद के इरादों पर शक था, पर बिना कुछ बोले वह (माजिद) उन्हें जहां ले जा रहा था, चले जा रहे थे।

अब अनंतनाग से वे कम-से-कम 20 कि.मी. दूर आ चुके थे। फिर भी माजिद गाड़ी ऐसे भगा रहा था जैसे कि एक पल के लिए भी रोका तो शायद मौत वहीं मिल जाए, और हुआ भी वैसा ही। तेज चल रही गाड़ी की रफ्तार अचानक से धीमी हो गई।

उनसे थोड़ी दूरी पर तीन लोग बीच रास्ते खड़े थे। माजिद को जबरन गाड़ी रोकनी पड़ी। अभिमन्यु को अब तो पूरा यकीन हो गया कि यह माजिद उनमें शामिल है। उन तीनों ने गाड़ी को

घेर लिया और अंदर तांक-झांक करने लगे। दरवाजे को पीटते वो बार-बार गाड़ी का दरवाजा खोलने के लिए कह रहे थे। अंधेरा इतना घना था कि एक-दूसरे के चेहरे भी मुश्किल से दिख रहे थे। ऊपर से ठंड के कारण दिमाग ने काम करना बंद कर दिया था। वे लोग कश्मीरी में माजिद को बाहर बुला रहे थे। आरती को लगा कि अब सब खत्म। एक ही क्षण में माजिद हमें उन सबके हवाले कर देगा। माजिद मौका ढूंढ़ रहा था कि कैसे इन्हें चकमा देकर गाड़ी भगा दी जाए, पर एक बंदा बिल्कुल कार के सामने ही खड़ा था। माजिद जान गया था कि वे जिहादी थे। इसलिए माजिद दरवाजा खोलने के लिए तैयार ही नहीं था। उन्होंने अब गाड़ी पर लातें मारना शुरू किया और एक ने अपनी बंदूक निकाल ली। उनकी बंदूक देख अभय प्रताप बाहर उतरने लगे। अभिमन्यु और आरती ने उनका हाथ थाम लिया और बाहर न जाने के लिए उन्हें रोक दिया, पर तब तक अभय प्रताप दरवाजा खोल चुके थे। उनमें से एक आदमी ने अभय प्रताप को गाड़ी से बाहर खींच लिया और पूछताछ करने लगे कि हिंदू है या मुसलमान। माजिद तुरंत गाड़ी के बाहर कूद गया और कश्मीरी में कहा कि हम सब मुसलमान हैं।

नाम क्या है? उसने कश्मीरी में पूछा–

माजिद ने अभय प्रताप का नाम माजिद अब्दुल बताया। अभय प्रताप खुद क्यों नहीं बोल रहे हैं इसपर उन्हें गहरा शक हुआ। दूसरे ने गाड़ी में झांककर देखा, पर अंधेरे की वजह से अंदर हिंदू बैठा है या मुस्लिम, जरा भी समझ में नहीं आ रहा था। मौत फिर एक बार उनके सामने थी। माजिद ने आगे बढ़कर उन्हें समझाने की कोशिश की कि बच्चा बेहद बीमार है। इसका इलाज कराने जा रहे हैं। फिर भी उन लोगों को यकीन नहीं हो रहा था...उन्होंने माजिद और अभय प्रताप से मारपीट करना शुरू किया और कहा कि कुरान की कोई आयत कहो। माजिद ने तुरंत एक आयत कही। वे थोड़े शांत हुए, पर अब अभय प्रताप से अल्ला हू अकबर सुनना चाहते थे। उन्होंने अभय प्रताप से कहा कि मुसलमान है तो अल्लाह हू अकबर कहने में हर्ज ही क्या है...? अभय प्रताप ने अपने बीवी और अभिमन्यु को देखा। आरती अपने बेटे को अपने सीने से लगाए मन में सिर्फ भगवान का नाम जप रही थी। अभय प्रताप के मन में एक ही खयाल आया कि जिंदा रखना है, तो जिंदा रहना है। मौत उनके सामने थी और मौत के सामने अभय प्रताप झुके, पर अपने अंदाज में। उन्होंने दरूद शरीफ की वह आयत सुनाई, जिसमें हर मुसलमान सल्लेला हूं अलै ही वसल्लम की खैरियत के लिए दुआ मांगते हैं।

दुरूद शरीफ के अल्फाज–

''अल्लाहुम्मा सल्ले अला मुहम्मदिन व अला आले मुहम्मदिन कमा सल्लईता अला इब्राहीमा वअला आले इब्राहीमा इन्नका हमीदुम मजीद''

(ऐ अल्लाह! मुहम्मद और आले मुहम्मद पर इसी तरह रहमतें नाजिल फरमा जिस तरह तूने इब्राहीम और आले इब्राहीम पर नाजिल फरमाईं।)

वह आयत पढ़ते वक्त अभय प्रताप के मन में यह चल रहा था कि वाकई सितारों के पार अगर कोई दुनिया है तो वहां बैठे नबी इस नए इस्लाम को देख शायद आहत हो गए हों और उन्हें सच में दुआ की जरूरत पड़ रही हो...? नबी के अल्लाह ने अभय प्रताप की आयत सुनी हो या नहीं, पर आरती के भगवान ने उसकी पुकार सुनी थी...पेट्रोलिंग हो रही एक सेना की जीप अपना सायरन बजाते वहां आती दिखी और जिहादी भाग गए।

तीनों मन-ही-मन अपनी सोच पर शर्मिंदा हुए कि उन्होंने माजिद पर शक किया, पर उनके मन में क्या चल रहा था, इससे बेखबर माजिद ने इस बार 100-120 के बीच की रफ्तार पकड़ी, जहां अगर जिहादियों के हाथ से न मरते तो शायद इस रफ्तार के कारण उस गहरी खाई में गिर कर मर जाते। पर अब उन्हें माजिद पर पूरा भरोसा था। वे सब-के-सब इत्मिनान से तो नहीं थे, पर अब खौफजदा भी नहीं थे...सिर्फ मायूस थे।

आरती से रहा न गया। उसका मन बार-बार उसे कचोट रहा था कि उसने माजिद पर शक किया। उसने गाड़ी चला रहे माजिद के कंधे पर अपना हाथ हल्के-से रखते हुए कहा, ''माजिद भाईजान, माफ कर दीजिए...मैंने आप पर शक किया...'' उस पर माजिद ने जो कहा, वह सुनकर तो माजिद और उनके बीच का रहा-सहा फासला भी मिट गया।

माजिद ने कहा, ''जानता हूं भाभी। आप सब मुझे शक की निगाह से देख रहे थे। सही भी था। गुनहगार को ऐसी नजर से ही देखना चाहिए। गुनाह तो हमसे हुआ है। आप क्यों माफी मांग रही हैं? अगर हो सके तो आप सब मुझे माफ कर दें कि मैं आपको अपने घर ले जाकर वहां सुरक्षित रखने की बजाय यहां से दूर ले जा रहा हूं। मेरे जैसे कुछ लोग मिलकर आपकी सुरक्षा में उतर आते तो यह नौबत ही नहीं आती। हमें हमारी बुजदिली के लिए माफ कर दीजिए भाभी। पर हम कुछ समझते, तय करते, उससे पहले ही बहुत कुछ हो गया!''

माजिद के वो शब्द सुनने के बाद काफी देर तक गाड़ी के अंदर खामोशी छाई रही। गाड़ी के अंदर बैठे हर शख्स ने उस वक्त महसूस किया कि सर्दी के उस मौसम में, जहां घाटी ने सफेद बर्फीली चादर ओढ़ रखी थी, अब उसका रंग सुर्ख हो चला था। जगह-जगह पर खून के निशान थे। वादी ने यह लाल मौसम कई बार देखा था, पर इस बार इतना खून बहा था कि बहकर जाता भी तो कहां जाता? झेलम के पानी में बर्फ बनकर जम गया था। दर्द झेल रही झेलम भी बर्फ-सी जम गई थी।

वेरीनाग। झेलम का उद्गम स्थान, जिसने अपनी आबोहवा से कश्मीरियत को सींचा था और आज वह भी सर्द होकर बहना भूल गई थी। तूफानी रफ्तार से माजिद वेरीनाग से गुजर रहा था, आरती ने झेलम को हाथ उठाकर प्रणाम किया। गुजरती झेलम को देखते-देखते आरती के मन में खयाल आया कि वह झेलम आगे चलकर चिनाब में मिलकर पाकिस्तान पहुंच जाती है। हम हिंदुओं के खून के सने पानी पर वहां की आनेवाली पीढ़ी पलनेवाली है। आरती का मन शाप देने

के लिए मचल गया, पर तभी उसकी नजरें अभिमन्यु के मासूम चेहरे पर पड़ीं और उसने अपने आप को रोक लिया। उसे प्रकृति का नियम मालूम था—जो आप बोओगे। वही आप काटोगे। अपने बेटे के कारण उसने अपना मन काला होने से रोक लिया, पर समय की काली स्याह से अपने आप को बचा न पाई। सफेदी से लाल होती और लाल से स्याह होती वह 19 जनवरी की काली रात थी।

अजीब रात। दहशत, वहशियत, अविश्वास और शायद कश्मीरियत का अंत करती वह काली रात, जिसने चंद मिनटों में ही अभिमन्यु, आरती और अभय प्रताप को उस मुकाम पर लाकर खड़ा कर दिया, जहां कुछ देर पहले उनके पास अपनी जायदाद, संपत्ति, रुतबा और अपना खुद का हवेलीनुमा घर था और कुछ ही घंटों बाद वे लाचार और लावारिस-सी जिंदगी जीने के लिए मजबूर होनेवाले थे। गाड़ी ने रफ्तार से पीर पंजाल के पहाड़ों का रास्ता ले लिया और कुछ जिंदगियां अभी भी उस उम्मीद के साथ झेलम पार चली आईं कि कुछ ही दिनों में सबकुछ ठीक होगा और फिर झेलम के दोनों किनारे बसी दो सभ्यताएं फिर से एक-दूसरे के साथ जीना सीख लेंगी। अब झेलम दिखना बंद हो चुकी थी और गाड़ी जवाहर टनल में प्रवेश कर चुकी थी।

उस सर्द काली रात में माजिद बिना रुके बिना थके गाड़ी चलाता रहा। सूरज की किरणों के साथ उसने जम्मू की एक गली में गाड़ी रोक दी। माजिद के चेहरे पर हल्की खुशी थी कि उसने अपने साहब को सही-सलामत जम्मू पहुंचा दिया है। जम्मू से कश्मीर की बस लेकर वह वापस वादी लौटने वाला था। उसने कार की चाबी अभय प्रताप के हाथ में रखते हुए कहा कि ''साहब, अब मुझे वापस लौटना पड़ेगा वरना मेरी अम्मी परेशान हो जाएंगी।''

कार की चाबी उसे वापस करते हुए अभय प्रताप ने उसे कहा, ''तुम गाड़ी अपने साथ वापस ले जाओ, माजिद। हफ्ते भर में सबकुछ ठीक हो जाएगा। तब तुम हमें वापस लेने आ जाना।''

माजिद के पास सोचने के लिए वक्त नहीं था या फिर शायद उसे भी उम्मीद थी कि सच में हफ्ते भर में सबकुछ ठीक हो जाएगा। वह गाड़ी में बैठकर निकल गया। जाने से पहले उसने अपनी जेब में हाथ डाला और जितने भी पैसे उसके पास उस वक्त थे, सारे-के-सारे अभय प्रताप के हाथ में रखकर बड़ी अदब से कहा कि ''साहब, मेरी औकात नहीं कि मैं आपको पैसे दे दूं, पर यह कुछ पैसे हैं, जो आपके काम आ सकते हैं।'' अभय प्रताप ने पैसे लौटाने चाहे तो उन पैसों को वापस अभय प्रताप के हाथ में रखकर माजिद ने कहा, ''आप जब वापस आओगे तो इसके दुगने पैसे आपसे ले लूंगा साहब।''

अभय प्रताप आगे कुछ कहें, इससे पहले गाड़ी में बैठकर वह निकल गया। हम सही घर के सामने उतरे हैं या नहीं, इसका अंदाजा लेकर अभिमन्यु, आरती और अभय प्रताप उस घर की तरफ बढ़े और उन्होंने डोर बेल बजाई। घर के अंदर से आहट महसूस हो रही थी, पर काफी देर दरवाजा किसी ने खोला नहीं। वह घर अभय प्रताप के मौसेरे भाई विवेक जुत्शी का था। विवेक ने

दरवाजा खोला, पर उसके चेहरे पर इनके सही-सलामत यहां तक आने का कोई आनंद नहीं था। उल्टे, इन तीनों को अपने घर में देख उस परिवार के दोनों पति-पत्नी कुछ परेशान-से दिखे। भाभी ने कहा भी कि हमें लगा ही था कि तुम लोग यहीं आओगे। इस पर अभय प्रताप कुछ बोले नहीं।

अभिमन्यु का हमउम्र भाई राहुल अभि को देख बड़ा खुश था। वह उसे अपने साथ अपने कमरे में ले गया। आरती भी अपनी देवरानी के साथ अंदर चली गई और अभय प्रताप नहाने चले गए। अभिमन्यु, आरती और अभय प्रताप नहा-धोकर थोड़ा हल्का महसूस करने लगे। अभिमन्यु की चाची ने नाश्ते का अच्छे से प्रबंध किया, पर अभी भी कोई खुलकर कुछ बातचीत नहीं कर रहा था। अभय प्रताप के भाई ने सिर्फ इतना कहा, ''बहुत बुरा हुआ सबकुछ। हम अखबार में खबरें पढ़ रहे थे।''

अभिमन्यु ने महसूस किया कि उनके यहां आने के कारण इस घर का माहौल कुछ अजीब-सा हो गया है। यह वह चाची है ही नहीं, जो गरमियों की छुट्टी में पूरे परिवार सहित हमारे यहां 10-10 दिन बिताकर जाती थी। आरती उनकी मेहमाननवाजी में कोई कसर नहीं छोड़ती थी। शॉपिंग कहो शॉपिंग, घूमने कहो घूमना, जो चाची कहती, आरती उनको छोटी बहन मानकर उनकी हर मांग को पूरा करती थी। आरती की तारीफ करते चाची नहीं थकती थी और अब आज चाची ने आरती को प्रणाम तक ठीक से नहीं किया था। हालात ही ऐसे थे कि वह चुपचाप जो हो रहा है, बस उसे देखे जा रहा था। दोपहर के खाने के इंतजाम में आरती अपनी भाभी की मदद करने किचन में गई। काम करते-करते जब दोनों की बातें शुरू हो गईं तब आरती अपनी आपबीती सुनाने लगी, पर उन्हें ऐसा लगा कि उनकी भाभी वह सुनना नहीं चाहती। आरती चुप-सी हो गई और उसके अंदर कुछ खटकने लगा।

खाना बनकर तैयार हुआ। भाभी सबको खाना परोस रही थी और साथ-ही-साथ उनकी अपनी माली हालत कैसे ठीक नहीं, यह भी बता रही थी। आरती और अभय प्रताप को जो समझना था, समझ चुके थे। खाना खाने के बाद आरती, अभिमन्यु और अभय प्रताप एक कमरे में बैठकर इसी सोच में थे कि अब करना क्या है?

''मैं जरा कुछ फोन करके आता हूं। पता करता हूं वहां हो क्या रहा है?'' यह कहकर अभय प्रताप उठकर बाहर जाने लगे।

''मैं भी चलता हूं।'' उनके साथ चलते हुए अभिमन्यु ने कहा। अभय प्रताप ने एतराज नहीं जताया।

दोनों के घर से बाहर जाने के बाद दरवाजा अंदर से बंद करने के लिए आरती भी उनके साथ चल पड़ी और भाभी के कमरे से आती आवाजें उसके कानों में पड़ीं। भाभी विवेक से कह रही थी, ''कितने दिन रहेंगे ये लोग यहां? इन्हें यहीं आना था? उनके घर छुट्टियां क्या मना लीं हर साल, आ गए वसूल करने।'' विवेक उसे कहते रहे, ''चुप हो जाओ। कहीं भाईसाहब सुन न लें और तुम भूल गई हो कि जिस घर के लिए तुम इतना इतरा रही हो, भाई साहब अगर गारंटर न होते तो

यह घर बनता ही नहीं।'' इस पर भी भाभी ने विवेक को सुना ही दिया, ''कोई एहसान नहीं किया उन्होंने। उनका फर्ज था, छोटे भाई की मदद करना। उनकी इतनी जान-पहचान है तो पूरा जम्मू शहर पड़ा है। मेरे ही घर में मनहूसियत लेकर आना था उन्हें? आपसे अगर बोला नहीं जा रहा तो मैं बोल देती हूं उनको कि शरणार्थी कैंप लगे हुए हैं। जाएं वहां।''

'शरणार्थी' शब्द सुनते ही अभय प्रताप और आरती का कलेजा फिर एक बार कांप-सा गया। कमरे के बाहर खड़े अभिमन्यु, अभय प्रताप और आरती ने अपनी चप्पलें पहनीं। सामान तो उनके पास कुछ था ही नहीं।

कुछ ही सेकंड्स में उन्होंने उस घर से विदा ली। सहमा-सहमा सा अभिमन्यु अपने मां-बाप के साथ बस चलता रहा। कोने के एक मंदिर में वह रुके।

मंदिर हर तरह से सुरक्षित दिख रहा था। मंदिर में आने-जाने वाले लोग बेफिक्र थे। उन्हें कोई डर नहीं था कि कहीं से कोई हमला हो सकता है, वे अपने में इतने व्यस्त थे, शायद इसलिए उस मंदिर में इन तीन परदेसी लोगों पर किसी की नजर नहीं पड़ी। जितने वहां के लोग सुकून से थे, उतने ही अभय प्रताप अंदर से उखड़े-उखड़े थे।

अभय प्रताप सामने वाले बूथ पर वादी के हालातों का जायजा लेने गए, पर जिसे भी वे फोन करते, कोई भी ठीक से जवाब दे नहीं रहा था। अभय प्रताप के सवालों से बचता दिख रहा था। हुआ क्या है, कोई कुछ बता नहीं रहा था। अभय प्रताप बेहद परेशान हो गए और फाइनली उन्होंने राज्यपाल के ऑफिस में फोन लगाया। राज्यपाल अपने ऑफिस में नहीं थे, पर उन्हें वहां के ऑफिसर की बात से इतना ही समझ में आया कि वादी पूरी तरह से सुलग चुकी है। वहां जाना खतरे से खाली नहीं है। सब ठीक होने में और 2-4 रोज लग सकते हैं। फोन रखने से पहले सामने वाले ऑफिसर ने कहा, ''अभय प्रतापजी, जरा सुनिए।'' अभय प्रताप उसे सुनने लगे। बात शुरू करने में उसने थोड़ा वक्त लिया और झिझकते-झिझकते उसने कहा, ''आप कुछ दिन जम्मू में ही बिताइए, प्लीज। उन्होंने आपका घर फूंक दिया है!'' उस वक्त अभय प्रताप एकदम से ठंडे पड़ गए। उनके पास अब कहने-सुनने के लिए कुछ बचा नहीं था...वहां क्या स्थिति है, वे बिल्कुल समझ गए थे, पर वे अभी भी टूटे नहीं थे। उनके मन की हालत एक शेर में अच्छे से बयां हो सकती है—

वो दिलों में आग लगाएगा, मैं दिलों की आग बुझाऊंगा
उसे अपने काम से काम है, मुझे अपने काम से काम है।

उनके मन में अब जम्मू के अखबार का पता घूम रहा था। अभय प्रताप वापस मंदिर लौटे। बड़ी आशा से आरती ने उनसे पूछा, ''हम अपने घर कब जाएंगे?''

''थोड़ा वक्त लगेगा!'' अभय प्रताप बस इतना ही कह पाए। उन्होंने आरती पर राज जाहिर होने नहीं दिया।

वे तीनों वहां काफी देर बैठे रहे। अभिमन्यु को अपना घर बार-बार याद आ रहा था।

अभिमन्यु के दिल में परिस्थिति के खिलाफ एक आग-सी लगी थी। उस आग की लपटें वादी में बैठा अभिमन्यु महसूस कर रहा था।

मुख्तार अभिमन्यु के घर से निकलती आग की लपटें अपनी आंखों से देख रहा था। वादी में कल रात जालिमों ने अभय प्रताप के घर को आग लगा दी थी, जो अभी तक बुझी नहीं थी या फिर बुझाने वाला कोई नहीं था। अपने सामने जलते अपने यार के मकान को देखकर मुख्तार आपे से बाहर हो गया था। घर के अंदर जाकर तसल्ली करना चाहता था कि उसका दोस्त जला तो नहीं है न, पर उसकी अम्मी ने उसे अपना वास्ता देकर रोक दिया था। अब उस पर एक-एक पल भारी पड़ रहा था। उसके लिए रुकना मुमकिन न था। अम्मी की नजर बचाकर वह अभिमन्यु के घर में दाखिल हुआ। हर कदम पर अल्लाह से अर्जियां लगा रहा था कि यह परिवार सुरक्षित हो। अभिमन्यु के घर का सारा सामान जला पड़ा था। उससे वह नजारा बरदाश्त नहीं हो रहा था। घर का एक-एक कोना उसकी और अभिमन्यु की दोस्ती का गवाह था, जो अब जलकर खाक हो गया था। डरते-डरते ही मुख्तार ने घर का एक-एक कमरा छान मारा। उसकी अर्जियां कबूल हो गई थीं। घर में परिवार की मौत का कोई नामो-निशान नहीं था। जले हुए मकान में सिर्फ खाक का गुबार था, पर अब अभिमन्यु को कहां ढूंढ़ना है, उसे समझ में नहीं आ रहा था।

बाहर हालात बहुत ही खराब थे। कर्फ्यू की परवाह किए बगैर मुख्तार अनंतनाग के चप्पे-चप्पे पर दिनभर पागलों की तरह अभिमन्यु को ढूंढ़ता रहा। अपने यार की सलामती की दुआ मांगता रहा। उसने अपने सारे दोस्तों के घर जाकर पूछा कि किसी को कुछ मालूम है कि कौल परिवार कहां गया है? पर किसी को कुछ भी मालूम नहीं था। मुख्तार ने उसे सेबों के बागानों में तलाशा, फुटबॉल ग्राउंड पर ढूंढ़ा, पर अभिमन्यु उसे कहीं नहीं मिला। अपनी जान का जोखिम उठाकर मुख्तार अपने अभिमन्यु को ढूंढ़ रहा था, पर उसके यार का वादी में नामोनिशान तक नहीं था। जहां भी जाता, मायूसी हाथ लगती। वह दीवानावार हो गया था।

नुक्कड़ पर रियाज खड़ा मिला, मुख्तार ने उससे भी पूछा कि अभिमन्यु कहां है? कुछ खबर है? रियाज को उस पर बेहद गुस्सा आया। उसने मुख्तार को चिढ़ाना शुरू किया कि ''पंडित भाग गया, अब कभी नहीं आएगा, जा, घर जा अपने।'' पर मुख्तार को यकीन था कि मुझे बताए बगैर अभिमन्यु कभी भी नहीं जाएगा। इस बात पर रियाज और उसकी झड़प भी हो गई। वहां खड़े कुछ लड़के रियाज की मदद के लिए आ गए। सब लड़कों ने मुख्तार को घेरकर धमकाना शुरू किया, ''साले, तुझे पंडित की पड़ी है? गद्दार कहीं के, मजहब खिलाफी करता है। यह बात समझ कि पंडित गया तो वादी अब पाक हो गई है। अब यह मुल्क हमारा है। हिंदुस्तान से हमें कुछ लेना-देना नहीं, अपने दिमाग में यह बात पक्की कर ले वरना तेरा भी वही हाल करेंगे जो पंडितों का किया।'' और उन्होंने मुख्तार को पीटना शुरू कर दिया। मुख्तार जैसे-तैसे उन लड़कों से अपनी जान बचाकर भागा।

घायल मुख्तार को अभी भी अपने घावों की फिक्र नहीं थी। उसके मन में एक ही सवाल था कि मेरा यार कहां है? क्या हुआ है उसके साथ। अब मुख्तार अपना हौसला खो रहा था। उसे सारी दुनिया अपने यार के बिना अधूरी लग रही थी, जैसे कभी अभिमन्यु को अनंतनाग के उस बस अड्डे के बस स्टॉप पर धमाके के दिन लगी थी।

मुख्तार दिनभर भूखा-प्यासा भटक रहा था। उसके मन में अब बुरे-बुरे विचार आने लगे थे कि कहीं जिहादी सबको उठाकर कहीं लेकर तो नहीं चले गए? मुख्तार का मन बार-बार कह रहा था कि अभिमन्यु के बिना जीना, जीना नहीं होगा। सारी कोशिशें नाकाम होने के बाद वह थाने की तरफ बढ़ा कि शायद वहां से कोई खबर मिल जाए। रियाज से हुई हाथापाई में उसके कपड़े भी फटे थे। पैर से खून भी बह रहा था, पर उसे परवाह नहीं थी। अभिमन्यु के न मिलने से अब तो उसे रोना भी आना शुरू हो गया था कि अचानक उसके सामने एक जादू-सा हो गया।

अभिमन्यु की कार को उसने दूर से आते देखा और उसके मन की सारी शंकाएं मिट गईं। अपने यार से मिलने मुख्तार उसकी कार की तरफ लपका। कार के सामने जाकर उसने गाड़ी को रोका, पर उसमें उसका यार नहीं था, जख्मी मुख्तार को देख माजिद गाड़ी से उतरा और पूछा, ''तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ?''

''वो सब छोड़ो, पापा कहां हैं, मम्मी कहां है और मेरा अभिमन्यु, वो कहां है?'' मुख्तार ने पूछा। माजिद ने कहा, ''वो तो चले गए। अभी-अभी उन्हें जम्मू छोड़कर आया हूं।''

मुख्तार को अपने कानों पर यकीन नहीं हो रहा था। उसके खयाल दौड़ने लगे कि ऐसे कैसे जा सकता है वो मुझे छोड़कर? उसने कहा था कि वो मेरे पास आएगा। फिर वह जा कैसे सकता है? उसके बिना मेरा क्या होगा, उसे इस बात का खयाल नहीं आया!

माजिद ने दोनों को बचपन से साथ बढ़ते देखा था। अभिमन्यु के जाने से मुख्तार दुःखी होगा, यह जाहिर-सी बात थी। पर माजिद का इस वक्त अपने घर पहुंचना जरूरी था तो वह निकल गया, पर मुख्तार के दिल पर लगे घाव वह उस वक्त समझ नहीं पाया। मुख्तार के दिल में सौ खयाल दौड़ रहे थे।

अचानक मुख्तार ने महसूस किया कि उसके अंदर एक खालीपन-सा आ गया है, जो शायद ही कभी भरा जाएगा, उदास मन से चलते-चलते वह अभिमन्यु के जलते घर में दाखिल हुआ और न जाने कितनी देर वहां बैठा रहा, यह सोचते हुए कि मेरे यार ने मुझे बताने कि जहमत भी नहीं उठाई कि मैं जा रहा हूं! इसका मतलब कि वो मेरे बिना रह सकता है। जीने के लिए उसे मेरी दोस्ती की जरूरत नहीं थी। क्या मैं ही पागल था कि उसके पीछे-पीछे रहता था? क्या रियाज ठीक कह रहा था कि मुझे दोस्त मानकर वह मुझपर एहसान कर रहा था? नहीं-नहीं, मेरा अभिमन्यु ऐसा नहीं था! वो एहसान कैसे कर सकता है? वो तो मेरी मम्मी को अपनी अम्मी मानता था। मेरे घर में बैठकर कितनी अलसाई-सी दोपहरें हमने साथ गुजारी हैं और मेरी मम्मी मुझसे ज्यादा तो उसे प्यार

करती थी। मुझसे ज्यादा उसे अपना बेटा मानती थी। मैं भले ही अपनी मां की न सुनूं, वो उनकी हर बात मानता था। वो अपनी मां को छोड़कर कैसे जा सकता है? कहने के लिए सिर्फ वे दो अलग घर थे। वो अपना घर छोड़कर कैसे जा सकता है? और मैं अब किसे देखकर जीऊंगा? क्या कोई भाई अपने भाई को ऐसे अकेले बिना बताए छोड़ जाता है? या फिर परवेज चाचू ही सही कहते थे कि उन पर इतना विश्वास मत कर, तू मेरा खून है, मेरी बात मान लिया कर! पर शायद मैं ही अभिमन्यु के चक्कर में अपने चाचू से दूर हो गया। उस आग से सुलगते मकान में मुख्तार का मासूम मन सुलगना शुरू हुआ था। मुख्तार ने महसूस किया कि वह अंदर से टूट चुका है, मुख्तार के जीवन में भी शायद अंधेरे ने दस्तक दी थी और यहां जम्मू में भी।

कुछ ही देर में सूरज डूबनेवाला था। अभय प्रताप कुछ सोचकर उठकर चलने लगे। उस शाम सहमे-सहमे से ये तीन लोग चलते हुए जम्मू की एक गली से दूसरी गली होते-होते अपनी नई मंजिल शरणार्थी कैंप के नजदीक पहुंचे। उस बस्ती से लोगों की आवाजें तो आ रही थीं, पर ठीक से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। सर्दी के दिन थे तो हर तरफ धुंध-ही-धुंध थी। 4 फीट पर मुश्किल से कुछ दिख रहा था। तभी सर्दी से कंपकंपाती एक छोटी-सी बच्ची ने रोते-रोते अभय प्रताप का हाथ थामकर पूछ लिया, ''आपको मालूम है क्या कि मेरी मम्मी कहां हैं?'' वह बच्ची अभय प्रताप को कुछ जानी-पहचानी सी लगी। परी-सी दिखने वाली उस मासूम कश्मीरी पंडित लड़की को अपनी गोद में उठाते हुए अभय प्रताप उसे शांत करने का प्रयास करने लगे और कहा, ''रोओ नहीं बेटा। यहीं कहीं होंगी। चलो, ढूंढ़ते हैं। तुम रहती कहां हो?'' बच्ची ने कैंप की तरफ इशारा किया।

जैसे-जैसे अभय प्रताप उस बस्ती की तरफ बढ़ने लगे, लोगों की आवाजें ठीक-ठीक सुनाई देने लगीं और बस्ती में जल रहे दीयों के कारण वह कैंप पूरी तरह से नजर आने लगा। वह नजारा देख अभय प्रताप का दिल बैठ-सा गया। हजारों की तादाद में वहां शरण लिये लोग दूर-दूर तक फैले दिख रहे थे। निराशा, अवसाद, पश्चात्ताप, अपना सबकुछ छोड़-छोड़कर भागे हुए लोगों की उथल-पुथल और सबसे अहम कि अपना कोई भी दोष न होते हुए भी मिलने वाली सजा भुगतते लोगों का वह नजारा किसी भी संवेदनशील इनसान को हिला देने के लिए काफी था। लाखों की उस भीड़ में इस नन्ही-सी जान ने अपने माता-पिता को खो दिया था, बिल्कुल वैसे जैसे सामने दिख रहे अपनी मातृभूमि से उखड़े हजारों लोगों को यहां के राजनेताओं की स्वार्थी राजनीति ने 'शरणागत' शब्द का ठप्पा लगाकर उन्हें लावारिस बना दिया था। वादी के हर कोने से भागने के लिए मजबूर हिंदू श्रीनगर, बारामूला, बड़गाम, पुंछ, कुपवाड़ा, राजौरी, उधमपुर, डोडा या फिर अनंतनाग से निकलकर ऐसे हजारों कैंप में आकर बसने के लिए मजबूर थे। लाखों की उस भीड़ में अभय प्रताप उस बच्ची के मां-बाप को ढूंढ़ने चले थे।

हर तरफ शोर-ही-शोर था, लोगों के अंदर भी और बाहर भी। बच्ची को गोद में उठाए अभय प्रताप अपनी सोच में थे कि क्या किया जाए? तभी किसी ने तकरीबन उस बच्ची को खींचकर

उसकी गोद से अपनी गोद में लिया। उस झटके के कारण अभय प्रताप अपनी सोच से बाहर आए। जिसने उस लड़की को खींचा था, वह उसकी मां थी। अभय प्रताप को वहां देखकर उस औरत का गुस्सा फूट पड़ा और वह चिल्लाकर बोली, ''हम लोग तुझे ही ढूंढ़ रहे थे अभय प्रताप।''

आरती और अभिमन्यु को वह बात जरा भी अच्छी नहीं लगी कि अभय प्रताप से कोई तू-तड़ाक करके बात करे। आरती ने गौर किया कि अनंतनाग में जब दंगे हुए थे, तब सारी औरतें और बच्चे 8 दिन अभय प्रताप के घर पर सुरक्षा में थे। उसमें यह बच्ची और उसकी वह मां भी थी। उस औरत के शोर से वहां और भी लोग जमा हुए और उसमें से हर एक के मन में अभय प्रताप के लिए गुस्सा था।

''तेरे कारण आज हम इस हालत में हैं। सबकुछ ठीक हो जाएगा, यह कह-कहकर तूने हमें वहां रोके रखा।'' उस औरत का गुस्सा फूट-फूटकर बाहर आ रहा था। साथ-साथ वह रो भी रही थी।

''देख, अब हमारा क्या हाल हुआ है? वक्त रहते तूने हमें जाने दिया होता तो आज हम यहां नहीं होते।'' और वह रोने लगी। अपनी बच्ची को अभय प्रताप के सामने करके उसने रोते-रोते कहा, ''देख मेरी इस बेटी को। राजकुमारी की तरह रखा था मैंने, अब दूध के एक गिलास के लिए तरस रही है।'' यह कहते-कहते वह औरत अभय प्रताप पर झपट पड़ी। आरती ने अपने पति को उस औरत से अलग किया। भीड़ में काफी लोग थे, जो अपनी इस हालत का जिम्मेदार अभय प्रताप को भी मानते थे।

भीड़ अब अभय प्रताप को घेरकर जवाब मांग रही थी। आरती की आंखों से सिर्फ आंसू बहते रहे और अभिमन्यु बहुत गहरे सदमे में था। भीड़ में से आवाजें उठने लगीं कि ''हमारी दुनिया नर्क बनानेवाले इस अभय प्रताप को हम यहां रहने नहीं देंगे। इस पर विश्वास रखकर हम अपना सबकुछ खो बैठे हैं।'' भीड़ अभय प्रताप, अभिमन्यु और आरती को घेरकर कैंप के बाहर धकेलने लगी। एक तरह से अपमानित करके अभय प्रताप का वे जुलूस ही निकाल रहे थे।

अभिमन्यु अपने पापा को सुरक्षित करने की नाकाम कोशिशें करता रहा, पर लोगों में बहुत आक्रोश था। उसके सामने अभिमन्यु की कोशिशें कम पड़ रही थीं। जिन्हें अभय प्रताप के बारे में मालूम नहीं था, वे सिर्फ तमाशबीन बनकर देखते रहे। अभय प्रताप चुपचाप सब सहकर चल रहे थे और मन में सोच रहे थे कि मेरे लिए यह सजा जरूरी है, क्योंकि मैंने इतिहास को भूलकर कश्मीरियत पर भरोसा किया था। सजा तो मुझे मिलनी ही चाहिए। अभय प्रताप के दुःखों का सिलसिला रुकने का नाम नहीं ले रहा था। आरती और अभिमन्यु को अपनी बांहों की सुरक्षा में लेकर बेबस अभय प्रताप उस बस्ती से बाहर जाने लगे। तभी उस भीड़ को चीरती हुई एक 22 साल की लड़की ने तेजी से अभय प्रताप के सामने आकर अपने हाथों से उनका रास्ता रोककर, गहराती हुई आवाज में कहा ''रुक जाइए, सर।''

अभय प्रताप, अभिमन्यु और आरती उस लड़की को देखकर सोचने लगे कि अब क्या नया होने वाला है। उसे देखकर लोगों ने भी अपने आपको थोड़ा रोक लिया। अभिमन्यु को समझ में आया कि यह लड़की इस कैंप में अपनी एक अलग जगह रखती है। लड़की ने आगे कहा कि ''इन लोगों को माफ कर दीजिए, सर। ये सब-के-सब हालात के मारे हैं, बौखलाए हुए हैं। इन्हें खुद समझ में नहीं आ रहा कि कहां जाएं? क्या करें? सरकार पर गुस्सा दिखाओ तो सरकार डंडे मारती है। किसी पर तो इनका गुस्सा उतरना था न?''

इतनी छोटी-सी उम्र में वह लड़की ऐसे हालातों में भी समझदारी की बात कर रही है, यह देखकर अभय प्रताप को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ कहने ही वाले थे कि वहां कैंप का मैनेजर आ गया।

''यह कैंप मैनेजर हैं, सर।'' आहिस्ता-से लड़की ने तीनों को बताया। दिखने में ही वह बड़ा खड़ूस लग रहा था। उसे देख भीड़ जिस तरह से बिखर गई, अभिमन्यु को लगा कि यह बहुत गुस्से वाला इनसान होगा और वह था भी। उनकी तरफ आते-आते ही मैनेजर को अंदाजा हो गया था कि अभी यहां कुछ हो रहा था और उसे देखते ही सब भाग गए। मैंनेजर ने उस लड़की के पास आकर पूछा कि ''रोशनी, यहां क्या हो रहा था अभी?'' रोशनी ने बिल्कुल सहजता से जवाब दिया, ''नए मेहमान का स्वागत। इनसे मिलिए। ये हमारे वादी की बहुत बड़ी हस्ती हैं, मिस्टर अभय प्रताप। 'द ट्रुथ' के एडिटर साहिब।'' अभिमन्यु आश्चर्य में था। उसने पूछ ही लिया, ''आप हम लोगों को जानती हैं?''

लड़की ने तुरंत जवाब दिया, ''वादी में शायद ही कोई ऐसा हो जो इन्हें न जानता हो। मैंने जब उन लोगों की बात सुनी तो जान गई कि ये वही अभय प्रताप जी हैं।''

आरती ने शायद मन-ही-मन उस लड़की की बलाएं ली हैं, ऐसा अभिमन्यु को महसूस हुआ।

मैनेजर अभय प्रताप का नाम सुनकर थोड़ा झेंप-सा गया, पर अपनी अकड़ कायम रखते हुए कहा, ''आपको वहां अपना नाम लिखवाना पड़ेगा, तभी आप कैंप में रह सकते हैं।'' अभय प्रताप सोच में थे कि बस्तीवाले उन्हें यहां रहने देना नहीं चाह रहे हैं। ऐसे में यहां रुकें या चले जाएं। अभय प्रताप रुके-से रहे। रोशनी शायद लोगों के दिल की बात पढ़ना जानती थी। उसने अभय प्रताप को देखकर सिर्फ इतना कहा, ''आप इतनी जल्दी हार नहीं मान सकते, सर। आप बरसों से हम जैसों का आदर्श रहे हैं। यह लड़ाई हमसब मिलकर लड़ेंगे, ऐसा आपने कहा था, सर...!''

अभय प्रताप ने महसूस किया कि उनके कदम उठकर मैनेजर के पीछे चलने लगे हैं। बस्ती से गुजरते हुए सब कैंप ऑफिस की तरफ चलकर जाने लगे। अभिमन्यु अपने आस-पास का जायजा लेने लगा। वादी के पक्के मकानों से निकलकर आए लोग, यहां जनवरी की ठंड में कपड़े से बने टेंट में रह रहे थे।

अभिमन्यु के परिवार ने ऑफिस कहलवाए जाने वाले उस टेंट में कदम रखा।

''आपको परिवार के सदस्य की संख्या अनुसार महीने में एक बार राशन मिलेगा।'' मैनेजर ने घिसे-पिटे लफ्जों में कहा। अब तो उसके लिए यह रोजमर्रा की बात हो गई थी। हरेक घंटे में शायद वह दस परिवारों से जो यह कह रहा हो, उससे भावनाओं की उम्मीद करना बेकार है। यह बात समझकर अभय प्रताप ने रजिस्टर खोलने के लिए उठाया। रजिस्टर पर लिखा था 'मुठी शरणार्थी कैंप, जम्मू', 'शरणार्थी' शब्द पढ़कर अभय प्रताप के दिल में खलबली मच गई। उनके मन में आवाज उठी कि चलो, लौट चलते हैं। पर फिर एक बार उनकी नजर के सामने सुलगती वादी के सारे दृश्य गुजर गए। आंगन का वह कुआं याद आया, जिसमें आरती अपनी जान देने के लिए तैयार बैठी थी और अभिमन्यु? क्या वे अभिमन्यु के बदन पर एक भी खरोंच सह पाते? अपने अंदर उमड़ते तूफान को अभय प्रताप ने अंदर ही दबा लिया और अपना नाम रजिस्टर में लिखकर अपने आप को शरणार्थियों में शामिल कर दिया।

अभिमन्यु इस नई दुनिया को अभी भी स्वीकार नहीं पा रहा था। उसे अभी भी दुनिया से थोड़ी उम्मीद थी तो थोड़ा डरते-डरते ही सही अभिमन्यु ने मैनेजर से पूछा कि क्या उन्हें अलग टेंट मिल सकता है?

मैनेजर ने बेरुखी से उसकी बात का जवाब देते हुए कहा, ''तुम्हारे जैसे रोज यहां हजारों आते हैं। कल भी आएंगे, परसों भी आएंगे। अब तुम ही सोच लो, हर किसी के लिए अलग से टेंट मुमकिन है क्या?'' अभिमन्यु को लगा कि जैसे इस इनसान को हमपर क्या गुजर रही है, इसका जरा-सा भी खयाल नहीं है। हम उसके लिए जीते-जागते इनसान नहीं, बल्कि उसके रजिस्टर में दर्ज सिर्फ कुछ आंकड़े हैं, जो बढ़ते ही जा रहे हैं और हकीकत भी उससे कुछ अलग नहीं थी। किसी भी सरकार के लिए किसी भी शरणार्थी कैंप के 'जिंदा इनसान' महज कागज पर लिखे कुछ आंकड़े ही तो होते हैं।

अभय प्रताप, अभिमन्यु और आरती को उसका बात करने का अंदाज बेहद बुरा लगा। आरती बोलना चाह रही थी कि हम लोग खुशी से नहीं आ रहे हैं, पर बोल नहीं पाई।

मैनेजर अपने टेंट की लिस्ट चेक करने लगा। काफी पन्ने चेक करने के बाद उसने कहा, ''एक भी टेंट खाली नहीं है। और टेंट मंगवाए हैं, जब तक कि वो लग नहीं जाते, तब तक आप अपना कुछ इंतजाम कर लीजिए।'' कौल परिवार पर और एक आफत आ गिरी। बार-बार बसने और उखड़ने से वहां की जिंदगियां तंग आ चुकी थीं। मैनेजर की वह बात सुनकर नाउम्मीद हुई आरती वहीं पर बैठ गई। अभिमन्यु अपनी मां की तरफ यह सोचकर दौड़ा कि शायद उन्हें कुछ हो गया हो। अपनी मां का वह हारा हुआ चेहरा देख अभिमन्यु जहां-का-तहां रुक गया। उसने अपने पेट में जैसे गड्ढा-सा बनता महसूस किया। वह चेहरा और वह एहसास अभिमन्यु जिंदगी भर नहीं भूल सका। जब तक अभय प्रताप आरती को फिर से हाथ देकर उठाते, तब तक रोशनी ने उन्हें बड़ी

इज्जत से उठाते हुए मैनेजर से कहा कि उसके टेंट में इन तीनों के लिए जगह थी...और वह अंदाजा लगाने लगी कि मैनेजर अब क्या कहेगा? अपना काम बच गया, यह सोचते हुए मैनेजर ने तुरंत कहा, ''हां-हां, ले जाओ उन्हें!''

तीनों वहां से निकलकर रोशनी के टेंट के लिए चलने लगे। चलते-चलते रोशनी ने फिर अपने स्वभाव का परिचय दिया। उसने कहा, ''मैनेजर की बात का जरा भी बुरा मत मानना। अंडरप्रेशर है बेचारा। यहां रह रहे लोगों की व्यवस्था देखना उसका काम है, पर उसकी मदद के लिए जितने लोग चाहिए, उतने लोग सरकार ने दिए नहीं हैं। ऊपर से शांति बनी रहे, इसकी जिम्मेदारी भी उस पर डाल दी है तो थोड़ा उखड़ा-उखड़ा रहता है। जब भी देखता है कि जो लोग थोड़ा आपे से बाहर होने की कोशिश कर रहे हैं तो हजार वजहें देकर वह उन लोगों को राशन कम दिया करता है, तो सब उससे डरने लगे हैं। यहां आकर सब जान गए हैं कि पेट की भूख सब पर भारी पड़ती है। मैनेजर का ऐसा करना उसकी मजबूरी है। उसे भी कोई खुशी नहीं मिलती ऐसा करके, पर बौखलाए हुए लोगों को काबू में रखना जरूरी है, वरना हर कोई अपने मन मुताबिक करने लगेगा तो यहां जो अफरा-तफरी मचेगी, उसमें सब अपने ही झुलसकर रह जाएंगे।''

अभय प्रताप ने रोशनी के सिर पर हाथ रख दिया, यह जताने के लिए कि वे उससे मिलकर बड़े खुश हैं। पर कुछ कहने-सुनने का वह मौका नहीं था। ऐसे हालातों में कोई भी इनसान गुमसुम-सा ही हो जाता है। बस, उसकी आंखें सब बयान करती रहती हैं। रोशनी ने अपने टेंट का परदा सरकाया और अभिमन्यु, आरती और अभय प्रताप को अंदर जाने का इशारा करते हुए कहा कि अब यह आपका भी घर है।

अभय प्रताप, आरती और अभिमन्यु ने रोशनी के घर में कदम रखा था और रोशनी ने इन तीनों के मन में अपनी जगह कायम कर ली थी।

अब 10 बाय 10 के बने उस कपड़े के घर में 6 लोगों ने अपना ठिकाना कर लिया था—अभिमन्यु, आरती, अभय प्रताप, रोशनी व रोशनी के माता-पिता। रोशनी की मां ने बड़े ही उत्साह के साथ तीनों का घर में स्वागत किया था। दर्द ने दर्द को पहचान लिया था। बेघर होने का एहसास शायद उस घर को भी था। उसकी छत भले ही कोने में बैठे हुए रोशनी के पापा के सिर से टकरा रही थी, पर उन सबका दिल आसमान से भी ऊंचा था। चूल्हे की आग में और थोड़ी लकड़ियों को सरकाते हुए उस पर रोशनी ने चावल चढ़ा दिए और वह खाना बनाने लगी।

''क्या आप भी श्रीनगर से हैं?'' रोशनी की मां ने पूछा।

आरती ने जवाब दिया, ''नहीं, अनंतनाग से।''

''हम श्रीनगर में रहते थे। रोशनी का बड़ा भाई बैंक में काम करता था। जाहिलों ने पूरे बैंक को आग लगा दी। झुलस-झुलसकर मर गया मेरा बेटा।'' यह कहते-कहते रोशनी की मां रो पड़ी। रोशनी ने अपनी मां को सांत्वना दी और अभय प्रताप से कहा, ''हम यहां दो महीने पहले

आए। मैं श्रीनगर में नर्स का काम किया करती थी। भाई की जली हुई लाश देखकर पापा को लकवा मार गया। तब से ये बिस्तर पर ही हैं।'' वहां जगह इतनी छोटी-सी थी कि अपने जज्बात छुपाने की कितनी भी कोशिश की जाए, हर कोई एक-दूसरे का चेहरा पढ़ ही सकता था। सब उस जज्बात में इतने डूबे हुए थे कि उस रात किसी को यह एहसास तक नहीं हुआ कि चावल के साथ खाने के लिए उस दिन रोशनी के घर में दाल नहीं थी तो सब सूखे चावल खाकर 'लेट गए'। 'लेट गए', इसलिए कि हर किसी की आंखों से नींद गायब थी। हर हालत में जिंदा रहना, अगर इनसान की बुनियादी फितरत नहीं होती तो उस रात उस जानलेवा ठंड में कपड़े के बने उन हजारों टेंटों से सबकी लाशें बाहर निकालनी पड़तीं। 6 लोग उस छोटे-से टेंट में पड़े-पड़े आनेवाली सुबह के इंतजार में थे, बिल्कुल एक-दूसरे से चिपके हुए। आरती से सटकर अभिमन्यु सोया था। अपने बेटे को ठंड से बचाने के लिए आरती ने उसे अपने पल्लू से ढक लिया था और उसके सिर पर हाथ फिरा रही थी ताकि वह ठंड को भूलकर नींद के हवाले हो जाए, पर कितना भी चाहो, ठंड अपना असर छोड़ ही रही थी। अभिमन्यु के हाथ-पैर एकदम ठंडे पड़े थे। गाल भी एकदम सर्द हो चले थे। उसे कुछ भी महसूस होना बंद हो गया था। समझ में आ रहे थे तो सिर्फ आरती के आंसू, इस बात से बेखबर कि अपने आंसू अभिमन्यु के गाल पर बरस रहे हैं। देर रात तक आरती रोती रही। अपने पति से छुपकर आंसू बहाती रही। अभिमन्यु भी एक-एक आंसू अपने गाल पर झेलता शांत पड़ा रहा। अभिमन्यु ने पहली बार महसूस किया कि आंसू भी गरम होते हैं। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि मां के आंसुओं में इतनी आंच आई कहां से है? यह राज शायद शहनाज जानती थी।

शहनाज, मुख्तार की मां, जो इस वक्त दुनिया से छुपकर आरती के जले हुए मकान में आरती का बचा-खुचा सामान समेट रही थी, ताकि जब उसकी सहेली, उसकी बहन आरती वापस आ जाए तो उसे वह कुछ तो लौटा पाए। जिस तरह वहां आरती की आंखों से पानी बह रहा था, यहां भी शहनाज की आंखें नम थीं और दोनों की आंखों का पानी वादी में लगी आग बुझाने के लिए काफी नहीं था। प्यार की जगह नफरत ने ली थी। शहनाज ने जो सामान इकट्ठा किया था, उसे वापस अभिमन्यु के घर में फेंकते हुए मुख्तार ने अपनी अम्मी से कहा, ''तुम्हें उनके सामान की पड़ी है? जलते हुए इनसान को पीछे छोड़ गए हैं। उसका क्या करोगी?'' शहनाज जानती थी कि मुख्तार अभिमन्यु की जुदाई बरदाश्त नहीं कर पा रहा, गम में है। अपने नादान बच्चे को गले से लगाते शहनाज ने उसे तसल्ली देने की कोशिश की कि वे सब जल्दी आएंगे। मुख्तार ने नफरत से ही कहा, ''वापस आना ही था तो चले ही क्यों गए? उसे मुझपर विश्वास नहीं था कि मैं उसका खयाल रख सकता हूं? दोस्त था न मेरा? वो यहां रह नहीं सकता था तो मैं उसके साथ चला जाता, पर वो मुझे छोड़कर गया। उसने कसम खाई थी। कसम तोड़ी नहीं जाती। उसने मेरी कसम तोड़ी। दोस्ती में गद्दारी की उसने। अगर वो आना भी चाहे अब तो मैं उसे आने नहीं दूंगा।'' शहनाज जान गई थी कि उसका बेटा अभिमन्यु के बिना जी नहीं पा रहा और वह खुद भी तो कहां उनके बिना रह पा

रही थी? वक्त सब ठीक कर देगा, यह सोचते हुए वह मुख्तार को वापस घर ले जाना चाह रही थी, पर मुख्तार नहीं गया। वह उसी उजड़े मकान में फिर यह सोचता बैठा कि अभिमन्यु ने कसम तोड़ी। मैं उसे कभी माफ नहीं करूंगा। अभिमन्यु की याद के हजारों सांप मुख्तार के मन को डस रहे थे और जहां जम्मू कैंप में सांपों के डसने से मौत का आंकड़ा आज 19 का हो चुका था।

जम्मू कैंप में कौल परिवार की पहली सुबह ही इस खबर से हुई कि बाजू के टेंट में सांप घुस आया और एक औरत की मौत हो गई। सांप के डसने से मौतें कैंप में आम बात थी। सरकार ने जम्मू शहर के बाहर यह कैंप लगाए थे, जहां आजू-बाजू जंगल ही था। अभिमन्यु को सांपों से बेहद डर लगता था और वहां के माहौल में अभिमन्यु अपने आप को ढाल नहीं पा रहा था। उसने पापा से पूछा, ''क्या हम कहीं और जाकर नहीं रह सकते? यहां ऐसे रिफ्यूजी बनकर रहना अच्छा नहीं लग रहा।'' पापा ने उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा कि बस कुछ ही दिनों की बात है। उनकी यह बात चल ही रही थी तो कैंप के सामने आठ-दस बसों का जैसे जत्था-सा रुक गया। उन बसों से बहुत सारे लोग उतरने लगे। उनमें से कुछ चेहरे देखकर अभिमन्यु भी हैरान रह गया। वे वादी के बड़े रसूखदार लोग थे, जिन्हें वहां के हालात के चलते वादी छोड़नी पड़ी थी। अभय प्रताप के मुकाबले कई ज्यादा रईस और बेहतर जीवनशैली वाले लोग उनमें शामिल थे। वे सब-के-सब लाइन में लगकर अपना नाम रजिस्टर में दर्ज कराने लगे। उन्हें देख अभिमन्यु की सारी शिकायतें अपने आप खत्म हो गईं और उसने मन-ही-मन यहां की जिंदगी को स्वीकार किया।

अभय प्रताप उन लोगों में से जिन्हें जानते थे, उन्हें प्रमाण करके जम्मू शहर की तरफ अखबार का ऑफिस ढूंढ़ने चले गए। रोशनी आरती को लेकर राशन कहां से लेना है, क्या सिस्टम है, यह सब समझाने उनके साथ चली गई। अभिमन्यु को वैसे भी खुली हवा में जीना पसंद था तो वह भी पूरा कैंप देखने निकल पड़ा।

पिछले 24 घंटों में उन पर जो बीती थी, उसमें से यह पहला पल था कि वह अपने बारे में सोचे, और उसे पहला खयाल मुख्तार का आया। अभिमन्यु का मन वादी की तरफ खिंच रहा था। अब तो उसे वादी का हर एक जर्रा याद आ रहा था। अपनी वादी में खोया-खोया सा अभिमन्यु जब कैंप से गुजर रहा था, तब उसे कैंप में पत्थरों को कंचे समझकर खेलने वाले छोटे बच्चे दिखाई दिए। उन्हें देखकर उसे कंचों पर से उसका और मुख्तार का पहला झगड़ा उसे याद आया।

बचपन में बच्चों को कंचे और बंटे जमा करने का बहुत शौक होता है। अभिमन्यु ने भी एक बड़े-से बक्से में काफी सारे बंटे जमा करके रखे थे। गली के लड़कों के साथ खेलते-खेलते मुख्तार काफी कंचे हार रहा था। उसने अभिमन्यु से कुछ कंचे उधार मांगे, पर अभिमन्यु ने यह कहकर उसे कंचे देने से मना किया, ''आज तेरा दिन अच्छा नहीं है, तू हार रहा है। उससे अच्छा है कि खेलना बंद कर दे।'' मेरा दोस्त होकर भी अभिमन्यु ने मुझे कंचे नहीं दिए, यह बात मुख्तार को बहुत बुरी लगी और उसने अभिमन्यु से बात करना ही छोड़ दिया। उसे मनाने के लिए

अभिमन्यु ने पूरा-का-पूरा कंचों और बंटों से भरा बक्सा मुख्तार को दे दिया था। कल तक वो बक्सा अभिमन्यु ने मुख्तार के घर में देखा था।

अभिमन्यु का मन अब बहुत बेचैन होने लगा। उसे रह-रहकर मुख्तार याद आने लगा। अभिमन्यु सोचने लगा कि उसे मालूम तो होगा न मैं सुरक्षित हूं। उसको मेरी बहुत चिंता थी। अभिमन्यु के मन से मुख्तार का खयाल जाने को तैयार नहीं था। उसे लग रहा था कि ये जो उसके सामने बसें खड़ी हैं, उनमें बैठकर अपने मुख्तार के पास पहुंच जाए और उसे गले लगा ले। अभिमन्यु के दिल में दूसरा खयाल भी तुरंत दौड़ गया कि क्या पता, शायद मुख्तार उसे ढूंढ़ता हुआ इन बस से ही यहां आया होगा। उस खयाल के साथ अभिमन्यु बसों की ओर भागा। उसने हर तरफ मुख्तार को खोजने की कोशिश की, कि शायद आया हो तो मैं उसे दिख जाऊं। पर उन बसों में कोई भी मुख्तार अभिमन्यु के दर्द को न समझने आया था, न उसे वापस ले जाने आया था!

अभिमन्यु ने अपने मन को शांत किया। वह अनमना-सा कैंप में घूमने लगा और उसने एक कोने से सिगरेट का धुआं उड़ते देखा। अभी भी अभिमन्यु की जेहन से मुख्तार हटा नहीं था। वह धुएं की तरफ चलता चला गया तो देखा कि महज 13-14 साल के लड़के कहीं से बीड़ी उठाकर लाए थे और बारी-बारी से उसका कश ले रहे थे। उन्हें लगा कि अभिमन्यु भी कश मारना चाहता है तो उन्होंने अभिमन्यु के सामने बीड़ी पकड़कर उसे एक कश ऑफर किया। मुख्तार भी कभी-कभी मजाक के मूड में होता था तो ऐसे ही करता था। अभिमन्यु के सामने सिगरेट पकड़कर कहता था, ''देख, एक कश मार के देख। आगे चलकर अफसोस न हो!'' और अभिमन्यु वह सिगरेट मुख्तार से लेकर जमीन पर डालकर पैरों से बुझाते हुए कहता था, ''यह अच्छी चीज नहीं है।''

इस वक्त अभिमन्यु के सामने बीड़ी थी और वह अपने मुख्तार के खयाल में था... आदतन उसने बीड़ी ली और जमीन पर फेंककर बुझाने ही वाला था कि आरती और रोशनी उसे अपने सामने खड़ी दिखीं। आरती ने अभिमन्यु के हाथ में बीड़ी देखी तो उन्हें झटका-सा लगा। बिना कुछ बोले वह वहां से चली गई। अभिमन्यु को अपनी मां को समझाने का मौका भी नहीं मिला कि उसने बीड़ी बुझाने के लिए उठाई थी।

बेहद खराब मूड में आरती ने अपने टेंट में कदम रखा। वह अपने टेंट में बेचैनी से अभय प्रताप के आने का इंतजार करती रही। दो घंटे बाद अभय प्रताप लौटे। उन दो घंटों में अभिमन्यु की हिम्मत नहीं पड़ी कि टेंट के अंदर मां के सामने जाए। वह भी पापा के इंतजार में टेंट के बाहर ही टहलता रहा। अभय प्रताप के आते ही आरती ने कहा, ''चलो यहां से, हमें नहीं रहना यहां। अपने घर चलते हैं। हां, अब सब ठीक हो गया होगा। यहां का माहौल अभिमन्यु के भविष्य पर असर कर सकता है। मैं नहीं चाहती कि मेरा बेटा यहां रहे।''

वह जिस तरह से भावुक हो रही थी, अभय प्रताप तुरंत समझ गए कि कुछ-न-कुछ हुआ है। अभय प्रताप ने हमेशा से ही अभिमन्यु की परवरिश का जिम्मा आरती को सौंपा था। अभिमन्यु

के बारे में हर फैसला आरती करती थी, पर अभी हालात अभय प्रताप के काबू से बाहर थे और अब घर जाते भी तो किसके घर जाते? उनका घर था कहां अब?

उन्होंने आरती को समझाया, ''वहां सब ठीक होने में देर लगेगी। मेरी अभी वहां बात हुई है। इतनी जल्दी वहां कुछ ठीक होगा, ऐसा लग नहीं रहा। वहां जाने के बाद भी अभिमन्यु को रोज उसी खौफ से गुजरना होगा। उससे अच्छा है कि अंबाला में मेरी जो बहन रहती है, उनके घर कुछ दिन उसे रखें।''

आरती को अभिमन्यु को सुरक्षित रखने का उपाय भा गया, पर उन्होंने अभिमन्यु को किसी रिश्तेदार के घर पर रखने से साफ मना किया। कुछ सोचकर अभय प्रताप ने कहा कि उसे किसी कॉलेज में दाखिल दिला देते हैं। हॉस्टल में रहेगा तो सारी प्रॉब्लम ही खत्म हो जाएंगी। आरती का चेहरा काफी दिन के बाद खिला।

'मां-बाप मेरे ही बारे में बात कर रहे हैं', यह बाहर खड़े अभिमन्यु ने जान लिया था। उसका अंदाजा था कि पापा बुलाकर उसे बीड़ी के लिए बहुत डांटेंगे, पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। पूरा दिन अभिमन्यु परेशान रहा कि दोनों में से अभी तक किसी ने कुछ कहा कैसे नहीं, पर बड़ों से सवाल करना उसकी तहजीब में नहीं था। देर रात अभिमन्यु के माता-पिता एकदम हल्की आवाज में बात कर रहे थे, ताकि बाकी किसी को सुनाई न दे, पर अभिमन्यु उनके एकदम बगल में ही सो रहा था तो न चाहते हुए भी उनकी आवाजें उसके कान में पड़ रही थीं।

''आपने कुछ सोचा किस कॉलेज में दाखिल करेंगे?'' आरती ने पूछा।

''अभी कुछ दिन जाने दो, आरती। पैसों की हालत तुमसे छिपी नहीं है। पैसों का कुछ इंतजाम हो जाएगा तो ले जाऊंगा उसे।'' अभय प्रताप ने जवाब दिया। पता नहीं आरती में इतनी जान कहां से आ गई कि वह तेजी से उठकर बैठ गई और जाने से पहले माजिद ने उसके हवाले किए उन्हीं के जेवर एक के बाद एक उतारकर अभय प्रताप के हाथ में रखने लगी और बिल्कुल रोते-रोते उसने कहा, ''उसे यहां रहना जरा भी अच्छा नहीं लग रहा। कभी रहा नहीं न ऐसे। और आप यहां का माहौल भी देख ही रहे हैं। यहां लोग हमें पसंद नहीं कर रहे। हम तो सह लेंगे, वो क्या सहे? ऐसा ही चला तो आज बीड़ी उठाई थी। कल जुआ खेलने बैठेगा तो?''

अब जाकर अभय प्रताप समझे कि अभिमन्यु को बीड़ी पीते आरती ने देख लिया, इसलिए इतनी परेशान है। उन्होंने आरती को समझाने के सुर में पूछा—

''तुम्हें अपनी परवरिश पर भरोसा नहीं है, आरती?''

''क्या आपने कभी सोचा था कि हम कभी इस हालत में पहुंचेंगे, पर हैं न? मेरे बेटे का भविष्य बचा लो। जेवर वापस आ जाएंगे, पर वक्त नहीं। आप चाहते हैं न कि वो आपकी बहन के पास रहे, तो अंबाला के नजदीक का कोई कॉलेज देख लेना, ताकि वे भी वहां उसका ध्यान रख सकें, पर उसे यहां से निकाल लो।'' आरती ने बड़े ही फॉर्मली कहा।

अचानक से अभय प्रताप के दिमाग में एक नाम चमका। बलदेव भाटिया, अभय प्रताप ने आरती को बताया कि वह पानीपत के गवर्नमेंट कॉलेज में प्रिंसिपल है। एक जमाने में दोनों साथ-साथ पत्रकारिता किया करते थे। वे पंजाब अमृतसर से, तो अभय प्रताप कश्मीर से। दोनों खबरों का आदान-प्रदान किया करते थे, पर बाद में जब भाटिया पानीपत में आकर बस गया तो वह पत्रकारिता छोड़कर प्रोफेसर बन गया और अब उसी कॉलेज में वह प्रिंसिपल बन गया है। आरती और अभय प्रताप के दिल ने राहत महसूस की कि कोई तो राह उन्हें दिखाई दी। दूसरे ही दिन आरती ने कुछ गहने बेचकर अभिमन्यु और अभय प्रताप हरियाणा स्टेट ट्रांसपोर्ट की बस में सवार थे। रोशनी और आरती अभिमन्यु को रवाना करने जम्मू बस स्टैंड पर आई थीं। आरती ने बहुत सारी हिदायतों के साथ अपने बेटे को गाड़ी में बिठा दिया। गाड़ी छूटने में 5 ही मिनट थे कि अभिमन्यु गाड़ी से उतरा, वह अपनी मां को कुछ कहना चाह रहा था, पर कह ही नहीं पा रहा था। रोशनी का चेहरा देख उसकी उलझन सुलझ गई। उसने रोशनी के पास जाकर आहिस्ता-से कहा, ''मां को बता देना कि मैंने कभी भी सिगरेट नहीं पी है और कल भी नहीं पी रहा था। उनसे कहना कि उनका बेटा कभी भी सिगरेट नहीं पिएगा। निश्चिंत रहें...!''

अभिमन्यु ने अपनी मां के चरण छुए और वह गाड़ी में बैठ गया। उसे गाड़ी में बैठकर जाते देख रोशनी को लगा कि वह उसका दिल ले गया। रोशनी भी काफी देर अभिमन्यु को देखती रही और अभिमन्यु के साथ बैठे अभय प्रताप सोचते रहे कि यह एक अच्छी बात हो गई कि अभिमन्यु जा रहा है। उसके डिग्री लेकर वापस आने से पहले वह और आरती वादी में जला हुआ घर फिर से बांध लेंगे तो दूसरी तरफ अभिमन्यु भगवान को बार-बार धन्यवाद दे रहा था कि उसे अब कैंप से मुक्ति मिल गई। फिर उसे कभी उस कैंप में रहना नहीं पड़ेगा।

अभय, आरती, अभिमन्यु और रोशनी हर कोई खुश था। जम्मू को पीछे छोड़ आई हवा में अब गरमाई थी, जो अभिमन्यु को बड़ी भा रही थी।

□

ललितादित्य के मार्तंड

छत्रपाल

डोगरी कहानी और व्यंग्य विधाओं को समृद्ध करने वाले छत्रपाल की दस किताबें प्रकाशित हैं। जम्मू में 1949 में जन्मे छत्रपाल जन्म से ही विकलांग थे। वे अब हमारे बीच नहीं रहे। उनकी कहीं भी प्रकाशित होनेवाली पहली कहानी हिंदी में थी—'ललितादित्य के मार्तंड' जो आज से ठीक 50 साल पहले 'धर्मयुग' के 20 दिसंबर, 1970 के अंक में छपी थी; उसे साभार प्रकाशित किया जा रहा है।

—समन्वयक संपादक

मैं अडोल बैठा रहता हूं।

व्यस्त-से वे भीतर आते हैं और सामान बरामदे में रखवाकर सप्ताह भर के आए पत्रों को जल्दी-जल्दी पढ़ते हैं। प्रत्येक पत्र उनकी मुखाकृति पर अलग-अलग भाव प्रतिबिंबित कर रहा है। रेखाएं बन-मिट रही हैं। एक पत्र में डूबते-उतराते चले गए हैं। अस्पष्ट-सा कुछ बुदबुदाकर उसे जेब में रख लेते हैं। आंटी और मैं उपेक्षित-से उनके पीछे ड्राइंगरूम में आ जाते हैं। वे दीवार पर टंगे कैलेंडर को सशंकित दृष्टि से देखते हैं, फिर बैठ जाते हैं, थके-से। आंटी ठीक उनके सामने वाली कुर्सी पर टिकी हैं। मैं दरवाजे के पास दीवार का सहारा लिये खड़ा हूं।

आरंभ के दिनों में जब भी अंकल वापस आते, तो आंटी अपनी उत्सुकता को दबा न पातीं। पूछतीं—हुआ कुछ फैसला? वे अपमानित-से नंगे फर्श पर रेंगती चींटी के पीछे अपनी पनीली आंखें लगाकर हौले से गर्दन नकारात्मक ढंग से हिला देते। किंतु अब वे कुछ पूछती नहीं। पांच वर्ष पर्याप्त नहीं होते। कई बार आधी उम्र चली जाती है मुकदमेबाजी में, वे जान गई हैं।

जैसे अंधेरे में संकरी गली के अंधे मोड़ पर कोई शोहदा किसी निरीह बाला को घेर ले और कुछ करे, इससे पहले ही गली के खंभों पर टंगे बल्ब जगमगा उठें और लड़की के अभिभावक भी सामने से आ जाएं—कुछ ऐसी ही दशा तब अंकल की हो गई थी। आपत्ति की घुमावदार गली से भागने की कोई गुंजाइश नहीं रही। गली के हर एक सिरे पर कानून के संरक्षक विकराल अजगर की तरह मुंह खोले खड़े थे। लोग कहते हैं, बहुत बड़ा केस था—लाखों का। कई फाइनेंस कंपनियां,

मोटरगाड़ियों के दर्जनों परमिट, और न जाने क्या-क्या! इतना कुछ जाली हो सकता है, मेरा पंद्रह वर्षीय मस्तिष्क स्वीकारता नहीं; पर लोग कहते हैं, ऐसा हुआ है। कुछ-न-कुछ तो हुआ है, ऐसा मैं जानता हूं, पर इसकी भयंकरता नहीं जान पाया।

अंकल जब मुझे गांव से यहां ले आए, तो मेरा मन उमंगों से भरा था। शहर के ऐश्वर्य के मोहजाल ने मुझे जकड़ लिया था। कहां गांव का खपरैलवाला स्कूल और कहां शहर का कॉन्वेंट! वहां का मास्टर साक्षात् यमदूत था, तो यहां की सिस्टर्स दूध धोई संगमरमर की प्रतिमाएं। अंकल ने मुझे प्रवेश तो दिलवा दिया, लेकिन मुझे अन्य विद्यार्थियों के स्तर तक पहुंचने में जितना परिश्रम करना पड़ा, उतना शायद ही कभी जीवन भर करना पड़े। पर शीघ्र ही आस-पास की परिस्थितियों का जायजा लेकर मैंने अपने को समेट-सा लिया। जैसे बजती सितार के थरथराते तारों पर कोई अपना मांसल हाथ रख दे। घर भर एक अभेद्य चुप्पी छाई रहती। तूफान आने से पहले की खामोशी। पर तूफान तो एक भयंकर गति से आकर चला गया था। और पीछे छोड़ गया था अदर्शनीय मलबे का एक बड़ा ढेर। मान-प्रतिष्ठा का मलबा, आनेवाली जिंदगी का मलबा और इस अशोभनीय मलबे के मालिक थे अंकल। मलबे में रहते-रहते हम कब प्रेत बन गए, हमें याद नहीं।

तिल-तिल कर मरते किसी सिर कुचले करैत की तरह मेरी उमंगें मेरे भीतर ही पूंछ पटक-पटककर दम तोड़ गईं। अंकल ने मुझे अपना प्रतिरूप बना दिया। अक्सर वे रात को निश्चल-से बिस्तर पर लेटे छत को देखते रहते। उनकी आंखों में प्रयत्न करने पर भी मुझे कुछ दिखाई नहीं देता। करवट बदलते समय जब वे हल्की-सी कराह को दबाने का प्रयत्न करते, तो अपने बिस्तर पर लेटा मैं महसूस करता, मानो मेरे शरीर के अंग पथरा गए हैं। करवट लेने में अपने को असमर्थ पाता। हर करवट पर सैकड़ों प्रश्न तीक्ष्ण कांटों की तरह अंतःस्थल को वेध जाते और मैं यही सोचता-सोचता सो जाता कि क्या समय फिर करवट बदलेगा!

प्रातः टाइपराइटर की टिक्-टिक् मेरी नींद खोलती। अंकल टाइप कर रहे होते। मेरा मन उनकी सहायता करने को तरसता। चाहता कि वे कुछ देर सुस्ता लें और मैं उनकी अर्जियां टाइप कर दूं। जानता हूं वे आधी रात गए टाइप करते रहे होंगे। जब इस पर भी नींद न आई होगी, तो छत पर घूमते रहे होंगे अकेले। कहते हैं, आसपास से कटकर जब आदमी अंतर्मुखी हो जाता है तो उसमें और शून्य में भटकते प्रेत में कोई अंतर नहीं रहता। तो क्या अंकल भी? मैं इसके आगे कुछ सोचना नहीं चाहता। मैंने अपने एक मित्र के पिता के ऑफिस में प्रतिदिन एक घंटा लगाकर टाइप सीख ली है। झिझकते हुए एक दिन मैंने उनसे अर्जियां टाइप करने को कहा। मेरे हृदय पर एक जबरदस्त घूंसा पड़ा। अंकल ने बताया कि टाइपराइटर बेच दिया गया है, मेरी चार महीनों की स्कूल फीस की अदायगी के लिए। कितने दिनों तक मेरे आस-पास एक अदृश्य टाइपराइटर की टिक्-टिक् तैरती रही।

अंकल तौलिया उठाकर बाथरूम चले गए हैं और आंटी किचन में। दीवार से सटकर खड़े रहने से मेरी पीठ में ठंडक फैलती जा रही है। इस ठंडक का मैं गांव में रहकर आदी हो गया हूं, पर

अंकल के चेहरे का ठंडापन मैं सह नहीं सकता। उनका चेहरा मुझे बर्फ का एक गोला नजर आता है, जैसा हम गांव में बर्फ पड़ने पर बनाते थे। रुई-सी नर्म और धवल बर्फ का हम बच्चे मिल कर एक ढेर बना लेते और फिर अपने कौशलानुसार उस पर मुंह, नाक, आंखें खोदते। घंटों बाद जब उस हिम-मूर्ति के नैन-नक्श पिघल जाते, तो वह बर्फ का एक बेडौल ढेर नजर आने लगता।

स्कूल में गणित की टीचर अक्सर कहती हैं—'फर्ज किया एक्स इक्वल टू' फर्ज करो, बर्फ के उस बुत की पिघली आंखें, नाक, कान बराबर हैं, अंकल की खोई हुई मान-प्रतिष्ठा के और बर्फ के उस ठंडे ढेर में क्या अंतर है?

मैं बाहर बरामदे में आ गया हूं। बाथरूम से कपड़े पीटने की आवाज आ रही है। अंकल छोटे-मोटे कपड़े स्वयं ही धो लेते हैं। आंटी किचन में चाय बना रही हैं। आंच से उनका चेहरा अरुणिम हो उठा है। साड़ी का पल्लू खिसककर नीचे झूल रहा है। उनकी कमर का कुछ भाग साफ दिखाई दे रहा है। गोरा और मांसल। किंतु अंकल उनकी अकलुषित देहयष्टि को पांच सालों से निरंतर नजरअंदाज करते आ रहे हैं। शायद उन्हें इसके लिए फुरसत ही नहीं मिलती। छीः...मैं भी क्या सोचने लगा हूं!

अंकल के छाटे-छोटे काम करने को मैं लालायित रहता हूं, पर उनके लिए पेंसिल तराशते समय जिस दिन मेरी उंगली ब्लेड से कट गई थी, तब से उन्होंने मुझे कोई काम नहीं सौंपा। अधिक हुआ, तो धोबी से उनके कपड़े ला दिए, अब मैं धोबी की दुकान पर जाने से कतराता हूं। एक दिन स्कूल यूनिफॉर्म की नेकर इस्त्री करवाने गया, तो धोबी ने तुरंत इस्त्री करने से साफ इनकार कर दिया। कहा कि नेकर शाम तक ही मिलेगी। पहले यही आदमी मुझे आता देखकर अन्य कपड़े एक ओर फेंक देता और दुकान से बाहर आकर मुझसे कपड़े ले लेता था और उन पर झट से लोहा कर घर तक छोड़ भी जाता था। मैं अंकल का क्या लगता हूं! अंकल की कितनी कारें हैं! ऐसे सवाल पूछ-पूछ कर रास्ते में मेरा सिर खा जाता था, और मुस्तफा दर्जी भी ऐसे ही रंग बदल गया। ठीक ही तो है। बर्फ के पुतले के नैन-नक्श पिघल जाने पर बच्चे उसमें दिलचस्पी नहीं लेते।

कई बार अकेले बैठे मेरा सिर चकराने लगता। आंखों के आगे अंधेरा छा जाता और हाथ-पांव ढीले पड़ जाते, पर मैंने किसी को बताया नहीं। मैं अंकल की चिंताएं बढ़ाना नहीं चाहता।

कुछ दिन हुए मेरी कॉपी से दो-तीन कागज निकल गए। मैं अंकल की निजी अलमारी में स्टिचिंग मशीन ढूंढ़ने आया। मुझसे दुगनी अलमारी, बेशुमार फाइलें, डिब्बे, किताबें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मेरी निगाह एक चमकदार जिल्द वाली नोटबुक पर पड़ी, जो कि फाइलों के अंबार से झांक रही थी। मैंने खींचकर उसे बाहर निकाला। वह अंकल की व्यक्तिगत डायरी थी। मैं पृष्ठ उलटने लगा। एक स्थान पर मेरी नजर जम गई। मैं पढ़ने लगा।

'भीतर कुछ अकुला रहा है...बाहर निकलने को छटपटा रहा है और निकलने का कोई रास्ता नहीं...मन की पैंतीस वर्षीय वृक्ष की डाल असमय ही तड़तड़ाकर टूटने को है और प्रबल झंझावात में सूखे पत्ते की तरह कांप रही हैं...अस्थिरता...अव्यवस्था...किसी ने मानो गहरी झील में पत्थर फेंक

कर उसके शांत जल को मथ डाला हो...यथार्थ और कल्पना...आसपास के वातावरण से कट जाना और मायावी कल्पना के मकड़जाले टूटने पर यथार्थ के प्रखर सूर्य की जलती धूप में जलना एक असह्य प्रताड़ना है...जब पुरानी दुनिया छिन्न-भिन्न हो जाती है, तो अंतर्मन के कुछ अदृश्य हाथ सामने टोह लगाए कटु सत्य के ऑक्टोपस के लिजलिजे बाजुओं से बचने के लिए फिर उसी दुनिया के फिसलन भरे कगारों की ओर अपनी कंकाल उंगलियां बढ़ाते हैं, तो पता चलता है कि हम कितनी बुरी तरह से उखड़ गए हैं!...पिछली जिंदगी का आधार कितना गलत था!...वह एक मटमैला सपना था...अब है जलती रेत...और मेरे पांव नंगे हैं...' मैंने घबराकर पृष्ठ उलट दिया।

'कितनी भी गहरी सांस क्यों न लूं, भीतर फंसा कुछ बाहर नहीं निकलता...भीतर-ही-भीतर खटकता रहता है...मैं अधूरी कहानी हूं, जिसे लिखना छोड़कर लेखक कहीं चला गया है...यह कहानी लेखक की बाट जोह रही है। वह लौटकर आएगा भी कि नहीं? अपनी पुरानी कलम से इस जर्जर पांडुलिपि को पूरा कर कोई नाम, कोई रूप देगा भी या यह ऐसे ही एक-एक पृष्ठ कर तेज हवा में खो जाएगी...।'

मैंने पुनः पन्ना पलटा। उस पृष्ठ पर एक रेखाचित्र था, जिसे देखकर मैं सिहर उठा। वृक्ष की एक मोटी डाल है। उससे एक फंदा लटक रहा है और फंदे से एक लाश झूल रही है। गर्दन खिंचकर लंबी हो गई है। कपड़े ढीले-ढाले, बाल बिखरे हुए। मैंने नीचे शीर्षक पढ़ा—आखिरी रास्ता...मेरे हाथ-पांव पस्त होते गए। आंखों के आगे अंधेरा छा गया। मैंने रोकने के लाख यत्न किए, पर मेरे मुंह से बरबस एक चीख निकल पड़ी और मैं गिर पड़ा। शायद मैं बेहोश हो गया था।

होश आया, तो बिस्तर पर पड़ा था। आंटी तथा अंकल घबराए-से मुझ पर झुके मेरे चेहरे पर पानी के छींटे दे रहे थे। कुछ देर पश्चात् डॉक्टर भी आ गया था। मुझे इंजेक्शन लगाकर वह अंकल से बातें करता हुआ बाहर बरामदे में चला गया था, और फिर काफी देर तक खुसुर-पुसुर होती रही थी। मैं केवल इतना ही सुन पाया--डॉक्टर कह रहा था, 'केस पुराना है!'

अंकल कितने ही दिनों तक मुझसे रुष्ट रहे। इसी बात को लेकर कि मैंने अपनी बीमारी के विषय में पहले क्यों नहीं बताया। अब उन्हें कौन समझाए कि मैं उनके दुःख बढ़ाना नहीं चाहता, और आंटी? वे तो पहले से भी अधिक मेरा खयाल रखने लगीं। मैं जब भी स्कूल से लौटता, वे दरवाजे पर खड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही होती।

अंकल नहाकर बाथरूम से बाहर निकले हैं। कमर के गिर्द एक बड़ा तौलिया लिपटा हुआ है। उनके घुंघराले बाल माथे पर झूल रहे हैं और चेहरा बड़ा मासूम लग रहा है। मेरा जी कर रहा है, मैं उनके माथे का प्यार भरा चुंबन ले लूं और उनके बालों में उंगलियां फेरूं। पर शायद ऐसा संभव नहीं। हाथ लगाना तो दूर, हमने आपस में बातें भी बहुत कम की हैं। पांच वर्षों में उनके साथ हुई मेरी बातों को यदि समय में बांधा जाए, तो कठिनता से आठ-दस घंटे ही बनेंगे। पांच वर्षों में दस घंटे! और वह भी हां-ना में। शुरू-शुरू में जब उन्होंने मुझे 'एडोप्ट' किया, तो कोई-न-कोई बात पूछते रहते थे, पर बाद में वह भी बंद हो गई। मैं हिम्मत करके कभी कुछ पूछ भी लेता, तो वे इतना संक्षिप्त

उत्तर देते कि मुझमें बात आगे बढ़ाने का हौसला नहीं रहता, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे मुझे चाहते नहीं। नए-से-नए कपड़े, खेलों का सामान, कॉमिक्स और ढेर-सी दूसरी चीजें ला देते हैं। प्रायः घुमाने ले जाते। कार की अगली सीट पर बैठे-बैठे मेरे मन में बीसियों प्रश्न उठते, पर जबान तक कोई न आता। वह प्रायः हर माह मुझे कहीं-न-कहीं बाहर ले जाते—कभी गुलमर्ग तो कभी पहलगाम।

एक बार वे मुझे ललितादित्य के मार्तंड दिखाने ले गए। यह स्थान श्रीनगर से लगभग 45 मील दूर है। क्लास में फादर जोंस ने सम्राट ललितादित्य के विषय में हमें पढ़ाया है। वह आठवीं शताब्दी का कार्कोटक वंश का एक शक्तिशाली सम्राट था। उसका साम्राज्य विशाल था। अपने राज्यकाल में उसने बड़े-बड़े भव्य मंदिर निर्मित करवाए। मार्तंड—आकाश से बातें करते ऊंचे-ऊंचे भारी-भरकम, अपने गौरव के प्रतीक! किंतु ये मार्तंड जिस वैभव से निर्मित हुए थे, ललितादित्य के जाते ही उतनी ही आकस्मिकता से उनका पतन हो गया। समय की कठोर शिला पर नाम अंकित करने की उस सम्राट की इच्छा पूर्ण न हुई। अब रह गई थीं बड़ी-बड़ी दीवारें, बेडौल खंडहर, जिस पर लंबी-लंबी घास उग आई थी। शक्ति पर समय की विजय! अंकल ने मार्तंडों के विषय में और भी कई बातें बताईं, उनकी कार जब मुकदमेबाजी को भेंट हो गई, तो हमारा लंबा सैर को जाना भी बंद हो गया। अंकल चार गवाहों को लेकर कार से देहली गए थे और जब लौटे थे, तो कार नहीं थी। उस रोज आंटी बेहद खामोश रहीं। सुबह उठीं, तो उनकी आंखें सूजी हुई थीं, और सुर्ख थीं।

कुछ दिन हुए सड़क के किनारे मैंने एक जादूगर को करतब दिखाते देखा। वह सामने रखे रंग-बिरंगे रूमाल, कागज और रिबन निकालता जा रहा था। भीड़ के बीचोंबीच खड़े मुझे अंकल की याद अचानक ही आ गई, और उनके साथ ही मुकदमेबाजी और उनके साथ ही याद आए, वे पंखे, रेडियो सेट, कैमरे, कारें, बाग और मकान, जिन्हें उस जादूगर की तरह मुकदमेबाजी ने निगल लिया था। गर्मियों में खाना खाते समय जब कोई मक्खी आकर थाली में बैठती, तो मैं झुंझलाकर छत की ओर देखता, जहां पंखा उतर जाने के कारण एक खुलापन आ गया था। कौर चबाते-चबाते मैं ऐसा महसूस करता, मानो मैं पंखे के पर का कोई टुकड़ा चबा रहा होऊं। बार-बार रुलाई आती अपनी असमर्थता पर। हमारे परिवार के मित्रों की भांति घर की चीजें भी एक-एक करके हमें छोड़े जा रही हैं।

अंकल नहा-धोकर तैयार हो गए हैं। आंटी उनके आगे चाय रखकर मुझे बुलाने आती हैं। मैं उनके पीछे-पीछे चलता भीतर आ जाता हूं, खिंचा-खिंचा सा। अंकल कुर्सी पर बैठे चाय के कप में चम्मच फिरा रहे हैं। मैं पास की कुर्सी पर बैठ जाता हूं और आंटी सामने। तीनों मौन हैं। वे मुझे घूरकर देखते हैं और अपना कप मेरे आगे सरका देते हैं। चाय पीकर हम बाहर आ गए हैं।

''बिस्तर और अटैची खोल दूं?'' आंटी पूछती हैं।

''नहीं, कल पठानकोट जाना है। वकील का खत आया है।'' अंकल चलते हुए कहते हैं। दरवाजे के पास पहुंचकर वे पीछे मुड़कर मुझे देखते हैं—''सैर करने नहीं जाओगे?''

मैं ऊहापोह में पड़ गया हूं। आजकल उनसे कतराता हूं। उनके साथ चलूंगा, तो वे कोई बात नहीं करेंगे। ऐसे चलते रहेंगे, मानो मेरा अस्तित्व ही न हो। मुझे असमंजस में पड़ा देखकर आंटी अनचाही बौछार से बचा लेती हैं—मन नहीं, तो मत जाओ। अंकल बिना कुछ कहे चले जाते हैं। मैं एक लंबी सांस लेता हूं, मानो मैं बिल में घुसा चूहा होऊं, जो प्रतीक्षा कर रहा हो कि कब बिल्ली ओझल हो और वह बाहर आकर आराम से सांस ले।

शाम के सात बज चुके हैं। हवा बोझल और ठंडी है। चिनारों के वृक्ष अंधेरे की मटमैली-सी चादर ओढ़े प्रेतों की तरह दम साधे मौन खड़े हैं। बरामदे की बत्ती बुझी हुई है। आंटी खाना तैयार कर रही हैं। दिन भर वे अपने को किसी-न-किसी काम में उलझाए रखती हैं। जब कोई काम शेष नहीं रहता, तो माला लेकर बैठ जाती हैं। रसोई के एक कोने में मोटे पायों वाली बड़ी मेज पड़ी है, जिस पर नाना प्रकार के बर्तन, डिब्बे और एक स्टोव पड़ा है। आंटी की कलाइयां सूनी हैं और वे पतीली में पड़ा कुछ कलछी से हिला रही हैं। मैं चुपचाप उनके पीछे जाकर खड़ा हो जाता हूं। रसोई की दीवारें कुछ धुंधला गई हैं। शायद पांच वर्षों से सफेदी न होने के कारण। पच्चीस वाट का बल्ब अंधेरे को पूर्णतया भगाने में असमर्थ है। समूचे वातावरण में एक पीलापन तैर रहा है। तिस पर स्टोव की समरस आवाज! माहौल रहस्यपूर्ण है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे मेरी चेतना कण-कण कर इस धुंधलके में विलीन होती जा रही है। मैं घबराकर आंटी की पीठ को पहली तीन उंगलियों से छू लेता हूं। वे चौंककर पीछे देखती हैं और मुझे पाकर आश्वस्त-सी पुनः कलछी चलाने लगती हैं। मैं कांप रहा हूं। आंखों के आगे धुंध कुछ बढ़ गई है और सिर...मैं सहारे के लिए आंटी की ओर लपकता हूं। वे पुनः चौंककर मुझे घूरती हैं, पर मेरी मुंदती आंखें देखकर मुझे अपनी छाती से लगाकर भींच लेती हैं और बैठ जाती हैं...

''बिरजू, हम तुम्हारा ठीक से इलाज भी न करवा सके!'' उनका स्वर भींग आया है। वे पीने को मुझे पानी देती हैं। धुंध छंटने लगी है और मुझे उनकी देह की गरमाई महसूस हो रही है। मेरी आंखें अब भी बंद हैं और एक अन्य प्रकार की अचेतनता मुझ पर हावी होती जा रही हैं। वे मुझे सहारा देकर भीतर पलंग पर लिटा गई हैं। कंबल भी ओढ़ा गई हैं।

अंकल रात दस बजे लौटते हैं, थके-थके से। जानता हूं, वे दो-तीन मील का फासला तय कर आए हैं। मैं जाग रहा हूं। वे मेरे पास आकर रुक जाते हैं। उन्हें जानें कैसे पता चल गया है!

आज फिर...उनकी आवाज खिड़की के शीशे की तरह ठंडी है। मेरा माथा छूकर कहते हैं—''टेम्प्रेचर तो नहीं है?''

कपड़े बदलकर वे फिर मेरे पास आकर बैठ जाते हैं। एकटक मेरी ओर देख रहे हैं। मैं उनकी दृष्टि की ताव नहीं ला सकता हूं। आंटी उनसे पूछती हैं—''खाना...?'' वे एक पल को कुछ सोचते हैं, फिर मेरी ओर देखकर उत्तर देते हैं—''कुछ भूख नहीं।'' मुझे फिर रुलाई आ रही है। क्यों भूख नहीं? कहां से खाकर आ रहे हैं? या मेरे कारण आपका कुछ खाने को जी नहीं कर रहा? होता वही है, जो पहले होता आया है। मेरे ये सवाल मेरे अंतर में उमड़-उमड़कर गूंजते हैं, परंतु जबान

पर नहीं आते। क्या आंटी खा सकेंगी?

''सुबह मेरे साथ चलना। डॉक्टर परकिंस को दिखाएंगे।'' वे मुझसे कहते हैं।

''सुबह मुझे पांच बजे उठा देना।'' आंटी से कहकर वे सोने को चले गए हैं।

प्रातः मेरी आंख खुलती है। अंकल अटैची में फाइलें रख रहे हैं। आंटी नाश्ता लिये पास ही बैठी हैं। मुझे उठा देख वे मेरे पास आ जाती हैं।

''जल्दी से तैयार हो जाओ, वे जानेवाले हैं। तुम्हें डॉक्टर को दिखाकर तांगे पर बिठा देंगे।''

मैं बीस मिनट में तैयार हो जाता हूं। आज रविवार है, मुझे छुट्टी है। अंकल तांगे वाले को बुलाने गए हैं।

''डॉक्टर को सब कुछ बताना, झिझकना नहीं।'' आंटी मुझे समझाती हैं। घंटियों की टुनटुनाहट सुनते ही वे अटैची उठाकर दरवाजे के पास रख जाती हैं। मैं भी दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया हूं। अंकल आकर बिस्तर और अटैची तांगे पर लदवाते हैं।

''कितने दिन लगेंगे?'' आंटी उनसे पूछती हैं।

''पठानकोट वाले केस का कल फैसला है। दो-तीन दिन लग ही जाएंगे।'' वे बोलते हैं। खर्च के लिए कुछ नोट आंटी को थमाकर मेरे पास पिछली सीट पर बैठ जाते हैं।

तांगा चल पड़ा है। मैं आंटी की ओर देखता हूं, वे दरवाजे के पास खड़ी झांककर हमें देख रही हैं। वे बार-बार उंगली से आंखें रगड़ रही हैं। जाने क्यों? शायद आंख में कुछ पड़ गया है।

तांगा गली को छोड़ खुली सड़क पर आ गया है। अभी तक दुकानें नहीं खुलीं। इक्का-दुक्का तांगा रेंगता आ रहा है। दिन पूरी तरह नहीं निकला है। आकाश बादलों भरा है। विशेष ठंड नहीं।

''ठंड तो नहीं लग रही?'' अंकल मेरी कमर में हाथ डालकर पूछते हैं।

''नहीं...'' मैं हौले-से कहता हूं। उनका हाथ रखना मुझे भला लग रहा है।

तांगा चलते-चलते बस स्टैंड पर आ पहुंचता है। वेटिंगरूम में सामान रखकर अंकल और मैं सामने की एक इमारत में दाखिल होते हैं। बोर्ड लगा है—डॉक्टर परकिंस...फिजीशियन। मरीजों की एक लंबी कतार ऑफिस के बाहर बेंचों पर बैठी है। इतने सारे बीमार लोग न जाने इतनी सुबह किस प्रकार आ जाते हैं! अंकल चपरासी के हाथ अपना विजिटिंग कार्ड अंदर भिजवाते हैं। दूसरे ही पल भीतर से बुलावा आ जाता है।

अंकल डॉक्टर से हाथ मिलाते हैं।

''कहिए मिस्टर राज, आज कैसे तकलीफ की? मुझे फोन कर दिया होता!'' मुझे डॉक्टर के व्यवहार से बड़ा सुख-सा मिल रहा है। शहर के तमाम बड़े-बड़े अफसर और व्यापारी अंकल के परिचित हैं। थे। कुछ अब भी हैं। शायद डॉक्टर परकिंस उनमें से एक हैं। अरे! ये तो वही हैं। गंजे और लाल कानों वाले, जो अक्सर हमारे घर आते थे।

''ये ठीक नहीं रहता।'' अंकल मेरी ओर इशारा कर डॉक्टर से कहते हैं।

हाय...बिरजू? उन्हें मेरा घरेलू नाम याद है। मैं हल्के से मुस्करा देता हूं। मेरी झिझक खत्म हो गई है। मैं उन्हें अपनी बीमारी के विषय में विस्तारपूर्वक बताता हूं। चेकअप के पश्चात् वे प्रिसक्रिप्शन लिख देते हैं। चलते समय अंकल उन्हें फीस देने लगते हैं, तो वे लेते नहीं। मेरा कंधा थपथपाकर स्नेह से कहते हैं—''देखो, जल्दी से अच्छे हो जाना...हां!''

बस स्टैंड पर चहल-पहल कुछ बढ़ गई है। कुली बस की छतों पर सामान लाद रहे हैं। अंकल अपना सामान रखवाते हैं—बिस्तर और अटैची। हल्की बूंदा-बांदी होने लगी है। कंडक्टर सवारियों को बस में बैठने के लिए कह रहा है। अंकल एक तांगे वाले को इशारा करते हैं—''अब तुम जाओ। मैं तांगे वाले को कह दूंगा। तुम्हें घर तक छोड़ आए।'' फिर पर्स से दस-दस के तीन नोट मुझे थमा देते हैं। शायद दवा खरीदने के लिए। ''अपनी आंटी का खयाल रखता...और अपना भी।''

''जी।''

''अच्छा...'' वे बस की ओर मुड़ते हैं।

मैं तांगे पर बैठ गया हूं।

बस ढेर-सा धुआं छोड़कर सरकने लगती है।

अंकल हाथ हिलाते हैं, प्रत्युत्तर में मैं भी।

अंकल ललितादित्य के मार्तंडों की तरह अपने जर्जर कंधों पर उज्ज्वल अतीत का बोझ उठाए भविष्य का फैसला सुनने जा रहे हैं।

अंकल और ललितादित्य...! उनका वर्तमान और मार्तंडों के भग्नावशेष...!

आंटी और मैं मार्तंडों के नीरव खंडहरों में विचरते अभिशप्त प्रेत...

टप-टप, टप-टप...

□

आधुनिक कश्मीरी कविताएं

मास्टर जिंदा कौल (1884-1965)

ना-तैयारी

जो प्रेम अनन्य करता मुझको
मुझसे भी ज्यादा
आशा, प्रकाश मेरा वो प्रियतम
चाहता ढूंढ़ता मुझको
है अनादिकाल से बाट जोहता
मीत मेरा

'इस देश में रहो कुछ देर' कहा उसने
'इस गेह में रहो निहारते पथ मेरा
विरह में जब खिल आएं बगिया में
फूल प्रेम के बांटना पड़ोस में उनको
फिर तारना तुझको काम मेरा'
है अनादिकाल से बाट जोहता
मीत मेरा

'कोई सींचोगे पौधा नम होगी पृथ्वी
जिसने प्रेम किया किसी को
उसने किया प्रेम मुझे ही
प्रेम का होता उत्सर्जन मुझसे
लौटता वह चौतरफा मुझ तक ही
साध लिया यह सत्य ज्ञानियों ने
और जान गए रहस्य प्रेम का
और निर्देश मेरा'

है अनादिकाल से बाट जोहता
मीत मेरा
रोज वह भेजता है मुझे पत्र
रंग बिरंगे कागजों पर बेशुमार
कभी पुष्पभूमि, सरोवर, आकाश तारों से भरा
कभी नदी कोई, अहरबल* सा प्रपात,
पोषनूल* कोई, तितली या
फूल नरगिस का, कभी
कुलांचे मारती पीले हिरणों की जोड़ी,
कभी सुकुमार कोई, सुंदरी कभी,
विद्वान कोई, सच्चा फकीर
इंद्रियों के तुरंग पर सवार,
कुछ नहीं जिसके पास,
कहता यह संसार मेरा
है अनादि काल से बाट जोहता
मीत मेरा

रात के अंतिम पहर जब चांदनी
भरसक चमकी,
सुगंध फूलों ने बिखेरी हवा महकी
चहचहाया पाखी पोषनूल,
गा उठी मैना वन की,
आकाश का संगीत और कल-कल वाद्यवृंद,
पराग लिये मंद-मंद बहती स्वर्ग की हवा
ऐसा समा बंधा कि लगा अनाहूत
वह आ गया स्वयं ही
बालसखा मेरा

लाज आई मुझे
और बह गए पसीने इतने
कि तर हो गया बदन
छिप जाऊं कहीं या
मर जाऊं चाहा;
बेहतर विरह ही मेरे लिए

मेरी हालत देख
मन उचट न जाए उसका

तन नहीं साफ-सुथरा, वस्त्र भी यह गेह भी
तैयारी भी नहीं पूजा-अर्चना की,
फिर वो फूल प्रेम के
जो थे बांटने मुझे पड़ोसियों में
पिरोने हार थे देखे मुरझाए पड़े
कहां बिठाऊं स्वच्छ-सी जगह भी
नहीं, है धूल-धूसरित
और गृहस्थी के कबाड़खाने से घिरा
पूजाघर मेरा
है अनादि काल से बाट जोहता
मीत मेरा

बिना प्रेम की इंतिहा के
कैसे वह आता अनाहूत
इस तरह पास मेरे
समझ में आया यह भी
उसका एक पत्र ही जाना मैंने
कैसे बिना मुझे तैयार देखे आता
वह मेरा प्रियतम लाज रखने वाला
है अनादि काल से बाट जोहता
मीत मेरा

(अनुवाद : अग्निशेखर)

(* अहरबल–कश्मीर का एक प्रसिद्ध झरना * पोषनूल–एक सुंदर कश्मीरी पाखी)

गुलाम अहमद 'महजूर' (1885-1952)

अरे ओ बागबां

अरे ओ बागबां, आ !
नवबहार की शान पैदा कर
खिलें गुल उड़ें बुलबुल
तू वो सामान पैदा कर

यह बगिया वीरान है
यह शबनम का आर्तनाद
ये चिंतित फूल देख फटेहाल
आ गुलों और बुलबुलों में
फिर नई तू जान पैदा कर
एक भी रहे न झाड़ कांटेदार
यह बगिया खूबसूरत है
यहां तू सुंबुल पुष्प-सी
अतुल सदा मुस्कान पैदा कर

असीमित हो अखंडित हो
प्रेम हो आदमी को देश का
तुम इसी से पा सकोगे लक्ष्य को
आ चतुर्दिक वेग से तू
बस यही ईमान पैदा कर

तुझे कौन आकर मुक्ति देगा
बुलबुल, पिंजरे की कैद से
उठ संभल, अपनी मुश्किलों का
खुद समाधान पैदा कर

हुकूमत, माल-दौलत, नाज नखरे
ठाठ के हर्षोल्लास
सब तुम्हारे हाथ में हैं
तू इनकी गौर से पहचान पैदा कर

बोलते हैं मगर बगिया में
स्वर अलग हैं पंछियों के
इन स्वरों की विलगता में
ऐ खुदा, असर समान पैदा कर

अगर है चाहना इस बस्ती को जगाने की
तो छोड़ कोमल-भावना, साजो संगीत
ला भूकंप, आंधी ला,
गरज घनघोर
वो तूफान पैदा कर।

(अनुवाद : अग्निशेखर)

दीनानाथ नादिम (1916-1988)

मुझे है आस कल की

मुझे है आस कल की
कल लहक उठेगी दुनिया
बढ़ेगी और रोशनी दिन की
गुल और गुलजार गमक उठेंगे
हुलस-हुलस उठेगी पृथ्वी
दमक उठेगी हरियाली
हृदय में उसके भी फूटेंगे उमंग के अंखुवे
चुंधियाएंगे फव्वारे प्रेम के
कल लहक उठेगी दुनिया

बिन काजल के कजराएंगी मेरी आंखें
स्तनों में उतर आएगा दूध
और हो जाएंगे चूचुक मेरे लाल
वह आएगा कुंभ के मेले-सा बरसों बाद
कल लहक उठेगी दुनिया

कल सुनूंगी किलकारी नवजात
खिलूंगी, वेदनाओं से मुक्त होऊंगी

चू-चूकर चुबलाएगा स्तनाग्र मेरे
सुनहली हो जाएंगी कमरे की दीवारें
कल लहक उठेगी दुनिया

सुनेगा वह कान लगाकर
दरवाजे से दबे पांव
फिर किए सर ऊंचा
धीरे से चल देगा वहां से
मैं गाऊंगी धीमे से पुत्र जन्म का गीत
कल लहक उठेगी दुनिया

आएंगी सखियां देतीं बधाई
छतनार-सी चिनार मैं पूतों फली हूं
लेकर रहूंगी मैं गोदी में लेने को सगन और मिठाई
कल लहक उठेगी दुनिया

कहते हैं युद्ध है छिड़ने को
कल न छिड़े युद्ध लेकिन
कल लहक उठेगी दुनिया
कल न छिड़े युद्ध लेकिन
(अनुवाद : अग्निशेखर)

रहमान राही (1925-)

घास फूल

मुझे फूंक मत मारो
बहुत ही कोमल हूं मैं
सफेद रुई पर पड़ा हल्का-हल्का सा रंग मेरा

गोलाकार सूरज सा स्वरूप
रेशम का फुंदना हूं बाहर से
तिलिस्म-सा आश्चर्य हूं
कलात्मक अंदर से
मैं ब्रह्मांड का खामोश
उत्तराधिकारी हूं
अंखुआ मेरा मिट्टी के भीतर से फूटा
बरखा में उठा
और धूप में पाया बचपन
चहकना और झरनों का सुना संगीत
देखे पर्वत शिखर
आकाश देख लिया
दिन में सोचा
एक-एक रहस्य जान पाऊंगा मैं
पर रात के घुप्प अंधेरे में
खो गई सुध-बुध
कहां जाना है
और किधर से आया हूं
एक नजर भर देख पाया हूं खुद को
मुझे फूंक मत मारना
बहुत ही कोमल हूं मैं

(अनुवाद : अग्निशेखर)

अमीन कामिल (1924-2020)

मुझसे भी कहना

बादलों से पटे कमरे की संध खुली
कि घबराए हुए एक तारे ने
राहत की सांस ली
पिछवाड़े की खिड़की पर
किया प्रज्वलित यौवन ने दीया
दूर किसी ने इंतजार की ओट में पाया
मिलन का वजूद
खिड़की-दरवाजे से एक-दूसरे पर नजर रखे हुए मकान
दीवार से कान लगाकर सुनते हुए एक-दूसरे को
प्रत्येक आवाज के होंठ सिले हुए
हर कोई शै
शराब और भांग पिए हुए
झाड़कर दामन
किसी दड़बे में जाग उठा एक मलंग मुर्गा
और दे गया बांग बेअसर

क्या रात सुनती है कानों से?
देखती है आंखों से?
किसी को मालूम पड़े अगर
तो मुझे भी कह देना कान में
धीरे-से

(अनुवाद : अग्निशेखर)

मोतीलाल 'साकी' (1936-1999)

कब न किया विषपान हमने

कब न किया विषपान हमने
जीते रहे तो भी हम,
आंसू रहे भाग्य अपने
हंसते रहे तो भी हम ॥

शमशीर के ये घाव घने
नमक का छिड़काव उनपे,
घर के दामन बही वितस्ता
तरसे रहे तृषा से हम ॥

अभी थी मुनादी हो रही
हमारे छीन लेंगे वे बसेरे,
यह सोच-सोच हम मरे
तो भी आस बचाए हम ॥

सरोवर में हैं कमल,
प्रचंड धूप है हमारे भाग,
दामन अकाल मौत से भरा
और भरे जा रहे हैं हम ॥

की किसी ने गर हमारी बात तो
उसके साए को नमन किया,
तरेर लीं किसी ने आंख तो
हमने नाप अन्य रास्ते लिये ॥
नम न हो किसी की आंख
वो गईं आंखें कहां,
लिखते रहे स्वप्न की तहरीर हम
सूखती वो साथ ही रही ॥

गौरव से भरा अतीत है
पर कयामत यह समय,
आस कल की भरम ही सही
हम सजाए उसी को रहे ॥

(अनुवाद : अग्निशेखर)

रफीक राज (1950-)

कब्रिस्तान है शहर हमारा फिर भी कोई आवाज नहीं

कब्रिस्तान है शहर हमारा फिर भी कोई आवाज नहीं
आए कितने ही सैलाब फिर भी कोई आवाज नहीं

चढ़ते ही डूब गए कइयों के सूरज
घर के पास
सुबह न देखी कइयों ने फिर भी कोई आवाज नहीं

अब भी कितनी छायाएं रातों को फिरती आवारा
आग जले को तूफान बसर फिर भी कोई आवाज नहीं

जान लिया चुपके से झेला कुछ ऐसा ही आया भूचाल
खिड़की-दरवाजे लेकिन घबराए फिर भी कोई आवाज नहीं

(अनुवाद : अग्निशेखर)

□

आधुनिक कश्मीर की उर्दू कविताएं

फारूख नाजकी

और मैं चुप रहा

मेरे हाथों से मेरी चिता बन गई
मेरे कंधों पर मेरी अर्थी उठी
पलकों की नोक से
दिनों के पृष्ठों पर
मेरे रक्त से मेरा नाम लिखा गया
और मैं चुप रहा

मेरे बाजार, कूचे, मेरा घर
मेरी बेबसी से सजाए गए
मेरे विचार
मेरी कला के उपकरण
मेरी वंचनाओं से पोषित किए गए
और मैं चुप रहा

मेरे भाग्य का जो भी प्रारूप बना
पीले मौसम के पत्तों पर
लिखा गया
मेरी तस्वीर मुझसे छिपाई गई
मुझको अनदेखे सपनों में देखा गया
और मैं चुप रहा

मेरे शब्दों को
भावार्थ की तलवार से
शिरच्छेद किया गया
गुनगुनाते रहे

मेरे गीत
भिखारियों में बांटे गए
समृद्ध हुए
और मैं चुप रहा

मुझसे मेरी अभिलाषाओं के फूल छीनकर
जर्द मौसम ने
वसंत का उत्सव मनाया
बर्फ मेरे घर पर आकर गिरी
धूप निकली तो उसको डरा दिया
और मैं चुप रहा

मेरे सरसब्ज जंगल उजाड़े गए
मेरी झीलों में अजगर बसाए गए
हारी-पर्वत की इज्जत लूटी गई
मृत्यु के मकबरे सजाए गए
और मै चुप रहा

(उर्दू से अनुवाद : अग्निशेखर)

प्रेमी रोमानी

गजल

आशयां मैंने बनाया था चिनारों में
कौन लाया है मुझे इन रेगजारों में

घोलता है जहर कौन अबके बहारों में
आग-सी लगने लगी है शाखसारों में
बादलों ने आसमान को घेरा है जबसे
रोशनी होने लगी है कम सितारों में

किसने बोये हैं नेजे वतन की मिट्टी में
खुदाया लाशें पड़ी हैं किन कतारों में
मौसमों का रुख बदलने से न जाने क्यों
फूल भी छुपने लगे हैं आज खारों में

चैन दिन को भी नहीं मिलता है अब प्रेमी
सोचता हूं रात यूं कैसे गुजारूं मैं

ताहिर मुजतर

क्या तुममें कोई ऐसा है

शहर की सड़कों पर लोगों के हुजूम
थककर चूर जैसे चेहरे निढाल
होंठ जैसे सिये हों उनके
आशाओं और इच्छाओं में डूबे
हाथों में लिये टिमटिमाते दीये
यह कोई दीपावली नहीं
अविश्वास के
घटाटोप अंधेरे में
शांति ढूंढ़ने निकले हैं
लेकिन हर तरफ है आतंक पसरा हुआ
कौन किसको मार रहा है
यह भी अब पता नहीं चलता
हर शाम गिने जाते हैं शव
कब किसकी बारी आएगी
कब ढेर होगा कौन कहां
यह सोच-सोच के
फक है हर चेहरे का रंग
हर किसी के होंठों पर
त्राहि! त्राहि!

एक आवाज पूछती है सहसा
आकाश से
तुम्हारी निर्दयता का लेखा-जोखा है
मेरे सामने
ओ निर्दोषों के हत्यारों
क्या तुममें एक भी कोई ऐसा है
जिसने कातिल को रोका हो..?

(उर्दू से अनुवाद : अग्निशेखर)

शबनम अशायी

सवाल तुमसे

कितनी बार
उखाड़ दोगे उसको
कहीं तो जड़ों को
पनपने देते

बार-बार उखड़ने के दर्द से
वो जमीन में
फैल नहीं सिकुड़ रहे हैं
और तुम
पत्ते गिन रहे हो

जरा-सा ठहर जाते
वो पेड़ अपने फूलों से
सुवासित करता
समूचा वातावरण
और
तुम उसके साये में
टेक लगाते
यों हांफ नहीं रहे होते
उखाड़-उखाड़ कर उसको

(उर्दू से अनुवाद : अग्निशेखर)

नुसरत रशीद

आंख खुली

मैंने सपने में तुम्हें आवाज दी
यह आवाज
बंजर पहाड़ों से टकराकर
लौटी वापस
टकराई खिड़कियों के कांच से
और मेरी आंखों से
छीनकर मेरा सुंदर स्वप्न
जगा गई मुझे

आंख खुलते ही देखा
कि खुली खिड़की पर
एक नटखट बुलबुल
गा रही थी...
(मैंने देखा)

हर पहाड़ के बदन
ढके हुए हैं बर्फ से
हर दरख्त की डालियां
झुकी झुकी हैं बोझ से

हर सड़क
हर गली
हर मकान और हर नजर
बर्फ बर्फ
आकाश मेघाच्छन्न
अब हर नजर
भटक रही है
धूप की तलाश में

(उर्दू से अनुवाद : अग्निशेखर)

रख्शदां रशीद

शब्द-दर-शब्द

1.
शब्द-दर-शब्द
कोई छोड़ गया विरसा

लहराई अलकें
चाक दामन हुए
नीलाम हुईं बस्तियां
लुट गया सब कुछ
जो जोड़ा था
फसाना...
दर-फसाना हुआ!

2.
निकल आया
लोगों के उमड़ते समंदर से
और न हुआ संदिग्ध!
दिया सबूत
अपने होने का
नहाकर लहू में अपने
और तमाशा बन गया

(उर्दू से अनुवाद : अग्निशेखर)

□

आधुनिक डोगरी कविताएं

पद्मा सचदेव

रंगीन कश्मीर

रास्ते चलते
जिंदगी की तरह ही फिसलते
मन-ही-मन घुटते-घुटते
जा रही थी
तभी चली हवा अपने नगर की
मटक कर चलती-सी
ठंडा कर शीतल कर गई
हल्के मीठे शर्बत में
मानो मिठास मिला गई
कोई गुजरी है कश्मीरी में बोलती
बलिहारी अपने कश्मीर पर
मैंने बांहों में भर लिया उसे
फिर कहा
ठीक हो न
दोनों मिलकर
बांध तोड़ रो पड़ीं
पर्वतों से उमड़ी सोन नदियां
मिलकर एक हो गईं
क्या हुआ कश्मीर को
किसकी नजर लगी इसे
वादी में कौन घुस आया
ढहा गया प्रेम के महल
घोला डल में कहर
फूटी हुई धाराएं दोनों
चुप हो गईं

राहगीर वहां खड़े
देख रहे थे
हैरान होकर
मैंने कहा
पोंछ लो अब आंसू तुम
कोई नहीं हमारे मन की जानता
क्या हो गया
कौन मर गया
समाचार बनकर रह गया
रंगीन कश्मीर
कौन मरा, कितने मरे
कितने हैं जख्मी हुए
हम हैं लोगों, मरे हुए सब
कोई भी जीवित नहीं है
रिसतें हुए घावों को हमारे
कोई भी सिलता नहीं है

(डोगरी से अनुवाद : अरुणा शर्मा)

मोहन सिंह

बर्फ - I

बर्फ पिघल रही है
यह हुमस
यह सेंक
यह गर्मी
सूर्य की नहीं।
सूर्य तो अभी उगा ही नहीं।
यह गर्मी
यह हुमस
यह सेंक
'रॉकेट लॉन्चरों' और हथगोलों की है
यह सेंक
मनुष्यों की सोच
और
खिन्नताओं का है।
आदमी के भीतर जलती

घृणा की आग का है
नस्ल का
और
सीमाओं और बांधों का है।
सूर्य तो अभी उगा ही नहीं।
बर्फ पिघल रही है।

II

बर्फ चल रही है
इसकी चाल में
मस्ती
सौंदर्य
शबाब
कुछ भी नहीं
और न ही यह
जा रही है
नालों और झरनों में
कोलाहल मचाने
मीठे गीत गाने।
इसे फसलों को जीवनदान देने
अथवा
पनपाने की भी लालसा नहीं।
यह तो जा रही है
अपना
जोर-जुल्म दिखाने
अपना सिक्का मनाने
मारू शीत लहर चलाने।
बर्फ चल रही है।

शिवराम 'दीप'

प्यार भरी हुई चांदनियां

दुःखों की
इस नगरी में
कितनी शांति
चैन है कितना
प्यार भरी हुई चांदनियां हैं।

हर कोई अपनी मैल उतारे
हर कोई अपना बांटे भार
अपने सफर
सांझे सफर
छीना-झपटी कदाचित् नहीं
इसके अतिरिक्त
अपने पास का कुछ
दूसरों को नियमित
देना चाहते

जीवन

जीवन -
इस युग की पोथी का
बिना विराम चिह्न के
एक पृष्ठ मात्र
रोज पढ़ते हैं
अटक-अटक कर
अर्थ लगाते हैं
डर-डर कर।

(हिंदी अनुवाद : मोहन सिंह)

ध्यान सिंह

मुंह अंधेरा

चांद की भांति सूरज से
लौ उतार लेता हूं मैं
कागज पर कलम के साथ
लौ उतार लेता हूं मैं
आंख के साथ मन के भीतर
लौ उतार लेता हूं मैं
पर चिंता भरी संतान है यह,
क्यों यह लौ मैं सूरज भांति
बांट नहीं सकता, बिखेर नहीं सकता
दूर कहीं भी देश-देशांतर
दूर कहीं भी मासा कैंतर।

(हिंदी अनुवाद : मोहन सिंह)

□

आधुनिक कश्मीर की हिंदी कविताएं

शशिशेखर तोषखानी

फैलेगा-फैलेगा हमारा मौन

फैलेगा-फैलेगा हमारा मौन
समुद्र के पानी में नमक की तरह
नसों के खून में घुलता हुआ
पहुंचेगा दिलों की धड़कनों के आस-पास
बोरी से रिसते आटे की तरह
देगा हमारा पता
हम जहां भी हों
किसी दुःस्वप्न में

या दुःस्वप्न से भी भयंकर वास्तविकता की कगार पर
दूब की जड़ों-सा अंधेरे से होता हुआ गुत्थम-गुत्थ
मांगेगा, अपने लिए एक पूरी जमीन
पड़ा रहेगा हीरे की चमकती अंगूठी-सा
हमारे दुःख की छोटी उंगली में

शरणार्थी शिविरों में हमेशा के लिए उदास हो गए
बच्चों का मौन
कोटर से निकाली गई
बूढ़े कवि की आंखों का मौन
जो हमेशा सच की तरह खुलती थीं
स्त्रियों के होंठों पर जमी

शोक की काली नदी का मौन
उन सब लोगों का मौन
जिन्हें चुप करा दिया गया है

हमारे आंसुओं की वर्णमाला
खड़े रह गए हम

अपनी छाया को अपनी बांहों में लिये हुए
वध्य, निहत्थे, क्रुद्ध।
बार-बार पूछते हुए 'क्यों क्यों'
हमारी उंगलियों के पोर-पोर में
सुलग रहे हैं प्रश्न

जिनके उत्तर ढूंढ़ रहे हैं हम
एक पुरालिपि के बुझते प्रकाश में
हमारी आवाज में शेष है अभी
हमारे विश्वासों का अविकल सच
हमारे पास अब भी है

हजारों बार कत्ल हो चुके अपने सपनों का पागलपन
हमारे पास अब भी है
अपने आंसुओं का नमक
कुछ ऐसा लग रहा है हमें
कि हमारी पीड़ा के पड़ोस में
कश्यप ऋषि फिर से बजा रहा है अपना शंख।

रतनलाल शांत

पितृभूमि

उसने मेरे लिए एक लाल नदी बिछाई है
और आमंत्रण दिया है

कि मैं तैरकर पितृभूमि लौट सकता हूं
चुनौती दी है

कि दांतों में उसका परचम पकड़ूं
फिर सिर पर ढोकर ले जाऊं

जान और जिस्म का जो भी संबंध चाहूं।
बेबाक और साफ है
उसका हिसाब—

मेरे तैरने से बनता रहेगा पुल लगातार
पितरों के तर्पण से जिंदा रहेंगे वितस्ता के घाट
बारूद से वह फोड़ देगा नदी का ठोस तल
चौड़ा करता रहेगा नदी का पाट

''यों सुरक्षित रहेंगे हम दोनों के
मौलिक अधिकार।"
बेबाक और साफ है

उसकी राय उसका सुझाव—
अभी भी समय है

मैं समेटना शुरू कर सकता हूं
अपना वर्तमान, अपना आकार

कि मेरा व्यर्थ का विस्तार
उसकी विश्वव्यापी तलवार की
भेंट न हो जाए।

क्षमा कौल

जड़ें

घर पानी में था
बह गया?
घर शिला पर था
ढह गया?
घर सपने में था? या सोच में?
घर सचमुच था?
बादल युद्ध के थे?
चांद शक्ल का?
रोशनियों का खासा तमाशा?
हम लाम के भगोड़े थे?
लाम पर लौट आए?
यह अंधकार है?
या हम अंधे?
छत तो थी। होगी? या छलनी
टीन की?
आंगन तो था। होगा? या ढेर
हथियारों का?
हुक्का था पापा का। होगा?
कहा था न इसे रहने दो। गुड़गुड़ाएगा
शत्रु भागेंगे।
सोचा था न कि कुछ दिनों की बात है
लौट आएंगे।
क्या हम जागे हैं
पता नहीं चलता
खिड़कियां कहां हैं
जरा टटोलो
जहां जड़ें थीं
क्या हमारे वृक्ष गिरे हैं
या हम
जहां धरती में
जड़ें थीं।

महाराज कृष्ण संतोषी

शांति प्रक्रिया

उन्होंने हत्याएं कीं
पर हत्यारे नहीं कहलाए
कभी-कभी इतिहास
हत्यारों का कितना मान बढ़ा देता है!

वे जिनसे जंगल की हरियाली
और नदी का जल कांप उठते हैं
वे ही आज अपने सफेद कबूतरों के साथ

पहाड़ से उतर आए हैं
उन्होंने पहना रखे हैं
अपने इन कबूतरों के गले में
हरे रंग के तावीज!

तावीजों में एक-एक सपना है उनका
खुदा द्वारा हस्ताक्षरित
कभी वे ले आते हैं सफेद कबूतरों को
अपनी हथेली पर
और कभी उन्हें बंदूकों के पीछे
छिपा लेते हैं
मैं जब भी देखता हूं
इन कबूतरों को
तो डर जाता हूं
कैसे न डरूं
वे दूर दिखें या पास
लहू के छींटे
मेरे ही लिबास पर
गिरा देते हैं।

अग्निशेखर

आचार्य अभिनवगुप्त से

हे महापूर्वज!
इन चिथड़े तंबू-घरों में हम निर्वासित
हर शाम जलाते रतनदीप
और तन्मय हो पढ़ते
तुम्हारा भैरव-स्तोत्र

हे महापूर्वज!
क्या तुम सुन रहे हो इस पल
मेरे बगल के तंबू से आ रही
जीनोसाइड की शिकार
एक कश्मीरी बुढ़िया की पोपली आवाज में
इन नारकीय दिनों में भी
बची हुई आस्था

मैं भी मन-ही-मन खड़ा
बीरुआ गांव की भैरव-गुफा के सामने
अज्ञात गर्भ में जिसके
इसी भैरव-स्तोत्र का उच्चार करते तुम
हुए थे प्रविष्ट
अपने उद्देश्य की पूर्णता में
और लौटकर नहीं आए

हे महापूर्वज!
क्या तुम्हें पता है यह मेरे बगल की बुढ़िया
या तुम्हारे स्तोत्र का नित्य पाठ करते सब निर्वासित
सदियों से वहीं बैठे हुए हैं
बीरुआ गांव की गुफा के बाहर
तुम्हारे लौटने की आस में
कितने जन्म लिये
मरे और पिटे तुम्हारे प्रेम में
खदेड़े जाते रहे मातृभूमि से ही
जैसे कि आज भी

पर जहां भी रहे
रहे अंतश्चेतना में
इसी भैरव-गुफा के सामने
बुदबुदाते तुम्हारा कवित्व

जैसे कि मेरे बगल की बुढ़िया
इस समय नहीं है जम्मू के इस कैंप में
वह देख रही है रतनदीप की हिलती हुई लौ
गुफा की देहरी पर

सतीश विमल

ब्लैकहोल

जोर-जोर से बजाई जा रही थीं तालियां
उल्लास के वेग में
इतिहास का जन्म हुआ था
मेरी ज्ञान-कोख में
प्रौढ़-प्रश्न तिलमिला रहे थे
प्रसव के लिए
कुछ घटनाएं
कुछ पात्र
कुछ स्थान
कुछ संयोग
कुछ शब्द
दर्ज होने की कवायद के लिए
उत्सुक थे
कुछ बागी होकर
पृष्ठों से दूर भागे जा रहे थे
इतिहास से पुराने हैं मेरे प्रश्न
जिनके उत्तर
किसी ब्लैकहोल की गर्दिश में हैं
तालियों की गूंज जारी है
इतिहास रचे जा रहे हैं
मैं अपने मौन कक्ष में
बत्ती बुझाए बैठा हूं

चुप्पी और अंधकार के धागों से
बुन रहा हूं ब्लैकहोल
जिसमें असंख्य उत्तरों के सूर्य गतिमान हैं
जोर-जोर से बज रही हैं तालियां
और तेज-तेज बुना जा रहा है ब्लैकहोल

दिलीप कुमार कौल

कश्मीरी आत्मा

पांव के नीचे बर्फ जमी है
शीशे की एक परत
जिसके भीतर की मिट्टी दिखती तो है
पर ऊपर बहुत फिसलन होती है।

बस एक कांगड़ी है तुम्हारे पास
जिसे फिरन के भीतर लेकर तुम चलते हो
एक जमी हुई झील पर

बस जरा-सी चूक होती है
और तुम फिसलकर पहुंच जाते हो दूसरे किनारे पर
टकराकर लुढ़क जाते हो धम्म से

जमी हुई परत के नीचे
मजे में घूमती हुई मछलियां
छिटककर दूर चली जाती हैं
और तुम कांप उठते हो
डूब जाने के डर से।

यही तुम्हारा इतिहास है
यहीं से कचोटती है तुम्हें
तुम्हारी कश्मीरी आत्मा।

□

कश्मीर के सांस्कृतिक संघर्ष के विविध पक्ष

कुलदीप चंद अग्निहोत्री

1. कश्मीर में सैयदों का आगमन और शाहमीरी वंश की शुरुआत—भारतीय भाषाओं के साहित्य में सैयदों, मध्य एशिया के तुर्कों, मुगलों और मंगोलों के आक्रमणों और उसके परिणामों की विस्तृत चर्चा मिलती है। संघर्ष और वेदना का स्वर सर्वत्र गूंजता है। विलियम क्रुक लिखते हैं कि ''भारत में अधिसंख्य सैयद ग्यारहवीं शताब्दी के शुरुआती दौर में मुस्लिम हमलावरों के साथ आए थे, क्योंकि वे ज्यादातर मुल्ला, मौलवी थे, इसलिए उन हमलावर शासकों ने उन्हें मुक्त कर जागीरें प्रदान कीं और उनके उत्तराधिकारी आज तक उन जागीरों को भोग रहे हैं।''[1] विदेशी आक्रमणकारी जागीर भोगेंगे और देशी संस्कृति का मानमर्दन करेंगे तो पराजित छटपटाएगा। कश्मीरी साहित्य और इतिहास में भी विशेषकर कश्मीरी लोक साहित्य में अरब के सैयदों और मध्य एशिया के तुर्क/मंगोलों द्वारा कश्मीर पर किए गए सांस्कृतिक आक्रमण की छटपटाहट सर्वत्र देखी जा सकती है। कश्मीर घाटी की वेदना ज्यादा गहरी भी है, क्योंकि वहां सांस्कृतिक आक्रमण ज्यादा गहरा व प्रभावी रहा। इतना ही नहीं, वहां का सत्ता पक्ष भी अरब के सैयदों और मध्य एशिया के तुर्क/मंगोलों के साथ मिल गया था। शुरुआती दौर में कश्मीर में आए बिहाकी और हमदानी सैयदों की चर्चा सबसे ज्यादा होती है, लेकिन उनके आने से भी सात दशक पहले हजरत सैयद शरफुद्दीन अब्दुल रहमान, कालांतर में हजरत बुलबुल शाह कलंदर के नाम से जाना गया, 1324 में ही तुर्किस्तान से कश्मीर घाटी में आ गया था। उसको लेकर घाटी में अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि सैयद बुलबुल शाह ने कश्मीर घाटी में इस्लाम को फैलाने में प्रमुख भूमिका निभाई। हो सकता है, आज की कश्मीर घाटी में बुलबुल शाह की मान्यता व प्रभाव हो, लेकिन चौदहवीं शताब्दी के कश्मीर में उसके प्रभाव का कोई पुख्ता प्रमाण नहीं मिलता। इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिलता कि बुलबुल शाह के प्रभाव से हजारों कश्मीरी हिंदू-मुसलमान हो गए हों। कोई इक्का-दुक्का हिंदू ही उसके प्रभाव से मुसलमान हुआ होगा। एक लोककथा में तो यह भी कहा जाता है कि बुलबुल शाह कलंदर के कहने पर कश्मीर का बौद्ध शासक रिंचन मुसलमान हो गया था। परंतु इसकी सत्यता पर अभी भी बहस चलती रहती है और इसके पुख्ता प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। 1323 में रिंचन की मौत के बाद कुछ काल की अराजकता के उपरांत उसकी पत्नी कोटा रानी कश्मीर की शासक बनी और वह कश्मीर की अंतिम हिंदू शासक मानी जाती है। शाहमीर ने उससे विश्वासघात कर सत्ता हथिया ली और शम्सुद्दीन के नाम से 1339

में अपने आप को कश्मीर का शासक घोषित कर दिया। शम्सुद्दीन ने कश्मीरियों को मतांतरित करने के कोई खास प्रयास किए हों, इसके प्रमाण नहीं मिलते। 1342 में उसकी मौत के बाद उसका पुत्र जमशेद गद्दी पर बैठा। 1372 के आसपास ''सैयद अली हमदानी के कश्मीर में आने से पहले घाटी में इस्लाम अपने लिए कोई खास स्थान नहीं बना पाया था। शासन द्वारा इक्का-दुक्का यहां-वहां एक-आध मस्जिद बना देने और कुछ लंगर खाने खोल देने के सिवाय इस्लाम के लिए कुछ नहीं किया गया। बलपूर्वक या स्वेच्छा से मतांतरण का कोई इक्का-दुक्का मामला ही हुआ होगा। मंदिर गिराने या मूर्तियां तोड़ने को भी किसी ने उत्साहित नहीं किया।''[2] सैयद अली हमदानी के आने से पहले कश्मीर की स्थिति बताते हुए बहारिस्तान-ए-शाही का लेखक लिखता है, ''उन दिनों कश्मीर में बहुसंख्यक लोग काफिर और बहुदेववादी थे। इस प्रदेश के लोग काफिरों जैसे कपड़े ही पहनते थे।''[3] दरअसल भारत में सैयद दो लहरों में आए। अरब हमलावरों के साथ और कालांतर में तैमूरलंग से जान बचा कर भागते हुए। बुलबुल शाह के बाद जो सैयद कश्मीर घाटी में आए, वे इस्लाम में तुर्कों का वर्चस्व स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप आए।

2. सैयदों और तैमूरलंग के विवाद का शिकार कश्मीर—कश्मीर में सैयदों की दूसरी खेप तो अरबों की ईरानियों, मंगोलों व तुर्कों पर जय-पराजय की कथा के बाद आनी शुरू हुई। कश्मीर घाटी में आज भी जिस सैयद की सबसे ज्यादा चर्चा होती है, वह सैयद अली हमदानी हैं। उनकी चर्चा नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रकार से होती है। ऐसा माना जाता है कि कश्मीर घाटी में इस्लाम का नया पंथ प्रचलित करने में उनका सबसे ज्यादा हाथ था। सैयद अली हमदानी का कश्मीर में आगमन तैमूर के कारण हुआ। आज का जो तजाकिस्तान है, तैमूर वहां का रहने वाला था। तैमूर किसी दुर्घटना में लंगड़ा हो गया था, इसलिए उसे तैमूरलंग कहा जाने लगा। तैमूर (1336-1405) ने 1370 में मध्य एशिया में तैमूर वंश के शासन की स्थापना की। उसने बलख, खुरासान, हेरात को जीतकर ईरान पर हमला किया। वहां उसके निशाने पर सैयद आ गए। उसने सैयदों के साथ अच्छे व्यवहार की एक शर्त रखी कि वे यह स्वीकार करें कि तैमूरलंग या तुर्कों को इस्लामी जगत् का सम्राट बनने का अधिकार है। अब से तुर्क इस्लाम के खलीफा हैं, लेकिन सैयद ऐसा कैसे स्वीकार कर सकते थे? वे तो अपने आप को हजरत अली के खानदान से जुड़ा होने के कारण इस्लाम का मजहबी नेता मानते थे। इसलिए इस्लामी जगत् के नेतृत्व का पैदायशी अधिकार वे अपना ही समझते थे। हमदान और बिहाक में रह रहे सैयदों ने मुसलमानों पर शासन करने के तैमूरलंग के अधिकार को मानने से इनकार कर दिया।[4] सैयदों में अहंकार और श्रेष्ठता का भाव तो था ही। आखिर वे सीधे हजरत अली के समुदाय से ताल्लुक रखते थे। मध्य एशिया के किसी कबीले के आदमी को, चाहे उसके कबीले ने इस्लाम मत को ग्रहण ही क्यों न कर लिया हो, मुसलमानों और वह भी सैयदों पर राज करने का अधिकार कैसे हो सकता है? तैमूरलंग तुर्क/मंगोल प्रजाति से ताल्लुक रखता था। उसका जो परिणाम होना था, वही हुआ। तैमूर ने सैयदों को दिन में तारे दिखा दिए। तैमूरलंग से मार खाए बिहाकी और हमदानी सैयद भारत की ओर भागे। इरान से भागकर सैयद महमूद बिहाकी अपने चेलों के साथ कश्मीर में आ गया था। ये सैयद स्वयं को किसी-न-किसी सूफी सिलसिले का बताते थे। तैमूरलंग की मार में सैयद अली हमदानी भी आ गए। सैयद अली हमदानी, जिसे शाह-ए-हमदान भी कहा जाता है, सैयद शहाबुद्दीन का बेटा और

मीर सैयद मोहम्मद अल हसानी हमदान का पौत्र था। उसने भी कश्मीर का रुख किया, लेकिन ''भारत आने से पहले अपने दो चचेरे या ममेरे भाइयों, सैयद ताज्जुद्दीन और सैयद हुसैन को मजहबी हालात का जायजा लेने के लिए कश्मीर भेजा।''[5] जाहिर है, दोनों भाइयों ने वापस जाकर रपट दी होगी कि वर्तमान में कश्मीर का राजा भी अपने परंपरागत पंथ को त्यागकर इस्लाम पंथ में दीक्षित हो चुका है। कश्मीरी लोग अतिथिप्रिय हैं। उन्होंने रिंचन, शाहमीर, लंकेर चक सभी को शरण ही नहीं दी, बल्कि पद भी दिए थे। पचास साल पहले कश्मीर घाटी में आए एक दूसरे सैयद बुलबुल शाह कलंदर को भी शरण दी। तैमूर के भय से भाग रहे सैयदों को इससे अच्छी पनाहगाह और कहां मिल सकती थी? 1372 में ही सैयद अली हमदानी (1314-1384) के नेतृत्व में सैयदों की एक और खेप कश्मीर घाटी में पहुंच गई।[6] कहा जाता है कि इस खेप में लगभग सात सौ सैयद कलंदर थे। यह भी कहा जाता है कि सैयद अली हमदानी का वंश दो शताब्दियों से हमदान पर राज कर रहा था। पर इसका कोई पुख्ता प्रमाण उपलब्ध नहीं है। शायद परवर्ती इतिहासकारों ने सैयद अली हमदानी को प्रतिष्ठा प्रदान करने के लिए शाह-ए-हमदान कहना शुरू कर दिया हो। यदि सैयद अली का खानदान राजवंश का भी था तो भी वक्त बदलते देर नहीं लगी। अब वह वक्त का मारा इधर-उधर फिर रहा था। जिस वक्त सैयद अली हमदानी कश्मीर में आया तब कश्मीर में शाहमीर वंश का राजा सुल्तान कुतुबुद्दीन (1374-1389) राज कर रहा था। चिनाब घाटी या स्वात घाटी से आए शाहमीरी इस्लाम में मतांतरित हो चुके थे, लेकिन उन्होंने भी इस्लाम को इतना ही स्वीकार किया था कि अब उनकी इबादत का तरीका बदल गया था। उनके रहन-सहन और संस्कृति में कोई खास फर्क नहीं आया था।

इन सैयदों के भागकर कश्मीर आने की यह कथा कश्मीरियों में अभी भी प्रचलित है, जिसे वे आज भी कभी उनको चिढ़ाने के लिए और कभी तरस खाने के लिए सुनाते रहते हैं। इस कथा का उल्लेख सी.ई. टिंडेल बिस्काए (जो 1890 में कश्मीर में आया था) ने भी अपनी पुस्तक में किया है। उसके अनुसार, तैमूरलंग ने हमदान को जीत लिया था। वह रात्रि को घूमकर प्रजा का हालचाल जाना करता था। एक दिन उसने एक घर के अंदर से बच्चों के रोने की आवाज सुनी तो वह उस मकान के आगे ठिठक गया। बच्चे भूख के मारे रो रहे थे। उनकी मां ने अपने पति से कहा कि कहीं जाकर भीख ही मांग लो, ताकि बच्चों का पेट भरा जा सके, लेकिन पति अपमान के मारे भीख मांगने के लिए तैयार नहीं था। तैमूरलंग ने तरस खाकर उनके घर के अंदर सोने के सिक्के फेंक दिए। सुबह जब पति-पत्नी ने सोने के सिक्के देखे तो उनका संसार बदल गया। घर में धन-धान्य आ गया। पड़ोसी सैयदों को हैरानी हुई कि कल तक भूखा मर रहा परिवार आज खाता-पीता कैसे हो गया? उन्होंने सोचा, इन्होंने जरूर हमारे घर में चोरी की होगी। इसलिए उन्होंने इस गरीब आदमी के खिलाफ चोरी की नालिश दायर कर दी। अब सैयद ठहरे हजरत अली के वंशज। इसलिए कचहरी में उनका जीतना तो पक्का ही था, ऐसा उनको यकीन था। तैमूरलंग को इस मुकदमे का पता चला। उसने दोनों पक्षों को बुलाया। उस गरीब आदमी ने अपनी सारी कथा सुना दी। तैमूरलंग स्वयं भी वह कथा जानता ही था। फिर उसने सैयदों से पूछा। सैयदों ने सौगंध खाकर कहा कि उनका पैसा चुराया गया है। तैमूरलंग सैयदों की यह करतूत देखकर आगबबूला हो गया। उसने सात धातुओं की मिश्रित धातु से एक घोड़ा बनाया और उसे आग में डालकर लाल सुर्ख कर दिया। फिर उसने उन्हें हुकुम दिया कि इस घोड़े पर बारी-बारी सवार हो जाओ। उसने

कहा कि इस्लाम में माना जाता है कि आग सैयद को जला नहीं सकती। यदि तुम सच्चे हुए तो आग तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी, लेकिन यदि तुम झूठे हुए तो तुम सजा के पात्र हो। जिन सैयदों को तैमूरलंग का हुकुम मानकर आग पर सवार होना पड़ा, वे आग से जल गए। जिन्होंने राजा का हुकुम मानने से इनकार कर दिया, वे तैमूर के सैनिकों की तलवार के शिकार हो गए। इस हड़बड़ी में एक सैयद किसी तरह प्राण बचाकर वहां से भाग निकला और बचता-बचाता कश्मीर पहुंच गया। यही सैयद अली हमदानी था।''[7] तैमूरलंग के संबंध में रात्रि को घूमकर प्रजा का हाल जानने की यह कहानी सत्य प्रतीत नहीं होती, क्योंकि विजित देश के लोगों से मानवीय व्यवहार की आशा करना संभव नहीं है। तैमूरलंग का जीवन इसका साक्षी है। तब प्रश्न पैदा होता है कि कश्मीरियों ने यह कथा सैकड़ों साल पहले क्या प्रचलित की? इसका सीधा उत्तर है, जब तैमूर के सताए सैयद भागकर कश्मीर आए होंगे तो कश्मीरियों ने उनका स्वागत नहीं किया होगा, क्योंकि उन्हें पहले ही बुलबुल शाह, शाहमीर, रिंचन और लंकेर चक का स्वागत करने का फल मिल चुका था। इसी के कारण कश्मीर घाटी में शाहमीर वंश की स्थापना हो गई थी और लोहर वंश का शासन समाप्त हो गया था। शाहमीर वंश के शासन में ही कश्मीर में मतांतरण शुरू हुआ, लेकिन इन सैयदों ने कश्मीर में आकर शाहमीर वंश के शासकों से सांठ-गांठ शुरू कर दी और उन्हीं के बलबूते कश्मीरियों को सताना शुरू कर दिया। कश्मीरियों की व्यंग्य कला और प्रतीकों के माध्यम से चोट करने की क्षमता तो सर्वविदित है ही। इसी के चलते उन्होंने सैयदों को उनकी असलियत और औकात बताने के लिए ये कहानियां प्रचलित कीं।

3. सैयद अली हमदानी और शाहमीरी सुल्तानों का परस्पर संबंध—सैयद अली हमदानी ने श्रीनगर में वितस्ता (झेलम) के किनारे जहां काली मां का प्राचीन मंदिर था, अपना डेरा जमाया। हमदानी के वहां डेरा जमा लेने से ईरान से आए सैयद और इस्लाम में मतांतरित हुए कुछ कश्मीरी हिंदू भी उस स्थान पर आने लगे। हमदानी अपने आप को कुबराविया सिलसिले का सूफी बताता था। दूसरी खेप में आने वाले इन सैयदों ने बुलबुल शाह की विफलता से सबक सीख लिया था। सैयदों का सौभाग्य यही था कि कश्मीर घाटी की सत्ता पर अब तक चिनाब घाटी या स्वात घाटी की ओर से आए शाहमीरी सुल्तान कब्जा कर चुके थे। केवल इतना ही नहीं, वे इस्लाम में मतांतरित भी हो चुके थे, लेकिन यह भी स्पष्ट था कि अब तक न तो बुलबुल शाह कश्मीरियों को प्रभावित कर सका था और न ही उसके इतने साल बाद आने वाले सैयद अपने प्रचार और प्रभाव से कश्मीर के लोगों को प्रभावित कर सके थे। कश्मीर के लोग इस्लाम में मतांतरित नहीं हो रहे थे। शाहमीरी शासकों ने आम कश्मीरियों को मतांतरित करने में अतिरिक्त उत्साह भी नहीं दिखाया था। अतः दूसरी खेप के इन सैयदों ने मतांतरण के लिए राज्यसत्ता से सांठ-गांठ का रास्ता चुना। अब उनकी रणनीति राजा को ही अपने प्रभाव क्षेत्र में लाकर काबू करना हो गई ताकि मतांतरण का काम राज शक्ति के बल पर शुरू किया जा सके। इसमें वे कुछ सीमा तक सफल भी हुए। सैयद अली हमदानी ने सुल्तान कुतुबुद्दीन को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया। सुल्तान ने शरीयत का पालन करते हुए अपनी एक पत्नी को तलाक भी दे दिया। कुतुबुद्दीन दो सगी बहनों से विवाह किया हुआ था। हमदानी का मानना था कि दो सगी बहनों से शादी शरीयत के खिलाफ है। इसे भी हमदानी का ही प्रभाव कहा जा सकता है कि कुतुबुद्दीन ने कश्मीरियों का लिबास त्यागकर विदेशी सैयदों का लिबास पहनना शुरू

कर दिया था, लेकिन हमदानी इतने भर से संतुष्ट नहीं था। उसका जोर शायद कश्मीरियों को किसी भी तरह इस्लाम मत में मतांतरित करने का था। लगता है, कुतुबुद्दीन इस सीमा तक जाने को तैयार नहीं हुआ था। यही कारण था हमदानी कश्मीर में ज्यादा देर रुका नहीं। वह बड़ी मुश्किल से चार महीने श्रीनगर में रहा और यहां से मक्का की ओर चला गया। उसके बाद वह फिर 1379 में घाटी में आया। अब की बार वह अढाई साल कश्मीर में रहा। तीसरी बार वह 1383 में एक बार फिर कश्मीर आया। ऐसा कहा जाता है कि सैयद अली हमदानी कश्मीर घाटी के अतिरिक्त लद्दाख, बाल्तिस्तान, स्कर्दू इत्यादि स्थानों पर भी गया और वहां लोगों को इस्लाम की ओर आकर्षित करने का प्रयास करता रहा। इस कालखंड में आने वाले अन्य प्रमुख सैयदों में सैयद जलालुद्दीन बुखारी, सैयद ताजुद्दीन और सैयद हुसैन सिमनानी का नाम आता है। इनके संगी-साथियों में मीर सैयद हैदर, सैयद जमालुद्दीन, सैयद कमाले सानी, सैयद जलालुद्दीन अलाई, सैयद रुकनुद्दीन, सैयद मोहम्मद और सैयद एजीजुल्ला इत्यादि थे, लेकिन सैयद अली हमदानी को इस्लाम के प्रचार में सुल्तान कुतुबुद्दीन से जिस गर्मजोशी की आशा थी, उतना शायद उसने नहीं किया। बहारिस्तान-ए-शाही के अनुसार सुल्तान कुतुबुद्दीन ''सैयदों के निर्देशानुसार कश्मीर घाटी में इस्लाम का प्रचार नहीं कर रहा था। इसलिए सैयद अली हमदानी सुल्तान से अनुमति लेकर हज करने के लिए अरब देश में चला गया और वहीं 1384 में उसकी मौत हो गई।''[8] मृत्यु के समय उसकी आयु 72 साल थी। उसका शव ताजिकिस्तान ले जाया गया और वहीं उसे दफ्न किया गया। उसके पांच साल बाद 1389 में सुल्तान कुतुबुद्दीन की भी मौत हो गई। जिस काली मंदिर में सैयद अली हमदानी ने शरण ली थी, कालांतर में वह गिरा दिया गया[9] और वहां खानकाह का निर्माण किया गया। यह स्थान खानकाह-ए-मौला के नाम से ही प्रसिद्ध होने लगा और आज तक उसी नाम से जाना जाता है। कश्मीरी भाषा के सिद्धहस्त साहित्यकार अवतार कृष्ण रहबर की कहानी 'छाया' में इस इतिहास का जिक्र है जिसमें कश्मीरियों की भीतरी वेदना कहीं गहरे में देखी जा सकती है। एक अंश द्रष्टव्य है। ''अमीर तैमूरलंग और हजरत अमीर कबीर मीर सैयद अली हमदानी समकालीन थे। उनका देश फारस था। मध्य एशिया का बहुत पुराना और महान देश। हजरत अमीर कबीर इक्कीस वर्षों तक दुनिया के बहुत बड़े-बड़े विद्वानों, ज्ञानियों और सूफियों से भेंट करके 1370 में वापस अपने देश आए थे। जब वे लौटे तो उन्होंने वहां सब कुछ उलट-पुलट देखा। राजनीतिक माहौल बहुत बिगड़ गया था। अमीर तैमूर का दबदबा और प्रभाव हर तरफ बढ़ गया था। उसके द्वारा सैयद हजरातों पर बड़े जुल्म ढाए जा रहे थे, क्योंकि वह उनसे विद्वेष रखता था। बहुत-से सैयद हजरात देश छोड़कर इधर-उधर जाने लगे थे। हजरात अमीर कबीर सैयद अली भी इन्हीं खराब हालातों के कारण 1372 में अपने सात सौ मुरीदों के साथ अपना देश छोड़ने के लिए मजबूर हो गए। वे कश्मीर आ गए। उस समय कश्मीर पर सुल्तान शाहबुद्दीन का राज था। कुतुबुद्दीन राजकुमार थे। सुल्तान उस वक्त कश्मीर में नहीं थे। वे दूर किसी फौजी मुहिम पर गए हुए थे। इसलिए राजकुमार ने ही हजरत अमीर कबीर शाह हमदान का स्वागत किया था। शाह हमदान उस समय लगभग छह महीनों तक कश्मीर में रहे थे। फिर वे सात बरस बाद दोबारा आए और ढाई वर्षों तक रहे। तीसरी बार वे 1382 में आए थे, मगर कश्मीर में उनकी तबीयत खराब होने के कारण वे जल्दी ही वापस चले गए और 1384 में वे जन्नतनशीं हो गए। उनकी मैयत खतलान ताजिकिस्तान पहुंचाई गई और वहीं दफनाई गई। सच तो यह है कि कश्मीर पर हजरत

अमीर कबीर तथा उनके पुत्र मीर मोहम्मद हमदानी ने गहरा प्रभाव छोड़ा।''[10] इसी प्रभाव को कश्मीर घाटी आज तक झेल रही है।

4. सैयदों द्वारा घाटी में बुतशिकन का सृजन—सुल्तान कुतुबुद्दीन की मौत के बाद सुल्तान सिकंदर (1389-1413) कश्मीर का बादशाह बना। वह शाहमीरी वंश का छठा सुल्तान था। उधर सैयद अली हमदानी की मौत के बाद कश्मीर में उसका उत्तराधिकारी उसका बेटा सैयद महमूद हमदानी बना। सैयद अली तो सुल्तान कुतुबुद्दीन को बुतशिकन बनाने में कामयाब नहीं हो सके थे, लेकिन उनका बेटा सैयद महमूद जरूर सुल्तान सिकंदर को बुतशिकन बनाने में कामयाब हो गया। यह अलग बात है कि सैयदों को कश्मीर के किसी शासक को बुतशिकन बनाने में काफी मेहनत करनी पड़ी, लेकिन जब सफलता मिली तो एकसाथ ही। सैयदों ने सुल्तान सिकंदर के मंत्री पंडित सूहा भट्ट को भी मतांतरित कर मुसलमान बना लिया। यह कश्मीर में सैयदों की सबसे बड़ी विजय थी जिसका खामियाजा सारा कश्मीर आज तक भुगत रहा है। बुतशिकन सिकंदर ने लगभग पच्चीस वर्ष तक शासन किया। कश्मीर घाटी में हिंदुओं का मतांतरण इसी कालखंड में हुआ। इससे पूर्व कश्मीर घाटी में मुसलमान बनने वाले कश्मीरियों की जनसंख्या नगण्य थी। बुतशिकन और सूहा भट्ट की इस जोड़ी ने कश्मीर में हाहाकार मचा दिया। ऐसा लगता है जैसे बंगाल और कश्मीर का इतिहास विधाता एक ही लेखनी से लिख रहे हों। बंगाल में जो काम राजीवलोचन राय ने काला पहाड़ बनकर किया, वही काम कश्मीर में सूहा भट्ट ने सैफुद्दीन बनकर किया। बुतशिकन को भी कोई ऐसा ही सिपहसालार चाहिए था जो घाटी को हिंदूविहीन करने के उसके स्वप्न को पूरा कर सके। उसके भीतर यह स्वप्न सैयदों ने जगा दिया था, लेकिन यह काम सैयद खुद नहीं कर सकते थे, क्योंकि वे अभी तक कश्मीर घाटी में बाहरी आदमी थे, घर के आदमी नहीं। वे कुछ बड़े नगरों और कस्बों में ही सिमटे हुए थे। उधर ऋषि परंपरा के साधक भी कश्मीर में उनके पैर नहीं जमने दे रहे थे। ऐसे समय में सूहा भट्ट सबसे बड़ा मोहरा था, जो इन सैयदों के हाथ लगा था, लेकिन इस सबके बावजूद यह ध्यान रखना चाहिए कि सूहा भट्ट मात्र बुतशिकन की मशीन का एक पुर्जा मात्र था। वह बुतशिकन के सपनों में अपने हम मजहबियों के रक्त से रंग भर रहा था। ये सपने उसके अपने थे, इसका प्रमाण नहीं है। ऐसा भी कहा जाता है कि वह सैयदों को खुश करके उनकी सहायता से स्वयं कश्मीर की सत्ता पर कब्जा करना चाहता था। उसकी दूसरा शाहमीर बनने की इच्छा तो पूरी नहीं हुई, लेकिन इसका परिणाम कश्मीरियों के लिए बहुत घातक सिद्ध हुआ। मतांतरण का ऐसा दौर चला कि जिन्होंने इस्लाम स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उनको या तो कत्ल कर दिया गया या डल झील में डुबोकर मार दिया गया। अधिकांश कश्मीरी मतांतरण से बचने के लिए कश्मीर छोड़कर चले गए। बुतशिकन ने सरहदों पर पहरेदार बिठा दिए ताकि कोई कश्मीरी भाग न सके। भाग रहे कश्मीरियों को सीमा पर मार दिया जाता था। बहुत से कश्मीरियों को, जिन्होंने मुसलमान बनने से इनकार कर दिया, बोरों में बांधकर डल झील में डुबो दिया गया। कोई कश्मीरी माथे पर तिलक लगाए दिख जाता था तो उसे मार दिया जाता था। कोई वितस्ता की पूजा करता दिख जाता तो उसे पकड़ लिया जाता। मंदिरों को ध्वस्त कर दिया गया और उनके स्थान पर मस्जिदें बना दी गईं। कहा जा सकता है कि मतांतरण का यह अभियान बुतशिकन के शासनकाल में चरम सीमा पर पहुंच गया

था। लगता था, हारी पर्वत के नीचे मृत पड़ा जलोद्भव पुनः जिंदा हो गया था। लोककथा है कि घाटी में केवल ग्यारह कश्मीरी हिंदू परिवार बचे थे। बाकी कश्मीरियों को या तो मुसलमान बना दिया गया या वे भाग गए या मार दिए गए।

5. बुतशिकन की राख से बडशाह या भट्टशाह की उत्पत्ति—बुतशिकन की मौत के बाद कश्मीर में इतिहास ने फिर एक करवट बदली। उसके सुपुत्र जैनुल आब्दीन ने 1420 में गद्दी संभाली। उसने 1470 तक पचास साल राज किया। उसने अपने पिता द्वारा किए गए अत्याचारों का एक प्रकार से प्रायश्चित्त करना शुरू कर दिया। इसलिए इतिहास में उसे बडशाह या भट्ट शाह के नाम से जाना जाता है। दरअसल कश्मीरियों को भट्ट के नाम से भी जाना जाता है। उच्चारण भेद के कारण कश्मीर में भट्ट का उच्चारण बट्ट या बट भी किया जाता है। जैनुल आब्दीन ने जिस प्रकार पुनः कश्मीर घाटी में वहां की विरासत, आस्था और परंपराओं को पुनः स्थापित करने का कार्य प्रारंभ किया, उसके कारण वहां यह चर्चा भी चल पड़ी कि राजा पुनः हिंदू धर्म में वापस चला गया है। सैयदों ने तो यह कहना भी शुरू कर दिया कि बडशाह या भट्टशाह हिंदू हो गया है, लेकिन प्रश्न था कि राजा जैनुल आब्दीन से भट्टशाह या बडशाह कैसे बन गया? उसको लेकर भी एक कथा प्रचलित है। सुल्तान को एक भयंकर फोड़ा निकल आया जिसका इलाज कोई नहीं कर पा रहा था। दूर-दूर से हिकमत जानने बाले बुलाए गए, लेकिन मर्ज किसी की पकड़ में ही नहीं आ रहा था। कश्मीरी वैद्यों की पुकार हुई, लेकिन उन सभी को तो मार दिया गया था या फिर वे घाटी छोड़कर चले गए थे, लेकिन किसी प्रकार भी एक कश्मीरी वैद्य मिल जाता तो इस जानलेवा मर्ज से छुटकारा मिल सकता था। किसी ने सुल्तान को बताया कि श्रेया भट्ट नाम का एक वैद्य अभी भी घाटी में है। किसी तरह उसको पकड़ लिया गया। उसने निरंतर इलाज से सुल्तान को व्याधिमुक्त कर दिया। बात पुरस्कार की आई तो श्रेया भट्ट ने अपने लिए कुछ नहीं मांगा। उसने कश्मीरियों के लिए घर वापसी मांगी। सुल्तान ने कश्मीरियों को वापस कश्मीर में आने की अनुमति तो दी ही, साथ ही उनकी आस्थाओं और परंपराओं में खुद हिस्सेदार बनने का भी प्रण किया। इस घटना के बाद राजा को कश्मीरियों की ज्ञान-विज्ञान में महारत का एहसास तो हुआ ही। साथ ही, इस बात का दुःख भी हुआ कि उसके पिता ने कश्मीरियों के साथ कितना अन्याय किया है। शारदा पीठ को बंजर बना दिया है। उसने पिता के किए गए पापों का प्रायश्चित्त शुरू किया। उसने कश्मीर में केवल मतांतरण को ही नहीं रोका, बल्कि कश्मीर छोड़कर चले गए कश्मीरियों को वापस आने का आह्वान भी किया। मंदिरों को दान दिया गया। ध्वस्त किए गए कुछ मंदिरों का उद्धार भी किया गया। वितस्ता नदी की पूजा पुनः प्रारंभ हुई। भट्टशाह हिंदू कश्मीरियों के पांथिक और सांस्कृतिक उत्सवों में स्वयं जाता था। अनेक स्थानों पर पूजा भी करता था। उसकी मंशा कश्मीर को उसकी परंपराएं और विरासत पुनः लौटा देने की थी। यही कारण था कि सूफी सैयद यह मान रहे थे कि जैनुल आब्दीन पुनः अपने पुराने हिंदूमत में चला गया था। भट्टशाह ने इसकी तो परवाह नहीं की, लेकिन वह सैयद सूफियों को नाराज भी नहीं कर सकता था, क्योंकि बुतशिकन के पचास साल के राजकाज में प्रशासन व्यवस्था में सूफी सैयदों की पकड़ भी गहरी हो गई थी। इतना ही नहीं, उन्होंने घाटी में अनेक स्थानों पर अपने अड्डे भी जमा लिए थे। इसलिए इन सैयद सूफियों को प्रसन्न रखने के लिए भट्टशाह नियमित रूप से नमाज भी

पढ़ता था। भट्टशाह की घर वापसी पर सैयदों के विलाप का अंदाजा बहारिस्तान-ए-शाही के एक उद्धरण से लगाया जा सकता है। लेखक का दुःख यही है कि बुतशिकन ने इस्लाम के लिए जो कश्मीर में कर दिखाया था, उसके बेटे ने वह सब मटियामेट कर दिया और कश्मीर को फिर उसके असली रूप में वापस लाने का उपक्रम किया "that the temples of idol-worshippers, which had been destroyed and razed to the ground by the religious-minded and justice-loving Sultan Sikandar, God bless his grave and bless him, had been rebuilt and rehabilitated by Jainu'l 'Abidin. He had permitted idolators and polytheists to revive the practices of infidelity and they had propagated heresy (kufr) and false religion (din-i batil). With the support of some more kings, the infidels had flourished day after day."[11] यह ठीक है कि बडशाह या भट्टशाह ने सैयद सूफियों को बहुत महत्ता नहीं दी, उसने मतांतरण को भी रुकवा दिया। सैयद सूफियों की कश्मीर विरोधी गतिविधियों पर भी शिकंजा कसा, लेकिन सैयदों ने हार नहीं मानी। भट्टशाह की मौत के बाद एक प्रकार से अराजकता फैल गई। सैयदों के पंख फड़फड़ाने का यही वक्त था और उनको यह अवसर दिया शम्सुद्दीन मोहम्मद इराकी ने।

6. शम्सुद्दीन मोहम्मद इराकी का कश्मीर में आगमन—लगता था कश्मीर पर से अभी काली छाया हटी नहीं थी। इस बार यह छाया शम्सुद्दीन मोहम्मद इराकी के रूप मे प्रकट हुई थी। भट्टशाह की मौत के पूरे आठ साल बाद 1478 में शम्सुद्दीन मोहम्मद इराकी (1424-1526) खुरासान के सुल्तान वली हुसैन के राजदूत के तौर पर कश्मीर में पहुंचा था।[12] उस समय शाहमीर वंश के नौवें सुल्तान हसन शाह (1472-1484) गद्दीनशीन थे। राजदूत के पद की अपनी सेवा अवधि पूरी करने पर वह वापस खुरासान चला गया। दूसरी बार इराकी 1496 में अपने मजहब के प्रचार के लिए कश्मीर में आया था। इराकी या अराकी शिया मजहब को मानने वाला था। शिया मजहब में वह अपने आप को नूरबख्शिया सिलसिले का बताता था। उसकी रणनीति कश्मीरियों को शिया मत में लाने की थी। इसमें उसका साथ मलिक मूसा रैणा ने दिया, जो कुछ समय पहले ही सोम चंद्र से मूसा बना था। इसलिए इराकी के शिकार वे कश्मीरी भी हुए जिनके पुरखे अरसा पहले इस्लाम में मतांतरित होकर अपने आप को मुसलमान कहने व मानने लगे थे। यह ठीक है कि सैयदों का इस्लाम मजहब को मानने वाला धड़ा अराकी के विरोध में खड़ा हो गया, लेकिन यह सैयदों की आपसी लड़ाई थी जिससे आम कश्मीरी को कोई राहत मिलने वाली नहीं थी। कश्मीरी, इस्लाम के धड़ों के बीच में फंस गए थे। आगे कुआं, पीछे खाईं, लेकिन आगे बढ़ने से पहले यह जानना जरूरी है कि मुसलमानों का शिया मजहब से झगड़ा क्या है?

हजरत मोहम्मद के देहांत के बाद उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न पैदा हुआ। इस प्रश्न पर विवाद खड़ा हो गया। मुसलमानों का एक धड़ा हजरत अली को उत्तराधिकारी बनाना चाहता था, लेकिन दूसरा धड़ा अबू बकर के पक्ष में था। अंततः अबू बकर को उत्तराधिकारी मान लिया गया। अबू बकर ने सभी अरब कबीलों को इस्लाम में मतांतरित करने का काम बड़ी तेजी से शुरू कर दिया। इसमें उसे बहुत सीमा तक सफलता भी मिली। अबू बकर के देहांत के बाद उत्तराधिकार का मामला फिर उलझ गया। इस बार फैसला उमर के पक्ष में गया। उमर के बाद गद्दी उस्मान के

हाथों में आई। उमर और उस्मान के कार्यकाल में अरब की सेनाओं ने पड़ोसी देशों पर हमले करने शुरू कर दिए और उन्हें जीतकर इस्लाम में मतांतरित करना शुरू कर दिया था। मिस्र, सीरिया, इराक, फारस देश और फिलिस्तीन इन्हीं दिनों धराशायी हुए। अरबों का मुसलमानी साम्राज्य तो फैल गया, लेकिन साथ ही उस पर कब्जा बनाए रखने की लड़ाई भी। इसी के चलते विद्रोहियों ने उस्मान की हत्या कर दी। उस्मान के बाद उत्तराधिकारी हजरत मोहम्मद के दामाद, अली बने। इन चार खलीफाओं को संयुक्त रूप से खलीफा राशिदुन या केवल राशिदुन कहा जाता है। अली इस नए साम्राज्य को अलग ढंग से चलाना चाहते थे, लेकिन उन परिस्थितियों में ऐसा शायद संभव नहीं लग रहा था। कब्जा किए गए देशों में मतांतरण के कारण दोनों प्रकार की प्रतिक्रिया थी, गुस्सा, विरोध और निराशा भी थी और कुछ लोग विजेता अरबों के साथ मिलकर इस्लाम के नए सिपहसालार भी बन गए थे। अली को इन हालातों में एक राज्य की स्थापना करनी थी, लेकिन नए-नए जोश में आए मुसलमान शायद इसके लिए तैयार नहीं थे। इसलिए हजरत अली के कार्यकाल में ही अरब जगत् में गृहयुद्ध शुरू हो गया। यहां तक कि मुसलमानों ने अली पर उस्मान की हत्या में मिलीभगत का आरोप भी लगाना शुरू कर दिया। मुसलमानों ने अली को इस्लाम का खलीफा मानने से इनकार कर दिया। वे मुआविया के नेतृत्व में एकत्रित हो गए और उमैय्यद खिलाफत की स्थापना की। अली की कूफा मस्जिद के अंदर ही हत्या कर दी गई। मुआविया ने ताकत के जोर पर मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना तो कर दी, लेकिन यह अत्याचार और अन्याय का साम्राज्य सिद्ध हुआ। अली के देहांत के बाद यह संघर्ष और तेज हो गया। उमैय्यद खिलाफत के मुखिया अब याजीद हो गए थे। उसके अत्याचार और भी बढ़ गए। याजिद ने मानवीय मूल्यों को ताक पर रखकर लोगों पर अमानुषिक अत्याचार करने शुरू कर दिए। राजधर्म का निर्वाह करने की बात तो बहुत दूर थी। अरबों और अन्य विजित प्रदेशों ने ऐसे मुसलमानी शासन की शायद आशा नहीं की थी।

लेकिन इस शासन को चुनौती कौन दे? मुसलमान राज्य के इस अन्याय के खिलाफ कौन खड़ा हो सकता था? इस चुनौती को अली के बेटे हुसैन ने स्वीकारा। यह ठीक है कि उसके अनुयायी कम थे, लेकिन अन्याय के खिलाफ लड़ने का उनका साहस अपरिमित था। मुसलमान शासकों ने भी शायद अली के पूरे वंश को ही समाप्त करने की रणनीति बना ली थी। कर्बला के मैदान में अरब के मुसलमानों की सेना ने हुसैन को, उसके अनुयायियों को पारिवारिक सदस्यों सहित बहुत ही जालिमाना तरीके से मौत के घाट उतार दिया था। हुसैन और उसके साथियों की संख्या बहुत कम थी और इस्लामी सैनिकों की संख्या बहुत ज्यादा थी। जीत तो अरब मुसलमानों की हुई लेकिन हुसैन के गिने-चुने अनुयायियों ने अंत तक पीठ नहीं दिखाई। हुसैन भी शहीद हो गए, लेकिन बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि न्याय एवं स्वतंत्र चिंतन हेतु लड़ी जा रही कर्बला की इस लड़ाई में भारतीयों ने इन योद्धाओं का साथ दिया था और अरब की इस्लामी सेना से लड़ते हुए भारतीयों ने शहादत भी प्राप्त की थी। उसमें एक दत्त ब्राह्मण का नाम तो बहुत प्रसिद्ध है जिसके पुत्र इस लड़ाई में शहीद हो गए थे। यही कारण है कि इन मोहियाल ब्राह्मणों को समाज में आज भी हुसैनी ब्राह्मण कहा जाता है। दरअसल यह भारतीयों और हुसैन के साथियों की अरब की इस्लामी सेना के साथ स्वतंत्र चिंतन और अपने अधिकारों के लिए लड़ी गई साझी लड़ाई थी, जिसमें दोनों का रक्त कर्बला के रेगिस्तान

में बहा था। मुसलमानों से इस युद्ध के बाद ही हुसैन के अनुयायी शिया कहलाए जाने लगे। इस नए शिया समाज या संप्रदाय ने अरब और तुर्कों में भूकंप ला दिया। बहुत-से अरब सैयद भी कालांतर में शिया संप्रदाय में शामिल हो गए। अरब के मुसलमान इतिहासकारों ने इस विरोध को सत्ता संघर्ष से जोड़ने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि अली के देहांत के बाद उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष शुरू हो गया। अली के सुपुत्र हुसैन स्वयं खलीफा बनना चाहते थे। ऐसा कहना एक प्रकार से हुसैन की शहादत को छोटा करना ही होगा। हुसैन सत्ता के लिए संघर्ष या विद्रोह नहीं कर रहे थे बल्कि वे न्याय एवं मानव मूल्यों के लिए लड़ रहे थे। मुसलमानों के अत्याचार समाज के उन लोगों पर बहुत बढ़ गए थे जिन लोगों ने उनके रास्ते पर चलना अस्वीकार कर दिया था। जिन अरबों ने याजिद के अन्याय का विरोध किया था, उनका एक नया संप्रदाय विकसित हो गया, जो इतिहास में शिया संप्रदाय के नाम से जाना जाता है।

कर्बला के बाद से आज तक मुसलमानों और शिया समाज में यह संघर्ष किसी-न-किसी रूप में आज भी जारी है। शिया समाज के लोग हुसैन की इस शहादत को याद ही नहीं करते, बल्कि उसका प्रतीक ताजिया बनाकर शहर भर में घूमते भी हैं। इतना ही नहीं, अपने शरीर को नाना प्रकार से कष्ट भी देते हैं, ताकि उन कष्टों का, जो हुसैन और उनके साथियों ने अरब की इस्लामी सेना के हाथों तपती दोपहरियों में सहे थे, थोड़ा-सा भी अनुमान लगा लिया जाए। यही नहीं, वे ताजिया निकालते समय उन भारतीयों का स्मरण भी करते हैं, जिन्होंने इनके साथ उस समय खड़े होने का साहस किया, जब उनके अपने नजदीकी छोड़कर भाग रहे थे। कर्बला के मैदान में न्याय के पक्ष में लड़ने वाले इन भारतीयों की यह अद्वितीय शहादत इतनी लासानी थी कि इतिहास में वे भारतीय, हुसैनी ब्राह्मण के नाम से ही जाने जाने लगे। शिया समाज हुसैन की शहादत के प्रतीक ताजिए पर शीरनी और शर्बत अर्पित करते हैं। मुसलमान इसको मूर्ति पूजा कहकर उसका विरोध करते हैं। इस्लाम में मूर्ति पूजा की अनुमति नहीं है। कट्टरपंथी मुसलमानों के लिए यह सारी कथा प्रकारांतर से मूर्ति पूजा का ही दूसरा तरीका है जिसकी मजम्मत विरोध या आलोचना की जानी चाहिए। यदि मजम्मत करने से भी काम नहीं बनता तो ऐसा दुस्साहस करने वाले शिया समाज को उचित दंड भी दिया जाना चाहिए। मुसलमानों के शिया समाज से विरोध का कारण इसी पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है। इस पृष्ठभूमि में कश्मीर में जो सैयद आ रहे थे, वे सभी मुसलमान नहीं थे बल्कि उनमें से कुछ शिया संप्रदाय के भी थे। शम्सुद्दीन मोहम्मद इराकी इसी शिया संप्रदाय को मानने वाला था। वह केवल मानने वाला ही नहीं था, बल्कि बलपूर्वक दूसरों से मनवाने वाला भी था। उसने सैयद/तुर्क/मुगल मंगोल मूल के मुसलमानों को भी मतांतरित कर शिया संप्रदाय का कुनबा बढ़ाने का प्रयास किया। इसी प्रकार उसने कश्मीरियों को शिया मजहब में मतांतरित करने की कार्यवाही करनी शुरू कर दी। जो कश्मीरी इससे पहले मुसलमान हो गए, इराकी उनको शिया मजहब में लाना चाहता था। इस माहौल में कश्मीर घाटी में मुसलमान अरबों/तुर्कों और शिया संप्रदाय के अरब/तुर्कों में संघर्ष शुरू हो गया परंतु इसकी चपेट में कश्मीरी भी आ गए।

इराकी द्वारा सत्ता की सहायता से कश्मीरियों को शिया मजहब अपनाने के लिए कितना तंग किया, इसका एक नमूना बहारिस्तान-ए-शाही में देखा जा सकता है। "But with the

support and authority of Malik Musa Raina, Amir Shamsu'd-Din Muhammad undertook a wholesale destruction of all those idol-houses as well as the total ruination of the very foundation of infidelity and disbelief. On the site of every idol-house he destroyed, he ordered the construction of a mosque for offering prayers after the Islamic manner. The idolatory and heresy which had existed prior to his coming to this place were effectively replaced by his preaching and propagation of Islamic laws and practices. He brought honour to all the infidels and heretics (zandiqa) of Kashmir by admitting them to the Islamic faith and bestowed upon them many kinds of rewards and benefactions. It is publicly known as well as emphatically related that during his life-time, with the virtuous efforts and elaborate arrangements made by the fortunate Malik Musa Raina, twenty-four thousand families of staunch infidels and stubborn heretics were ennobled by being converted to the Islamic faith. It is difficult to compute the number of people who had hitherto indulged in corrupt practices of a wrong (false) faith and dissent and were put on the right track under the proper guidance of Mir Shamsu'd-Din 'Iraqi."[13]

यहां अनुवादक जब इस्लाम की बात करता है तो उसका अभिप्राय शिया मजहब से है, क्योंकि इराकी कश्मीरियों को अपने शिया मजहब में मतांतरित कर रहा था।

8. कश्मीर में दर्दस्तान के चकों का राज्य और शिया संप्रदाय का उभार—शाहमीरियों ने 222 साल तक कश्मीर पर राज किया। शाहमीर शासन के अंतिम बादशाह सुल्तान हबीब के सिर पर से भरी सभा में अली चक ने ताज उतारकर अपने भाई गाजी चक के सिर पर रख दिया। उसने कहा कि सुल्तान हबीब अयोग्य है और अब से गाजी चक बादशाह होगा। शाहमीर वंश के अंतिम राजा के पक्ष में एक भी आवाज नहीं आई और कश्मीर में चक वंश का राज शुरू हो गया। रिकॉर्ड के लिए यह घटना 1554 में हुई थी। चक गिलगिट या दरद क्षेत्र के रहने वाले थे। कश्मीर में चकवंश के राजाओं का शासन चालीस साल रहा। इस वंश के अंतिम शासक यूसुफ शाह (1580-1586) थे। यूसुफ शाह मस्तमौला किस्म के शासक थे। मुसलमान सैयदों और तुर्कों की उनसे पटती नहीं थी, क्योंकि एक तो वे शिया संप्रदाय को मानने वाले थे, दूसरे वे नहीं चाहते थे कि मध्य एशिया से आए हुए मुगल कश्मीर पर कब्जा कर लें। मुगल बादशाह अकबर ने उन्हें धोखे से बंदी बनाकर बिहार में जलावतन कर दिया। वहीं उनकी विपन्नावस्था में मृत्यु हुई। यूसुफ शाह चक के बेटे याकूब शाह चक ने कुछ समय के लिए मुगलों का विरोध किया, लेकिन इसमें उसे सफलता नहीं मिली। इसप्रकार यूसुफ शाह के अवसान से कश्मीर का अंतिम स्थानीय नरेश समाप्त हुआ और विदेशी मुगलों ने कश्मीर को गुलाम बना लिया। इसप्रकार 1339 से लेकर 1586 तक कश्मीर पर शाहमीरी वंश और चक वंश का राज रहा। चाहे शाहमीरी इस्लाम में मतांतरित हो चुके थे और चक शिया संप्रदाय में मतांतरित हो चुके थे, लेकिन वे स्थानीय शासक ही थे।

यूसुफ शाह के जलावतन के बाद कश्मीर में विदेशी शासन की शुरुआत हो गई। मुगलों ने अब तक देश के अधिकांश हिस्से पर कब्जा कर लिया था। सप्त सिंधु क्षेत्र तो लगभग सारा

ही उनके कब्जे में था। कश्मीर अभी तक बचा हुआ था, परंतु बकरे की मां कब तक खैर मनाती। 1587 में अकबर ने इसे अपने आधिपत्य में ले लिया। उसके बाद 1751 तक 235 वर्ष कश्मीर मध्य एशियाई मुगलों के कब्जे में रहा। मुगलों से सत्ता अफगान दुर्रानियों ने 1751 में छीन ली। अफगानों का राज लगभग 75 साल तक रहा। मुगलों-अफगानों के शासनकाल में कश्मीरियों को असंख्य कष्ट झेलने पड़े। अनेक स्थानों पर मंदिर गिराकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई गईं। आज भी उन कश्मीरियों के वंशज, जो इस कालखंड में इस्लामी मजहब में दीक्षित हो गए थे, मस्जिदों के सामने इबादत करते हुए भी पुरानी कहानियां सुनाते हुए मिल जाएंगे। शिया संप्रदाय को कश्मीर में सफलता चक वंश के शासनकाल में ही मिली, क्योंकि चक स्वयं मुसलमान मत की बजाय शिया पंथ को मानने वाले थे। चकों के राज्यकाल में शिया सैयदों का वर्चस्व बहुत बढ़ गया। वे अब केवल खानकाहों या मस्जिदों तक सीमित नहीं थे, उनकी राज दरबार में प्रत्यक्ष धाक बन गई थी। मतांतरण का काम भी कभी धीमी रफ्तार से, कभी तेज रफ्तार से हो रहा था।

9. शाहमीरी नरेशों के सैयदों से प्रभावित होने का कारण—कश्मीर में लोहर वंश की समाप्ति कोटा रानी की हत्या/आत्महत्या से हुई। उसके बाद शाहमीर वंश का राज शुरू हुआ। चक वंश के बत्तीस साल मिलाकर, इन दोनों वंशों ने राज किया। उसके बाद मुगलों-अफगानियों का विदेशी राज शुरू हुआ। शाहमीर-चक वंश के शासनकाल में बुतशिकनों और सैयदों की संयुक्त राजनीति के चलते अधिकांश कश्मीरियों को मतांतरित होना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपनी जड़ें नहीं छोड़ीं। वह सैयदों/तुर्कों/मुगल मंगोलों के सांस्कृतिक प्रभाव से किसी सीमा तक बचे रहे। कश्मीरियों ने इन विदेशी सैयदों और शासकों से सांठ-गांठ से उनके बढ़ते प्रभाव का मुकाबला किया। प्रश्न केवल उन कश्मीरियों का नहीं है, जो मतांतरित नहीं हुए, इनमें वे कश्मीरी भी शामिल थे, जो किन्हीं भी कारणों से मतांतरित हो चुके थे। वे भी भीतरी मन से अपनी पुरखों की परंपराओं और आस्थाओं को नहीं छोड़ रहे थे। कश्मीरियों की पूजा पद्धति में एक नई पद्धति जोड़ देना तो आसान था, लेकिन उनको राष्ट्रीयता के लिहाज से अरबों व तुर्कों से जोड़ देना इतना आसान नहीं था। इन सैयदों का आम कश्मीरियों पर कोई प्रभाव पड़े, यह इतना सरल नहीं था, क्योंकि कश्मीरी भी अपने आप को दर्शन और ज्ञान-विज्ञान में श्रेष्ठ मानते थे। ज्ञान की देवी शारदा का तो निवास स्थान ही कश्मीर को माना जाता था। ये कश्मीरी ही थे जिन्होंने मध्य एशिया में कभी बुद्धम् शरणम् गच्छामि का शंखनाद किया था। अरब या तुर्क या मंगोल कश्मीरी मानस को आच्छादित कर लें, यह संभव ही नहीं था। यही कारण था कि कश्मीर की जनता में वे उतने लोकप्रिय नहीं हो सके।''[14] ये विदेशी सूफी सैयद कश्मीरियों में लोकप्रिय क्यों नहीं हो सके, इसका एक कारण डॉ. मोहिबुल हसन बताते हैं। उनके अनुसार, ये सूफी ऋषियों के प्रति उदार न थे। इसका एक कारण यह हो सकता है कि सूफियों के पहेलियों जैसे पांडित्यपूर्ण उपदेश सीधी-सादी जनता के लिए दुरूह बन गए थे। आम लोग सामान्य जीवन दर्शन के प्रति ज्यादा उत्सुक थे। ऋषियों ने जनता की इस मानसिक तथा आध्यात्मिक प्यास बुझाने के लिए लौकिक माध्यम का ही प्रयोग किया जिससे उनका संदेश अधिक ग्राह्य बन गया। इसके अतिरिक्त इन ऋषियों ने हिंदू विश्वासों को अपने जीवन में चरितार्थ करके नव दीक्षित मुस्लिम जनता को अतीत से कटने न दिया। यह

जनता कुछ समय पहले हिंदू ही थी। अतः हिंदू संस्कारों के प्रति जागरूक थी। ऋषियों ने इसको सूफियों की अपेक्षा अधिक यथार्थता से पहचान लिया।''[15]

मुख्य प्रश्न यह है कि तैमूरलंग के भय से भागकर कश्मीर में आने वाले सैयद आम कश्मीरियों को तो प्रभावित नहीं कर सके, वे उस समय के शासकों को कैसे प्रभावित कर सके? अपने आप को अलग-अलग सिलसिलों के सूफी बताने वाले इन सैयदों को शाहमीर वंश के शासकों ने इतना मुंह क्यों लगाया? इसका मुख्य कारण शाहमीरियों का मतांतरण के कारण अपने समाज से कट जाना ही था। कश्मीर घाटी में तो अभी तक व्यापक स्तर पर मतांतरण नहीं हुआ था, लेकिन जिन क्षेत्रों से शाहमीर वंश के लोग आए थे, वह इस्लाम की जद में आ चुका था। शाहमीर वंश भी इस्लाम में जा चुका था, इसलिए वह अपने मूल समाज से कट गया था या फिर बहिष्कृत हो चुका था। अब उसको उस इस्लाम पंथ के पुरोहितों से मान्यता की जरूरत थी, जिसे उन्होंने कुछ शताब्दी पूर्व अपनाया था। जब तक शाहमीर सुल्तान नहीं बने थे तब तक शायद समस्या थी भी नहीं। नए पंथ या संप्रदाय को इस्लाम के कर्मकांड करने की ज्यादा आवश्यकता भी नहीं थी, लेकिन अब शाहमीर राजा हो गए थे। शाहमीरियों की सरकार को, जिसे आज की भाषा में लैजिटिमेसी कहा जाता है, वह हिंदू समाज से तो मिल नहीं सकती थी। इसी पृष्ठभूमि में तैमूरलंग से पिटकर सैयद कश्मीर आ पहुंचे। सैयद मुसलमानों के पुरोहित हैं। अली की वंश परंपरा में से होने के कारण इस्लाम में उनका रुतबा भी बड़ा था। वे एक अर्थ में अरब के ब्राह्मण थे। नए-नए मतांतरित शाहमीरियों को इन्हीं नए पुरोहितों की तलाश थी। यही कारण था कि दरबार में सैयदों की पहुंच भी बढ़ी और प्रभाव भी। इसी प्रभाव का लाभ उठाकर सैयदों ने कश्मीर में मतांतरण का अभियान चलाया।

10. कश्मीरियों और सैयद/तुर्क/मुगल मंगोलों का सांस्कृतिक संघर्ष—कश्मीर पर शाहमीर वंश का शासन चौदहवीं शताब्दी में स्थापित हो गया था। चक वंश के शासन को भी समेटता हुआ। यह शासन सोलहवीं शताब्दी तक चला। उसके बाद मुगल वंश का शासन शुरू हुआ, जो अंततः अफगानियों के हाथ में सिमट गया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही महाराजा रणजीत सिंह ने इसे समाप्त कर कश्मीर को आजाद करवाया। यह ठीक है कि इस कालखंड में कश्मीर राजनीतिक लिहाज से पराजित हो गया था। मजहबी तौर पर भी उसकी पराजय हुई थी, क्योंकि अधिकांश कश्मीरियों को इस्लाम मत और शिया संप्रदाय अपनाना पड़ा। मतांतरण के इस कार्य में रणनीति अरब/फारस देश के सैयदों की ही रही। मतांतरण को योजनापूर्वक तरीके से करने के लिए सैयद अली हमदानी (1341-1385) को ही जिम्मेदार माना जाता है। कश्मीर में जिन सैयदों ने फारस देश से आकर मतांतरित करने का अभियान चलाया, उनको आम तौर पर इतिहासकार सूफी सैयद मानते हैं। कहा जाता है कि इनमें से कुछ तथाकथित सूफी सैयद इस्लाम का प्रचार करते थे और दूसरे शिया संप्रदाय का प्रचार करते थे। शाहमीर वंश के लोग इस्लाम मत में मतांतरित हुए थे और दरदस्तान के रहने वाले चक शिया संप्रदाय में मतांतरित हुए थे।

दरअसल सूफी विचार व दर्शन अरब में इस्लाम के आने से भी पहले सुप्रचलित था। सूफी दर्शन के अनुसार परमात्मा या रब्ब के साथ भक्त के संवाद के लिए किसी तीसरे की जरूरत नहीं है। रब्ब और भक्त का रिश्ता व्यक्तिगत है। उसमें किसी तीसरे को दखलअंदाजी करने का

अधिकार नहीं है, लेकिन जब अरब में इस्लाम का उदय हुआ तो सूफी साधक संकट में पड़ गए, क्योंकि इस्लाम का तो मूल विचार ही इस परिकल्पना पर आधारित है कि ईश्वर या अल्लाह तक पहुंचने के लिए भक्त को एक माध्यम की जरूरत है। जरूरत है या नहीं, इसका निर्णय इस नई व्यवस्था में साधक पर नहीं छोड़ा गया। इसे अनिवार्य घोषित कर दिया गया। तब सूफी साधकों ने बीच का रास्ता निकाला। उन्होंने अपने मूल विचार व साधना को तो नहीं छोड़ा, परंतु समझौते के तौर पर उस पर इस्लामी लिबास ओढ़ा दिया, लेकिन कालांतर में कुछ सूफी सैयदों को भी लिबास से ज्यादा मोह हो गया और तत्त्व गौण हो गया। कश्मीर में इसी दूसरी श्रेणी के सूफियों के ही दर्शन होते हैं। सैयद सूफियों के भी समय पाकर कई सिलसिले बन गए थे, जो आपस में लड़ते रहते थे। बाद में कुछ सूफी सैयद इस्लाम की बजाय शिया संप्रदाय में शामिल होने लगे।

यह ठीक है कि सैयदों के आपस में भी कलह-क्लेश बढ़ रहे थे, परंतु कश्मीरियों को इससे कुछ सुकून नहीं मिलने वाला था, क्योंकि उनको घेरने के लिए सब इकट्ठा हो जाते थे, लेकिन फिर भी कश्मीरियों ने इस लंबे संघर्ष काल में कभी भी सांस्कृतिक रूप से पराजय स्वीकार नहीं की। इसका श्रेय बहुत सीमा तक कश्मीर की ऋषि परंपरा को जाता है। इस ऋषि परंपरा की शुरुआत लल्लेश्वरी देवी (1320-1392) ने की थी। लल्लेश्वरी ब्राह्मण कन्या थी, जिसका गृहस्थ जीवन सुखी नहीं था। सास तो मारती ही थी, पति भी तंग करता था। इन पारिवारिक परिस्थितियों में उसे घर त्यागना पड़ा। संसार के इस दुःखमय रूप से वास्ता पड़ने के कारण उसका भीतरी आत्मबल तो जागृत हुआ ही, उस रहस्यमय शिव जगत् से भी उसका साक्षात्कार हुआ। वह संसार की मर्यादाओं से ऊपर हो गई। शिवमय हो जाने से वह उस परम तत्त्व से एकरूप हो गई। उसने इसी शिव भक्ति का प्रचार किया। लल्ला का सामना दो दुःखों से हो रहा था। पहला स्वदुःख था, जो उसका व्यक्तिगत दुःख था। दूसरा दुःख कश्मीरी समाज का था, जो उस समय के शासकों व फारस देश से आए सैयद सूफियों की दुरभिसंधियों से उपजा था। इसके चलते कश्मीरी इस्लाम पंथ में मतांतरित होने लगे थे। शाहमीर वंश के पहले शासक शम्सुद्दीन, सैयद अली हमदानी (1341-1385) और लल्लेश्वरी (1320-1392) समकालीन थे। लल्लेश्वरी का प्रभाव कितना था, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि आज भी कश्मीर में एक सामान्य कथन है कि हम केवल दो को ही जानते हैं। एक अल्लाह और दूसरी लल्ला। लल्लेश्वरी के कालखंड में सैयद/तुर्कों ने कश्मीर की जनता को मतांतरित करना शुरू कर दिया था। वर्तमान समय की स्थिति को ध्यान में रखते हुए कश्मीर के कुछ इतिहासकारों ने ऋषि-परंपरा को भी सूफी परंपरा का ही हिस्सा मानना या कहना शुरू कर दिया है, लेकिन ऋषि-परंपरा फारस से आए सैयदों द्वारा कश्मीर को मतांतरित करने के अभियान का विरोध करने के लिए चलाया कश्मीरी अभियान था। पिछले कुछ दशकों से यह भी कहा जाने लगा है कि ललद्यद पर इस्लामी सूफियों, खासकर सैयद अली हमदानी का प्रभाव था। यहां तक कि कुछ सैयद इतिहासकारों ने लल्लेश्वरी मुसलमान हो गई थी, ऐसा भी कहना शुरू कर दिया, लेकिन ओशो रजनीश कहते हैं "Lalla was not a Mohammedan, but she impressed the Mohammedans, who won't even allow their women to remove the curtain that they continue wearing on their face—the mask. You can see only the Mohammedan woman's eyes, nothing else. Every Mohammedan

woman looks beautiful. Mohammedans don't allow even the faces of their women to be seen, but they worship Lalla equal to Allah. The woman must have impressed the whole of Kashmir tremendously. I have traveled all over Kashmir and I have heard it repeated again and again that Kashmir knows only two names: Allah and Lalla. She was a great master with a great following, And she had one great quality that I appreciate: she never belonged to any organized religion, she was an independent master. Still, people from other religions worshipped her, had to worship her. लल्लेश्वरी का कार्यकाल शाहमीरी वंश के पहले छह शासकों के राज्यकाल तक फैला हुआ है। जिन दिनों विदेशी सैयद कश्मीरियों को इस्लाम की ओर खींच रहे थे, उन्हीं दिनों ललद्यद कश्मीर को शिव भक्ति में सराबोर कर रही थीं। वह कश्मीरियों के भीतरी द्वंद्वों को भी पाट रही थीं। शिव, बुद्ध और जैन मत की भीतरी एकता को भी स्थापित कर रही थीं। अंतर केवल इतना था कि सैयदों के साथ सुल्तान थे और लल्लेश्वरी के साथ कश्मीरी अवाम।

सबसे बड़ी बात यह थी कि लल्लेश्वरी कश्मीरियों की अपनी थी। वह उनकी अपनी भाषा में बोलती थी। सैयद अली हमदानी और उनके शिष्य फारसी भाषा में बोलते थे। वे जिन प्रतीकों और अवधारणाओं का प्रयोग कर रहे थे, वे कश्मीरियों की प्रकृति और स्वभाव के प्रतिकूल थीं। सैयद अली हमदानी कश्मीर के सामाजिक और पारिवारिक जीवन को अरब की शरीयत के माध्यम से नियंत्रित करने के प्रयास कर रहे थे। यही कारण था कि लल्लेश्वरी के वाख कश्मीरियों के हृदय को छूते थे और सैयद सूफियों की कथा उनकी चमड़ी को छूती हुई निकल जाती थी। लल्लेश्वरी के वाख कश्मीरी साहित्य की प्रारंभिक निधि माने जाते हैं। ये वाख आज भी कश्मीरी अपनी सामान्य बातचीत में दुहराते हैं। जिस समय कश्मीर का शासन सुल्तान सिकंदर (1389) के पास आया, उसके दो साल बाद ही 1392 में लल्लेश्वरी का देहांत हो गया। उसके उपरांत सुल्तान सिकंदर पूरी तरह सैयदों के प्रभाव में आ गया और कुख्यात बुतशिकन बन गया। इतिहास साक्षी है कि बुतशिकन ने कश्मीरियों को भय से ही मतांतरित किया, लेकिन शायद मतांतरण के बाद भी कश्मीरियों के हृदय से लल्लेश्वरी का प्रभाव समाप्त नहीं हुआ। वह साकार से निराकार रूप में बदल गया। बुतशिकन के शासनकाल के चौबीस साल और अली शाह के सात साल, यानी इन तीन दशकों में कश्मीरी लल्लेश्वरी को अपने हृदय के किसी कोने में छिपाए बैठे रहे।

लल्लेश्वरी के पहले शिष्य नंद या नुंद (1377-1438) थे। कश्मीरी भाषा में नुंद का अर्थ सुंदर है। वे तीन भाइयों में सबसे छोटे थे। यद्यपि निरक्षर थे तथापि आत्मज्ञानी थे। नंद से ही ऋषि परंपरा की शुरुआत मानी जाती है। नुंद ऋषि का नाम सहजानंद भी था[16] नंद या नुंद को लेकर एक कथा कश्मीर में बहुत प्रसिद्ध है। नंद जब पैदा हुए तो अपनी मां का दूध नहीं पी रहे थे। तीन दिन हो गए। स्वाभाविक ही घर वालों को चिंता हुई। बालक दूध नहीं पी रहा तो बचेगा कैसे? संयोगवश उधर से ललद्यद गुजरी। उसने तीन दिन के बच्चे को संबोधित करते हुए कहा कि यदि तू योनि में से जन्म लेते समय नहीं शर्माया तो अब दूध पीने से क्यों शर्माता है? कहा जाता है, उसी समय बालक ने दूध पीना शुरू कर दिया। इसी प्रकार नुंद ऋषि के कथन पूरे कश्मीर में लोगों को कंठस्थ हैं। नुंद ऋषि ने स्वयं तो कुछ नहीं लिखा, परंतु उनके शिष्य उनके कथनों को लिपिबद्ध कर लिया करते थे। उनकी मृत्यु के लगभग दो सौ साल बाद नुंद ऋषि की वाणी को लिपिबद्ध

किया गया, लेकिन नुंद ऋषि और लल्लेश्वरी के बहुत-से वाख आपस में गड्ड-मड्ड हैं। ऐसी बहुत-सी रचनाएं हैं, जो नुंद के संकलन में भी मिलती हैं। जाहिर है, कुछ रचनाएं परवृत्त होंगी। कुछ रचनाओं की भाषा से पता चलता है कि वे नुंद ऋषि की मौत के बहुत साल बाद किन्हीं साहित्यकारों द्वारा लिखी गई हैं, परंतु इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि ललद्यद और नुंद ऋषि ने फारस देश से आई हुई सूफी परंपरा के सामने हिंदुस्तान की ऋषि-परंपरा स्थापित कर दी। विद्वान ऐसा भी मानते हैं कि हिंदू ऋषि-परंपरा कश्मीर में पहले से ही प्रचलित थी। नुंद ऋषि ने केवल इस परंपरा को ही आगे बढ़ाया। नुंद ऋषि ने इस परंपरा का लाभ फारस और मध्य एशिया से पहुंची सैयद सूफी परंपरा का सामना करने के लिए प्रयुक्त किया। जोनराज की 'राजतरंगिणी' में इस बात का जिक्र है कि नुंद ऋषि को सुल्तान अली शाह के राज्यकाल में बंदी बनाया गया था।[17] यह संयोग ही था कि लल्लेश्वरी के निधन के उपरांत शुरू हुए बुतशिकन राज का सामना नुंद ऋषि को करना पड़ा। नुंद ऋषि का कार्यकाल बुतशिकन और बडशाह (1420-1470) दोनों के राज्यकाल के भीतर सिमटा हुआ है। नुंद ऋषि के देहांत के बाद उनके दाह संस्कार को लेकर हिंदू कश्मीरियों और इस्लाम मजहब में मतांतरित कश्मीरियों में कोई विवाद हुआ हो, इसका जिक्र तो नहीं मिलता, लेकिन उनकी स्मृति में चरार-ए-शरीफ में कश्मीरियों ने निर्माण किया। चरार-ए-शरीफ में अभी भी सभी कश्मीरी बिना मजहब के भेदभाव के वहां श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। एसटीएम मूल के विदेशी आतंकवादियों ने चरारे शरीफ के इस ऋषि स्थल को जला दिया, लेकिन कश्मीरियों ने पुनः इस ऋषि स्थल का निर्माण कर लिया। कुछ सैयद इतिहासकारों का मानना है कि नंद हिंदू से मतांतरित होकर इस्लाम की शरण में चले गए थे। इसलिए ये इतिहासकार नुंद को नूरुद्दीन भी कहते हैं, लेकिन इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यहां तक उन्हें नूरुद्दीन के नाम से संबोधित करने का सवाल है, यदि केवल नाम बदल देने से ही मतांतरण हो जाता हो तो परवृत्त इतिहासकारों ने कश्मीर में अपनी कथा-कहानियों में केवल ऐतिहासिक व्यक्तियों को ही मतांतरित नहीं किया, बल्कि कश्मीर के गांवों के नाम बदलकर उन्हें भी मतांतरित करने का अभियान चलाया था।

कश्मीर में कश्मीरियों और सैयद/तुर्क/मुगल मंगोल मूल के मुसलमानों का सांस्कृतिक संघर्ष तैमूरलंग के डरकर भागे सैयदों के आगमन के साथ ही शुरू हो गया था। बाद में सैयदों के खेमे में तुर्क व मुगल मंगोल भी जुड़ गए। कश्मीर में लगभग 425 साल देसी शाहमीरियों और दर्दिदस्तान के चकों और मुगलों-अफगानियों का शासन रहा। मुगल और अफगान तो इस्लाम मत के मानने वाले थे ही, शाहमीरियों व चकों के पूर्वज भी इस्लाम या शिया संप्रदाय में मतांतरित हो चुके थे। इसप्रकार सवा चार सौ साल के इस्लामी शासन ने रियासत की लगभग पचहत्तर प्रतिशत जनता को इस्लाम संप्रदाय और शिया संप्रदाय में दीक्षित कर लिया था। इसमें अरब से आए सैयदों और मध्य एशिया से आए तुर्कों/मुगल मंगोलों की बहुत बड़ी भूमिका रही। जो कश्मीरी इस्लाम में या शिया मत में मतांतरित हो चुके थे, उन पर तो ये सैयद/तुर्क/मुगल मंगोल मूल के मुसलमान अपना अधिकार ही मानते थे। जो कश्मीरी मतांतरित नहीं हुए थे, उन पर एसटीएम मूल के ये मुसलमान राज्य बल से अपना अधिकार जमाते थे, लेकिन इसके साथ ही एसटीएम मूल के मुसलमानों व शिया संप्रदाय को मानने वालों के साथ कश्मीरियों का सांस्कृतिक संघर्ष शुरू हो गया

था। चाहे इस समय तक कश्मीर घाटी की अधिकांश जनसंख्या इस्लाम मजहब के प्रभाव में आ चुकी थी, लेकिन इन सूफी सैयदों को कश्मीरियों को सांस्कृतिक रूप से पराजित करने में इतनी सफलता नहीं मिल सकी। कश्मीर की ऋषि परंपरा ने उसे अभी भी किसी-न-किसी रूप में सनातन परंपराओं से जोड़े रखा था।

कश्मीर घाटी के मुसलमानों की जनसंख्या में लगभग 95 प्रतिशत कश्मीरी ही हैं जिनके पूर्वज इस्लाम संप्रदाय या शिया संप्रदाय में चले गए थे और लगभग पांच प्रतिशत वे मुसलमान हैं, जिनके पूर्वज कश्मीर को भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टि से जीतने आए थे और उसे जीतकर यहीं बस गए। जीतकर यहीं बसने वाले अपनी पहचान छिपाते भी नहीं। वे गौरव से उसका प्रदर्शन करते हैं। सैयद तो इसमें सबसे आगे हैं। वे अरब के सम्मानित कबीले से ताल्लुक रखते हैं। इसलिए अपने नाम के आगे बाकायदा सैयद लिखते हैं ताकि कोई गलती से भी उनको कश्मीरी न समझ ले। बाकी जो जिस देश के स्थान विशेष से आया है, उसकी पूंछ अभी भी अपने साथ चिपकाए घूमता है। मसलन गिलानी, हमदानी, करमानी, खुरासानी, बुखारी, अंद्राबी आदि-आदि। ऐसा शायद वे कश्मीरियों को डराने के लिए या फिर हर पल उनको याद दिलाने के लिए कि हमारे बाप-दादा ने तुम्हारे बाप-दादा को पराजित किया था, करते होंगे। वे अपने आपको आम कश्मीरी से श्रेष्ठ समझते हैं। अरब, ईरान, इराक, मध्य एशिया और अफगानिस्तान से आए ये मुसलमान सदा ही कश्मीरियों पर भारी रहे। धीरे-धीरे कश्मीरी भी इन हमलावरों के मजहब में ही चले गए, लेकिन इसके बावजूद वे इन बाहरी मुसलमानों की नजर में उनके रुतबे तक नहीं पहुंच सके। यह ठीक है कि देश के शेष प्रांतों में भी इन विदेशी मुसलमानों का ही राज रहा, लेकिन देश के शेष प्रांतों और कश्मीर घाटी में एक अंतर था। देश के शेष प्रांतों में अधिकांश हिंदू इस्लामी शासकों के भय, लालच या प्रभाव में आकर इस्लाम में मतांतरित नहीं हुए। कश्मीर घाटी में अधिकांश हिंदू इस्लाम में मतांतरित हो चुके थे। मतांतरण का कारण भय, लालच, विवशता कुछ भी हो सकता है। इस्लाम में मतांतरित हो जाने के बाद उन्हें लगा होगा कि वे भी सुल्तान के मजहब में चले गए हैं, इसलिए अब उनको शासन में भी हममजहब होने के नाते दरबार में जगह मिलेगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इस्लामी शासकों की नजर में वे हिंदुओं की औलाद ही रहे और अरब से आने वाले मुसलमानों, खासकर सैयदों की नजर में उनकी हैसियत दोयम दर्जे की ही रही।

अरब और मध्य एशिया से आने वाले मुसलमान कश्मीरियों में हिल-मिल पाए या नहीं, यह विवादास्पद है। सच तो यह है कि उनकी इच्छा कश्मीरियों में हिल-मिल जाने की कभी थी ही नहीं, बल्कि वे तो यह कोशिश करते रहे कि 95 प्रतिशत कश्मीरी इन पांच प्रतिशत में घुल-मिल जाएं और चिनारों के विशालकाय पेड़ों को खजूर के पेड़ कहना शुरू कर दें। शारीरिक तौर पर कश्मीरियों ने चाहे इनके आगे पराजय स्वीकार कर ली, लेकिन मानसिक रूप से कश्मीरियों ने इनके आगे हथियार नहीं डाले। कश्मीरियों को नियंत्रित करने के लिए वे समय-समय पर अनेक तरीके इस्तेमाल करते रहे हैं और अभी भी करते रहते हैं। मस्जिदों पर नियंत्रण और उनका अपनी रणनीति को आगे बढ़ाने में प्रयोग करना, सबसे प्रभावशाली तरीका है। कश्मीर घाटी में प्रत्येक छोटी-बड़ी मस्जिद का एक वाइज होता है। सीधी-सादी भाषा में कहा जाए तो यह मस्जिद का इंचार्ज होता है और मस्जिद में नमाज इत्यादि पढ़ाने के अलावा मजहबों को उपदेश भी देता है।

कभी-कभी फतवे भी जारी करता है। अपने उपदेश में वह केवल मजहबी नुक्तों पर बात करेगा, ऐसा कुछ नहीं है। अनेक बार तो वह मजहब को छोड़कर बाकी सभी मुद्दों पर धुआंधार आग उगलता है। बड़ी मस्जिद को जामिया मस्जिद कहते हैं, इसलिए इनके वाइज भी साधारण वाइज न होकर मीरवाइज कहलाते हैं। कश्मीर घाटी में इस्लाम के बाद जब मस्जिदें बननी शुरू हुईं तो जाहिर है उनके मीरवाइज भी बाहर से आने वाले अरबों, तुर्कों, पठानों और मध्य एशियाई कबीलों के मौलवी बनाए गए। ताकि इन मीरवाइजों के माध्यम से कश्मीरियों को नियंत्रण में रखा जा सके। ऐसे प्रयास इस्लामी विजयों के शुरुआती दौर से ही किए गए, लेकिन कश्मीरियों ने जितना संभव हो सका, अपने तरीके से इसका विरोध किया। उन्होंने ऋषि-परंपरा को जिंदा रखा। उन्होंने अपने जियारत खाने खोल लिये। कश्मीरी अपने जियारतखानों में नतमस्तक होने लगे और मीरवाइज कश्मीरियों के इस पतन पर छाती पीटते रहे। मौलवी मस्जिद में अरबों की जीत की कहानियां सुनाते रहे, कश्मीरी चरार-ए-शरीफ में नुंद ऋषि के आगे सिजदा करते रहे और लल्लेश्वरी के वाख रटते रहे।

वाल्टर आर. लॉरेंस कश्मीर घाटी गए थे। आंकड़ों में उस समय भी यही माना जाता था कि कुछ लाख हिंदू-सिखों को छोड़कर शेष कश्मीरी मुसलमान हो गए हैं, लेकिन कश्मीरियों पर इस्लाम के प्रभाव की चर्चा करता हुआ लॉरेंस लिखता है, ''कश्मीर के दोनों समुदायों, हिंदू व मुसलमान में जो आश्चर्यजनक सहनशीलता दिखाई देती है, उसका मूल कारण यह है कि हिंदू से इस्लाम में मतांतरित हो चुके लोगों ने अपने पुराने पंथ को कभी त्यागा ही नहीं।''[18] कश्मीर का गहराई से अध्ययन करने वाले स्वीकारते हैं कि कश्मीर के तथाकथित मुसलमान दिल से अभी भी हिंदू हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि इस्लाम ने कश्मीरियों को बिल्कुल प्रभावित नहीं किया। इससे कश्मीर में विभिन्न जातियों में परस्पर सामंजस्य बढ़ा और यह सामंजस्य विदेशी शासकों को उखाड़ने में सहायक सिद्ध हुआ।

11. कश्मीर की विदेशी राज से मुक्ति—अठाहरवीं शताब्दी में ही पूरे सप्त सिंधु क्षेत्र में मुगल-अफगान राज के खिलाफ खालसा पंथ के नेतृत्व में एक आंदोलन खड़ा हो गया, जिसे सफलता तक ले जाने का सौभाग्य महाराजा रणजीत सिंह को मिला। महाराजा रणजीत सिंह ने मुगलों व अफगानों से लोहा लेते हुए अधिकांश सप्त सिंधु क्षेत्र को विदेशी गुलामी से मुक्त करवा लिया था। कश्मीर ही ऐसा क्षेत्र बचा था, जो अभी भी अफगान दुर्रानियों के पंजे में छटपटा रहा था, लेकिन वहां भी विदेशी सत्ता से छुटकारा पाने की सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। अफगानी शासकों के अत्याचारों से सभी कश्मीरी, चाहे वे हिंदू थे, चाहे मुसलमान थे, चाहे शिया पंथ के थे, त्रस्त थे। ईरान और मध्य एशिया से आए हुए सैयद/तुर्क जरूर इन विदेशी शासकों के नजदीक थे, लेकिन कश्मीरियों के मन में सैयदों के प्रति पहले ही नकारात्मक प्रभाव था। उधर अफगानिस्तान की राजनीतिक अस्थिरता ने कश्मीर मुक्ति के प्रयासों को हवा दी। कश्मीरियों को भी लगा कि दो सौ साल की मुगल और अफगानी दासता से मुक्त होने का इससे स्वर्णिम अवसर नहीं मिल सकता। कश्मीर के लोगों ने लाहौर दरबार से संपर्क किया। लाहौर दरबार की दृष्टि में भी कश्मीर को विदेशी आधिपत्य से मुक्त करवाने का यह सुनहरा अवसर था। अंततः 1819 में कश्मीरियों ने रणजीत सिंह की सहायता से दो सौ बत्तीस साल से चले आ रहे मुगल और अफगान विदेशी

शासन का अंत कर दिया। गिलगिट, बाल्तिस्तान को पहले ही गुलाब सिंह जम्मू में मिला चुके थे, लेकिन लगभग आठ सौ साल के तुर्क/मुगल मंगोल व अफगान शासन ने सप्त सिंधु क्षेत्र की अधिकांश जनसंख्या को साम, दाम, दंड, भेद से इस्लाम में मतांतरित कर लिया था। उसके कारण इस पूरे क्षेत्र में सांस्कृतिक संघर्ष शुरू हो गया, जिसका शिकार कश्मीर भी बना। कश्मीर घाटी में कश्मीरी सांस्कृतिक धारा के समानांतर सैयद/तुर्क/मंगोल मुगल (एसटीएम) सांस्कृतिक धारा स्थापित हो चुकी थी। इन दोनों धाराओं में भयंकर आंतरिक संघर्ष चलता रहता था। महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर घाटी को इन विदेशी शासकों से मुक्त तो कर दिया, लेकिन घाटी से एसटीएम द्वारा शुरू की गई विसंस्कृतिकरण की लहर को रोकने का अवसर उन्हें नहीं मिला। अलबत्ता वे अपने देहांत से पहले स्वात, हुंजा, नग्गर, जम्मू, लद्दाख, कश्मीर, गिलगिट और बाल्तिस्तान इत्यादि को मिलाकर एक सशक्त रियासत का निर्माण जरूर कर गए। रणजीत सिंह के देहांत के बाद इस रियासत की बागडोर महाराजा गुलाब सिंह और उनके वंशजों के हाथ आई, जिसे रियासत के इतिहास में डोगरा राजवंश के नाम से याद किया जाता है। डोगरा राजवंश के शासकों ने घाटी में एसटीएम परंपरा के सांस्कृतिक प्रभाव को समाप्त कर कश्मीरियत की परंपरा को पुनः स्थापित करने के अनेक प्रयास किए, लेकिन ब्रिटिश शासकों ने अपने षड्यंत्रों एवं रणनीति के चलते कश्मीरियों एवं डोगरों में अविश्वास पैदा करने का प्रयास किया और कुछ सीमा तक उन्हें इसमें सफलता भी मिली। यह अलग बात है कि डोगरा राजवंश को चुनौती देते समय भी, घाटी में दो अलग फ्रंट विकसित हो गए थे, पहला कश्मीरियों और दूसरा सैयद/तुर्क/मुगल मंगोल।

12. कश्मीर का संघर्ष : शेर-बकरा संघर्ष : नामकरण—दरअसल कश्मीरियों और सैयदों/तुर्कों का यह संघर्ष सैयद अली हमदानी के काल से ही शुरू हो गया था। अब तक यह संघर्ष अनाम था, लेकिन बीसवीं शताब्दी में इस संघर्ष का नामकरण भी हो गया—शेर-बकरा संघर्ष। इस नामकरण की कहानी भी खासी रुचिकर है। इस संघर्ष का यह नामकरण बीसवीं शताब्दी में एक कश्मीरी अध्यापक शेख मोहम्मद अब्दुल्ला द्वारा चलाए गए एक आंदोलन में हुआ। उनका यह आंदोलन तत्कालीन शासक के खिलाफ था। शुरू में तो सैयदों/तुर्कों ने इस आंदोलन का साथ दिया। इसका मुख्य कारण था कि वे कश्मीर के हिंदू राजा को हटाना चाहते थे, लेकिन उनकी जनसंख्या इतनी थोड़ी थी कि वे अपने बलबूते यह काम नहीं कर सकते थे।[19] यदि कश्मीरी यह आंदोलन करते हैं तो संख्या बल के कारण उनकी सफलता की संभावना हो सकती थी। यह सोचकर उन्होंने शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का समर्थन करना शुरू किया, लेकिन जब उन्होंने देखा कि इस आंदोलन से उन मतांतरित कश्मीरियों का, जो अब अपने आप को मुसलमान कहते थे, नेतृत्व शेख के हाथों में जा रहा है, तो उन्होंने इसका विरोध करना शुरू कर दिया। अब तक इस्लाम में मतांतरित हो गए कश्मीरियों का नेतृत्व सैयदों/तुर्कों/मुगलों के हाथ में रहता था, लेकिन अब वह खिसकता नजर आ रहा था। इसलिए सैयदों/तुर्कों/मुगलों (एसटीएम) ने इस आंदोलन का विरोध करना शुरू कर दिया। सैयदों/तुर्कों/मुगलों के इस विश्वासघात के कारण दोनों पक्ष आमने-सामने आ गए। कश्मीरियों ने एसटीएम को बकरा पार्टी और स्वयं को शेर पार्टी कहना शुरू कर दिया। एक रुचिकर घटना से इसके संकेत मिलते हैं।

बात बहुत पुरानी है। 1931-35 के बीच की होगी। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला उस समय

श्रीनगर के किसी सरकारी स्कूल में अध्यापक थे। उन्होंने झेलम नदी के किनारे स्थित खानकाह-ए-मौला में अत्यंत उत्तेजक भाषण दिया और वहीं सरकारी नौकरी से इस्तीफा देने की घोषणा कर दी। उस सभा में लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू अखबार 'जमींदार' के संपादक मौलाना जफर अली खान भी हाजिर थे। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का भाषण सुनकर उन्होंने उसे शेर-ए-कश्मीर कहा, लेकिन शेख ज्यादा देर तक मौलानाओं के शेर रह न सके। मौलवी सैयद यूसुफ शाह श्रीनगर की जामिया मस्जिद के मीरवाइज थे। एक दिन मस्जिद में अपने श्रद्धालुओं से मुखातिब होते हुए उन्होंने कहा, ''कुछ लोग हैं जो न तो दाढ़ी रखते हैं और न ही सुन्नाह को मानते हैं। वे कपड़े भी यूरोपीय शैली के पहनते हैं। वे मंचों से भाषण देते हुए मुसलमानों को गुमराह करते हैं। उन्हें मुसलमानों का नेता कहलाने का क्या हक है?'' मौलवी जिसे 'कुछ' लोग कह रहे थे, वह मैसूमा का रहने वाला शेख मोहम्मद अब्दुल्ला था। कुछ दिन बाद इसी मौलवी ने श्रीनगर की हजरतबल मस्जिद से अपने अनुयायियों को दोबारा संबोधित किया। इस बार उन्होंने कुछ ज्यादा स्पष्टता से बात की। मौलवी ने कहा, ''सच्चे मुसलमान को कभी भी अपने अधिकारों या सांसारिक सुख-सुविधाओं की मांग नहीं करनी चाहिए। यदि खुदा हम पर मेहरबान है और हम सच्चे मुसलमान बन गए हैं तो दुनिया भर के मुल्क खुद हमारे कदमों को चूमेंगे। शेख अब्दुल्ला तो कादियानी हो गए हैं। हम भविष्य में यहां जामिया मस्जिद से किसी भी नौजवान को भाषण की इजाजत नहीं देंगे। यदि कोई नौजवान इसकी हुकुमअदूली करता है तो उसकी जूतों से मरम्मत करो।[20] इस तहरीक में मौलवी जिस नौजवान की बात कर रहे हैं, वह यकीनन शेख अब्दुल्ला ही है।

जाहिर है कि शेख अब्दुल्ला भी मौलवी यूसुफ शाह को जवाब देते और उन्होंने दिया भी। उन्होंने कुछ दिन बाद बसंत बाग की एक मस्जिद में एक लंबी तहरीर में जवाब दिया। जवाब क्या हो सकता था, इसका अनुमान भी लगाया जा सकता है, लेकिन इसका परिणाम क्या हो सकता है, इसका अनुमान शायद तहरीर करते समय किसी ने नहीं लगाया होगा। परंतु परिणाम अगले दिन ही आ गया। ''शेख अब्दुल्ला के पैरोकार, जो बहुमत में थे, शेर कहलाए जाने लगे और मौलवी सैयद यूसुफ शाह के पैरोकार, जो बहुत ही कम संख्या में थे और मस्जिद के आसपास ही सिमटे थे, बकरा कहलाने लगे।''[21] दरअसल मौलवी सैयद था और उसके पैरोकार भी सैयद/तुर्क/मुगल मंगोल ही थे, लेकिन शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के पैरोकार कश्मीरी थे। इस शेर-बकरा संघर्ष का संकेत मोहम्मद आमीन ने भी किया है। जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने उर्दू में आतिश-ए-चिनार के नाम से अपनी जीवन कथा लिखी थी। उसे ज्यादा-से-ज्यादा लोग पढ़ सकें, इसलिए इक्कीस साल बाद किताब का अंग्रेजी तर्जुमा करवाया गया। तर्जुमा करने वाले सज्जन मोहम्मद आमीन कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर में अंग्रेजी पढ़ाते थे। उन्होंने पुस्तक का अनुवाद करने से पहले स्वयं से संबंधित एक घटना का वर्णन किया है—"Listen, Jinnah is dead" I said to my playmate. She knew but she hated being reminded of what she knew. She took it out on me by muttering imprecations against Sheikh Sahib. She was a goat. I was a Lion.[22]

यूनिवर्सिटी ऑफ टैक्सास में भाषा विज्ञान की प्राध्यापक डॉ. सादफ मुंशी अपने संस्मरणों में लिखती हैं—"During those days of my childhood, the majority of the

Kashmiri people were divided along the Sher-Bakra political lines (and in a way still are, though the terms are outdated nowadays). Sher ('lion') and Bakra ('goat') were the terms originally used for the two political rivals and later their followers- Sheikh Muhammad Abdullah and Mirwaiz Yousuf Shah (the latter for sporting a beard; Shah was the uncle of Mirwaiz Muhammad Farooq, the father of the current Mirwaiz, Maulana Umar Farooq). Sheikh Abdullah had, in 1938, parted ways from the Muslim Conference to form National Conference, which became the largest political party in Jammu & Kashmir claiming a secular ideology. Pertinently, it was Mirwaiz Yousuf Shah, later his political opponent, who had initially introduced Sheikh as the president of the Muslim Conference at its inception in 1930. Sher-Bakra became a very strict political dichotomy in Kashmir after 1938 and continued over generations. Ironically it was Sheikh Abdullah who launched the Quit Kashmir movement in 1946 when Yusuf Shah had supported the government led by the Maharaja. Two groups that were more or less outside the purview of this blanket distinction of Sher-Bakra were the minority Shi'a and the Pandit community, whose loyalties to the either side were generally suspect. Often one would have to face questions like: "Are you Sher or Bakra?" Imagine the disappointment and surprise if you were to say, "Neither" and/or the sense of fear at being encountered with a supporter of the opposite side." मोहम्मद अमीन और डॉ. मुंशी दोनों ने ही कश्मीरियों के मनोविज्ञान और मानस को समझने या समझाने के लिए शेर और बकरा शब्द का प्रयोग किया है। यही शब्द घाटी में उस समय शेर पार्टी और बकरा पार्टी के नाम से भी प्रयुक्त होते थे।

कश्मीर घाटी में बकरा पार्टी किसी राजनीतिक दल का नाम नहीं है, बल्कि यह एक विचारधारा है, एक आइडिया है, जो कश्मीर घाटी में से कश्मीरियत को सोखकर उसका अरबीकरण करना चाहती है। यह कुछ उसी प्रकार की स्थिति है, जिसके बारे में कभी एम.जे. अकबर ने कहा था कि पाकिस्तान मात्र किसी देश का नाम ही नहीं है बल्कि वह एक आइडिया है। यदि इसकी व्याख्या की जाए तो इसका अर्थ होगा कि कोई व्यक्ति, जो हिंदुस्तान में रहता है, उसे पाकिस्तानी बनने के लिए पाकिस्तान जाने की भी जरूरत नहीं है, बल्कि यदि वह पाकिस्तान के आइडिया से जुड़ गया है तो हिंदुस्तान में रहता हुआ भी वह पाकिस्तानी बन सकता है। इसकी बहुत अच्छी व्याख्या भी डॉ. सादात मुंशी ने की है। उन्हें आश्चर्य होता था कि कुछ कश्मीरी अपने वतन हिंदुस्तान के स्थान पर पाकिस्तान के पक्ष में क्यों हैं? मुंशी श्रीनगर में अपने स्कूल के दिनों की याद करते हुए लिखते हैं, "But then I realized later that for many of these people 'Pakistan' was simply an ideology, an emotional matter, something they had been associating themselves with since its very inception" इसी परिप्रेक्ष्य में बकरा आइडियोलॉजी या विचारधारा को समझा जा सकता है। घाटी में बकरा विचारधारा के आइडिया के पैरोकार अरसा पहले अरबीस्तान से आकर बसे या तो अरब हैं या फिर मध्य एशिया के मुगल, तुर्क इत्यादि हैं, जो सदियों पहले अपना मजहब छोड़कर अरबों के नए मजहब की कतार में शामिल हो गए थे। वे इस कतार में कैसे शामिल

हुए, इसकी अलग कहानी है। अरब-मध्य एशिया से आकर कश्मीर घाटी में बसे लोगों का अभी तक कश्मीरीकरण नहीं हो पाया। वे कश्मीर की मिट्टी से जुड़ नहीं पाए। इसके विपरीत वे कश्मीरियों का इस्लामीकरण करने के बाद अब उनका अरबीकरण करने के प्रयासों में जुटे हुए हैं, लेकिन सवाल है कि शताब्दियों से कश्मीर में रहने के बावजूद इनका कश्मीरीकरण क्यों नहीं हो पाया? इसका मुख्य कारण है कि अरब-मध्य एशिया के ये लोग अपनी संस्कृति को कश्मीर की संस्कृति से श्रेष्ठ मानते रहे और अभी भी मान रहे हैं। इसी श्रेष्ठता के भाव के कारण ये कश्मीरियों को हेय दृष्टि से देखते रहे। कालांतर में कश्मीरियों ने इनकी इसी मानसिकता और विचारधारा को बकरा विचारधारा का नाम दिया। इस अवधारणा को मौलाना अबुल कलाम आजाद के स्पष्टीकरण से ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है। वे हिंदुस्तान के पहले शिक्षा मंत्री थे। इससे पहले वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रधान भी रह चुके थे। मुसलमानों के वे बहुत बड़े नेता थे। उन्होंने भारत विभाजन का विरोध किया था। यही कारण था कि वे विभाजन के बाद पाकिस्तान नहीं गए और उन्होंने हिंदुस्तान में रहना ही उचित समझा। हिंदुस्तान ने भी उन्हें मुल्क का शिक्षा मंत्री बनाकर उनका सम्मान किया। भारत विभाजन का विरोध वे दो कारणों से करते थे। उनका कहना था कि हिंदुस्तान के जिस हिस्से को पाकिस्तान बनाया जाएगा, वहां तो पहले से ही मुसलमानों का राज है। अस्सी प्रतिशत मुसलमान वहां हैं। देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था भी लागू हो जाएगी तब भी वहां मुसलमानों का ही राज रहेगा। इसलिए पाकिस्तान बनाए जाने वाले इलाके में मुसलमानों के लिए भयभीत होने की कोई वजह नहीं है, लेकिन मुस्लिम बहुल इलाके हिंदुस्तान में से निकल जाने के कारण, शेष बचे हिस्से में मुसलमानों की संख्या बहुत कम रह जाएगी। इसलिए आजाद हिंदुस्तान में उनकी हैसियत में बहुत फर्क पड़ जाएगा, लेकिन उन दिनों मुसलमानों का नेतृत्व जिनके हाथ में था, उन्होंने मौलाना की एक न सुनी। विभाजन होकर रहा। मुसलमानों द्वारा ठुकरा दिए जाने के बावजूद मौलाना निराश नहीं हुए। इसलिए उन्होंने पाकिस्तान में न जाकर यहीं रहना ज्यादा बेहतर समझा, लेकिन इसके साथ ही मौलाना ने हिंदुस्तान में मुसलमानों की संरचना पर एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की जिसकी ओर बाद के अध्येताओं ने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। यह अनजाने में भी हो सकता है या फिर जान-बूझकर भी हो सकता है। कश्मीर घाटी लंबित समस्या में मुसलमानों के बारे में, उनके व्यवहार या सामाजिकता के बारे में अध्ययन करने से पहले मौलाना की यह टिप्पणी धरातल का काम कर सकती है। मौलाना ने कहा था कि हिंदुस्तान के 95 प्रतिशत मुसलमान हिंदुओं की औलाद हैं। पांच प्रतिशत मुसलमान विदेशी विजेताओं के साथ आए थे। बाद में वे पांच प्रतिशत मुसलमान, जिनमें मेरा परिवार भी शामिल है, यहां हिल-मिल गए। कितने हिल-मिल गए, यह प्रश्न विवाद का नहीं है। यदि वे ऐसा कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे, लेकिन एक तथ्य उन्होंने लिखना शायद मुनासिब नहीं समझा। वह यह कि ये पांच प्रतिशत मुसलमान, जिनके पूर्वज हिंदुस्तान को जीतने के लिए आए थे और उन्होंने उसे सचमुच जीत भी लिया था, अभी भी अपने आप को 95 प्रतिशत हिंदुस्तानी मुसलमानों, जो उनके अपने शब्दों में ही हिंदुओं की औलाद हैं, का नेता मानते हैं। इनको लगता है कि इन हिंदुओं की औलाद का नेतृत्व करने और इनका मार्गदर्शन करने का खुदाई अधिकार इनके पास

है। इन हिंदुओं की औलादों के वे नेता हैं, यह बात उनके मनोविज्ञान में से नहीं निकलती। इस मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में कश्मीर घाटी की राजनीति और वहां की समस्या को समझने में सहायता मिल सकती है।

बाहर से आकर कश्मीर को जीतने वाले पांच प्रतिशत मुसलमानों के सैयद घाटी में छाती चौड़ी करके इतराते थे तो 95 प्रतिशत हिंदुओं की औलाद मुसलमानों ने अपने शेख आगे कर दिए। उनके पास ऊंचे कद का सैयद है तो इनके पास शेख है। शेख वह मुसलमान है जो ऊंची जाति के हिंदू से मतांतरित हुआ है। शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने अपनी आत्मकथा में इसका जिक्र किया है, लेकिन यदि कश्मीरियों के अपने शेख ही सैयदों/तुर्कों/मुगल मंगोलों के साथ मिल जाएं फिर आम कश्मीरी क्या करे? कश्मीर की सबसे बड़ी त्रासदी यही है। इसी त्रासदी के कारण गिलान से आया गिलानी तो कश्मीर का स्थायी बाशिंदा बन सकता है, लेकिन गुरदासपुर से आया एक वाल्मीकि कश्मीर का स्थायी बाशिंदा नहीं बन सकता। इसी मरहले पर कश्मीर के प्रसिद्ध कहानीकार अवतार कृष्ण रहबर अपनी कहानी 'छाया' में एक बहुत ही सटीक प्रश्न करते हैं, ''यदि हजरत अमीर कबीर सैयद अली हमदानी, अमीर तैमूर के कारण अपना देश छोड़कर कश्मीर आने को विवश न हुए होते तो क्या?''[23]

अवतार कृष्ण का, तो क्या? का यह प्रश्न बहुत गहरा है। अवतार कृष्ण ने इसका उत्तर पाठक के लिए छोड़ दिया है। यदि सैयद अली हमदानी कश्मीर में न आए होते तो कश्मीर में बुतशिकन भी पैदा न होता। या फिर राजा सुल्तान सिकंदर, सुल्तान सिकंदर से बुतशिकन में न बदल गया होता। इसे भी इतिहास का दुर्योग ही कहा जाएगा कि अवसर पाकर तुर्क, मंगोलों के विशाल क्षेत्र मध्य एशिया पर रूस के जारों ने कब्जा कर उन्हें गुलाम बना लिया। उसमें तैमूरलंग का देश तजाकिस्तान भी था, लेकिन इससे कश्मीर के जख्मों पर मरहम तो नहीं लग सकता था? पर जहां तक कश्मीर का प्रश्न था, वहां शासक तो बदलते गए, लेकिन यह अभियान नहीं थमा। क्या संयोग या दुर्योग है कि तजाकिस्तान तो लंबे अरसे बाद एक बार फिर रूस के पंजों से मुक्त होकर आजाद होने के कगार पर पहुंच गया, लेकिन कश्मीर में फारस के सैयदों के अभियान की परिणति 1990 में हुई जब मतांतरित कश्मीरियों ने बचे-खुचे उन कश्मीरियों को, जो मतांतरित नहीं हुए थे, बंदूक के बल पर घाटी से ही बाहर कर दिया।

इतिहास का चक्र यहीं नहीं थमा। रूस की गुलामी से मुक्त हुए तजाकिस्तान ने घोषणा की कि अब से तैमूर उनका राष्ट्रनायक है। तैमूर के 660वें जन्मदिन को राष्ट्रीय उत्सव के तौर पर मनाया जाएगा। जो भी तैमूर को लंगड़ा तैमूर या तैमूरलंग कहेगा उसको दंडित किया जाएगा। इस अवसर पर अवतार कृष्ण पूछते हैं, ''क्या हम कश्मीरियों को तैमूर को अमीर तैमूर कहना चाहिए या तैमूरलंग?''[23] तैमूरलंग के कारण ही सैयद अली हमदानी कश्मीर घाटी में आए। उस दिन से जो घटनाक्रम चला, उसी के चलते 1990 में उन कश्मीरियों को कश्मीर छोड़ना पड़ा, जो न तो शाहमीर वंश के शासनकाल में, न चक वंश के शासन में, न मुगलों के शासन में और न ही अफगानों के शासन में मतांतरित हुए थे। इसका उत्तरदायी हमदानी को माना जाए या तैमूरलंग को? यह प्रश्न आज भी कश्मीर की घाटियों में गूंजता है। तैमूरलंग को तो फिर भी सैकड़ों साल बाद उसके देश तजाकिस्तान ने अपना राष्ट्र नायक घोषित कर दिया और उसे लंगड़ा कहना

दंडनीय अपराध घोषित कर दिया। सैयद अली हमदानी भी कश्मीर में 'मौला' के रूप में जम गए, लेकिन उन कश्मीरियों का क्या, जो आज भी अपने ही देश में दर-दर भटक रहे हैं, केवल इसलिए कि उन्होंने कश्यप ऋषि का रास्ता छोड़कर हमदानी का रास्ता नहीं पकड़ा। अपनी कहानी में अवतार कृष्ण ने यही प्रश्न उठाया है कि वे तैमूर को तैमूर ही कहें या तैमूरलंग कहें?

संदर्भ ग्रंथ–

1. Croock, William (1896). 'Tribes and Castes of the North-Western India'.
2. Parimu, R.K., 'Muslim rule in Kashmir', page104.
3. Pandita K.N. (ed.) 'Baharistan-e-Shahi', page 29.
4. Parimu, R.K., 'Muslim Rule in Kashmir', page 103.
5. Kaw, M.K.(ed.), (2004). 'Kashmir and it's people', page 107, Delhi : APH publishing.
6. यह भी कहा जाता है कि सैयद अली हमदानी 1381 में घाटी में आया था–कुछ लोग यह घटना 1371 की बताते हैं। Pandita, K.N. (ed.). 'Baharistan-e-Shahi', page 28.
7. C.E.Tyndale Biscae, Kashmir and its habitants, Delhi, surabhi prakashan, 1998, page 70-71.
8. Pandita, K.N. (ed.). 'Baharistan-e-Shahi', page 30.
9. Pandita, K.N. (ed.). 'Baharistan-e-Shahi', page 29.
10. रैणा, गौरीशंकर, (2017). 'कश्मीरी की प्रतिनिधि कहानियां', पृ. 82-83, दिल्ली : साहित्य अकादमी।
11. Pandita, K.N. (ed). 'Baharistan-e-shahi', Persecution of Hindus, Chapter 4.
12. इराकी के बारे में और उसकी गतिविधियों के बारे में जानकारी तोहफातुल अहबाब नाम की उसकी जीवनी से मिलती है, जो किसी अज्ञात लेखक ने 1642 में फारसी भाषा में लिखी थी। यह जीवनी उस समय के कश्मीर को जानने का भी महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद कश्मीर विश्वविद्यालय के मध्य एशिया अध्ययन विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. काशी नाथ पंडित ने Tohfatul Ahbab: A Muslim Missionary in Medieval Kashmir के नाम से किया है।
13. Pandita, K.N. (ed.) 'Baharistan-e-shahi', Persecution of Hindus, Chapter 4.
14. काशी नाथ दर, काशी नाथ दर रचनावली, पृ. 70, जम्मू : कला, भाषा व संस्कृति अकादमी।
15. काशी नाथ दर रचनावली से उद्धृत, पृ. 70-71
16. गौहर, जी. एन., पुन्न ते पाप, पृ. 1
17. गुलाम नबी गौहर, शेख नूरुद्दीन वली, दिल्ली, पृ. 11
18. Lawrence, Walter R, 'The valley of Kashmir', page 236.
19. जम्मू-कश्मीर में 1931 की जनसंख्या के अनुसार राज्य में सैयदों की संख्या 12577 थी ।
20. शेख अब्दुल्ला बायोग्राफी, सैयद तफाजुल्ल हुसैन, पृ. 64
21. शेख अब्दुल्ला बायोग्राफी,सैयद तफाजुल्ल हुसैन, पृ. 65.
22. Sheikh Mohammed Abdullah, the blazing chinar page 1
23. रैणा, गौरीशंकर (2017). 'कश्मीरी की प्रतिनिधि कहानियां', पृ. 83, दिल्ली : साहित्य अकादमी।

□

विस्थापन की अंतहीन पीड़ा

आशुतोष भटनागर

दृश्य एक

देश के एक बड़े समाचार-पत्र के संपादक अपने आंसू रोक नहीं सके। राजौरी के बलिदान भवन में वे उन लोगों की स्मृतियों को जीने की कोशिश कर रहे थे, जो 1947 में पाक अधिकृत जम्मू-कश्मीर स्थित अपने घरों से विस्थापित होकर प्राण बचाने के लिए राजौरी पहुंचे थे।

राजौरी पर जब बर्बर कबायली आक्रमण हुआ तो यह निश्चित था कि यथाशक्ति संघर्ष के बाद भी हथियारबंद हजारों हमलावरों के सामने वहां के पुरुष टिक न सकेंगे। यह भी निश्चित था कि महिलाओं के साथ होने वाली बर्बरता की जो खबरें हवा में गूंज रही थीं, वे पुरुषों की हत्या के बाद यहां भी दोहराई जाने वाली थीं। इस संभावित क्रूरता से बचने का जो एकमात्र रास्ता सूझ रहा था, यह वही था, जिसे इतिहास में जौहर कहा गया है।

गांवों पर जब हमले होने लगे तो लोग अपना सब कुछ छोड़कर सुरक्षित स्थानों के लिए चल पड़े। प्रशासन के केंद्र राजौरी पहुंचकर उन्होंने राहत की सांस ली ही थी कि राजौरी पर भी आक्रमण हो गया। पांच हजार की जनसंख्या वाले राजौरी में कई गुना अधिक लोग बाहर से आ बसे थे।

दीपावली के दिन कबायलियों का हमला हुआ। पाकिस्तानी सेना और पख्तून कबायलियों के सशस्त्र जत्थे हजारों की संख्या में राजौरी की ओर बढ़े। महाराजा हरि सिंह ने भारत सरकार से सैन्य सहायता का अनुरोध किया था, जिसे माना नहीं गया। मुट्ठी भर रियासती पुलिस और प्रशासनिक अमले ने लोगों को उनके हाल पर छोड़ कर भागने में ही भलाई समझी।

जैसे ही सूचना मिली कि आक्रांताओं ने राजौरी को घेर लिया है, सभी स्त्री, पुरुष और बच्चे तहसील भवन में एकत्र हो गए। अपने व अपने परिवारों की प्राणरक्षा के लिए पुरुष आखिरी सांस तक लड़ने के लिए कटिबद्ध हो गए। किंतु महिलाओं की ओर से जो प्रस्ताव आया, वह न स्वीकार करते बनता था, न अस्वीकार करते। महिलाओं ने कहा कि यह तो ठीक है कि उनके सम्मान की रक्षा तक सारे पुरुष सामर्थ्य भर जूझेंगे, लेकिन फिर भी हथियारबंद आक्रमणकारियों के सामने जीत की कोई संभावना नहीं है। पुरुषों के मरने के बाद इन बर्बर लोगों के हाथों महिलाओं को किन-किन यातनाओं से गुजरना होगा, इसकी कल्पना ही सिहरा देने वाली है, इसलिए आक्रमण से पूर्व ही सभी महिलाएं अपनी जीवनलीला समाप्त कर लें। अंततः यही तय हुआ। महिलाओं में जहर बंटना शुरू

हुआ और उसकी मात्रा कम पड़ गई। इसके बाद उन्हें गोली मारने का क्रम शुरू हुआ। शत्रु से लड़ने के लिए भी गोलियां चाहिए, इसलिए पहले दो महिलाओं को एक गोली से मारने की कोशिश हुई, फिर धारदार हथियार से गला काटने की नौबत आई। राजौरी में आज जो बलिदान भवन है, उसके प्रांगण में स्थित कुएं की जगत पर महिलाएं एकत्र हुईं और पुरुष एक-एक महिला का सिर काट कर शव कुएं में डालते रहे। अब तक शत्रु पहुंच चुका था। बीस हजार से ज्यादा पुरुष लड़ते हुए मारे गए। जो आक्रमणकारियों के हत्थे चढ़े, उन्हें क्रूरतापूर्वक काट डाला गया।

दृश्य दो

पुंछ से 120 मील दूर लक्ष्मणपत्तन के झूलापुल के पास रामपत्तन। जिस सैन्य ब्रिगेड के जिम्मे स्थानीय लोगों की रक्षा की जिम्मेदारी थी, उन्होंने ही जब गांव छोड़ देने के लिए कहा तो और कोई चारा नहीं था। पूर्वजों की स्मृतियां और धन-संपत्ति, सब कुछ पीछे छोड़ लगभग 600 लोगों का समूह अनजाने सफर पर चल पड़ा। रात भर बिना आवाज किए चलते और सुबह होने से पहले किसी जंगल में शरण ले लेते। दिन में देख लिये जाने का खतरा था और फिर कोई जीवित न बचता। रावलाकोट से चार मील पहले एक बड़ा भवन था। वहां रहने वाले ग्रामीणों ने इन्हें सुरक्षित होने का विश्वास दिलाते हुए इसी मकान में ठहर जाने को कहा। जब सब लोग इस भवन के अंदर चले गए तो उसके मुख्य द्वार को बाहर से बंद कर रात में उसमें आग लगा दी। मुश्किल से सौ लोग जान बचाकर भाग सके। वे लोग रात भर चलकर सुबह रावलाकोट पहुंचे। इसी समूह में शामिल श्यामलाल बताते हैं कि रास्ते में भोजन तो क्या पानी का भी अभाव देखना पड़ा। कई मौके ऐसे आए जब प्यास से बिलख रहे बच्चों को पानी की जगह मूत्र पिलाना पड़ा। किसी तरह वे जम्मू पहुंचे जहां भोर कैंप में उन्हें टिकाया गया। आज भी वे वहीं हैं और उनकी अगली तीन पीढ़ियां सात दशकों तक अपने दुर्भाग्य का शोक मनाने के लिए विवश बनी रहीं।

दृश्य तीन

वर्ष 1931; मीरपुर जिले में कैनी भाइयां के निकट पंजन गांव। गांव में पीढ़ियों से रहने वाले मुकुंदलाल गुप्ता इलाके के प्रतिष्ठित वैद्य और इस्लाम के बड़े जानकार। गांवों में धार्मिक सभाओं में उन्हें आग्रहपूर्वक बुलाया जाता, जहां वे कुरान शरीफ को सरल भाषा में समझाते थे। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में उठ खड़े हुए आंदोलन ने गति पकड़ी तो गांव-गांव में तनाव फैलने लगा। शेख की प्रतिनिधित्व की मांग को तो महाराजा ने स्वीकार कर लिया, किंतु इसके साथ जुड़ी गौहत्या पर लगे प्रतिबंध को हटाने की शर्त को हिंदू राजपूत राजा किसी कीमत पर स्वीकार करने को तैयार नहीं थे।

इसी उत्तेजना में लाला मुकुंदलाल का घर घेर लिया गया और अपने एक बुजुर्ग स्नेही हाफिज जी की सहायता से वे परिवार सहित अपनी जान बचाकर कैनी भाइयां होते हुए मीरपुर आने में सफल रहे, लेकिन पीढ़ियों की विरासत और संपत्ति पंजन में ही छूट गई। जीवन को फिर से गढ़ने की कोशिश शुरू हुई। अब तक उनके बेटे भी बड़े होकर काम में हाथ बंटाने लगे थे और खोई हुई लक्ष्मी वापस आने लगी थी। 1931 के घाव भी धीरे-धीरे भर चले थे।

तभी पहले से अधिक क्रूर घटनाओं के साथ 1947 आया। गांव-गांव में बसे हिंदू उजड़

कर जान बचाने के लिए मीरपुर में आ गए। एक रात मीरपुर पर भी हमला हुआ। महिलाओं का जौहर, पुरुषों का लड़ते हुए मरना और जान बचाकर भागना, सब कुछ एक साथ। लाला मुकुंदलाल भी अपने परिवार के साथ एक बार फिर उजड़े और भीड़ के बीच चल पड़े जम्मू की ओर। मीरपुर की लगभग 42 हजार की जनसंख्या में से दुर्भाग्यवश बहुत-से लोग मारे गए, बहुत कम ही लोग बच पाए। रास्ते में लालाजी को अपनी बेटी को खोना पड़ा, किंतु दो बेटों और उनके परिवार के साथ वे जम्मू पहुंचने में सफल रहे।

जम्मू में पाकिस्तान चले गए मुस्लिमों के घर खाली पड़े थे जिनमें इन मीरपुरियों ने डेरा डाल लिया। कुछ ही दिन बीते थे कि शेख अब्दुल्ला जम्मू आए और जब उन्हें यह पता चला कि मुस्लिमों के मकान पर इन लोगों ने कब्जा कर लिया है तो वे आगबबूला हो गए और इन सभी लोगों को सेना के ट्रकों में भरकर लखनपुर के आगे जम्मू-कश्मीर राज्य की सीमा से बाहर फेंक दिया गया। लालाजी का परिवार लखनपुर से किसी तरह करनाल पहुंचा और बाद में वहां से दिल्ली में सब्जी मंडी के निकट अजीतगढ़ ढलान पर स्थित शरणार्थी शिविर में सिर छिपाने की जगह मिली। उनके बेटे धर्ममित्र की पत्नी ने इसी शरणार्थी शिविर में एक पुत्र को जन्म दिया। यह पुत्र आज देश का एक प्रतिष्ठित पत्रकार है। पंजन से कैली भाइयां, कैली भाइयां से मीरपुर, मीरपुर से जम्मू, जम्मू से करनाल, करनाल से दिल्ली। तीन दशक में पांच विस्थापन और आज भी पहचान का संकट।

दृश्य चार

विभाजन से महीने भर पहले ही विशम्भर नाथ सप्रू की नियुक्ति मुजफ्फराबाद में स्कूल अध्यापक के रूप में हुई थी। 21 अक्तूबर को मुजफ्फराबाद से 20 किलोमीटर आगे दानकचेली में नियुक्त शिक्षक पृथ्वीनाथ मजारी मुजफ्फराबाद पहुंचे और कबायलियों के इस ओर बढ़ने की सूचना दी। यह सूचना देने के लिए वे जब वजीरे-वजारत मेहता दुनीचंद और कर्नल नारायण सिंह के पास गए तो उन पर आतंक फैलाने का आरोप लगाया गया और दंडस्वरूप पेड़ से बांध दिया गया। 21-22 अक्तूबर की रात में गोलियां चलने की आवाजें आती रहीं और सुबह अचानक शोर हुआ और तीन हजार से अधिक हिंदू और सिख परिवार महिलाओं और बच्चों सहित गोपाल चौक में एकत्रित हो गए। जल्दी ही हमलावरों ने गोपाल चौक को घेर लिया। उन्होंने सभी के गले में हरे रंग का कपड़े का टुकड़ा बांध दिया और जुलूस की शक्ल में उन्हें घेरकर कृष्णगंगा नदी के पुल की ओर ले चले। कुछ लोगों ने भाग निकलने की कोशिश की, किंतु हमलावरों की गोली से मारे गए। विशम्भर नाथ सप्रू सौभाग्यशाली थे कि वे भाग भी सके और जीवित भी बच गए।

कृष्णगंगा के पुल पर पहुंचकर हमलावरों ने घोषणा की कि उन्हें सिखों से कोई शिकायत नहीं है, इसलिए सभी सिख पुरुष जा सकते हैं। राहत की सांस लेकर सिख जब वापस आए तो देखा कि पुल का गेट बंद है। गेट पर एकत्र सिखों पर उन्होंने अचानक फायरिंग शुरू कर दी और देखते-ही-देखते सभी सिख हताहत होकर पुल पर गिर गए। मृत और घायल सिखों के शरीरों को कबायलियों ने जूतों से ठेलकर नदी में गिरा दिया।

इसके बाद उन्होंने 11 से 45 वर्ष तक की महिलाओं को अलग किया और उन्हें बसों

में भरकर वजीरिस्तान और खैबर पख्तूनख्वां की ओर रवाना कर दिया। कुछ महिलाएं किसी तरह भाग जाने में सफल रही और कुछ ने कृष्णगंगा में कूदकर अपने सतीत्व की रक्षा की। जिन महिलाओं की गोद में छोटे बच्चे थे, उन्हें छीनकर उन्होंने नदी किनारे सड़क पर फेंक दिया। इनमें से अधिकांश घायल बच्चों को आवारा कुत्तों ने जीवित ही नोच डाला। बुजुर्ग महिलाओं सहित सभी बंदियों को, जिनकी संख्या लगभग 2500 थी, को कैद कर लिया गया।

विशम्भर नाथ भागकर एक ऐसे घर में जा छिपे जिसमें कबायलियों का अड्डा था, किंतु उस घर के रसोइये ने उन्हें एक अंधेरी कोठरी में छुपाया ही नहीं बल्कि छिपाकर उन्हें कुछ रोटियां और नमक भी पहुंचाता रहा। इस कोठरी में स्थित छोटी खिड़की से कृष्णगंगा पुल दिखाई देता था। दस दिन तक सप्रू इस कोठरी में छिपे रहे। खिड़की की दरारों से उन्होंने लगातार गांवों से हिंदुओं और सिखों को कृष्णगंगा के किनारे लाकर मौत के घाट उतारे जाने के दृश्य देखे। इसी कोठरी में वह शौचादि भी करते थे और रात के अंधेरे में स्वयं ही उठाकर उसे खिड़की से नदी की ओर फेंकना होता था।

मुजफ्फराबाद को तहस-नहस करके आक्रमणकारी बारामूला की ओर बढ़ गए तो नगर में कुछ शांति हुई। शेष बचे महिलाओं और बच्चों सहित कुल 56 कश्मीरी पंडित एक स्थान पर एकत्र हो गए थे। यह लोग अभी चैन की सांस भी न ले पाए थे कि कश्मीर में भारतीय सेना ने मोर्चा संभाल लिया और हमलावरों को पीछे धकेलना शुरू कर दिया। वापस भागते कबायली एक बार फिर मुजफ्फराबाद आ पहुंचे और वही खूनी खेल एक बार फिर शुरू हो गया।

कुछ सामान लेने के लिए बाहर निकले विशम्भर नाथ को एक दस्ते ने पकड़ लिया और पैसे मांगे। पैसे न होने की बात कहने पर उनमें से किसी ने उनका कोट उतरवा लिया। दूसरे कबायली ने उनकी शर्ट और पैंट उतरवाई और लेकर चला गया। एक अन्य घटना में विशम्भर नाथ द्वारा धन न होने की बात कहने पर हमलावर ने उनसे एक आने के स्टांप पेपर पर यह लिखवा लिया कि आने वाले महीने का वेतन वह ले लेगा।

कुछ कबायली उस स्थान पर आ पहुंचे जहां 30 महिलाएं एवं पुरुष कश्मीरी हिंदू छिपे थे। उन्होंने तीन महिलाओं के साथ सभी के सामने बलात्कार किया और जिन महिलाओं ने विरोध की कोशिश की, उन्हें वे जबरन उठाकर ले गए और सामूहिक बलात्कार के बाद उन्हें सड़क पर छोड़ दिया। ऐसी ही लूट, हिंसा और महिलाओं के अपमान की घटनाएं जेल में कैद गैर-मुस्लिमों के साथ भी घटीं।

लौटते हुए हमलावर विशेष रूप से उन लोगों को निशाना बना रहे थे, जिनका संबंध शेख अब्दुल्ला की नेशनल कॉन्फ्रेंस से था। कठिनाइयों का दूसरा दौर तब शुरू हुआ जब कबायली चले गए और प्रशासनिक व्यवस्था संभालने के लिए पाकिस्तानी सैनिक आए। यह लोग उन्हें ढूंढ़ रहे थे जो कांग्रेस के संपर्क में थे और पाकिस्तान के निर्माण का विरोध कर रहे थे। कश्मीरी हिंदुओं के पास अब खाने तक के लिए कुछ नहीं था और वे भीख मांगने के लिए विवश थे। कुछ स्थानों से इन्हें खाने को कुछ मिल जाता था, वहीं ज्यादातर जगहों से प्रताड़ना ही मिलती थी। अंततः सभी लोग मतांतरण के लिए विवश हुए और विशम्भर नाथ का नाम गुलाम नबी रखा गया।

महीनों बाद नमक के एक व्यापारी के साथ वे तमाम कठिनाइयों को पार करते हुए और बिना गरम वस्त्रों के बर्फ के मैदान पार करते हुए पैदल श्रीनगर पहुंचे जहां शेख अब्दुल्ला की सरकार ने प्रशासन संभाल लिया था। विशम्भर नाथ को स्थानीय होने के कारण श्रीनगर में शिक्षक के पद पर ही बहाल कर दिया गया, किंतु बीच के कालखंड में अनुपस्थित रहने के कारण चार महीने का वेतन नहीं दिया गया। विशम्भर नाथ के पहले अथवा बाद जान बचाकर मुजफ्फराबाद से श्रीनगर आने वालों में जितने लोग भी गैर-कश्मीरी भाषी थे, उन्हें श्रीनगर में ठहरने की अनुमति नहीं मिली जबकि वे सभी स्टेट सब्जेक्ट थे। उन्हें जम्मू की ओर धकेल दिया गया।

दृश्य पांच

पश्चिमी पंजाब का स्यालकोट जिला, जिसकी सीमा जम्मू से लगती है। जम्मू के सुचेतगढ़ से स्यालकोट जिला मुख्यालय की सीमा केवल 11 किलोमीटर है। 15 अगस्त तक भी न यह तय था कि जम्मू-कश्मीर भारत में रहेगा अथवा पाकिस्तान में जाएगा और न ही यह तय था कि पश्चिमी पंजाब पर स्थित नवनिर्मित पाकिस्तान की सीमा रेखा कहां होगी। इसलिए सीमा पर रहने वालों के लिए यह संभव ही नहीं था कि वे अपने भविष्य की रूपरेखा बना सकें।

जब सरहद पर मार-काट शुरू हुई तो स्यालकोट के निवासियों के लिए निकटतम शरण स्थल जम्मू ही था। लुटे-पिटे, अपने परिवारी जनों और संपत्ति को खोकर ये लोग जम्मू पहुंचे। जम्मू पार कर वे भारतीय पंजाब की सीमा में प्रवेश करना चाहते थे तभी राज्य के तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला उनके बीच आए और कहा कि जम्मू की सीमा पर रहने वाली बड़ी मुस्लिम आबादी पाकिस्तान चली गई है, इसलिए सीमांत के गांव खाली हो गए हैं। पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले सभी लोग जम्मू में ही रहें, सरकार उनकी पूरी चिंता करेगी। उनमें से कुछ लोग राज्य की सीमा पार कर पंजाब में आ गए, किंतु कुछ लोगों ने शेख की बातों पर भरोसा किया और वहीं रुक गए। सात दशक तक यह लोग नागरिक अधिकार पाने के लिए संघर्ष करते रहे, किंतु सरकार के कान पर जूं तक न रेंगी।

दृश्य छह

महाराजा गुलाब सिंह ने वर्तमान जम्मू-कश्मीर को गढ़ने का काम किया। कठिन परिस्थिति में उन्होंने युद्ध लड़े और राज्य का विस्तार किया। इस अभियान में उनका साथ दिया गोरखा जवानों ने, जिन्होंने असंख्य बलिदान देकर इस राज्य के निर्माण और रक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राजशाही जाने के बाद इनके सारे योगदान को भुलाकर उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया गया।

इसी तरह 1956 में राज्य सरकार के निमंत्रण पर वाल्मीकि समुदाय के लोगों ने जम्मू आकर सफाई व्यवस्था संभाली। एक बार स्थापित होने के बाद इनकी भी वही नियति हुई जो गोरखों अथवा पश्चिमी पाक के विस्थापितों की थी। तीनों ही समूहों को न वहां बसने के अधिकार मिले और न जीवन जीने के। न वे राज्य में होने वाले चुनावों में मतदान के अधिकारी थे और न ही उनके बच्चे वहां उच्च शिक्षा अथवा सरकारी नौकरी हासिल कर सकते थे। जिस जमीन पर उन्होंने अपना जीवन बिताया, कानूनन वे उसके भी स्वामी नहीं बन सकते थे।

दृश्य सात

14 सितंबर को उच्च न्यायलय के प्रतिष्ठित वकील और जम्मू-कश्मीर भाजपा के प्रदेश उपाध्यक्ष टीकालाल टपलू की उनके घर के बाहर ही दिन-दहाड़े नृशंस हत्या कर दी गई। हत्या के बाद जे.के.एल.एफ. ने प्रेस वक्तव्य जारी कर कहा, हम उन सब लोगों को मार देंगे जो कहते हैं कि जम्मू-कश्मीर का भारत में विलय अंतिम है।

पीपुल्स लीग के अध्यक्ष शब्बीर शाह को 27 सितंबर की रात रामवन के निकट गिरफ्तार किया गया, किंतु जम्मू लाने के स्थान पर तत्कालीन पुलिस महानिदेशक के निर्देश पर वापस श्रीनगर ले जाया गया। इसके चलते घाटी के प्रमुख शहरों में चार दिन तक हड़ताल रही। अनेक सार्वजनिक इमारतों में आगजनी और हिंसा की गई। पांच लोग गोली लगने से मरे। बाद में देवगौड़ा के प्रधानमंत्रित्व काल में कश्मीर का दिल जीतने की कोशिशों के अंतर्गत शब्बीर शाह पर लगे देशद्रोह और निर्दोषों की हत्या के आरोप क्षमा करके रिहा कर दिया गया। जम्मू जेल से बाहर निकलते ही हजारों लोगों की भीड़ ने उसका स्वागत किया और जम्मू शहर में आजादी के नारे लगाए गए। लगभग 50 वाहनों के काफिले के साथ शब्बीर शाह डोडा, रामबन, बनिहाल, भद्रवाह और किश्तवाड़ में अलगाववादी भाषण देता घूमता रहा। भद्रवाह में तो प्रशासन ने इसके लिए रात का कर्फ्यू भी वापस ले लिया और किसी भी संदिग्ध को आने-जाने से न रोकने का मौखिक आदेश दिया।

4 नवंबर को सेवानिवृत्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश नीलकंठ गंजू की दिन-दहाड़े हत्या कर दी गई। गंजू ने आतंकी मकबूल बट को मृत्युदंड की सजा सुनाई थी। 8 दिसंबर को जे.के.एल. एफ. ने केंद्रीय गृहमंत्री मुफ्ती मुहम्मद सईद की बेटी डॉ. रुबैया सईद का अपहरण कर लिया। हत्या की धमकी के बाद सरकार ने घुटने टेक दिए और पांच खूंखार आतंकवादियों को छोड़ दिया गया। इस घटना को जे.के.एल.एफ. ने अपनी विजय की तरह लिया। इसके बाद तो हिंदू समाज के लोगों को चुन-चुनकर मारा जाने लगा।

हत्या के साथ ही की जाने वाली बर्बरता ने मध्ययुगीन घटनाओं को भी पीछे छोड़ दिया। माथे पर तिलक लगाने वाले श्री प्रेमी को तिलक के स्थान पर छेनी से छेद कर तड़पा-तड़पाकर मारा गया। सैन्य बल को रहने की जगह देने वाले वृजनाथ की घर के बाहर हत्या कर दी गई। उनकी पत्नी जब उन्हें बचाने आईं तो उनके साथ सामूहिक बलात्कार करके उनकी भी हत्या कर दी गई। वृजनाथ के शव को ढ़ाई किलोमीटर तक गाड़ी से घसीटकर ले गए। टिक्कर गांव की बबली के साथ न केवल सामूहिक बलात्कार किया गया बल्कि उस अवस्था में आरे से चीरकर उसकी हत्या की गई। पिता के सामने बेटी और पुत्र के सामने मां से बलात्कार किया गया। अफगानी आतंकवादी शेख जलालुद्दीन ने स्वयं यह स्वीकार किया कि उसने 27 लड़कियों के साथ बलात्कार किया है, वहीं एक कश्मीरी आतंकी ने सौ लोगों की हत्या का दावा किया।

19 जनवरी, 1990 की रात कश्मीरी हिंदुओं के लिए प्रलय बनकर आई। रात 9 बजते ही मस्जिदों से ऐलान होने लगे और हिंदुओं को घाटी खाली करने के लिए कहा जाने लगा। पूरा कश्मीर सड़कों पर उतर आया। निजामे-मुस्तफा और कश्मीर बनेगा पाकिस्तान के नारे गूंजने लगे।

हजारों हिंदुओं को बंदूक की नोक पर इसमें शामिल होने के लिए बाध्य किया गया। रक्त जमा देने वाली सर्दी की रात में हिंदू लड़कियों को निर्वस्त्र करके उनके जुलूस निकाले गए। उनके घरों के दरवाजों पर पर्चे चिपका दिये गए कि सभी हिंदू घाटी खाली कर जाएं, लेकिन अपने परिवार की महिलाओं को यहीं छोड़ जाएं। परिणामस्वरूप त्रासदी की यह रात भारत के इतिहास में दर्ज हो गई, जब शासन अपने ही नागरिकों को सुरक्षा देने में असमर्थ रहा और हिंदू समाज को अपनी धरती छोड़ कर पलायन करना पड़ा।

ऐसा नहीं था कि आतंकी केवल हत्याएं कर आतंक का राज स्थापित करने और कश्मीरी हिंदुओं को निकाल बाहर करने से संतुष्ट थे। वे पिछले अनुभवों से जानते थे कि यदि संस्कृति के सूत्र बच जाते हैं, तो अनुकूल समय आने पर कोई भी समाज पुनर्जीवन प्राप्त कर लेता है। इसलिए इस बार वे समूल नाश पर उतरे थे। उन्होंने कश्मीर के सांस्कृतिक प्रतीकों को भी नष्ट करने की पूरी कोशिश की। विशेष रूप से लाखों पुस्तकों को उन्होंने लूटा, बेचा और जलाया। मंदिरों को ध्वस्त किया। मूर्तियों को तोड़ा। मध्ययुगीन बर्बरता का सामना एक बार फिर कश्मीरी हिंदू समाज को करना पड़ा।

दृश्य आठ

ये घटनाएं केवल कश्मीर में ही नहीं हो रही थीं। जम्मू के क्षेत्र भी आतंक से अछूते नहीं रहे, यद्यपि उनकी चर्चा बहुत कम होती है। अल्लाह वाले मौलवियों की गतिविधियां और जमायते इस्लामी के मदरसे डोडा, किश्तवाड़, भद्रवाह तथा राजौरी और पुंछ में बड़ी संख्या में खोले गए। 'क' से 'काफिर' और 'ज' से 'जेहाद' पढ़ाने वाले इन मदरसों ने जम्मू का वातावरण विषाक्त करने और आतंकवाद का आधार तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सिनेमाघरों को बम विस्फोट से उड़ाने और सरकारी स्कूलों को जलाने की घटनाएं जम्मू में भी हुईं। यहां भी लड़कियों के कई स्कूलों में हिजाब पहनने के निर्देश जारी किए गए। स्कूलों में राष्ट्रगान पर रोक लगाई गई। निजामे मुस्तफा और आजादी के नारे लगाना, हिंदुओं को इस्लाम कबूल करने के संदेश वाले पोस्टर और मस्जिदों से आपत्तिजनक घोषणाएं और गतिविधियां जम्मू के भी बड़े हिस्से में होने लगीं। हिंदुओं के उत्सवों और धार्मिक यात्राओं पर हमले आम हो गए। किश्तवाड़ में बस रोककर 16 हिंदू यात्रियों की हत्या, ठाठरी तहसील के बरशाला गांव को घेरकर 15 हिंदुओं की हत्या, भद्रवाह के ढोसा पानी गांव में जिस घर में आतंकवादी रहते थे, उसी परिवार की महिलाओं से व्यभिचार के बाद 7 लोगों की हत्या, ठाठरी के कलमाडी गांव में फॉरेस्ट अधिकारी जगन्नाथ के पूरे परिवार को धारदार हथियारों से हलाल करके मारा। रामबन के हिंदुओं को एकत्र कर उनसे भारत विरोधी नारे लगवाए और 11 लोगों को एक साथ खड़ा कर गोलियों से छलनी कर दिया। डोडा जिले के भागवा में 5 लोगों की हत्या और उनकी शवयात्रा पर पुनः फायरिंग में 4 अन्य व्यक्ति मारे गए। डोडा के चापनाड़ी में दो बारातों पर अंधाधुंध फायरिंग में 25 लोगों की हत्या कर दी गई। किश्तवाड़ के चेरंजी गांव में पूर्व सैनिक कुंजलाल के घर में 12-13 आतंकियों ने घुसकर उनकी पत्नी से खाना बनवाया। खाना खाने के बाद सभी ने उनकी पत्नी के साथ बलात्कार किया और हत्या कर दी। इसी क्षेत्र के एक युवक राकेश कुमार के चेहरे के सारे मांस को काट-काटकर

निकालकर फेंक दिया, माथे से ठुड्डी तक केवल हड्डियां ही बचीं। कुछ समय बाद उसने तड़प-तड़प कर दम तोड़ दिया। किश्तवाड़ के ही रमेश कुमार और उसके पिता का अपहरण किया। उसके अंगों को काटने के बाद छाती चीरकर उसका हृदय निकालकर उसके पिता के मुंह पर फेंक दिया।

राजौरी के स्वाडी नामक गांव को घेरकर महिलाओं और पुरुषों को बाहर निकालकर रात भर यातनाएं दीं और आठ हिंदुओं की गोली मारकर हत्या कर दी। सूरनकोट में रतनलाल दत्ता के घर में घुसकर आतंकवादियों ने खाना बनवाकर खाया और जाते समय परिवार के पांच लोगों की हत्या कर दी। राजौरी के ही बलियारा गांव में एक बारात को घेरकर की गई फायरिंग में सात और निकट के दूसरे गांव मोरा पट्टा में चार हिंदुओं की हत्या कर दी। मेंढर के कस्बलाड़ी गांव के एक मुस्लिम युवक पर मुखबिरी के शक में आतंकवादियों ने उसके परिवार को यातनाएं दीं और एक महिला सहित तीन लोगों के शरीर के टुकड़े कर दिए। दरहाल की छह लड़कियों सहित पुंछ, राजौरी की एक दर्जन से अधिक युवतियों का अपहरण किया जिनके साथ बलात्कार के बाद उनकी हत्या कर दी।

डोडा के काराड़ा गांव में एक हेड कांस्टेबल और साथी पुलिसकर्मियों और आतंकवादियों के एक साझा गिरोह ने जंगल में स्थित घरों में सात हिंदुओं को कैद करके रखा। उनके गुप्तांगों को मिट्टी का तेल डालकर जलाया, इनके जीवित शरीर से मांस काटकर तलकर खाया और घाव से बहने वाला खून पिया। इस घटना में दयाकृष्ण नामक युवक की मृत्यु हो गई। शेष युवकों को वे खच्चर पर बांधकर कारड़ा पुलिस चौकी ले आए, जहां वरिष्ठ अधिकारियों के हस्तक्षेप के बाद इन युवकों को छुड़ाया जा सका। यह पुलिस वाले उन्हें सेना का मुखबिर होने का आरोप लगाकर यातना दे रहे थे।

उपरोक्त दृश्यों का उल्लेख यह अंतर स्थापित करने के लिए आवश्यक है कि अपने स्थान की कठिनाइयों के चलते अथवा बेहतर अवसरों की तलाश में अपना घर छोड़ना और बात है तथा न छोड़ने की इच्छा होते हुए भी अपने जीवन और अपनी आस्था की रक्षा के लिए छोड़ने को विवश किया जाना नितांत भिन्न। जो स्वेच्छा से अपने स्थान को छोड़ता है, वह इच्छा होने पर वापस आने का अधिकार भी रखता है, लेकिन विपरीत परिस्थिति में, अपना सबकुछ छोड़ कर, कभी न लौटने के लिए विस्थापन बिल्कुल अलग तरह का अनुभव है। जिसने उसे भोगा है, वही उसे अनुभव कर सकता है। उस पीड़ा का यथावत् वर्णन तो संभवतः वह भी नहीं कर सकता, जो इससे स्वयं गुजरा है।

ऊपर के दृश्य पीड़ा की इस अंतहीन यात्रा का आमुख मात्र हैं। काल के प्रवाह का एक टुकड़ा भर हैं, जो दुःखद स्मृतियां समेटे हैं। भारत विभाजन के समय ही पश्चिमी पंजाब, सिंध और पूर्वी बंगाल के विस्थापितों को भी ऐसे ही अनुभवों से गुजरना पड़ा। उनके सौभाग्य से वे भारत के उस भाग में पहुंच गए जहां का समाज और सरकार उनके प्रति संवेदनशील थे। विस्थापन के कुछ ही वर्षों में उन्हें यथेष्ट अवसर मिले और अपनी क्षमता और श्रम के बल पर उन्होंने अपने आप को पहले से अधिक बेहतर स्थान पर पाया। सरकार ने उनके लिए कॉलोनियां बसाईं, भूमि दी, जो कुछ वहां छूट गया, उसके लिए आनुपातिक मुआवजा दिया, शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था की, आगे बढ़ने के अवसर प्रदान किए। जो कुछ पीछे छूटा, दुःस्वप्न की भांति उससे मुक्ति पाकर उन्होंने भारत को ही अपना घर मानकर अपने दुःख-सुख बांट लिये। विस्थापित होकर जो लोग

जम्मू-कश्मीर की सीमा में पहुंचे अथवा पाकिस्तान के आक्रमण के कारण जम्मू-कश्मीर से विस्थापित हुए, उनका संघर्ष आज तक जारी है।

1990 में कश्मीर घाटी के हिंदू समाज को विषम परिस्थितियों में विस्थापित होना पड़ा। उस समाज के साथ यह पहली नहीं, सातवीं बार हुआ था। इससे पहले भी छह बार ऐसी स्थिति आई थी, जब कश्मीर घाटी में सांप्रदायिक आधार पर हुए भारी रक्तपात के चलते अधिकांश हिंदुओं को पलायन करना पड़ा था। निरंतर पीड़ा और संत्रास सह रहे इस समाज के मनोविज्ञान का अध्ययन कर उसे आधार बनाकर उपन्यास लिखने वाले रजतकांति मित्र का विश्लेषण है कि 'उनके साथ बार-बार ऐसा ही होता है और ऐसी परिस्थिति में उनके सामने पलायन के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता', यह इस समाज की सामूहिक स्मृति के अवचेतन में गहरे से पैठ गया है। इसलिए जब 1989-90 में एक बार फिर ऐसा अवसर आया तो अवचेतन में दबी वह स्मृति फिर प्रबल हो उठी और पलायन को ही विकल्प मानते हुए देखते-ही-देखते लाखों लोग अपना सबकुछ छोड़कर अनजाने भविष्य की ओर चल पड़े।

उनकी यह यात्रा जोखिम भरी तो थी ही, विश्वास टूटने और जुड़ने, शरणार्थी शिविरों के नारकीय जीवन, इसमें भी आगे बढ़ने का हौसला बनाए रखने का आत्मबल और तिनका-तिनका जोड़कर एक बार फिर नीड़ का निर्माण करने का धैर्य जिस तरह इस समाज ने दिखाया, वह अपने आप में एक अनूठा आख्यान है। ऐसी घटनाएं जब संवेदना को झकझोरती हैं तो कविता का जन्म होता है, साहित्य रचा जाता है। इसलिए मां शारदा के उपासक इस समाज की लेखनी से विस्थापन की पीड़ा को उकेरने वाली रचनाएं अनायास फूट पड़ीं। क्षमा कौल का 'दर्दपुर', और चंद्रकांता का 'कथा सतीसर' तो विस्थापन के साहित्य के मानक जैसे ही बन गए हैं। डॉ. अग्निशेखर, जवाहरलाल कौल, बीना बुदकी आदि न जाने कितने रचनाकार हैं जिन्होंने इस पीड़ा को शब्द दिये। इनमें जम्मू-कश्मीर के लोग हैं तो उनकी संवेदना को साझा करते हुए अनेक गैर-कश्मीरी लेखकों ने भी इसे अपनी रचनाओं की कथावस्तु बनाया।

1990 के विस्थापन से जुड़े दो पक्ष और ऐसे हैं जिन्हे रेखांकित करना आवश्यक है। दोनों बातें उस दैवीय पक्ष से जुड़ी हैं, जो विपरीत परिस्थिति में उनका संबल बनकर खड़ी थीं। पहला, शारदा की कृपा से यह समाज पढ़ा-लिखा था, पठन-पाठन की परंपरा प्रायः हर घर में थी, इसलिए जब अंतर में पीड़ा उमड़ी तो उसे शब्द देने की क्षमता पहले से विद्यमान थी। प्रारंभिक दौर में मौखिक और बाद में रचनाबद्ध रूप में जब यह शब्द देश भर में गूंजे तो पूरे देश से उनके समर्थन में लोग उठ खड़े हुए। स्वतंत्रता के चार दशक जी लेने के बाद देश में भी एक प्रकार की स्थिरता आ चुकी थी जिसमें कश्मीर के विस्थापितों को अपना लेने के लिए पर्याप्त अवकाश था। इस समय तक अनेक ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन भी इतने सक्षम थे कि वे अपने बल पर, बिना सरकारी सहायता के भी एक बड़ी भूमिका निभा सकते थे और जनमत को प्रभावित करने की स्थिति में थे। इसलिए बड़ी संख्या में सहयोग के हाथ उनकी ओर बढ़े और नए सिरे से जीवन की शुरुआत करने के कश्मीरी समाज के उद्यम को गति मिली।

दूसरा, कश्मीर मंडल में समाज के जीवन को गहरे तक प्रभावित करने वाला शैव दर्शन

विस्थापन के कष्टसाध्य दिनों में भी अवलंबन बना रहा। शैव-दर्शन उन्हें भाग्यवादी नहीं बनाता बल्कि उस दार्शनिक ऊंचाई पर पहुंचाता है जहां वे इन माया के कंचुकों को उतार फेंकने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। लोक को साधते हुए इस माया प्रपंच से ऊपर उठने का यह संदेश उन्हें विरक्ति की ओर नहीं बल्कि उद्यम की ओर प्रवृत्त करता है। भैरव की तरह उद्यम करने का शिवसूत्र का संदेश उन्हें परिस्थितियों से हारकर बैठ जाने के स्थान पर उद्यम से अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए प्रेरित करता है।

1947-48 में जम्मू-कश्मीर के विस्थापितों की कहानी अत्यंत लोमहर्षक है। बेबसी का एक ऐसा दस्तावेज है जिसे देश जान भी नहीं सका। मीरपुर, मुजफ्फराबाद, कोटली, भिंबर, देवा, बटाला, राजौरी, पुंछ, झंगड़ और बाल्तिस्तान। पश्चिमी पाकिस्तान से जम्मू में आए लोग। हजारों लोगों का कत्ल-ए-आम और लाखों लोगों का विस्थापन। अधिकांश जनसंख्या अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों की। औपचारिक शिक्षा लगभग नगण्य। बदलती दुनिया से कोई संबंध नहीं। मानवाधिकार भी कुछ होता है, इसका अनुमान भी नहीं। विस्थापन के बाद जिन शरणार्थी शिविरों में डाल दिए गए, तीन पीढ़ियां उन्हीं शिविरों में कट गईं। कपड़े के तंबू पर मेहनत-मजदूरी कर छत अपनी डाल भी ली तो धरती अपनी नहीं। न शिक्षा के अवसर और न विकास के। मानवाधिकारों से रहित, नागरिक अधिकारों से वंचित।

जिस भाषा में वे आपस में बात करते हैं, उसे उनके अलावा कोई समझता नहीं। उनकी भाषा की कोई लिपि नहीं। भाषा को राजकीय मान्यता नहीं। जहां आ बसे वहां इसे कोई बोलता नहीं, इसलिए स्थानीय भाषा में संवाद की विवशता और अपनी भाषा से कटते जाने की नियति। आंख के आंसू सूख गए लेकिन कविता उनसे बह न सकी। उनकी भाषा की कविता, उनकी भाषा का लेखन, कहें भी तो सुने कौन। अर्थ का अनर्थ हुआ। जीवन व्यर्थ हुआ। सत्तर साल। किसी ने नहीं सुनी सिसकी। किसी की आंख नम नहीं हुई। किसी ने सांत्वना नहीं दी। शब्द खो गए। भाषा बांझ हो गई।

पीढ़ियों से जम्मू-कश्मीर में रह रहे थे। महाराजा ने भारत में अधिमिलन किया तो उनका इलाका भी भारत हो गया और वे भारत के नागरिक। पाकिस्तान का हमला हुआ। भारतीय सेना श्रीनगर में संघर्ष समाप्त होने के बाद भी उनकी सहायता के लिए नहीं पहुंची। आगे जाने से रोक दिया गया। साजिश किसकी थी, आज इस पर बहस का कोई मतलब नहीं बचा। सच यह है कि अपने ही राज्य में विस्थापित हुए। शांति की खोज में श्रीनगर पहुंचे, पर ठहरने नहीं दिया गया। जम्मू की ओर धकेल दिया गया। फिर जम्मू से भी लखनपुर के आगे तड़ीपार।

दिल्ली की दरियादिली की चर्चा सुनी। सभी विस्थापितों का पुनर्वास दिल्ली कर रही है। मुआवजा दे रही है। जमीन दे रही है। चल पड़े दिल्ली की ओर। जब विधाता ही रूठा हो तो भारत भाग्य विधाता क्यों सुनते। जवाहरकट की जेब पर इतरा रहा गुलाब कुटिलता से मुस्कराया और शेख अब्दुल्ला से मिलने की सलाह दी। जब बताया गया कि शेख ने ही हमें राज्य से बाहर धकेल दिया है तो आश्वासन मिला कि आपका इलाका जल्दी ही पाकिस्तान से खाली करा लिया जाएगा और आप अपने घरों में जा सकेंगे। बरस-दर-बरस बीतते गए और एक दिन सरकार ने फैसला

ले ही लिया। फैसला था कि जम्मू-कश्मीर के इन विस्थापितों का पुनर्वास नहीं होने देंगे। पुनर्वास हो गया तो उनके इलाके पर हमारा दावा कमजोर हो जाएगा।

जम्मू-कश्मीर बैंक की स्थापना महाराजा हरि सिंह ने की। मीरपुर, मुजफ्फराबाद, गिलगिट, बाल्तिस्तान, सभी जगह उसकी शाखाएं। सभी जगह स्थानीय लोगों के खाते, जिनमें उनकी खून-पसीने की कमाई का पैसा। इलाके पर कब्जा हो गया। जे.के. बैंक आज भी चल रहा है। नेताओं और अधिकारियों के लाडलों पर करोड़ों रुपए लुटाने की खबरें हर रोज आ रही हैं, लेकिन जिन लोगों का धन 1947 के पहले से इन खातों में जमा था, उन्हें आज तक वह पैसा नहीं मिल सका। विश्व बैंक के ऋण से मंगला बांध बनाया गया। मीरपुर शहर उसमें डूब गया। जिन लोगों की संपत्ति उसमें डूबी, उन सभी को विश्व बैंक ने मुआवजा दिया। पाक अधिक्रांत जम्मू-कश्मीर के जिन विस्थापितों की संपत्तियां इस बांध में डूबीं, उनके लिए भी मुआवजे का प्रावधान हुआ, पर सरकार फिर बीच में आ गई। उसने तर्क दोहराया कि अगर इन लोगों ने अपना मुआवजा ले लिया तो जमीन पर से दावा खत्म हो जाएगा। अगर दावा खत्म हो जाएगा तो हम उन्हें उनके घरों में वापस भेजने का वायदा कैसे पूरा कर सकेंगे। निष्कर्ष यह कि कोई भी विस्थापित अपना मुआवजा नहीं लेगा। हम भी किसी का पुनर्वास नहीं करेंगे। विस्थापन का दंश लिये त्रिशंकु की स्थिति में अधर में लटके सत्तर साल बीत गए।

कुछ लोगों का मानना है कि 1947-48 के विस्थापितों का कुछ नहीं हो सका, किंतु आतंकवाद के कारण 1990 में विस्थापित कश्मीरी हिंदू समाज के अधिकांश लोग आज सुस्थापित दिखाई देते हैं। यहां तक दलील देते हैं कि अगर वे कश्मीर में रहे होते तो शायद इतनी बेहतर स्थिति में नहीं होते। यह सच है। जो कंक्रीट के भवनों को जीवन की कसौटी मानते हैं, उनके लिए यही सच है, लेकिन अपने शोभन कक्ष में बैठकर कॉफी पीते हुए यह निष्कर्ष निकालने वालों ने कभी उस मां का मन टटोलने की कोशिश की है, जो गुड़गांव या हैदराबाद के अपने अपार्टमेंट में आज भी रात में जागकर बैठ जाती है और खिड़की के बाहर देखते हुए दूर कहीं पहाड़ी की चोटी पर बर्फ की चादर तलाशने की कोशिश करती है?

ऊपर वर्णित सभी समूहों के विस्थापितों ने अपनी जड़ों से उखड़ने के बाद जीवन चलाए रखने के लिए जहां संभव हुआ वहीं अपने आपको रोप दिया, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि विशेष वातावरण में जीने का अभ्यस्त पौधा कहीं उगेगा तो वैसे ही फल-फूल भी दे सकेगा। देवदार और रुद्राक्ष जैसे पर्वतीय वृक्ष किसी बिगड़ैल धनिक के गमले की शोभा तो बढ़ा सकते हैं, लेकिन वह उतने ही वैभव के साथ आकाश छुएंगे और बादलों को आमंत्रित करने में सक्षम होंगे, इसकी संभावना कम ही है।

विस्थापन से पहले लगभग सभी विस्थापित संयुक्त परिवारों में रहते थे। विस्थापन के बाद परिवारों का बिखराव शुरू हुआ और एकल परिवारों की अधिकता हो गई। नई पीढ़ी के बच्चों के लिए न तो दादी-नानी की कहानियां हैं और न ही पर्व-त्योहार। जो हैं, उनका स्वरूप बदल गया है। अब वह होली-दिवाली मनाता है और शिवरात्रि तथा बैसाखी अब कर्मकांड भर रह गए हैं। शरद ऋतु में पहले हिमपात के दिन मनाया जाने वाला 'नवशीन' दिल्ली या बेंगलुरु में कैसे मनाया जा सकता है?

विस्थापन के यह वर्ष प्रत्येक समाज को उसकी परंपराओं, प्रवृत्तियों और संबंधों से काटने में एक हद तक सफल रहे हैं। नई पीढ़ी अपनी भाषा भूल चुकी है, मुहावरे, कहावतें, किस्से पीछे छूट चुके हैं। परिवेश जिसमें पशु-पक्षी, जीव-जंतु, वृक्ष, पर्वत, हिम था, वह अब अदृश्य है। नई पीढ़ी के लिए उसकी कल्पना भी असंभव है। वे परंपरागत बर्तन, वह कहवा और नूनचाय, वह केसर की क्यारी अब केवल पुराने छायाचित्रों में ही मौजूद हैं।

विस्थापन के इन वर्षों में उस पीड़ा को अभिव्यक्त करता काफी कुछ लिखा गया है। कुछ रचनाएं तो कसौटी बन गई हैं, लेकिन एक समाज नई पीढ़ी में आकार ले रहा है, जो इन स्मृतियों से भी वंचित है। नई पीढ़ी कटी पतंग की तरह हवा में लहरा रही है, लेकिन उसकी नियति उसे अपनी जड़ों से शायद ही फिर से मिलने दे। समय है जब पीछे छूट गई इन स्मृतियों को सहेज लिया जाए ताकि सांस्कृतिक रूप से समृद्ध इस विस्थापित समाज की पीड़ा और जिजीविषा की यह अद्‌भुत गाथा भारतीय साहित्य में अपना स्थान पा सके।

□

जलावतनी का इतिवृत्त

सीमा संगसार

कश्मीरी पंडितों के निर्वासन के दंश को समझने में जो कृतियां सहायक हैं, उनमें क्षमा कौल का उपन्यास 'दर्दपुर' प्रमुख है। यह उपन्यास कश्मीरी पंडितों पर हमले और महिलाओं पर बर्बरतापूर्ण अत्याचार की महागाथा है। दरअसल यह दर्दपुर जंक्शन है, जहां सभी दर्द और दुःखों का संयोग है। यह स्त्रियों के दुःख-दर्द और उनके प्रेम, त्याग और समर्पण की कथा है। क्षमा कौल की बेबाकी उद्वेलित करती है तो उनकी कोमल भाषा हमारे दुःखों पर मरहम लगाती है, वहीं उनकी दार्शनिकता हमें कहीं गहरे ज्ञान लोक में उतारती है। इसे पढ़ते वक्त आप न केवल कश्मीर को जी रहे होते हैं, बल्कि आप उनकी पीड़ा को महसूस कर रहे होते हैं।

''हमारे ईश्वर बंदी बना लिये गए हैं? क्या यह सच है? क्या यह भी सच हो सकता है? क्या वास्तव में बिलकिस का ईश्वर, ईश्वर है? और मेरा ईश्वर? सुधा के इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं है हमारे पास, जब उन्हें अपने ही देश में अपनी ही मातृभूमि, जन्मस्थली से रातों-रात खदेड़ कर बाहर कर दिया गया, आखिर उनका जुर्म क्या था? बस यही कि वे एक हिंदू थे, कश्मीरी पंडित भट्ट और इस्लाम की नजर में काफिर थे।

क्यों स्त्रियां किसी मजहब की जनसंख्या को बढ़ाने के लिए उन आततायियों के साथ रहने पर मजबूर की जा रही थीं? क्या यही हमारा संविधान है—स्वतंत्रता, समानता और धर्मनिरपेक्षता की बात कहने वाला? कश्मीरी पंडितों ने उन कट्टरपंथियों के जेहाद का सामना किया और जीवित रहने की कीमत पर नाली के बजबजाते कीड़ों जैसी जिंदगी चुनी।

इस उपन्यास में सुमोना नाम की एक किरदार भी है, जो आजकल की आधुनिक महिलाओं की तरह समाज सेवा के साथ-साथ सेकुलरिज्म फैशन की तरह ओढ़ती-बिछाती और पहनती है। उन्हें वही कहना और सुनना है जिसके कहने पर उनकी झोलियां भरती रहती हैं। हमारे देश में कुकुरमुत्तों की तरह उगे हुए ऐसे कई एन.जी.ओ. और संगठन हैं जिनका एकमात्र लक्ष्य धन कमाना है। ऐसे लोगों की संवेदनाएं मृतप्राय होती हैं, क्योंकि इन्हें संवेदनशीलता को भुनाना होता है। कश्मीर सदा से ही ऐसे लोगों के लिए मुफीद विषय रहा है, यहां आकर वे कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर गोश्तावा पार्टी करते हैं, घाटियों में सैर-सपाटा करते हैं और पत्रिकाओं और अखबारों में अपनी तस्वीरें खिंचवाकर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझते हैं। सुमोना एक ऐसी ही किरदार है, जिसे सेक्युलर भी दिखना है और कश्मीर की समस्या पर बात

भी करनी है। 'जब एक स्त्री पुरुष से मार खाती है तो वह स्त्री होती है, जब उसका समुदाय ही दूसरे समुदाय से मार खाता है तो वह समुदाय हो जाती है पूरी-पूरी। उसे आज तक कभी तय करना नहीं आया साफ-साफ कि वस्तुतः होना क्या चाहिए?'

'दर्दपुर' में स्त्री-विमर्श का भी एक अपना विस्तृत फ्रेम बना हुआ है, जहां दर्ज हैं अनगिनत स्त्रियों के कई पीढ़ियों के किस्से, जहां स्त्रियों के हिस्से आए दुःखों को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि यह एक ग्लोबल दुःख बन जाता है। इसे आप कश्मीरी पंडितों के दुःख तक ही सीमित नहीं रख सकते बल्कि इसकी जद में दुनिया की वे तमाम स्त्रियां आ जाती हैं जिन्हें समय-समय पर दबाया, कुचला और जलाया गया है। लड़की से नहीं पूछा जाता है कि वह किसकी है? या क्या उसे जलाया जाना चाहिए या नहीं या क्या वह जलाया जाना पसंद करेगी या नहीं? उसे ज्यों ही मौका मिले, जलाया जाता है। इस धार्मिक सनक को आप क्या कहेंगे, सेकुलरिज्म या कुछ और जो जबरन लादा गया, धर्मांतरण कराए गए, उन्हें लूटा गया, खसोटा गया, जान से मार दिया गया। इन सारे जिहादों और लड़ाइयों में स्त्रियां ही शहीद हुईं, चाहे वे किसी भी कौम की क्यों न हों।

19 जनवरी, 1990 के जिनोसाइड और जलावतनी के दुष्प्रभावों को 'किसी भी समय', 'काल वृक्ष की छाया में', 'मुझसे छीन ली गई मेरी नदी', 'जवाहर टनल' और 'जलता पुल' जैसे कविता संग्रहों में भी देखा जा सकता है। इन कविता संग्रहों के रचयिता हैं—अग्निशेखर। वे निर्वासित कश्मीरी पंडित हैं। उनकी कविताओं में जलावतनी की वह आंच है, जो बुझाए नहीं बुझती। वह आग किसने लगाई, इससे अधिक मायने यह रखता है कि इस आग ने हमारे जमीर को कितना झुलसाया है और किन-किन अंगों को लहूलुहान किया है।

एक कवि अपनी कविता के मार्फत जीता है, उसे वह अपनी भाषा, सभ्यता, संस्कृति, लोक और उससे जुड़ी छोटी-से-छोटी चीजों को अपनी कविता में समेटता है और वही उसकी पहचान होती है। अग्निशेखर ने कश्मीर को जिया है और अपनी ही मातृभूमि से जिस कदर उन्हें दर-ब-दर किया गया, यह आग, यह टीस मरते दम तक खत्म नहीं होगी और यही वजह है कि उनकी कविताओं में यह दर्द गर्म लावे की तरह दहकता रहता है। अगर आप में उस आंच को सहने की शक्ति हो तभी आप उसे पढ़ सकते हैं वरना बहुत संभव है कि आप अपने हाथ जला बैठेंगे। जिनोसाइड और जलावतनी अग्निशेखर की कविताओं में बीज शब्द की तरह हैं।

जिनोसाइड का मतलब होता है किसी एक खास जीन का सफाया कर देना जैसे कि अल्पसंख्यक कश्मीरी पंडितों की पूरी वंशावली को जड़ से खत्म कर देने का षड्यंत्र रचा गया और हमारी धर्मनिरपेक्ष भारत माता ने चुपचाप इस नग्नता को देखना स्वीकार किया।

कश्मीरी बहू-बेटियों को कश्मीर में ही छोड़ देने का और उन पुरुषों को नपुंसक बनाने का रातों-रात फरमान जारी कर दिया गया।

जिस धर्मनिरपेक्ष देश में सभी धर्मों के साथ सद्भाव रखने की शिक्षा दी जाती है, आखिर इन भोले-भाले शिक्षित और सभ्य हिंदू परिवारों का क्या दोष था कि उन्हें देश निकाला की तर्ज पर अपनी मातृभूमि से नृशंसतापूर्वक खदेड़ दिया गया?

दरअसल यह पूरी साजिश जिनोसाइड की थी जिसके अंतर्गत इनकी पूरी जाति को समूल नष्ट करना ही उनकी आजादी मिशन का एक महत्त्वपूर्ण एजेंडा था।

दूसरा शब्द है जलावतनी, जिसका अर्थ है कि आपको अपने ही वतन से बेदखल कर देना। इनके घरों, दुकानों और जमीनों में आग लगा दो ताकि वे फिर कभी इधर का रुख न करें।

आज भी कश्मीरी पंडित महरूम हैं अपनी ही जमीन पर जाने के लिए; वे सुरक्षा-बलों के साथ या फिर पहचान छुपाकर एक पर्यटक के तौर पर जा सकते हैं, लेकिन अपनी पहचान के साथ उन जगहों पर इनकी एंट्री सदा के लिए बंद हो चुकी है। क्या आप अपनी मातृभूमि से जिस मिट्टी में आप लोट-लोटकर बड़े हुए हों, वहां से इस तरह अलग रह सकते हैं? क्या आपको अंदाजा है कि इन तीस वर्षों से इन लोगों ने अपने ही देश में किस तरह नाली के बजबजाते कीड़ों की तरह शरणार्थी शिविरों में अपना जीवन बिताया होगा। पेशे से डॉक्टर, वकील और अखरोट और सेब के बड़े-बड़े व्यापारी किस कदर भूख से बिलबिलाए होंगे। दरअसल यही भूख से बिलबिलाना, दर-दर भटकना और अपनी समृद्ध संस्कृति को अपने जीवन में जोड़े रखना ही अग्निशेखर के लिए कविता है।

अपने आप को कश्मीर का अभिन्न हिस्सा मानने वाले यह कभी नहीं मानना चाहते हैं कि वे कश्मीरी नहीं रहे। कश्मीर की दूध की तरह सफेद बर्फ अब भले काली हो गई हो, लेकिन अग्निशेखर की कविता में अभी भी वह जीवंत है—

यह मैंने बारूदी दिनों में
चोरी से अपनी मातृभूमि जाकर
एक दिन जाना
अस्थियां भी लड़ती हैं युद्ध...

एक ऐसा युद्ध जिसमें कवि लड़ता है अपने ही पूर्वजों की अस्थियों के संग, इसमें न कोई प्रतिशोध है और न ही बदले की कोई भावना।

कवि का आहत हृदय वितस्ता नदी में विसर्जित उन अस्थियों से मुठभेड़ करता नजर आता है जहां उनकी सारी आकांक्षाएं स्मृतियों के रूप में विलोपित हो चुकी हैं। 'जलता हुआ पुल' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

एक पुल के जलने से
जलती हैं कितनी शताब्दियां
वहां देखा एक कवि ने
सहमे हुए घर की एक खिड़की से

घर की खिड़की के साथ-साथ वितस्ता नदी पर तैरती हुई वह नाव भी सहमी है जिसके पुल को जलाया जा रहा है, सहमा हुआ यह कवि उन खिड़कियों से देख रहा है, सहमती हुई घाटियों को—

पुल जल रहा था
अपने इतिहास के साथ
जिसके साथ चिढ़ थी उन्हें
जिसे बदलना चाह रहे थे वे...

कवि की पीड़ा नाहक ही नहीं उमड़ रही है। उन अलगाववादियों ने न केवल इन्हें कश्मीर से खदेड़ा बल्कि उनकी पहचान और उनकी संस्कृतियों को भी नेस्त-ओ-नाबूद कर दिया, जगहों

के नाम बदले गए। उनका पूरी तरह से इस्लामीकरण किया गया ताकि भूल से भी कोई हिंदू यह न कह सके कि कभी यह भी उनका हिस्सा था।

तीस वर्षों में कुछ भी नहीं बदला वह मंजर
आज भी नाचता होगा जिसने इसे भोगा है...
जघन्य है
जघन्य है
जघन्य है
हत्यारों की घिनौनी राजनीति
और
खबरीली चैनलों पर
स्पर्धा बड़बोलेपन की...

'मां का दूध' कविता में कवि ने यह राज खोला है कि उसकी मां के दूध का कोई मजहब नहीं होता। उनकी मां के दूध को जुड़वां मुस्लिम बच्चियों ने पिया हो या फिर उन्होंने कभी किसी मुस्लिम महिला का दूध पिया हो, उनका दूध उतना ही पावन है।

आज भी कश्मीरी हिंदुओं या मुसलमानों के विवाह उत्सवों या अन्य अवसरों पर आयोजित संगीत समारोह में ललद्यद के वाख मंगलाचरण की तरह गाए जाते हैं। ललद्यद के वाख साहित्य ने काल का अतिक्रमण कर दिया है। यह एक आसाधारण घटना है। इसीलिए वह हर बदलते युग में अपनी सामर्थ्य और अपनी कविता से, जिसे हम वाख (संस्कृत वाक्) कहते हैं, हमारे आगे नए अर्थ भी खोलती है और प्रासंगिक भी बनी रहती है। 'जलता पुल' कविता संग्रह की एक कविता 'ओ ललद्यद' में कवि कहता है–

आज फिर
एक बार पिला दे अपना दूध
वे पी रहे हैं खून
और हम
खून के आंसू
देखो सरक रही है हमारे ऊपर से
काले गिद्धों की परछाइयां
तैर रही हैं ये छायाएं
आंगन-आंगन
गली-चौबारों, छतों
सड़कों, स्कूलों
खेतों, जंगलों
तीर्थों, उत्सवों के ऊपर से
और कुछ पर्यावरणविदों को चिंता है
कि संसार में कम होते जा रहे गिद्ध

कहते हैं कि बचपन में नुंद ऋषि को ललद्यद या माता लल्लेश्वरी ने स्तनपान कराया था, अतः उसी भाव विह्वलता में कवि अग्निशेखर ने उन्हें तब-तब याद किया जब-जब कश्मीर मे आई विपद घटनाएं घटीं। यहां तक कि अपनी 'जवाहर टनल' कविता में वे लिखते हैं कि जब वे निर्वासित होकर बस से उस काली अंधेरी रात में 'जवाहर टनल' सुरंग से गुजर रहे थे तो उनके हाथ में ललद्यद की कविता थी। यह एक साधारण घटना नहीं है। जब एक कवि अपने दुःखों में, अपने जीवन की तमाम उठापटक में अपने पूर्वज कवि का साथ नहीं छोड़ता। होना तो यह चाहिए था कि ऐसे अंधेरे समय में अपनी जमा-पूंजी और संपत्तियों का लेखा-जोखा साथ ले जाते, लेकिन एक जन कवि ही अपने साथ सिर्फ और सिर्फ कविताएं ढोते हैं।

'मुझसे छीन ली गई नदी में' अग्निशेखर ललद्यद के लिए लिखते हैं–

तुम्हारे पास तो भी कच्चा धागा है
जिससे तुम खींच रही हो समुद्र में नाव
मेरे पास कुछ भी तो नहीं है
गरमी के इस कहर में
नंगे तलुवों से मापते हुए अंतहीन रेत
सूरज को रोकने की कोशिश है
माथे पर धरा मेरे बेखून हाथ
तुम पार तरने के लिए
कर रही हो अपने ईश्वर से मनुहार
मैं किसे पुकारूं
मेरे देवी-देवता भी मेरे साथ हैं जलावतन
तुम्हें तो विश्वास है
कि उस पार है तुम्हारा घर
जिसके लिए तुम हो मेरी तरह बेचैन
पर मेरे घर का
शेष है
अस्थि विसर्जन...

ललद्यद कश्मीर की लोक-कथाओं और किंवदंतियों में इस तरह रची-बसी हुई हैं कि कश्मीर की संस्कृति उनके बिना अधूरी है।

ऐसी ही ललद्यद के जीवन पर आधारित दंतकथाओं का उल्लेख ललद्यद के नाम कविता में करते हैं–

तंदूर में तुम्हारे कूदने
और उसमें से निकलने के बीच की वेला में
शताब्दियों के बाद
आज फिर तप रही है तुम्हारी संतान
विकल्प की आग में छलांग है हमारा निर्वासन

और उसके फुफकारते फनों पर
लास्य नृत्य करते हुए
तुम्हारा प्रादुर्भाव है हमारा स्वप्न...

अग्निशेखर की कविताओं में सिर्फ ललद्यद ही नहीं, अन्यानेक सांस्कृतिक विरासतों को समेटे हुए व्यक्तित्वों का परिचय मिलता है, जिसमें से एक अभिनवगुप्त भी हैं–

हे मेरे पूर्वज,
तुम पर अनायास लिखने
या बोलने के संकट का यह पल
किसी पर्वत-सा खड़ा
सामने मेरे दुर्गम
इन शब्दों में
हे लोकोत्तर अनुभव-पुंज
तुम्हें कैसे रचूं मैं...

आचार्य अभिनवगुप्त को अपनी कविता में पुकारना और उनसे संवाद करना एक कवि की विलक्षण प्रवृत्ति है–

तुम जो बजाते हो नाद वीणा पर
वितस्ता किनारे राग भैरवी
हजारों-हजार सिद्धों
और योगिनियों की तरह
झूमती हैं हवाएं
स्वामी अमरनाथ की आदिम गुफा में
गाने लगते हैं दो कबूतर शिव-सूत्र
तुम्हारी धुन पर।

अग्निशेखर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जहां एक ओर अतीत की अतल गहराइयों में उतरकर सृजन करते हैं, वहीं आने वाली पीढ़ियों के प्रति भी उतने ही सजग दिखते हैं–

विस्थापित शिविरों में सो रहे बच्चों की खुशियां
अनिश्चय के गर्भ में हैं
बच्चों के रंग-बिरंगे कपड़े
पीछे छूट चुके हैं संदूकचियों में
जो हमारे चुराए गए घरों में पड़ी हैं...

□

कश्मीर केंद्रित उपन्यासों में निर्वासन की त्रासदी

नेहा चतुर्वेदी

महाराज कृष्ण भरत ने लिखा है ''मुझसे मिलने के लिए/किसी को खटखटाना नहीं होगा दरवाजा/केवल फटेहाल सरकारी तंबू का पर्दा सरकाना होगा।''[1] ये दो पंक्तियां एक पूरे बसे-बसाए समुदाय के निर्वासन की त्रासदी, उसकी स्थिति और उसकी उस बेबसी को बयां करती हैं जहां अपना घर होते हुए भी उसका पता 'सरकारी फटेहाल तंबू' है। जब कोई जबरन अपनी भूमि से निर्वासित होता है तो उसके पीछे केवल ईंट-सीमेंट के ढांचे, कुछ सामान, कुछ जमीन ही नहीं छूटती बल्कि बहुत कुछ छूट जाता है। वह सब कुछ जो दिखाई नहीं देता। जो दुबारा चाहकर भी कहीं नहीं मिलता। उसकी पहचान, सम्मान, अस्मिता सब कुछ छिन जाता है और छीने जाने की यह प्रक्रिया बड़ी क्रूर है और यही क्रूरता निर्वासित कश्मीरियों का यथार्थ है।

बाहर से आए कुछ दहशतगर्दों ने पैसों और आतंक के बल पर कश्मीर की साझी संस्कृति में दरार डाल दी, उनकी कश्मीरियत को घायल कर दिया। एक को कश्मीर के बाहर निर्वासित कर दिया तो दूसरे को कश्मीर में आतंक, अविश्वास और गरीबी की बेड़ियों में कैद कर दिया। तकलीफ दोनों जगह है, यह दुःख साझा है। मनीषा कुलश्रेष्ठ के उपन्यास 'शिगाफ', क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर', मीरा कांत के उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' और चंद्रकांता के उपन्यास 'कथा सतीसर' में कश्मीर से निर्वासित उन कश्मीरियों की पीड़ा है जिन्हें सिर्फ थोड़ी-सी सहानुभूति के साथ नर्क की यातना से भरी कैंपों की जिंदगी मिली है, एक लंबा इंतजार मिला है वापस अपने घर लौट पाने का और आश्वासन मिला है सबकुछ ठीक हो जाने का।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का उपन्यास 'शिगाफ' अपने सपनों को टूटते हुए देखते, निर्वासित कहलाते, कश्मीर में रहते हुए भी निर्वासन भोगते लोगों की कथा है। इस उपन्यास में समस्या नहीं बल्कि कई सारी जिंदगियां हैं—वे जिंदगियां जो आतंक और निर्वासन की भेंट चढ़ गई हैं। इस उपन्यास में हर एक कहानी के साथ एक जिंदगी खुलती है और साथ ही खुलता जाता है उसे जीनेवालों का दर्द, वह दर्द जो उसे कभी आतंक की कैद से मिला है तो कभी निर्वासन की त्रासदी से।

'शिगाफ' का अर्थ होता है—दरार। वह दरार जिसे वर्षों से साथ रह रहे, साझी संस्कृतियों

में जी रहे कश्मीरियों के बीच डालकर उन्हें अलग कर दिया गया। इसी उपन्यास से, ''विस्थापन का दर्द महज एक सांस्कृतिक, सामाजिक विरासत से कट जाने का दर्द नहीं है बल्कि अपनी खुली जड़ें लिये भटकने और कहीं जम न पाने की भीषण विवशता है, जिसे अपने निर्वासन के दौरान सैंसबेस्टीयन (स्पेन) में रह रही अमिता लगातार अपने 'ब्लॉग' में लिखती रही है।''[2] कश्मीर से निर्वासित अमिता स्पेन में नौकरी करती है, लेकिन कश्मीर उसकी स्मृतियों से विस्थापित नहीं हो पाया है। अपनी भाषा, अपनी जमीन के प्रति गहरा लगाव वह निर्वासन के इतने वर्षों बाद भी महसूस करती है, ''मैं स्पेनिश बोलते हुए जीभ सही तरह से नहीं घुमाती हूं। मेरा उच्चारण मेरे छूटे हुए देश की याद दिलाता है।...गैर-भाषियों के बीच, अपनी भाषा का मोह कितना सालता है...।''[3]

कश्मीर से निर्वासित होने के बाद अमिता की स्मृतियों में उसके बचपन वाला घर ही था—कश्मीर वाला घर। वह सपने में भी अपने उसी घर को देखती थी, क्योंकि उसे अपना नया घर कभी घर जैसा लगा ही नहीं। उसकी स्मृतियों ने घर शब्द के रूप में कश्मीर वाले घर को ही अपने भीतर सहेजा था, ''दिल्ली का वह दो कमरे का घर। पिता की छड़ी से टंगा उनका अकेला दुःख, मां की तस्वीर, छोटे भाई के नाटकों की किताबें और छाऊ के मुखौटे वाला घर याद करने से 'घर' को याद करनेवाली बात नहीं आती। वह भी एक शरणार्थी शिविर ही लगता है। घर जो मुझे याद आ रहा था, बचपन वाला था...जो सच में एक घर था, जहां मेरे सुकून का एक चिथड़ा पीछे चेरी के पेड़ पर टंगा है।''[4]

अमिता को अपने निर्वासित होने की घटना बार-बार याद आती है। उसके दादाजी कश्मीर के खराब हो गए माहौल में भी यही कहते थे कि उन्होंने किसी का क्या बिगाड़ा है। उन्होंने तो हमेशा लोगों की निःस्वार्थ मदद की है। कोई उन्हें क्यों मारेगा। उनके लगभग सारे रिश्तेदार कश्मीर छोड़कर जा चुके थे और जो बचे थे, वह भी जाने की तैयारी कर रहे थे। सबके बहुत समझाने पर भी उसके दादाजी का यह मानना था कि ''मैं डॉक्टर हूं...मुझे नहीं मारेंगे। अभी तो मेरी इन्हें जरूरत है। हम कहीं नहीं जाएंगे। मगर जब एक दिन दादा भी...तो पापा फिर रुके नहीं...। शोक से लगभग विक्षिप्त दादी के साथ जम्मू चले आए।''[5]

कई दिनों तक भटकने के बाद बड़ी मुश्किल से अमिता और उसके परिवार को किराए का घर मिलता है। पर मकान मालिक के अमिता के साथ किए गए दुर्व्यवहार के कारण वे उस घर को छोड़ शरणार्थी कैंप की नारकीय जिंदगी में जाने को विवश हो जाते हैं। कैंप में मिलने वाले जीवन को साझा करते हुए अमिता कहती हैं, ''जलते टिन की छत और नदी के किनारे की जलती बालू की जमीन। बक्से से लगाकर बनाई गई आड़ जहां महीने भर मैं लू में भटकती और अपना 'हब्बाकदल' ढूंढ़ती, दादी मर गई और अगले तीन महीनों में चुपचाप दुःख झेलती हुई मां भी मर गई।''[6]

अपने उपन्यास में निरंजन रैणा के माध्यम से लेखिका ने निर्वासित कश्मीरियों के मन की उस उम्मीद को दिखाया है जिसका टूटना ही उसकी नियति थी, लेकिन उसे बनाए रखना उनके जीवन की एकमात्र आस थी। निरंजन अपनी खीझ, अपना क्रोध, अपनी बेबसी प्रकट करते हुए अमिता के 'ब्लॉग' की प्रतिक्रिया में लिखता है, ''वह बदकिस्मत दिन, जब हम चूल्हे गरम छोड़कर,

थोड़ा-बहुत सामान बांधकर, घर को ताला लगाकर इस उम्मीद के साथ जा रहे थे कि एक दिन यह हिंसक तूफान थमेगा और हम इस ताले की चाभियां संभालकर रखेंगे कि फिर लौटकर आना, जो होगा, लेकिन मैंने देखा, झेलम आंसुओं के साथ बह रही थी।''[7] कैंपों में रह रहे निरंजन जैसे लोगों का सरकारी नलों से पानी लेना, सरकारी राशन लेना, थोड़ी-बहुत मिलनेवाली सरकारी सुविधाओं का उपयोग करना बहुतों को अखरता था। शरणार्थी बनने के बाद से ही मिलने वाले ताने, अपमान और उपेक्षा इनके जीवन का हिस्सा थे और वे धीरे-धीरे उसके आदी भी हो रहे थे। निरंजन रैणा कहता है कि जब सड़क किनारे लगे नल पर मैं नहा रहा था तो वहां के एक दुकानदार ने उसपर व्यंग्य करते हुए कहा कि, ''इन स्साले कश्मीरियों ने शहर का सारा पानी खर्च कर डाला है। पटोली तालाब का, पूरा-का-पूरा पानी पी गए। अब ये सूख गया है। चाचा से मैंने कहा कि मेरा मन कर रहा है कि इस दुकानदार को कश्मीर ले जाकर झेलम में इसका मुंह घुसाकर कहूं कि ले ले जितना पानी तुझे अपने तालाब के लिए चाहिए।''[8]

कश्मीर से निर्वासन केवल कश्मीरी पंडितों का ही नहीं हुआ बल्कि वहां के मुसलमानों ने भी इसे भोगा है। मुजीब हसनैन कश्मीरी मुसलमान है। फिलहाल लंदन में रहता है। अमिता के 'ब्लॉग' पर अपनी प्रतिक्रिया देते हुए वह लिखता है, ''मैं दो साल पहले कश्मीर लौटा था, मगर वहां जाकर ऐसा लगा कि मैं एक भगोड़ा हूं। लोगों ने, मिलिटरी, मिलिटेंस सभी ने मुझे शक से देखा। मैं वापस यहां आया और यहीं बस गया। अब मैं कश्मीर के बारे में पढ़ने से बचता हूं। मैं अपनी पहचान से बचता हूं। वे सारी चीजें जिनसे मैं बना हूं, उन्हें मैं नकारता हूं। मगर मैं उस दुःख का क्या करूं जो मैं अपने साथ ले आया हूं?''[9] कश्मीर लौट के जाने पर मुजीब भी खुद को अमिता की तरह ही निर्वासित महसूस करता है। उसे लगता है, अब कश्मीर के लिए वह एक बाहरी व्यक्ति है—एकदम पराया।

वहीं नसीम एक अलग तरह का निर्वासन भोगती है। नसीम को किसी ने कश्मीर से जबरन विस्थापित नहीं किया बल्कि उसे परिस्थितिवश कश्मीर छोड़ना पड़ता है, क्योंकि उसे लगता है, एक अकेली स्त्री, जो जीवन में अपने दम पर कुछ करना चाहती है, उसके लिए कश्मीर रहने लायक नहीं है। नसीम के पति से तलाक होने के बाद उसके माता-पिता भी उसका साथ नहीं देते। वह अपने बेटे के लिए एक सुरक्षित भविष्य चाहती है। जो कश्मीर के आतंक, भय और सेना के पहरे के बीच मिलना संभव नहीं। वह कहती है ''मेरा क्या है वहां...वहां काम भी कुछ नहीं है। आए दिन की जान की आफत...नौकरी नहीं मिलती, उस पर पहरेदारी अलग से।''[10] असुरक्षा और बंदिशों से भरा जीवन, बेरोजगारी, मौत, दहशत यह सब नसीम के निर्वासन की वजहें हैं। निर्वासन के कारण अलग हो सकते हैं, लेकिन पीड़ा तो इन सभी की साझी है।

नसीम से मिलने के बाद अपने 'ब्लॉग' में अमिता लिखती हैं, ''सोचती हूं, बिना जलावतन हुए भी यह कैसी बेदर्द जलावतनी थी नसीम की। और जो वहीं रह रही हैं...उनकी हर रोज जिस्म से रूह की जलावतनी। कौन ज्यादा दुःख में है—हम, जो वहां से भगा दी गईं...मार दी गईं...जला दी गईं...या वो जो वहां लगातार भाग रही हैं अपने वर्तमान से, रोज मर रही हैं...? पता नहीं!''[11]

अमिता उन कारणों को भी बताती है जिन्होंने उसे और उसके जैसे कितनों को बेघर कर

दिया। उसके बचपन की स्मृतियों में एक ऐसी भयानक याद अंकित कर दी जिसे वह कभी नहीं भूल सकती। अपने 'ब्लॉग' में वह लिखती है,

> ''मैं आज निर्वासित हूं...क्योंकि तुमने चुना था निहत्थों को मारना।
> मैं आज निर्वासित हूं...मैंने चुना सम्मान से जीना...हथियार न उठाना।
> मैं आज निर्वासित हूं...क्योंकि पूरा संसार चुप रहा...महज कुछ लोग ही तो मर रहे थे।
> मैं आज निर्वासित हूं...क्योंकि मेरा भारतीय होने में विश्वास था।''[12]

अमिता जब दुबारा कश्मीर जाती है तो वहां स्वयं को एक 'टूरिस्ट' महसूस करती है। उसे लगता है, उसका वहां जाना अपने स्कूल, अपने घर, अपने चिनार के पेड़ और अपने मंदिरों को देखना, उन्हें छूना और लौट आना ठीक वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति कहीं घूमने जाता है और वहां की इमारतों, बाजारों और स्मारकों को देख फिर लौट जाता है अपने घर, क्योंकि उस जगह पर, उन वस्तुओं पर उसका कोई अधिकार नहीं होता, वे उसके नहीं होते, लेकिन अमिता जैसे निर्वासित लौटकर भी कहां जाए, क्या उन घरों में जिसे उसके अंतर्मन ने अपने घर के रूप में कभी स्वीकारा ही नहीं या उन घरों में जो उनका होकर भी उनका नहीं है। अमिता अपने 'ब्लॉग' में लिखती है, ''हां, मैंने अपने वजूद को घटाकर पर्यटक बना दिया है। अब मैं वहां की निवासी नहीं।''[13]

क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' की कथा कश्मीर से निर्वासित हुई सुधा के एक एनजीओ के साथ दुबारा कश्मीर जाने के साथ चलती है। कश्मीर से निर्वासित सुधा जब वापस कश्मीर जाती है तो उसके भीतर दबा हुआ क्रोध, सब कुछ खोने का दुःख, अपने घर के प्रति उसका मोह बार-बार बाहर आने की कोशिश करता है, उसे कचोटता है। कश्मीर जाने पर सुधा होटल में ठहरती है जबकि वहां उसके पिता के दो-दो घर हैं, उसके पति का घर है, उसके रिश्तेदारों का घर है, लेकिन अब वे घर केवल कहने को ही उसके हैं, वहां रहने का अधिकार उससे छीन लिया गया है। होटल में रहना उसके पुराने जख्मों को कुरेदता है। वह सोचती है कि,''वह गेस्ट हाउस क्यों जा रही है, घर क्यों नहीं जा रही है? और खुद को याद दिला रही थी कि क्या यह सच है कि इस घटना को हुए अरसा होने को आ रहा है।''[14] अपने उस घर, जहां उसकी बचपन की यादें हैं, वहां देखे गए उसके सपने हैं, कई सारी स्मृतियां हैं, इतने पास जाकर भी वह वहां नहीं रह सकती। केवल उस घर को दूर से देख सकती है। इस पीड़ा को सहने के लिए वह और उस जैसे कई और निर्वासित अभिशप्त हैं। होटल के कमरे में बैठे-बैठे सुधा सोचती है, ''कितना पास है वह घर जहां से उसे उस रात निकाला गया था। वह आरामगाह...वह घर जहां उसने हमेशा मस्ती की, मां की छांव देखी, पिता का लाड़ पाया। वे कमरे, वे दीवारें, वह दहलीज, वे नल, वे बरामदे कितने पास हैं। पर कहां हैं। उसे लगा सब निर्जीव वस्तुओं की आत्माएं उग आई हैं। प्राण फूंक गए हैं उनमें, ताकि वे भी तड़पें। दोनों में विरह है। वह वहां नहीं जा सकती। वे इसके पास नहीं आ सकते।''[15]

होटल के कमरे में जब वह सहायक नूर मोहम्मद को बुखारी जलाने को कहती है और उससे पूछती है कि पंडितों के सेब के पेड़ों का क्या हुआ तो वह बताता है कि उनके कई सारे पेड़

जला दिए गए और सुधा को ''लगने लगा कि यह वही पंडितों के बागों की लकड़ियां हैं...सेबों के पेड़ों की कीमती टहनियां और तने जिन्हें नूरा अब दियासिलाई दिखाएगा...।''[16] बुखारी में केवल लकड़ियां ही नहीं जलतीं बल्कि सुधा की स्मृतियां भी जलती हैं। आग की गर्माहट उसके मन को पिघला देती है और उसे स्मृतियों के उन गलियारों में ले जाती है जहां से उसे निकाल दिया गया था और वहां लौटना अब उसके लिए शायद संभव नहीं है।

सुधा जब एनजीओ के काम से बाहर जाती है तब रास्ते में उसे अपने ताऊ जी का घर दिखाई देता है, ''दिन में उसने ताऊ के घर को देखा था। वीरान। भांय-भांय कर रहा था। मानो पुकार उठा हो, 'दिद्दा ओ दिद्दा...मेरी लाडली...ऐसे कन्नी काटकर मत जा...आ मुझे मिल...मुझे छू...मुझे ले चल...वहां जहां हो तुम सब'।''[17] लेकिन सुधा के लिए यह संभव कहां था। इस घर की नियति थी इसी तरह वीरान रहना और इसमें रहनेवालों की नियति थी दर-दर की ठोकरें खाना। अपना कहने के बावजूद सुधा के लिए वह घर अपना कहां था। उस घर से उसने या उसके परिवारवालों ने अपना अधिकार तभी खो दिया था जब वे उसे छोड़कर चले गए थे, भगा दिए गए थे।

सुधा और उसके जैसे निर्वासित हुए कई कश्मीरी पंडित कश्मीर से निकलते समय केवल कुछ यादों को ही अपने भीतर समेटकर ले जा पाए थे। अवसर ही कहां था कि सारा सामान साथ ले जाते। अपना सब कुछ छोड़कर जाने वाले कश्मीरी पंडितों को इतना समय ही नहीं मिला था कि जान और आबरू के अलावा कुछ बचा पाते। सुधा दीप्ति से कहती है, ''दीप्ति, सिर्फ हम जिन्होंने धर्मांधता की अमानवीयता के अंगारों पर पैर रखकर अपने को जिंदा-साबुत निकाल दिया। ईश्वर के दिए प्राणों को बचाकर ईश्वर को कृतकृत्य किया...दीप्ति, हम कश्मीरी भट्ट।''[18] और यदि अवसर मिल भी जाता तो क्या-क्या ले जा पाते? कश्मीर के पहाड़, वितस्ता का अथाह जल, चिनार के पेड़, बगीचे, खेत इन सब पर भी तो उनका अधिकार था, लेकिन इन्हें वे केवल अपने दिल, अपनी स्मृतियों और वापस आने की अपनी उम्मीद में ही कैद करके ले जा सकते थे। वह निर्वासित कश्मीरी वापस लौट आने की आस में वहां अपने पूर्वजों की धरोहर छोड़कर निकले थे, लेकिन लौट पाना कहां संभव हो पाया? और जो 'टूरिस्ट' बनकर कभी लौटकर भी गए, उनके लिए सबकुछ पहले जैसा कहां रह गया था।

सुधा अपनी सहेली गुरप्रीत के साथ अपना घर देखने जाती है। गाड़ी जब उसके घर के नजदीक पहुंचती है तो वह कहती है, ''हम घर के बहुत नजदीक पहुंच गए हैं गुरप्रीत! गुरप्रीत यहां से मेरा दूल्हा आया था। और यहां से मैं उसके साथ निकली थी...और यहीं से मैं सदा के लिए बच्चों को लेकर चली गई थी। जिंदगी को बचाने के वास्ते। आत्मा को यहां फैलाकर...आसमान की तरह...जमीन की तरफ फैलकर...यह एक बहुत लंबी दर्दनाक दास्तान है।''[19] जब हम अपनी किसी प्रिय वस्तु से लंबे समय तक दूर रहते हैं और लौटकर जब उसके पास जाते हैं तो उसे हम उसी रूप में देखना चाहते हैं, जैसा हम उसे छोड़कर गए थे, लेकिन कश्मीर लौटने पर सुधा को सब कुछ वैसा कहां मिल पाया था जैसा वह छोड़कर गई थी। वर्षों से बंद पड़े घर या तो वीरान खंडहर हो गए थे या उसमें रहने वालों ने उन्हें अपना बनाकर अपनी तरफ से सजाया-संवारा था। अब तो बस उनकी पुरानी स्मृतियां, कुछ धुंधली छवि ही बची थी सुधा और उस जैसे कई कश्मीरी पंडितों के मन में।

मीरा कांत का उपन्यास 'एक कोई था कहीं नहीं-सा' कश्मीरी जीवन और समाज को समझने का एक जीवंत माध्यम है। इस उपन्यास की पात्र शबरी के माध्यम से लेखिका ने निर्वासन की उस पीड़ा को दिखाया है जिससे बने जख्म कभी नहीं भरते। ''यह उपन्यास मानव संबंधों की एक उलझी पहेली है...यहां अपने ही देश में लोग डायस्पोरा का जीवन जी रहे हैं''[20] शबरी कश्मीर से अपना घर छोड़कर नहीं जाना चाहती, क्योंकि उसे लगता है, यहां उसने एक ही जन्म में कई जीवन जिये हैं। इस घर में उसके माता-पिता की मृत्यु हुई, इसी घर से उसकी डोली उठी और पति की मृत्यु के बाद वह इसी घर में लौटकर आई। इसी घर में उसने अपने पिता समान दो बड़े भाइयों और अपनी भाभी को खोया। ये सारी स्मृतियां, उसके पूर्वजों का स्नेह और आशीर्वाद इस घर में बसा है। उसके गृहदेवता इस घर में निवास करते हैं, इसलिए कई तरह की धमकियों, घर में पत्थर फेंके जाने और बाजार में अपमानित होने के बाद भी शबरी अपना घर छोड़कर नहीं जाना चाहती, क्योंकि उसके हिसाब से उसने ऐसा कोई कुसूर नहीं किया है जिसके लिए उसे निर्वासन जैसी बड़ी सजा मिले। वह सोचती है, ''इस घर-आंगन से लगता है जन्म-जन्मांतर का नाता है। यहीं जन्म लिया, यहीं से ब्याही गई और जब लौटी भी तो यहीं। यहीं रहकर एक ही जीवन में न जाने कितने जीवन जिये! तो क्या अब अंतिम पहर में, चला-चली की इस वेला में इसे छोड़ दूं? नहीं, किसी कीमत पर नहीं। हरगिज नहीं...''[21]

एक पूरी जिंदगी गुजार देने के बाद इतना आसान कहां रह जाता है अपनी जड़ों को अपने ही हाथों से काटना। शबरी जब दूसरों को अपना घर छोड़कर जाते देखती तो हमेशा सोचती कि ''वह यहीं जियेगी। इसी आंगन में, इसी दहलीज पर, इसी मिट्टी में, इसी हवा में। उम्र के लगभग पचहत्तर पड़ाव पार कर लेने के बाद अब क्या अपनी छोड़ किसी और की देहरी पर जाना! फिर उसे भी अंततः अपनी वितस्ता का ही वरण करना था अपने पुरखों की तरह।''[22] लेकिन शबरी और उस जैसे कई निर्वासितों की यह छोटी-सी इच्छा भी पूरी नहीं हो पाती है। आतंक के सामने बेबस शबरी को भी अपना घर छोड़कर जाना पड़ता है। उसका मुंहबोला भाई सादिक शबरी को समझाता है कि वह फिलहाल अपने भतीजे पृथ्वी के पास दिल्ली चली जाए और माहौल ठीक होते ही वह स्वयं उसे दिल्ली से जाकर ले आएंगे। सादिक का बेटा बिस्मिल उसे दिल्ली पहुंचाने वाला था। गाड़ी में बैठ जब शबरी श्रीनगर से निकलती है तब ''उसे लगा जैसे आज बिस्मिल श्रीनगर से उसे नहीं उसकी मय्यत को ले जा रहा हो! जनाजा भी ठीक से न निकल पा रहा था, क्योंकि उतने कंधे तक नहीं मिले थे!''[23] इस तरह से निकल जाने के बाद वापस लौट आना शबरी के लिए फिर संभव नहीं हो पाया। अपनी जड़ों से उखड़ा इंसान दूसरी जगह जाकर न वहां से जुड़ पाता है और न अपनी पुरानी जगह को भूल पाता है। अपने घर से निर्वासित होकर शबरी जब दिल्ली अपने भतीजे पृथ्वी के पास रहने जाती है तो वहां होकर भी वहां नहीं रहती। दिल्ली में अपने निर्वासन की सजा भोग रही शबरी को लगता है कि वह औरों से बहुत बेहतर स्थिति में है। कम-से-कम उसके पैरों के नीचे पक्की जमीन और सिर के ऊपर पक्की छत तो है। उसके ही जैसे कई निर्वासित ऐसे भी थे, जो कैंपों के नरक को भोगने के लिए अभिशप्त थे। शरणार्थी कैंप ''जो जीवन के धधकते श्मशान थे। झुलसाती धूप और तेजाब-सी बारिश में कैसे वे लोग अपने परिवार और बच्चों के साथ उन टेंटों में जीते होंगे!

बारिश टेंटों के अंदर-बाहर कीचड़-ही-कीचड़ कर जाती होगी। दुर्गा से सुना था कि कीचड़ की उस जमीन पर उगी घास में सांप-बिच्छू भी घुस आते हैं। कहा था उसने कि जहन्नुम है वो जहन्नुम!...रात में कहीं आशंका और भय से भारी हुई बांह अपनी जवान बेटी पर रखकर सोती मां तो दिन-रात बुढ़ाती बेटियों के भागकर शादी करने का इंतजार करते बूढ़े मां-बाप। बस जिंदगी की सांस को किसी तरह हर हाल में बचाए रखने की मजबूर कोशिश!''[24]

शबरी की भतीजी जया जब किसी काम से कश्मीर जाती है और समय मिलने पर जब भी घूमने निकलती है तब हर जगह रास्तों के साथ-साथ वह उन यादों से भी गुजरती है जो उसके बचपन का हिस्सा थी। उसे लगता है कि निर्वासन केवल उस जैसे कश्मीरियों का ही नहीं हुआ है बल्कि कश्मीर का भी हुआ है। वहां सूनेपन ने जगह बना ली है और जीवन का उल्लास निर्वासित हो गया है। वह चिनार के पत्ते जिसे देख-देख उसका पूरा बचपन बीता, वह पत्ते उसकी बाद वाली पीढ़ी के लिए केवल अपने बड़ों की यादों का ही हिस्सा हैं, ''पास ही चिनार के कई पत्ते गिरे हुए थे। उसने झुककर चिनार के कुछ पत्ते उठाए और अपने बैग में से एक लिफाफा निकालकर उसमें सीधे-सीधे रख लिये। सोचा रांची में दिखाऊंगी कि कैसे होते हैं चिनार के पत्ते। कैसी अजीब बात है कि जो चिनार उनके लिए बचपन में एक लोककथा के समान था उसके बच्चों के बच्चों के लिए एक काल्पनिक वृक्ष होगा।''[25]

अपने जीवन के अंतिम पहर में जब शबरी के कश्मीर लौटने की उम्मीद टूटने लगती है तब उसे हमेशा वह शेर याद आता है जो उसके बड़े भाई अंबरनाथ गुनगुनाया करते थे–

बुलबुल न ये वसीयत एहबाब भूल जाएं
गंगा के बदले मेरे झेलम में फूल जाएं।[26]

लेकिन शबरी की यह आस उसके साथ ही इस दुनिया से चली जाती है।

चंद्रकांता के उपन्यास 'कथा सतीसर' के केंद्र में कश्मीर, कश्मीरियत और विस्थापन है। अपने इस उपन्यास के रचने का कारण बताते हुए चंद्रकांता लिखती हैं, ''इसे रचने के पीछे कई पीड़ादायक कारण रहे। किसी की दया पर नहीं बल्कि सम्मान से जीना चाहते थे।''

कोई यूं ही किसी के कह देने भर से अपनी जन्मभूमि, अपना घर और अपने जीवन भर की पूंजी छोड़कर नहीं जाता। घर की कीमत वही बेहतर समझ सकता है जिसे जबरन उसके घर से निकाल दिया गया हो। चंद्रकांता लिखती हैं, ''घर के अर्थ वही जानता है जिसका घर छूट गया हो। घर छीनना अपने भूगोल, अपने इतिहास और अपने स्मृति संसार से कट जाना होता है, घर कोई किसी के इशारे पर अकारण ही नहीं छोड़ सकता।''[28] हम केवल उस पीड़ा, उस बेबसी का अंदाजा ही लगा सकते हैं जिसमें जीते हुए कश्मीरी पंडितों ने अपना घर छोड़ा होगा। उन्होंने वहां स्वयं को इतना असहाय महसूस किया होगा कि उन्हें लगा होगा, उन्हें बचाने वाला, उन्हीं की भूमि में बेखौफ रहने के लिए उन्हें एक सुरक्षात्मक आश्वासन देने वाला कोई नहीं है। इसी भय से भरकर इस उपन्यास का पात्र रमेश कश्मीर छोड़कर जाना चाहता है। चारों ओर से उठने वाले नारों और शोर से वह इतना डर जाता है कि वह जल्द-से-जल्द अब कश्मीर से बाहर निकलना चाहता है। उसका धैर्य खो चुका है। अब तक जो भ्रम उसके भीतर था कि यह सिर्फ एक अफवाह है, एक

उन्माद है, जो कुछ दिनों में स्वयं थम जाएगा, वह अब टूट चुका है। वह देर रात को शिवनाथ को फोन करता है और कहता है कि वह भी अब जम्मू जाना चाहता है, ''पता नहीं हमारा क्या होगा?...हमारे लिए एकाध कमरा देखकर रखें। हम सब डरे हुए हैं। पापा तो शोर से बेहोश हो गए हैं। कहीं अटैक न आ जाए।''[29]

'कथा सतीसर' उपन्यास उन लोगों की गाथा है जिनके पास सबकुछ होकर भी आज कुछ नहीं है। उनकी साझी विरासत से उनके साझे अधिकारों को बड़ी निर्ममता से कुचल दिया गया है। बाहर से कश्मीर में आए कुछ दहशतगर्दों ने उनसे उनका यह अधिकार केवल इसलिए छीन लिया, क्योंकि वे उनके धर्म के नहीं हैं। इसी उपन्यास में, ''बनिहाल के घुमावदार पहाड़ी रास्ते ट्रकों-बसों में उदास कारवां से अंट गए थे। इन ट्रकों-बसों, मेटाडोरों में दहशत भरे पंडित, सहमे-सिकुड़े बच्चों, बीवियों, जवान बेटियों और जल्दी में हाथ आए बक्सों, बुगचों समेत सिर झुकाए दुबके बैठे थे। उम्रों के घरौंदे, विरासतें, नाम और साथ चली हवाएं, पीछे छूट रही थीं।''[30]

रातों-रात कई परिवार कश्मीर छोड़कर जाने के लिए अंधेरे में सिर्फ इसलिए निकल पड़ते हैं, क्योंकि वे हिंदू कश्मीरी पंडित हैं। नर्क बन चुके कश्मीर से अपनी जान बचाकर भागे इन कश्मीरी पंडितों को शरणार्थी कैंपों में भी नारकीय जीवन ही मिलता है। विरोध करने पर भी इस नारकीय जीवन से मुक्ति का उन्हें केवल आश्वासन ही मिलता है, लेकिन बदलता कुछ नहीं। एक छोटे-से कमरे में कई लोगों का परिवार जैसे-तैसे सिर छुपाने भर की जगह पाता है। अपनी इस दुर्गति से आहत ब्रजकृष्ण पूछता है, ''क्या खुली झोपड़ी हमारा अधिकार नहीं? आठ-आठ जनों का परिवार तंग कोठरियों में कैसे रहेगा। लू, बरसात के मौसम में, एक-दूसरे के ऊपर गिर-पड़े ब्लैकहोलों में कैसे सांस लेंगे हम?''[31]

ब्रजकृष्ण की पत्नी शरणार्थी कैंप में ही बच्चे को जन्म देती है। सुविधा और सफाई के अभाव में उसका बच्चा बीमार पड़ जाता है, लेकिन उनके पास शहर जाकर उसका इलाज कराने के पैसे नहीं हैं। कैंप में रह रही शुभावती कैंप में रहना नहीं चाहती है। उसे हमेशा अपने घर की याद आती है और कैंप में रहना उसके लिए और अधिक असहनीय हो जाता है। वह अपने घर जाना चाहती है। वह सोचती है, उसके भाग्य में जो बुरा होना लिखा होगा वह उसके अपने घर में होगा, कम-से-कम वहां कैंप की भिखारियों-सी जिंदगी तो नहीं रहेगी ''जो भाग्य में होगा, उधर ही होने दो। जब से आई हूं, अंदर-बाहर धुआं-सा उठ रहा है। अपने घर के पेड़ों की छांह के लिए तरस रही हूं। राजरानियों-सी मेरी बहू-बेटियों के केश, हथेली भर तेल के बिना नर-कुल हुए जा रहे हैं। सीवर लगी धोतियों में भीखमंगियां नजर आती हैं।''[32] अपने घरों में सम्मान से जीने वाले ये कश्मीरी आज बेबस-से सबके सामने हाथ फैलाने को मजबूर हैं। यहां उनका अपना कहने को कुछ भी नहीं है और जहां है, वहां के लिए वे अब पराये हो गए हैं।

मीरा कांत के उपन्यास की पात्र शबरी की ही तरह इस उपन्यास की पात्र लल्ली भी अपनी मिट्टी में मिलने की प्रतीक्षा करती है। जीवन के अंतिम दिनों में उसका मोह भी अपनी माटी से नहीं टूटता बल्कि और बढ़ता जाता है। जहां से उसे जबरन बेदखल किया गया था, अपने जीवन के अंतिम दिनों में भी उसे वहां वापस जा पाने की उम्मीद है। अपनी मिट्टी में समाहित होने की

उम्मीद है, क्योंकि उसकी बेटी कात्या ने उसे आश्वासन दिया है कि वह उसे कश्मीर जरूर ले जाएगी। कात्या लल्ली से कहती है, ''तेरी कात्या ही इस मिट्टी को जकड़े बैठेगी। बची रहेगी तो तुम्हें वापस बुलाएगी। हालात बदलने का इंतजार करना है मां।''[33]

लेकिन ऐसे कई कश्मीरी हैं जिनके पास लल्ली की तरह यह झूठी उम्मीद भी नहीं है। ऐसे कई बच्चे हैं जिन्होंने आंख खोलते ही कैंपों का जीवन देखा है। कश्मीर के किस्से उन्होंने अपने बड़ों से केवल सुने भर हैं। उन्हें उनका अधिकार भी मिलता है तो भीख की तरह। वह पीढ़ी जिसका अधिकार था कश्मीर में जन्म लेना, वहां की हवा में सांस लेना, उस पर जन्म के साथ ही निर्वासित और विस्थापित होने का दाग लग जाता है। इसमें उनकी कोई गलती नहीं थी। सिर्फ किसी की क्रूर इच्छा थी जिसने कई जीवन को तहस-नहस कर दिया। उन्हें निर्वासन का एक ऐसा घाव दिया जो नासूर बनकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों को आहत करता रहा है। चंद्रकांता लिखती हैं, ''यह उपन्यास उन बेघर, बेजमीन निष्कासित बच्चों के नाम है, जो आज अठारह वर्षों से शरणार्थी शिविरों और मुर्गी के दबड़ेनुमा कमरों में जी रहे हैं, इस उम्मीद में कि शायद कभी घर वापसी हो।''[34]

ये उपन्यास निर्वासन झेलते कश्मीरियों की उस पीड़ा को आवाज देते हैं जिसने कश्मीर को खोखला कर दिया है। कई अनसुनी आवाजें, अनकही पीड़ा, छटपटाहट, बेचैनी, द्वंद्व के साक्षी हैं ये उपन्यास। कश्मीरियों के निर्वासन की अवधि बहुत लंबी रही है। आतंक की पकड़ इतनी मजबूत है कि उनकी रिहाई की तमाम कोशिशें नाकाम होती रही हैं, लेकिन उम्मीद सबसे बड़ी ताकत है, हौसला सबसे बड़ा हथियार है। एक दिन निर्वासन की ये बेड़ियां जरूर टूटेंगी, यही उम्मीद इन उपन्यासों में भी है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. http://shibenraina-blogspot-comè2017@05/\m.1
2. कुलश्रेष्ठ, मनीषा (2010); 'शिगाफ', फ्लैप से, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. वही, पृ. 12
4. वही, पृ. 10
5. वही, पृ. 18
6. वही, पृ. 69
7. वही, पृ. 22
8. वही, पृ. 22
9. वही, पृ. 60
10. वही, पृ. 78
11. वही, पृ. 79
12. वही, पृ. 29
13. वही, पृ. 89
14. कौल, क्षमा (2004); 'दर्दपुर', पृ. 23, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ।
15. वही, पृ. 72-73
16. वही, पृ. 22
17. वही, पृ. 27
18. वही, पृ. 36

19. वही, पृ. 79
20. कांत, मीरा (2009); 'एक कोई था कहीं नहीं-सा', फ्लैप से, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।
21. वही, पृ. 181
22. वही, पृ. 180
23. वही, पृ. 189
24. वही, पृ. 197
25. वही, पृ. 205
26. वही, पृ. 196
27. चंद्रकांता (2008); 'मेरे भोजपत्र', पृ. 56, नई दिल्ली : अरु पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड।
28. चंद्रकांता (2001); 'कथा सतीसर', पृ. 556, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
29. वही, पृ. 507
30. वही, पृ. 84
31. वही, पृ. 102
32. वही, पृ. 103
33. वही, पृ. 17
34. चंद्रकांता (2008). 'मेरे भोजपत्र', पृ. 73, नई दिल्ली : अरु पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड।

□

जड़ों से उखड़ने की त्रासदी

विजय कुमार कौल

कश्मीर से हिंदुओं के निर्वासन (आरंभ में ही पाठकों को अवगत कराना चाहूंगा कि हिंदुओं का पलायन नहीं, अपितु निर्वासन हुआ है) की घटना इतिहास में पहली बार नहीं हुई अपितु 14वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी के अंत तक, केवल इस्लामी चरमपंथ के कारण ही यह निर्वासन 7 बार हुआ है। कश्मीर के इतिहास में हिंदुओं के निर्वासन के ऐसे भी दिन आए हैं जब पूरे कश्मीर में हिंदुओं के केवल 11 घर बचे थे। कश्मीरी भाषा में अब भी यह मुहावरा प्रचलित है कि 'क्या सारे कश्मीर में 11 ही घर बचे हैं।' इतिहास के भिन्न-भिन्न बिंदुओं पर कश्मीरी हिंदुओं को ही अत्याचार भुगतना पड़ा है। एक आक्रामक शासक के बारे में यहां तक कहा जाता है कि वो तब तक शाम का भोजन नहीं करता था जब तक वो डेढ़ मन जनेऊ को जलाकर उनके पहनने वालों को या तो मुसलमान बनाता या मौत के घाट नहीं उतारता था। कश्मीर की सुंदर 'डल' झील में एक स्थान है जिसको 'बटमजार' अर्थात् हिंदुओं का कब्रिस्तान कहते हैं। यह जगह डल झील के बीचो-बीच स्थित है। वर्तमान में भी यह जगह उसी नाम से जानी जाती है, जहां पर हिंदुओं के गले में एक भारी पत्थर बांधकर उनको जिंदा ही उस झील में डुबो दिया जाता था।

इस तरह की तमाम ऐतिहासिक घटनाएं इतिहास के पन्नों में गुम होकर रह गईं। यहां इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि कश्मीर के अधिकतर हिंदू जबरदस्ती मुसलमान बना दिए गए। मगर कुछ ब्राह्मणों ने सारी यातनाएं सहकर भी इस्लाम कबूल करने के स्थान पर मृत्यु को चुना, जो वास्तव में अदम्य वीरता का प्रतीक है। आज उन्हीं ब्राह्मणों के कुछ बचकर निकले वंशजों को 'कश्मीरी पंडित' के नाम से जाना जाता है। कश्मीरी हिंदुओं में जितने भी लोगों ने इस्लाम कबूल किया, उनको भी आज तक उनके ही कुलनाम से पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, मुस्लिम समुदाय में ब्राह्मण जाति के कुलनाम, जैसे—भट, कौल, धर, रैणा, पंडित इत्यादि पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य हिंदू जातियों के उपनाम भी कश्मीरी मुसलमानों में पाए जाते हैं जैसे कि खांडे, तांतरे, वार, बक्षी आदि।

1990 का निर्वासन इस कारण से भी अत्यंत दुःखद है कि जम्मू-कश्मीर भारतवर्ष का एक अभिन्न अंग होने के बावजूद, भारतीय शासन, भारतीय सेना के रहते भी यह दुःखद निर्वासन रोका नहीं जा सका। यहां यह समझना आवश्यक है कि इस निर्वासन को भारतवर्ष की सभी महत्त्वपूर्ण संस्थाओं जिनमें सरकार, न्यायालय, सेना, पुलिस तथा अन्य सुरक्षा बल सम्मिलित हैं, ने बहुत ही हलके में लिया। यहां तक कि शेष भारतीय नागरिकों को भी कोई सही जानकारी नहीं दी गई, जबकि स्थानीय संचार माध्यम के अंतर्गत कश्मीर में हिंदुओं को निर्वासित करने अथवा

मृत्युदंड झेलने के लिए, आए दिन घाटी के समाचार-पत्रों में प्रायोजित इश्तिहार एवं सूचनार्थ समाचार धड़ल्ले से छप रहे थे। संचार माध्यम आतंकियों के पक्ष में बोलते रहे और उनके द्वारा आतंकियों के अत्याचारों को वीरता और युद्ध कला कहकर सराहा जाता था। रेडियो की भाषा भी बदल गई थी और दूरदर्शन, श्रीनगर के तत्कालीन निदेशक श्री लस्सा कौल की निर्मम हत्या के पश्चात् दूरदर्शन भी पूर्णतः उन आतंकवादियों के नियंत्रण में आ गया था।

इसमें यदि आप थोड़ा और समझना चाहें तो इन परिस्थितियों के पूर्वकाल की जानकारी लेनी भी आवश्यक होगी। भारत द्वारा 1971 के युद्ध में मुंह की खाने पर पाकिस्तान, वहां की सरकार, वहां की सेना, वहां की गुप्तचर संस्था आईएसआई एवं अफगानिस्तान में रूस की लड़ाई लड़ चुके तालिबानी गुटों ने मिलकर भारत से बदला लेने की ठान ली थी, जिसके अनुसार भारत को हजारों घाव देकर रक्त बहाना एवं कत्लेआम मचाना लक्ष्य निश्चित किया गया था। इसी कारण से तत्कालीन पाकिस्तानी राष्ट्रपति जियाउल हक ने 'ऑपरेशन टोपाक' के नाम से एक षड्यंत्र रचा। जिसका सूत्रपात सर्वप्रथम 80 के दशक में पंजाब प्रांत में खालिस्तानी आंदोलन आरंभ करवाने से हुआ; किंतु वहां के स्थानीय लोगों ने कोई विशेष मदद पाकिस्तान द्वारा छेड़े गए इस खालिस्तान आंदोलन में नहीं की, इसका मुख्य कारण पंजाब में हिंदुओं और सिखों के बीच सौहार्द एवं आपसी रिश्ता था।

इसी समय 'ऑपरेशन टोपाक' का आरंभ कश्मीर में भी किया गया जिसकी जानकारी भारतीय गुप्तचर संस्थाओं ने भारतीय प्रशासन को समय-समय पर पहुंचाई कि अन्य जगहों से विशेषतः उत्तर प्रदेश और बिहार से तबलीगी जमात (जिनको 'अल्लाह वाले' के नाम से कश्मीर घाटी में जाना जाता था) के लोग घाटी की मस्जिदों में अपने निरंतर भाषणों द्वारा सामाजिक सौहार्द बिगाड़ रहे हैं और यहां सीमारेखा के अंदर पाकिस्तान, कश्मीर घाटी में आधुनिक अमरीकी हथियार, जो कि अफगानिस्तान युद्ध में बचे थे, भेज रहा है। इन सब बातों का एवं कश्मीर की राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख श्री जगमोहनजी ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'माई फ्रोजेन टरबुलांसेस इन कश्मीर' में भली-भांति दिया है। किंतु दुर्भाग्यवश तत्कालीन भारत सरकार इस परिस्थिति से जान-बूझकर आंख चुराती रही। वस्तुस्थिति यहां तक आ पहुंची कि पाकिस्तान का कश्मीर प्रशासन पर दबदबा चलता रहा। बात यहां तक बिगड़ गई थी कि कश्मीरी मुसलमानों ने अपनी घड़ियों का समय पाकिस्तान की घड़ियों के अनुसार करना आरंभ कर दिया, और उनमें ऐसी भावना भर दी गई कि जैसे अंग्रेज भारत पर जबरदस्ती कब्जा किए थे वैसे ही भारत ने भी कश्मीर पर जबरदस्ती अपना कब्जा कर रखा है। यह भावना इस हद तक बनाई गई थी कि भारत एक विदेश है और सभी भारतीय नागरिक और कश्मीरी हिंदू दोनों, कश्मीर के मुसलमानों और उनकी भारत से आजादी के लिए बहुत बड़ी अड़चन हैं। उस समय दुर्भाग्यवश भारत सरकार न केवल निष्क्रिय रही अपितु आतंकी और अलगाववादियों के लिए खुला मैदान छोड़ दिया। ऐसे ही अलगाववादी और इस्लामीकरण करने की सोच रखने वाले एक कश्मीरी मुसलमान को तत्कालीन भारत सरकार द्वारा भारत का गृहमंत्री नियुक्त किया गया। इस कारण से आतंकियों और अलगाववादियों को खुला खेल करने की स्वतंत्रता मिल गई।

उन्हीं दिनों मैंने स्वयं 'इंडिया टुडे' पत्रिका में उसी गृहमंत्री का यह बयान पढ़ा था कि कश्मीर में आतंकियों और अलगाववादियों की भारत सरकार से अधिक चलती है और भारत

सरकार भी इसमें कुछ नहीं कर सकती है। कश्मीर से हिंदुओं का निर्वासन उसी गृहमंत्री के सोचे-समझे षड्यंत्र का एक भाग था जिसके अनुसार कश्मीर घाटी से हिंदुओं का निर्वासन करना था; ताकि कश्मीर का इस्लामीकरण या पाकिस्तान से मिलने की राह आसान हो। दुर्भाग्यवश यह सब भारत सरकार की नाक के नीचे होता रहा। सत्ता में आने के लिए उसी गृहमंत्री ने 1984 में मुसलमानों को भड़का कर हिंदुओं के घरों और मंदिरों पर आक्रमण करवाया था, वह भी एक अफवाह फैलाकर कि जम्मू में कश्मीरी मुसलमानों का नरसंहार हो रहा है। इसके परिणामस्वरूप उस गृहमंत्री के जिले अनंतनाग के कुछ इलाकों में वहां के मुसलमानों के द्वारा बहुत-से मंदिर तोड़े गए और कश्मीरी पंडितों के घरों पर हमले भी हुए। कश्मीरी हिंदुओं ने इस घटना को दुर्भाग्य का नाम देकर कश्मीरी मुसलमानों के प्रति अपने सौहार्द को जारी रखा और 1988 तक चुपचाप सब सहन करके बैठे रहे। इस बीच आतंकियों और अलगाववादियों की तैयारी पूरी हो चुकी थी और 1989 में असली कहानी समझ में आने लगी। इसके बाद जे.के.एल.एफ. नामक आतंकी संगठन ने पहले कमान संभाली जिसकी कमान पाकिस्तान अधिकृत जम्मू-कश्मीर के अमानुल्ला खान को सौंपी गई। इस संगठन द्वारा एक-एक करके कश्मीरी पंडितों और सैनिकों को मारना आरंभ किया गया। जिनमें दो कुख्यात यासीन मलिक एवं बिट्टा कराटे नामक आतंकियों से पाठक भली-भांति परिचित होंगे। उस समय भी कश्मीरी हिंदू इस भ्रांति में रह गए कि भारत जैसा विशाल देश और इसकी वीर सशक्त सेना ये सब रोक देगी, मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ। बदले में उस समय घाटी के इस्लामीकरण का दौर चरम सीमा पर चलने लगा। मस्जिदों में लाउडस्पीकर द्वारा नारेबाजी शुरू हुई कि–

1. ऐ काफिरो, ऐ जालिमो, कश्मीर हमारा छोड़ दो।

2. इंडियन डॉग्स गो बैक (Indian Dogs go back)

और इसके अतिरिक्त कश्मीरी भाषा में–

1. हम पाकिस्तान बनाएंगे और हिंदुओं, विशेषकर पंडितों के बिना और उनकी बहू-बेटियों सहित

2. मिलो, मिल जाओ या मिट जाओ और भाग जाओ

इन नारों के बीच ये नारा कि 'आजादी का मतलब क्या? लाइलाहा इल्ललाह' इन सभी को इस्लामिक रंग देने के लिए पर्याप्त था।

इस डरावने माहौल में रात-दर-रात सन्नाटे में मस्जिदों के लाउडस्पीकर से अथवा लोगों के समूह से सुनकर हर एक हिंदू कश्मीरी अपने घरों में सहमकर रह जाता। धीरे-धीरे वह सामाजिक सौहार्द, जो कश्मीर के हिंदू और मुसलमानों के बीच एक विश्वास बनकर पनपा था, जैसे गायब हो गया। सौहार्द की सोच रखने वाले वृद्ध और कुछ पढ़े-लिखे मुसलमान युवक मानो अदृश्य हो गए या फिर उसी तूफान में मिल गए जो धीरे-धीरे कश्मीरी हिंदुओं के कत्लेआम और उनकी बहू-बेटियों के साथ दरिंदगी करने के लिए आगे बढ़ रहा था। आतंकियों का अत्याचार इतना बढ़ गया कि कश्मीरी पंडितों के साथ जो बीती उसको सुनने पर भी एक सभ्य समाज कराह उठेगा।

एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के घर उनके ही विद्यार्थी गए और उनकी हत्या करके उनकी धर्मपत्नी को अगवा कर ले गए। कई दिनों के बलात्कार के बाद उनको अधमरी हालत में झेलम में बहा दिया गया। ऐसे ही एक कश्मीरी पंडित लड़की को अगवा कर बलात्कार के बाद उसको

जिंदा ही लकड़ी काटने वाली आरी से चीर दिया गया। कई अध्यापक, डॉक्टर और नौकरी एवं व्यवसाय करने वाले हिंदुओं को मारना आरंभ हुआ। यह वह समय था जब सरकारी अधिकारी, सरकार, पुलिस आदि सब या तो आतंकियों के साथ मिल गए या फिर उनकी बोली बोलने लगे।

इसी समय आतंकियों और अलगाववादियों की योजना बीबीसी और अमेरिकी मीडिया के लोगों को जमा कर उनकी उपस्थिति में कश्मीर की आजादी का ऐलान करने की थी परंतु तत्कालीन राज्यपाल श्री जगमोहन जी के समय रहते उठाए कदमों और लिये गए निर्णयों के कारण वे ऐसा नहीं कर पाए। परंतु कश्मीरी हिंदुओं को यह समझ में आया कि उनके पास दो ही विकल्प बचे हैं—या तो मर जाएं या वहां से जान बचाकर कश्मीर से बाहर की राह लें। इसप्रकार देखते-देखते कश्मीर से अल्पसंख्यक हिंदू, जो मुश्किल से तीन प्रतिशत बचे थे, वहां से निर्वासन करने पर मजबूर हो गए। अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इस मारकाट के माहौल में कई कश्मीरी पंडितों की हत्या उनके ही छात्रों द्वारा होती रही और अधिकतर कश्मीरी हिंदू अपने ही गांव, मोहल्ले और पड़ोस के मुसलमान मित्रों, जानकारों के हाथों मारे गए। एक बहुत ही विद्वान अध्यापक श्री सर्वानंद कौल, जो एक कवि भी थे, जिन्होंने 'रामायण' और 'गीता' जैसे पवित्र ग्रंथों का कश्मीरी भाषा में अनुवाद भी किया था, अपने गांव के कुछ छात्रों द्वारा उठा लिये गए। उनके सुपुत्र भी उनके पीछे हो लिये और अगले दिन दोपहर में दोनों के मृत शरीर मिले; जिनकी आंखें निकाल दी गई थीं। पंडित सर्वानंद के माथे से उतनी खाल भी निकाल दी थी, जिस पर वो टीका लगाते थे।

एक युवा कश्मीरी पंडित के घर जब आतंकी घुसे तो पत्नी के कहने पर वे घर की छत के नीचे एक चावल के ड्रम में घुसकर छिप गए। आतंकियों ने सारा घर छान मारा पर वह नहीं मिले। घर से निकलते ही आतंकियों को पड़ोस की एक महिला ने संकेत कर यह बताया कि वे छत के नीचे छिपे हैं। आतंकी फिर घर में घुसकर छत के नीचे, जिस ड्रम में वह छिपे थे, वहीं उनको गोलियों से भून दिया और रक्त से सने चावल उस युवा पंडित की धर्मपत्नी को जबरदस्ती खिलाए गए।

ऐसी असंख्य घटनाएं हुईं, जिनसे कश्मीरी हिंदू और मुसलमानों के बीच एक स्थायी अविश्वास उत्पन्न हुआ। यहां तक कि आतंकी कभी-कभी सेना की वर्दी में आकर कश्मीरी हिंदुओं के घरों में घुसकर मारने लगे और बेचारे हिंदू यह तक समझ नहीं पाते थे कि यह बचाने वाली सेना है या मारने वाली। ऐसे ही सेना की वर्दी में आतंकियों ने सिखों के एक गांव चट्टीसिंहपुर और पंडितों के शोपियां जिले के गांव में लाशों के ढेर बिछाए जिनमें छोटे बच्चों को भी नहीं बक्शा गया। ऐसी परिस्थिति में हिंदुओं के पास निर्वासन के अतिरिक्त और कोई जीवित रहने का रास्ता ही नहीं बचा था।

इसप्रकार कश्मीरी इतिहास में यह सातवां निर्वासन हुआ। कश्मीरी हिंदू कश्मीर छोड़ भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों और विदेशों में बिखरकर रह गए। आज तीस वर्ष पश्चात् कश्मीरी पंडितों का वह बिखरा हुआ समाज फिर से अपनी जीविका कमाकर अपनी भाषा, संस्कृति एवं धार्मिक रस्मों को बचाते हुए शांतिपूर्वक कश्मीर वापस जाने की राह तकता है, जहां पर उनके मानवाधिकारों की सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था हो। इसी आशा में यह दुर्भाग्यपूर्ण समाज भारतवर्ष के कश्मीर में फिर से रह पाने की आस लिये जीवित है।

□

मलयालम साहित्य में कश्मीर

सुप्रिया पी.

वो अमन, वो चमन का नजारा
ओ खुदाया लौटा दे कश्मीर दोबारा..
मेरे रूह की तस्वीर, मेरा कश्मीर...

मलयालम फिल्म 'कीर्तिचक्र' की यह नज्म न केवल हमारी रूह को कंपा देती है, वरन् कश्मीरियों के रग-रग में नई चेतना फूंकती है। कश्मीर की उस सुंदर घाटी में हमें ले जाती है जहां का सौंदर्य कभी उसे 'जन्नत' की हैसियत देता था। ऊंचे पर्वत, काली घटाएं, कल-कल बहती नदियां और झील, खुशनुमा वादियां और खिलखिलाते बगिया का सौंदर्य कवि-लेखक-पत्रकार-पर्यटकों ने कागज पर उतारा। बीते कुछ वर्षों में कश्मीर की घाटी में शांति और अमन-चैन की स्थितियां नहीं के बराबर हैं। ये स्थितियां पूरे राष्ट्र के लिए बेहद जटिल और तकलीफदेह हैं। वहीं कश्मीर जिसे कवि ने 'जन्नत' पुकारा, वह 'जहन्नुम' के नाम से पुकारा जाने लगा। कश्मीर के दुःख, दर्द और आतंकित वातावरण को साहित्य के जरिए रचनाकारों ने पाठकों को रू-ब-रू कराया। बदलते समय और उस सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में विचलित होने वाले हर वह पहलू रचनाकार की पैनी निगाहों से बच न सके। मलयालम साहित्य में कश्मीर का चित्रण कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रावृत्त, संस्मरण आदि सारी विधाओं में हुआ है।

मलयालम साहित्य में डॉ.आर. लीलादेवी के उपन्यास 'कुंकुंम' (1945) का जिक्र मिलता है, जो कश्मीर के मिथक और किंवदंतियों पर आधारित उपन्यास है। लीलादेवी केरल की लेखिका हैं जिन्होंने मुख्यतया मलयालम और अंग्रेजी में साहित्य रचना की। एस.के. पोट्टेकाट आधुनिक मलयालम साहित्य के एक ऐसे श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार हैं, जिनकी विराट सृजनात्मक प्रतिभा से न केवल मलयालम साहित्य समृद्ध हुआ, वरन् भारतीय साहित्य का संवर्धन भी हुआ। साहित्य की कोई ऐसी विधा नहीं हैं, जिसमें पोट्टेकाट ने अपनी लेखनी न चलाई हो। 'यात्रा के चक्रवर्ती' एवं 'मलयालम के जॉन गोएथेन' के नाम से सुविख्यात यात्रा वृत्तांतकार एस.के. पोट्टेकाट ने अपने यात्रा-साहित्य से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने आजादी के पूर्व और आजादी के बाद की अपनी यात्राओं को चार यात्रा-वृत्तांतों में अंकित किया है—'कश्मीर', 'हिमालय साम्राज्य में', 'यात्रा स्मरण', 'नेपाल यात्रा'। कश्मीर के सौंदर्य का और वहां की रमणीयता का वर्णन 'कश्मीर' (1947) में विभिन्न संदर्भों में किया है। वास्तव में कश्मीर का सौंदर्य अपनी आकर्षक हरीतिमा से,

अपने गंभीर मौन से, मेघों के विचित्र वर्णमय विन्यास से, संध्याकाश में निकलने वाली विभिन्न रंगों की मनोरम झांकी से, पृथ्वी-आकाश के क्षितिज के सौंदर्य से, दूर-दूर तक फैले गिरि-शिखरों से खिल उठता है।

पोट्टेकाट के लिए मनुष्य और मिट्टी की गंध हमेशा आकर्षण के केंद्र में रही। यही आकर्षण उन्हें विभिन्न देशों-प्रदेशों की यात्रा और जनजीवन को समझने के लिए प्रेरित करता रहा। उनका विश्वास था कि मनुष्य, मिट्टी और संस्कार के बीच जो अंतरंग संबंध है, वह अन्योन्याश्रित है। इन संबंधों की पड़ताल उनके यात्रा-वृत्तांतों में और कथा-साहित्य में विपुल मात्रा में मिलती है। नए अनुभव, नई दृश्यावलियां और नए लोग उनकी यात्रा के हर पड़ाव में नई चेतना जगाते रहे, जो उनके हरेक यात्रा-वृत्तांत में चित्रित है। हिमालय का सौंदर्य, कश्मीर के बगीचों का सौंदर्य, पर्वत श्रेणी का गंभीर मौन, झीलों की नटखट झिलमिलाहट यात्रिक के मन में काव्य सृष्टि करते हैं।

1980 के आसपास केरल के मलप्पुरम, त्रिशूर, आलुवा और कन्नूर जिलों में कुछ रंगकर्मियों ने जकीर हुसैन के नेतृत्व में 'हिमकनंगल तेंगुन्नू' (हिमकण पिघलते हुए) नाटक का मंचन किया। कश्मीर के तत्कालीन माहौल और कश्मीरियों के जीवन के यथार्थ को दृश्यों में प्रस्तुत करने का वह प्रयास काफी सराहनीय था। नाटक के जरिए यह सोच पेश की गई कि कश्मीर के भविष्य का फैसला वहां की अवाम को ही करना है। 'आजाद कश्मीर' का संदेश लिये वह नाटक तत्कालीन राजनीतिक दबावों के कारण अधिक दिनों तक मंचित न हो सका और न ही लेखक उसको प्रकाशित करा सका।

अब यहां
सेबों पर है पीला फीकापन
खून है तुमने मिट्टी में जो बहाया।
तालाब का
पानी गर्म है
सारे शिकारे तुमने
जला दिए जो।
ओस नमकीन है
कि वे मांओं के आंसू हैं।
जीवन के नक्शे से
हमें अलग-थलग करने वालों को
कौन-सी अदालत
सजा सुनावे?

जमील अहमद की कविता 'कश्मीर' 2001 में मलयालम पत्रिका 'आरामम्' में प्रकाशित हुई। ये पंक्तियां कश्मीर की असुरक्षित और असामयिक वातावरण के आतंक को दर्शाती हैं। कश्मीर में सांप्रदायिक हिंसा से उपजी सामाजिक त्रासदी ने मनुष्यता को लहूलुहान किया। सांप्रदायिक हिंसा एवं विद्वेष से पीड़ित व्यक्ति और वह समाज जो पीड़ाएं और विषमताएं झेलते हैं, वह प्रत्यक्ष रूप से मनुष्यता पर वार करते हैं। कवि, रचनाकार उस गहराती त्रासदी को मानवीय दायित्व के

साथ साहित्य में साझा करता है। यहां कविता में संवेदना है, पर सहानुभूति नहीं; आत्मीयता है, पर आश्वस्ति नहीं; हिंसा है, पर हौसला नहीं। हिंसा और उन्माद के बढ़ते माहौल में चुप्पी, सहमति और समर्थन की संस्कृति हिंसा को पनपने देती है और यही त्रासदी है। इसमें रचनाकार हौसला खो देता है और अपनी प्रतिबद्धता दिखाने में असमर्थ है। समय-समाज-इंसान को बांटने वाली घिनौनी ताकतों के खिलाफ कवि की प्रतिक्रिया आश्वस्त नहीं करती।

गंभीर एवं ज्वलंत समस्याओं के प्रति पाठकों का ध्यान आकर्षित करना यथार्थवादी उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य होता है। इस दृष्टि से महादेवन तंबी का 2009 में प्रकाशित उपन्यास 'आजादी' पाठकों पर गहरा प्रभाव डालता है। कश्मीर के लोगों के बीच धार्मिक कट्टरवाद और आतंकवाद के बीज बोने के पाकिस्तान के प्रयासों का पर्दाफाश करता यह उपन्यास 'कश्मीर की आत्मा की खोज में एक यात्रा' है। आजादी के पूर्व का कश्मीर, जो आजादी की लड़ाई में भागीदार रहा और आजादी के बाद का कश्मीर, जो आजादी के नाम पर आतंक और विद्रोह का गवाह रहा, इन दोनों के बीच की कड़ी है यह उपन्यास 'आजादी'।

कश्मीर की यात्रा की खोज दो पात्रों के माध्यम से होती है जिनकी जड़ें उस मिट्टी में गहराई से जुड़ी हैं और जो आपस में मजबूत भावनात्मक संबंध साझा करते हैं। स्वतंत्रता पूर्व के कश्मीर में चार दशकों तक वरिष्ठ अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे पी.पी. मेनन और कश्मीरी स्वतंत्रता सेनानी एवं गांधीवादी विचारधारा के समर्थक बैतुल्लाह उपन्यास के ऐसे दो पात्र हैं, जो आजादी के आंदोलन के सच्चे प्रतीक हैं, जिनके निष्ठापूर्ण प्रयासों से राष्ट्र अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त हो पाया। आजादी के दो दशकों के बाद मेनन अपने दोस्त बैतुल्लाह से मिलने अपने पोते हरि के साथ केरल से कश्मीर की यात्रा पर निकलते हैं। उपन्यास में उनके संस्मरण स्वतंत्रता के नाम पर प्रचारित वर्तमान आंदोलन की गंभीरता को स्पष्ट करते हैं। भारत के अन्य राज्यों की तरह कश्मीर में भी आजादी की लड़ाई लड़ी गई। बैतुल्लाह आजादी के आंदोलन में सक्रिय था और वह कश्मीरियत का प्रतीक था। महादेवन तंबी ने कश्मीर के इस्लामी आंदोलन की विशिष्टताओं की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो काफी भिन्न है। घाटी में सूफियों द्वारा इस्लाम का प्रचार अलग तरीके से हुआ। सूफियों ने इस्लाम को नए धर्म के रूप में पेश करने के बजाय घाटी के लोगों के जीवन और संस्कृति की लय को अपनाते हुए प्रचलित विश्वास के साथ उनकी मान्यताओं का समन्वय किया। शैव धर्म की अनुयायी लल्लेश्वरी के विचारों और शिक्षाओं को सूफियों ने आत्मसात् किया, जिससे कश्मीर के हिंदू शैव धर्म और इस्लाम का एक विशिष्ट समन्वय हुआ, जो 'कश्मीरियत' के नाम से जाना जाता है। इसप्रकार कश्मीर में इस्लाम ने अपनी अलग पहचान बनाई, जो दूसरे अरब देशों में प्रचलित इस्लाम और भारत में किसी भी राज्य में प्रचलित इस्लाम से बिल्कुल भिन्न था। आजादी के पूर्व के कश्मीर में ब्रिटिश शासन में अपने कार्यकाल में ही मेनन आजादी की लड़ाई में सक्रिय रूप से भागीदार रहा। मेनन और बैतुल्लाह के परिवार आपस में आत्मीय संबंधों से जुड़े रहे। महादेवन तंबी ने दोनों परिवारों को धर्मनिरपेक्ष और सार्वभौमिक भाईचारे के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है, जो आज कश्मीर की आतंकित घाटी में न के बराबर है। 'आजादी' में महादेवन तंबी ने निस्संदेह ही कश्मीरियों के व्यक्तिगत जीवन और कश्मीर के राजनीतिक परिदृश्य को निपुणता से बुनकर पाठकों के सम्मुख पेश किया है।

समकालीन कश्मीरी कवि मोहम्मद अली की आत्मकथा 'अभिमानिकान ओन्नुम इला'

(गर्व के लिए कुछ नहीं बचा) के एक अंश का स्वतंत्र काव्याख्यान मलयालम के समकालीन कवि विष्णु प्रसाद ने 'कुनान पोशपारा' नाम से किया है। मोहम्मद अली का जन्म 1982 में जम्मू-कश्मीर के कुपवाड़ा जिले के कुनान-पोशपारा गांव में हुआ। 23 फरवरी, 1991 को कश्मीर में कुनान और पोशपोरा गांव में उस रात जो हुआ था, उसका बयान अली की मां राबिया करती हैं, जो उस हादसे का शिकार हुई थीं। यह हादसा कुनान-पोशपोरा सामूहिक बलात्कार के नाम से जाना जाता है। राबिया के इस बयान को विष्णु प्रसाद ने अपनी कविता में दर्ज किया है–

अली,
दस साल के तुम
मुझे घूरते, रोते-चिल्लाते हुए
दूर हुए जाते।
ऊपरी मंजिल की
खिड़की से मैं देख सकती थी।
तुम मेरे पिता और तीन भाई
पूछताछ के नाम पर
उन्हें ले गए।
सिर्फ तुम नहीं
कुनान और पोशपोरा के
सभी पुरुष
उस रात, वे भेड़ों की तरह उन्हें भगा ले गए।

छत्तीसगढ़ भिलाई से मलयालम में प्रकाशित 'समष्टि' पत्रिका के मार्च-अप्रैल 2015 के दो अंकों में डॉ.आर. सुरेंद्रन का यात्रावृत्त 'कश्मीर के अद्‌भुत दृश्य' (कश्मीरिले कौतुककाषचगल) प्रकाशित हुआ। डॉ. आरसु (लेखकीय नाम) कालिकट विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं, जिन्होंने हिंदीतर प्रदेश में रहकर देश-विदेश में हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध किया है। वे कालिकट की साहित्यिक संस्था 'भाषा समन्वय वेदी' के संस्थापक अध्यक्ष हैं। भाषा समन्वय वेदी के शिष्टमंडल के साथ उनकी कश्मीर यात्रा का वर्णन इस लेख में हुआ है। डॉ. आरसु और उनके सहयोगी बंधुओं ने चुनी हुई कश्मीरी कहानियों का अनुवाद मलयालम भाषा में हिंदी के माध्यम से किया जिसका प्रकाशन केरल में हुआ। इसमें कुल 21 कश्मीरी कहानियों का अनुवाद है। इसका लोकार्पण कश्मीर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. दिलशाद जिलानी और कश्मीर के राज्यपाल एन.एन.वोहरा के हाथों संपन्न हुआ।

यात्रावृत्त में ज्येष्ठादेवी मंदिर की आध्यात्मिक-सांस्कृतिक विशेषताओं पर और पूजा-पाठ की रीतियों पर सुदीर्घ वर्णन मिलता है। घने बादलों के बीच कश्मीर की घाटियों का सौंदर्य, चिनार-देवदारु पेड़ों की गंभीरता, कल-कल बहते झरने और नदियां, सुंदर बगीचे मन को रीझ लेते हैं। कश्मीर के खान-पान में खूबियों-कमियों के साथ कहवा-कॉफी ने जबान पर विशेष रुचि बढ़ाई। कश्मीर और उसकी आरंभिक भाषिक-सांस्कृतिक विशेषताओं को जानने-समझने की यात्रा में कश्मीर की भाषा और लिपि को लेकर वहां की जनता की संवेदना को समझ पाना लेखक के लिए एक अपूर्व अनुभव रहा। कश्मीरी भाषा की अपनी लिपि शारदा थी जिसे कश्मीरी जन बचाए रख न सके। आज मुस्लिम

जनता कश्मीरी भाषा के लिए उर्दू लिपि का प्रयोग करती हैं तो हिंदू जनसमूह देवनागरी लिपि का।

कई शताब्दी पूर्व केरल से आए शंकराचार्य को कश्मीरवासी अपना प्रथम आध्यात्मिक गुरु मानते हैं। मंदिर और मस्जिद दोनों यहां पर मिल जाते हैं। 'कश्मीर' नाम के व्युत्पत्ति के बारे में प्रचलित जनश्रुति का रहस्य खोलते हुए डॉ. आरसु बताते हैं कि प्राचीनकाल में उस स्थान पर एक तालाब था। दक्ष कन्या सती का निवास स्थान होने से यह 'सतीसर' कहलाया। हरमुख पर्वत पर तपस्वी शिव का निवास था। उसी तालाब में राक्षस भी रहते थे। राक्षस निरंतर समीप के ऋषियों को परेशान करते थे, जिससे ऋषियों ने ब्रह्मा की शरण ली। ब्रह्मा के पुत्र कश्यप ऋषि ने राक्षसों का विनाश किया, जिससे वह भूमि 'कश्यप-मरु' अथवा 'कश्यपपुरम' नाम से विश्रुत हो गई। बाद में यह शब्द रूढ़ होकर 'कश्मीर' में बदल गया।

14वीं सदी में कश्मीरी कवयित्री 'ललद्यद', 15वीं सदी में नुंद ऋषि, हब्बा खातून, 18वीं सदी में कश्मीरी रामायण—'प्रकाश रामायण' के रचयिता प्रकाशराम कूरी से लेकर आधुनिक काव्य में दीनानाथ नदीम, कवि रहमान राही तक का जिक्र इस यात्रा वर्णन में मिल जाता है। कवि रहमान राही कश्मीरी हैं, जो साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित रचनाकार हैं। 'कश्मीर टाइम्स', 'जम्मू डेल्ही एक्सप्रेस', 'ग्रेटर कश्मीर' यहां से प्रकाशित प्रमुख अंग्रेजी अखबार हैं। 'अल्सफा', 'आफताब' उर्दू अखबार हैं। 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला', 'पंजाब केसरी' यहां से निकलने वाले हिंदी के प्रमुख अखबार हैं। कश्मीर से हिंदी में प्रकाशित पत्रिकाओं में 'वितस्ता', 'शीराजा' और 'कश्मीर संदेश' प्रमुख हैं।

पी. के. पारक्कडव की लघु कहानी 'कश्मीर' मलयालम पत्रिका 'माध्यम' के 2019 अंक में प्रकाशित हुई। पारक्कडव मलयालम साहित्य में अपनी अति लघु कहानियों के लिए लोकप्रिय हैं, जो 'मिन्नल कथगल' (यानी बिजली का-सा प्रभाव छोड़ने वाली कहानियां) कही जाती हैं। संक्षिप्त विचारों को स्पष्ट भाषा में गढ़ने में सक्षम कथाकार ने कश्मीर के प्रति समाज की मानसिकता को चित्रित किया है। कहानी में कश्मीरी मिर्च, कश्मीरी शॉल, कश्मीरी कवि का संकलन, कश्मीरी सेब आदि का जिक्र करने की मनाही है। लेखक इस ओर इशारा करता है—''गौर फरमाइए, आतंक से मरे लोगों के बारे में क्या इतिहास बयान करता है? केवल खाना-पीना, मौज उड़ाना, ऐसे गुजर करते हुए क्या हम मर नहीं रहे हैं।'' छोटी-सी कहानी के भीतर भरी-पूरी विशाल दुनिया चुपके से उतर आती है और उस दुनिया के भीतर कई-कई कहानियां जिंदा होकर सांसें लेने लगती हैं। यह एक ऐसी कहानी है, जिसके लफ्जों के भीतर पाठक उतरकर भीतर की दुनिया की पड़ताल करता है। जब दुःख, घृणा और उन्माद ही शेष हो तो वह जिंदा लोगों को भी वैचारिक लाश में तब्दील कर देता है। ऐसी शर्मसार परिस्थितियों में भूत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में प्रबुद्ध चेतना निराशावादी हो जाती है। समय के खौफ से जो मानसिकता पनपती है, वह नाउम्मीद होती मानवीयता की ओर शर्मनाक इशारा करती है।

टी.डी. रामकृष्णन का 'अंधर, बदिरर, मूकर' (अंधे, बहरे, गूंगे) अद्यतन उपन्यास है, जो जनवरी 2020 में प्रकाशित हुआ। फातिमा निलोफर के जीवन के माध्यम से कश्मीर के एक ऐसे पक्ष का चित्रण लेखक ने किया है जिसके लिए उनके साहस को बधाई देनी होगी। वर्तमान भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में मानवीय नैतिकता के साथ एक कश्मीरी के दृष्टिकोण को सच्चाई से उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

फातिमा निलोफर एक लो प्रोफाइल पत्रकार और विधवा हैं, जो अपनी अम्मी और दो बच्चों के साथ रहती हैं। सेना की गोली का शिकार होकर उनके बेटे की आंखों की रोशनी चली गई। फातिमा महिला संगठन कश्मीरी वुमेन फॉर पीस (KWP) की एक सक्रिय सदस्य हैं। वे 'आजादी' के बजाय 'अमन' की मांग करती हैं। उपन्यास यात्रा की कथा बयान करता है। उस यात्रा से फातिमा में परिवर्तन होता है और वह एक साधारण महिला से अपने परिवार की 'रक्षक' बन जाती हैं। अपने बच्चों के लिए 'आजादी' का सुरक्षित मार्ग वह सुनिश्चित करती हैं। रचनाकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हुए सवाल करता है—किसका विकास? किसकी शांति? टी.डी. रामकृष्णन ने कश्मीर के दबे-कुचले लोगों के साथ अपना पक्ष घोषित कर दिया। इस उपन्यास को साहित्य जगत् कश्मीर के सच्चे कथन के रूप में पहचानेगा। रचनाकार का दायित्व है कि वह मनुष्य की यातना को आवाज दे। कश्मीर संबंधी हर मुद्दे को आतंकवाद से जोड़ने के कारण ही रचनाकार कश्मीर मुद्दों पर चुप्पी साधते हैं।

मलयालम की साप्ताहिक पत्रिका 'माध्यमम्' के मार्च 2020 के अंक में बी.आर.पी. भास्कर का संस्मरण 'जम्मू-कश्मीर दिनंगल' (जम्मू-कश्मीर के दिन) प्रकाशित हुआ, जो उस समय के जम्मू-कश्मीर के समाज और संबंधों के स्वरूप का प्रामाणिक चित्र उपस्थित करता है। बी.आर. पी. भास्कर केरल के वरिष्ठ पत्रकार एवं समाजसेवी हैं। 1970 में 46 लाख की जनसंख्या वाला जम्मू-कश्मीर राजनीतिक कारणों से हमेशा चर्चा में रहा। कश्मीर की जनता का विश्वास मीडिया पर से उठ जाने के कारण भी राजनीतिक दांव-पेच बने रहे। यू.एन.आई. की हड़ताल की रिपोर्ट से कश्मीरी जनता वाकिफ थी। श्रीनगर में 5 साल की पत्रकार की नौकरी में लेखक को दो बार अमरनाथ की यात्रा का सौभाग्य मिला। पहली यात्रा सूचना एवं पर्यटन मंत्री रणधीर सिंह के साथ थी तो दूसरी अपने परिवार के साथ। अमरनाथ यात्रा की तैयारियों की जांच के लिए पर्यटन मंत्री के साथ पत्रकारों को भी जाने का मौका मिला जिसमें बी.आर.पी. भास्कर भी थे। अमरनाथ यात्रा के बहाने जम्मू-कश्मीर की यात्रा उनके लिए एक दुर्लभ अनुभव था। पहलगाम से होते हुए चंदनवाड़ी और शेषनाग होते हुए अमरनाथ पहुंचते हैं। समुद्रतल से 9500 फीट ऊंची चंदनवाड़ी से 13,000 फीट की ऊंचाई पर अमरनाथ गुफा स्थित है।

लेखक-पत्रकार अमरनाथ के आध्यात्मिक महत्त्व पर संस्मरण में प्रकाश डालते हैं। कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी'(इतिहास ग्रंथ) में भी अमरनाथ गुफा मंदिर का जिक्र मिल जाता है। कुछ कबूतर भी यहां दिखते हैं। पौराणिक आख्यानों के अनुसार इसी गुफा में परम शिव ने अमरत्व का रहस्य पार्वती देवी को बताया। वह रहस्य सुनने वाले भी अमर हो जाते हैं। इसी कारण पर्वत की ऊंची चोटी की गुफा को इसके लिए उन्होंने चुना। इत्तिफाक से जिन कबूतरों ने यह रहस्य सुना, वे अमरत्व को प्राप्त हो, वहीं उड़ रहे हैं। विदेशी शासन के दौरान अमरनाथ यात्रा विलंबित हुई और वह इतिहास से विस्मृत हो गई। इस दौरान भेड़ों को चराते हुए मुस्लिम युवक बूटा मलिक ने गुफा मंदिर को ढूंढ़ निकाला और वहां के बर्फ शिवलिंग का जिक्र सुनकर कुछ ब्राह्मण पंडितों ने मंदिर के पुनर्निर्माण की जिम्मेदारी उठाई। गुलाब सिंह, जो कश्मीर का राजा था, ने धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना कर सैकड़ों मंदिरों का उद्धार किया, जिसमें अमरनाथ गुफा मंदिर भी शामिल था।

संस्मरण में जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक आंदोलन और हिंसा-प्रतिहिंसा को भी विस्तार से बताया है। कश्मीर और वहां के राजनीतिक माहौल को लेखक ने इस तरह उकेरा है कि एक चित्र

सहज ही आंखों के सामने उभरता है। 1931 में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की अध्यक्षता में जम्मू-कश्मीर मुस्लिम कॉन्फ्रेंस का गठन हुआ, जो कश्मीर का प्रथम राजनीतिक संगठन था। 1982 तक इस संगठन के शेख अब्दुल्ला कश्मीर के तीन पीढ़ियों के युवा वर्ग में काफी लोकप्रिय रहे।

कवि इकबाल से प्रेरणा ग्रहण कर शेख अब्दुल्ला ने धर्मनिरपेक्षता का मार्ग अपनाया। इकबाल के 'सारे जहां से अच्छा, हिंदोस्तान हमारा' गीत को याद करते हुए लेखक-पत्रकार इस बात को भी सूचित करते हैं कि कश्मीरी पंडित ही कश्मीर के पूर्वज हैं। इस बात की ओर कवि इकबाल ने भी इशारा किया था। कश्मीर के राजनीतिक इतिहास पर विस्तार से इस संस्मरण में चर्चा हुई है। शेख अब्दुल्ला को मुस्लिम लीग से जोड़ने के मोहम्मद अली जिन्ना के प्रयास नाकामयाब रहे जिस पर विस्तार से यहां बताया गया है। 1931 में जम्मू-कश्मीर मुस्लिम कॉन्फ्रेंस की स्थापना से लेकर 2019 में मोदी सरकार द्वारा संविधान का अनुच्छेद 370 के हटाने तक की गतिविधियों पर बी.आर.पी. भास्कर ने चर्चा की है।

शेख अब्दुल्ला से 1964 में हुए साक्षात्कार के अनुभव को रचनाकार यहां साझा करता है। संस्मरण में चित्रित व्यक्ति समाज का हिस्सा होता है। शेख अब्दुल्ला एक ऐसी राजनीतिक हस्ती थे जिनकी उपस्थिति का प्रभाव पूरे कश्मीर और वहां के समाज पर लंबे समय तक रहा। तटस्थता और संतुलन के साथ बी.आर.पी. भास्कर ने शेख अब्दुल्ला के साथ हुई भेंटवार्ता का सजीव अंकन किया है। पत्रकार को अपनी राय थोपे बिना तथ्यों की सच्चाई को समाज के सामने लाना जरूरी है। 1975 में इंदिरा गांधी के समर्थन से शेख अब्दुल्ला मुख्यमंत्री बने और 22 साल के बाद अब्दुल्ला दोबारा कश्मीर प्रशासन में आए। संस्मरण अपने परिवेश का केवल शाब्दिक अभिव्यक्ति भर नहीं होता। इसमें लेखक का 'स्व' भी उपस्थित होता चला जाता है। बी.आर.पी. भास्कर एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जो राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक जिम्मेदारी को समझते हुए निष्ठा के साथ पत्रकारिता का कर्म निभाते रहे। विगत घटित घटनाओं को ठीक ढंग से याद रखकर उन्हें शब्दबद्ध कर पाना एक विशिष्ट योग्यता है। लेखकीय ईमानदारी के साथ कश्मीर के राजनीतिक दांव-पेच को तटस्थता के साथ अंकन कर पाना उनकी सफलता की पहचान है।

मलयालमभाषी पत्रकार-लेखक ए. रशीदुद्दीन दिल्ली में मीडिया वन चैनल के राजनीतिक संपादक हैं। 2019 में प्रकाशित 'अतिरतिइल्ले मुंताहा मरंगल' (सरहद के मुंताहा पेड़) रशीदुद्दीन का यात्रा वृत्त है, जिसमें उन्होंने लाहौर, इस्लामाबाद, रावलपिंडी, कराची, पेशावर, बालाकोट, कश्मीर के मुजफ्फराबाद, श्रीनगर, जम्मू, अनंतनाग, जैसलमेर से गुजरी उनकी यात्राओं का वर्णन किया है। यहां केवल दर्शनीय स्थलों का वर्णन नहीं बल्कि इतिहास, भूगोल, संस्कृति, अतीत और वर्तमान की राजनीति का मिश्रण है। पाकिस्तान और कश्मीर की सीमाओं से गुजरते हुए इस रचना में ऐसे मनुष्यों की गाथाएं हैं, जो संविधान के बंधनों से परे उच्च मानवीय मूल्यों को प्रकाशित करती पाठकों के जेहन पर छा जाती हैं।

लेखक ने भूमिका में कहा है, ''जब देश विभाजित होता है, तो दिल विभाजित होते हैं। भारत-पाकिस्तान विभाजन के सात दशक बीत चुके हैं। दिल्ली से लाहौर हवाई यात्रा से पहुंचने के लिए बस कुछ ही घंटे लगते हैं और सड़क मार्ग से यह 426 किलोमीटर की दूरी पर है, लेकिन एक औसत भारतीय के लिए पाकिस्तान एक अति दूर का देश बन गया है। दोनों देशों में कई सांस्कृतिक और भाषाई समानताएं होते हुए भी इनके संघर्ष-क्षेत्र कई हैं। कांटेदार बंधी सीमाएं और

ऊंचे-ऊंचे शिखरों से अलग होकर भी लोग जब आपस में मिलते हैं तो भाईचारे की ऐसी भावनाएं उमड़ती हैं, जो इन दोनों देशों की जनता के दिलों में हमेशा से प्रवाहित होती आ रही है।'' 'पाकिस्तान' नाम आज मानस पर अस्वस्थ करती आशंकाएं ही जगाता है। लेखक ने पाकिस्तान और भारत के भूगोल, संस्कृति और ऐतिहासिक धरोहर की समानताओं पर जोर देकर यह बताने का प्रयास किया है कि पाकिस्तान भी कभी हमारे मुल्क का हिस्सा था। भारत और पाकिस्तान के बीच सद्भावना और समन्वय की शुभकामना के साथ रशीदुद्दीन अपनी यात्रा को समेटते हैं।

हमारा अतीत और हमारा इतिहास विविधता में एकता लिये है। संसार के अन्य देश हमें विभिन्न रंगों के फूलों का बागीचा मानते हैं। सार्वभौमिक राष्ट्रवाद, धर्म, भाषा, नागरिक संहिता जब आज पूरी दुनिया को झकझोर रहे हैं, ऐसे समय में पाकिस्तान और कश्मीर पर बोलना और लिखना बहुत धैर्य की मांग रखता है। जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक परिदृश्य पर बेबाक होकर लेखक ने अपनी राय पेश की है। हमारे ही देश का खूबसूरत कश्मीर 'जन्नत' कहलाने पर भी पर्यटकों को आकर्षित करने में पीछे रह जाता है। 'मुन्ताहा' पेड़ के पत्तों का झड़ना मौत का प्रतीक माना जाता है। इन पेड़ों को सरहद के साथ जोड़कर लेखक ने पाठकों के जेहन पर ऐसे अनेकानेक शंकाएं-आशंकाएं-संवेदनाएं जगाई हैं। इसमें घटनाओं का लेखा-जोखा और यात्राओं के विवरण का मिश्रण होता है, जो भारत की आत्मा की खोज का रास्ता खोल देता है। हमारे ही देश का खूबसूरत कश्मीर 'जन्नत' कहलाने पर भी पर्यटकों को आकर्षित करने में पीछे रह जाता है। अखंड भारत के वे हिस्से जो बिखरे पड़े हैं, वे हमारे लिए कितने प्यारे हैं, कितना प्रिय है यह लेखक, जो हमें बार-बार याद दिलाता है।

आजादी के बाद देश के एक भाग से दूसरे भाग के लोगों के बीच मेल-मिलाप और आवाजाही में काफी वृद्धि हुई। इसकी वजह से लोगों के दृष्टिकोण में काफी विस्तार हुआ। भौगोलिक दृष्टि से केरल और कश्मीर दूर हैं, लेकिन केरलियों की साहित्यिक रुचि और ऐतिहासिक खोज उस दूरी को पाटने के लिए सहायक बनी हैं। इससे कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रा-वृत्तांत, नाटक, संस्मरण, अनुवाद इन सारी विधाओं में हमें कृतियां मिलती हैं जिनमें कश्मीर की आत्मा को अभिव्यक्ति मिली है। भौगोलिक दूरियां गौण हो गई हैं और रचनाकार कश्मीर के सौंदर्य, समाज, संस्कृति और राजनीति के साथ मानसिक तालमेल बिठा सके हैं। अपने आस-पास की दुनिया में अन्यत्र घट रही घटनाओं को देखते और अनुभूत करते हुए तथा मीडिया से सुनकर या जानकर उनके बारे में सोचते-समझते हुए, लेखक अपने पाठकों तक पहुंचाने के आंतरिक आग्रह के कारण लिखते हैं। सृजन के साथ निरंतर अपने युग की राजनीति के प्रति जाग्रत लेखक-पत्रकार-पर्यटकों ने अपनी प्रतिक्रिया, परिणाम एवं चिंतनशील विचारों को समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं, कहानी, कविता और यात्रा-वृत्तांत में अभिव्यक्ति दी है। मलयालम साहित्य में कश्मीर की खोज से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि रचनाकार ने 'स्थानीयता' का अतिक्रमण कर व्यापक परिप्रेक्ष्य में अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देकर कश्मीर समस्या के कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय आयामों पर रोशनी डाली है। साहित्यकारों के अवदान से कश्मीर-केरल के सांस्कृतिक संबंध आगामी दिनों में और भी मजबूत बने। □

कन्नड़ उपन्यास 'कशीर' में कश्मीर

मनोरंजिनी कोटेमने

कश्मीर समस्या को उपन्यास की कथावस्तु बनाकर लिखित कन्नड़ का पहला एवं एक अनोखा उपन्यास है—'कशीर'। लेखिका सहना विजयकुमार का उपन्यास 'कशीर' एक काल्पनिक उपन्यास नहीं बल्कि मानव जाति के सांस्कृतिक संघर्ष और त्रासदी का उपन्यास है। यह उपन्यास स्वानुभव का, मन के उत्पीड़न का उपन्यास है। लेखिका ने खुद कश्मीर की उन गलियों में जाकर अनुभव किया है, जहां अब तक लोग गए नहीं और जाने में डर का अनुभव कर रहे थे।

उपन्यास की प्रस्तावना में लेखिका ने उल्लेख किया है—'कशीर' का अर्थ है कशुर भाषा में 'कश्मीर'। 'नमस्ते शारदा देवी कश्मीर पुरवासिनी' कहते हुए हम हर दिन की शुरुआत करते हैं, परंतु दुर्भाग्य की बात है कि हमारी विद्यादि देवी का निवास हमारी पुण्यभूमि भारत में नहीं है। पाक आक्रमित कश्मीर में है। शारदा पीठ का अब भारत में न होना कश्मीर तथा उसकी ज्ञान-परंपरा के स्तंभ सरस्वती मां के प्रति भी एक अन्याय है, आज की त्रासदी को इससे समझा जा सकता है। लेखिका का यह दूसरा उपन्यास होते हुए भी बहुत ही कम समय में इस उपन्यास के चार संस्करण निकले हैं। जिसका प्रथम प्रकाशन जुलाई 2018 में हुआ था। इतना ही नहीं, 'कशीर' उपन्यास को उडुपि जिला कन्नड़ साहित्य परिषद् के द्वारा 2019 में 'चडग' पुरस्कार प्राप्त है।

यह उपन्यास बहु-प्रचलित कश्मीर मुद्दे की राजनीतिक समस्या का बहुत प्रभावी ढंग से वर्णन करता है। जहां इस्लाम एक मौलिक खतरा था, जो अंततः कश्मीरी हिंदुओं की मृत्यु का कारण बन गया। आज का कश्मीर राजनीति के साथ धर्म के हस्तक्षेप की त्रासदी का एक ज्वलंत प्रमाण है।

कन्नड़ के वरिष्ठ एवं लोकप्रिय उपन्यासकार डॉ. एस.एल. भैरप्पा जी ने 'कशीर' की प्रस्तावना में कहा है, ''भारतीय बुद्धिजीवियों की यह धारणा है कि कश्मीर की समस्या भारत और पाकिस्तान के बीच के मनमुटाव का मूल कारण है। यह समस्या सुलझ गई तो भी और भारत की ओर से लद्दाख-जम्मू के साथ कश्मीर को दान देने पर भी पाकिस्तान कुछ नई-नई समस्या को खड़ा कर देता है। हमारे जो बुद्धिजीवी हैं, वे इस सत्य को मानने के लिए तैयार नहीं होते और उसकी जड़ को समझने का प्रामाणिक प्रयास भी नहीं करते। वे केवल वोट बैंक के लिए आतंकवादी तक को बचाने का प्रयास करते हैं। इस सूक्ष्म एवं जटिल समस्या का चित्रण उपन्यास में लाने का एक सफल एवं साहसपूर्ण कार्य सहना विजयकुमार ने किया है।''

कन्नड़ के वरिष्ठ रचनाकार भैरप्पा का प्रभाव सहना विजयकुमार की कृति में स्पष्ट है। यह एक प्रतिभाशाली और चुनौतीपूर्ण कार्य है, जिसने कश्मीर में बहुत कम ज्ञात क्षेत्रों की खोज करके अपने विषय पर गहन शोध किया है। जहां बिखरे हिंदुओं को यहूदी बस्ती में एक दयनीय अस्तित्व का नेतृत्व करने के लिए मजबूर किया जाता है।

यू.के. की रहनेवाली युवा लेखिका वैशाली दामले 'कशीर' के बारे में लिखते हुए कहती हैं, ''कश्मीर में वास्तव में जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में देशभक्त और उत्सुक होनेवाले के लिए यह एक अवश्य पढ़ने योग्य पुस्तक है। यह पुस्तक कल्पना से अधिक कश्मीर के बारे में है। कश्मीर मुद्दे के बारे में रचनाकार के अध्ययन और कश्मीर मुद्दे की वास्तविकता को समझने की उनकी कोशिश, कश्मीर घाटी की प्रशंसा है। वर्तमान राजनीतिक स्थिति में, इस तरह के एक नाजुक मुद्दे को उठाते हुए लिखना कोई छोटी-सी बात नहीं है।"

पुस्तक उन लोगों को पढ़ने के लिए विशेष रूप से दर्दनाक है, जिनके दोस्तों और रिश्तेदारों के माध्यम से कश्मीर के साथ घनिष्ठ संबंध हैं। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि पीड़ित सामान्य रूप से हिंदू हैं और न केवल पंडित, सत्य का यह भ्रामक रूप पत्रकारों और राजनेताओं द्वारा उपयोग किया जाता है, जो त्रासदी की भयावहता को कम करता है। पंडित, आमतौर पर केवल एक समुदाय, सारस्वत ब्राह्मणों को संदर्भित करते हैं। ऐसे अन्य हिंदू मौजूद हैं, जो पीड़ित थे, जिनकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। 'कशीर' से संबंधित एक अवलोकन समारोह में विस्थापित कश्मीरी हिंदू एवं सामाजिक कार्यकर्ता दिलीप काचरू वेदना से कहते हैं ''यह एक उपन्यास नहीं है, भावनाओं का ग्रंथ है, हम जैसे विस्थापितों की दर्दभरी कहानी है क्योंकि सहना जी ने एक नए तरीके से हमारी वेदना, भावनाओं को भारतीयों को समझाने की जो कोशिश की है, उसमें सफल हुई हैं। वैसे देखा जाए तो हमारी भावनाओं के लिए कोई मोल नहीं है। कश्मीरी मुसलमानों ने हमेशा भारत के राजनेताओं को बेवकूफ बनाया है और हम उस बेवकूफी में मस्त हैं, नेहरू से लेकर अब तक। इसलिए 85 प्रतिशत कश्मीरी हिंदू उपेक्षित हो चुके हैं।''

रचनाकार एवं स्तंभ लेखक संदीप बालकृष्ण ने इसी समारोह में अपने वक्तव्य में कहा था, ''सहना जी ने कश्मीर जैसी वस्तु को निर्भयता से हमारी आंखों के सामने रखा है और जटिल समस्या तथा त्रासदी को बहुत सीधे तरीके से प्रस्तुत किया है कि पूरी घटनाओं को महसूस कर सकते हैं।''

कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है और भारतीय संस्कृति से इसका गहरा जुड़ाव है, जो अनंतनाग, श्रीनगर जैसी नगरों तथा किशन गंगा जैसी नदी से भारत का लगाव प्राचीन है। इसने कश्यप, कल्हण और संभवतः स्वयं कालिदास जैसे विद्वानों और संतों का निर्माण किया है और शंकराचार्य पीठ के अलावा, महान मार्तंड मंदिर और अमरनाथ गुफा मंदिर है, जो इसकी हिंदू पहचान के बारे में इंगित करता है।

इस उपन्यास में लेखिका प्रमुख मुस्लिम धर्मग्रंथों (कुरान और हदीस) के संदर्भ भी प्रदान करती हैं ताकि प्रमुख आंकड़ों के आचरण को समझाया जा सके। इस उपन्यास में कई आकर्षक

चरित्र हैं, जो विशद रूप से उकेरे गए हैं। एक सुंदर अवलोकन कश्मीर को गरीब और अविकसित रखने में धारा 370 द्वारा निभाई गई गंभीर भूमिका है। जो कोई भी कश्मीर त्रासदी की सही तस्वीर लेना चाहता है, उन्हें इस उपन्यास को पढ़ने पर मिल जाता है। यह उपन्यास कन्नड़ भाषा में लिखा गया है। इसमें सरदार पटेल को अपना दोस्त बताने की नेहरू की कोशिश जैसी ऐतिहासिक घटनाओं का जिक्र है। साथ ही नेहरू और उनके सहयोगियों द्वारा स्थिति की गलतफहमी का एक संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण है, जिसने विवाद को एक त्रासदी में बदल दिया। लेखक को इतिहास के बारे में गहन जानकारी के लिए बधाई दी जानी चाहिए। रामचंद्र गुहा जैसे नेहरूवादियों द्वारा दोष को आसानी से माउंटबेटन में स्थानांतरित कर दिया गया है। हालांकि माउंटबेटन भी अपराध में भागीदार थे।

उपन्यास में चित्रित पात्रों में अधिकांश भारतीय पात्र काल्पनिक हैं। काल्पनिक पात्रों के आधार पर भारतीयों की हताशा-क्रोध-असहायता-शर्म की भावना को उपन्यास में प्रदर्शित किया गया है। उपन्यास हमारे बीच एकता की भावना पैदा करने में विजय प्राप्त करता है, जो हमें अपने विचारों को बदलने में मदद करता है कि इस तरह की त्रासदी क्यों उत्पन्न की गई? पात्रों के साथ उपन्यास, राजनीतिक कार्यसूची, धार्मिक कट्टरपंथ और वर्तमान मामलों के संबंध में कश्मीर से संबंधित विषयों और घटनाओं को अलग करने के लिए पाठकों को मदद करता है। कथा शैली बहुत ही आकर्षक है, जो हमें कश्मीर के इतिहास का दिग्दर्शन कराती है, जो ऋषि कश्यप से शुरू होता है। पुराणों और श्लोकों का पर्याप्त संदर्भ है। कश्मीर का उल्लेख, इसकी रचना या प्रांत की सुंदरता का वर्णन करना, वास्तव में, उपन्यासकार का एक बहुत ही सराहनीय प्रयास है। हर किरदार जीवंत लगता है, एक ऐसा व्यक्ति जिसे हम सभी अपने दैनिक जीवन में देखते हैं। वह चरित्र है, नरेंद्र का, जो हमें अपनी सोच को जगाने के लिए प्रेरित करता है।

उपन्यास 'कशीर' में हृदयनाथ पंडित नामक पात्र के माध्यम से लेखिका ने कश्मीरी हिंदुओं के अपनी और शारदा पीठ की अस्मिता का जो डर है, उसको जीवंत किया है। अंत तक पंडित जी कश्मीर में ही रहते हैं और वे कश्मीर की, शारदा पीठ की आजादी चाहते हैं।

उपन्यास में नायक नरेंद्र के माध्यम से लेखिका ने खुद कश्मीर जाकर जो महसूस किया है, उसका प्रतिबिंब दिखाया है। नरेंद्र के माध्यम से सहना जी ने कश्मीर को दक्षिण के साथ जोड़ने की कोशिश की है। इतना ही नहीं, उन्होंने जो कश्मीर में दर्द, वेदना का व्यक्तिगत अनुभव किया था, उसे नरेंद्र के चरित्र में बयान किया है। ''समय-समय पर सत्पुरुषों का आगमन होना चाहिए। वीरसंत बंगाल से कन्याकुमारी तक गए थे, उसी प्रकार महागुरु शंकराचार्य कालडी (केरल) से कश्मीर आए थे। जग की भलाई के लिए संगृहीत शक्तियों का उपयोग होना चाहिए।''(पृ. 147)

नरेंद्र के बेंगलुरु से कश्मीर पहुंचने के बाद संजीव कौल कश्मीर दिखाते हुए कश्मीर का चित्रण इस तरह करता है, ''देखिए, अब माहौल कितना शांत है। सभी अपने-अपने काम में व्यस्त हैं। ऐसा लगता है, यहां कुछ होता ही नहीं। जैसे ही कोलाहल मचना शुरू हो जाता है तब सभी घबराहट से उथल-पुथल हो जाते हैं। कहते हैं, यहां तालाब का निर्मल एवं शांत जल भी खतरे की सूचना मिलते ही अपना रंग बदलता है।''(पृ. 146)

नरेंद्र, संजीव कौल के घर पर रहकर कश्मीर की हर गली में घूमता है, जहां लोग जाने में भयभीत हो जाते हैं और कश्मीर के हिंदुओं के साथ होनेवाली हिंसा, अन्याय को अपनी आंखों से देखता एवं अनुभव करता है। उसके साथ भी कुछ अनहोनी घटनाएं होती हैं, जो हिंदुओं के साथ होती हैं। इसलिए जो अलगाववादी प्रेरणा से पत्थर मारने का काम कर रहे हैं, उनसे बातचीत कर, उन्हें बदलने की कोशिश करता है जिसमें कुछ हद तक सफल भी होता है। पर उसका अंत बहुत दर्दनाक होता है। मुश्ताक जैसे कट्टरपंथी के निर्दोष भोले-भालेपन का अंत हो जाता है। यहां तक बशीर से भी बात कर कैलाश जी को इंसाफ दिलाने की कोशिश करते-करते समझ में आ जाता है कि बशीर मुस्लिम है, पर हिंदू विरोधी नहीं है। कैलाश जी के अंतःमन की वेदना, न्याय की गुहार करने के पीछे का दर्द उनकी डायरी पढ़ने के बाद समझ में आ गया था। नरेंद्र कहता है, "अपनी सुरक्षा के लिए क्षात्र-धर्म ही आवश्यक है, वही चैतन्य रहित होने के बाद संघटन की शक्ति कहां से आएगी? जो चाहिए वही नहीं है तो कैसे बदलाव लाया जा सकता है? जाति, उपजाति, धर्म के नाम पर लड़नेवाली हमारी जनता को कभी भी इस गंभीर एवं भयानक स्थिति के बारे में पता ही नहीं चलेगा।" (पृ. 242)

नरेंद्र अंत तक कश्मीरी हिंदू और कश्मीर की भलाई चाहनेवाले मुस्लिमों के साथ लड़ता है, पत्थर की मार खाता है, लोगों को आतंकवादी हमलों से बचाने के लिए भी हाथ जोड़ता है।

'कशीर' में एक प्रमुख पात्र है—कैलाश पंडित (कैलाश मास्टर), बूढ़े हैं, जिन्होंने 1986 और 1990 की हिंसा, अत्याचार को अपनी आंखों से देखा है। उन्हें सामने के घरवाले बहुत करीबी दोस्त मुस्लिम परिवार द्वारा की गई हिंसा, अत्याचार से अपने बेटा-बेटी, पत्नी को खोना पड़ा। इस घटना के बाद मजबूर होकर घर छोड़कर कश्मीरियों के लिए बनाए गए सुरक्षा क्षेत्र घेट्टो में रहने लगे। पर जिस परिवार ने उन पर अन्याय किया था, उनके घर के सामने प्रतिदिन अजान के समय वे घंटी बजाते हैं और 'मेगच्छ इंसाफ' चिल्लाते हैं। वे डायरी में लिखते हैं कि चोल राजा के समय न्याय के लिए ऐसे ही घंटी बजाई जाती थी। इसलिए वे भी बशीर के परिवार से न्याय मांग रहे हैं। कैलाश मास्टर की दयनीय स्थिति को तो बातों से बयान नहीं कर सकते। क्योंकि जिस लड़के को पढ़ाया-सिखाया था, उसी ने उनके घर के चिराग को बुझा दिया। बेटा सतीश घोड़ी लाने गया था तो वापस लाश होकर आता है। सतीश की लाश को बशीर के दूसरे बेटे आसिफ (कैलाश जी के छात्र) मास्टर के सामने फेंककर जाता है। बेटी सविता जिसको भैया बुलाया करती थी, उसी के द्वारा उसपर अत्याचार होता है और उसका कत्ल भी। इससे उनकी पत्नी की सांस भी रुक गई।

'कशीर' में लेखिका ने मुस्लिम पात्रों को खुले मन से और अत्यंत सहानुभूति से चित्रित किया है। बशीर, कैलाश पंडित के बहुत करीबी दोस्त थे। परंतु कट्टरवादी पत्नी और आतंकवादी बेटे के कारण उत्पन्न हालत से कैलाश जी की आंखों से आंख भी मिला नहीं सकते थे। परंतु उनकी इस मजबूरी के कारण उन्हें ही अपने दोनों बेटों को खोना पड़ा। एक जो आतंकवादी बन गया था, एनकांउटर में मारा जाता है और दूसरे को दुकान के साथ जला दिया जाता है। बशीर इस्लाम की कट्टरवादी नीति को चाहते नहीं थे, पर वे असमर्थ बनकर अंत तक घुटन भरी जिंदगी

जी लेते हैं। दर्द भरी नजर से कैलाश जी की घंटी बजाना देखते रहते हैं। घंटी बजाना भी रोक नहीं सके और न्याय भी नहीं दे सके।

कश्मीर में पत्थरबाजी करने वालों के नायक मुश्ताक को हिंदू विरोधी बनने के कारण जिंदगी में कई उतार-चढ़ाव देखने पड़े, अंततः उसका बुरा अंत होता है। आजादी की लड़ाई में शरीक उसके एक दोस्त की आतंकवादियों ने नृशंस हत्या कर दी। नरेंद्र के साथ बातचीत करने के बाद वह बदल जाता है। पर अंत में धर्मगुरु मुफ्ती लतीफ उससे बात करने के बहाने बुलाकर आतंकवादियों के हवाले कर देते हैं और आतंकवादी उसे मार देते हैं।

लेखिका 'उदयवाणी' पत्रिका के साथ बातचीत में कहती हैं कि कश्मीर में सलीम जैसे बहुत सारे मुस्लिम भी हैं, जो कश्मीर की प्रगति चाहते हैं और कश्मीर को भारत का हिस्सा बनाना चाहते हैं, लेकिन अलगाववादियों के कारण चुप हैं, रोष से बचने का कोई रास्ता न पाकर स्वतंत्र रूप से अपनी राय व्यक्त करने में असमर्थ हैं। राजनीतिक उथल-पुथल के कारण नौकरियों से वंचित लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। उपन्यास में लेखिका सलीम के माध्यम से कहती हैं, ''ये कैसा विपर्यास है, देखिए सर, हमारे लोगों को यह भी पता नहीं है कि उनका गलत कार्य के लिए उपयोग किया जा रहा है। आज भी आम जनता अपने छोटे-छोटे बच्चों को अलगाववादी नायकों के कहने पर पत्थर मारने के लिए भेज रही हैं। पर यही अलगाववादी नायक अपने बच्चों को क्यों नहीं भेज रहे हैं? यहां तक कि कश्मीर में भी उनके बच्चों को रहने नहीं दिया। पढ़ाई के लिए विदेश भेज दिया है। उनके बच्चे विदेश में चैन की सांस ले रहे हैं तो यहां मासूम आम जनता के बच्चे आजादी के नाम पर चिल्लाते हुए गोली खा रहे हैं।'' (पृ. 265)

लेखिका 'उदयवाणी' पत्रिका के एच. मंजुनाथ के साथ की गई बातचीत में आगे कहती हैं, ''मैं जब भी कश्मीर के बारे में सोचने लग जाती हूं तब मेरे मन में यह प्रश्न उठता है कि किस कारण से कश्मीरियों को यह सजा? आज दुनिया की चिंतन शैली बदल गई है। परंतु कश्मीर की समस्या तो और भी उलझती जा रही है। मानव अधिकार पर क्षति पहुंचने पर कोई भी प्रश्न नहीं कर रहे हैं। भारतीय बुद्धिजीवियों का कहना है कि सेना के कार्य/बरताव से आतंकवादियों के मानव अधिकार को क्षति पहुंची है। तो फिर कश्मीरी हिंदुओं के साथ जो अत्याचार, हिंसा, यहां तक कि सालों से रह रहे पुरखों से मिला घर, जमीन-जायदाद को जड़ सहित उखाड़कर फेंक दिया गया, उन्हें स्थानांतरित किया गया, अपने ही देश में परदेसी कहा गया, इसके लिए कोई मोल नहीं क्या? क्या इनके मानव अधिकार को क्षति नहीं पहुंचती है?''

उपन्यास में संजीव और आरती कौल केवल काल्पनिक पात्र नहीं हैं, वे कश्मीर में जारी हिंसा के असली चेहरे हैं। इसी तरह, कश्मीर मुद्दे की वैधता के बारे में कोई जागरूकता नहीं है, न ही बौद्धिक/नैतिक मूल्य, यह कश्मीर में अल्पसंख्यकों के लिए अनुचित है। जहां मीरादेवी की भूमिका उन बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि के रूप में है, जो तर्क देती है कि मानव अधिकारों का उल्लंघन है। जो हमारे भारत की भूमि है, जो भारत का प्रतीक है, कश्मीर और कश्मीरियों के साथ अन्याय, हम सभी के साथ अन्याय है। इसकी आलोचना करने की बौद्धिक और नैतिक खूबियों

के बावजूद, मीरादेवी और सुंदर कृष्ण जैसे बुद्धिजीवियों के प्रतिनिधि हैं, जो इस बात पर जोर देते हैं कि कश्मीर में अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय हुआ है और मानवाधिकारों का उल्लंघन हुआ है। आज कश्मीरी चैन की सांस लेने के साथ-साथ आर्थिक विकास चाहते हैं, न कि धार्मिक या राजनीतिक अलगावपन।

सहना विजकुमार एक ओर बताती हैं, ''कश्मीर, एक ओर जेकेएलएफ अलगाववादी संघटन से और दूसरी ओर आईएसआई जैसे पाकिस्तानी आतंकवादियों से दब गया है। अब कश्मीर के मुसलमानों को यह समझ में आना चाहिए कि उन्हें गलत कार्य के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। उन्हें कानूनन भारत के साथ जुड़कर हाथ मिलाते हुए, नीति-नियमों का पालन करते हुए भारतीयों के साथ एकजुट होना जरूरी है।

उपन्यास के नायक नरेंद्र के चरित्र द्वारा लेखिका यह संदेश देती हैं कि सभी देशवासियों को कश्मीरियों की तरफ से खड़ा होना चाहिए और सच्चाई के लिए लड़ना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ–

1. कुमार, विजय, सहना (2018). 'कशीर' (मूल कन्नड़ में), बेंगलुरु : साहित्य भंडार।
2. 'उदयवाणी' और 'प्रजावाणी' कन्नड़ दैनिक पत्रिका।
3. सहना जी के फेसबुक पेज
   https://www.facebook.com/search/top/?q=sahana%20vijayakumar
4. कशीर फेसबुक पेज
   https://www.facebook.com/%E0%B2%95%E0%B2%B6%E0%B3%80%E0%B2%B0-&1809826892416681

□

कन्नड़ साहित्य में कश्मीर

टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी

कश्मीर का नाम लेते ही हमारे मन में कश्मीर की प्राचीन संस्कृति, शारदा पीठ, शंकराचार्य, शैव संस्कृति, नौवीं शती में आचार्य अभिनवगुप्त द्वारा प्रतिपादित 'प्रत्यभिज्ञादर्शन', जो कश्मीर शैव सिद्धांत के रूप में प्रसिद्ध है, यह सब स्मृति पटल पर आ जाता है। बारहवीं शती के महात्मा बसवेश्वर की भक्ति केंद्रित विचारधारा के पीछे तमिलनाडु के तिरसठ पुरातन शरणों की मुग्ध भक्ति, नौवीं शती में ही गोरखनाथ के नाथ संप्रदाय का प्रभाव देखा जाता है। कहा जाता है कि बसवेश्वर से स्थापित अनुभव मंडप के अध्यक्ष योगी अल्लमप्रभु नाथ संप्रदाय में थे और उन्हें नवनाथों में एक माना जाता है। अल्लम शब्द संस्कृत में अल्लामः है। यह शब्द कश्मीर में भी इसी अर्थ में है, उदाहरण—अल्लामा इकबाल।

बारहवीं शती में कश्मीर से आए राजा महादेव भूपाल और रानी गंगादेवी कल्याण में जहां बसवेश्वर राजा बिज्जल के मंत्री थे, मोलिगे मारय्या और मोलिगे महादेवम्मा बनकर आए। मोलिगे का अर्थ है—लकड़हारा अर्थात् जंगल से लकड़ी काटकर उन्हें नगर में बेचकर जीविका चलाने वाला। श्रमजीवी बनकर पति-पत्नी कल्याण में रहते थे और अनुभव मंडप की चर्चाओं में भाग लेते थे। दोनों ने वचन रचनाएं की हैं। मारय्या के 808 और महादेवी के 70 वचन उपलब्ध हैं। ये वचन कन्नड़ भक्ति साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनके वचनों में आध्यात्मिक धारणा, अनुभव की पहुंच और सामाजिक सरोकार की अभिव्यक्ति पाई जाती है। एक महिला वचनकार हैं—बोंतादेवी। इनका वास्तविक नाम निजदेवी है। कहा जाता है कि ये कश्मीर के मांडव्यपुर की राजकुमारी थीं। इनकी गुप्त भक्ति थी। इनके छह वचन उपलब्ध हैं। उनमें शिव का स्वरूप, अनंतता, साथ ही आध्यात्मिक साधना और सामाजिक आस्था दिखाई पड़ती है। इनकी रचना में अभेद स्थिति का वर्णन देखिए—

बस्ती के भीतर ब्राह्मण का खुला प्रदेश।
बस्ती के बाहर अंत्यज का खुला प्रदेश ऐसा क्यों?
जहां भी देखो खुला प्रदेश एक ही है।
केवल भित्ति के कारण भीतर बाहर का भेद।

तेरहवीं शती में कर्नाटक के शिव कवि हरिहर ने 'मलुहण देवर रगले' लिखा है। यह काव्य रगले छंद में है। काव्य नायक मलुहण देव कश्मीर के थे। कवि हरिहर ने कश्मीरी लोककथा के आधार पर शिवभक्त मलुहण पर यह शृंगार काव्य रचा है। एक वेश्या पर आसक्त मलुहण वेश्या के यहां धन के बिना जाने पर द्वार न खोलने से बाहर ही हिम में ध्यानस्थ हो, समाधिस्थ हो जाता है। लौकिक प्रेम शिवभक्ति में परिणत होने का दृश्य असदृश्य है। आधुनिक संदर्भ में भी जब बारहवीं शती के शरणों का अध्ययन, अनुवाद किया जा रहा है। भारतीय भक्ति साहित्य के संदर्भ में तुलना की जा रही है तब भी कश्मीर की याद अविस्मरणीय है।

चौदहवीं शती में कश्मीर की शिवानुभवी लल्लेश्वरी, जिसे लल्ला दद्दा भी कहा जाता है, उसकी तुलना कर्नाटक की बारहवीं शती की शरणी अक्कमहादेवी से की जाती है। आंडाल, मीरा, अक्कमहादेवी, लल्लेश्वरी भारतीय भक्ति साहित्य की स्त्री भक्ति रत्न हैं। लल्लेश्वरी पर कन्नड़ में श्री आर. विजयराघवन ने 'लल्लेश्वरी' शीर्षक से कृति रची है जिसमें लल्लेश्वरी की कविताओं का कन्नड़ अनुवाद है। इसी संदर्भ में डॉ. एम.एस. आशादेवी की पुस्तक 'बेलकिगिंत बेल्लगे' (प्रकाश से भी धवल) की याद आती है। बेलकिगिंत वेल्लिगे साहित्य अकादमी, दिल्ली से प्रकाशित है। इसमें कन्नड़ महिला वचनकार और मध्ययुगीन महिला अनुभावियों के साथ स्त्रीवाद के संदर्भ में अनुसंधान है। इसमें लल्ला (लल्लेश्वरी), अक्कमहादेवी, मीरा, आंडाल के साथ आध्यात्मिक संवाद है।

बसव समिति, बेंगलुरु द्वारा वचनों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद की एक बड़ी योजना संपन्न हो रही है, इस योजना के अंतर्गत 25 भारतीय भाषाओं में अनुवाद का कार्य हो चुका है। कश्मीरी भाषा में भी डॉ. मुहम्मद जमां आजुर्दा के संपादकत्व में अनुवाद हो चुका है। अब डोगरी, अरबी और पर्शियन भाषाओं का अनुवाद डॉ. आजुर्दा के नेतृत्व में हो रहा है। इस सिलसिले में पिछले साल श्रीनगर जाने का मौका मिला। वहां पांच दिनों तक अनुवाद कार्यशाला का आयोजन हुआ। बसव समिति के अध्यक्ष श्री अरविंद जत्ती जी के साथ मुझे भी जाने का अवसर मिला। श्रीनगर में हम डल सरोवर के तट के पास ही होटल में ठहरे थे। डॉ. आजुर्दा और उनके साथियों का आतिथ्य और व्यवस्था ऐसी थी कि हम भूल ही गए थे कि एक आतंकवादी संदर्भ की भयानकता में हैं। पास ही उत्तुंग शंकराचार्य पहाड़ को देखा। याद आया, भारतीय प्राचीन संस्कृति, साहित्य दर्शन का विकास यहीं से हुआ था। आज भी प्राकृतिक सौंदर्य, शृंगारिकता, विद्वत्ता और कलात्मकता में कोई कमी नहीं आई है। हमने पूछा कि वचनों का अनुवाद आपको कैसा लगा, उनकी प्रतिक्रिया थी कि 'वचन' मानवता का खजाना है।

कन्नड़ के कवियों के लिए भी कश्मीर प्राकृतिक सौंदर्य और प्रेम का प्रतीक है। कन्नड़ के प्रसिद्ध ज्ञानपीठ पुरस्कृत कवि कुवेंपु (डॉ. के. वी. पुट्टप्पा) ने प्रकृति सौंदर्य और प्रेम पर रचे कविता संकलन का नाम 'प्रेम काश्मीर' रखा है। कश्मीर पर यात्रा साहित्य भी कन्नड़ में है। सामान्यतया यात्रा धार्मिक, शैक्षणिक और देशाटन के उद्देश्य से की जाती है। यात्रा तो लोग करते ही रहते हैं, परंतु उन यात्रा के अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने वाले अधिक नहीं होते।

कन्नड़ के लेखक गुरुनाथ जोशी जी ने 1939 में ही अपनी कश्मीर यात्रा के अनुभव पर 'काश्मीर प्रवास' शीर्षक से कृति धारवाड़ (कर्नाटक) से प्रकाशित की थी। यह कृति कश्मीर के दर्शनीय स्थलों के परिचय तक ही सीमित है। साहित्यिक दृष्टि से महत्त्व के अंश कम हैं। इसी प्रकार बी. एस. स्वामी की कृति 'कन्याकुमारीयिंद काश्मीरद वरेगे' (कन्याकुमारी से कश्मीर तक) एक यात्रा कथन है। इसमें भी यात्रा अनुभव का सार है। साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की ओर से कन्नड़ की 13 लघु कथाओं का कश्मीरी में अनुवाद कार्य हुआ है। इन छोटी कहानियों में यू.आर. अनंतमूर्ति की 'कार्तीक', देवनूरु महादेव की 'ओंदु दहनद कथे' (एक दहन की कथा), यशवंत चित्ताल की 'आता' (वह), आनंदकंद की 'जोगती कल्लु' (जोगती शिला), मास्ती वेंकटेश अय्यंगार जी की 'वेंकटिगन हेंडती' (वेंकटिग की पत्नी) और शांतिनाथ देसाई की 'गंड सत्त मेले' (पति के मरने के बाद) कहानियां शामिल हैं। इनके अनुवादक हैं—कश्मीरी भाषा के साहित्यकार शांद्रा जान, अब्दुल अहद, फयाज, गौरीशंकर रैणा, इनायत गुल, फारूक फया आदि। यह अनुवाद कार्य भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

कश्मीर के लोकजीवन और आज की स्थिति पर कन्नड़ में एक उपन्यास लिखा गया, उसका शीर्षक है—'कशीर'। उपन्यासकार हैं—सहना विजयकुमार। यह पुस्तक 2018 में बेंगलुरु से प्रकाशित हुई है। इसकी लोकप्रियता इतनी हो गई कि कृति लोकार्पण के कुछ ही दिनों में बिक गई, अतः दूसरा मुद्रण भी निकला। कर्नाटक के प्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. एस. एल. भैरप्पा जी ने इसकी भूमिका लिखी है और उसमें बताया गया है कि आज की इस स्थिति में लेखिका ने कश्मीर जाकर वहां के लोगों की परिस्थिति खुद देखकर स्वानुभव से इस उपन्यास की रचना की है। डॉ. भैरप्पा जी का कथन है कि ''पूरे राष्ट्र और मानव जाति के साहित्यिक संघर्ष की वस्तु को लेकर उसके लिए आवश्यक अध्ययन, धैर्य, चिंतन, अन्वेषण में अपने को लगाना भविष्य के लिए भरोसे का काम है।'' लेखिका ने उपन्यास के द्वारा उस भरोसे को दर्शाया है। यह सहना विजयकुमार का दूसरा उपन्यास है। लेखिका अपनी बात में लिखती हैं—'' 'कशीर' का अर्थ कशूर भाषा में 'कश्मीर' है। इस कृति की रचना के लिए मैं क्षेत्र कार्य करने जम्मू और कश्मीर जब गई, वहां हिंदू और मुसलमानों ने मदद की। उन्हें मेरा धन्यवाद।'' कश्मीर की समस्या का अध्ययन कर और स्वयं वहां जाकर उन लोगों के बीच रहकर उस अध्ययन के अनुभव को उपन्यास के रूप में पाठकों के सामने रखने का साहसपूर्ण काम किया है। यह अभिनंदनीय कार्य है।

कन्नड़ में कश्मीर पर एक पुस्तक निकली है। उसका शीर्षक है—'पंजरदल्लि काश्मीर' (पिंजरे में कश्मीर)। लेखक हैं—श्री हुलिकट्टे चेन्नबसप्पा। यह कूगु प्रकाशन दावणगेरे (कर्नाटक) से प्रकाशित है। इसमें कश्मीर का प्राचीन वैभव, रुद्ररमणीयता, भारत की संस्कृति का शारदापीठ, भारतीय काव्य मीमांसा का रंगमंच आदि विशेषणों का प्रयोग हुआ है। प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से कश्मीर सच्चे अर्थ में भारत का सरताज है। कश्मीर भारत की मानसिकता का प्रतीक है। विविधता में एकता का संगम है। एक ओर शैव, वैदिक, बौद्ध, सूफी दर्शन के संगम हैं तो दूसरी ओर

आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, कुंतक, कल्लट आदि कवि पंडितरत्न हुए। कल्हण की 'राजतरंगिणी' तो अनुपम देन है कश्मीर की। उनके साथ ही लेखक ने आज की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। कश्मीर का विशेष स्थान-मान विधि 370 आदि पर अपने विचार लेखक ने व्यक्त किए हैं।

पंद्रहवीं शती की कवयित्री हब्बा खातून की पंक्तियां आज भी हमारे मन को ठेस पहुंचाती हैं–

मैं आनंद से विकसित हरा वृक्ष थी
वृक्ष काटने वालों ने कसाई की तरह
मेरे अंग-अंग तोड़ गिराए
टूटे अंगों को जलाकर, भस्म कर
ऐसा कर दिया कि मैं दिन-रात क्लांत रहूं।

□

तमिल साहित्य में कश्मीर

एम. गोविंदराजन

तमिलनाडु की सामान्य जनता कश्मीर के संबंध में बहुत कम जानती है। लोग इतना जानते हैं कि कश्मीर भारत के उत्तर में है। वह प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है। कुछ शिक्षित लोग, कुछ पर्यटक लोग, कुछ व्यापारी लोग, कुछ उद्योगपति लोग कश्मीर की यात्रा कर आए होंगे या कुछ सिनेमा वालों ने कश्मीर के कुछ हिस्से में शूटिंग की होगी। इससे बढ़कर तमिलनाडु के लोग कश्मीर के बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानते होंगे। यह बात ठीक वैसी ही है जैसे कश्मीर के लोग तमिलनाडु के बारे में जानकारी रखते हैं। मैं इस बात का उल्लेख इसलिए कर रहा हूं कि आज भी उत्तर भारत के कुछ लोग यह गलत धारणा रखते हैं कि तमिलनाडु के लोग रावण के वंशज हैं और वहां जाने से उनके द्वारा उनका अहित हो जाएगा। इसका कारण यह है कि तमिलनाडु का या दक्षिण का इतिहास उत्तर में नहीं सिखाया जा रहा है। यही स्थिति दक्षिण की, खासकर तमिलनाडु की है। इसलिए इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं कि तमिल भाषा में कश्मीर के संबंध में साहित्यिक रचनाओं की संभावना बहुत कम रही है। कुछ हुई भी हो तो वह भी कश्मीरी जनता के नाम पर, उनके स्वयं निर्णय वाला पक्ष या किसी धर्म का पक्ष लेते हुए या सैनिक कार्रवाई का विरोध करते हुए या भारतीय संविधान की आलोचना करते हुए रचित हैं। कुछ कृतियां राष्ट्र-हित को ध्यान में रखते हुए, राष्ट्र के अतीत की जानकारी देते हुए वर्तमान समस्या की व्याख्या करते हुए रचित हैं।

मेरे विचार में गत पांच-छह दशक में तमिल साहित्य में कश्मीर के संबंध में बीस-तीस सृजन कार्य हुआ हो तो बहुत अधिक है। हां, तमिल भाषा में कश्मीर के संबंध में सृजन कार्य बहुत कम हुआ है। शायद मेरा यह अनुमान भी सही होगा कि तमिलनाडु के भूत एवं वर्तमान के राजनेताओं में भी कश्मीर क्या है, कश्मीर का इतिहास क्या है, कश्मीर के साथ दक्षिण के आदि शंकराचार्य और रामानुजाचार्य का संबंध क्या है, कश्मीर पर दक्षिण के शैव व वैष्णव संप्रदाय का प्रभाव क्या है, कश्मीर की संस्कृति क्या है, कश्मीर की समस्या क्या है, इस समस्या का मूल कारण क्या है, इसका निवारण क्या है, इत्यादि बातों की सही नहीं, थोड़ी-सी जानकारी रखने वाला कोई नेता विरले ही होगा।

पांच लाख कश्मीरी पंडित जब अपने ही देश में शरणार्थी बने तब भी तमिल साहित्य के कानों पर जूं तक न रेंगी। कश्मीर में आतंकवादियों के कारण न केवल हिंदुओं की बल्कि मुसलमानों की भी दुर्दशा हुई, आतंकवाद के परिणामस्वरूप भारत के अगणित सैनिक शहीद हुए, आतंकवादियों का दमन करने की कार्रवाई में कभी-कभी कुछ निरीह जनता को भी शिकार होना

पड़ा। पथराव होता रहा, आगजनी होती रही, विस्फोट होते रहे, घुसपैठें होती रहीं। कभी-कभी इन बातों का घोर तांडव होने पर तमिलनाडु की मीडिया में एकाध सुर्खियां निकलतीं या एक-दो वाक्यों में समाचार पढ़ा या सुना दिया जाता था। बस इससे आगे ज्यादा कुछ नहीं कर सका तमिल साहित्य।

भारत में जैसे 'धर्मनिरपेक्ष' एक अभिशप्त शब्द है, वैसे ही 'मानवाधिकार' शब्द को भी अभिशप्त ही मानता हूं, क्योंकि किसी खूनी, अपराधी को दंड देने की बात जब उठती, तब उस अपराधी के पक्ष में जो 'मानवाधिकार' है, उसकी बड़ी चर्चा होती है। पर दुर्भाग्य की बात यह है कि उस खूनी, अपराधी के कारण जो मरा, उसकी स्थिति, उसके परिवार की हालत, उसके बच्चे या उसकी पत्नी की स्थिति पर या मरे हुए या बाधित हुए उस व्यक्ति के प्रति या उस अपराधी के कारण आगे समाज पर होने वाले बुरे प्रभाव आदि बातों पर जो 'मानवाधिकार' की बात होनी चाहिए, उसपर कोई विचार नहीं किया जाता है। यदि किया भी जाए तो बहुत कम। कश्मीर में भी मानवाधिकार के उल्लंघन वाली बात जो उठाई जाती है वह भी इसी तरह की मानता हूं। जो भी हो, मेरा विचार है कि धारा 370 को हटाने की चर्चा जब-जब होती है या कश्मीर में जब-जब विस्फोट होता है या खून-खराबा होता है, पत्रिकाओं में प्रकाशित वह बात या मीडिया में प्रसारित वह बात पढ़कर या सुनकर एक दिन उसकी चर्चा करते और दूसरे दिन भूल जाते हैं। मेरे विचार में सन् 2000 के बाद ही तमिल साहित्य कश्मीर के प्रति रुचि लेने लगा।

अब हम देखेंगे कि तमिल साहित्य कश्मीर के प्रति क्या विचार रखता है? सर्वप्रथम ऐन् देशम् ऐन् वालक्कै (मेरा वतन मेरा जीवन) नामक पुस्तक का विचार यहां प्रस्तुत करना चाहता हूं। पुस्तक का विवरण यों है—*ऐन् देशम् ऐन् वालक्कै (मेरा वतन मेरा जीवन) लेखक : एल.के. आडवाणी, तमिल अनुवाद : वसंतन पेरुमाल् और सुदांगन, प्र. वर्ष 2009, प्रकाशक : अल्लयन्स कंपनी, चेन्नै-4।

श्री एल.के. आडवाणी जी की अंग्रेजी में रचित रचना का श्री वसंतन पेरुमाल् और श्री सुदांगन द्वारा तमिल में अनूदित कृति है 'ऐन् देशम् ऐन् वालक्कै' (मेरा वतन मेरा जीवन), जो 1156 पृष्ठों की है। इस पुस्तक में कश्मीर की समस्या को लेकर बहुत सारी बातों का वर्णन तीस पृष्ठों में वर्णित है। 'दृढ़ता और ईमानदारी का उत्थान'; '1962 से चीन के साथ की सीमा समस्या'; 'कश्मीर की समस्याः नेहरू की विरासत में और एक'; 'धारा 370 को रद्द क्यों करना चाहिए?'; 'सरदार पटेल और धारा 370—एक रहस्य'; 'शांति, जनतंत्रता, विकास, वार्तालाप आदि चार सूत्रीय युक्ति'; 'जम्मू-कश्मीर के इतिहास में एक स्वतंत्र निर्वाचन'; 'बंदूकों की आवाज की जगह राजनीतिक घोषणाएं' आदि शीर्षकों में अपने अमूल्य एवं अनुभवपूर्ण विचारों को सजीव ढंग से व्यक्त किया है।

धारा 370 को क्यों रद्द करना चाहिए—इस शीर्षक में लेखक कहता है कि भारत के साथ कश्मीर के अधिमिलन के समझौते पर जब महाराजा हरि सिंह ने हस्ताक्षर किया तब उन्होंने सुरक्षा, विदेश नीति और संचार आदि तीन सुविधाओं को केंद्र सरकार के हाथ सौंपा। सरदार पटेल ने हैदराबाद निजाम के साथ जिस प्रकार से काम निभाया वैसा सक्षम कार्य करने से नेहरू चूक गए। यदि हैदराबाद-नीति अपनाई गई होती तो भारत के साथ कश्मीर का विलय बिना किसी शर्त के पूर्ण हुआ होता।...राजाओं से शासित भारत के सभी राज्यों को केंद्र सरकार से मिलाने की जिम्मेदारी

सरदार पटेल जी ने ली थी। पर स्मरण करने की बात यह है कि जम्मू-कश्मीर वाले मामले को नेहरू ने स्वयं अपने हाथ में ले लिया था। जम्मू-कश्मीर को भारत से मिलाने का मामला यदि सरदार पटेल जी के हाथों में होता तो आज कश्मीर की समस्या का नाम ही नहीं रहता।...

नेहरू अपने अंतिम समय पर, खासकर सन् 1962 में चीनी आक्रमण से पराजित होकर अपने कटु अनुभव से धारा 370 की यथार्थता को समझने लगे। अतः 27 नवंबर, 1963 को लोकसभा में नेहरू ने कहा कि संविधान में उल्लेखित बातों के अनुसार धारा 370 बिल्कुल अस्थायी है। गृह मंत्री के कथनानुसार भारतीय संघ और कश्मीर के बीच जो रिश्ता हमने बनाया था, उसे इस धारा ने निष्क्रिय बना दिया। निस्संदेह कश्मीर भारत का ही अंग है। अतः धारा 370 को धीरे-धीरे रद्द करने का हम विचार करते हैं।

नेहरू जी ने स्वयं धारा 370 को रद्द करने की बात स्वीकार कर ली थी। पर उनके स्वीकारने के अड़तालीस वर्ष के बाद भी सन् 2008 में भी वह अस्थायी व्यवस्था 'स्थायी' बनकर विस्तार पाती जाती है। धारा 370 की सारी चर्चाएं न केवल ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं बल्कि भारत की गणतंत्रता के वर्तमान और भविष्य का भी महत्त्व रखती हैं।''

अस्थायी व्यवस्था धारा 370 को रद्द करने का महत्त्व समझाते हुए, 'एक चाह और प्रार्थना' नामक अपने अंतिम शीर्षक में लेखक कहता है—''आशा है कि जम्मू-कश्मीर पुनः शांतिमय, आनंदमय और सुखमय जीवन का मंदिर बनेगा। उसके लिए प्रार्थना करता हूं। प्राचीन काल के भारतीय ऋषियों और मध्यकालीन सूफी संतों ने इस धरती को पावन बनाया। शैव, बौद्ध और इस्लाम आदि धर्मों का अलौकिक रूप है यह धरती। प्राचीन काल में विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती का वास यहां था, जो 'शारदा पीठ' के नाम से अति प्रसिद्ध है। श्रीनगर की डल झील के सामने वाले पर्वत पर आदि शंकराचार्य जी का मंदिर है। मैं अपने सिंधु प्रांत और जम्मू-कश्मीर के बीच बहुत सारी समानताएं पाता हूं।

कश्मीर की महान कवयित्री ललद्यद नामक लल्लेश्वरी हिंदू और मुसलमानों की एकता की दूत बनी थीं। शेख नूरुद्दीन नामक सूफी सिद्ध कश्मीर के हिंदू लोगों से 'नुंद ऋषि' माने जाते थे। इस तरह बहुमुखी समरसता कश्मीरियों की विशिष्टता थी, जिसको सुरक्षित रखना उन लोगों की चाह है। बीसवीं सदी के महान कश्मीरी कवि गुलाम अहमद महजूर का कथन है—''सिंधु नदी में स्नान कर, मानसबल झील में ध्यान कर हरमुख पर्वत पर ईश्वर का दर्शन कीजिए। आप सभी कश्मीरी एक ही धरती के हैं। संस्कार एक से दूसरे को कभी अलग नहीं करता। मुसलमान दूध हैं और हिंदू चीनी हैं। दूध और चीनी को मिलाकर स्वाद लीजिए। हिंदू नाव का नियंत्रण करें और मुसलमान पतवार चलाएं—इस तरह हमारी नाव आनंदपूर्वक तैरे। विवेकपूर्वक समझने का प्रयास कीजिए कि अपनी मातृ भूमि के मित्र कौन और शत्रु कौन! अपनी समस्याओं का हल आप स्वयं कर लीजिए, मध्यस्थता के लिए अन्यों को मत बुलाइए। मैं महजूर आपको एकता की एक सीख दे रहा हूं। उसका स्मरण कीजिए और अन्यों को सिखाइए।''

इस तरह महान कवि महजूर की इन अमूल्य बातों को दुहराकर लेखक यह कहकर अपना आलेख पूरा करता है कि मैं भी यही चाहता हूं और मेरी चाह भी यही है।

एक पुस्तक है—'काश्मीर इंदियाउक्के' (कश्मीर भारत ही का है)। पुस्तक का विवरण यों है—'काश्मीर इंदियाउक्के' (कश्मीर भारत ही का है), ले. कप्तान एस.पी. कुट्टी, प्र. वर्ष 2015,

प्रकाशक : किलक्कु पदिप्पगम्, चेन्नै-14।

इस पुस्तक में लेखक कहता है—''कन्याकुमारी के एक भारतीय के लिए कश्मीर जितना पावन धाम है ठीक उतना ही कश्मीर के निवासी के लिए कन्याकुमारी भी पावन धाम है''। इस पुस्तक में यह साफ समझाया गया है कि आंबेडकर, सरदार पटेल, कांग्रेस के सदस्य, प्रजा परिषद् आदि कश्मीर के प्रति भारत का न्याय, पाकिस्तान सीमोल्लंघन, भारतीय राजनेताओं की भूलें, अंग्रेजों का छल आदि बातों का पूरा विवरण इसमें दिया गया है।

प्रथम कश्मीर की लड़ाई में भारतीय सेना के आरंभकालीन कार्य, लड़ाई में लगे सेनापति, उपयोग में लाए गए हथियार, वाहन, युद्ध व्यूह आदि बातों का बारीकी से वर्णन किया गया है। यह पुस्तक एक युद्ध का दस्तावेज है।

लेखक कहता है—''कश्मीर का विलय भारत के साथ अपने आप हुआ। पर दोनों के घुलने-मिलने से धारा 370 बाधा पहुंचाती है। इससे प्राप्त विशेष सुविधाएं कश्मीर को एक अलग स्वायत्त सत्ता का रूप दिखाने में सहायता प्रदान करती हैं। कश्मीर में केंद्र सरकार के कार्यान्वयन करने में संविधान की धारा 370 कई प्रकार से बाधक बनी है।

पाकिस्तान का योजनाबद्ध प्रचार, भारत सरकार का ढीलापन, जम्मू-कश्मीर सरकार का छल-कपट, पाकिस्तान से अधिक संख्या में घुसपैठ करने वाले आतंकवादी, इन सबने मिलकर कश्मीर को खून-खराबे का केंद्र बना दिया। वहां के हिंदू भगा दिए जाते हैं। लूटते हैं, मार दिए जाते हैं, धर्म के नाम पर गुमराह किए गए कश्मीरियों को सही रास्ते पर लाना चाहिए। पाकिस्तान के घुसपैठियों को समूल नष्ट कर देना चाहिए। चाहनेवाले जो भी हों, पाकिस्तान चले जाएं। कश्मीर भारत में ही रहेगा।

पाकिस्तान के समर्थक भारत में कहीं भी हों, उनका नामोनिशान तक मिटा देना चाहिए। कश्मीर भारत का है। वह केवल भारत ही का है।

पाकिस्तान सरकार अपने स्कूलों और मदरसों में बच्चों को जबरदस्ती यह सिखाती है कि कश्मीर पाकिस्तान का है। पर हमारी सरकार न देश की चिंता करती है और न अपने लोगों की। यहां के मुसलमान लोगों ने इसका प्रमाण दे दिया है कि उनका प्यार और रिश्ता पाकिस्तान से है। केरल के मलप्पुरा जनपद के मुसलमान लोगों ने प्रकट रूप से कह दिया कि कश्मीर पाकिस्तान का ही है। मुसलमान सरकारी कर्मचारी, जो कश्मीर के सचिवालय में काम कर रहे हैं, पाकिस्तान जिंदाबाद की घोषणा करते हैं। भारत भर में रहने वाली संस्था 'जमायत-ए-इस्लामी' के लोग देशद्रोह करते हुए कहते हैं कि हम कश्मीर को पाकिस्तान के साथ मिला देंगे। अपनी मातृभूमि के प्रति भक्ति रखने वाले एक हिंदू से बढ़कर एक मुसलमान के लिए अल्पसंख्यक के नाम पर अधिक सुविधाएं दी जाती हैं।

चीन भारत की 40,000 वर्ग मील जमीन पर अतिक्रमण कर बैठा है। हमारे देश के साम्यवादी दल के लोग 'वह भूमि चीन की है'—कहते फिरते हैं। ईसाई लोग प्रचार करते रहते हैं कि नागालैंड और मिजोरम भारत का नहीं, वे अलग देश हैं। पर इसका विरोध न कर सकने की स्थिति में रहने वाला हिंदू अपनी ही मिट्टी में असुरक्षित जी रहा है।

एक और पुस्तक है—'काश्मीर ऐरियुम् नेरुप्पु' (कश्मीर धधकती आग)। लेखक—वकील वे. काशि नाथन, प्र. वर्ष 2016, प्रकाशक—गौरा पब्लिशर्स, तिरुच्ची।

यह पुस्तक हिंदू और मुसलमान राजाओं के शासन विवरण, मुसलमानों की दमन नीति, राजा हरिसिंह के साथ का समझौता, शेख अब्दुल्ला, फारूक अब्दुल्ला के साथ भारत सरकार का समझौता, कश्मीर के निजी राजनीतिक कानून, भारतीय संविधान की धारा 370, भारत पाकिस्तान के युद्ध, आतंकवाद के कारण, आतंकवादी दल, उसका प्रभाव आदि अनेक बातों पर चर्चा करती है। साथ ही भारत का संविधान, कश्मीर का संविधान, दिल्ली समझौता, राजतंत्री अब्दुल्ला, शेख अब्दुल्ला की परंपरा, ताशकंद घोषणा पत्र (1966), शिमला समझौता (1971) कश्मीर समझौता (1974), कश्मीर का दूसरा पक्ष, बोया गया आतंकवाद, भारत-पाकिस्तान युद्ध (1971), इंडियन एयरलाइंस के विमान का अपहरण (1999), कारगिल युद्ध आदि विषयों पर चर्चा करती है।

एक जगह पर लेखक कहता है—''मिर्जा हैदर तुगलक ने सन् 1540 में कश्मीर को अपने वश में किया। उसने सन् 1548 में शिया मुसलमानों की बस्तियों को आग से नष्ट किया। कब्र से शिया मुसलमानों के शवों को निकालकर गली के कुत्तों को खिलाया। जबरदस्ती हिंदुओं का धर्म परिवर्तन किया। मुल्ला अहमद नबी, जिसने मुगल दरबार में शेख-उल-इस्लाम की उपाधि पाई थी, कश्मीरी पंडितों पर कई कानून लगाए। उनमें कुछ ऐसे थे—बाजारों में कश्मीरी पंडित घोड़ों पर सवार न हों, सिर पर पगड़ी न पहनें, पैरों में चमड़े के जूते न पहनें और केवल घास के जूते पहनें, बच्चों को स्कूल न भेजें, जजिया कर जमा करें आदि-आदि।

आजकल पाकिस्तान आक्रामित प्रदेश में रहने वाले पंजाब व कश्मीर के लोग आजादी चाहते हैं। अनेक अलगाववादी लोग पाकिस्तान से अलग होना ही चाहते हैं, न कि पाकिस्तान का अंग बनना। पर पाकिस्तान अलगाववादियों और आतंकवादियों को धन और सुविधाएं प्रदान कर भारत से प्रतिशोध लेना चाहता है। पाकिस्तान धर्म के नाम पर कश्मीर को हड़पना चाहता है। आतंकवादियों के डेरों को नष्ट करने का प्रयास भारत ने नहीं किया। कश्मीर के लोगों और भारत सरकार के बीच में ही वार्तालाप होना चाहिए। इस धधकती आग में अनेक शक्तियां तेल डालने के अवसर की ताक में हैं तो जिनको पानी डालकर बुझाना चाहिए, वे असमर्थ होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

लेखक के कहने का मतलब यह निकलता है कि पाकिस्तान सरकार, पाकिस्तान से प्रशिक्षित आतंकवादी, कश्मीर के ही नहीं, बल्कि भारत में स्वार्थी एवं लोलुप छोटे-बड़े राजनीतिक दल के लोग, कुछ चाटुकार व चापलूस तथा धूर्त व छली चीन आदि सभी लोग मिलकर कश्मीर की समस्या रूपी धधकती आग में घी डालकर उसे बढ़ावा देने के लिए तैयार हैं। ऐसी हालत पर उस आग को बुझाना केंद्र सरकार का कर्तव्य है।

एक और पुस्तक है—'काश्मीर बूमियिन सोर्गमा अल्लदु पुदिरा?' (कश्मीर धरती का स्वर्ग है या पहेली?), लेखक : शंकर नागनाथन, प्र. वर्ष 2019, अल्लयंस पब्लिकेशंस, चेन्नै—4।

इस पुस्तक में कश्मीर की प्राचीनता, धर्मों का संगम, कश्मीरी संस्कृतियों का संगम, राजाओं और राजवंशों द्वारा कश्मीरियों का भाग्य निर्णय, बड़ा बंटवारा और कश्मीर की गड़बड़, कश्मीर की झंझटें और कश्मीर के भविष्य पर दृष्टिकोण आदि शीर्षकों पर बहुत सारी बातों का विवरण देते हुए, राजा हरि सिंह का भारत के साथ समझौता, धारा 370, कश्मीर की समस्याएं आदि सभी बातों पर चर्चा की गई है।

लेखक कहता है कि ''कश्मीर के साथ पाकिस्तान, चीन, अफगानिस्तान, तिब्बत आदि

देशों की सीमाएं लगती हैं। अतः हमारे राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कश्मीर की सीमाओं की रक्षा अत्यंत आवश्यक है।

सन् 1971 के युद्ध में पाकिस्तान हार गया। इस अपमान के कारण तानाशाह जनरल जिया उल हक ने कम खर्च में युवाओं के हाथ में हथियार देकर उनको जिहादी बनाया। उस षड्यंत्र के साथ भारत की निष्क्रिय सरकार ने भी मिलकर कश्मीर की घाटी को 1980 के अंत में उपद्रवियों की भूमि बना दिया। पांच लाख कश्मीरी पंडित अपने ही देश में शरणार्थी बनाए गए। सैनिक कार्रवाई न कर सकने में असमर्थ धर्म निरपेक्ष भारतीय सरकार धारा 370 के पीछे अपने को छिपाकर रह गई। कश्मीर के अनेक राजनीतिक दल अपनी लूट के लिए धारा 370 को ढाल बनाते रहे। सन् 2008 में पाकिस्तान के आतंकवादियों ने जब मुंबई में लगातार तीन दिन खून-खराबा कर सैकड़ों को घायल कर कइयों को मार डाला, अपनी बर्बरता का परिचय टी.वी. समाचारों में दिखाया तभी यदि भारत चाहता तो लड़ाई द्वारा पी.ओ.के. को अपने वश में ला सकता था। पर कांग्रेस, वामपंथी एवं लिबरल्स दलों—सबने मिलकर शांति के नाम पर मोमबत्ती जुलूस निकालकर अपने को शांत कर लिया।

कश्मीर में सत्ता का आश्रय लेकर आतंकवादी लोग सत्ता की प्रणाली का नियंत्रण स्वयं करते रहे। इस हालत में धारा 370 को हटाने का प्रयास अचानक नहीं किया गया। धारा 370 को लाने में नेहरू जी का ही हाथ रहा। पर बाद में वे खुद समझ गए कि धारा 370 को मानकर हमने भूल कर दी। अतः 27 दिसंबर, 1963 को लोकसभा में नेहरू ने कहा कि धारा 370 रद्द किया जाएगा और कश्मीर भारत का अंग बन जाएगा। उसी समय गृहमंत्री गुलजारी लाल नंदा ने कहा कि धारा 370 अब केवल खोल मात्र है। अंदर का सार निकालकर खोखला बना दिया गया। उसमें कुछ दम नहीं है। दस महीने के अंदर रद्द कर सकते हैं। वह केवल हमारे निर्णय के अंदर है। पर नेहरू के बाद वाली कांग्रेस सरकार का इस दिशा में कोई प्रयास नहीं रहा।

कश्मीर के लोगों को यह निर्णय करने का समय अब आया है कि सब एक साथ मिलकर आगे बढ़ें। शांति, संपदा और उत्थान तीनों ही संभव हैं। इसके पीछे-पीछे एक-एक करके मानवता, जनतंत्र और कश्मीरियत आदि तीनों का प्रवेश इस घाटी में होगा।

स्वर्ग हमारे हाथ में है। उसका सही मार्ग मौलवी, प्राचीन काल के वेद ऋषि और सूफी संत दिखाते हैं। वे सब मानवता और मानवोत्थान के निर्माण में सेवक रहे। जब यहां शांति की स्थापना हो, मानवता का विकास हो तभी अबूझ पहेली दूर होगी और यह भूमि स्वर्ग बनेगी।

इस तरह कश्मीर पर गहराई से विचार व्यक्त करने वाले साहित्यिक सृजनकर्ता तमिल में अनेक हुए हैं। उनमें 'घड़े भर के चावल में एक चावल की जांच' के रूप में कुछ साहित्यिक सृजनों का विवरण ऊपर प्रस्तुत किया गया है। इस तरह के अन्य साहित्यिक सृजनों के नाम नीचे देखें—

'काश्मीर : मुदल् युद्दम्' (कश्मीर : प्रथम लड़ाई), प्रकाशक—किलक्कु पदिप्पगम्, चेन्नै, 'तोडरुम काश्मीर युद्दमुम् हिंदुत्वा अरसियलुम्' (अनवरत चलता कश्मीर युद्ध एवं हिंदुत्व राजनीति), प्रकाशक—अलैगल् वेलीयीट्टगम्, 'काश्मीरी देशियत्तिन् पल्वेरु मुहंगल् (पनिप्पोर मुदल् इन्रुवरै)' (कश्मीर राष्ट्रीयता के विभिन्न चेहरे—शीत युद्ध से आज तक) प्रकाशक : ऐदिर् वेलियीडु/काश्मीर अरसियल्-आयुद वरलारु (कश्मीर की राजनीति—शास्त्र इतिहास), प्रकाशक—किलक्कु पदिप्पगम्, चेन्नै/काश्मीर (कश्मीर), आलि पब्लिशर्स, 'काश्मीर ऐन्न नडक्कुदु अंगे' (कश्मीर क्या हो रहा है

वहां), लेखक : अ. मार्क्स प्रकाशक पुलम, 'पोरुम् अहिंसैयुम् काश्मीर कुरित्तु गांधी' (युद्ध व अहिंसा कश्मीर के संबंध में गांधी) प्रकाशक—यावरुम्, 'तीविर इंदु देशीयमुम काश्मीरिकलिन् तीराद तुयरमुम्—लेखक : नंदिता हक्सर, 'काश्मीर' (काश्मीर)—ले.पा. रागवन, 'निलमेल्लाम् रत्तम्'—(सारी धरती खून में) ले.पा. राघवन, कलवर पल्लत्ताक्कु काश्मीर (उपद्रवी घाटी कश्मीर), लेखक : तेलुगु मूल—के. बालगोपाल, तमिल अनुवादक : के. माधव, प्र. वर्ष 2016, प्रकाशक : चिंतन बुक्स, चेन्नै-86, आदि अनेक तमिल रचनाएं कश्मीर की चर्चा करते हुए अपना विचार प्रस्तुत करती हैं। इनके अलावा और भी कुछ रचनाएं हो सकती हैं, जिनकी जानकारी मुझे न हो। सन् 2003 में 'तक्कॉल काश्मीरिन् सिरु कदैहल' (आधुनिक कालीन कश्मीरी लघु कथाएं) नामक एक सृजन हुआ। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित यह रचना मूल कश्मीरी से अंग्रेजी में फिर अंग्रेजी से तमिल में प्रकाशित हुई।

आमतौर पर अधिकतर तमिल रचनाएं कश्मीर की प्राचीनता, कश्मीर की संपदा व समृद्धि, कश्मीर की संस्कृति, कश्मीर की भौगोलिकता, कश्मीर का इतिहास, कश्मीर के हिंदू-मुसलमान राजाओं का शासन, हिंदू राजाओं द्वारा मुसलमान लोगों पर अत्याचार, मुसलमान राजाओं का हिंदू लोगों पर अत्याचार, राजा हरिसिंह का शासन, भारत की स्वतंत्रता और बंटवारा, कश्मीर पर आक्रमण, राजा हरिसिंह का भारत से समझौता, जिन्ना की जिद, नेहरू का यू.एन.ओ. पहुंचना, कुछ शर्तों पर यू.एन.ओ. की बात मानना, पर पाकिस्तान की ओर से उन शर्तों का उल्लंघन इत्यादि सभी बातों का वर्णन ज्यादा या कम करती हैं।

भारत सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भूमि है। भारत की मानवीय संस्कृति के बारे में चीन के नरमवादी विद्वान और अमेरिका के चीनी दूत हू शिन ने कहा, भारत एक ऐसा देश है जिसने अपनी सीमा के उस पार बिना किसी एक सैनिक को भेजे, केवल अपनी संस्कृति के बल पर विश्व को जीतकर दो हजार वर्षों से अधिक से अपना प्रभुत्व जमा रहा है। (ऐन् देशम ऐन् वालूक्कै, पृ. 735) इस कथन से भारत की आत्मा का परिचय मिल रहा है।

हां, सेना के बल पर युद्ध करके अन्य किसी देश को जीतना या आक्रमण द्वारा कब्जा करना भारत कभी नहीं चाहता। पर कोई पड़ोसी देश हम पर आक्रमण करे या हमारी भूमि के हिस्से पर कब्जा करे तो हमें क्या करना चाहिए? हमारी सीमा की सुरक्षा करनी चाहिए या नहीं?

एल.के. आडवाणी के इस कथन पर विचार करें। वे पूछते हैं कि यदि भारत की सीमाएं सुरक्षित न हों तो क्या भारत सुरक्षित रहेगा? हमारी माटी के हिस्से को 'अपना' बताने वाले अन्य देश की ताकत का सामना न कर सके, पाकिस्तान के सीमा पार आतंकवाद को रोक न सके, हमारे देश के अंदर गैर-कानूनी रूप से होने वाली विदेशियों की घुसपैठ का नियंत्रण न कर सके तो क्या भारत सुरक्षित रह सकता है ?

भारत तभी सुरक्षित रह सकता है जब कश्मीर सुरक्षित हो। कश्मीर की सीमाएं पाकिस्तान, चीन, अफगानिस्तान, तिब्बत आदि देशों से घिरी हैं।

एक प्रसिद्ध कथन है कि सज्जन व्यक्ति दूसरों को भी अपने समान सज्जन मानकर चलता है, इसलिए वह जीवन में धोखा खा जाता है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू भी इसप्रकार के सज्जन थे। ''वे एशिया की एकता, अपनी उदारता और चीन की मित्रता आदि बातों पर पूरा विश्वास रखते थे। पर वे सन् 1962 में चीन के आक्रमण के बाद अपनी भूल

समझने लगे। उससे पूर्व वे अपने को पहले उदारवादी मानते थे और बाद में राष्ट्रवादी। सन् 1962 के बाद वे अपने को पहले राष्ट्रवादी और बाद में उदारवादी मानने लगे थे'' (काश्मीर बूमियिन सोर्गमा अल्लदु पुदिरा?, कश्मीर धरती का स्वर्ग है या पहेली? पृ. 5)।

'शारदा ग्राम में 'शारदा पीठ' बना है। यह शारदा पीठ श्रीनगर से 130 कि.मी. दूर है। काशी में वेदाध्ययन पूरा करने के बाद उस दिशा की ओर चार कदम आगे बढ़कर जिस दिशा में शारदा पीठ है, छात्र द्वारा प्रणाम करने की प्रथा आज भी प्रचलन में है।'(काश्मीर बूमियिन सोर्गमा अल्लदु पुदिरा?, पृ. 36) इसी से कश्मीर का महत्त्व मालूम होता है।

कश्यप मुनि द्वारा निर्मित कश्मीर की बड़ी विशेषता है। मान्यता के अनुसार विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती यहां निवास करती हैं। वेद और उपनिषद् का अध्ययन करने के लिए सबसे श्रेष्ठ स्थान श्रीनगर है। एक समय में पूरा कश्मीर 'शारदा देश' कहलाता था। इस प्रदेश का शासन करने वाली देवी शारदा देवी हैं। संस्कृत के विद्वानों ने सरस्वती को 'कश्मीर-पुर-वासिनी' कहा है।

अक्सर इन शब्दों का प्रयोग हम सुनते आ रहे हैं—'कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक' या 'कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक'। इन शब्दों का प्रयोग भारत की भिन्नताओं को लेकर या एकता को लेकर बहुत किया जाता है। यह बात सत्य है कि भारत का साहित्य, संस्कृति, आध्यात्मिक चिंतन आदि सभी बातों में पाई जाने वाली समानताएं कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक हैं। भारत की भाषाओं में भिन्नताएं तो अवश्य हैं ही, पर भाषाएं भिन्न होते हुए भी भारतीयों का विचार प्राचीन काल से आज तक एक ही है।

कश्मीर हरियाली की धरती। गगनचुंबी पर्वत! हाथ की दूरी पर फल और बादल! चावल, सेब और मेवे का भंडार। मवेशियों की भरमार! संस्कृति की खान! संस्कृत का स्रोत ! सौंदर्यमयी देव कन्या! धरती का स्वर्ग! सुंदर महिलाओं की पहचान! कश्मीर की धरती ललद्यद, चरक, विष्णु शर्मा, नगसेन, कालिदास, भामह, आनंदवर्धन, वसुगुप्त, सोमानंद, बटेश्वर, रुद्रट, अभिनवगुप्त, बिल्हण, कल्हण, जल्हण जैसे महान विद्वानों की भूमि! संस्कृत साहित्य की जननी! वह भी दो हजार वर्ष पूर्व से! हिंदू, बौद्ध, सिख, इस्लाम जैसे अनेक धर्म के लोगों के साथ स्वाभाविक रूप से सच्चे भाईचारे का व्यवहार भरी भूमि! यह भूमि वह है जहां मुसलमान राजा के अधीन हिंदू जनता और हिंदू राजा के अधीन मुसलमान जनता सानंद व सुख से रही और हिंदू कवि व सूफी कवि आपस में एक-दूसरे को अपना गुरु मानते और साहित्य व संस्कृति को बढ़ावा देते। पर यह सब राष्ट्र की स्वतंत्रता के पूर्व की बात! आजकल यह केवल सपना मात्र रह गया है। यह सपना जब साकार होगा वही दिन कश्मीर का लौटता स्वर्ण दिन होगा और अखंड भारत का अपना गौरव और ऊंचा उठेगा और सच्चे अर्थ में कश्मीर भूमि धरती की स्वर्ग भूमि मानी जाएगी।

□

तेलुगु साहित्य में कश्मीर

एम. वेंकटेश्वर

तेलुगु भाषा की पत्रकारिता में कश्मीर की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों का विशद विश्लेषण आजादी से पहले से ही किया जाता रहा है। तेलुगु पत्रकारिता इस दृष्टि से काफी सक्रिय रही है। समकालीन तेलुगु पत्रकारिता के क्षेत्र में एम.वी.आर. शास्त्री द्वारा कश्मीर के राजनीतिक परिदृश्य पर रचित दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ बहुचर्चित हैं। पहला 'काश्मीर कधा' (2001) और दूसरा 'काश्मीर व्यधा' (2009) (तेलुगु) के नाम से प्रकाशित हुए हैं। एम. वी. आर. शास्त्री 1975 से तेलुगु पत्रकारिता जगत् में सक्रिय रहे हैं। तेलुगु के 'आंध्रज्योति', 'ईनाडु', 'आंध्रप्रभा' और 'आंध्रभूमि' आदि प्रतिष्ठित दैनिक समाचार-पत्रों में वे संपादकीय दायित्व निभाते आ रहे हैं। अपनी प्रथम पुस्तक में उन्होंने वर्ष 2000 से पूर्व तक कश्मीर में घटित ऐतिहासिक घटनाक्रम का विश्लेषण स्वाधीनता प्राप्ति के समय की राजनीतिक स्थितियों के परिदृश्य में प्रभावशाली ढंग से किया है। यह स्वतंत्र आलेखों का सूत्रबद्ध संग्रह है। भूतल स्वर्ग कहलाने वाले कश्मीर राज्य के भारत में विलय के संदर्भ में राजा हरिसिंह की अन्यमनस्कता, लॉर्ड माउंटबेटन का हस्तक्षेप, शेख अब्दुल्ला की भूमिका, पाकिस्तानी हस्तक्षेप के कारण कश्मीर में उत्पन्न अलगाववादी आंदोलन, शिमला समझौता आदि विषयों को उन्हीं शीर्षकों से अध्यायों में विभाजित कर तथ्यात्मक आकलन करने का एक सफल प्रयास लेखक ने किया है। पुस्तक के दूसरे भाग में अनुच्छेद 370 की समस्या पर चर्चा की गई है। इसमें कश्मीर की समस्या के प्रति प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी की पहल और पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ से भेंटवार्ता का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक कश्मीर की समस्या को समझने के लिए तेलुगु पाठकों के लिए संदर्भ ग्रंथ के रूप में उपयोगी है। इसी लेखक की कश्मीर की बदलती स्थितियों के संदर्भ में रचित दूसरी पुस्तक 'काश्मीर व्यधा' अर्थात् कश्मीर की पीड़ा फरवरी 2009 में प्रकाशित हुई, जो तेलुगु पत्रकारिता जगत् में बहुचर्चित हुई। यह पुस्तक उनकी प्रथम पुस्तक की ही भांति स्वतंत्र लेखों का संकलन है। कश्मीरवासियों के जीवन को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों का प्रभावी चित्रण इन लेखों में किया गया है। अलगाववादी समुदायों द्वारा किए गए आंदोलन और परिणामस्वरूप उत्पन्न हिंसा से त्रस्त वहां के जनजीवन की व्यथा का विशद वर्णन इसमें मिलता है। तेलुगु के एक अन्य ख्याति प्राप्त राजनीतिक विश्लेषक और सिविल राइट्स एक्टिविस्ट के. बालगोपाल की कलम से बदलते

परिप्रेक्ष्य में कश्मीर की स्थितियों का चित्रण हुआ है। इनके द्वारा तेलुगु में रचित पहली पुस्तक 'कल्लोल लोया' (2007), दूसरी 'कश्मीर पई' (2016), कश्मीर प्रदेश के ऐतिहासिक महत्त्व को दर्शाते हुए वहां के जनजीवन में व्याप्त आतंक और भय के कारणों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती हैं।

साहित्यिक दृष्टि से तेलुगु में कश्मीर से संबंधित कोई रचना उपलब्ध नहीं है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि साहित्य की मुख्य विधाओं में कश्मीर की पृष्ठभूमि में तेलुगु में कोई रचना प्रकाश में नहीं आई है। उपर्युक्त विधाओं से इतर विधा अर्थात् 'यात्रा साहित्य विधा' के अंतर्गत दो रचनाएं प्रकाश में आई हैं। पहली रचना तेलुगु की प्रख्यात कथाकार और कवयित्री नायनि कृष्ण कुमारी (1930-2016) द्वारा रचित और सन् 1978 में प्रकाशित 'कश्मीर दीप-कलिकलु' और मुत्तेवि रवींद्रनाथ द्वारा रचित और सन् 2016 में प्रकाशित 'मा कश्मीर यात्रा' चर्चित कृतियां हैं। तेलुगु यात्रा साहित्य में इन दोनों कृतियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नायनि कृष्णकुमारी उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में अध्यापन काल में छात्र-छात्राओं के एक दल के साथ 12 दिनों की पर्यटन यात्रा पर कश्मीर गई थीं। इस यात्रा के अपने अनुभवों को उन्होंने तेलुगु में यात्रा-वृत्तांत के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्णकुमारी को गद्य और पद्य दोनों विधाओं में समान रूप से रचनात्मक कौशल प्राप्त था। तेलुगु में उनके द्वारा रचित कथा साहित्य और काव्य साहित्य, दोनों अत्यंत लोकप्रिय रहे हैं। कृष्णकुमारी द्वारा रचित 'कश्मीर दीप-कलिकलु' उनकी काव्यात्मक गद्य शैली ने पाठकों को आकर्षित किया। चौदह अध्यायों में विभाजित यह यात्रा-वृत्तांत रोचक और पठनीय है। उस पुस्तक की विलक्षण वर्णन शैली पाठकों का ध्यान बरबस आकर्षित करती है। यह पर्यटन यात्रा महाविद्यालयों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर छात्रों के लिए 'वाई.एम.सी.ए.'(YMCA) द्वारा प्रायोजित की गई थी जिसमें हैदराबाद के विभिन्न महाविद्यालयों के 28 छात्र-छात्राएं शामिल थे। लेखिका को इस छात्रवृंद के संग तात्कालिक अभिभावक के रूप में कश्मीर की यात्रा पर भेजा जाता है। जून महीने की गर्मी के दिनों में इस यात्रा का आयोजन किया गया था। लेखिका ने अपनी इस यात्रा का विशद वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में किया है। हैदराबाद से यह छात्र समुदाय आगरा तक अलग-अलग रेलों में यात्रा करता है। हैदराबाद-दिल्ली मार्ग पर स्थित आगरा संदर्शन भी इस पर्यटन यात्रा में शामिल कर लिया गया था। हैदराबाद से दिल्ली और दिल्ली से पठानकोट तक की यात्रा इस दल को रेल से करनी थी। इसके आगे पठानकोट से जम्मू और श्रीनगर तक की यात्राएं सड़क मार्ग द्वारा आयोजित की गई थीं। हैदराबाद से दिल्ली की यात्रा के लिए छात्रों को दो समूहों में बांटा गया। एक समूह लेखिका के साथ यात्रा कर रहा था। यात्रा शुरू होते ही रेल में सबसे पहले छात्र-छात्राओं ने आपसी परिचय कर लिया, साथ ही लेखिका ने भी छात्रों का परिचय प्राप्त किया। दिल्ली की रेल रात को चली थी, लेकिन छात्र रात भर तरह-तरह के विनोदपूर्ण क्रियाकलापों से आरक्षित रेलयान में हलचल मचाते रहे। अपने घरों के नियंत्रित वातावरण से निकलकर बाहर आते ही अपने हमउम्र साथियों के बीच स्वच्छंद और उन्मुक्त प्रवृत्ति का प्रदर्शन जिस रूप में युवा करते हैं, इस पर लेखिका टिप्पणी करती हैं। लेखिका के साथ का छात्र दल सुबह के धुंधलके में आगरा स्टेशन पर उतरता है। लेखिका इस दल के संग आगरा में अकबर का किला

और ताजमहल देखने के लिए पहुंचती हैं। यमुना के तट पर मुगलकालीन सुविस्तृत मनोहारी उद्यानों के मध्य शुभ्र कांतिमान धवल स्फटिक में विश्व भर से एकत्रित हीरे जवाहरात जड़े, बेजोड़ नक्काशी से सुसज्जित प्रेम के उस स्मारक के सम्मुख पहुंचकर भला कौन लौट आना चाहेगा। लेखिका के शब्दों में ताज का सौंदर्य आभूषणविहीन अवस्था में भी एक विचित्र सम्मोहक प्रभाव पैदा करने में सक्षम है। दक्षिण भारत के पर्यटकों में उत्तर भारतीय पर्यटन स्थलों के प्रति कौतूहल का भाव होता है। युवा छात्रों के उल्लसित आचरण पर लेखिका विशेष दृष्टि रखती हैं। इस दल को शाम को दूसरी रेल में सवार छात्रों के शेष दल से आगरा में ही जुड़ना था। रेल में सवार होते ही छात्र-छात्राओं का वही अल्हड़पन लेखिका को आकर्षित करता है जिसका वर्णन वह अपने शब्दों में आकर्षक ढंग से करती हैं। दिल्ली पहुंचने से पहले रेल में एक छात्रा अस्वस्थ हो जाती है जिससे सारे छात्रों में हल्की-सी घबराहट छा जाती है, लेकिन जल्द ही स्थिति संभल जाती है। लेखिका क्योंकि प्राध्यापिका भी थी, इस कारण ऐसी स्थिति में छात्रों की सुरक्षा के प्रति उनका दायित्व अधिक था, वह अपनी इस भूमिका के प्रति सजगता को अपने यात्रा-वृत्तांत में प्रमुखता से व्यक्त करती हैं। दिल्ली से दूसरे चरण की यात्रा में समूचा दल पठानकोट के लिए रवाना होता है। जिस गाड़ी से इस दल को पठानकोट के लिए रवाना होना था, वह गाड़ी इनके दिल्ली पहुंचने से पहले ही छूट जाती है, इससे छात्रों में हल्की अफरा-तफरी मचती है, लेकिन जालंधर जाने वाली एक दूसरी रेल से वे निकल पड़ते हैं। अपना-अपना सामान सभी छात्र खुद ही उठाते और भागदौड़ करते जाते थे, एक-दूसरे का साथ देते हुए भिन्न विद्यालयों के छात्रों में सहभागिता का भाव लेखिका को आकर्षित करता है। उस रात थककर चूर होकर रेल में जहां-तहां पसरकर सोते हुए छात्रों को देखकर लेखिका का मातृ हृदय द्रवित हो जाता है। जालंधर की रेल में अनारक्षित डिब्बे में छात्र-छात्राओं का यह समूह यात्रा कर रहा था। रेल दिल्ली से रात को चली थी, सुबह के उजाले में इन लोगों को पंजाब की धरती के दर्शन हुए। लेखिका और अन्य किसी ने भी इस यात्रा से पहले कभी पंजाब नहीं देखा था, इसलिए पंजाबी संस्कृति से पहली बार यह समुदाय रू-ब-रू हो रहा था, पंजाबी पहनावा, खान-पान उनकी बोली और भाषा के प्रति जो आकर्षण भरा कौतूहल प्रकट हो रहा था, उसका चित्रण लेखिका ने अपनी प्रांजल तेलुगु में किया है। पंजाबी लोगों के पहनावे में खासकर कुरता-पाजामा, सलवार-कमीज, रंग-बिरंगे दुपट्टे, सुंदर चुनरियों का मनोहारी वर्णन इस यात्रा-वृत्तांत की विशेषता है। तेलुगु प्रदेश के छात्रों और लेखिका के लिए पंजाब की संस्कृति को प्रत्यक्ष देखने का यह पहला ही अवसर था। रेल में रंग-बिरंगे पगड़ी बांधे सरदार लोगों के आत्मीय व्यवहार से तेलुगुभाषी छात्र वृंद बहुत प्रभावित हुआ। ऐसी सामूहिक पर्यटन यात्राओं से छात्रों को बहुत लाभ होता है, उन्हें हमारे देश की सांस्कृतिक विविधता का बोध होता है, अनेकता में एकता की भावना जाग्रत होती है। विभिन्न प्रदेशों के वासियों से मैत्री संबंध बनते हैं। लेखिका ने अपने वर्णन में इस अनुभव को पाठकों से साझा किया है। लेखिका को बरबस अपने विद्यालय के वार्षिकोत्सव में छात्राओं द्वारा किया जाने वाला भांगड़ा नृत्य याद आ जाता है। वे आपसी वार्तालाप में सहयात्रियों से अपनी कश्मीर यात्रा का जिक्र करती हैं। लेखिका ने अपने वर्णन में पंजाबियों के देशप्रेम और उनके बलिदान के प्रसंगों का श्रद्धासहित उल्लेख किया है।

अपनी धरती से प्रेम करना पंजाब के वीर जांबाजों से ही सीखा जा सकता है। पठानकोट तक की यात्रा लेखिका पंजाब के गीत-संगीत की धुनों को याद करते हुए पूरा करती हैं। देर शाम को पर्यटन दल पठानकोट पहुंचता है, दूसरे दिन सुबह बस से श्रीनगर के लिए छात्रों के दल को आयोजक मंडल के सदस्यों सहित रवाना होना था, इसलिए वह रात सभी लोग स्टेशन के भोजनालय के अरुचिकर भोजन से पेट की आग को ठंडा कर प्रतीक्षालय में गुजार लेते हैं। जब से ये लोग घर छोड़कर यात्रा पर निकले थे तब से यात्रा के दौरान कहीं भी मनपसंद भोजन इन्हें नसीब नहीं हुआ था। दक्षिण भारतीय भोजन में चावल खाने के अभ्यस्त होते हैं, रोटी इनके लिए रुचिकर और स्वादिष्ट नहीं लगती। यही कारण था कि यह छात्र वृंद अपनी यात्रा के दौरान भोजन संबंधी असुविधाओं से निरंतर जूझता रहा। लेखिका के लिए भी यह अनुभव कष्टदायक रहा जिसका उल्लेख उन्होंने अपने वर्णन में निःसंकोच किया है। सत्तर के दशक का पठानकोट शहर सैनिक गतिविधियों से भरा दिखाई दिया। सड़कों पर दुकानों की रौनक मौजूद थी। सेना की पुरानी पोशाकों की दुकानें बहुतायत में दिखाई दे रही थीं। गरम कपड़ों, रजाइयों के साथ अन्य पहनावे के कपड़ों की दुकानें सुंदर ढंग से सजी हुई पर्यटकों को खरीदारी करने के लिए आमंत्रित कर रही थीं। लेखिका ने इस दृश्य का खूबसूरत वर्णन किया है। इन सड़कों पर सजी हुई दुकानों में फलों की दुकानों का अलग आकर्षण था। केला, मोसंबी, संतरे के साथ चेरी, मलबरी, लीची, प्लम आदि फलों की बड़ी-बड़ी दुकानें इस पर्यटक समुदाय को आकर्षित कर रही थीं। लेखिका के दल के सभी सदस्यों ने खूब सारे फल खरीदे और उनका जी भरकर सेवन किया।

अपने इस यात्रा-वृत्तांत में कृष्णकुमारी कश्मीर पर लिखे प्रथम यात्रा-वृत्तांत का उल्लेख करती हैं। सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी पर्यटक 'बर्नियर', जो कि दिल्ली सल्तनत में मुगलों का चिकित्सक था, उसने एक बार कश्मीर की यात्रा की और अपने अनुभवों को उसने साहित्यिक रूप प्रदान किया। लेखिका के अनुसार गर्मियों के मौसम में सुदूर प्रदेशों से नवाब और बड़े-बड़े राजाओं का जब भी इस प्रदेश में आगमन होता तो उनके प्रवास काल में यहां लोग बसते चले जाते थे। इस तरह यहां धीरे-धीरे छोटे-छोटे गांवों और नगरों का विकास होता गया। राजघराने अपने ऐशो-आराम के लिए विशाल अट्टालिकाओं का निर्माण करवाया करते। प्राकृतिक सौंदर्य के उपासक राजाओं ने विशेषकर मुगल बादशाहों ने हिमाच्छादित इस स्वर्गिक प्रदेश में सुंदर उद्यान वनों का निर्माण किया जो आज तक अपना नैसर्गिक सौंदर्य बिखेर रहे हैं। बर्नियर ने कश्मीर घाटी के सौंदर्य से अभिभूत होकर इसे भूतल का स्वर्ग (बहिश्त) कहा था। इस घाटी में प्रवाहित होने वाली निर्झरियों के कल-कल-नाद का अभूतपूर्व वर्णन बर्नियर के वृत्तांत में मिलता है। सदियों से कश्मीर घाटी का आकर्षण असंख्य सैलानियों को बार-बार अपनी ओर खींचता रहा है। ऐसे सैलानियों में से अनेक लोगों ने इस भूतल स्वर्ग को अपनी रचनाओं में वर्णित किया। कश्मीर घाटी के सौंदर्यीकरण में मुगल बादशाहों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यूरोपीय सैलानियों ने भी अपने स्वर्गिक अनुभवों को साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया। इनमें विने (Vigne) नामक यात्री का वृत्तांत उल्लेखनीय है।

पठानकोट से जम्मू के लिए बस की यात्रा सुबह प्रारंभ हुई तो सारे रास्ते में दोनों ओर फैले रंग-बिरंगे तरह-तरह के फूलों की क्यारियां मानो सैलानियों का कश्मीर घाटी में स्वागत कर रही थीं।

जम्मू की ओर प्रस्थान करने वाली बस में बैठे हुए सभी छात्र-छात्राओं पर कश्मीर की ठंडक का असर होने लगा था। मौसम सुहावना हो चला था, जिसका आनंद लेखिका के साथ चल रहे दल के अन्य सदस्य भी ले रहे थे। रास्ते में जगह-जगह पर फौजी दस्ते मुस्तैदी से स्थानीय लोगों और सैलानियों की सुरक्षा संबंधी व्यवस्था में लगे हुए दिखाई दे रहे थे। सत्तर के दशक में कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियों का दौर शुरू नहीं हुआ था, फिर भी कश्मीर घाटी में सेना द्वारा सतर्कता बरती जा रही थी। इस तथ्य का उल्लेख लेखिका ने विशेष रूप से अपने वृत्तांत में किया है।

भरी दोपहरी में यह दल बस से जम्मू पहुंचता है। जम्मू शहर की पृष्ठभूमि में पर्वत शृंखलाओं के दर्शन होने लगते हैं। जम्मू पहाड़ पर बसा हुआ खूबसूरत शहर है। चिनाब की उपनदी 'तवी' इस घाटी में प्रवाहित होती है। जम्मू की सुंदरता भी दल के सदस्यों का मन मोह लेती है। कश्मीर घाटी के सौंदर्य को प्रकृति का दिव्यस्वरूप कहा जाता है। हरीतिमा से आच्छादित चरागाहों का सौंदर्य भी वर्णनातीत है, लेखिका वहां पहुंचकर दक्षिण भारत के यात्री मैदानी प्रदेश की ग्रीष्म ऋतु की तपिश को भूल जाती हैं। प्रकृति सौंदर्य का आस्वादन करने के लिए मनुष्य में सौंदर्यबोध का होना आवश्यक है। कृष्णकुमारी की सौंदर्य चेतना कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ एकाकार हो जाती है। अपने दल के अन्य सदस्यों की अपेक्षा लेखिका इस अर्थ में स्वयं को भाग्यशाली मानती हैं। कृष्णकुमारी एक सृजनशील साहित्यकार थीं, इसीलिए शायद उनमें प्रकृति के प्रति विशेष रागात्मक संवेदना दिखाई देती है।

जम्मू की सड़क पर इनकी बस के सामने से गुजरती हुई बाजे-गाजे के साथ चलने वाली फिल्मी विज्ञापन की मोटर गाड़ी को देखकर हैदराबाद के छात्रों का मनोरंजन हो जाता है। इस तरह का प्रचार पचास के दशक में दक्षिण भारत के कस्बों और गांवों में देखा जाता था। लेखिका को अपना बचपन याद आ जाता है जब वह ऐसी गाड़ियों के पीछे सिनेमा की पर्चियां बटोरने के लिए दौड़ा करती थीं। कश्मीर की सड़कों पर अपने गांव की याद लेखिका को भावुक कर देती है।

जैसे-जैसे बस पहाड़ की चढ़ाई पर घुमावदार रास्तों से होकर चढ़ती जाती, नीचे तवी नदी एक पतली लकीर के रूप में दिखाई देने लगी थी। नीचे की घाटी का दृश्य बस में से अधिक-से-अधिक आकर्षक होता जा रहा था।

देवदारु के विशाल वृक्षों से भरा हुआ पहाड़ी वन्य प्रदेश लेखिका को कालिदास के 'रघुवंश महाकाव्य' में वर्णित पार्वती देवी का स्मरण करा जाता है। कश्मीर की घाटी वन्य संपदा के लिए प्रसिद्ध है जिसका आभास सैलानियों को अनायास हो जाता है। इस दल का पहला पड़ाव उधमपुर था। यह शहर सैनिक छावनी के लिए मशहूर है। चारों ओर फौजी गतिविधियां स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। चारों ओर पहाड़ों से घिरा है यह शहर, जो अपनी भौगोलिकता के कारण पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है। चारों ओर का पर्वत प्रदेश हरीतिमा से ढंका दिखाई देता है। इधर बस में यात्रा के दौरान छात्र अपना मनोरंजन गाने गाकर और भिन्न-भिन्न उपायों से शोरगुल मचाकर कर रहे थे। यही तो उनके लिए खुलकर आनंद का उत्सव मनाने का अवसर होता है, इसलिए उनके व्यवहार पर किसी का नियंत्रण नहीं चल सकता था। इस वास्तविकता से लेखिका अवगत थीं। अनुशासनप्रिय प्राध्यापकों को भी ऐसे अवसरों पर छात्रों को खुशी मनाने की

छूट देनी पड़ती है। थोड़े-थोड़े अंतराल पर रास्ते में पड़ने वाले नदी-नालों में बहते स्वच्छ निर्मल जलधारा में कूद पड़ने का लोभ सभी युवाओं में झलकता दिखाई देता था, किंतु इसका कोई उपाय नहीं था। कश्मीर घाटी में प्रवाहित होने वाली सारी जलधाराएं पारदर्शी और निर्मल शुभ्रता लिये हुए सैलानियों को बरबस आकर्षित करती हैं।

कृष्णकुमारी का कवि हृदय कश्मीर के प्रकृतिक सौंदर्य को अपनी कविता में संजो लेने का प्रयास करती हैं। इस यात्रा के दौरान लिखी हुई कविताओं को इन्होंने अपने इस यात्रा-वृत्तांत में शामिल किया है। इस मार्ग में उधमपुर, खुद, बतोनी और रामबन जैसे छोटे-बड़े कस्बे और गांव पड़ते हैं, इन्हें पार करते हुए साथ-साथ कभी आगे, कभी पीछे चलने वाली सेना की भारी-भरकम गाड़ियों के काफिले के साथ इस छात्र वृंद का सफर कोलाहल के बीच जारी रहता है, जैसे-जैसे यात्रा आगे बढ़ती जाती है, बाहरी प्रकृति का भी रूप सुंदर से सुंदरतम होता जाता है, पाईन के वृक्षों की कतारें भी मन को मोह लेती हैं। पाईन वृक्ष के नोकदार पत्तों की खूबसूरती का वर्णन लेखिका ने काव्यात्मक ढंग से किया है। चलते-चलते बस समुद्र की सतह से लगभग 2832 फीट की उंचाई पर स्थित पीर पंजाल पर्वत श्रेणियों के बीच में स्थित 'बनिहाल दर्रे' (Banihal Pass) के निकट पहुंच जाती है। यह दर्रा कश्मीर घाटी को जम्मू और कश्मीर के केंद्र शासित राज्यों से जोड़ता है। सन् 1956 से पहले तक जम्मू से श्रीनगर जाने वाले वाहनों को इस दर्रे से होकर गुजरना पड़ता था, जो कि बहुत जोखिम भरा आवागमन होता था। बनिहाल दर्रे से एकाएक कश्मीर का परिदृश्य बदल जाता है, प्राकृतिक छटा द्विगुणित होने लगती है। यहां से झेलम नदी की घाटी प्रारंभ हो जाती है। इस दर्रे को पार करने के लिए पीर पंजाल पर्वत श्रेणियों में से एक सुरंग बनाई गई, जो जवाहर सुरंग के नाम से प्रसिद्ध है। आवागमन के लिए इस सुरंग को 22 दिसंबर, 1956 को खोल दिया गया। यह सुरंग लगभग तीन किलोमीटर लंबी है, इसमें दोनों ओर से यातायात की सुविधा है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 44 पर बनिहाल और काजीगुंड के बीच में निर्मित है। इस सुरंग के कारण कश्मीर घाटी में आवागमन की सुविधा निर्विरोध हो गई। जम्मू और श्रीनगर के बीच आवागमन इसके कारण अधिक आसान हो गया है। इस बनिहाल दर्रे की दूसरी ओर का दृश्य छात्र दल के सदस्यों को इसलिए भी प्रभावित कर गया, क्योंकि वहां से बर्फ से ढंके पहाड़ों की झलक दिखाई देने लगी थी। हिमाच्छादित पर्वत ऐसे दिखाई दे रहे थे मानो उस पर संगमरमर की चादर ओढ़ा दी गई हो। सूरज की किरणें बर्फीली चट्टानों पर पड़कर दूर तक परावर्तित होकर दर्शकों की आंखों को चौंधियाने लगी थीं। इसी हिमाद्रि शिखरों के दर्शन के लिए ही तो सुदूर दक्षिण से जिज्ञासु विद्यार्थियों का यह जत्था कश्मीर की घाटी में उतर आया था। लेखिका ने इन दृश्यों का और साथ में बनिहाल दर्रा और उसके परिवाहक प्रदेश का वर्णन आकर्षक शैली में किया है। बस से जवाहर टनल (सुरंग) को पार करने का रोमांच ही अनूठा था सबके लिए। कश्मीर घाटी में उतरने के लिए यही एकमात्र मार्ग होने के कारण यह टनल काफी व्यस्त रहती है। टनल से बाहर निकलते ही सामने कई पर्वत शिखर दिखाई देते हैं। यहां से बस घुमावदार उतार से होती हुई तेजी से नीचे की ओर उतरने लगती है। इस उतार के बाद समतल जमीन पर बस दौड़ने लगती है। यहां पहुंचते ही लोगों को कश्मीर पहुंच जाने का एहसास होने लगता है। देखते-देखते रात हो गई। रास्ते में एक जगह एक अन्य कार सड़क की पटरी पर से उतरकर फंस गई थी, वहां

कुछ फौजी उनकी मदद कर रहे थे, छात्रों के दल ने भी इस बचाव कार्य में सहयोग किया। वहां के लोगों ने इन छात्रों के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। एक दोस्ती का माहौल बन गया। श्रीनगर पहुंचते-पहुंचते काफी रात हो चुकी थी। बस श्रीनगर के टूरिस्ट सेंटर पर रोक दी गई और उस छात्र वृंद को संयोजक ने अपने सामान के साथ उतरने का निर्देश दिया। इस छात्र पर्यटक दल के ठहरने के लिए बहुत सारे तंबुओं की व्यवस्था की गई थी, जिसे देखते ही सारे छात्र गुस्से से भड़क उठे। वे उन तंबुओं में नहीं ठहरना चाहते थे। कृष्णकुमारी इस दल की प्रभारी थीं, इसलिए ऐसी स्थिति में समस्या का समाधान इन्हें ही तलाशना था, लेकिन छात्र-छात्राएं उनकी भी सुनने के लिए तैयार नहीं थे, इससे विकट स्थिति पैदा हो गई थी। वहां पर जमा हाउस बोट वाले छात्रों की मानसिकता को पहचानकर उन्हें हाउस बोट में ठहरने के लिए सौदेबाजी करने लगते हैं। सारे छात्र मैडम कृष्णकुमारी को भी ठंड में तंबू में ठहरने के बदले हाउस बोट में ही रहने के लिए मनाने के प्रयत्न में जुट जाते हैं। वास्तव में इस पर्यटन का उद्देश्य छात्रों को सामान्य से भिन्न जीवन-शैली से परिचय कराना भी था, जैसे एन.सी.सी. के कैंपों में छात्र तंबुओं में रहकर जीवन बिताते हैं, कुछ-कुछ उसी तरह का अनुभव यहां भी आयोजक छात्रों को कराना चाहते थे। अंत में छात्रों को आयोजकों और अपनी पर्यटन प्रभारी की बात माननी पड़ती है। छात्रों की हाउस बोट में रहने की इच्छा पूरी नहीं हो पाती है। हाउस बोट में रहने के लिए काफी बड़ी रकम की जरूरत होती है, जो उस आयोजन के अनुरूप नहीं था। उस छात्र समूह में एक छात्रा बार-बार बेहोश हो जाया करती थी, उसकी अस्वस्थता साथी छात्रों के लिए काफी परेशानी का कारण बन गई थी। बीमारी से पीड़ित छात्रा कहीं घूम-फिर नहीं सकी। रात के समय तंबुओं में कड़ाके की ठंड लगती थी, जो दक्षिणात्य लोगों के लिए अधिक असहनीय होती थी, तंबुओं में भी गरम बिछौने की अच्छी व्यवस्था थी। छात्रों के इस कैंप में भोजन बनाने के लिए यू.पी. से एक रसोइये को भी साथ में लाया गया था, जो सुबह की चाय से लेकर दोपहर और रात का भोजन बनाकर खिलाता था।

दिन के उजाले में श्रीनगर शहर की सुंदरता अद्भुत थी। चिनार के वृक्षों से आच्छादित प्रदेश, सड़क पर ज्यादा भीड़-भाड़ नहीं थी। कश्मीरी पोशाकों, खिलौनों, ऊनी कपड़ों, कश्मीरी शॉलों सूखे मेवे की तरतीब से सजी हुई दुकानें पर्यटकों को अपनी ओर खींचती थीं। दूरी पर दिखाई देने वाली बर्फीली पर्वत की चोटियों के दृश्य सम्मोहक थे। लेखिका ने श्रीनगर शहर का बहुत ही खूबसूरत वर्णन अपनी इस रचना में किया है। झेलम नदी के तट पर बसा हुआ श्रीनगर प्राकृतिक सौंदर्य से सजा हुआ शहर है, जो मध्यकालीन और आधुनिक संस्कृति को अपने भीतर समेटे हुए पर्यटकों का स्वागत करता है। श्रीनगर की खूबसूरती इसके चारों ओर बनी प्राकृतिक झीलों, सरोवरों और बहते पानी के स्रोतों से एक अलग तरह के सम्मोहक प्रभाव को पैदा करती है। श्रीनगर स्थित डल झील को देखकर छात्र समुदाय की मुग्धता का वर्णन लेखिका के शब्दों में प्रभावशाली बन पड़ा है। श्रीनगर के इलाके में पर्वत की चोटी पर स्थित शंकराचार्य का प्रसिद्ध मंदिर, जो अब शिथिल और जीर्णावस्था को प्राप्त हो चुका है, इस मंदिर के प्राचीन इतिहास पर लेखिका ने प्रकाश डाला है। मंदिर का निर्माण काल ई. पू. 200 वर्ष होने का अनुमान लगाया जाता है। संभवतः यह सम्राट अशोक के पुत्र द्वारा निर्मित हुआ। आदि शंकराचार्य के द्वारा अद्वैत दर्शन के प्रचार हेतु इस प्रदेश में आकर इस पर्वत पर

तपोसाधना के लिए यहां बसने के प्रमाण मिलते हैं। श्रीनगर में झेलम नदी पर अनेक सुंदर पुल निर्मित हैं, जो नगर की शोभा में चार चांद लगाते हैं।

श्रीनगर स्थित मंदिरों की वास्तुकला के सौंदर्य का आस्वादन करने के उपरांत लेखिका अपनी छात्र मंडली के साथ 'डल' झील में शिकारा की सैर के लिए निकल पड़ते हैं। शिकारे में इस झील में दूर-दूर तक सैर करने का आनंद छात्रों के लिए अभूतपूर्व था। लेखिका ने 'डल' झील के वर्णन को अत्यंत आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है। झील चारों ओर से जिन पर्वत श्रेणियों से घिरी हुई है, उसका आकर्षण लेखिका को प्रभावित करता है। झील की सैर के उपरांत यह दल श्रीनगर के बाहरी प्रदेश में बने बाग-बगीचों की सैर करता है और सभी उनका भरपूर आनंद लेते हैं। उन उपवनों में तरह-तरह के रंग-बिरंगे फूलों की खूबसूरती किसी का भी मन मोह लेती है। इन बाग-बगीचों के रखरखाव के प्रति किसी भी पर्यटक को आश्चर्य हो सकता है। यहां का सदाबहार मौसम भी इस प्रदेश की कभी न मुरझाने वाली हरियाली और खूबसूरती के लिए जिम्मेदार है। यहां का 'चश्मे शाही' नामक उपवन विशेष उल्लेखनीय है। अंग्रेजी में इसे 'रॉयल स्प्रिंग' के नाम से पहचाना जाता है। यह छात्र दल शालीमार और निशात उपवनों का संदर्शन करते हुए मुगल बादशाहों के सैरगाहों और ख्वाबगाहों का आनंद लेते हुए अपनी यात्रा को आगे बढ़ाता है। लेखिका पाठकों की सुविधा के लिए अपने यात्रा-वृत्तांत में उस प्रदेश के उर्दू नामों आदि की व्याख्या तेलुगु में करती हैं। झील के बीचों-बीच खड़े चार चिनार वृक्षों के दृश्य का चित्रण यात्रा-वृत्तांत में आकर्षक बन पड़ा है। सन् 1587 में सम्राट अकबर द्वारा निर्मित मुगल गार्डन की मनमोहक छटा का वर्णन पुस्तक में निश्चित ही प्रशंसनीय है। 8 जून को श्रीनगर के आस-पास के कुछ और ग्रामीण इलाकों में से होकर गुजरते हुए लेखिका और उनके साथ के छात्र यात्रा को सार्थक बनाने का प्रयास करते हैं। युवा छात्र-छात्राओं के हर्षोल्लास का जीवंत चित्रण लेखिका निरंतर करती हैं। डल झील में हाउस बोट में कुछ दिनों के लिए निवास करने की चाह युवा छात्रों की पूरी न होने का दुःख सभी के मन में घर कर जाता है। श्रीनगर में कश्मीरी गलीचे और कालीनों के निर्माण करते हुए कारीगरों से मिलने और उनके द्वारा कढ़ाई के महीन काम को देखने का सुअवसर उस दल को मिलता है। ऊनी कपड़ों के बाजार में लेखिका अपने लिए कुछ खरीदारी करती हैं। कश्मीर के पश्मीना ऊन का शॉल बहुत प्रसिद्ध है, जिसका विशेष उल्लेख लेखिका ने किया है। ये सारी चीजें दक्षिण भारत में बहुत महंगी बिकती हैं, इसलिए पर्यटक लोग इन चीजों की यहां खरीदारी करते हैं। कालीन, गलीचे, गरम कपड़ों का बहुत बड़ा उद्योग कश्मीर प्रदेश का रहा है जिसकी ओर लेखिका अपनी पुस्तक में पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। आगे चलकर लेखिका एशिया के सबसे बड़ी 'वूलर झील' का वर्णन करती हैं। अनुमानतः इसका फैलाव लगभग 15 वर्गमील तक का माना गया है। झेलम नदी का जल इसमें एकत्रित होकर पुनः प्रवाहित हो जाता है। अगला पड़ाव मुसलमानों के लिए पवित्र स्थान सुप्रसिद्ध 'हजरत-बल' था। यह वास्तव में एक छोटा-सा गांव ही है। इसका नाम हजरत-बल इसलिए रखा गया, क्योंकि इस स्थल पर पैगंबर हजरत मोहम्मद का 'बाल' सुरक्षित रखा गया है। इसे देखने के लिए दुनिया भर से पर्यटक यहां आते हैं। इसे देखने के लिए सभी लोग इस मस्जिद में प्रवेश करते हैं। इसके एक ओर 'डल'

झील दिखाई देती है। इस दृश्य को देखकर लेखिका को अपने प्रदेश में श्रीकाकुलम में स्थित अरसिविल्लि सूर्यनारायाण का भव्य मंदिर स्मरण हो आता है। कश्मीर स्थित अनेक मंदिर लेखिका को आंध्र प्रदेश के मंदिरों की याद दिलाते हैं। 'तूलामूला' स्थित 'क्षीरभवानी' मंदिर का वर्णन लेखिका करती हैं। लेखिका के अनुसार इस मंदिर में अज्ञात स्रोत से दूध धवल जल की धारा अविरल प्रवाहित होती रहती है, जिस कारण इस देवी का नामकरण क्षीरभवानी किया गया है। तदुपरांत लेखिका के साथ छात्र वृंद बांदीपुर, सोपोर, हाजीपीर, बारामुला आदि जगहों के दर्शनीय स्थलों का संदर्शन करते हैं। बारामुला अक्सर हिंसात्मक घटनाओं के लिए चर्चित प्रदेश है। यहां पहुंचकर लेखिका और अन्य सहयात्री जलपान के लिए रुकते हैं। इस पड़ाव में उन्हें अप्रत्याशित रूप से प्राप्त आतिथ्य सत्कार का विशेष वर्णन लेखिका करती हैं। वहां की चाय की दुकान वाला बिना पूछे जब उन लोगों की खूब आवभगत करने लगता है तो वे यही समझते हैं कि वह उनसे अच्छी-खासी रकम ऐंठेगा, किंतु अंत में उन्हें पता चलता है कि उस चाय की दुकान में पर्यटकों को निःशुल्क ही जलपान मुहैया कराया जाता है। उस दुकान का मालिक उन लोगों को वहां पर लगे एक नोटिस बोर्ड की ओर देखने के लिए कहता है, जिस पर लिखा था कि वहां 'राजनीतिक चर्चा मना है', क्योंकि इसका परिणाम अंत में हिंसात्मक लड़ाई-झगड़ों में होता है। परस्पर सद्भावना और शांतिपूर्ण वातावरण बनाए रखने के लिए इस तरह के प्रयास से वहां आने वाले पर्यटक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लेखिका को इस यात्रा के दौरान जो एक विचित्र और विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करने वाली बात लगी, उसका उल्लेख वह सतर्कता के साथ करती हैं। उनके अनुसार, उन्हें एक विचित्र एहसास होता रहा कि जैसे वह हिंदुस्तान में नहीं बल्कि किसी अन्य देश में भ्रमण कर रही हैं, क्योंकि उन्होंने गौर किया कि कहीं भी उन्हें भारत के प्रमुख व्यक्तियों या नेताओं के फोटो आदि लगे हुए दिखाई नहीं दिए या भारत सरकार की किसी भी जनहित योजनाओं संबंधी विज्ञापन आदि भी नहीं दिखाई दिए और न ही वहां की दुकानों के नामों में कहीं भी 'भारतीय' शब्द का प्रयोग ही किया गया है। केवल दो जगहों पर उन्हें भारतीय शब्द दिखाई दिया, 'स्टेट बैंक ऑफ इंडिया' और 'इंडिया कॉफी हाउस'।

उन्हें 'ऑल इंडिया रेडियो' के बदले में 'रेडियो कश्मीर' सुनाई दिया। कश्मीर को जो विशेष दर्जा भारतीय संविधान द्वारा हासिल है, उसके बावजूद कश्मीरवासियों का यह अलगाववादी रवैया लेखिका को व्यथित कर जाता है। उनके स्मृतिपटल पर आजादी के समय रजवाड़ों के भारत गणतंत्र में विलय की घटनाएं ताजा होने लगती हैं। लेखिका की यह यात्रा सन् 1974-75 के समय की है। लेखिका के शब्दों में, कश्मीर प्रदेश को देशी-विदेशी पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र बनाने के लिए भारत सरकार द्वारा जो अपार व्यय किया जाता है, उसके प्रति भी वहां के लोगों में गर्व और गौरव का भाव दिखाई नहीं देता है। इसी मानसिकता के साथ लेखिका अपनी शेष यात्रा पूरी करने के लिए आगे बढ़ती हैं। बस में से रास्ते के दोनों ओर केसर की बुवाई के लिए बनी क्यारियों के सुंदर दृश्य दिखाई देते हैं। वह मौसम केसर के फूलों के फूलने का न होने के कारण हम केसर के फूल नहीं देख सके, जिसका मलाल हम सबके दिलों में रह गया। केसर की सर्वाधिक पैदावार के लिए प्रसिद्ध 'पांपूर' प्रदेश का उल्लेख लेखिका ने किया है। इस प्रदेश को

प्राचीन काल में 'पद्मपुर' कहा जाता था। यात्रा के दौरान सायंकाल के समय लेखिका अपने लिए एकांत वातावरण निर्मित अवश्य कर लिया करती थीं। दल का युवा वर्ग अपनी मौज-मस्ती में डूबा रहता, वे लोग खरीदारी आदि करने के लिए निकल पड़ते थे तो लेखिका अपने कल्पना लोक में विचरण करती रहतीं। लेखिका का काव्य-संसार कश्मीरी सौंदर्य के चित्रण से आलोकित होने लगता है। कश्मीर के सौंदर्य का आस्वादन करने के लिए इस प्रदेश में सुदीर्घ प्रवास की आवश्यकता को हर पर्यटक महसूस करता है। लेखिका ने भी अपने वृत्तांत में एकाधिक बार इस विचार को व्यक्त किया है। दूसरे दिन 'सोनमर्ग' के लिए यह दल रवाना होता है। (यह तारीख थी 20 जून, यह दल 13 जून को हैदराबाद से रवाना हुआ था, लेकिन प्रस्तुत वृत्तांत में वर्ष का उल्लेख नहीं मिलता है) सोनमर्ग की दूरी श्रीनगर से 50 मील की है। सोनमर्ग का अर्थ लेखिका ने तेलुगु के पाठकों के लिए 'सुवर्ण मार्ग' लिखा है। समुद्र सतह से यह लगभग 7850 फीट की ऊंचाई पर स्थित है, जहां से 'हरमुख' पर्वत शिखर दिखाई देता है। यह पर्वत प्रदेश बारहों महीने बर्फ से ढंका रहता है। यहां की बस यात्रा का वर्णन लेखिका ने बहुत ही रोचक शैली में किया है। घुमावदार घाट सड़क पर ऊपर की ओर चढ़ाई चढ़ती हुई बस में रोमांच का वर्णन लेखिका की कलम से और भी अधिक रोमांचक हो गया है। इस प्रदेश में पाईन और फर के वृक्षों का सौंदर्य, उनके हरे-हरे नुकीले पत्तों का स्पर्श लेखिका के शब्दों में वर्णनातीत रहा है। लेखिका उस धवल हिमाच्छादित पर्वतीय अति शीतल वातावरण के रोमांच का अद्भुत वर्णन अपनी पुस्तक में करती हैं। यहां जो भी पर्यटक पहुंचता है, वह कभी वहां से लौटकर आना नहीं चाहेगा, लेखिका के शब्दों में यही स्थिति उन छात्रों की भी हो गई थी। कश्मीर की पहाड़ियों के ढलान पर हरीतिमा से युक्त चरागाहों में भेड़, बकरियों को चराते हुए पहाड़ी गड़रियों के दृश्यों का चित्रात्मक शैली में वर्णन पाठक को अतिरिक्त रूप से आकर्षित करता है। गुलमर्ग और सोनमर्ग के रास्ते में जहां बस नहीं जा सकती थी, ऐसी संकरी चढ़ाइयों पर पैदल चलना पड़ता था या टट्टू की सवारी लेनी पड़ती थी। लेखिका ने ऐसी दुर्गम बर्फीली चढ़ाइयों पर टट्टू की सवारी की और अपने इस अनुभव को पाठकों के साथ साझा किया है। कश्मीर के टट्टू मालिकों की आत्मीयता और उनका सद्व्यवहार, यात्रियों की सुरक्षा के प्रति उन लोगों की जागरूकता पर्यटकों को प्रभावित करती है।

लेखिका ने कश्मीरी श्रमिकों के प्रेमपूर्ण व्यवहार को विशेष रूप से रेखांकित किया है। सोनमर्ग में छात्रों का दल बर्फ में खेलने का भरपूर आनंद लेता है, लेखिका भी इसमें भाग लेती हैं और इसे वह अविस्मरणीय बताती हैं। सोनमर्ग और गुलमर्ग की पहाड़ी ढलानों पर फिसलने का भी एक रोमांचक आनंद होता है, वे लोग स्केटिंग या स्कींइग करने के लिए भी लालायित हो रहे थे जिसका आनंद अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार छात्र दल ने उठाया। कहीं-कहीं पर पहाड़ी नालों में से होकर चलने का भी अनुभव हुआ। यहां के स्रोतों, झरनों और नदी, नालों के पानी की बर्फीली ठंडक असहनीय होती है, जिससे बचने के लिए इन्हें पार करने के लिए फिर से टट्टुओं का सहारा लेना पड़ता था। इस पर्यटन यात्रा के दौरान सभी सदस्य अपने-अपने परिवार से निरंतर संपर्क में रहते थे, लेखिका क्योंकि इस दल की अस्थायी अभिभाविका थीं, इसलिए वे छात्रों और उनके परिजनों के बीच निरंतर संवाद बनाए रखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करती रहती थीं। वह स्वयं भी अपने परिवार से

संपर्क बनाए रखती थीं और अपनी यात्रा संबंधी रोचक बातों से परिजनों को अवगत कराती रहती थीं। बीच-बीच में ऐसी भी स्थितियां उत्पन्न हुईं, जब लेखिका को छात्रों के हित में उन्हें मनमाने या अपनी इच्छानुसार रातों में घूमने-फिरने पर प्रतिबंध लगाना पड़ता था। जिससे वे लोग नाराज हो जाते थे। इन स्थितियों में लेखिका के प्रति कुछ छात्रों में नाराजगी का भाव पैदा होना स्वाभाविक था। ऐसी यात्राओं में यह अनुभव भी चिरस्मरणीय हो जाते हैं। लेखिका ने एक-दो छात्राओं से कुछ अवसरों पर मतभेद के कारण हुई गरमागरम बहस का भी उल्लेख किया है। उन्होंने अपने इस अनुभव से यह बताया है कि युवा छात्रों को ऐसी जगहों में नियंत्रण में रखना दुष्कर कार्य है। लेखिका को रह-रहकर अचानक घर की याद, पति और बच्चों की याद ऐसी आ जाती है कि उन्हें फौरन घर लौट जाने के लिए छटपटाहट होने लगती थी। कश्मीर कितना ही सुंदर और मन लुभावना क्यों न हो, लेकिन घर से बड़ा स्वर्ग दूसरा नहीं हो सकता, ऐसे विचार लेखिका के मन में बार-बार आते रहते हैं, अपने मनोभावों को वह खुलकर व्यक्त करती हैं। 21 जून को यह दल 'गुलमर्ग' के लिए अपने आवास से रवाना होता है। श्रीनगर से 20 मील दूर और समुद्र की सतह से 2000 फीट की ऊंचाई पर स्थित यह पर्वत प्रदेश भी वर्णतातीत सौंदर्य से युक्त है। पाईन के जंगल से भरे इस प्रदेश के बीच से गुजरते हुए जो आनंद की अनुभूति होती है, वह भी कल्पनातीत ही है। यहीं से 'खिलनमर्ग' के लिए भी रास्ता है। 'खिलन' का अर्थ लेखिका ने 'भेड़', कहा है, खिलनमर्ग यानी भेड़ों का मार्ग। इस प्रदेश में अत्यंत रमणीय चरागाह दिखाई देते हैं, यहां के गड़रिये अपनी भेड़ों के झुंडों को हांककर चराने के लिए ले जाते हुए दिखाई देते हैं। हरे घास की पहाड़ियों और उनके चढ़ाव और ढलान पर चरते भेड़ों के झुंड बहुत आकर्षक लगते हैं। लेखिका के अनुसार स्थानीय कश्मीरी ग्रामीण पशुपालन कला में निष्णात होते हैं। इन कश्मीरी भेड़ों का ऊन बहुत मूल्यवान होता है, यह कश्मीर की अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसके बाद इनकी मंजिल पहलगाम थी। केवल सड़क मार्ग से ही कश्मीर घाटी का भ्रमण किया जा सकता है। इसलिए यात्रा के साधन का दूसरा विकल्प न होने के कारण सभी पर्यटक बसों या मोटर वाहनों में ही कश्मीर घूमा करते हैं, किंतु लेखिका के लिए पिछले आठ-दस दिनों से एक ही बस में यात्रा करते-करते मानसिक और शारीरिक थकान और ऊब होने लगती है। युवा वर्ग पर इन चीजों का कोई असर नहीं होता और वे हर हाल में उल्लास और उमंग से भरे रहते हैं। पहलगाम से ही 'लिड्डर नदी की घाटी' में स्थित अमरनाथ गुफा में शिवलिंग के दर्शनार्थ यात्री यहीं से अपनी यात्रा करते हैं। इसलिए पहलगाम का महत्त्व बढ़ जाता है। पहलगाम समुद्र सतह से 7000 फीट की ऊंचाई पर स्थित है, जो अपनी अलग तरह की प्राकृतिक छटा के लिए प्रसिद्ध है। लेखिका के अनुसार 'लिड्डर' एक नदी का नाम है, यह शब्द संस्कृत के 'लंबोदरि' का विकृत रूप है। इस स्थल से जुड़ी एक पौराणिक कथा का वर्णन लेखिका ने रोचक ढंग से किया है। पहलगाम से एक मील दूर शिव का एक मंदिर है जिसमें भगवान शिव की पूजा 'लल्लेश्वर' के नाम से की जाती है। शिवपूजन के लिए एक बार जब सारे देवी-देवता वहां प्रस्तुत होते हैं तो गणनायक द्वार रक्षक बनकर देवी-देवताओं का मार्ग रोक देते हैं, देवताओं और गणनायक के मध्य भीषण संग्राम छिड़ जाता है। गणनायक क्रोध में आकर निकट के जलप्रवाह को पीकर सुखा डालते हैं। अपने उदर में उस अगाध जलराशि के पान करने के कारण वह 'लंबोदर' कहलाए। उस नदी के सूख जाने से प्रदेश में हाहाकार मच गया, तब

भगवान शिव ने अपनी उंगली से लंबोदर का उदर छेद दिया जिससे वह सारा जल पुनः नदी के रूप में प्रवाहित होने लगता है। उसी प्रवाह का नाम है—लंबोदर नदी। इस नदी का अस्तित्व प्राचीन काल से विद्यमान है और इसका उल्लेख कल्हण ने 'राजतरंगिणी' में किया है।

'शेषिरामनाग' नामक सरोवर का उल्लेख लेखिका ने किया है। अनंत काल पूर्व इस प्रदेश में वायु स्वरूपधारी नामक एक राक्षस ने उत्पात मचा रखा था, वह देवताओं के शैवाराधन में विघ्न पहुंचाता और तरह-तरह से आतंकित करता था। उसके उत्पीड़न से मुक्ति के लिए देवता लोग शिव की शरण में जाते हैं। उस राक्षस के शिव भक्त होने के कारण उसके संहार के लिए देवता अपनी विवशता बताते हैं। शिव जी देवताओं को उन्हें भगवान विष्णु की शरण लेने की सलाह देते हैं। तब विष्णु भगवान अपने शेषनाग के द्वारा उस दुर्दांत दानव का अंत कराते हैं। इसीलिए उस स्थान का नाम शेषनाग पड़ा होगा। 'पंचतरिणि' नामक सरोवर का वर्णन लेखिका ने किया है। लेखिका के अनुसार कश्मीर प्रदेश पूरा शिवमय है। शिव के असंख्य पूजा स्थल प्राचीन काल से आधुनिक काल में इस प्रदेश में शिवभक्त राजाओं द्वारा निर्मित होते रहे। शिव के केश की पांच जटाओं में से एक जटा से गंगा की एक क्षीण धारा जब प्रवाहित हुई तो उसके संचित जल से 'पंचतरिणि' सरोवर बन गया। ऐसी अनेक कथाएं इस प्रदेश में व्याप्त हैं। इन कथाओं में एकरूपता नहीं दिखाई देती, इस विविधता को भी लेखिका ने रेखांकित किया है। कश्मीर का पूरा भूगोल हिमालय पर्वत के अभिन्न भूखंड के रूप में ही विश्व के मानचित्र में अंकित है। हिमालय को कैलाश अर्थात् शिव के आवास के रूप में अलौकिक दिव्य भूमि माना गया है। ऐसी मान्यता है कि शिव के शिरोभाग से निकलकर गंगा भूमि पर प्रवाहित हुई, भूगोल की भाषा में गंगा का उद्‌गम हिमालय से हुआ।

पर्यटन की अंतिम कड़ी थी, मलिका नूरजहां द्वारा निर्मित सबसे खूबसूरत 'शालीमार बाग'। यहां पहुंचने के लिए दो मार्ग हैं। एक सड़क मार्ग और दूसरा झेलम नदी की उपशाखाओं में शिकारे द्वारा। डल झील के पास से ही यह जलमार्ग निकलता है। शिकारे द्वारा शालीमार बाग की यात्रा छात्रों के लिए रोमांचक थी, क्योंकि यह यात्रा लंबी थी और शिकारे में दूर तक की यात्रा करने का यह सुनहरा अवसर था। सड़क मार्ग अपेक्षाकृत ज्यादा महंगा भी था। झेलम की पतली धाराओं में शिकारे में जाते हुए झील में हाउस बोट में स्थायी रूप से निवास करने वाले कश्मीरियों के जीवन की झांकी दिखाई देती है। इसे बहुत करीब से इन छात्रों ने देखा। उनके उस जीवन को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। शालीमार बाग का सौंदर्य, बाग में रोपे गए अनेक प्रकार के फूलों की क्यारियां, उस पूरे बाग का सम्मोहक वातावरण, उसका विस्तार सचमुच राजसी था, लेखिका ने जिसका शब्दों में वर्णन असंभव माना है। यह बाग मुगलों की प्राकृतिक सौंदर्य चेतना का प्रतीक बनकर आज भी लाखों पर्यटकों को आह्लादित कर रहा है। लेखिका ने यहां तक कह दिया कि सारे कश्मीर के सौंदर्य पर शालीमार बाग का सौंदर्य भारी पड़ता है।

श्रीनगर का विस्तृत भ्रमण करने के लिए छात्रों ने इसे आखिर के लिए रख छोड़ा था। एक पूरा दिन इस पूरी मंडली ने श्रीनगर के प्रमुख बाजारों में काफी खरीदारी की। पर्यटकों से दुगनी-तिगुनी कीमतें वसूल करने की परंपरा श्रीनगर के बाजार में भी दिखाई देती है। हैदराबाद के इन युवाओं ने भी अपनी सूझबूझ से सस्ते में खरीदारी की। आखिरी दिन सब लोगों ने अपने खर्चे से महंगे रेस्तरां

में मनमाफिक भोजन किया। कई दिनों से उन्हें मजबूरन यात्रा के आयोजकों के द्वारा निर्धारित भोजन से ही काम चलाना पड़ रहा था, जो कि उन सबके लिए अरुचिकर और अप्रिय था।

आखिर लेखिका के छात्र दल का कश्मीर से वापसी का दिन आ पहुंचता है। 26 जून वह दिन था। श्रीनगर से उन्हें वापसी की यात्रा के लिए प्रस्थान करना था। तेरह दिनों की कश्मीर यात्रा का अंत आ पहुंचा। सभी लोग भावुक हो रहे थे। आखिरी रात अपने कैंप के बाहर पारंपरिक 'कैंप फायर' का आयोजन किया जाता है। उस रात सारे छात्रों ने नाच-गाने का आयोजन किया। उन छात्रों ने विशेष रूप से लेखिका को उनकी आत्मीयता और प्रेमपूर्ण मार्गदर्शन और सहभागिता के लिए आभार प्रदर्शित किया, छात्रों के इस व्यवहार से लेखिका भी अपनी भावुकता को न छिपा सकीं।

लेखिका डॉ. नायनि कृष्णकुमारी ने अपने इस यात्रा-वृत्तांत में कश्मीर के पर्यटन स्थलों का सुंदर वर्णन प्रस्तुत किया है, किंतु साथ में कश्मीरी जनजीवन को निकटता से समझने का प्रयास भी किया है। पर्यटन का अर्थ केवल प्राकृतिक सौंदर्य का आस्वादन मात्र करना नहीं होता या इमारतों को देख आना ही नहीं होता वरन् गंतव्य स्थल से जुड़े हुए लोगों की सामाजिकता तथा इन लोगों की संस्कृति का परोक्ष अध्ययन भी होता है, इस संदर्भ में लेखिका अपने इस यात्रा-वृत्तांत को सार्थकता प्रदान करती हैं।

तेलुगु साहित्य में कश्मीर विषयक दूसरी रचना भी एक यात्रा-वृत्तांत ही है। मुत्तेवि रवींद्रनाथ नामक एक समकालीन तेलुगु लेखक द्वारा 'मा कश्मीर यात्रा' नाम से रचित यात्रा-वृत्तांत है। उसका प्रकाशन वर्ष 2016 है। रवींद्रनाथ समकालीन तेलुगु यात्रा साहित्य विधा के ख्यातिप्राप्त लेखक हैं। इससे पूर्व इनके द्वारा रचित 'केरल यात्रा' नामक यात्रा-वृत्तांत तेलुगु में अपनी पहचान बना चुका है। यात्रा साहित्य लेखन रवींद्रनाथ की एक लेखकीय विशेषता है। लेखक ने कश्मीर की यात्रा सन् 2016 में पत्नी तथा अपने तीन मित्र-दंपतियों के साथ की थी। रवींद्रनाथ ने अपनी प्रस्तुत रचना में अपनी घुमंतू प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। इस आलेख में विवेचित दोनों यात्रा-वृत्तांतों के लेखकों का कश्मीर यात्रा के काल में पर्याप्त अंतर है, जिससे कि इन दोनों पर्यटकों ने कश्मीर प्रदेश को भिन्न राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश में देखा और अपने समय के परिवेश को अपने वृत्तांत में चित्रित किया है। पहली रचना सत्तर के दशक के कश्मीर को प्रस्तुत करती है तो दूसरी रचना कश्मीर के वर्तमान परिवेश को प्रस्तुत करती है। सत्तर के दशक में कश्मीर अपेक्षाकृत शांत और पर्यटन के अनुकूल था। देश-विदेश के सैलानी बेहिचक कश्मीर की सैर के लिए चल पड़ते थे। भारतीय फिल्मों में कश्मीर का चित्रण बिना किसी अवरोध के होता था, लेकिन धीरे-धीरे कश्मीर की राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। बढ़ते पाकिस्तानी हस्तक्षेप और पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादी गतिविधियों ने कश्मीर के जनजीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया, जिससे सबसे ज्यादा नुकसान कश्मीर के पर्यटन उद्योग को हुआ। कश्मीर प्रदेश का सामाजिक और राजनीतिक ताना-बाना बिखरकर तार-तार हो गया। कश्मीर में उत्पन्न विषम परिस्थितियों के बावजूद भारत सरकार के प्रयासों से कानून व्यवस्था बनी हुई है, जिस कारण यात्रीगण अमरनाथ और वैष्णो देवी जैसे दुर्गम तीर्थस्थलों की यात्राएं कर पा रहे हैं। लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तुत पुस्तक में 'कश्मीर' के लिए उन्होंने तेलुगु में 'कश्मीर' शब्द का प्रयोग किया है। अपने मित्रों के साथ कश्मीर घूमने की

योजना रवींद्रनाथ बनाते हैं और वे ही इस यात्रा के लिए प्रबंध करने की जिम्मेदारी भी संभालते हैं। दिल्ली के करोलबाग स्थित एक पर्यटन संस्था द्वारा कश्मीर भ्रमण के लिए संयोजित सामूहिक यात्रा दल में लेखक अपने मित्र परिवार सहित शामिल हो जाते हैं। इस यात्रा का कार्यक्रम आठ दिन/सात रातों के लिए उस निजी पर्यटन संचालक द्वारा तैयार किया गया था, जिसमें एक आरामदायक वातानुकूलित बस में दिल्ली से चलकर जम्मू और श्रीनगर के साथ-साथ वैष्णो देवी मंदिर के दर्शन कराने की योजना भी सम्मिलित थी। यात्रा व्यय में भ्रमण के स्थलों में सुविधाजनक आवासीय और भोजन प्रबंध की राशि शामिल थी। यात्रा के दौरान भोजन प्रबंध से लेखक एवं उनके मित्र संतुष्ट नहीं थे। उन्हें अन्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। दक्षिण भारतीय पर्यटक अक्सर कश्मीर में उपलब्ध भोजन से असंतुष्ट ही दिखाई देते हैं। यह एक सामान्य सत्य है।

दिल्ली में इस पर्यटन संस्था का अपना होटल इसी नाम से मशहूर है। इसका मालिक दक्षिण भारतीय होने के कारण अधिकतर दक्षिण भारतीय पर्यटक दिल्ली में यहीं ठहरते हैं। उत्तर भारत के पर्यटन स्थलों की यात्राओं के लिए सुदूर दक्षिण भारत के नगरों से यात्रीगण अग्रिम आरक्षण आदि करा लेते हैं। उस होटल में दक्षिण भारतीय भोजन की व्यवस्था होने के कारण दक्षिण भारत के यात्रीगण इस जगह को पसंद करते हैं। रवींद्रनाथ ने आत्मकथात्मक शैली में अपनी इस कश्मीर यात्रा का वर्णन प्रस्तुत किया है, इसलिए समूचा वृत्तांत उनकी आपबीती के रूप में पाठकों के सम्मुख उद्घाटित होता है। इस वृत्तांत में रोचक वर्णन तो मिलते हैं, किंतु कहीं-कहीं अतिशय विवरणात्मकता के कारण पाठ में नीरसता और शुष्कता का भी अनुभव होता है। एक सिद्धहस्त साहित्यकार (लेखिका) और पत्रकार लेखक के यात्रा वर्णन में निश्चित अंतर दिखाई दे जाता है। लेखक ने जिस यात्रा-योजना का चयन किया था, उसमें कश्मीर भ्रमण का शुभारंभ, वैष्णो देवी मंदिर की यात्रा से किया गया। रवींद्रनाथ ने प्रस्तुत यात्रा-वृत्तांत में स्वयं के आध्यात्मिक प्रवृत्ति के होने का एहसास कराया है। कश्मीर यात्रा में वे अपने मित्रों और परिवार के संग अधिक-से-अधिक तीर्थ स्थलों का संदर्शन करते हैं। उन सभी स्थलों में स्थित आराध्य देवी-देवताओं से जुड़े पौराणिक आख्यानों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। वैष्णो देवी, श्रीनगर, गुलमर्ग, पहलगाम, मार्तंड सूर्य मंदिर आदि का संदर्शन इसी क्रम में लेखक और उनकी मित्र मंडली करती है। आठ दिनों की यात्रा में सबसे अधिक समय वे लोग श्रीनगर में ही बिताते हैं। कश्मीर यात्रा के अंत में लेखक और उनका मित्र वृंद अमृतसर (जालियांवाला बाग) और वाघा बॉर्डर की भी यात्रा कर लेता है। साहित्यिक दृष्टि से रवींद्रनाथ द्वारा रचित 'कश्मीर यात्रा' विवरणात्मक मार्गदर्शिका के रूप में उपयोगी है। तेलुगु सिनेमा में कश्मीर का फिल्मांकन अस्सी के दशक तक काफी हुआ है, उसके बाद क्रमशः इसमें कमी आ गई। इसका कारण कश्मीर के अशांतिपूर्ण हालात और आतंकवाद का डरावना माहौल है। कश्मीर के अलगाववाद और आजाद कश्मीर की विचारधारा पर आधरित दक्षिण भारतीय फिल्म 'रोजा' (तेलुगु, तमिल और हिंदी) बहुत लोकप्रिय हुई थी। कश्मीर में व्याप्त आतंकवादी वातावारण को दर्शाने वाली हिंदी में निर्मित फिल्में (फिजा, मिशन कश्मीर, यहां आदि) लोकप्रिय हुई। तेलुगु में कश्मीर विषयक साहित्य (गद्य-पद्य) का अभाव गौरतलब है।

□

गुजराती साहित्य में कश्मीर

अशोक चावड़ा

प्रास्ताविक—कश्मीर में बहती झेलम नदी के उद्‌गम स्थान वेरीनाग के पास एक बड़ी दीवार पर मुगल शहंशाह जहांगीर ने हजरत अमीर खुसरो की सुख्यात पंक्तियां अंकित की हैं—

गर फिरदौस बर रुए जमीं अस्त,
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त।

अर्थात् धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है। हां, स्वर्ग जैसा कश्मीर एक ऐसा प्रदेश है, जिसको जीवन में एक बार देखने की सबकी तमन्ना होती है। सच ये भी है कि तमन्ना सबकी कहां पूरी होती है? हां, साहित्यकारों एवं कवियों की अपनी कल्पना में हर तमन्ना साकार करने का विशेषाधिकार होता है। पिछले कई दिनों से जम्मू-कश्मीर और लद्‌दाख अनुच्छेद 370 और 35A के विशेषाधिकार को खत्म करने के ऐतिहासिक फैसले के कारण चर्चा में रहे। हालांकि आज जम्मू-कश्मीर एक केंद्र शासित प्रदेश और इनके साथ अब तक जुड़ा हुआ लद्‌दाख भी एक अन्य केंद्र शासित प्रदेश बन गया है। खैर, इन सब बातों से आप सब परिचित हैं, पर बात जब साहित्य की हो तो फिल्मों की तुलना में कश्मीर साहित्यकारों को कम लुभाता है और जब बात गुजराती साहित्य की हो तो गुजराती साहित्य में कश्मीर प्रवास-साहित्य में जितना निखरकर आया है, उससे बहुत कम अन्य साहित्य स्वरूपों में दिखाई देता है। आइए, गुजराती साहित्य के विविध स्वरूपों में प्रतिबिंबित कश्मीर की संवेदनाओं की बात करें।

गुजराती साहित्य में कश्मीर

जैसा कि प्रास्ताविक में बताया है कि गुजराती साहित्य में कश्मीर प्रवास-साहित्य में जितना निखरकर आया है, उससे बहुत कम अन्य साहित्य स्वरूपों में दिखाई देता है। इसकी कई सारी वजह हैं, जैसे कि सभी गुजराती साहित्यकार प्रवास के शौकीन नहीं हैं और जो हैं, वे शायद अपनी कलम से कश्मीर को उजागर करने का सोचते नहीं। कई बार ऐसा होता है कि साहित्यकार की रचनाओं को उसके निजी जीवन, निजी सोच के साथ जोड़ दिया जाता है। शायद इसीलिए कश्मीर की बात करके कोई अपने सिर पर कश्मीर समस्या के पक्षधर या आलोचक की पहचान लग न जाए, इसी आरोप से डरते रहे हैं। हां, यह बात भी सच है कि कश्मीर का साहित्यिकीकरण सिर्फ समस्या से नहीं, यद्यपि उसकी नैसर्गिक सुंदरता, सांस्कृतिक परिवेश एवं रहन-सहन से भी हो सकता है, लेकिन इसके लिए सिर्फ ड्राइंगरूम में रखी गई कश्मीर की तस्वीरें ही काफी नहीं होतीं,

वहां पर जाना और उस नैसर्गिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आबोहवा को अपनी सांसों में बसाकर, नजदीकी से उनकी बारिकियों को पहचानना भी जरूरी है। हालांकि, गुजराती पत्रकारिता का जितना हिस्सा कश्मीर को मिला है, उसके आधे से भी आधा हिस्सा गुजराती साहित्य के हिस्से में नहीं आया है। गौर करने जैसी एक बात है कि आजकल कश्मीर के साहित्य का अनुवाद गुजराती साहित्य में हो रहा है, यह अच्छा भी है।

गुजराती गद्य साहित्य और कश्मीर

गुजराती साहित्य में कश्मीर की बात होगी तो जाहिर-सी बात है वो गद्य के माध्यम से होगी या पद्य के माध्यम से। पाठकों की सहूलियत के लिए भी यह बात दो हिस्से में बांटी गई है। गद्य की बात करें तो प्रवास-साहित्य, कहानी, उपन्यास, नाटक एवं शौर्यकथा इत्यादि में कश्मीर का जिक्र हुआ हो ऐसे स्वरूपों की बात होगी। इसमें अनुवाद को भी शामिल किया गया है। गद्य साहित्य में उल्लेखनीय है कि सबसे बड़ी मात्रा में कश्मीर सिर्फ प्रवास साहित्य का एक हिस्सा रहा है एवं कहानी, उपन्यास, नाटक काव्य (पद्य) इत्यादि में कम।

प्रवास साहित्य में कश्मीर

गुजराती लोग प्रवास के शौकीन हैं और कश्मीर के प्रवास के अनेक प्रलोभन में से एक है हिमालय। उत्तर (कश्मीर) से पूर्व असम तक फैला हुआ हिमालय सिर्फ भारत के लिए ही नहीं अपितु समूचे विश्व के लिए एक अजूबा है। गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्रीनाथ, मानसरोवर, अमरनाथ, केदारनाथ, एवरेस्ट, कैलाश हिमालय की पावन भूमि के कितने-कितने मुकाम हैं, जैसे मानवशरीर पंच तत्त्वों का मिश्रण है वैसे ही हिमालय भारत, नेपाल, भूटान, तिब्बत, पाकिस्तान जैसे पंच देशों में फैला हुआ है। इतना ही नहीं, भारत में ही जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरांचल, सिक्किम, पश्चिम बंगाल, आसाम, अरुणाचल प्रदेश ऐसे सात राज्यों में हिमालय अपने अस्तित्व का प्रमाण देते हुए खड़ा है।

ध्रुवा एव वः पितरे युगे युगे, क्षेमकामासः सदसो न युज्जते।
अजुर्यासा हरिषाचो हरिद्रूप आ धावांपृथिवीमशुश्रुवुः (ऋगवेद)''
गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु। (अथर्ववेद)

प्राचीन ऋग्वेद एवं अथर्ववेद के अलावा विष्णुपुराण, गरुड़पुराण, महाशिवपुराण, मत्स्यपुराण, श्रीमद्भगवद्गीता में भी हिमालय का संदर्शन हुआ है तो फिर गुजराती साहित्य कैसे अछूता रह जाए!

मध्यकालीन गुजराती साहित्य एवं सुधारक युग के प्रवास साहित्य में कश्मीर का जिक्र नहीं मिलता है, पर पंडितयुग में पारसी प्रवासी जहांगीर मर्झबा ने 'मुंबई थी कश्मीर'(1887) में कश्मीर के प्रवास का रोचक वर्णन किया है। 1891 में सूरसिंहजी तख्तसिंहजी गोहिल 'कलापी' ने 18 साल की उम्र में कश्मीर का प्रवास किया था, जो 1912 में यात्रा-वृत्तांत के रूप में 'कश्मीर का प्रवास' नाम से प्रकाशित हुआ। 'कश्मीर का प्रवास' एक निसर्ग प्रेमी की आंखों-देखी प्रतिकृति है, जो हर पाठक को कश्मीर के प्रवास के लिए प्रोत्साहित करती है। पुस्तक में कवि ने निसर्ग के साथ-साथ झेलम नदी, डल सरोवर, मानव समूह की लोक-रीतियां, खान-पान, स्वभाव एवं अपने अनुभवों को समेटा है। कश्मीर से कवि इतने प्रभावित थे कि उन्होंने जब अपना प्रवास पूर्ण किया तब लिखा कि अब तूने स्वर्ग छोड़ा। अब तूने सुख खोया। अब वह आनंद गया...स्वर्ग छोड़ते हुए कौन दुःखी न हो?'

कलापी ने डल सरोवर एवं चश्मे शाही, नदी तट की पहाड़ियां, झेलम नदी इत्यादि के बारे में विस्तार से लिखा है। 'कश्मीर का प्रवास' इसीलिए गुजराती साहित्य का अमूल्य गहना है। कलापी लिखते हैं कि 'हमारी कश्मीर की लघुयात्रा ईश्वर कृपा से खुशी-खुशी पूर्ण हुई। कश्मीर एक स्वर्ग है और वहां जाना भी मुश्किल है। उस देश की यथास्थिति बयां करना एक कवि का काम है। वह कैलाश जैसा है कि कोई भी कवि उसके लिए कितने भी विशेषण लिखे या अलंकार का प्रयोजन करें, फिर भी उसमें कोई अतिशयोक्ति होगी ही नहीं।'

रविलाल कीकाणी 'पंचकेदार की यात्रा'(1921), ब्रजलाल कामदार 'हिमालयनो प्रवास' (1923), हरिचंद मेहता 'कश्मीरथी नेपाळ' (1929) जैसी कृतियों में प्रवास को धार्मिक दृष्टिकोण से निरूपित किया गया है। मणिलाल द्विवेदी ने 'महारुं काश्मीर प्रयाण' (1924) में कश्मीर का सौंदर्यमूलक परिवेश प्रस्तुत किया है ।

काकासाहेब कालेलकर रचित 'हिमालय का प्रवास' (1926) पाठक को एक ऐसे अनुभव विश्व में ले जाता है जैसे वह स्वयं प्रवासी हो। कालेलकर लिखते हैं कि 'बादलों पर आरसपहाण के पर्वत शिखर जैसा कुछ दिखता था। बादलों में वादियों का हिस्सा छुपा होने से वह आभा में उड़ते एक मैनाक पर्वत का बच्चा हो, ऐसा दिखाई देता था।' पुस्तक में काफी सारे रेखाचित्र भी समाविष्ट हैं, जिसमें काकासाहेब की कलम का निखार दिखता है। समग्र हिमालय के सौंदर्य, वहां की पृष्ठभूमि, सांस्कृतिक परिवेश, ऐतिहासिक संदर्भ से यह प्रवासगाथा मनभावन हुई है।

सोमेश्वर द्वारकाप्रसाद जोशी 'भूस्वर्ग याने कश्मीर का वर्णन' (1931) में कश्मीर की घाटियों एवं पर्वतों का सौंदर्य और कश्मीर की अमरनाथ यात्रा का बखूबी चित्रण मिलता है।

रतिलाल त्रिवेदी ने 'हिमालयनो सर प्रदेश' (1932) पुस्तक के माध्यम से दार्जिलिंग, सौंदर्यधाम कश्मीर इत्यादि लेख में कश्मीर को शब्दांकित किया है। श्रीनगर को लेखक ने निसर्ग के सनातन महोत्सव की धरती की पहचान दी है। डुंगरशी संपट ने 'हिमालयना पुण्य प्रदेश' (1932) में यमुनोत्री, गंगोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ जैसी पवित्र यात्राओं का वर्णन किया है। लेखक ने हिमालय को पवित्र देवभूमि की उपमा दी है। प्रसिद्ध कहानीकार धूमकेतु ने 'पगदंडी' (1932) में दार्जिलिंग की टाइगर हिल के अनुपम सूर्योदय का वर्णन किया है एवं हिमालय के नैसर्गिक स्थलों की जीवंत प्रस्तुति की है।

हिमंतलाल तुनारा 'हिमालयनुं पर्यटन' (1947) प्रवासगाथा में हिमालय के उपासक की तरह उसके सौंदर्य को उजागर करते हैं। वीरजी माहेश्वर 'हिंद पर्यटन' (1949) में अमरनाथ, जम्मू, कैलाश मानसरोवर का जिक्र करते हैं। रसिकलाल पारीख के 'मारो हिमालयनो प्रवास' (1955) में हिमालय में छुपी हुई जड़ी-बूटियों का विशेष वृत्तांत है। स्वामी प्रणवतीर्थ 'उत्तरापथ' (1958) में बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री की प्रवासगाथा बयां करते हैं। पूर्णिमा पकवासा 'जयश्री बद्रीनाथ' (1958) में बद्री-केदार यात्रा का वर्णन देते हैं। सौभाग्यचंद राजदेव ने 'बदरीकाश्रम' (1959) में सतीपथ, पांडवों का स्वर्गारोहण, बसुधारा इत्यादि जगहों की रोचक बातें की हैं। रामनारायण पाठक ने 'भारतयात्रा' (1960) में यमुनोत्री, गंगोत्री, बद्रीनाथ, केदारनाथ, कैलाश, मानसरोवर एवं कश्मीर की रोचक जानकारियां प्रस्तुत की हैं। हालांकि, यह प्रवासगाथा अनुभूतिजन्य होने की बजाय सिर्फ जानकारी के विशेष मिश्रण होने से पाठक को कम लुभाती है। कश्मीर के

सौंदर्य की ढेर सारी बातें इसमें समाविष्ट हैं।

ठाकोरलाल टांकावाला 'श्री बदरी-केदारनाथनी यात्रा' (1962) में यात्रा का माहात्म्य एवं हरिद्वार की पौराणिक गाथा और श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, गौरीकुंड, विष्णुप्रयाग जैसे धार्मिक स्थलों का महिमागान करते हैं। किसनसिंह चावड़ा 'हिमालयनी पत्रयात्रा' (1964) में हिमालय के सौंदर्य को उजागर करते हैं। वास्तव में यह पत्र उमाशंकर जोशी संपादित पत्रिका 'संस्कृति' में प्रकाशित हुआ था। नरभेराम सदाव्रती श्री कैलाशदर्शन (1964) में 49 दिनों की दैनंदिनी प्रस्तुत करते हैं। काकासाहेब कालेलकर भारतदर्शन-4 (1968) में 132 पृष्ठों में हिमालय के विध-विध तीर्थस्थलों का जिक्र करते हैं। लेखक हिमालय को 'चतुर्विद पुरुषार्थ का पुण्य प्रदेश' कहते हैं। स्वामी आनंद 'बरफ रस्ते बदरीनाथ' (1970) में हिमालय के साहसिक प्रवास वृत्तांत दर्शाते हैं। रवींद्र भट्ट 'एक रखड़पट्टी : हिमालयनी गोदमां' (1976) में हिमालय के तीर्थधामों का मनोहर वर्णन करते हैं। नरहरि दवे 'उत्तरनी यात्रा-1' (1989) में कश्मीर के प्रवास के अंतर्गत अचलेश्वर महादेव की रोचक बात बताते हैं। जयंती थानकी त्रिभेटो (1989) में हिमालय के अनुभवों को शब्दांकित किया गया है। चंद्रकांत बक्षी ने 'देश' (1989) में जय बदरी, हिमालय, गंगा पर तीन लेखों में रसप्रद आलेखन किया है।

स्वामी सच्चिदानंद 'हिमालयना हिंडोळे' (1992) में हिमालय के दुर्गम भागों में 22 दिन की जो यात्रा की, उसको शब्दांकित करते हैं। गुणवंत शाह 'आपणे प्रवासी पारावारनां' (1992) में हिमालय एज शिवालय नामक अंतिम लेख में हिमालय की यशगाथा गाते हैं। लेखक हिमालय को विश्व के सबसे बड़े शिवालय की उपमा देते हैं। मनुभाई पंचोळी 'देश-विदेश' (1993) में हिमालय की सांस्कृतिक गाथा उजागर करते हैं। प्रभा पटेल 'निसर्गनो साद' (1996) में गंगोत्री, एवरेस्ट एवं बद्रीनाथ यात्रा का वृत्तांत देते हैं। चंद्रसिंह ठाकोर ने 'उत्तराखंड' (1997) में हिमालय के उत्तर के हिमगिरि शिखर का आरोहण एवं फूलों की वादियों के साहसिक परिभ्रमण की गाथा प्रस्तुत की है।

हिमालय से जरा नजर हटाएं तो सिर्फ कश्मीर की ही बात हो, ऐसी भी कई सारी प्रवास गाथाएं मिलती हैं, जिसमें कश्मीर का सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण दिखाई देता है।

कल्याण चौहाण 'कश्मीरनो प्रवास अने अमरनाथनी यात्रा' (1947) में सिर्फ 270 रुपये में कश्मीर, अमरनाथ एवं उत्तर के कई प्रवासधाम की यात्रा 1.5 महीने में कैसे प्रवास हुआ, उसकी रोचक गाथा है। उस वक्त कश्मीर की यात्रा के लिए परमिट लेना पड़ता था। श्रीनगर, वुलर सरोवर, निशात बाग एवं अन्य विशिष्ट स्थलों की जानकारी इसमें समाविष्ट है। 'कश्मीर यानी कला का प्रदेश' कहकर लेखक ने कश्मीर के भीतरी सौंदर्य से अवगत कराया है। एक जगह खेती की अनोखी बात लिखी है। उन्होंने लिखा है कि 'डल सरोवर के तल में छोटे पौधे एवं बेल विपुल मात्रा में होती है। कश्मीरी किसान उसे खींचकर बाहर लाता है। बाद में उसको मिट्टी के साथ मिलाकर उसकी गूंचें बनाता है। उस गूंचों को कसकर एक साथ घुल-मिल जाए, उस तरह रखता है। बाद में उस पर मिट्टी रखकर अपनी मनभावन चीजों की खेती करता है।'

मोहनलाल दवे 'कश्मीर का प्रवास अने अमरनाथनी यात्रा' (1947) में श्रीनगर के दर्शनीय स्थलों, कश्मीर के इतिहास, कश्मीर-यात्रा का खर्च, यात्रा में जरूरी सामग्री आदि की जानकारी देते

हैं। हालांकि इस वर्णन में अनुभूतिजन्य अनुभव की कमी है।

वजुभाई दवे द्वारा रचित 'नवी नजरे कश्मीर' (1956) में 11 प्रकरणों के दरमियान कश्मीर का आंखों-देखा सौंदर्य उजागर किया गया है। वे लिखते हैं, 'हिमाच्छादित चौतरफा पर्वतमाला, पहाड़ों से बहते पानी के झरने, संकरे मार्गों से गुजरकर कूदती-उछलती नदियां, रंग-बिरंगे उद्यान, मनमोहक तरु, स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल और चपल एवं कार्यदक्ष उद्यमी मानती 'विध-विध पात्रसृष्टि' से यह प्रवास गाथा मनमोहक लगती है।

पीतांबर पटेल 'भारतना नवा यात्राधामो' (1957) में कश्मीर के निशात एवं शालीमार बाग के सौंदर्य की बात करते हैं। वह खिजा में भी कितने मनोहर प्रतीत होते हैं, उसकी बात करते हुए लिखते हैं कि 'किसी रूपसुंदरी ने आभूषण उतार दिए हों, सुस्त हो गई हो, फिर भी उसके अंग-प्रत्यंग की सुरेखता, उसकी कमनीय सप्रमाणता और चारुता छुपी रहती नहीं।'

सौभाग्यचंद राजदेव 'भगवान अमरनाथ' (1957) में स्वयंभू बनते बर्फ के शिवलिंग एवं कश्मीर का वर्णन करते हैं। हालांकि यह प्रवासगाथा अमरनाथ यात्रा की एक सचित्र सूची बनकर रह जाती है।

यशोधर मेहता ने 'श्रीनंदा' (1958) में अपनी 1954-56 की कश्मीर यात्रा को शब्दांकित किया है। वह श्रीनगर को स्त्रीनगर कहते हैं। लिखते हैं, 'श्रीनगर स्त्री नगर है, जहां हर एक चीज मनोहर हो, वह याद रह जाती है और उसकी छाप ही समग्र चित्र में बाहर आती है। कश्मीर की स्त्री किसी को सुंदर न लगी हो, ऐसा मैंने कहीं सुना या पढ़ा नहीं। किसी भी शहर में इतनी सारी सुंदर स्त्रियां नहीं होंगी। आंखें बहुत रोचक। मुखाकृति ईश्वर ने अपने हाथों से रची। पृथ्वी पर ऐसी सुंदर स्त्रियां मिलेंगी नहीं।'

मंजुला मेहता 'नंदनवन कश्मीर' (1962) में कश्मीर के बारे में और सतीसर, बारामुला, हारी पर्वत के नामकरण की बातें लिखती हैं। इस पुस्तक की प्रस्तावना काका कालेलकर ने लिखी है। काकासाहेब के कहने पर ही लेखिका ने यह प्रवास वर्णन लिखा था। इस पुस्तक में जम्मू की गरीब प्रजा के बारे में भी इंगित है। गांव-शहर, बचोट, कुंड, बनिहाल, वेरीनाग, अवंतिपुर, जम्मू इत्यादि के रसप्रद वर्णन हैं। रहन-सहन के बारे में भी काफी मनमोहक बातें हैं। जैसे कि वह लिखती हैं, 'कुर्ते के भीतर वह छोटी-सी टोकरी में मिट्टी के बर्तन में थोड़े अंगारे रखकर सेंक लेते हैं। इसे वे लोग कांगरी कहते हैं। गरीबी की वजह से गर्म कपड़ा नहीं ले पाते हैं तो कुर्ते के भीतर यह कांगरी काफी मददरूप होती है।'

भोलाभाई पटेल 'विदिशा' (1980) में ब्रह्मा नामक लेख में कश्मीर की पहाड़ियों की ट्रेकिंग के बारे में लिखते हैं। यह प्रवासगाथा ट्रेकिंग के कठोर अनुभवों को बयां करती है। वे लिखते हैं कि 'खाली हाथ-पांव हो ही नहीं। पीठ पर रकसैक है। हमारे सिर पर थी सनकैप। आंखों पर गोगल्स। पांव में हंटर शूज।' ऊपर गांव की सपाटी पर पहुंचे तो इस धूप में सितारे दिखाई दिए। लेखक ने ब्रह्मा शिखर के दर्शन के लिए किए गए ट्रेकिंग का अनुभूतिजन्य वर्णन किया है।

मणिलाल शाह 'प्राकृतिक प्रवासधामो' (1996) में कश्मीर का उल्लेख करते हैं। यशोधर मेहता की तरह मणिलाल भी महिलाओं के सौंदर्य का वर्णन करते हैं। वह लिखते हैं कि 'यूं तो कश्मीर में पुरुष एवं स्त्री दोनों ही गौर वर्ण एवं खूबसूरत, मनमोहक चेहरे वाले हैं, लेकिन पुरुषों की तुलना

में स्त्रियों की खूबसूरती ज्यादा आकर्षक एवं मनभावन है। यह मनमोहक ललनाएं ज्यादातर मजबूत एवं कद्दावर काठी की हैं। कई ललनाओं की नाक अणीदार तोते की चोंच जैसी और बाल लंबे, रेशमी एवं काले हैं। अनेक ललनाओं के समग्र अवयव काफी प्रमाणबद्ध एवं सुंदर होने की वजह से वो जैसे कोई स्वर्ग से उतर आई अप्सरा न हों, ऐसा खयाल देती हैं।'

हरीश त्रिवेदी ने 'श्री अमरनाथ यात्राना संस्मरणों' (1997) में अमरनाथ यात्रा की कठिनाइयों की सरल भाषा में चर्चा की है। भाणदेव 'हिमालय दर्शन' (1999) में जम्मू-कश्मीर-लद्दाख के साथ-साथ हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, नेपाल, पूर्वांचल इत्यादि की बातें करीबन 576 पृष्ठों में करते हैं। जम्मू-कश्मीर-लद्दाख की चर्चा 60 पृष्ठों में है, जिसमें वहां के ऐतिहासिक महत्त्व, दर्शनीय स्थलों एवं उनका माहात्म्य अमरनाथ, वैष्णो देवी, जम्मू-कश्मीर-लद्दाख ऐसे तीन विभागों में किया गया है।

कहानी एवं उपन्यास में कश्मीर

कहानी का आधार ही घटना तत्त्व है और घटना काल्पनिक भी हो सकती है एवं वास्तविक भी। कहानियों में कहानीकार जो देखता है, उसे शब्दों के माध्यम से घटनाओं में प्रतिबिंबित संवेदनाओं से अपनी बात रखता है। ज्यादातर कहानीकार कल्पना प्रदेश में विहार करते हैं, फिर भी गुजराती कहानियों में कश्मीर का जिक्र बहुत मिलता ही नहीं। धूमकेतु के कहानी संग्रह 'तणखा' में हिमालय की पर्वतीय गिरिमाला के आलेखन से कश्मीर का परोक्ष वर्णन मिलता है। दलित कहानीकार दलपत चौहाण के दो कहानी संग्रह क्रमशः 'डर', 'भेलाण' में काफी कहानियां कश्मीर के आस-पास हैं। कहानीकार दलपतभाई ने सामाजिक तौर पर कई बार कश्मीर के आस-पास के विस्तार की चर्चा की है, जिससे उनकी कहानियों का परिवेश एकदम वास्तविक है। 'एक गोली एक दुश्मन' कहानी में एक जवान की बारामिंडा की सरहद तक के सफर की बात है। 'रिपोर्ट' कहानी में आतंकवादियों के हमले की घटना है। 'सलामी' कहानी में एनकाउंटर की घटना है, जिसमें सैनिक की कलकत्ता की यात्रा है। 'गांठ' कहानी में दलित दमन के फलश्रुति दलित पिता की मूंछें काट ली जाती हैं, तो वह अपने पुत्र को आर्मी में शामिल करने के बाद अपना बदला लेता है। इन सभी कहानियों में पात्र दलित हैं, यह भी विशेषता है। इन कहानियों में कश्मीर की आबोहवा के साथ-साथ बॉर्डर पर हो रही गतिविधियां भी शामिल हैं। पन्ना त्रिवेदी के कहानी संग्रह 'सफेद अंधारु' में 'दूर चाल्यो जतो युवक' कहानी कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित है। एनकाउंटर केस के साथ चलती प्रेमकथा इस कहानी का हिस्सा है। उपन्यास में भी पूर्णतः कश्मीर का आलेखन हो, ऐसा दृष्टांत नहीं के जैसा है।

नाट्य में कश्मीर

गुजराती साहित्य में नाट्य स्वरूप काफी प्रचलित है, मगर कहानी-उपन्यास की तुलना में नाट्य में कश्मीर की प्रस्तुति दृश्य-श्रव्य माध्यम होने की वजह से कठिन भी है। हालांकि कश्मीर परिवेश एवं कश्मीर समस्या का अनुसंधान हो, ऐसे नाटक यूं भी बहुत कम मिलते हैं।

1997 में सूरत महानगर पालिका द्वारा आयोजित नाट्यस्पर्धा में 67 कलाकारों के दल के साथ प्रवीण पंड्या लिखित 'हाथीराजा' नाटक केतन राठोड़ के दिग्दर्शन में प्रस्तुत हुआ। वास्तव में 'हाथीराजा' नाट्य कलश के माध्यम से राजा का चयन करने वाली हथिनी की व्यथा-कथा है,

लेकिन इस कथा में राजा-प्रजा-सैनिक एवं अन्य पात्रों के माध्यम से कश्मीर का परिवेश भी परोक्ष रूप से सम्मिलित है। साज-सज्जा दिग्दर्शक केतन राठोड यूं भी सामाजिक समस्या एवं प्रतिबद्ध नाटिकाओं के दिग्दर्शन के लिए ख्यात हैं। एक आम नाट्य की तुलना में ऐसी नाटिका का मंचन दुष्कर होता है, इसीलिए बहुत कम दिग्दर्शक ऐसी राष्ट्रीय समस्याओं को मंच पर लेकर आते हैं। नाट्यलेखक प्रवीण पंड्या ने भी गजाधर, गिरजाधर, महामात्य, यशोविजय, शीलसेन, चैतन्यपाल जैसे पात्रों की मदद से अपनी कथा को बखूबी प्रस्तुत किया है। किसी की राजा बनने की मंशा एक हथिनी और प्रजा को कितनी आशंकाओं का सामना करने के लिए विवश करती है, यह बात 'हाथीराजा' नाटक में केंद्रित है। नाटक में गीतों का भी समन्वय है। प्रथम संस्करण के बाद प्रसंगोचित काफी सुधार के बाद भी यह द्विअंकी नाट्य आज तक लोकप्रिय रहा है, यह इसकी विशेषता है। उसका एक भवाई संस्करण भी है।

1998 में विहंग मेहता लिखित एवं विरल राच्छ दिग्दर्शित 'ज्यां न ऊगे सूरज' नाटक में बात तो हिमाचल प्रदेश के चंबा गांव के इर्द-गिर्द की है, लेकिन स्नोफॉल हमें कश्मीर की आबोहवा की याद दिलाता है। स्नोफॉल और तंदूर के माध्यम से शुरू यह नाटक अल्बर्ड कामू के 1943 में लिखित नाटक 'क्रॉस पर्पज' का भारतीय संस्करण है। मंचन के समय स्नोफॉल के लिए थर्मोकोल का प्रयोग किया गया था।

1997-98 के बाद नाट्य में कश्मीर की बात प्रस्तुत हो, ऐसा याद नहीं आता। हां, 2019 में स्नेहा देसाई लिखित एवं राजेश जोशी दिग्दर्शित 'सफरजन' कमर्शियल नाटक में फिर से कश्मीर की बात मिलती है। मुहम्मद, अनवर, श्यामलाल और झेलम के इर्द-गिर्द घूमती कथा कश्मीर के युवाओं की व्यथा-कथा को बयां करती है। मंच पर कश्मीर की प्रस्तुति के लिए शिकारा, सफरजन, घाटियां, झरने, स्नोफॉल जैसी मंच-सज्जा एवं प्रयुक्तियां भी हैं। यह व्यावसायिक नाटक संगीत नियोजन एवं दृश्य-संरचना के आधुनिक संस्पर्श के कारण काफी लोकप्रिय हुआ है।

शौर्यकथा में कश्मीर

कश्मीर का जिक्र सुंदरता के साथ-साथ ज्यादातर युद्ध के लिए भी होता रहा है, इसीलिए गुजराती शौर्यकथाओं में कश्मीर की बात मिलती है। 2019 में विरल शुक्ल की किताब 'शूरवीरगाथा' में इसी तरह की शौर्यगाथाएं हैं, जिसमें कारगिल युद्ध के दस महावीर चक्र विजेताओं की जीवनी सत्य कहानी के माध्यम से बयां हुई है। भारत-पाकिस्तान युद्ध 1965, 1971, 1999 में शहीद हुए गुजराती सैनिकों की बात हमें कश्मीर के भीतर तक ले जाती है और सोचने पर मजबूर करती है। वहीं कश्मीर साहित्य में वर्णित धरावी नैसर्गिक सुंदरता वहां रुक जाने के लिए लुभाती है। कैप्टन ने कीझुका ओ केंगुर्जे (ब्लैकरॉक), मेजर राजेश सिंघ अधिकारी (तोलोलिंग), मेजर विवेक गुप्ता (तोलोलिंग), नायक दिगेंद्र कुमार (तोलोलिंग), मेजर पद्मपाणि आचार्य (लोनहिल), केप्टन क्लिफोर्ड नोंग्रूम (पॉइंट-4812), कैप्टन अनुज नायर (पॉइंट-4875), मेजर सोनम वांगचुक (चोरबट ला, लद्दाख), लेफ्टिनेंट नागाजण सीसोदिया (छांब, 1971), लेफ्टिनेंट बलवान सिंघ पंचाल (टाइगर हिल) इत्यादि कहानियों में कश्मीर का बैकड्रॉप मिलता है। इस संचय की विशेषता यह है कि लेखक ने कवि होने के नाते कश्मीर एवं कारगिल युद्ध की कथाओं को शौर्य कविता की रचनाओं के साथ प्रस्तुत किया है। यद्यपि इसे कहानी-कविता संग्रह भी कह सकते हैं।

अनुवाद में कश्मीर

अनुच्छेद 370 और 35A के विशेषाधिकार को खत्म करने के ऐतिहासिक फैसले के बाद गुजराती साहित्य में कश्मीरी साहित्य का अनुवाद तेज गति से होने लगा। सिर्फ कुछ राष्ट्रीय संकलनों तक ही यह बात सीमित थी। अनुवाद की बात करें तो रजनीकांत एस. पटेल ने 'चिनार बली रह्या छे', वंजना शांतनु ने क्षमा कौल के उपन्यास 'दर्दपुर' का एवं पन्ना त्रिवेदी ने अग्निशेखर के कविता संग्रह का 'जवाहर टनल' नामक अनुवाद किया है। प्रकाशराम कुरीगामी के कश्मीरी रामायण का हिंदी अनुवाद रतनलाल तलाशी ने किया है, जिसमें प्रस्तावना डॉ. हसु याज्ञिक की है और गुजराती समीक्षा 'भारतीय रामकथाओमां विशेष पाठ' लेख से शिरीष पंचाल ने की है।

गुजराती साहित्यिक पत्रिकाओं में कश्मीरी कविताओं का अनुवाद प्रसंगोपात्त प्रकाशित होता रहा है, जिसमें 'तादर्थ्य' का कश्मीरी कविता विशेषांक है, जिसके संपादक सतीश डणाक हैं। गुजराती साहित्य परिषद् के मुखपत्र 'परब' के सितंबर-2019 के अंक में सितांशु यशचंद्र ने 'समकालीन भारतीय कविता लेखांतर्गत कश्मीरी कविताનો ताजो गुलदस्तो' लेख प्रस्तुत किया है। सितंबर एवं अक्तूबर दो अंकों में गुजराती भाषा के वरिष्ठ कवि सितांशु यशश्चंद्र ने रहमान राही, अग्निशेखर, निघत साहिबा, आमीर वानी जैसे कश्मीरी कवियों की कविताओं का अनुवाद एवं विमर्श प्रस्तुत किया है।

अशोक चावड़ा ने आकाशवाणी के नेशनल सिंपोजियम ऑफ पोएट्स-2020 में कश्मीरी कवयित्री निघत साहिबा की कविता—'पेश-ए-लफ्ज' का अनुवाद प्रस्तुत किया है।

यह कविता बच्चा नहीं है जिसे गुरुकुल ले जाऊं-कहूं पढ़ अलिफ से अल्लाह
जो मांग ले मुझसे मिष्ठी तो बर्फी पेश कर दूं मैं

'साधना' साप्ताहिक ने जनवरी 2020 में जम्मू-कश्मीर विशेषांक प्रकाशित किया है। हालांकि कई पत्रिकाएं एवं अखबारों के कॉलम में भी समय-समय पर कश्मीरी परिवेश एवं गाथा का उल्लेख विविध माध्यमों से होता रहा है, लेकिन वह एक अलग विषय है यद्यपि यहां प्रस्तुत नहीं।

गुजराती पद्य साहित्य और कश्मीर

कवि सदैव सुंदरता के पक्षधर रहे हैं। कवि कलापी ने जब से कश्मीर को अपनी कृतियों में ढाला तब से कश्मीर गुजराती साहित्य में चर्चित रहा है। कलापी के 'कश्मीर का प्रवास' की बात प्रवास साहित्य के अंतर्गत है, पर कलापी ने सिर्फ गद्य में ही नहीं, पद्य में भी कश्मीर की बात की है। 1892 में कलापी ने लिखा है—

कहीं है बहुत सख्त वन के बेशुमार फूलों से लदे
बेल के नवरंग से लटकते बहुत सारे गवन जैसे
... ...
जहां बहुत सारी नदी हैं ऐसी, जहां बर्फ की पहाड़ियां
अब मैं ऐसे कश्मीर देश को छोड़कर जाऊंगा कहां?

तो ज्ञानपीठ विजेता कवि उमाशंकर जोशी ने 'अभिज्ञा' कविता में कहा है कि—

अमूल्य हिमाद्री, है हिंदजनों की है
आत्मलक्षी का तू पियर

तेरे बगैर यहां की हर जगह
लगती है जैसे वीरान-सी
तुझे याद करते-करते व्याकुल हृदय
आऊंगा आऊंगा यह प्रलाप करता

गजल में कश्मीर का जिक्र ज्यादा नहीं मिलता, पर कवि मिलिंद गढवी हल्के-फुल्के शेर में लिखते हैं–

प्रश्न उसका सुलझ रहा ही नहीं,
लड़की कश्मीर की तरह है वो।

तो दलित कवि राजू सोलंकी ने 'दलितों और कश्मीर' कृति में दलितों और कश्मीरवासियों की तुलना की है। उसके कुछ अंश इस तरह हैं–

मगन कुम्हार की चोल, केशा बलु की चोल
सलिये वाले की चोल, रतीलाल की चोल
तार वाले की चोल, पी. कस्टिया की चोल
टेकरे वाले की चोल, अबु कसाई की चोल
कूंडे वाले की चोल, हीरालाल की चोल
रायचंद मेघराज की चोल, इन सब चोल के नाम तो सुने हैं ना?
यहीं है तेरा कश्मीर, यहीं है तेरा गुलमर्ग एवं सोनमर्ग
कश्मीर के साथ तेरा क्या लेना-देना? तूने कश्मीर देखा है!
गर्मी की चिलचिलाती धूप में तपते पतरे की छत के नीचे
एक कमरे में टीवी पर 'कश्मीर की कली' फिल्म में तुमने कश्मीर देखा है।
उसकी वादियां, घाटियां, उसका नैसर्गिक सौंदर्य देखा है।
कश्मीर तो तू कभी भी गया नहीं।
कश्मीर तो तेरे लिए है एक कल्पना
तुम्हारे पास तो अहमदाबाद से बुरे वक्त में कभी
अपने गांव जाने का किराया भी नहीं होता।
तो कश्मीर की क्या बात करें।

आप देख सकते हैं कि सबका अपना-अपना कश्मीर है। किसी को कश्मीर की समस्या लड़की जैसी लगती है तो किसी को कश्मीर एक ऐसा स्वप्न जो कभी जीते-जी आंखें देख भी न पाएं। यहां एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि जहां ललित साहित्यकारों को कश्मीर सिर्फ एक सौंदर्यमूलक प्रदेश या सुंदरता के कारण ही लुभाता है, वहां दलित साहित्यकारों को कश्मीर के साथ अपनी समस्या का अनुसंधान जुड़ा हुआ लगता है। यह सोचने वाली बात है कि जो सुंदरता के कायल होते हैं और चिल्ला-चिल्लाकर सुंदरता को कविताओं में उजागर करते हैं, वहीं कवि कश्मीर की बात आती है तो मौन हो जाते हैं।

उपसंहार–गुजराती साहित्य मध्यकालीन युग से भक्तिप्रधान रहा है तो क्रमशः गांधीयुग तक आते-आते व्यक्तिप्रधान हो गया है। जैसे कि कई महापुरुषों के नाम पर साहित्य की रचना होती

है या उनके नामों से साहित्य का युग जाना जाता है। कहने में तो आज अत्याधुनिक युग चल रहा है, पर साहित्य में कुछ भी आधुनिक नहीं है। आधुनिक विषयों के परिप्रेक्ष्य में गुजराती साहित्य का अध्ययन किया जाए तो निराश ही होना पड़ता है। खैर, कश्मीर की बात करें तो देखा जाता है कि गुजराती में कश्मीर सिर्फ प्रवास साहित्य तक ही सीमित रह गया है। अन्य स्वरूपों में कश्मीर पूर्णतः प्रतिबिंबित हुआ ही नहीं। कश्मीर के लोग, कश्मीर की समस्या, कश्मीर का रहन-सहन, कश्मीर की राजकीय-सामाजिक आबोहवा सिर्फ तस्वीर एवं खबरों के माध्यम से आंखों-कानों तक आ कर रह जाती हैं। कोई भी साहित्यकार अपनी कलम को कश्मीरमय करने की सोच नहीं रखता, वरना आज कश्मीर कहानी एवं कविता में कूट-कूटकर दिखाई देता। कहानी एवं कविता में वही पुरानी संवेदनाओं को नया चोला पहनाकर प्रस्तुत किया जाता है, पर कहानीकार एवं कवि कश्मीर के बारे में अध्ययन करके लिखने का सोचता भी नहीं। खैर, यूं भी कई बार साहित्यकार अपने गिरेबां से ज्यादा बाहर नहीं देखता, इसीलिए साहित्य में ज्यादातर गांव-शहर की समस्याओं का जिक्र होता रहता है। कहीं अमीर-गरीब, कहीं शासक-शोषित, कहीं स्त्री-पुरुष असमानता, कहीं जातिगत भेदभाव, कहीं प्यार-घृणा का तालमेल, कहीं धर्म-अधर्म बस ऐसे ही पैमानों के इर्द-गिर्द उनकी कलम घूमती रहती है। कई साहित्यकार अपने गांव, तहसील और शेरी-मोहल्ले या शहर से आगे का सोच ही नहीं पाते, वहां राष्ट्रीय समस्या तो बड़ी दूर की बात है। कश्मीर के आस-पास की कृति रचना के लिए कश्मीर जाना पड़ता है या तो बहुत ही गहराई से उसकी समस्या या सांस्कृतिक आबोहवा का अध्ययन करना पड़ता है, लेकिन यह भी सच है कि आजकल साहित्यकारों को 'यूज एंड थ्रो' पेन (कलम) की आदत पड़ गई है। इसीलिए कोई अपनी कलम में भूरी स्याही भरने का कष्ट भी नहीं उठाते हैं तो वह कैसे अपनी कलम में पेन (दर्द) वाली लाल स्याही भर पाएंगे? बड़ी मुश्किल से इस लेख के लिए कुछ कृतियां मिल पाई हैं, वह भी ज्यादातर पहले की ही हैं, यह भी इस बात का प्रमाण है कि साहित्य जो पहले पैशन था, वह आजकल सिर्फ फैशन बनकर रह गया है। यह कहा जाता है कि साहित्यकार ईश्वर के नजदीक है या उसको सबकी पीड़ा से दर्द होता है, पर 'गुजराती साहित्य में कश्मीर' विषय परिप्रेक्ष्य में देखते हुए यह लगता है कि ललित साहित्य सिर्फ सौंदर्य की मीठी-मीठी बातों से पूर्ण हो जाता है और दलित साहित्य अपने कटु दर्दों की तुलना से। खैर, जैसे जहांगीर को कश्मीर पसंद था, पर औरंगजेब को नापसंद था, वैसे ही यह सब अपने-अपने मन की बात है। वास्तव में कश्मीर पर लिखने की अनगिनत वजह हैं। कश्मीर का सांस्कृतिक इतिहास इतना गहरा है कि एक-दो रचनाएं ही काफी नहीं होंगी। दुःख इस बात का है कि हम अपने ही देश के एक ऐसे प्रदेश, जिसको सदियों से 'धरती पर के स्वर्ग' की उपमा मिली है, वहीं सदियों से नर्क से बदतर हालात भी रहे हैं, उसके बारे में कोई सटीक साहित्यिक कृति नहीं मिल पाई है। भविष्य में जब 'भारतीय साहित्य में कश्मीर' का जिक्र हो तो ज्यादा-से-ज्यादा कृति 'गुजराती साहित्य में कश्मीर' विषय पर मिलेंगी, अस्तु...।

□

मराठी साहित्य में कश्मीर

संदीप मधुकर सपकाले

'केल्याने देशाटन, पंडित मैत्री, सभेत संचार, शास्त्र ग्रंथ विलोकन, मनुजा येतसे चातुर्य फार' अर्थात् 'देश भ्रमण से' हम अपने ज्ञान को जितना विशद और विपुल कर सकते हैं, उतना किसी और उपाय से संभव नहीं है। मराठी भाषा में वास्तविक ज्ञान प्राप्ति के लिए पंडित वामन की यह उक्ति अत्यंत प्रचलित है जिसमें पंडित मैत्री तथा सभेत संचार को देशाटन के बाद स्थान दिया गया है। भारतीय ज्ञान-परंपरा में मराठी वाङ्मय अर्थात् मराठी साहित्य लेखन की विशद परंपरा में यात्राओं का अपना विशेष महत्त्व रहा है। भारत की सांस्कृतिक भावभूमि में महाराष्ट्रीय परिवेश में 'केल्याने देशाटन' से उत्पन्न जिज्ञासाओं के फलस्वरूप कई प्रकार की यात्राएं की गई हैं। इसमें पूरे भारत तथा हिमालय की ओर से की जाने वाली आध्यात्मिक यात्राओं का प्रारंभिक काल विशेष उल्लेखनीय रहा है। मराठी वाङ्मय लेखन परंपरा की खोज करने पर ज्ञात होता है कि मराठी भाषा और साहित्य के सौंदर्य दर्शन में प्राचीन कश्मीरी शैव दर्शन की तात्त्विक मीमांसा महाराष्ट्रीय परिवेश के संस्कृत कवियों व आचार्यों के रचनाकर्म में रही है।

आधुनिक मराठी भाषा और साहित्य में कश्मीर से प्रत्यक्ष साक्षात्कार के लेखन का आरंभ हमें यात्रा-वृत्तांतों में प्राप्त होता है। यात्रा वर्णन के इस क्रम में हमें गोविंद चिमणाजी भाटे की पुस्तक 'हिंदुस्थानचे नंदनवन अर्थात् काश्मीरचे वर्णन व वृत्तांत' (1919) प्राप्त होती है। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में गोविंद भाटे ने स्वीकार किया है कि जिस थोड़े-बहुत समय में उन्होंने कश्मीर की यह यात्रा की, उसका आंखों-देखा वर्णन उन्होंने किया है। इस पुस्तक के लिखने का उनका हेतु स्पष्ट था कि मराठी लोगों के भीतर कश्मीर को देखने की उत्कट इच्छा को यदि यह पुस्तक जगा पाए तो उनका लेखन सार्थक होगा। गोविंद भाटे ने अपनी कश्मीर यात्रा पेशे से वकील अपने भाई गोपालराव भाटे के साथ सन् 1915 में की थी। डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी से सेवानिवृत्त होने के बाद गोविंद भाटे ने इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् 1934 में कश्मीर की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाओं के साथ प्रकाशित करवाया था। अपने यात्रा-वृत्तांत के प्रथम प्रकरण का शीर्षक 'नंदनवनाकडे' यानी 'नंदनवन की ओर' का प्रारंभ भाटे गुरुजी ने 'राजतरंगिणी' के श्लोकों से किया है। वे लिखते हैं कि ''कश्मीर की अपूर्व सृष्टि और सौंदर्य को देखकर प्रवासी अंग्रेजों ने इस प्रांत को 'हिंदुस्थान का नंदनवन' कहा है, किंतु कश्मीर का यह लौकिक आज का नहीं बल्कि पुरातन काल से ऐसा ही बना हुआ है तथा संस्कृत वाङ्मय में 'राजतरंगिणी' के प्रथम सर्ग में यह बात स्पष्ट हो जाती है।''[1]

गोविंद भाटे ने 'राजतरंगिणी' के प्रारंभिक संस्कृत सर्गों का मराठी अनुवाद इसप्रकार किया है—'कल्पारंभापासून सहा मन्वंतरांच्या काळांत हिमालयाच्या पोटांतील भूमि पाण्यानें तुडुंब भरलेली असल्यामुळें तिला सतीचें सरोवर म्हणत। पुढे हल्लीं चालू असलेला वैवस्वत मनु सुरू झाल्यावर प्रजापति कश्यपानें द्रंहिण, उपेंद्र व रुद्र इत्यादि देवानां खालीं आणवून त्यांचे हस्तें त्या सरोवरांत राहणारया जलोद्भव (राक्षसाला) मारविलें व त्या भूमीवर कश्मीर या नांवाचा देश निर्माण केला' (मराठी)। प्रस्तुत मराठी पाठ का आशय है कि कल्प आरंभ के छह मन्वंतर काल में हिमालय के गर्भ की भूमि जलमग्न थी, इसी कारण इसे सती का सरोवर कहा जाता है। आगे चलकर वैवस्वत मन्वंतर के प्रारंभ होते ही कश्यप ने द्रहीन, उपेंद्र और रुद्र आदि देवों को बुलाकर उनके हाथों सरोवर में रहनेवाले जलोद्भव राक्षस का संहार करवाया तथा इस भूमि पर कश्मीर नाम का देश बसाया। इसके बाद गोविंद भाटे कश्मीर की भूमि उसके वैभव, परंपरा और लोगों के विषय में किए गए कल्हण के विवेचन को मराठी में इसप्रकार प्रस्तुत करते हैं—'चक्रभृत् व विजयेश या रूपानें विष्णु व शंकर या देवांनीं विभूषित अशा त्या देशांत तीर्थ नाहीं अशी तीळभरसुद्धां जमीन नाहीं, तो देश पुण्याच्या सामर्थ्याने जिंकला जाईल; पण सैन्याच्या सामर्थ्याने जिंकला जाणार नाहीं। म्हणून त्या देशांतले लोक फक्त परलोकाला भितात। त्या देशातील नद्यांपासून धोका नाहीं; त्या देशातील नद्यांमध्यें हिंस्र जल-चरें नाहींत; त्या देशांतील नद्यांमणध्यें हिंवाळयाकरितों उष्ण स्नानगृहांची सोय आहे; व त्या देशांतील नद्यांना, पाण्यापर्यंत जाण्यास सुलभ घाट आहेत। आपल्या बापानें निर्माण केल्यामुळें। त्रास देण्यास योग्य नाहीं असें जाणून त्या देशाला आदरानें उन्हाळयांतसुद्धां सूर्य प्रखरता भासवीत नाहीं। ज्या वस्तू स्वर्गांत सुद्धां, दुर्मिळ, अशा वस्तु म्हणजे विद्या, उंच घरें, केशर, बर्फमय पाणी व द्राक्षे, त्या देशांत अगदी सुलभ व विपुल आहेत। त्रैलोक्यामध्ये बहुरत्नावसुंधरा ही प्रशंसनीय आहे; त्या पृथ्वीवर कुबेराची उत्तरदिशा अधिक प्रशंसनीय आहे; त्या उत्तरदिशेकडील पार्वतीचा बाप हिमालय हा विशेषच प्रशंसनीय आहे व त्या हिमालयामधील कश्मीर देश तर सर्वांत प्रशंसनीय आहे'[2] (मराठी पाठ)। प्रस्तुत मराठी पाठ का हिंदी आशय इसप्रकार है—चक्रभृत और विजयेश के रूपों में विष्णु तथा शंकर से विभूषित ऐसे देश की भूमि तीर्थों से मंडित है। वह देश पुण्य के सामर्थ्य से विजित किया जा सकता है, लेकिन इसे सैन्यबल से जीता जाना संभव नहीं है। इसीलिए उस देश के लोग केवल परलोक से भयभीत रहते हैं। उस देश को अपनी नदियों से किसी तरह का कोई धोखा नहीं है। इस देश में हिंसक जलचर नहीं हैं। उस देश की नदियों में भारी ठंड के मौसम में उष्ण जल के स्नानगृह हैं, जो वस्तुएं स्वर्ग में भी दुर्लभ हैं यानी विद्या, ऊंचे घर, केसर, बर्फमय पानी और अंगूर उस देश में अत्यंत सुलभ और विपुल मात्रा में हैं। तीनों लोकों में बहुरत्न वसुंधरा प्रशंसनीय है। उस पृथ्वी पर कुबेर की उत्तर दिशा अधिक प्रशंसनीय है। उस उत्तर दिशा में पार्वती का पिता हिमालय तो और भी प्रशंसनीय है तथा उस हिमालय में बसा देश कश्मीर सर्वाधिक प्रशंसनीय है। मराठी वाङ्मय में कश्मीर प्रवास वर्णन करने वाले लेखकों का गहरा संबंध संस्कृत भाषा और वाङ्मय के अध्ययन से रहा है। मराठी में कश्मीर विषय पर अध्ययन के दौरान मराठी में कश्मीर यात्रा की दूसरी पुस्तक सन् 1930 में 'माझा काश्मीरचा

प्रवास'[3] शीर्षक से प्राप्त होती है। श्रीयुत् मोरेश्वर गोपाल काळे की 'माझा काश्मीरचा प्रवास' अर्थात् 'मेरी कश्मीर यात्रा' आधुनिक मराठी वाङ्मय के यात्रा साहित्य के रूप में उल्लेखनीय मानी जा सकती है। अपनी कश्मीर यात्रा पर इस पुस्तक के प्रारंभ में वे लिखते हैं—''आज तक इस विषय पर लेखकों (मराठी) ने कई लेख लिखे हैं, लेकिन उनके इस लेखन का उपयोग मात्र कुछ धनी वर्गों तक सीमित रहा है। इसी नाते मैं अपने प्रवास वर्णन को सभी के सामने लाने के लिए तत्पर हूं। मैं प्राथमिक स्तर पर पढ़ाने वाला एक गरीब शिक्षक हूं। दुनिया में हम गरीबों की संख्या ज्यादा है। मैंने अपनी यात्रा केवल 50 रुपये में पूरी की है। इस पुस्तक को पढ़ते हुए पाठक यह जान पाएंगे।'' अपने अत्यंत विनम्र आग्रह और निवेदन के साथ मोरेश्वर काळे ने मराठी पाठकों के सम्मुख 'कश्मीर प्रवास' को इसलिए भी रखा था ताकि तत्कालीन समय में सामान्य मराठी जन अपने क्षेत्र से निकलकर अखंड भारत के सुदूर क्षेत्रों तक जाएं और अपने देश की विशालता और विराटता का अनुभव करें, वह भी एक सामान्य-से दैनिक खर्च में। 26 अप्रैल, 1929 को उनकी यात्रा पुणे से मुंबई होते हुए जम्मू के लिए शुरू हुई। फिर दिल्ली पहुंचकर रावलपिंडी तक जाना हुआ। उस समय सीधे पुणे से जम्मू तक का टिकट लिया जाए तो 19 रुपये 4 आने जम्मू के, या 19 रुपये 12 आने रावलपिंडी तक का कुल टिकट होता था। 3 मई, 1929 को मोरेश्वर काळे जम्मू पहुंचते हैं और उन्होंने यहीं से अपने प्रवास वर्णन का आंखों-देखा हाल सुनाना शुरू किया है। जम्मू गांव के वर्णन के साथ उन्होंने जम्मू में स्थित श्री विनायक मिश्र की धर्मशाला और रघुनाथ मंदिर का वर्णन किया है। मोरेश्वर काळे ने जम्मू और कश्मीर की यात्रा पैदल की है, इसलिए उनका मानना है कि पदयात्रा करते हुए गांव के लोगों से प्रत्यक्ष मिलना और उनकी संस्कृति तथा समाज में अपनत्व के भाव से वास करना किसी बाहरी प्रवासी की तरह जाने से अधिक उत्तम है। जम्मू से श्रीनगर जाने के लिए उधमपुर से 20 मील की दूरी पर स्थित चिनानी गांव में उन्हें रुकना था। उधमपुर के पास दो-ढाई मील पर ही उन्हें एक सुंदर झरना और एक कुंड दिखाई दिया। लगातार तीन घंटे चलते रहने के कारण उनके मन को इस जगह गहरी शांति मिली और इससे आगे चलते रहने का साहस मिला। 22 वर्ष की आयु में मोरेश्वर काळे ने नेपाल की अपनी यात्रा इसी तरह पदयात्रा करते हुए की थी। कश्मीर यात्रा में उनकी आयु 32 वर्ष थी। पदयात्रा के लिए उनके पास एक बड़ा पठानी चाकू, भोजन पकाने के पात्र, स्काउट की सीटी, होका यंत्र, लंगोट, गांधी टोपी, थोड़ा नमक और चावल, सार्थ श्रीमद्भगवद्गीता, मनाचे श्लोक, कागज-पेंसिल, हिरणी की छाल के साथ अपने बराबर की एक लाठी जिसे कंधे के मध्य में रखकर एक सिरे में लोटा और दूसरे सिरे पर पोटली को टांगकर दोनों हाथों को खुला रखकर चलना होता था। मोरेश्वर काले की यात्रा का यह स्वरूप सहज ही हमारी आंखों के सामने चीनी यात्रियों की पदयात्रा के दृश्यों की भांति उपस्थित होता है। सन् 1930 में जम्मू से कश्मीर की पदयात्रा कश्मीर के गांवों को करीब से देखते हुए संपन्न करना वर्तमान परिस्थिति में भी दुर्लभ है।

कश्मीर और महाराष्ट्र के परस्पर सांस्कृतिक संबंधों को गहराई से समझने के लिए कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' के मराठी अनुवाद की आवश्यकता महसूस की गई, क्योंकि 'राजतरंगिणी' का

मूल संस्कृत पाठ और उसे जानने-समझने वाले मराठी के संस्कृत विद्वानों में यह कृति पहले से उपलब्ध थी, किंतु सामान्य मराठी पाठकों तक 'राजतरंगिणी' का मराठी अनुवाद अभी तक नहीं पहुंच सका था। 'राजतरंगिणी' के मराठी अनुवाद के लिए पंजाब में हुए 88वें अखिल भारतीय मराठी साहित्य सम्मेलन की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही। पंजाब में हुए इस साहित्य सम्मेलन में समन्वय की भाषा, साहित्य और संस्कृति को सामने रखकर मराठी संतों के कश्मीर से किस प्रकार के प्राचीन संबंध रहे हैं, इसके अध्ययन और अनुसंधान की पहली कड़ी में संस्कृत से मराठी में 'राजतरंगिणी' के अनुवाद का कार्य सन् 2017 में सरहद संस्था, खड़के फाउंडेशन और चिनार प्रकाशन द्वारा किया गया। कश्मीरी शैवमत तथा आचार्य अभिनवगुप्त का मराठी संतों पर प्रभाव के अध्ययन की बात भी मराठी साहित्य सम्मेलन में प्रमुखता से आई। 'राजतरंगिणी' के प्रारंभिक श्लोकों को गोविंद भाटे ने अपनी कश्मीर यात्रा पर लिखित पुस्तक 'हिंदुस्थानचे नंदनवन अर्थात् काश्मीरचें वर्णन व वृत्तांत' (1919) की दूसरी आवृत्ति सन् 1934 में दिया था। आज मराठी वाङ्मय में 'राजतरंगिणी' के समग्र मराठी अनुवाद[4] का कार्य डॉ. अरुणा ढेरे एवं प्रशांत तलनीकर द्वारा किया गया है। 'राजतरंगिणी' के मराठी अनुवाद के प्रारंभ में नयनतारा सहगल ने अत्यंत आत्मीय तरीके से इस अनुवाद के लिए अपनी बात कही है। अपने पिता रणजीत सीताराम पंडित के विषय में लिखती हैं कि ''मेरे पिता का परिवार संस्कृत पंडितों की परंपरा का रहा है। स्वयं मेरे पिता भी संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने कुल तीन संस्कृत ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। इन तीन ग्रंथों में प्रथम ग्रंथ 'राजतरंगिणी' था। उसके बाद 'मुद्राराक्षस' और 'ऋतुसंहार' था।''[5] 'राजतरंगिणी' का यह अंग्रेजी अनुवाद रणजीत सीताराम पंडित ने मोतीलाल नेहरू के आग्रह पर किया था। रणजीत पंडित चाहते थे कि 'राजतरंगिणी' की भूमिका मोतीलाल जी लिखें, किंतु इस अनुवाद के आने से पूर्व ही मोतीलाल नेहरू का निधन हो गया। इसके बाद इसकी भूमिका को लिखने की जिम्मेदारी पंडित नेहरू पर रही जिसे उन्होंने सन् 1934 में जेल में रहते हुए पूरा किया। नयनतारा सहगल को अपने मराठी मूल के परिवार में संस्कृत वाङ्मय तथा 'राजतरंगिणी' के प्रति विशेष सांस्कृतिक लगाव का अनुभव अपने पिता के सान्निध्य में हुआ था। वे लिखती हैं कि ''मेरे लिए यह अत्यंत समाधान की बात है कि 'राजतरंगिणी' के प्रस्तुत मराठी अनुवाद में मेरे पिता द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद का भी आधार लिया गया है। मेरे पिता की मातृभाषा मराठी थी। आज यदि वे जीवित होते तो 'राजतरंगिणी' को मराठी में पाकर उन्हें खुशी होती। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व मेरे चचेरे दादा संस्कृत के विद्वान दिवंगत शंकर पांडुरंग पंडित ने एक अन्य ग्रंथ के लिए 'राजतरंगिणी' का संदर्भ ग्रंथ के रूप में अध्ययन किया था, उनकी तीव्र इच्छा थी कि वह ग्रंथ मराठी में आए।''[6] 'राजतरंगिणी' का अंग्रेजी अनुवाद सन् 1934 में उपलब्ध हो जाता है जबकि इसका मराठी अनुवाद सन् 2017 में सामान्य मराठी जन तक पहुंचता है। आज जब इंटरनेट और सूचना विज्ञान के विशाल युग में पूरी दुनिया प्रवेश कर चुकी है तब भी महाराष्ट्र से कश्मीर की ओर पर्यटन स्वरूप की गई यात्राओं पर मराठी पुस्तकों की अपनी एक अलग पहचान बनी हुई है। मराठी पाठक वर्ग आज भी इन पुस्तकों के माध्यम से कश्मीर के सौंदर्य उसके रमणीय स्थलों का

आस्वादन करता है। इसी क्रम में कल्याणी भागवत की पुस्तक 'जम्मू-कश्मीर, उत्तराखंड, हिमाचल', भास्कर देशमुख की पुस्तक 'क आणि क काश्मीर', सी. म. चितले की पुस्तक 'ट्रेक दी कश्मीर' तथा पांडुरंग पाटणकर की पुस्तक 'चला काश्मीरला भूनंदनवनाच्या सहलीला' यानी 'चलें घूमने कश्मीर की ओर' इसप्रकार की पुस्तकों द्वारा महाराष्ट्र से कश्मीर की ओर पर्यटन उद्योग को बढ़ावा भी दिया गया।

'कश्मीर धूमसते बर्फ' (1992), जगमोहन—जम्मू-कश्मीर के दो बार राज्यपाल रहे श्री जगमोहन की पुस्तक 'माई फ्रोजन टर्बुलेंस इन कश्मीर' का मराठी अनुवाद 'कश्मीर धूमसते बर्फ' शीर्षक से मो. ग. तपस्वी तथा सुधीर जोगलेकर द्वारा किया गया। 19 जनवरी, 1990 को कश्मीर की अस्थिर राजनीतिक पृष्ठभूमि के वातावरण में जगमोहन पुनः इस राज्य के राज्यपाल के रूप में इस जिम्मेदारी को संभालने निकल रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने अपनी इस पुस्तक की शुरुआत ही एक भावुक संस्मरण से की है। तत्कालीन मराठी जनमानस में कश्मीर की आतंकी और राष्ट्रविरोधी गतिविधियों को लेकर अक्सर आक्रोश बना रहा। कश्मीर की वास्तविक स्थिति और उसके राजनीतिक विरोध के कौन से कारण हैं, इन सबके प्रति मराठी जनता के भीतर उत्कट जिज्ञासा थी। सन् 1992 में पुणे के मोरया प्रकाशन ने जगमोहन की इस पुस्तक को मराठी में प्रकाशित कर कश्मीर के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत किया था। एक उद्धरण देखें—''19 जनवरी, 1990 का दिन था और मैं फिर से जम्मू और कश्मीर के राज्यपाल के पद को संभालने निकला था। मैं ऐसे ही एक विमान से इस राज्य में गया था, तब भी कश्मीर का वातावरण बहुत अशांत था।'' विमान में बैठते ही 1984 की परिस्थिति को याद करते हुए उन्होंने उस समय कश्मीर में उपद्रव देखे थे। उस वर्ष 3 फरवरी को बर्मिंघम में नियुक्त भारतीय अधिकारी रविंद्र म्हात्रे का अपहरण कश्मीर मुक्ति सेना के लोगों ने किया था। यह सेना 'जेकेएलएफ' की एक प्रमुख शाखा थी। 5 फरवरी को उन्होंने बिना किसी कारण के म्हात्रे की हत्या कर दी थी। इस हत्या के छह दिन बाद तिहाड़ जेल में जेकेएलएफ के संस्थापक अध्यक्ष मकबूल बट को फांसी दी गई। छह वर्ष पूर्व की गई हत्या के आरोप में उसे फांसी दी गई थी। जगमोहन लिखते हैं कि म्हात्रे का अपहरण और हत्या तथा मकबूल बट की फांसी से दिल्ली और श्रीनगर के संबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था, बल्कि महाराष्ट्र की पृष्ठभूमि से आनेवाले रविंद्र म्हात्रे के अपहरण और हत्या का परिणाम महाराष्ट्र की जनता पर भी पड़ा था, ऐसे में आज भी जम्मू-कश्मीर के राजनीतिक पटल और निरंतर हिंसा से प्रभावित होनेवाली कश्मीर घाटी का यह संस्मरणात्मक इतिहास मराठी में अपना विशेष महत्त्व रखता है।

'मिशन कश्मीर' रविंद्र दाणी—मिशन कश्मीर मराठी में कश्मीर समस्या और उसके विविध पक्षों को विस्तार से समझने के लिए एक आवश्यक दस्तावेज की तरह है। सरस और सहज मराठी में कश्मीर के कई पेचीदा विषयों को रुचिपूर्ण ढंग से एक उपन्यास की तरह यह पुस्तक कश्मीर के भीतर राजनीतिक और सैन्य गतिविधि को जानने के लिए सबसे उपयुक्त है। उपन्यास की शैली में लिखी गई इस पुस्तक को पढ़ते हुए मिशन कश्मीर की वास्तविकता को समझा जा

सकता है। मिशन कश्मीर की प्रस्तावना लिखते हुए सेवानिवृत्त लेफ्टिनेंट जनरल एस.के. सिन्हा लिखते हैं कि ''मैंने सरदार पटेल की एक पुस्तक को पढ़ते हुए जिसमें उन्होंने अत्यंत ही मार्मिक उल्लेख किया था कि जवाहरलाल रोएगा।''[7] कश्मीर को विशेष महत्त्व प्रदान करनेवाली धारा 370 के भारत के संविधान में पारित हो जाने के बाद ही 'मिशन कश्मीर' की शुरुआत हुई थी। इस पुस्तक के विस्तृत फलक में कश्मीर प्रकरण पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल के बीच की मतभिन्नता एक अलग अध्ययन का विषय है। रविंद्र दाणी ने इस पुस्तक में कश्मीर के ऐतिहासिक घटनाक्रम, उसकी भौगोलिक स्थिति, राजनीतिक घटनाएं, कूटनीतिक चालें तथा सैनिक कार्रवाई जैसे कई महत्त्वपूर्ण विषयों को विस्तार से मराठी में उपलब्ध कराया है। वर्तमान समय में कश्मीर विषय पर उपलब्ध साहित्य में इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है। इस पुस्तक की प्रस्तावना में लेफ्टिनेंट जनरल एस. के. सिन्हा अपना मंतव्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'मराठी में कश्मीर विषय पर लिखी गई इस पुस्तक का अंग्रेजी और हिंदी भाषा में अनुवाद होना बहुत जरूरी है ताकि पाठक वर्ग तक पहुंच पाए'। महाराष्ट्र में एक पत्रकार के रूप में रविंद्र दाणी का लगभग 25 वर्ष की पत्रकारिता का अनुभव 'मिशन कश्मीर' जैसे जटिल विषय पर लिखी गई पुस्तक की पृष्ठभूमि में दिखाई पड़ता है।

'काश्मीर : एक शापित नंदनवन', प्रो. शेषराव मोरे—स्वतंत्र भारत बनने के बाद से कश्मीर की राजनीतिक अवस्था और उसके अलगाव के विविध स्तरों को मराठी में सिरे से लाने का प्रयास सन् 1995 में प्राध्यापक शेषराव मोरे की पुस्तक 'काश्मीर : एक शापित नंदनवन' में किया गया है। इस पुस्तक ने महाराष्ट्र की जनता में कश्मीर के प्रति रही भारत सरकार की नीतियों तथा राजनीतिक दांव-पेच आदि को जानने-समझने और भावनात्मक राष्ट्रबोध को निर्मित करने में विशेष महत्त्व कायम किया है। कश्मीर जिस प्रकार से सन् 1930 में प्रकाशित मराठी प्रवास वर्णन पुस्तकों में 'नंदनवन' की तरह उपस्थित था। वह स्वतंत्रता के बाद लगातार हिंसा और आतंक के घोर अंधकार में 90 के दशक और पीढ़ी तक 'शापित नंदनवन' के रूप में सामने आता है। इस पुस्तक के मूल में शेषराव मोरे के अनुसार कश्मीर प्रश्न क्या है? और उसका समाधान क्यों नहीं हो पाया है? इस सत्य कथन को प्रस्तुत करना इसका उद्देश्य रहा है। कश्मीर के राजा, भारत में विलय नहीं चाहते थे। क्या यह प्रवाद सही है? उन्हें पाकिस्तान में विलय होने की सलाह भारत ने दी थी। संस्थाओं के विलीनीकरण पर भारत की नीति क्या थी? विलीनीकरण के दौरान जनमत संग्रह का लिखित आश्वासन क्यों दिया गया? तथापि उसके उपरांत जनमत संग्रह क्यों नहीं किया गया? संविधान के अंतर्गत धारा 370 क्यों और किस उद्देश्य से लाई गई? पंडित नेहरू द्वारा शेख अब्दुल्ला को क्यों कैद किया गया। कश्मीर में अराजकता और आतंकवाद की शुरुआत कैसे हुई? जैसे दाहक प्रश्नों के उत्तर में कश्मीर एक 'शापित नंदनवन' के रूप में उभरकर सामने आता है।

लंबे समय से भारतीय सेना में महाराष्ट्र से दो प्रमुख रेजीमेंट बटालियन क्रमशः महार और मराठा कश्मीर की सुरक्षा सेवाओं में रही हैं। मराठी में कश्मीर पर प्राध्यापक शेषराव मोरे की राजनीतिक-वैचारिक दृष्टि की पुस्तक के साथ डॉ. धनराज डहाट की पुस्तक 'डॉ. आंबेडकर आणि

काश्मीर समस्या' एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है। वर्तमान समय में मात्र महाराष्ट्र में ही नहीं बल्कि पूरे देश में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की राष्ट्रीय सीमा सुरक्षा विषयक दूर-दृष्टि को पुनः नए सिरे से देखने, समझने और अनुसरण किए जाने का सतत प्रयास किया जा रहा है। कश्मीर को विशेष दर्जा देने की बात पर विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट और निर्णायक रूप में अपनी बात रखते हुए डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा था कि ''भारत को कश्मीर की सीमाओं को सुरक्षित रखना चाहिए, कश्मीर के आवागमन के सभी रास्ते भारत को बनाने हैं, कश्मीर में अनाज की आपूर्ति भी भारत को करनी है और तब भी कश्मीर को भारत की बराबरी का दर्जा दिया जाए, ऐसी आपकी इच्छा है, जिसके बदले भारत सरकार को कश्मीर में मर्यादित अधिकार रहें और भारतीयों को कश्मीर में किसी भी प्रकार के अधिकार न हों, ऐसे प्रस्ताव को मान्य करना देशहित के विरोध में होगा तथापि भारत के कानून मंत्री के रूप में मैं इसे कभी भी मान्यता नहीं दूंगा।'' संविधान निर्माण की गतिविधियों में अपनी स्पष्ट और दूरगामी परिणामों को भांप लेनेवाली दूर-दृष्टि के अनुसार देशहित में लिये गए निर्णयों के साथ मजबूती से खड़े रहना तथा देशहित में जो कुछ भी नहीं है, उसका स्पष्ट विरोध-प्रतिरोध डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के चिंतन की वैचारिक शक्ति है। पाकिस्तान के विभाजन की राजनीति, कश्मीर के विशेषाधिकार संबंधी धारा अथवा चीन से मित्रता जैसे प्रश्नों पर उनके द्वारा व्यक्त की गई चिंताएं दीर्घ समय तक भारत जैसे सर्वसमावेशी राष्ट्र के लिए आज भी प्रासंगिक बनी हुई हैं।

'सात शिखरे', अख्तर मुहिउद्दीन—महाराष्ट्र की पृष्ठभूमि में जन्मे विविध मत-मतांतरों के बीच मराठी जनमानस की अपनी अभिरुचि में साहित्य, संस्कृति और कला के लिए विशेष समर्पण है। विदेशी अथवा भारतीय भाषाओं के साहित्य का मराठी में अनुवाद की बृहद परंपरा है। इसी क्रम में सन् 1958 में अख्तर मुहिउद्दीन के 'सात संगर' नामक कश्मीरी लघु कथा संग्रह को साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया था। प्रस्तुत लघुकथा संग्रह में शामिल सात लघुकथाओं का मराठी अनुवाद 'सात शिखरे' शीर्षक से मराठी के ज्येष्ठ और ख्याति प्राप्त लेखक दत्ता भगत द्वारा किया गया था। इस अनुवाद ने कश्मीर की लोककथाओं में धर्म, देश और भाषा तथा मानवीय मूल्यों से परिचित कराया था। मनुष्य के जीवन में आनेवाली कठिनाइयों के बराबर और परिस्थिति से उत्पन्न जटिलताओं पर मनुष्य द्वारा ही मार्ग निकाले जाने की ऊर्जा का दर्शन इन कश्मीरी लोक कथाओं के केंद्र में आई है।

'ललद्यद', वेद राही—कश्मीरी भाषा के आदि कवि ललद्यद के जीवन चरित्र को आधार बनाकर वेद राही द्वारा लिखी गई उपन्यासात्मक जीवनी का मराठी अनुवाद मराठी की प्रसिद्ध लेखिका अनुवादिका माधवी कुंटे द्वारा किया गया है। वेद राही का मानना है कि 'लल की कविताओं में अनंत गहराई है। उसकी उदात्तता अपनी कविताओं में भी आए, ऐसा आज के कश्मीरी कवि मन-ही-मन इसकी इच्छा रखते होंगे'। संस्कृत जैसी समृद्ध भाषा को छोड़कर कश्मीरी को काव्य आविष्कार के लिए चुनकर अपनी आंतरिक भावनाओं के प्रकटीकरण को लल की 'वाख' यानी कविताओं का रूप मिला है। जिस प्रकार महाराष्ट्र की संत परंपरा में संत ज्ञानदेव

ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' का मराठी भाषा यानी मातृभाषा में जनसाधारण के लिए भावानुवाद किया, जिसका अंत या प्रसाद स्वरूप पसायदान है। उसी प्रकार लल ने भी अपनी मातृभाषा से अधिक सशक्त किसी और भाषा को नहीं माना है। वेद राही ने लल के जीवन चरित्र का अध्ययन करते हुए उनकी कविताओं पर वेदांत के प्रभाव, लल द्वारा गीता का सतत अध्ययन, लल की कविताओं पर बौद्ध दर्शन के साथ-साथ शैव मत के गहरे प्रभाव और परिवेश को इस जीवन चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कश्मीरी और मराठी भाषा के साहित्य के बीच महत्त्व का पुल हिंदी है। कश्मीर के साहित्य पर मराठी में आनेवाली अधिकांश साहित्यिक रचनाओं का मुख्य स्रोत हिंदी है।

डॉ. सच्चिदानंद सुरेश शेवड़े की पुस्तक 'कश्मीरनामा' कश्मीर में निरंतर लड़ रहे भारतीय सैनिकों की शौर्यगाथा को प्रस्तुत करते हुए कश्मीर के वर्तमान संदर्भों पर विशेष प्रकाश डालती है। उनकी पुस्तक का प्रारंभिक भाग कश्मीर के प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास के साथ बौद्ध, शैव और नागों पर विधिवत् तथ्य प्रस्तुत करती है। डॉ. सच्चिदानंद शेवड़े लिखते हैं कि ''काशी और कश्मीर हिंदुओं के दो सर्वोच्च धर्मपीठ हैं। कश्मीरी लोग शिक्षा और ज्ञान संपदा को अधिक महत्त्व देते हैं, इस प्रदेश में अनेक मत-मतांतर रहे हैं जिनमें कभी भी संघर्ष नहीं हुआ। अनेक हिंदू राजाओं ने बौद्धमत को आश्रय दिया। उसी प्रकार बौद्धों ने भी यहां की राजनीति में हस्तक्षेप नहीं किया। कश्मीरी हिंदुओं में नागपूजा करनेवाले प्राचीन लोग आज भी हैं, किंतु उन्होंने अपने दर्शन को कभी किसी पर नहीं लादा।''[8] जिस प्रकार कश्मीर का सौंदर्य उसका दर्शन और भाव-विभोर करने वाली प्रकृति में है, उसी प्रकार महाराष्ट्र और मराठी मानस की अपनी सांस्कृतिक धरोहर यहां के पाषाणों में अंकित है। कश्मीरी दर्शन की भावभूमि में से आए बौद्ध, जैन, शैव तत्त्वों का अंकन महाराष्ट्र के कठोर और सुदृढ़ पाषाणों में अपने समग्र सौंदर्य में उपस्थित है। प्राचीन एलोरा का स्थापत्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

संदर्भ ग्रंथ–

1. भाटे, गोविंद चिमणाजी, (1919). 'हिंदुस्तानचे नंदनवन अर्थात् काश्मीरचे वर्णन व वृत्तांत', (दूसरी आवृत्ति 1934), 1-2 पुणे : गोविंद भाटे डे.ए. सोसाइटी पुणे हिचे सेवानिवृत्त सभासद
2. वही, पृ. 2-3
3. काले, मोरेश्वर गोपाल, (1930). 'माझा काश्मीरचा प्रवास', पुणे : रा.रा. शंकर, नरहर जोशी चित्रशाला प्रेस
4. राजतरंगिणी मराठी अनुवाद, तरंग पहिला–'ज्याची आभूषणे सर्वान्ची आहेत आणि सर्पमण्यांच्या तेजाने जो शोभातो आहे अशा शिवमेहशाला वंदन असो, मुक्तात्मे ज्याच्या ठायी विसावतात असा तो कल्पवृक्ष आहे'
5. राजतरंगिणी मराठी अनुवाद (2017)
6. राजतरंगिणी मराठी अनुवाद (2017)
7. दाणी, रविंद्र, 'मिशन कश्मीर' अमेय प्रकाशन
8. शेवडे सच्चिदानंद, 'कश्मीरनामा', 24-27, नव चैतन्य प्रकाशन।

□

पंजाबी साहित्य में कश्मीर

हरमहेन्द्र सिंह बेदी

कश्मीर केवल भारत का भूगोल ही नहीं है, संस्कृति, इतिहास और विरासत भी है। ऋग्वेद में परोक्ष रूप से सप्तसिंधु की प्रशंसा में जो ऋचाएं लिखी गई हैं, वे वास्तव में कश्मीर के सौंदर्य के प्रति ऋषि निवेदन हैं। पंजाब का बहुत पुरातन रिश्ता कश्मीर से जुड़ता है। पंजाबी की कई उपभाषाएं घाटी में बोली व समझी जाती हैं। जम्मू का क्षेत्र किसी-न-किसी रूप में पंजाब की सीमाओं से संबद्ध रहा है। डोगरी, गोजरी एवं पंजाबी की ध्वनियां आज भी कश्मीर एवं जम्मू की भाषाओं में जीती-जागती दिखाई देती हैं। पंजाबी मानसिकता में जम्मू की भाषाएं अपना इतना गहरा अस्तित्व बनाए हुए हैं कि पंजाबी साहित्य में डोगरी और गोजरी की शब्दावली मिल जाती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल की सीमा कश्मीर के ध्रुवांत को स्पर्श करती थी। महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में जम्मू-कश्मीर के कई शूरवीर योद्धा सेना में अपना पराक्रम दिखाने के लिए प्रसिद्ध थे। डोगरा सेना के कई कर्णधार महाराजा की फौज में उच्च पदों पर आसीन थे। पंजाबी, अंग्रेजी, उर्दू और फारसी में महाराजा रणजीत सिंह के काल के साहित्य में ऐसा उल्लेख बार-बार मिलता है। कवि गणेश दास बडेरा ने 'फतेहनामा गुरु खालसा जी' की प्रीति में हिंदी छंदों में पंजाब के जम्मू-कश्मीर से अंतर्संबंध का ऐतिहासिक वर्णन किया था। कवि गवाल ने भी अपनी कृतियों में महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल के दौरान पंजाबियों की भूमिका के उन अध्यायों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो कश्मीर की सांस्कृतिक चेतना का अनुकरणीय प्रवचन प्रस्तुत करते हैं। ऐतिहासिक संदर्भ और भी महत्त्वपूर्ण हैं। विशेषकर जब कश्मीरी पंडित अपनी व्यथा लेकर आनंदपुर साहिब में पहुंचे। कश्मीरी पंडितों ने नवम् गुरु तेग बहादुर के पास फरियाद की कि औरंगजेब तलवार के बल पर हमें मुसलमान बनाना चाहता है। आपके आशीर्वाद के बिना यह संकट टल नहीं सकता। कश्मीरी पंडितों की फरियाद पर गुरु तेग बहादुर ने दिल्ली के चांदनी चौक में शहादत प्राप्त की। नवम् गुरु की शहादत में कश्मीरी पंडितों के साथ पंजाबियों ने गहरे अनुबंध पर हस्ताक्षर किए। आज भी यह शहादत कश्मीर और पंजाब को एक सूत्र में बांधती है। गुरुनानक देव जी के पुत्र श्रीचंद भी संस्कृत सीखने के लिए अपने विद्या गुरु के पास कश्मीर गए थे। बाबा बंदा सिंह बहादुर भी जम्मू-कश्मीर के रहनेवाले थे।

उन्होंने गुरु गोविंद सिंह का आशीर्वाद प्राप्त कर खालसा की चेतना को पुनर्स्थापित किया था। यह सब कुछ पंजाब की सांस्कृतिक विरासत में कश्मीर का अवदान है, जिसे उत्तरी भारत का यह क्षेत्र कभी भूल नहीं सकता। ईस्ट इंडिया कंपनी के समय में भी कश्मीर महा पंजाब के ही, एक हिस्से के तौर पर कायम रहा। एक और रुचिकर तथ्य है कि महाराजा रणजीत सिंह के देहांत के बाद उनका पुस्तकालय, जो आज भी लाहौर में स्थित है, में ज्यादातर पोथियां अरबी, फारसी, हिंदी, पंजाबी एवं डोगरी में उपलब्ध हैं। पुस्तकालय में जम्मू-कश्मीर के अनेक ऐतिहासिक संदर्भ छिपे हुए हैं। रणजीत सिंह के काल की ये पोथियां एक ओर कश्मीर की सांस्कृतिक विरासत हैं तो दूसरी ओर पंजाब की आध्यात्मिक परंपरा का दर्पण भी हैं। इसके बिंब वर्तमान काल में पंजाब में रचित साहित्य, कला, संगीत, विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि में पुनः उद्घाटित होते हैं। पंजाबी साहित्य में इन बिंबों की छटा पंजाबी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है।

स्वतंत्रता के बाद पंजाबी साहित्य में कश्मीर का जो चित्रण हुआ है, वह कलात्मक दृष्टि से नई जमीन बनाता है। पंजाबी कविता की उपलब्धि में कश्मीर संबंधी कविताएं विलक्षण भूमिका रखती हैं। आधुनिक युग के पहले पंजाबी कवि भाई वीर सिंह ने कश्मीर की वादियों का खूबसूरत चित्रण किया है। भाई वीर सिंह को कश्मीर के ऊपर कविताएं लिखने के कारण 'कुदरत का चितेरा कवि' कहा जाता है। श्रीनगर का प्रत्येक सौंदर्य स्थल उनकी कविता का सबल पक्ष है। अनेक बागों की सुंदरता, झरनों के कल-कल स्वर, झीलों का सौंदर्य भाई वीर सिंह की कविता को अंग्रेजी कवि विलियम वड्र्सवर्थ के समकक्ष खड़ा कर देता है। भाई वीर सिंह के समकालीन कवियों ने भी कश्मीर की वादियों का अपनी कविताओं में मनोहारी वर्णन किया है। इन कवियों में लाला धनीराम 'चातृक' का नाम विशेष रूप से रेखांकित किया जा सकता है। भाई वीर सिंह कई बार कश्मीर की यात्रा पर निकले। कई महीने कश्मीर की वादियों में भ्रमण करते रहे और वर्षों तक अपने साहित्य में कश्मीर के सौंदर्यबोध का रसास्वादन पंजाबी पाठकों को करवाते रहे। पाकिस्तान में जो पंजाबी के बड़े-बड़े कवि आज फारसी लिपि में कविता रच रहे हैं, उनके ऊपर भी भाई वीर सिंह द्वारा रचित कश्मीर संबंधी कविताओं का गहरा प्रभाव है। वे कई बार मुझसे कहते भी हैं कि भाई वीर सिंह की कविताओं वाला कश्मीर हमें बेचैन कर देता है। आप अनुमान लगाइए कि किस तरह से भाई वीर सिंह ने अपने काव्य में कश्मीर के सौंदर्य की अलख जगाई। मुझे तो कई बार लगता है कि कालिदास के बाद उत्तरी भारत में कश्मीर का काव्य-चिंतन भाई वीर सिंह जैसे पंजाबी कवियों के हिस्से में आया।

पंजाबी मानसिकता में कश्मीरी साहित्य की संवेदना बराबर सक्रिय रहती है। पंजाबी कविता में बार-बार कश्मीर की सौंदर्यानुभूति कवि हृदय को उद्वेलित करती है। पंजाबी आलोचकों का कहना है कि पंजाबी कविता में आए पहाड़, कल-कल करती नदियां, निरंतर बरसते बादल अब कश्मीर ही नहीं, पंजाब के हैं। पंजाब की यह संपदा राष्ट्र के नए सौंदर्यशास्त्र में भी है। इस शास्त्र की इकाइयां अखंड भारत की सौंदर्य चेतना को आज भी नए आगाज से

जोड़ रही हैं। आकाश के उन रंगों का जो इंद्रधनुष बनेगा, उसमें कश्मीर और पंजाब की कला के रंग गहरे होंगे। इसकी पहचान भारतीय साहित्य में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित होगी। भाई वीर सिंह की कश्मीर संबंधी कविताओं का भावानुवाद उपर्युक्त विचारों को पुष्ट करता है–

1. कश्मीर का सौंदर्य
जैसे नहीं संभलते सेब
और ना ही नाशपातियां
कश्मीर में हर गांव में
ऐसे ही होता रोज
सौंदर्य में माटी
चिथड़ों में लिपटी
जैसे गुलाब
टूटा फूल मिट्टी में मिले
वैसे ही खाक में यह बेचारा कश्मीर।

2. कृष्ण गंगा
जल तेरा निर्मल
कृष्ण रंग तेरा नाम
कच्चा हरा रंग
आ रही खुशबू
सुंदर हरगोविंद
आकाश से आए उतर
उसके चरण अरविंद
वही कूल लौटती
होकर कृष्ण गंग
अब तू सुहावनी चरण का सत्संग
कर उनका अभिवादन
आगे और न जा
चरण कमलों से आगे
लीन होकर बीच रंग
जाई समाई तू
प्रीतम का स्वरर्श अंग
सखी अगर मिले
फिर न छोड़े संग

अंग समावें।

3. नया कश्मीर
मैं वंचितमय हे जन
जैसे मूसलाधार बरसे बारिश
जैसे चली वितस्ता, डल झील भर आई
और वुलर उमड़-उमड़ आए
निज अस्तित्व बिछौना कर
हमने नया कश्मीर बनाया
गाओ मंगलगान सखि कभी
वह छैल-छबीला करने सैर आया।

4. गुलमर्ग
और ऊंचा, और भी ऊंचा
फिर मैदान कोई आया
मखमली घास पर बूंदें बरसीं
ठंड-ठंड है छाई पतन पर घमासान हुई
सब ऊंचे सर्द गए हों
सब सोचें ठिठुरते रसमग्न
जैसे चौसर बिछी सब जगह।

5. पहलगाम
पहलगाम का परिवेश लगे ऐसे
आबादी की सीमा हो गई हो गुम
कल विलायत शुरू हो गई
रौनक हो गई खत्म
महफिल में चुप्पी राज भी खामोश
शहद निरंजन छाया
कुदरत का सौंदर्य हिलोर जगाए
रस कुदरत भर हाथ में।

6. वेरीनाग (इमारतें और बाग)
फिरोजी रंग का टीला वेरीनाग
जहांगीर ने जोड़ा
पक्के हौद मेहराबा गिर्द
बढ़ा सौंदर्य और ज्यादा

सबसे प्यारा यह स्थान जगत् में
दिल से प्यारी नूरजहां
कर दिया भेंट
बारह गलियां, महल सुहावने
हौद किनारे यह बना
सब हुई समर्पित
महा अग्नि को
और कुछ लगा अग्नि खुद को
जली जालियां
बाग सुहावना बादशाह का
अब केवल बिकते मेवे
झरने, बारह दरियां
सबकी डोरी तोड़ रहा समय।

7. इच्छा बल नाद
इच्छा बल जब नाद तेरी
मेरे कानों में पड़ता
मेरे मन-मस्तिष्क में सुरूर भरता
झूम इलाही हीरे जैसी
चमक मीर की
आंखों में मस्ती भर आती
बेखुदी का झूला झूले
हर समय मन लेता हिलोरें।

8. इच्छा बल पर उतरती शाम
संध्या भली लुकट हुई परछाई
क्यों इच्छा बल तू जारी
मैं तुम्हारे वैसे-के-वैसे
ना चलने से तू हारी
सैलानी, पंछी और माली
सब आराम में आए
सहज स्वाद छा रहा सब कहीं
जैसे टिक गई हो कुदरत सारी।

9. कश्मीर का उत्तर
जिनके सीने में आकर्षण
वे कब आराम करें
प्रेम भरे नयनों में लीन
वे केवल दिन रात बहते
एक लगन उन्हें ले जाती
उनकी चाल गति अनंत की ओर
संयोग से पूर्व नहीं कोई ठहराव
इसी चाल वे नित्य चलते।

10. निशातबाग
डल के सिरताज
खड़ा निशात तू
पर्वत की गोद में
तू लेटा
टीले पहरेदार खड़े पीछे
आगे है दरबार
डल का बिछा
दाएं-बाएं रास्ता
सफेद है तेरा आंगन
खड़े सिपाही नदियों जैसे
जैसे चौकीदार तुम्हारे।

11. नसीमबाग
जैसे मां की ठंडी छाया
हमने देखी, जो देखा तुमने
ठंडी प्यारी गोद तुम्हारी
छाया मीठी-मीठी
मां को अपना बाल प्यारा
तुम्हें प्यारा सब कोई
जो आवे उसे प्यार करे तू
शीतल हो जाए तपती अग्नि।

इस तरह हम देख सकते हैं कि भाई वीर सिंह की कविताओं में कश्मीर की महिमा अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई है। भाई वीर सिंह को हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत की तरह पंजाबी साहित्य

में प्रकृति का कवि कहा जाता है। पंजाबी आलोचकों का मानना है कि भाई वीर सिंह की कविताओं में कश्मीर का कण-कण चमक उठा है।

पद्मा सचदेव की कविताओं में रक्त रंजित बर्फ पिघल रही है। सैलानियों के पांव दर्द और पायल का स्वर रुदन भरे गीत सुनाता है। ऐसी अनेक संवेदनाएं पंजाबी कवियों के काव्य अनुभव में अभिव्यक्त हुई हैं।

सच्चाई तो यह है कि पंजाब में रचा जा रहा पंजाबी साहित्य जम्मू-कश्मीर के पंजाबी साहित्यकारों को भी लेखन की नई संभावनाओं से जोड़ता है। इसका दूसरा पक्ष और भी महत्त्वपूर्ण है। अनेक पंजाबी कृतियों का कश्मीरी भाषा में भी अनुवाद हुआ है। कश्मीर और पंजाब दोनों के पाठक एक समान हैं। पंजाबी कवि ने ठीक लिखा है–

कश्मीर हम सबका भाई है
पर मेरा सहोदर है
वह सुनता है आवाज मेरी
मैं सुनता हूं उसकी बात
न झील, न पहाड़
सब कहते जल में
हर सुंदर दृश्य
भीतर मेरे पल का पल-पल
तू कश्मीर हमारा
तेरे आंचल बंधी सौंदर्य जलधारा
मेल कराती तेरी ज्वाला
बंधु, कश्मीर हमारा, कश्मीर हमारा

कश्मीर संबंधी रचा गया पंजाबी साहित्य परंपरा, इतिहास तथा सामाजिक सरोकारों की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। समकालीन पंजाबी कविता में कश्मीर का सौंदर्य उस त्रासदी के साथ भी हुआ है जिसके कारण घाटी की शांति लहूलुहान हुई। बाणभट्ट की आत्मा आज भी चिंतित है। कश्मीरी पंडित एक बार फिर गुरुओं के आशीर्वाद को तरस रहे हैं। पंजाबी कथा साहित्य में उस दर्द का चित्रण बखूबी हुआ है। चंदन नेगी के कथा साहित्य में आज का कश्मीर बोलता है।

आधुनिक पंजाबी गद्य में भी कश्मीर के इतिहास, परंपरा और विरासत पर बहुत कुछ लिखा गया है, खासकर संस्मरण, यात्रा-वृत्तांत। कश्मीरी लोक कथाओं के अनुवाद भी पंजाबी में हुए हैं। डॉ. गुरदयाल सिंह फूल की 'मेरी कश्मीर यात्रा' तथा 'धरती का स्वर्ग कश्मीर' जैसी गद्य पुस्तकों में कश्मीर के संस्मरण, उनका इतिहास एवं जनजीवन पर विस्तृत टिप्पणियां मिलती हैं। पंजाबी लेखकों ने कश्मीर की कई कहानियों का पंजाबी में अनुवाद भी किया। ऐसे प्रयासों को जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू, कला संस्कृति विभाग, जम्मू एवं साहित्य अकादमी, नई

दिल्ली ने पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने आदान-प्रदान योजना के अंतर्गत कश्मीर की कालजयी साहित्य के अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' एवं 'अनामदास का पोथा' उपन्यासों में कश्मीर के साहित्य के कई प्रसंगों को रुचिकर बनाकर सीधे पाठकों तक पहुंचाया है। यह उल्लेख इसलिए भी आवश्यक है कि आचार्य जी ने पंजाब (चंडीगढ़) में रहते हुए इन ऐतिहासिक प्रसंगों की अपनी कृतियों में व्याख्या की। इन कृतियों के पंजाबी अनुवाद ने पंजाबी पाठकों की कश्मीर अध्ययन में रुचि जगायी है।

□

ओड़िया साहित्य में कश्मीर

अरुण होता

ओड़िया साहित्य में प्राचीन काल से लेकर प्राक्-आधुनिक काल तक कश्मीर का 'भू-स्वर्ग' के रूप में उल्लेख हुआ है। ओड़िया के पुराण साहित्य, प्राचीन साहित्य की शायद ही ऐसी कृति हो जिसमें कश्मीर का चित्रण न हो। वैदिक काल से ओडिशा के पंडितों और आचार्यों का कश्मीर से प्रत्यक्ष संबंध रहा है। कहा जाता है कि ओडिशा (पूर्व में उड़ीसा) में बौद्ध और जैन धर्मों के आगमन के पहले इस क्षेत्र में शैव धर्म का प्राधान्य था। उस दौरान ओडिशा और कश्मीर का संबंध प्रगाढ़ था। इसका मूल आधार शैव धर्म था। ओडिशा में कुषाण काल में शिव की पूजा को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ था। दूसरी शताब्दी में शासन करने वाले कुछ कुषाण राजाओं के सिक्के शिशुपालगढ़ से खोजे जाने के साक्ष्य इतिहासकार प्रस्तुत करते हैं। ओडिशा के मयूरभंज और केंदुझर जिले से खोजे गए सिक्के शिव उपासना का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। ओडिशा के तमाम शहरों और गांवों में प्राचीन शिव मंदिर अवस्थित हैं। शैव धर्म के विकास में कश्मीर की भूमिका रही है। माना जाता है कि प्राचीन काल में ओडिशा और कश्मीर का धार्मिक संबंध और पारस्परिक ज्ञान चर्चा बराबर बनी रहे। कश्मीर की नैसर्गिक सुषमा ने रचनाकारों और आमजन को बार-बार आकर्षित किया है। इसे शिवजी के क्रीड़ा स्थल के रूप में भी अंकित किया गया है। परवर्ती काल में चूंकि ओडिशा में जगन्नाथ ही आराध्यदेव के रूप में पूजित होते हैं, यहां वैष्णव धर्म की महत्ता सर्वाधिक पाई गई। जगन्नाथ संस्कृति में शाक्त, शैव, बौद्ध, जैन, इस्लाम आदि का समन्वय देखा जा सकता है। प्रत्येक संप्रदाय के साधक के लिए जगन्नाथ प्रणम्य हैं। जगन्नाथ संस्कृति का दूसरा नाम समन्वय संस्कृति है। बहरहाल, आधुनिक ओड़िया साहित्य में कश्मीर को लेकर रचनाकारों की चिंता पर आलोकपात करना इस लेख का उद्देश्य है।

आधुनिक ओड़िया साहित्य को नई दिशा प्रदान करने वाले साहित्यकारों में सच्चिदानंद राउतराय (1916-2004) एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। उन्होंने अट्ठारह कविता संग्रह, चार कहानी संग्रह, एक उपन्यास, एक काव्य नाटक और तीन आलोचनात्मक पुस्तकों से आधुनिक ओड़िया साहित्य को समृद्ध किया है। हिंदी पाठकों की सुविधा के लिए यह कहा जाना

अनुचित न होगा कि हिंदी में जो स्थान अज्ञेय जी का है, ओड़िया में वैसी प्रतिष्ठा सच्चिदानंद राउतराय की है। सच्चिदानंद राउतराय ने ओड़िया साहित्य में युग प्रवर्तन का काम किया है। मसलन, 1935 में उनका एंटी नॉवल 'चित्रग्रीव' प्रकाशित हो चुका था। परवर्ती काल में विश्व साहित्य में एंटी नॉवल एक आंदोलन के रूप में उभरा था। साहित्य अकादमी, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, पद्मश्री आदि सम्मानों से सम्मानित सच्चिदानंद राउतराय की 'नीली झील में नाचती परछाई महल की' शीर्षक कविता में रजवाड़े शासन और प्रजा आंदोलन के संघर्ष के चित्र उकेरे गए हैं। इस कविता में प्रयुक्त छंद ओड़िया में रोमांटिक भावबोध के लिए अनुकूल माना जाता है, लेकिन, इसी छंद में सच्चिदानंद राउतराय ने विद्रोहात्मक कविता लिखी है। उक्त कविता का पाठ किया जा सकता है।

नीली झील में नाचती परछाई महल की

नील नदी के किनारे खड़ा महल
संगमरमर की बनी प्राचीर
नीली झील के पानी में लगी है आग
लगी है आग

नील नदी के पानी में परछाई नगर की
गिरता, हंसता, नाचता है क्यों उगता चांद
नीले बादलों में पानी में
नगर में जलता माणिक दीप
अंधेरे पानी में माणिक द्वीप
कनक कलश खड़ा शिखर पर
खड़ा शिखर पर

उमड़ा है तूफान नील नदी के तट पर
मोतियों से सजे भार सपनों का गढ़
मिला स्वाद डर का, हुआ सहमा-सा
हुआ सहमा-सा

नील नदी का तीर हो चुका लाल
काला पड़ चुका सूर्य का कपोल
टूटेगा महल, गिरेगी आग
लहू, अश्रु का उमड़ता काला तूफान

लिखती है नील नदी कौन-सा खतियान
खत्म हो गया क्या लेन-देन
क्या लेन-देन
नीली झील में नाचती परछाई महल की
टूटकर गिरता शिखर, नाचती परछाई
है कहां महल रे, कहां खोया महल
बोल दुनिया बोल।।

समकालीन ओड़िया कविता में गिरिबाला महांति (1947) बहुचर्चित कवयित्री हैं। उनकी कविताओं में निहित नई चिंता और संवेदना की अभिव्यक्ति उन्हें अपने समकालीनों में विशिष्टता प्रदान करती है। उनकी कविताएं जीवनानुभव और जीवनबोध से संपन्न हैं। स्त्री-जीवन की कोमल संवेदना, आवेगधर्मिता, प्रेम चेतना, मृत्यु चेतना, ईश्वर-प्रेम आदि उनके काव्य जगत् को अलग पहचान देने में समर्थ हैं। उनके अब तक प्रकाशित कविता संग्रह है—'तो पाईं मुं रूपबंत' (तुम्हारे लिए मैं रूपवंत), 'तुम न आसिबा नेइ' (तुम्हारे न आने पर), 'स्त्री लोक' (स्त्री), 'काली झिअ' (काली लड़की), 'मोते आकाश कथा पचारना' (मुझसे आकाश के बारे में मत पूछो) आदि। यहां कवयित्री की कारगिल शृंखला की कुछ कविताओं का अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। उल्लेखनीय है कि कारगिल युद्ध मई 1999 से जून 1999 तक चला था। कवयित्री ने मई महीने में कश्मीर में रहकर अपने अनुभवों को कविता के माध्यम से साझा किया है। इन कविताओं से गुजरकर कवि की देशभक्ति, रचना-दृष्टि और जीवन-दृष्टि का परिचय मिल सकता है।

1. **शहीद**

वीर केवल नहीं होते पुराणों, इतिहास में
हुआ करते हैं घर-घर में
केवल कल नहीं थी
वीरभोग्या वसुंधरा
है आज भी
अभाव नहीं है मातृभूमि में
आज भी
वीर प्रसविनी माताओं का।
पुत्र
क्या मिटा सकता है तुझे
कोई श्मशान,

कोई अग्नि
तू तो
है जन्मेजय मृत्युंजय
नए इतिहास में।

2. समय को भुलाकर

चले गए थे तुम
भारतीय ही थे
बस एक पीढ़ी का अंतर
पचास वर्षों की दूरी
बढ़ गया इतना फासला
कि दुश्मन बन गए तुम
बद्दुआ मांगने लगे मेरे लिए।
समय की आयु को भला याद रखता है कौन
गिनता है कौन
क्या हम सिर्फ पचास वर्षों की
अवधि को भुलाकर
नहीं बन सकते फिर से पहले की तरह
एक घर एक परिवार?

3. आओ न भोगें साथ-साथ

इतना खूबसूरत है मेरा वतन
इतनी सुंदर धरती
इतने ईर्ष्यालु क्यों तुम
भला इतने जलोकड़े क्यों
तुम्हारी ईर्ष्या जला देती है धूप की तरह
अमन चैन के खेत को
ग्रसित कर लेती है असूया तुम्हारी
अग्नि की तरह
हंसते-खेलते मेरे देश को
आओ न बाड़ा उठा कर देखो
सहोदर समान भोगें साथ-साथ

मर्त्य में स्वर्ग भारतवर्ष का
अनिंद्य कश्मीर।

4. विरोधियों के लिए

कन्याकुमारी से हिमवंत तक
है जिसकी व्याप्ति
जिसके पांव को तुम बार-बार
धोती हो महोदधि बराबर
शिखर जिसका विभूषित सदा
तुषार से
देख तुम उसकी श्री
निरर्थक ईर्ष्या से आतुर।
है जो इतिहास का अहंकार
बूंद भर की परस के वास्ते
मानव भागे आता है
लांघकर समुद्र सघन वन
तुम्हें नहीं मालूम
मार नहीं सकता उसे
तुम्हारा संकीर्ण अस्त्र
कर नहीं सकता
जीर्ण-विदीर्ण।
जान लो यह देश नहीं मिट्टी का टुकड़ा
जीवंत है
अजर-अमर इस देश की आत्मा
न यह किसी का विनाशकारी
न कोई कर सकता इसका विनाश
जानते हो तो तुम
न हन्यते
हन्यमने शरीरे
जानते तो हो अजर और अमर है
इस देश की आत्मा।

5. लौटूंगी फिर से

यहां सर्वत्र सौंदर्य का आशीर्वचन
यहां सर्वत्र ईश्वर विराजमान
काराकोरम हिमालय की आत्मा में
यहां प्रकृति नजदीक होने बेचैन
मानव के।
यह डल झील
यह श्यामल वनप्रांत
उद्वेग रहित पहाड़ पर्वत
चलमान बादल
इधर-उधर डोलता पवन।

□

बांग्ला साहित्य में कश्मीर

कल्लोल चक्रवर्ती

भौगोलिक दूरी के कारण बंगाल या बांग्ला साहित्य में जम्मू-कश्मीर को वैसी जगह नहीं मिली। हालांकि कल्हण की 'राजतरंगिणी' में इसका जिक्र है कि कश्मीर के प्रतापी सम्राट ललितादित्य के काल में उनके साम्राज्य का विस्तार मध्य एशिया और बंगाल तक पहुंच गया था। इस बारे में विद्वानों की एक राय नहीं है, लेकिन पश्चिम बंगाल की 'धर' पदवी को भी कश्मीर से जोड़ा जाता है। कुल मिलाकर, जम्मू-कश्मीर का बंगाल से संबंध भौगोलिक दूरी के कारण बाधित हुआ।

शुरुआत में तीर्थयात्रा और बाद में पयर्टन के लिए बंगाली जम्मू-कश्मीर जाने लगे। जम्मू-कश्मीर को बंगाल के सामने उद्घाटित करने के मामले में स्वामी विवेकानंद प्रमुख हैं, तो श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने जम्मू-कश्मीर के अलग संवैधानिक दर्जे का विरोध करते हुए अपनी जान दे दी। स्वामी विवेकानंद ने दो बार कश्मीर की यात्रा की। 10 सितंबर, 1897 को वह पहली बार कश्मीर पहुंचे थे। हालांकि उनका पहला कश्मीर दौरा छोटा था। फिर भी उन्होंने तमाम ऐतिहासिक और धार्मिक महत्त्व वाले स्थानों का दौरा किया था। वहां के प्रमुख संतों, छात्रों, सरकारी अधिकारियों और कश्मीरी पंडितों ने उनसे मुलाकात की थी। अगले साल (1898) वह मध्य जून में फिर कश्मीर गए और मध्य सितंबर तक वहां रहे। तब सिस्टर निवेदिता भी उनके साथ थीं। उसी दौरान अगस्त में विवेकानंद अमरनाथ की गुफा में पहुंचे। गुफा में बर्फ के शिवलिंग को देख वह अभिभूत हो गए और कहा कि ''मुझे लगा कि मैं शिव के साक्षात् दर्शन कर रहा हूं।'' अमरनाथ यात्रा के बाद मां काली के प्रति विवेकानंद की भक्ति और प्रगाढ़ हो गई। वहां से लौटकर श्रीनगर में उन्होंने अपने मुस्लिम कश्ती वाले की चार साल की बेटी की पूजा की। कहते हैं कि अमरनाथ गुफा को स्वामी विवेकानंद के कारण ही इतना महत्त्व मिला। उन्होंने गुफा में दुर्लभ कबूतर के जोड़े के दर्शन किए थे। ऐसे ही जम्मू के 'क्षीर भवानी मंदिर' ने भी विवेकानंद को अभिभूत किया था।

भारतीय जनसंघ के संस्थापक श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने जम्मू-कश्मीर के विशेष कानून के विरोध में 1953 में श्रीनगर के लिए कूच किया, लेकिन 11 मई को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और 23 जून को संदेहास्पद स्थिति में उनकी मृत्यु हो गई। हालांकि बांग्ला साहित्य में श्यामा प्रसाद मुखर्जी को केंद्र में रखकर लिखने की कोशिश कम ही हुई है। आज बंगाल के लोग पर्यटन के लिए जम्मू-कश्मीर जाते हैं, तो पिछले साल आतंकवादियों ने कुछ बंगाली कामगारों की हत्या कर बंगाल

और जम्मू-कश्मीर के संबंध को एक नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। बांग्ला में जम्मू-कश्मीर की पृष्ठभूमि पर रचा गया साहित्य इसप्रकार है–

1. बलाका, रवींद्रनाथ ठाकुर, 1915 : विश्वकवि रवींद्रनाथ ठाकुर का कश्मीर से संपर्क रहा। इसके विवरण मिलते हैं कि रवींद्रनाथ एक स्थानीय बंगाली अधिकारी जगदीश चंद्र चटर्जी के निमंत्रण पर कवि सत्येंद्रनाथ दत्त, बेटे रथींद्र और प्रतिमा देवी के साथ अक्तूबर, 1915 में 15 दिन के कश्मीर दौरे पर गए थे। कश्मीर के सौंदर्य ने उन्हें मुग्ध किया था। रवींद्रनाथ ने उस दौरे में मार्तंड सूर्य मंदिर के ध्वंसावशेषों को देखा था और प्रभावित हुए थे। एकाधिक जगहों पर उन्होंने कश्मीरी छात्रों को संबोधित किया था। झेलम नदी के तट पर बैठकर रवींद्रनाथ ने 'बलाका' की कविताएं लिखी थीं। 'बलाका' कविता की पहली ही पंक्ति में कवि झेलम नदी का जिक्र करते हैं–

'संध्यारागे झिलिमिलि झिलमेर स्रोतखानि बांका
आंधारे मलिन होलो-जेनो खापे ढाका
बांका तलवार; दिनेर भांटार शेषे रात्रिर जोआर, एलो तार भेशे-आसा ताराफूल
निये कालो जले; अंधकार गिरितटतले
देवदार तरु सारे-सारे
मने होले सृष्टि जेनो स्वप्ने चाय कथा कहिबारे
बलिते ना पारे स्पष्टो करि
अव्यक्तो ध्वनिर पुंजो अंधकारे उठेछि गुमरि
सहसा सुनिनु सेई क्षणे
संध्यार गगने
शब्देर विद्युत्च्छटा शून्येर प्रांतरे
मुहूर्ते छुटिया गैलो दूर होते दूर-दूरांतरे
हे हंस-बलाका
झंझा मदरसे मत्तो पाखा
राशि-राशि आनंदेर अट्टहासे
विस्मयेर जागरण तरंगिया चलिलो आकाशे
ओई पक्षध्वनि
शब्दमयी अप्सर-रमणी
गैलो चलि स्तब्धतार तपोभंग कोरि
उठिलो सिहरि
गिरिश्रेणी तिमिर मगन
सिहरिलो देवदार बन
मने होलो ए पाखार बाणी
दिलो आनि
शुधु पुलकेर तरे
पुलकितो निश्चलेर अंतरे-अंतरे

बेगेर आबेग
पर्बत चाहिलो होते बैशाखेर निरुद्देश मेघ
तरुश्रेणी चाहे, पाखा मेलि
माटिर बंधन फेलि
ओई शब्दरेखा धरे चकिते होइते दिशाहारा
आकाशेर खुंजिते किनारा
ए संध्यार स्वप्नो टूटे बेदनार ढेउ उठे जागि
सुदूरेर लागि
हे पाखा बिबागी
बाजिलो व्याकुल वाणी निखिलेर प्राणे
'हेथा नय हेथा नय, आर कोनोखाने।'
हे हंस-बलाका
आज रात्रे मोर काछे खुले दिले स्तब्धतार ढाका
शुनितेछि आमि एई निःशब्देर तले
शून्य जले-स्थले
अमनि पाखार शब्दो उद्दाम चंचल
तृणदल
माटिर आकाश परे झापटिछे डाना
माटिर आंधार नीचे के जाने ठिकाना
मेलितेछे अंकुरेर पाखा
लक्खो-लक्खो बीजेर बलाका
देखितेछि आमि आजि
एई गिरिराजि
एई बन चलियाछे, उन्मुक्त डानाय
द्वीप होते द्वीपांतरे, अजाना होइते अजानाय
नखत्रेर पाखार स्पंदने
चमकिछे अंधकार आलोर क्रंदने
शुनिलाम मानबेर कतो बाणी दले दले
अलक्षित पथे उड़े चले
अस्पष्ट अतीत होते अस्पष्ट युगांतरे
शुनिलाम आपन अंतरे
असंख्य पाखिर साथे
दिने-राते
एई बासा छाड़ि पाखि धाय आलो-अंधकारे
कोन पार होते कोन पारे

ध्वनिया उठिछे शून्यो निखिलेर पाखार ए गाने
'हेथा नय, अन्य कोथा, अन्य कोथा, अन्य कोनखाने।'

बाद में क्षितिमोहन सेन को लिखे पत्र में कविगुरु ने कहा था, ''मैं कश्मीर में था। एक शाम मैं झेलम नदी के किनारे बैठा हुआ था। चारों तरफ एक तरह की खामोशी थी। मुझे ऐसा लगा, जैसे कि मैं पद्मा के तट पर बैठा हूं। जब मैं पद्मा के तट पर रहता था, तब मैं जवान था। अब मैं वृद्ध हो गया हूं। इसके बावजूद समय ने मानो इस फर्क को मिटा दिया है। हंसों का एक झुंड मेरे सिर के ऊपर से गुजर गया।''

उल्लेखनीय है कि 'बलाका' को रवींद्र साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ माना जाता है।

2. वैष्णो देवी ओ अन्यान्यो काहिनी—उमाप्रसाद मुखोपाध्याय, 1979 : बाद के दौर में बांग्ला साहित्य में जम्मू-कश्मीर का जिक्र भ्रमण वृत्तांतों के अलावा आश्चर्यजनक रूप से जासूसी उपन्यासों में आया। बंगाल में जासूसी लेखन और भ्रमण वृत्तांत—दोनों ही शुरू से लोकप्रिय रहे हैं। चूंकि पर्यटन और उसमें भी धार्मिक पर्यटन की बंगाल में प्रथा रही है, इसलिए धार्मिक स्थलों के भ्रमण वृत्तांत भी खूब लिखे गए। इसके पुरोधाओं में खासकर जलधर सेन का नाम लिया जा सकता है, जिनका भ्रमण वृत्तांत 'हिमालय' (1903-04) में धारावाहिक रूप से 'भारती' पत्रिका में छपा, और बेहद लोकप्रिय होने के बाद पुस्तक के रूप में छपा। इसके अलावा प्रबोध कुमार सान्याल और अवधूत ने भी धार्मिक पर्यटन पर काफी लिखा है।

बंगाल के बाघ के रूप में प्रसिद्ध सर आशुतोष मुखोपाध्याय के तीसरे पुत्र उमाप्रसाद मुखोपाध्याय अपने भ्रमण वृत्तांतों के लिए प्रसिद्ध हैं। बाद के दिनों में अध्यापन और वकालत पेशा छोड़कर उन्होंने न केवल भ्रमण को अपना लक्ष्य बनाया, बल्कि भ्रमण वृत्तांत भी लिखे, जो सूक्ष्म ब्योरों और विलक्षण शैली के कारण बेहद प्रसिद्ध हुए। वैष्णो देवी पर उन्होंने तब लिखा, जब धार्मिक पर्यटन के लिए हमेशा तैयार रहने वाले बंगालियों में वैष्णो देवी की यात्रा के प्रति वैसी उत्सुकता नहीं थी। उनके भ्रमण वृत्तांत 'बंगवासी पत्रिका' में छपते थे। अपनी बेहद चर्चित 'मणिमहेश' के कारण उन्हें 1971 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। उनकी चर्चित किताबें हैं—'हिमालयेर पथे-पथे', 'गंगावर्तन', 'त्रिलोकनाथेर पथे', 'गुप्तेश्वर', 'कैलाश ओ मानसरोवर', 'शेरपादेर देशे' आदि। पांच खंडों में उनका भ्रमण वृत्तांत 'भ्रमण ओमनिवस' नाम से प्रकाशित हुआ।

3. अमर तीर्थ अमरनाथ—शंकु महाराज : शंकु महाराज यानी ज्योतिर्मय घोष दस्तीदार बांग्ला साहित्य में भ्रमण साहित्य के दिग्गज माने जाते हैं। भ्रमण पर उनकी कुल 40 किताबें हैं, और उनमें से अधिकांश हिमालय पर केंद्रित हैं। शंकु महाराज एक प्रशिक्षित पर्वतारोही भी थे और उन्होंने हिमालय में कई पर्वतारोहण अभियानों में भाग लिया था। अपनी किताब 'अमर तीर्थ अमरनाथ' में उन्होंने अमरनाथ की यात्रा का जिस दिलचस्प अंदाज में वर्णन किया है, वह अपने आप में अनूठा है।

4. भयंकर सुंदर—सुनील गंगोपाध्याय, 1979 : काकाबाबू शृंखला की पहली किताब 'भयंकर सुंदर', जो वर्ष 1979 में 'आनंदमेला' पत्रिका में छपी थी, कश्मीर पर थी। इस किताब में काकाबाबू अपने सहयोगी शंटु को लेकर कनिष्क (दूसरी शताब्दी के राजा) के सिर की खोज में कश्मीर पहुंचते हैं।

दिग्गज बांग्ला साहित्यकार सुनील गंगोपाध्याय ने किशोरों के लिए जासूसी उपन्यास लिखे, जिनका मुख्य पात्र काकाबाबू थे। काकाबाबू का नाम राजा रायचौधुरी था और वह विकलांग थे। एक दुर्घटना में उन्होंने अपना एक पांव खो दिया था। इसके बावजूद वह शारीरिक और मानसिक रूप से बेहद मजबूत थे। वह शूटिंग और तैराकी में कुशल थे। वह जासूस के तौर पर मामले सुलझाने के लिए अपने भतीजे शंटु के साथ दुनिया भर में घूमते थे। शंटु का वास्तविक नाम सुनंदो रायचौधुरी था। वह बहुत बुद्धिमान और एथलेटिक्स में कुशल था।

उल्लेखनीय है कि बांग्ला साहित्य में न केवल जासूसी रचनाओं का साहित्यिक मूल्य अधिक रहा है, बल्कि वहां एकाधिक जासूसी चरित्रों ने अपनी पहचान बनाई है। इनमें व्योमकेश बख्शी (शरदिंदु बंद्योपाध्याय), किरीटी राय (नीहाररंजन गुप्त), फेलु दा (सत्यजित राय), काकाबाबू (सुनील गंगोपाध्याय), अर्जुन (समरेश मजूमदार) आदि प्रमुख हैं।

5. भूस्वर्गो भयंकर—सत्यजित राय, 1987 : रवींद्रनाथ की तरह सत्यजित राय का भी कश्मीर से रिश्ता था। राय की फिल्मों के कला निर्देशक बंशी चंद्रगुप्त वस्तुतः उनके कश्मीरी दोस्त थे। बंशी चंद्रगुप्त ने 'शतरंज के खिलाड़ी' फिल्म में मुख्य किरदारों को कश्मीरी शॉल में दिखाया था। सत्यजित राय के जासूसी उपन्यास 'भू-स्वर्गो भयंकर' की पृष्ठभूमि कश्मीर की है, जो 1987 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में जासूस फेलु दा और उनके सहयोगी श्रीनगर जाते हैं। वहां वे पाते हैं कि एक जज की रहस्यपूर्ण तरीके से मृत्यु हो जाती है। बाद में फेलु दा जज के हत्यारे की शिनाख्त कर पूरी साजिश का भंडाफोड़ करते हैं।

फेलु दा का पूरा नाम प्रदोष चंद्र मित्र था। फेलु दा पहली बार 1965 में बच्चों की पत्रिका 'संदेश' में आए थे, जिसके संपादक सत्यजित राय और सुभाष मुखोपाध्याय थे। फेलु दा शृंखला की पहली कहानी थी—'फेलु दार गोयेंदागीरी' (फेलु दा की खुफियागीरी)। फेलु दा के सहयोगी उनके चचेरे भाई तपेश रंजन मित्र थे, जिन्हें फेलु दा प्यार से तोप्शे कहते थे। फेलु दा शृंखला की छठी कहानी 'सोनार केल्ला' में एक और किरदार जटायु का आविर्भाव हुआ, जिनका मूल नाम लालमोहन गांगुली था।

6. लल्लेश्वरी की कविताओं का अनुवाद—प्रो. शमीक घोष, 2018 : गणित के प्रोफेसर शमीक घोष ने कश्मीर के बहुचर्चित सूफी संत लल्लेश्वरी या ललद्यद की कविताओं का बांग्ला में अनुवाद किया। उन्होंने लल्लेश्वरी की कविताओं पर आधारित 40 बांग्ला गाने लिखे हैं और इसकी सीडी भी बनाई है, जो सुदूर बंगाल में लल्लेश्वरी को घर-घर पहुंचाएगी। श्रीनगर में लल्लेश्वरी की कविताओं पर आधारित सीडी के विमोचन के दौरान शमीक घोष ने कहा था कि उन्होंने पहली बार लल्लेश्वरी की कविता अपनी बेटी की 9वीं कक्षा की एनसीईआरटी की हिंदी किताब में पढ़ी। इससे वह प्रभावित हुए और नवंबर, 2016 से इस कार्य में जुट गए। ऐसे आगे बढ़े कि फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस प्रयास से पश्चिम बंगाल और कश्मीर में सांस्कृतिक आदान-प्रदान की शुरुआत होने की उम्मीद पैदा हुई है।

7. लव इन कश्मीर—सुबोध सरकार, 2019 : बांग्ला साहित्य में कश्मीर को सबसे प्रामाणिक ढंग से हाल के वर्षों में चर्चित कवि सुबोध सरकार ने अपनी कविता में सामने रखा। अगस्त, 2019 में जम्मू-कश्मीर की संवैधानिक स्थिति बदल जाने के बाद 'मणिपुरेर मां' जैसी

सशक्त कविता लिखने वाले सुबोध सरकार ने 'लव इन कश्मीर' कविता लिखी। राजनीतिक चेतना से लैस सुबोध सरकार बांग्ला के बेहद लोकप्रिय कवियों में से हैं। 'घासेर आड्डा' नाम की एक बांग्ला पत्रिका की ओर से दुर्गापूजा के समय 11 सितंबर, 2019 को बांग्ला अकादमी सभागार में इसके पाठ का भी आयोजन किया गया–

कान्ना ताके बांचिये राखे
कान्ना ताके बांचाय
भूस्वर्गेर मधुरतम खांचाय।
सकालबेलार आलो जखोन
दरजा खोले चोखे
फुंपिये ओठे चोख
देखेछि आमि बहु खाराप लोक
किन्तु आमि भालोबेशेछि ताके
कान्ना जाके बांचाय
आमार काछे कान्ना आर कि चाय?

यह एक दूसरा ही कश्मीर है। कवि ने एक उदास किशोरी की नजर से कश्मीर को देखा है। इस कविता में एक किशोरी कश्मीर नाम की जेल में बैठकर रो रही है। उस किशोरी का देश जेल के बाहर है। वह किशोरी कहती है कि मैंने यहां बहुत खराब आदमी देखे हैं, फिर भी मैं इससे प्यार करती हूं।

हाल के दौर के बांग्ला साहित्य में जम्मू-कश्मीर को किंचित् गहराई और गंभीरता से देखने की कोशिश हुई। देवश्री चक्रवर्ती का उपन्यास 'लाल चिनार पाता' और संजय मुखोपाध्याय द्वारा संपादित 'बिक्खुब्ध काश्मीर' जैसी किताबें इस प्रसंग में खासकर उल्लेखनीय हैं।

□

जम्मू-कश्मीर में नव-निर्माण और नवजागरण की वेला

रसाल सिंह

स्वतंत्र भारत के इतिहास में जम्मू-कश्मीर सर्वाधिक चर्चित अध्याय रहा है। इस चर्चा और चिंता का एक प्रमुख कारण भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35ए रहे हैं। भारतीय संविधान में कुछ 'अस्थायी और संक्रमणकालीन प्रावधान' किए गए थे। इन्हीं में से एक अनुच्छेद 370 था।

जम्मू-कश्मीर के राष्ट्रवादी संगठन प्रजा परिषद के राज्य में भारतीय संविधान को पूरी तरह लागू करने की मांग की और दूरी उत्पन्न करने वाले प्रावधानों का विरोध किया। आगे चलकर भारतीय जनसंघ के संस्थापक डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने राष्ट्रीय स्तर पर सबसे पहले और सबसे जोरदार ढंग से जम्मू-कश्मीर को अलगाने वाले इन विशेष प्रावधानों का संसद से लेकर सड़क तक और दिल्ली से लेकर श्रीनगर तक विरोध किया। उन्होंने पंडित नेहरू की तुष्टिकरण की नीति और शेख अब्दुल्ला को शह देने की राजनीति का लगातार विरोध किया। उन्होंने शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा शासन-प्रशासन की विविध योजनाओं, सुविधाओं-संसाधनों के वितरण और सरकारी सेवाओं में भागीदारी में जम्मू संभाग की उपेक्षा के खिलाफ आंदोलनरत प्रेमनाथ डोगरा और प्रजा परिषद का भी साथ दिया।

जम्मू-कश्मीर राज्य में जहां कश्मीर घाटी को वरीयता और बढ़ावा दिया जा रहा था; वहीं, जम्मू और लद्दाख क्षेत्र की घनघोर उपेक्षा की जा रही थी। शेख अब्दुल्ला की इस विभाजनकारी और भेदभावपूर्ण नीति को प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का पूर्ण प्रश्रय था। पंडित नेहरू की यह नीति न सिर्फ जम्मू-कश्मीर के आंतरिक एकीकरण की बाधा थी बल्कि जम्मू-कश्मीर के भारतीय संघ में पूर्ण एकात्मता में भी सबसे बड़ी अड़चन थी। स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि और गांधी जी के उत्तराधिकारी होने के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश का राजनीतिक आकाश कांग्रेस और नेहरू जी से आच्छादित और आक्रांत था। स्वाधीनता की वेला में विपक्ष नाममात्र का ही था। संसद में उसकी स्थिति नक्कारखाने में तूती की आवाज जैसी ही थी, लेकिन डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इस सबकी परवाह न करते हुए भारत की एकता, अखंडता और संप्रभुता की लड़ाई लड़ी। जम्मू-कश्मीर के भारत के साथ पूर्ण एकीकरण को सुनिश्चित करने के लिए दिया गया

उनका नारा 'एक देश में दो विधान, दो प्रधान और दो निशान नहीं चलेंगे!' बहुचर्चित रहा है। ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत के एकीकरण और जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में एकात्मता की लड़ाई लड़ते हुए ही 23 जून, 1953 को श्रीनगर के निकट निशात बाग में नजरबंदी के दौरान उनकी रहस्यमयी परिस्थितियों में असामयिक मृत्यु हुई।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के बलिदान दिवस से लेकर 5 अगस्त, 2019 तक 'जहां हुए बलिदान मुखर्जी, वह कश्मीर हमारा है!' और 'कश्मीर हो या गुवाहाटी, अपना देश अपनी माटी' जैसे नारों ने भारत के राष्ट्रवादी नौजवानों को लगातार आंदोलित किया है। डॉ. मुखर्जी के बलिदान के बाद से अनुच्छेद 370 और बाद में धारा 35ए को निरस्त करने का मुद्दा लगातार जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण विचारधारात्मक और भावनात्मक मुद्दा रहा है। जनसंघ और भारतीय जनता पार्टी के अधिवेशन और चुनावी घोषणा-पत्र इसकी पुष्टि करते हैं। इसी वैचारिक प्रतिबद्धता के परिणामस्वरूप 5 अगस्त, 2019 को भारतीय जनता पार्टी की नरेन्द्र मोदी के नेतृत्त्व वाली प्रचंड बहुमत की केंद्र सरकार ने इन प्रावधानों को हटाकर जम्मू-कश्मीर का भारतीय संघ के साथ एकात्मता का मार्ग प्रशस्त किया। जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 को संसद के दोनों सदनों में पारित करते हुए जम्मू-कश्मीर राज्य को दो केंद्रशासित प्रदेश—जम्मू-कश्मीर और लद्दाख में बांट दिया गया। लद्दाख को पृथक् केंद्रशासित प्रदेश बनाने की मूल वजह वहां के निवासियों द्वारा लगातार की जा रही, ऐसी मांग थी। इस मांग का आधार जम्मू-कश्मीर राज्य के शासन-प्रशासन द्वारा लंबे समय तक लद्दाखवासियों के साथ किया गया भेदभाव और उपेक्षा थी, हालांकि आजादी से लेकर जम्मू-कश्मीर के पुनर्गठन तक इस भेदभाव और उपेक्षा के शिकार जम्मू संभाग के लोग भी रहे हैं। कश्मीर के लोग 'शासक भाव' और श्रेष्ठता ग्रंथि के शिकार रहे हैं। जम्मू और लद्दाखवासियों के प्रति उनके दिलो-दिमाग में हीनता और हिकारत का स्थायीभाव रहा है। परंतु अब नई बनती हुई व्यवस्था में उनके साथ भी भेदभाव की समाप्ति और न्याय की शुरुआत हो चुकी है।

अमीर खुसरो ने 'गर फिरदौस बर रुए जमीं अस्त, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त'। कहकर जम्मू-कश्मीर प्रदेश के प्राकृतिक सौंदर्य और सांस्कृतिक समृद्धि की ओर संकेत किया था। कश्मीर भारत की समृद्ध ज्ञान-परंपरा की आदिभूमि और भामह, मम्मट, रुद्रट, कुंतक, वामन, भट्टनायक, क्षेमेंद्र, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, चरक, कल्हण, विष्णु शर्मा, कालिदास और लल्लेश्वरी जैसे प्रख्यात और प्रकांड विद्वानों की कर्मभूमि रही है। ज्ञान-विज्ञान और दर्शन की अनुसंधान भूमि और भारतमाता का सिरमौर कश्मीर कालांतर में राजनीतिक दुर्घटना का शिकार हो गया। निहित स्वार्थ के वशीभूत स्थानीय नेताओं और पड़ोसी पाकिस्तान ने अलगाववाद और आतंकवाद को हवा दी। कश्मीरी नौजवानों को जन्नत के सब्जबाग दिखाकर दिग्भ्रमित कर दिया गया और उनमें से कुछ के हाथ में कलम और किताब की जगह गोला-बारूद और बंदूक पकड़ा दी। 'पत्थरबाजी' को ही उनका भविष्य बना डाला गया। धरना-प्रदर्शन, बंद और तोड़-फोड़, दंगा-फसाद और खून-खराबे का यह प्रायोजित खूनी खेल कई दशक तक जम्मू-कश्मीर में चलता रहा। मुट्ठी भर लोगों ने कश्मीर और कश्मीरियत को 'हाइजैक' कर लिया। इनके द्वारा गढ़ी गई कश्मीर की परिभाषा और

इनके ही द्वारा अंतरराष्ट्रीय मंचों पर दिया गया उसका परिचय उसके अतीत से मेल नहीं खाता। इसमें मीडिया, खासकर अंतरराष्ट्रीय मीडिया की भी बड़ी नकारात्मक भूमिका रही। उसने खबरों को मसालेदार बनाकर बेचा। यहां तक कि 'कश्मीर की आजादी' तक की बात की जाने लगी। आजाद कश्मीर का नारा पड़ोसी पाकिस्तान के उकसावे और हुर्रियत कॉन्फ्रेंस जैसे अलगाववादी संगठन के अति महत्त्वाकांक्षी सरगनाओं की सत्ता-लालसा से पैदा हुआ विषवृक्ष था। निस्संदेह, पाकिस्तान पोषित इस विषवृक्ष का बीज अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35 ए के प्रावधान ही थे। 5 अगस्त, 2019 को इस विषवृक्ष को समूल नष्ट कर दिया गया। भारत की प्रचंड बहुमत और उससे भी प्रचंड संकल्प वाली केंद्र सरकार ने ऐतिहासिक निर्णय लेते हुए इन दोनों प्रावधानों को निष्प्रभावी करके उपरोक्त विध्वंसक मानसिकता और राष्ट्रद्रोही कारस्तानियों का स्थायी बंदोबस्त कर दिया।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली केंद्र सरकार ने यह निर्णय लेकर भारतीय संघ की शक्ति और संकल्प का ऐतिहासिक उद्घोष किया। गृहमंत्री अमित शाह ने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए ऐसे सभी अलगाववादी तत्त्वों और निर्दोष कश्मीरी नागरिकों को पत्थरबाजी, तोड़-फोड़ और हिंसा के लिए भड़का सकने वाले राजनेताओं को एहतियातन गिरफ्तार या नजरबंद करवा दिया। ऐसे नेताओं में पी.डी.पी. की अध्यक्षा और पूर्व मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती, नेशनल कॉन्फ्रेंस के अध्यक्ष और पूर्व मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला और उमर अब्दुल्ला, कांग्रेस के नेता सैफुद्दीन सोज, जम्मू-कश्मीर पीपुल्स कॉन्फ्रेंस के नेता सज्जाद लोन के अलावा अलगाववादी संगठन हुर्रियत कॉन्फ्रेंस के अनेक धड़ों के नेता शामिल थे। निश्चय ही, अपनी नजरबंदी के दौरान इन नेताओं ने डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी की नजरबंदी और बलिदान को याद करते हुए पश्चात्ताप किया होगा।

पाकिस्तानी सेना और आई.एस.आई. की ओर से जम्मू-कश्मीर में छद्म-युद्ध (प्रॉक्सी-वॉर) लड़ रहे आतंकवादी संगठनों ने यह सुनिश्चित किया था कि कोई भी राष्ट्रवादी या भारतीयतावादी पत्रकार कश्मीर घाटी में न टिक पाए ताकि उनके द्वारा 'मैन्यूफैक्चर्ड एंड मैन्यूपुलेटेड' खबरें ही प्रचारित और प्रसारित हों। इन प्रायोजित पत्रकारों और उनकी झूठी-सच्ची खबरों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत विरोधी नैरेटिव गढ़ा। पिछले दिनों भारत विरोधी प्रायोजित खबरें लिखने वाले तथाकथित पत्रकारों की भी खबर ली गई है। हाल ही में जम्मू-कश्मीर में लागू की गई मीडिया नीति और आचार-संहिता ने पत्रकारिता और पत्रकारों को अधिक जिम्मेदार और जवाबदेह बनाया है। अब मनगढ़ंत, भड़काऊ और भारत-विरोधी खबरों के प्रचार-प्रसार को आपराधिक कृत्य माना जाएगा। लोगों को उकसाकर उपद्रव करवाने वाले स्वयंभू नेताओं की नजरबंदी के अलावा अस्थायी रूप से इंटरनेट पर भी रोक लगाई गई, ताकि सोशल मीडिया (व्हाट्सएप, फेसबुक, इंस्टाग्राम, ट्विटर आदि) के माध्यम से अफवाहें और प्रायोजित खबरें फैलाकर शांति और सौहार्द को बिगाड़ने की नापाक कोशिश न की जा सके। अनुभवी और सक्षम कमांडरों के नेतृत्व में सभी संवेदनशील स्थानों पर सुरक्षा बलों की पर्याप्त और मुस्तैद उपस्थिति भी सुनिश्चित की गई। इन सब सचेत उपायों से लगभग स्थायी बन चुके अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35ए की विदाई संभव हुई। अनुच्छेद 370 का स्वरूप अस्थायी और संक्रमणकालीन होते हुए भी राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण उत्पन्न धारणा के चलते न्यायालय तक ने 2018 में यह टिप्पणी कर दी कि

''अस्थायी प्रावधान अनुच्छेद 370 ने बहुत लंबे समय (लगभग 75 साल) से होने के कारण इतना स्थायित्व प्राप्त कर लिया है कि अब इसकी समाप्ति असंभव-सी है।'' बहरहाल, भारत सरकार ने इस असंभव को संभव करते हुए जम्मू-कश्मीर और भारत की जनभावना का सम्मान किया।

पिछला एक साल जम्मू-कश्मीर के लिए निर्णायक रहा है। अब यहां जमीनी बदलाव की आधारभूमि तैयार हो चुकी है। पिछले एक साल में आतंकवादी और हिंसक घटनाओं में उल्लेखनीय कमी हुई है। हालांकि, आतंकवादी संगठन और उनके आका पुरजोर कोशिश कर रहे हैं कि हिंसा और दहशतगर्दी करके माहौल को बिगाड़ा जा सके और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर यह प्रचारित किया जा सके कि अनुच्छेद 370 और धारा 35 ए को निष्प्रभावी किए जाने से जम्मू-कश्मीर के बाशिंदे परेशान हैं और प्रतिक्रियास्वरूप इसप्रकार की वारदातों को अंजाम दे रहे हैं, किंतु सुरक्षा बलों और पुलिस की मुस्तैदी की वजह से उनके मंसूबे पूरे नहीं हो पा रहे हैं। पिछले एक साल में मिली नाकामयाबी की वजह से तमाम आतंकवादी संगठनों और उनके आकाओं में हताशा है। ऐसा लगता है कि वे अपने अस्तित्व की निर्णायक और अंतिम लड़ाई लड़ रहे हैं। इन आतंकवादी संगठनों और हुर्रियत कॉन्फ्रेंस जैसे अलगाववादी संगठनों की बाहरी और अवैध फंडिंग को भी बहुत हद तक नियंत्रित किया जा चुका है। मुफ्तखोरी के आदी ये अलगाववादी नेता और आतंकवादी संगठन फंडिंग न हो पाने से अब 'जल बिन मछली' की तरह तड़प रहे हैं। उल्लेखनीय है कि कश्मीर की आजादी का राग अलापने वाले इन तथाकथित नेताओं की फाइव स्टार जीवन-शैली, विदेशी सैर-सपाटे और बीवी-बच्चों का विदेश प्रवास और शिक्षा-दीक्षा; सब हवाला फंडिंग का प्रतिफल था। अब उन्हें आटे-दाल का सही भाव पता चलने लगा है। पाकिस्तान पोषित इन राष्ट्र-द्रोहियों को इनके 'सेवाकार्यों' के लिए पैसे और अन्यान्य प्रलोभनों के अलावा तरह-तरह के पुरस्कार भी दिए जाते रहे हैं। हुर्रियत कॉन्फ्रेंस के पूर्व-अध्यक्ष सैयद अली शाह गिलानी को पिछले दिनों दिया गया 'निशान-ए-पाकिस्तान' इसका उदाहरण है। अब आतंकवाद और अलगाववाद की दुकानों का क्रमिक 'लॉकडाउन' हो रहा है। सैन्यबल जहां आतंकवादियों की अच्छी आवभगत कर रहे हैं; वहीं, पुलिस प्रशासन द्वारा तथाकथित पत्रकारों, बुद्धिजीवियों, स्वयंसेवी संगठनों के झोलाछापों और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की भारत-विरोधी गतिविधियों और आय के अवैध स्रोतों पर शिकंजा कसा जा रहा है। इन राष्ट्रद्रोही 'लाउडस्पीकरों' की बिजली कट जाने से वातावरण में लंबे समय से व्याप्त नकारात्मकता, निराशा और नफरत की धुंध छंट रही है।

शेख अब्दुल्ला और मुफ्ती मोहम्मद सईद खानदान की वंशवादी राजनीति से भी जम्मू-कश्मीर का आम नागरिक त्रस्त रहा है। आजकल दोनों ही खानदानों की तीसरी पीढ़ी (शेख अब्दुल्ला के पौत्र उमर अब्दुल्ला और मुफ्ती मोहम्मद सईद की नातिन इल्तिजा मुफ्ती) राजनीति कर रहे हैं। विकल्पहीनता के कारण यहां विकास और बदलाव के स्थान पर खाने-पीने की राजनीति का बोलबाला रहा है। अभी तक केंद्र सरकार से मिलने वाली आर्थिक मदद का कोई लेखा-जोखा (ऑडिट) नहीं होता था। इसलिए पैसा जनकल्याण और आधारभूत ढांचे के निर्माण में लगने के स्थान पर सीधे मुट्ठीभर लोगों की जेब में चला जाता था। इसका एक प्रमाण यह है कि केंद्रशासित प्रदेश बनने के कारण ऑडिट के दायरे में आते ही पिछले एक साल में अनेक सरकारी कार्यालयों में आगजनी हुई और 'दुर्घटनावश' अनेक फाइलें जलकर राख हो गईं। जमीनी विकास न होने से स्थानीय

निवासियों में और ज्यादा असंतोष और अलगाव बढ़ता था। अब राज्यस्तरीय कराधान से अर्जित और केंद्र से प्राप्त धनराशि विकासयोजनाओं, आधारभूत ढांचे के निर्माण और बदलाव-कार्यों में लगने से नई संभावनाओं का सूर्योदय हो रहा है। भ्रष्टाचार और अव्यवस्था काफी हद तक कम हुई है। शासन-प्रशासन में संवेदनशीलता, जवाबदेही और पारदर्शिता बढ़ी है। इसी का परिणाम है कि नागरिकों में सरकार और सरकारी-तंत्र के प्रति विश्वास-बहाली हो रही है।

31 मार्च, 2020 को केंद्र सरकार ने जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन (राज्य विधि का अनुकूलन) आदेश-2020 अधिसूचित किया था। इस आदेश के तहत राज्य में पूर्व-प्रचलित 129 कानूनों में आंशिक संशोधन किया गया है और 29 कानूनों को पूर्ण रूपेण निरस्त किया गया है। इसी आदेश में जम्मू-कश्मीर प्रशासनिक सेवा (विकेंद्रीकरण और भर्ती) अधिनियम - 2010 के खंड 2 में आंशिक बदलाव करते 'स्थायी निवासी' शब्द के स्थान पर 'अधिवासी' शब्द जोड़ा गया है। इसी संशोधित अधिनियम के खंड 3 ए के अंतर्गत 'अधिवासी' शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए उसे परिभाषित किया गया है। इस परिभाषा के अनुसार कम-से-कम 15 वर्ष या उससे अधिक समय तक जम्मू-कश्मीर केंद्रशासित प्रदेश में रहने वाले व्यक्ति 'अधिवासी' माने जाएंगे। इसके अलावा केंद्रशासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर के शिक्षण संस्थानों से अपनी 10वीं/12वीं की पढ़ाई को मिलाकर कम-से-कम 7 वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राएं भी अधिवासी माने जाएंगे। कम-से-कम 10 वर्ष तक जम्मू-कश्मीर में सेवा देने वाले केंद्रीय सेवाओं, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों/अन्य उपक्रमों, केंद्रीय विश्वविद्यालयों और अन्य केंद्रीय स्वायत्तशासी निकायों आदि के कर्मचारी/अधिकारी और उनके बच्चे भी अधिवासी माने जाएंगे। इसके साथ ही, जम्मू-कश्मीर के राहत एवं पुनर्वास आयुक्त कार्यालय में पंजीकृत विस्थापित भी अधिवासी माने जाएंगे।

नई अधिवास नीति के लागू हो जाने के बाद जम्मू-कश्मीर में पूंजी निवेश की अपार संभावनाएं हैं। जिस प्रकार सन् 1991 के बजट के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए थे, ठीक उसी प्रकार के परिवर्तन के मुहाने पर अभी जम्मू-कश्मीर है। पूंजी-निवेश और आर्थिक-पुनर्नियोजन के लिए उसके द्वार खुल चुके हैं। यह सचमुच एक ऐतिहासिक परिघटना है। पर्यटन, सीमेंट, बिजली, औषधिक संपदा, ऊनी वस्त्र, चावल, केसर, फल, मेवा, शहद और दुग्ध-उत्पाद आदि से संबंधित यहां के उद्योग-धंधे और व्यापार आवश्यक पूंजी-निवेश और नई श्रम-शक्ति, कौशल और प्रतिभा से कई गुना विकसित होने की संभावना है। अगर ये उद्योग-धंधे और व्यापार अपनी पूर्ण क्षमतानुसार विकसित होते हैं तो इससे स्थानीय युवाओं को रोजगार के अधिकाधिक अवसर मिलेंगे। एक बार फिर उनके हाथ में पत्थर और बंदूक की जगह कलम-किताब और इलेक्ट्रॉनिक गैजेट होंगे। लगभग 6 महीने से 2G इंटरनेट की सुविधा बहाल हो गई है। जल्दी ही 4G इंटरनेट शुरू होने की भी प्रबल संभावना है। जम्मू-कश्मीर ज्ञान-विज्ञान की उर्वरा भूमि है। शांति-बहाल होते ही यहां अंतरराष्ट्रीय स्तर के शिक्षण संस्थान खुलने लगेंगे। यहां वैष्णो देवी और अमरनाथ धाम जैसे अनेक सर्वमान्य तीर्थस्थल हैं। यहां का वातावरण प्रदूषण मुक्त है और श्रेष्ठतम शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य के अनुकूल है। इसलिए यहां प्राकृतिक, धार्मिक, शैक्षणिक और स्वास्थ्य पर्यटन के विकास की अपरिमित संभावनाएं हैं। उल्लेखनीय है कि अभी तक जम्मू संभाग के लोक-कलाओं और पर्यटन स्थलों के विकास एवं प्रचार-प्रसार के प्रति भी सायास

उदासीनता बरती गई है। अब इन संभावनाओं का सुनियोजित विकास और सतत दोहन करने की आवश्यकता है। जम्मू-कश्मीर के नौजवानों को देश की मुख्यधारा में शामिल करके और विकास योजनाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करके ही पाकिस्तान पोषित आतंकवाद को मात दी जा सकती है।

अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35ए की समाप्ति करके भारत ने अंतरराष्ट्रीय बिरादरी में अपनी सामर्थ्य और स्वीकार्यता का भी परचम फहराया है। पिछले एक साल में बार-बार इस मुद्दे को तमाम अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उठाने की कोशिशों के बावजूद पाकिस्तान को सफलता नहीं मिली है। संयुक्त राष्ट्रसंघ से लेकर मुस्लिम राष्ट्रों के मंच तक पर उसे मुंह की खानी पड़ी है। विश्व के सर्वाधिक सशक्त लोकतंत्र अमेरिका से लेकर यूरोप के अनेक लोकतांत्रिक राष्ट्रों ने भारत के पक्ष का समर्थन किया है। इससे पाकिस्तान की खिसियाहट और बढ़ गई है। जम्मू-कश्मीर की एकात्मता के बाद पाक अधिक्रांत जम्मू-कश्मीर (POJK) तथा गिलगिट, बाल्तिस्तान पर भी भारत की दावेदारी बढ़ गई है। गिलगिट, बाल्तिस्तान आदि क्षेत्रों में नागरिक आंदोलन चल रहे हैं। वहां के निवासी पाकिस्तानी जुल्मोसितम के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद कर रहे हैं और सशक्त और संकल्पशील भारत की ओर आशा भरी नजर से देख रहे हैं।

जम्मू-कश्मीर की राज्य विधानसभा में क्षेत्रीय असंतुलन रहा है। इसलिए चुनाव आयोग विधानसभा चुनाव कराने से पहले वहां विधानसभा क्षेत्रों का परिसीमन करा रहा है। यह परिसीमन कार्य इस वर्ष के अंत तक होने की संभावना है। परिसीमन प्रक्रिया के पूर्ण हो जाने के बाद लोकतांत्रिक व्यवस्था और विकास प्रक्रिया में सभी क्षेत्रों और समुदायों का समुचित प्रतिनिधित्व और भागीदारी सुनिश्चित हो सकेगी। शासन-प्रशासन की कश्मीर केंद्रित नीति भी संतुलित हो सकेगी और अन्य क्षेत्रों के साथ होने वाले भेदभाव और उपेक्षा की भी समाप्ति हो जाएगी। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सभी नागरिकों की विश्वास बहाली और भागीदारी सुनिश्चित करना किसी भी राज्य का प्रमुख कर्तव्य है और यही उसकी सबसे बड़ी चुनौती भी। आज केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर इस कर्तव्य को पूरा करने की चुनौती स्वीकार करने की दिशा में अग्रसर है।

□

शोध

जम्मू-कश्मीर में औषधीय पौधे : आवश्यकता एवं संभावना

रोमसा शुक्ला

अनुपम प्राकृतिक विविधता के कारण जम्मू-कश्मीर राज्य न केवल भारत अपितु विश्व में अपना एक अनूठा स्थान रखता है। यहां प्रचुरता से उपलब्ध जैव एवं वानस्पतिक उत्पाद न केवल आयुर्वेदिक, तिब्बती एवं यूनानी उपचार पद्धतियों के लिए आवश्यक आधारभूत सामग्री उपलब्ध कराते हैं अपितु उनके दोहन से स्थानीय निवासियों की आर्थिक आवश्यकता भी पूरी होती है।

सामान्य रूप से औषधीय उत्पादों से जुड़ी गतिविधियां असंगठित रूप से जारी हैं। पिछले कुछ समय से जिस प्रकार पूरे विश्व में आयुर्वेद व अन्य देशी पद्धतियों द्वारा उपचार को स्वीकार्यता मिली है, उसने इस क्षेत्र को संगठित तथा नियोजित रूप से एक संपूर्ण आर्थिक गतिविधि के रूप में स्थापित किये जाने की आवश्यकता को रेखांकित किया है।

इस दिशा में केंद्र व राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर पहल की जाती रही है, किंतु वह समग्र नीति के निर्माण तथा उसके प्रभावी क्रियान्वयन से बहुत दूर है। प्रारंभिक अध्ययन बताते हैं कि जम्मू-कश्मीर राज्य के विशेष संदर्भ में यह क्षेत्र संभावनापूर्ण है तथा समेकित प्रयास किए जाने पर बड़ी संख्या में लघु व सीमांत किसानों की आय में चमत्कारिक रूप से वृद्धि करने वाला है। यह कुटीर उद्योगों के विकास तथा सहकारिता आधारित विपणन प्रणाली की व्यापक शृंखला का आधार बन सकता है, जो बड़ी संख्या में रोजगार निर्माण करेगी जिसके परिणामस्वरूप पलायन पर प्रभावी रोक लगाना संभव है। कोविड-19 से उत्पन्न चुनौती के इस काल में स्थानीय स्तर पर स्वावलंबन तथा आत्मनिर्भर भारत का लक्ष्य पूरा करने में यह बड़े आर्थिक बदलाव का आधार बन सकता है।

पौधों की प्रजातियों के औषधीय गुणों ने कई पारंपरिक हर्बल उपचारों की उत्पत्ति और विकास में उत्कृष्ट योगदान दिया है। लिखित विवरणों की कमी और इन परंपराओं में अपेक्षाकृत कम आय के कारण ये पारंपरिक ज्ञान प्रणालियां समय के साथ नष्ट होने लगी हैं। विगत वर्षों में औषधीय पौधों की बढ़ती मांग, मानव के लिए दवा के अतिरिक्त एलोपैथिक चिकित्सा की तुलना में इसके कम दुष्प्रभावों के दृष्टिकोण से एक व्यापक विश्वास का संचरण हुआ है। अतीत में चिकित्सा के लिए उपयोग किए गए पौधों के पारंपरिक ज्ञान के निरंतर क्षरण और वर्तमान में

नवीन ज्ञान की प्राप्ति के माध्यम से, विभिन्न राज्यों में औषधीय पौधों के क्षेत्रों को विकसित करने के उद्देश्य से औषधीय पौधों के इस बहुमूल्य ज्ञान की समीक्षा करने की आवश्यकता है।[1] भारतीय उपमहाद्वीप वन उत्पादों की विविधता और सदियों पुरानी स्वास्थ्य देखभाल परंपराओं के लिए अच्छी तरह से जाना जाता है, इसलिए पारंपरिक ज्ञान में चल रहे विकास संबंधी रुझानों को साकार करने वाले राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों दृष्टिकोणों में इन पारंपरिक मूल्यों को स्थापित करने की आवश्यकता है। औषधीय पौधे मुख्य रूप से छोटे किसानों के वैकल्पिक आय पैदा करने वाले स्रोत हैं; इसलिए, इस क्षेत्र को मजबूत करने से गरीब लोगों के जीवन स्तर में लाभ और सुधार हो सकता है। भारत में जम्मू-कश्मीर राज्य मूल्यवान औषधीय पौधों की एक समृद्ध विविधता को प्रस्तुत करता है। भारत का उत्तरी भाग हिमालयी शृंखला के कारण औषधीय पौधों की एक विशाल विविधता को जन्म देता है।[2]

भारत में 17,000 पौध-प्रजातियों में 7500 औषधीय उपयोगों के लिए मानी जाती हैं। औषधीय पौधों का यह अनुपात उस संबंधित देश के मौजूदा वनस्पतियों के लिए दुनिया के किसी भी देश में उनके चिकित्सा उद्देश्यों के लिए ज्ञात पौधों का उच्चतम अनुपात है।[3] भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे पुरानी चिकित्सा प्रणाली आयुर्वेद ने लगभग 2000 औषधीय पौधों की प्रजातियों को प्रस्तुत किया है। भारत का उत्तरी भाग हिमालयी शृंखला के कारण औषधीय पौधों की एक विशाल विविधता को जन्म देता है। भारत से औषधीय पौधों की कुल ज्ञात संख्या में से, लगभग 46 प्रतिशत हिमालय के क्षेत्र से संबंधित हैं।[4]

अध्ययन का उद्देश्य

(i) औषधीय पौधों का सर्वेक्षण।
(ii) महत्त्वपूर्ण औषधीय पौधों की प्रजातियों की खेती और विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित करना।
(iii) आयुर्वेदिक औषधियों में उपयोग के लिए औषधीय पौधों की सूची तैयार करना।
(iv) किसानों को भूमि में औषधीय खेती को एक विकल्प के रूप में तैयार करना।
(v) औषधीय पौधे के संरक्षण और उनके प्रसार की आवश्यकता के लिए सार्वजनिक जागरूकता लाना।

अध्ययन के लाभ

(i) राज्य की दुर्लभ औषधीय पौधों की प्रजातियों का संरक्षण।
(ii) प्राकृतिक वनों में औषधीय पौधों का संरक्षण
(iii) राज्य की पारंपरिक स्वास्थ्य प्रणाली को प्रोत्साहन एवं स्थानीय स्वास्थ्य परिदृश्य में सुधार।
(iv) आईएसएम (भारतीय चिकित्सा पद्धति) के लिए पौधों और उनके उत्पादों की सूचना को उपलब्ध कराना।
(v) रोजगार सृजन।

जम्मू और जम्मू-कश्मीर राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का वन क्षेत्र लगभग 20,230 वर्ग किलोमीटर में है। संपूर्ण वन क्षेत्र निवासियों के लिए समर्थ आर्थिक क्षमता प्रदान करने वाले

पौधों और वृक्षों से आच्छादित है। पिछले एक दशक से एलोपैथिक प्रणाली की तुलना में, घरेलू स्तर पर दवा की स्वदेशी प्रणाली के प्रति बढ़ती आत्मीयता के कारण कच्ची जड़ी-बूटियों की मांग में जम्मू-कश्मीर राज्य के भीतर अधिक तेजी देखी गई है।[5] यह परिवर्तन पूरे राज्य में ग्रामीण क्षेत्रों के साथ ही शहरी क्षेत्रों में देखा गया है।[6] यह अनुमान है कि राज्य में लगभग 3054 औषधीय पौधों की प्रजातियां पाई जाती हैं।

जम्मू-कश्मीर राज्य औषधीय पौधा बोर्ड ने 2008 में औषधीय पौधों की मांग और आपूर्ति की स्थिति का आकलन करने के लिए एक अध्ययन किया था–

(i) वर्ष 2005 में जम्मू और जम्मू-कश्मीर में औषधीय पौधों की वार्षिक मांग 3437.29 क्विंटल होने का अनुमान था, जो उस वर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर औषधीय पौधों की मांग का 0.11 प्रतिशत था। वर्ष 2006 की वार्षिक मांग 4379.51 क्विंटल होने का अनुमान लगाया गया था। इन मांग अनुमानों में केवल औषधीय उपयोग की मांग शामिल थी।[7]

(ii) राज्य में औषधीय पौधों की अनुमानित मांग–राज्य में वर्ष 2007-08 में औषधीय पौधों की कुल मांग 510.7. क्विंटल है। यह मांग राज्य के भीतर हर्बल उद्योग द्वारा औषधीय पौधों की खपत को दर्शाती है जिसमें मुख्य रूप से पारंपरिक चिकित्सक, आईएसएम चिकित्सक शामिल हैं। ये अनुमान राज्य के व्यापारियों, चिकित्सकों, पारंपरिक चिकित्सकों और विनिर्माण इकाइयों द्वारा अनुमानित मांग पर आधारित हैं।

(iii) वर्ष 2005 के सर्वेक्षण के अनुसार 12 औषधीय पौधों की मांग, 3437.29 क्विंटल में से 2494.76 क्विंटल का अनुमान लगाया गया था, वर्ष 2006 के लिए सूचीबद्ध पौधों की अनुमानित मांग 3227.97 क्विंटल थी।

औषधीय पौधों की अनुमानित बढ़ती मांग के कारण वनों से औषधीय पौधों की अधिक कटाई हुई है, जिसके परिणामस्वरूप उनके उत्पादन में कमी आई है। उदाहरण के लिए, टैक्सस बाकाटा की, बड़ी मात्रा में इसके अर्क को इकट्ठा किया गया, यह डिम्बग्रंथि के कैंसर के उपचार में प्रभावी है।[8] कई औषधीय पौधों की प्रजातियों का उपयोग एक से अधिक बीमारी को ठीक करने में किया जाता है और परिणामस्वरूप, वनों से अधिक संग्रह के कारण इन प्रजातियों पर दबाव होता है। औषधीय पौधों के अधिक दोहन और निरंतर उत्पादन में कमी ने स्थानीय लोगों की आजीविका को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने अनुमान लगाया है कि औषधीय पौधों की वर्तमान मांग लगभग 14 बिलियन अमेरिकी डॉलर प्रतिवर्ष है। औषधीय पौधों पर आधारित कच्चे माल की मांग सालाना 15 से 25 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है और डब्ल्यूएचओ के एक अनुमान के अनुसार, औषधीय पौधों की मांग अधिक बढ़ने की संभावना है। 2050 तक यू.एस. 50 ट्रिलियन की आय भारत को औषधीय पौधों से होने की संभावना है। यह व्यापार लगभग 1.2 बिलियन अमेरिकी डॉलर प्रतिवर्ष होने का अनुमान है।

पिछले 15 वर्षों के दौरान वनों की कमी से कई औषधीय पौधों की प्रजातियों की निरंतर कटाई के परिणामस्वरूप प्रजातियों में मात्रात्मक गिरावट आई है। औषधीय पौधों की प्रजातियों में दुर्लभता के कई अन्य संभावित कारण हैं, जैसे–निवास स्थान की विशिष्टता, वितरण की संकीर्ण

सीमा, भूमि उपयोग में अवैज्ञानिक दृष्टि, निवास-स्थान परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन, पशुओं द्वारा चराई, मानव आबादी का विस्फोट आदि किसी भी क्षेत्र में दुर्लभ औषधीय पौधों की प्रजातियों की प्रचुरता को सीमित कर सकते हैं।

औषधीय पौधों की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए, इन पौधों की प्रजातियों की खेती अत्यावश्यक है। वर्तमान मांग को पूरा करने के अतिरिक्त औषधीय खेती से वनों की आनुवंशिक विविधता का संरक्षण भी संभव है। औषधीय खेती से उत्तम प्रजातियों की पहचान, बेहतर गुणवत्ता नियंत्रण और आनुवंशिक सुधार की संभावना बढ़ती है।[9] बड़े पैमाने पर औषधीय खेती के लिए, मोनोकल्चर विधि से बेहतर उत्पादन के लिए पॉलीकल्चर मॉडल को बढ़ावा देना है। अनुसंधान के लिए विकासशील क्षेत्रों में कृषि-प्रौद्योगिकी होनी चाहिए।[10]

औषधीय पौधों के अध्ययन बताते हैं कि कई औषधीय पौधों की प्रजातियों का जंगल के गुप्त स्थान में उगना उनकी प्रकृति है। दुर्लभ और लुप्तप्राय विभिन्न औषधीय पौधों की प्रजातियों की खेती के लिए विभिन्न संगठनों द्वारा प्रयास किए जा रहे हैं। उत्तरी भारत के दुर्लभ और लुप्तप्राय औषधीय पौधों की लगभग 20 प्रजातियों के लिए कृषि-प्रौद्योगिकी विभिन्न संगठनों द्वारा विकसित की गई है। हालांकि, प्रति हेक्टेयर खेती की लागत, कुल वार्षिक उत्पादन और लागत लाभ अनुपात विभिन्न औषधीय पौधों की प्रजातियों के साथ विभिन्न हैं। वर्तमान में, औषधीय पौधों की अधिकांश प्रजातियों की खेती छोटे पैमाने पर संचालित की जा रही है और उत्तरी भारत के विभिन्न राज्यों में कुछ हेक्टेयर भूमि तक ही सीमित है। औषधीय पौधों की खेती के लिए सरकारी संस्थाओं से सहयोग अनिश्चित है। इसके अतिरिक्त, किसान सरकारी संस्थाओं के बारे में अनभिज्ञ हैं और किसानों को अपने उत्पादों को कम मूल्य पर बेचने के लिए मजबूर किया जाता है।

मक्के की फसलों की सदियों पुरानी पारंपरिक खेती को स्थानांतरित करते हुए, जम्मू-कश्मीर के डोडा के विशाल पहाड़ी ढलान में रहने वाले प्रगतिशील किसानों ने सुगंधित लैवेंडर की खेती को सफलतापूर्वक अपनाया है, जो तुलनात्मक रूप में अधिक लाभप्रद है। इसे 'बैंगनी क्रांति' का नाम दिया गया है। अपारंपरिक सुगंधित पौधों की खेती को अपनाकर किसान केंद्र सरकार के अरोमा मिशन के अंतर्गत प्रधानमंत्री के आत्मनिर्भर भारत के सपने को पूरा करने की राह पर हैं। प्राकृतिक उत्पादों से दवा की खोज पर अनुसंधान के प्राथमिक फोकस के साथ छोटे और सीमांत किसानों की आय बढ़ाने के लिए, वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सीएसआईआर) ने सुगंधित फसलों को लोकप्रिय बनाने और एंड-टू-एंड तकनीक और मूल्य-संवर्धन प्रदान करने के लिए अरोमा मिशन की शुरुआत की।

2018 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सीएसआईआर) अरोमा मिशन के अंतर्गत जम्मू संभाग के समशीतोष्ण क्षेत्रों में यूरोपीय पौधे, लैवेंडर को भारतीय एकीकृत चिकित्सा संस्थान द्वारा पेश किया गया और इसे डोडा, किश्तवाड़ और राजौरी जिलों में लोकप्रिय बनाने की कोशिश की गई। उपयुक्त ठंडी जलवायु और अनुकूल परिस्थितियों को देखते हुए, डोडा जिले के भद्रवाह क्षेत्र के 200 छोटे और सीमांत किसानों ने बड़े पैमाने पर पहल की और टपरी, लियोट्रोट, किलर, कुंडला, हिमोट सहित कई गांवों में अपने खेतों में लैवेंडर की

खेती शुरू की। सीएसआईआर अरोमा मिशन के तहत मार्च 2020 तक, जम्मू क्षेत्र में 500 किसानों को 100 एकड़ जमीन के लिए लैवेंडर के आठ लाख पौधों की गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री (QPM) निःशुल्क प्रदान की गई। उन्होंने कहा कि उन्हें तकनीकी सहायता देने के अलावा, भद्रवाह के किसानों को निःशुल्क तेल आसवन की सुविधा प्रदान की गई और सीएसआईआर तथा आईआईआईएम, जम्मू के हस्तक्षेपों से 2018 से 2020 तक 800 लाख लीटर से अधिक लैवेंडर तेल का उत्पादन हुआ है।

सरकारी एजेंसियों के अतिरिक्त, औषधीय पौधों के व्यापार के क्षेत्र में जड़ी-बूटियों के संग्रहकर्ताओं, स्थानीय बिचौलियों, शहरी व्यापारियों, थोक विक्रेताओं, निर्माताओं, निर्यातकों और हर्बल उत्पादकों के हित टकराते हैं।[11] औषधीय पौधों के क्षेत्र में विपणन प्रणाली काफी हद तक अनियमित और असमान है। औषधीय पादप संग्राहक आमतौर पर सीमांत किसान और मजदूर हैं, उन्हें औषधीय पौधों को बेचकर भोजन, स्वास्थ्य और बच्चों की शिक्षा के लिए बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नकद आय प्राप्त होती है। वे कई औषधीय पौधों की प्रजातियों के वास्तविक बाजार मूल्यों के बारे में अनभिज्ञ होते हैं।[12]

औषधीय पौधों के क्षेत्र में निम्न बाधाएं हैं–

1. कई औषधीय पौधों के उत्पादन की धीमी दर
2. लंबी अवधि की खेती,
3. खेती में तकनीक की कमी,
4. कम मात्रा का उत्पादन,
5. अवैज्ञानिक कटाई,
6. उच्च पौष्टिकता उपज देने वाली किस्मों पर शोध का अभाव,
7. अक्षम प्रसंस्करण तकनीक,
8. मांग और आपूर्ति में उतार-चढ़ाव,
9. खराब गुणवत्ता नियंत्रण प्रक्रिया,
10. अच्छे निर्माताओं की कमी,
11. निम्न विपणन बुनियादी ढांचा।

हर्बल उद्योगों को विकसित करने के लिए, जम्मू-कश्मीर में पारंपरिक चिकित्सा, आधुनिक चिकित्सा और आधुनिक विज्ञान के बीच एक त्रिकोण बनाकर पारंपरिक हर्बल दवा और औषधीय पौधों के क्षेत्र को विकसित करने के लिए योजना का निर्माण करना होगा। भारत की राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजनाओं में, औषधीय पौधों के क्षेत्र को भारतीय चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी के अभिन्न अंग के रूप में पहचान मिली है।[13] 1983 में, राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति ने माना कि आयुर्वेद, यूनानी, होम्योपैथी और प्राकृतिक चिकित्सा का पर्याप्त उपयोग नहीं किया गया है। अतः दवा के स्वदेशी और आधुनिक प्रणालियों के सार्थक एकीकरण की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता है।[14] भारत सरकार के योजना आयोग और राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (NMPB) ने औषधीय पौधों के क्षेत्र के प्रचार और वाणिज्यिक पहलुओं पर एक नीति दस्तावेज तैयार किया है। योजना आयोग ने औषधीय पादप क्षेत्र के वांछित उद्देश्य को पूरा करने के लिए अनुसंधान

और विकास के लिए 24 औषधीय पौधों की प्रजातियों को सूचीबद्ध किया है। जैवविविधता अधिनियम 2002 ने औषधीय पौधों के स्थायी उपयोग और जैव-चोरी की संभावनाओं को कम करने के लिए कई नियमों को स्वीकृति दी है।

भारत में, कई सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों ने औषधीय पौधों के क्षेत्र में सुधार पर ध्यान केंद्रित किया है। NMPB के आदेश के अनुसार, परियोजनाओं में दो प्रमुख योजनाओं अर्थात्, एक प्रचार योजना और एक वाणिज्यिक योजना के भीतर वित्तपोषण के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रचार योजना के अंतर्गत प्रमुख क्षेत्र हैं–

1. औषधीय पौधों का सर्वेक्षण और सूची तैयार करना
2. चयनित औषधीय पौधों की खेती का विज्ञापन
3. उत्पादन का विज्ञापन
4. शिक्षा के माध्यम से औषधीय पौधों के ज्ञान का प्रसार
5. वैश्विक और घरेलू बाजार प्रणाली का प्रचार
6. अनुसंधान, विकास और मानव शक्ति को बलवती बनाना।

वाणिज्यिक योजना के अंतर्गत प्रमुख क्षेत्र हैं–

1. औषधीय पौधों का थोक उत्पादन और गुणवत्ता वाले बीज की आपूर्ति सुनिश्चित करना,
2. चयनित औषधीय पौधों की खेती के क्षेत्रों का विस्तार,
3. औषधीय पौधों की कटाई, प्रसंस्करण और विपणन में मूल्य वृद्धि और
4. नवीन विपणन तंत्र विकसित करना।

दो प्रमुख विषयों के अलावा, NMPB की भूमिका औषधीय पादप क्षेत्र को विकसित करने और मजबूत करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों, विभागों, संगठनों, राज्य और केंद्रशासित प्रदेश सरकारों के साथ समन्वय करना है। NMPB की प्रमुख भूमिकाओं में से एक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठनों के साथ समान उद्देश्य और लक्ष्यों के लिए संपर्क बनाना है। औषधीय पौधों के क्षेत्र के सुचारु संचालन के लिए NMPB द्वारा कुल 35 राज्य औषधीय पौधे बोर्ड भी बनाए गए हैं। व्यावसायिक रूप से महत्त्वपूर्ण औषधीय पौधों की बड़े पैमाने पर खेती के लिए लगभग 35,000 हेक्टेयर भूमि को NMPB की देखरेख में किया जा रहा है। NMPB की एक योजना एक संविदात्मक खेती है जिसमें कोई भी समूह, संस्था या व्यक्ति, जो औषधीय पौधों के क्षेत्र में कम-से-कम 3 वर्ष का अनुभव रखता है, वह कुल परियोजना लागत का कम-से-कम 30 प्रतिशत वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए पात्र होगा। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् एक पारंपरिक ज्ञान डिजिटल लाइब्रेरी का निर्माण कर रही है, जिसमें 35,000 हर्बल चिकित्सा पद्धति का उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में किया जाएगा।

नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट (NABARD) ने राज्य स्तर पर वित्तीय पैमाने के साथ 50 औषधीय और सुगंधित फसलों के लिए अनुदान आश्रित मॉडल प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त, नाबार्ड 100 प्रतिशत पुनर्वित्त प्रदान करके ग्रामीण उद्यमी विकास कार्यक्रमों के माध्यम से भावी उद्यमियों की क्षमता निर्माण में सहायता करता है। नाबार्ड और NMPB विभिन्न राज्य औषधीय

पौधों के बोर्डों के साथ घनिष्ठ संबंध और संपर्क के माध्यम से औषधीय पौधों के क्षेत्र को स्थापित करने और बढ़ावा देने के लिए विभिन्न संगठनों द्वारा विभिन्न स्तरों पर प्रयास किए जा रहे हैं।

आयुर्वेद भारत की पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली है और आज भी लोगों द्वारा सम्मानित है। इस चिकित्सा प्रणाली ने कई जटिल बीमारियों का इलाज करने में प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर सफलतापूर्वक एक आदर्श स्थापित किया है। पर्यावरण के अनुकूल चिकित्सा प्रणाली जम्मू-कश्मीर में अस्तित्व में है। विभिन्न उपचारों के लिए उपयोग किए जाने वाले पौधे आसानी से उपलब्ध हैं तथा परिवहन के लिए आसान हैं। हर्बल दवाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ सिंथेटिक दवाओं की तुलना में न्यूनतम दुष्प्रभाव और अपेक्षाकृत कम लागत है। औषधीय पौधों की व्यापारिक सफलता मुख्य रूप से किसानों के साथ-साथ इसके अन्य हितधारकों, सहायक सरकारी नीतियों, सुनिश्चित बाजारों की उपलब्धता, लाभदायक मूल्य स्तरों तथा उपयुक्त कृषि तकनीकों का आकलन करने के लिए किसानों की जागरूकता और रुचि पर निर्भर करती है। औषधीय पौधों की कृषि से ग्रामीण रोजगार बढ़ाने में मदद मिल सकती है, दुनिया भर में वाणिज्य को बढ़ावा मिल सकता है और लाखों लोगों के स्वास्थ्य लाभ में योगदान मिल सकता है।

भारत के हिमालयी राज्यों में औषधीय पौधों की विविधता और वितरण प्रबंधन को समझने के लिए अध्ययन किया है, जैसा कि CAMP (संरक्षण, मूल्यांकन, प्रबंधन और प्राथमिकता) ने औषधीय पौधों की विविधता, वितरण और उपयोग पैटर्न का अध्ययन करना, दस्तावेज, लोककथाओं का उपयोग करना और उपयुक्त संरक्षण और प्रबंधन रणनीतियों का सुझाव देना अनिवार्य है। विभिन्न वैज्ञानिकों, सरकारी संगठनों, गैर-सरकारी संगठनों और किसानों को शामिल करते हुए एक कार्ययोजना नियम को लागू करना आवश्यक है।

जम्मू-कश्मीर में विभिन्न औषधीय पौधों की विविधता, भौगोलिक वितरण तथा लोक औषधीय पौधों की जानकारी अल्पमात्रा में उपलब्ध है। राज्य के औषधीय पौधों की खेती करने के लिए हर्बल गार्डन, नर्सरी और किसानों को प्रोत्साहित करने वाले संरक्षण के विकास की भी तत्काल आवश्यकता है। हालांकि इन औषधीय पौधों के संरक्षण के लिए कई सरकारी और गैर-सरकारी संगठन अपना प्रयास कर रहे हैं, फिर भी सरकारी संरक्षण प्रौद्योगिकी का मानकीकरण होना बाकी है। सरकारी संरक्षण प्रौद्योगिकियों से न केवल खेतों में बड़े पैमाने पर खेती को प्रोत्साहित करने में मदद मिलेगी, वहीं वनों पर दबाव को कम करने में भी मदद होगी। औषधीय पौधे मानव स्वास्थ्य में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। कश्मीरी लोगों द्वारा औषधीय पौधों की कृषि से स्वास्थ्य तथा विकास के नए आयामों व प्रतिमानों की निर्मिति होगी।

संदर्भ ग्रंथ–

1. Weber, A., (1961). 'History of Sanskrit Literature', P-41, Boston Houghton : Osgood & Company.
2. Aryan, J. R. and R. D. Aryan, (2013). 'Agro-Botany of Saffron', P-45, Aryan Publication.
3. Bailey, L. H. (1944). 'Manual of Cultivated Plants', P-78, New York : Macmillen Coupan.
4. Chopra, R. N., Nayar, S. L., and Chopra, I. C., (1956). 'Glossary of Indian Medicinal Plants'.
5. Hooker, J. D., (1894). 'The flora of British India', 6, London, P-276.
6. Jalate, A. K., (1962). 'Saffron Cultivation in Kashmir', Prajna, P-205-211, Varanasi : Banaras Hindu University.

7. Kurup, P. N. V. (1977). 'Handbook of Medicinal Plants', P-79, New Delhi.
8. Lippincott, J. B. (1947). The United States Dispensatory, J. B. Lippincott Co., Philadelphia, P-76
9. Mayar, F. and Cook, A. H., (1943). 'The Chemistry of Natural Colouring Matters', P-89, New York: Reinhold Publishing Corporation.
10. Madan, C. L., Kapur, B. M., and Gupta, U. S., (1966). 'Saffron Economic Botany', 277-384.
11. Mukherjee, B: Ancient and Indian Medicine and Modern Therapeutical Res. Sciences and Culture, Vol. 3; 1, (1937). Wealth of India, Raw Material 2, New Delhi, P-370-372.
12. Srivastava, T. N. and S. C. Sankhayadhar (1974). 'Cultivation of *Crocus Sativus* Linn. (Kesar) in Jammu', Journ. Res. Ind. Med. 9, 1 : 67-69.
13. Wallis, T. E., (1946). 'Text book of Pharmacognosy' (J. and A. Churchil Ltd., London).
14. Watt, G. (1889-1899). 'A Dictionary of Economic Products of India', (Govt. Press, Calcutta).

□

कश्मीर पर मेहमान नजर

ह्वेनसांग

कियाशिमिलो[1] (अर्थात् कश्मीर) राज्य का क्षेत्रफल लगभग 7000 वर्ग ली[2] है। इसके चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ हैं। पहाड़ों के बीच में बहुत संकरे दर्रे हैं। कोई भी पड़ोसी राज्य कभी भी इस पर आक्रमण करके विजय पाने में सफल नहीं हो पाया है। यहां की भूमि उपजाऊ है; और यहां फल-फूल भी बहुत होते हैं। यहां केसर और कुछ अन्य औषधीय पौधे भी भरपूर उगते हैं।

यहां की जलवायु अत्यंत शीतल है। बर्फ अधिक पड़ती है, परंतु वायु बहुत वेग से नहीं चलती। ठंड के कारण यहां के लोग कपड़े का अस्तर लगाकर चमड़े के वस्त्र पहनते हैं। एक नाग इस प्रदेश की रक्षा करता है, इसलिए पड़ोसी देशों के लोग उसके प्रति श्रद्धा रखते हैं। यहां के निवासी देखने में सुंदर और सुशिक्षित हैं, लेकिन उनका मन कपट से भरा हुआ है। बौद्धों के अलावा यहां बड़ी संख्या में अन्य धर्मावलंबी भी बसे हुए हैं। यहां 100 संघाराम और 5000 बौद्ध भिक्षु हैं। यहां राजा अशोक के बनवाए हुए चार स्तूप भी हैं। प्रत्येक स्तूप में भगवान बुद्ध का देहावशेष विद्यमान है।

कश्मीर देश के इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन काल में यहां नागों की झील थी। पुरातन काल में एक बार भगवान बुद्ध उद्यान प्रदेश[3] के दुष्ट नाग को परास्त करके मध्य भारत की ओर लौट रहे थे। आकाशमार्ग से गमन करते हुए वे इस प्रदेश के ऊपर से गुजरे। उस समय उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए अपने शिष्य आनंद से कहा था—''मेरे निर्वाण के बाद मध्यांतिक अर्हत इस भूमि में एक राज्य स्थापित करेगा और अपने ही प्रयत्न से यहां के लोगों में सभ्यता का प्रचार करके बौद्ध धर्म फैलाएगा।'' बुद्ध के निर्वाण के पांचवें वर्ष आनंद के शिष्य मध्यांतिक अर्हत ने सभी छह आध्यात्मिक शक्तियों (षडाभिजन) और अष्ट विमोक्षाओं को प्राप्त करके बुद्ध की भविष्यवाणी का पता लगाया। इससे उसका मन प्रसन्न हो गया; और उसने इस देश का सुधार करना चाहा।

एक दिन वह शांति के साथ एक पहाड़ की चट्टान पर बैठकर अपना आध्यात्मिक बल प्रकट करने लगा। अर्हत के प्रभाव को देखकर नाग विस्मित हो गया और भक्ति के साथ उसने पूछा कि ''आपकी क्या कामना है?'' अर्हत ने कहा कि ''मैं झील के मध्य में बैठने भर की जगह चाहता हूं।'' इस पर नागराज ने थोड़ा-सा पानी हटाकर उसको जगह दे दी। अर्हत ने अपने आध्यात्मिक बल से अपने शरीर को इतना बढ़ाया कि नागराज को झील का संपूर्ण जल हटाना पड़ा। वह झील सूख गई। अब नागराज ने अपने रहने के लिए स्थान देने की प्रार्थना की। तब अर्हत ने कहा कि ''यहां से पश्चिमोत्तर दिशा में लगभग 100 ली के घेरेवाला एक तालाब है। तुम संततियों सहित उसमें

रह सकते हो।'' फिर नाग ने कहा कि ''मेरी भूमि और झील का स्वरूप बदल गया है। अतः चाहता हूं कि आप ऐसा प्रबंध कर दें कि मैं आपका पूजन कर सकूं।'' मध्यांतिक ने यह कहा कि ''थोड़े ही दिनों में मैं अनुपाधिशेष निर्वाण को प्राप्त करने वाला हूं, इसलिए मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर पाऊंगा।'' तब नाग ने फिर प्रार्थना की कि ''जब तक इस धरती पर बौद्ध धर्म विद्यमान है, तब तक 500 अर्हत मेरी भेंट-पूजा स्वीकार करते रहें; और बौद्ध धर्म के प्रभाव के समाप्त हो जाने के बाद मैं अपने देश लौटकर पहले की तरह रह सकूं।'' आखिरकार मध्यांतिक ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।

फिर अर्हत ने इस भूमि पर 500 संघाराम स्थापित किए और अन्य प्रदेशों से बहुत-से निर्धन व्यक्ति (दास) को क्रय करके यहां के संन्यासियों की सेवा के लिए तैनात कर दिए। मध्यांतिक का स्वर्गवास होने पर वही क्रीत दास इस भूमि के स्वामी हो गए। परंतु अन्य प्रदेशों के लोग इन दासों से घृणा करते थे, इनके 'समाज'[4] में कभी नहीं जाते थे और इनको 'क्रितीय'[5] के नाम से संबोधित करते थे। इन दिनों यहां बहुत-से सोते फूट निकले हैं (जो धर्म के धस का द्योतक है)।

भगवान बुद्ध के निर्वाण के सौवें वर्ष[6] में मगधराज अशोक का प्रभाव पूरे संसार मे फैल रहा था। दूर-दूर तक के लोग उसका सम्मान करते थे। यह राजा रत्नत्रयी का भक्त होने के साथ ही प्राणिमात्र से दया और प्रेम का व्यवहार रखने में भी अनुपम था। उस समय लगभग 500 अर्हत और 500 अन्य साधु थे। राजा उनका सम्मान करते थे। दूसरे प्रकार के साधुओं में महादेव नामक एक प्रतिभाशाली विद्वान था। उसने अपनी वानप्रस्थ अवस्था में बौद्ध धर्म के सर्वथा विपरीत सिद्धांतों की एक पुस्तक लिखकर प्रसिद्धि पाई थी। जो कोई उन सिद्धांतों को सुनता था, वह उनका शिष्य हो जाता था।

राजा अशोक दुष्टों को दंड देना तो जानता था, परंतु महात्मा और सर्वसाधारण में क्या भेद है, इस बात से एकदम अपरिचित था। इसलिए वह भी महादेव के बहकावे में आ गया और उसने सभी बौद्ध संन्यासियों को सभा के बहाने गंगा के किनारे बुलाकर नदी में डुबाना चाहा। इस समय अर्हत अपने प्राणों को संकट में देखकर आध्यात्मिक बल से आकाशगामी होकर चले गए; और कश्मीर देश में आकर पहाड़ों और घाटियों में छिपे रहे। बाद में राजा अशोक को पछतावा हुआ और अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगते हुए उसने चाहा कि वे सब अपने-अपने स्थानों को लौट चले। परंतु अर्हत नहीं लौटे। तब अशोक ने उन लोगों के लिए पांच सौ संघाराम बनवाकर पूरा (कश्मीर) प्रदेश साधुओं को दान कर दिया।

भगवान बुद्ध के निर्वाण के चार सौ वर्ष बाद[7] गंधार नरेश कनिष्क कश्मीर राज्य का स्वामी हुआ। उसकी प्रभुता दूर-दूर तक फैल गई थी और कई देश उसके अधीन हो गए थे। अपने धार्मिक कार्यों में वह बौद्ध ग्रंथों का आश्रय लेता था। प्रतिदिन एक बौद्ध संन्यासी उसके महल में जाकर धर्मोपदेश दिया करता था, परंतु बौद्ध-धर्म के जो अनेक भेद हो गए थे, उसके कारण उसका विश्वास पूर्णतः जमता नहीं था। इस भेद को दूर करने का कोई उपाय उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उस समय महात्मा पार्श्व ने उसको समझाया कि ''भगवान तथागत को संसार त्यागे बहुत समय हो गया है, तब से लेकर अब तक तमाम विद्वान उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने अपने-अपने ज्ञानानुसार पुस्तकें लिखकर कई संप्रदाय स्थापित कर दिए हैं। यही कारण है कि बौद्ध-धर्म बंट गया

है।'' राजा यह सुनकर बहुत दुःखी हुआ। उसने पार्श्व से कहा कि ''भगवान बुद्ध के समय से लेकर आज तक प्रत्येक जन्म में जिस ज्ञान से मेरा संबंध रहा है और जिसके प्रभाव से मैं राजा हुआ हूं, उसके आधार पर मैं ऐसे प्रयत्न करूंगा जिससे बौद्ध धर्म संसार में बना रहे। मैं ऐसे प्रबंध करूंगा जिससे त्रिपिटकों में वर्णित शिक्षा प्रत्येक संप्रदाय में प्रचलित रहे।'' महात्मा पार्श्व ने कहा कि ''आपने अपने पूर्व-पुण्य से महाराज का पद पाया है। मेरी भी इच्छा है कि बौद्ध धर्म में आपका विश्वास अटल रहे।''

इसके बाद राजा ने विद्वानों को आमंत्रित किया। चारों दिशाओं से हजारों मील चलकर बड़े-बड़े विद्वान महात्मा वहां एकत्र हुए। सात दिन तक उन लोगों का सत्कार करके राजा ने इच्छा प्रकट की कि वास्तविक धर्म का निरूपण किया जाए। परंतु इतनी बड़ी भीड़ में शास्त्रार्थ होने से अव्यवस्था फैलने की आशंका थी। इस कारण उसने आज्ञा दी कि ''जो अर्हत हैं, वे ठहरें और जो अभी सांसारिक क्लेश में फंसे हैं, वे चले जाएं।'' फिर भी भीड़ कम न हुई। तब उसने दूसरी आज्ञा प्रसारित की कि ''जो लोग पूर्ण विद्वान हो चुके हैं, वही लोग ठहरें और जो अभी विद्याभ्यास में लगे हुए हैं, वे लोग चले जाएं।'' फिर भी बहुत भीड़ थी। तब राजा ने यह आज्ञा दी कि ''जो लोग 'त्रिविद्या' और 'षडाभिजन' को प्राप्त कर चुके हैं, वही लोग ठहरें और शेष चले जाएं।'' अब भी जितने लोग रह गए थे, उनकी संख्या बहुत थी। तब राजा ने यह कहा कि ''जो त्रिपिटक[8] और पंच महाविद्या[9] में पूर्ण निपुण हैं, उनको छोड़कर शेष लोग लौट जाएं।'' इस घोषणा के बाद 499 विद्वान रह गए।

उस समय राजा की इच्छा सब लोगों को अपने देश में ले चलने की हुई, क्योंकि यहां की सर्दी-गर्मी से वह बहुत परेशान था। उसकी यह भी इच्छा थी कि यदि संभव हो तो सभी लोग राजगृह चलें, जहां पर काश्यप (प्रथम) ने धर्म महासभा की थी। महात्मा पार्श्व तथा अन्य महात्माओं ने परस्पर विचार करके यह कहा कि ''हम वहां नहीं जा सकते, क्योंकि वहां बहुत से भिन्न-धर्मावलंबी विद्वान हैं, जो अनेक शास्त्रों का मनन करते हैं। उन लोगों से सामना होने पर व्यर्थ का विवाद होगा। जब तक निश्चिंतता के साथ किसी विषय पर विचार न किया जाए, उपयोगी ग्रंथ नहीं बन सकता है। सब विद्वानों का मन इस कश्मीर प्रदेश में रमा हुआ है। यह भूमि चारों ओर से पहाड़ों से घिरी है तथा यक्षों द्वारा सुरक्षित भी है। यहां खाने-पीने की भी कोई असुविधा नहीं है। यही वह स्थान है, जहां पर विद्वान निवास करते हैं; और ऋषि-महात्मा विचरण करते हैं।'' परंतु अंत में सब लोगों को राजा की इच्छा के अनुसार ही कार्य करना पड़ा। राजा सभी अर्हतों को साथ लेकर उस स्थान पर गया, जहां उसने एक मंदिर बनवाया था ताकि सब लोग एकत्र होकर विभाषा शास्त्र की रचना कर सकें।

महात्मा वसुमित्र द्वार के बाहर कपड़े पहन रहे थे। अर्हतों ने उससे कहा कि ''तुम्हारे पातक अभी दूर नहीं हुए हैं, इस कारण तुम्हारा शास्त्रार्थ मे योगदान करना अनुचित है।'' इस पर वसुमित्र ने कहा कि ''बुद्धिमान लोग भगवान बुद्ध के स्वरूप को जितना आदर देते हैं, उतना ही महत्त्व उनके धार्मिक सिद्धांतों को देते हैं, क्योंकि उनके सिद्धांत पूरे संसार के लिए ज्ञानप्रद हैं। इस कारण उन सत्य सिद्धांतों के संग्रह का आपका विचार उत्तम है। मैं पूर्णतया नहीं, तब भी शास्त्रीय शब्दों के अर्थ जानता हूं। मैंने त्रिपिटक के गूढ़ सूत्रों का और पंच महाविद्या के सूक्ष्म भावों का परिश्रम से अध्ययन किया है। जो कुछ गुप्त भाव इनमें भरा है, वह सब मैंने अपनी बुद्धि से प्राप्त कर लिया है।''

अर्हतों ने कहा कि ''यदि यह सत्य है तो तुमको कुछ समय तक ठहरकर जो कुछ तुमने पढ़ा है, उसका फल प्राप्त करना चाहिए। अभी तुम्हारा सम्मिलित होना उचित नहीं है।''

वसुमित्र ने कहा कि ''मैं पूर्वपठित विद्या के फल को श्रेष्ठ मानता हूं। मेरा मन केवल बौद्ध धर्म के फल की चाह रखता है, इसलिए तुच्छ वस्तुओं की ओर आकर्षित नहीं होता। मैं अपनी इस गेंद को आकाश में उछालता हूं, जितनी देर में यह लौटकर भूमि तक आएगी, उतनी देर में मुझको अपनी पूर्वपठित विद्या का सब फल प्राप्त हो जाएगा।''

इस पर अर्हतों ने यह कहा कि ''वसुमित्र, तुम बहुत घमंडी हो। पूर्वपठित विद्या का फल प्राप्त करना सब बौद्धों को काम्य है, परंतु तुम उसकी उपेक्षा कर रहे हो। तुमको यह फल प्राप्त करके दिखाना चाहिए ताकि सबका संदेह दूर हो सके।'' तब वसुमित्र ने अपनी गेंद को ऊपर फेंका जिसको देवताओं ने ऊपर ही रोककर उससे कहा कि ''बौद्ध धर्म का फल प्राप्त करने के कारण तुम स्वर्ग में मैत्रेय भगवान के स्थानापन्न होगे, तीनों लोकों में तुम्हारी प्रतिष्ठा होगी और चारों प्रकार के प्राणी तुम्हारा भय मानेंगे। फिर तुम इस तुच्छ फल को प्राप्त करने की इच्छा क्यों करते हो?''

यह देख-सुनकर अर्हतों ने वसुमित्र से क्षमा मांगी और उसी को सभापति बनाया। शास्त्रार्थ में जो कुछ कठिनाइयां आईं, उनका समाधान वसुमित्र ने ही किया। महात्माओं ने पहले 'सुत्तपिटक' को सुस्पष्ट करने के लिए दस हजार श्लोकों का उपदेश शास्त्र बनाया। फिर 'विनयपिटक' को सुस्पष्ट करने के लिए पांच हजार श्लोकों में 'विनयविभाषा शास्त्र' लिखा। फिर 'अभिधम्मपिटक' को सुस्पष्ट करने के लिए दस हजार श्लोकों में 'अभिधर्मविभाषा शास्त्र' की रचना की। इसप्रकार त्रिपिटकों के भाष्य-स्वरूप छह लाख साठ हजार शब्दों में तीस हजार श्लोक संकलित किए गए। छोटे-बड़े सभी प्रश्नों के युक्तियुक्त समाधान प्रस्तुत करनेवाला ऐसा उत्तम कार्य इससे पहले कभी नहीं हुआ था। अतः संसार भर में इस कार्य की प्रशंसा हुई।

राजा कनिष्क ने इन सब श्लोकों को ताम्रपत्रों पर लिखवाकर एक पत्थर के संदूक में बंद करके उस पर मुहर लगा दी, और फिर एक स्तूप बनवाकर उसके बीच में उस संदूक को रखवा दिया। यक्षों को उनकी रक्षा का भार सौंपा गया, ताकि कोई विधर्मी उन शास्त्रों को चुरा न ले; और इस देश के निवासी उसका लाभ उठाते रहें।

इस पुनीत कार्य को करके राजा सेना सहित अपनी राजधानी (पुरुषपुर यानी वर्तमान पेशावर) लौट गया। इस देश के पश्चिमी द्वार (दर्रे) से निकलने के बाद राजा ने पूर्व की ओर मुख करके (कश्मीर की पुण्य-भूमि को) दंडवत् प्रणाम किया और इस प्रदेश को संन्यासियों को दान कर दिया।

लेकिन कनिष्क के मरने के बाद क्रीत्य जाति ने फिर अपना अधिकार जमा लिया और पुरोहितों को खदेड़कर बौद्ध धर्म को तहस-नहस कर दिया।

तुषार प्रदेश के हिमतल स्थान का राजा शाक्यवंशीय था। बुद्ध के निर्वाण के छह सौ वर्ष बाद वह अपने पूर्वजों के राज्य का स्वामी हुआ था। उसका चित्त बौद्ध सिद्धांतों के प्रेम में भली-भांति रमा हुआ था। जब उसको यह पता चला कि क्रीत्य लोगों ने कश्मीर प्रदेश में बौद्ध धर्म का उन्मूलन कर दिया है, तब उसने अपने तीन हजार वीर सामंतों को एकत्र किया और सबने व्यापारियों का भेष बनाकर उस देश की ओर प्रस्थान किया।

वे लोग प्रकट रूप से व्यापार की बहुमूल्य वस्तुएं और गुप्त रूप से लड़ाई के अस्त्र-शस्त्र लिये हुए कश्मीर पहुंचे। वहां के राजा ने सत्कारपूर्वक इन लोगों को अपना अतिथि बनाया।

हिमतलराज ने अपने 500 वीर सैनिकों को आज्ञा दी कि ''राजा को भेंट करने के लिए उत्तम वस्तुएं और हाथों में तलवार लेकर चलो।''

राजा के निकट पहुंचते ही हिमतलराज सिंहासन की ओर झपटा। यह देखकर क्रीत्यराज घबरा गया। वह कुछ समझ पाता, उसके पहले ही उसका सिर काट डाला गया। फिर हिमतलराज ने दरबारियों से कहा कि ''मैं तुषार प्रदेश के हिमतल स्थान का राजा हूं। एक नीच जाति के राजा को दंड देने के लिए मुझको यहां आना पड़ा। अपराधी को दंड मिल गया है, अन्य लोग भयभीत न हों।'' मंत्रियों को दूसरे प्रदेशों में भेजकर उसने बौद्ध संन्यासियों को आमंत्रित किया। फिर एक संघाराम बनवाकर उन लोगों को फिर से उसी प्रकार बसाया, जिस प्रकार वह पहले रहा करते थे। इसके बाद वह पश्चिमी द्वार (दर्रे) से निकलकर और पूर्वाभिमुख साष्टांग दंडवत् करके अपने देश लौट गया। उस प्रदेश को उसने पुरोहितों को दान में दे दिया।

चूंकि क्रीत्य लोगों को कई बार पुरोहितों से दबना पड़ा और उनका सर्वनाश हुआ; इस कारण उनके हृदय में शत्रुता बढ़ती ही गई। वे लोग बौद्ध धर्म से घृणा करने लगे। कुछ वर्षों के बाद वे लोग फिर प्रभावशाली होकर यहां के अधिपति हो गए। यही कारण है कि इस समय यहां बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार नहीं है; और अन्य धर्मावलंबियों के मंदिरों की वृद्धि हुई है। नए नगर के पूर्व-दक्षिण और प्राचीन नगर के उत्तर में एक संघाराम है, जिसमें तीन सौ संन्यासी निवास करते हैं।[10] स्तूप के भीतर भगवान बुद्ध का एक दांत रखा हुआ है। इसका रंग पीलापन लिये हुए है। धार्मिक अवसरों पर इसके भीतर से उज्ज्वल प्रकाश निकलने लगता है।

प्राचीन समय में क्रीत्य लोगों ने बौद्ध धर्म का नाश करके जब उन लोगों को निकाल दिया था और संन्यासी लोग जहां-तहां भाग गए थे तब एक श्रमण इधर-उधर भारतवर्ष भर में यात्रा करने लगा और अपने अटल विश्वास को प्रदर्शित करने के लिए बौद्ध तीर्थों में जा-जाकर बुद्धावशेषों के दर्शन करता रहा। कुछ दिनों के बाद उसको मालूम हुआ कि उसके देश में अशांति हो गई है। अतः वह अपने घर की ओर चला। मार्ग में उसको हाथियों का एक झुंड मिला, जो जंगल में चिंघाड़ते हुए दौड़ रहे थे। श्रमण उन हाथियों को देखकर एक वृक्ष पर चढ़ गया। परंतु हाथियों के झुंड ने पहले एक तालाब के पास पहुंचकर स्नान किया। भली-भांति अपने शरीर को शुद्ध करके हाथियों ने उस वृक्ष को चारों ओर से घेर लिया और जड़ों को नोचकर श्रमण समेत उस वृक्ष को गिरा दिया। इसके बाद श्रमण को अपनी पीठ पर चढ़ाकर वे लोग जंगल के बीच में उस स्थान पर गए जहां एक हाथी घाव से पीड़ित होकर भूमि पर पड़ा हुआ था। उसने साधु का हाथ पकड़कर अपने शरीर का वह भाग दिखलाया जहां बांस का एक टुकड़ा धंसा हुआ था। श्रमण ने उस खपच्चे को खींचकर कुछ दवा लगाई और फिर अपने वस्त्र को फाड़कर घाव पर बांध दिया। तभी दूसरे हाथी ने सोने का एक डिब्बा लाकर रोगी हाथी के सामने रख दिया। रोगी हाथी ने उस डिब्बे को श्रमण को भेंट कर दिया।

श्रमण को उसके भीतर भगवान बुद्ध का एक दांत मिला। इसके बाद सभी हाथी उसको घेरकर बैठ गए। इसलिए श्रमण को उस दिन उसी स्थान पर रहना पड़ा। दूसरे दिन, धार्मिक दिवस होने के कारण प्रत्येक हाथी ने उसको उत्तम फल भेंट किए। भोजन करने के बाद हाथियों ने संन्यासी को अपनी पीठ पर बैठाकर जंगल के बाहर पहुंचा दिया; और फिर सभी हाथी जंगल में लौट गए।

श्रमण अपने देश की पश्चिमी सीमा तक पहुंचकर एक बड़ी नदी को पार कर रहा था, उसी समय नाव डूबने लगी। सभी को लगा कि इस श्रमण के पास अवश्य ही कोई बुद्धावशेष है जिसको पाने के लिए नाग-गण लालायित हो गए हैं। नाव के स्वामी द्वारा उसकी तलाशी लेने पर बुद्ध का दांत मिला। श्रमण ने उस समय दांत को ऊपर उठाकर और सिर झुकाकर नागों को बुलाया और यह कहकर वह दांत उनको दे दिया कि "मैं यह तुम्हें सौंपता हूं, इसको सुरक्षित रखना। कुछ दिनों बाद आकर मैं तुमसे वापस ले लूंगा।" लेकिन इस घटना से श्रमण को इतना क्षोभ हुआ कि वह नदी के पार नहीं गया बल्कि इसी पार लौट आया; और नदी की ओर देखकर गहरी सांसें लेता हुआ यह कहने लगा कि "मैं क्या उपाय करूं जिससे ये दुःखदायक नाग परास्त हों?"

इसके बाद वह भारतवर्ष लौटकर नागों को नियंत्रित करनेवाली विद्या का अध्ययन करने लगा। तीन वर्ष के बाद वह अपने देश लौटा। नदी के किनारे पहुंचकर उसने एक वेदी बनाकर यज्ञ करना प्रारंभ किया। नाग लोग विवश होकर बुद्ध दंत को डिब्बे सहित ले आए। श्रमण उसको लेकर संघाराम में आया और पूजन करने लगा।[11]

संघाराम के दक्षिण की ओर 14-15 ली की दूरी पर एक छोटा संघाराम है, जिसमें अवलोकितेश्वर बोधिसत्त्व की एक खड़ी मूर्ति है। यदि कोई इस बात का संकल्प करे कि चाहे भूख-प्यास से हमारी मृत्यु ही क्यों न हो जाए, हम मूर्ति के दर्शन के बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे, तब उसको उस मूर्ति से एक मनोहर स्वरूप निकलता दिखाई पड़ता है।

इस छोटे संघाराम के दक्षिण-पूर्व लगभग 30 ली चलकर हम एक बड़े पर्वत पर आए, जहां एक पुराना संघाराम है। यह देखने में सुंदर है और इसकी बनावट सुदृढ़ है। परंतु आजकल यह उजाड़ हो रहा है। केवल एक कोना शेष है जिसमें दो खंड का एक बुर्ज बना है। इसमें महायान संप्रदाय के लगभग 30 संन्यासी निवास करते हैं। इस स्थान पर प्राचीन समय में संगभद्र शास्त्रकार ने 'न्यायानुसार शास्त्र' की रचना की थी। संघाराम के दोनों ओर स्तूप हुए बने हैं, जिनमें अर्हतों के शरीर समाधिस्थ हैं। इनकी नित्य पूजा होती है। इन पहाड़ों पर समय-समय पर अद्‌भुत लीलाएं हुआ करती हैं। कभी पत्थर पर आर-पार दरारें पड़ जाती हैं, कभी पहाड़ की चोटी पर घोड़े का चित्र बना मिलता है। यह सब बातें अर्हतों और श्रमणों के कृत्य प्रतीत होते हैं, जो समूहों में इस स्थान पर आते हैं और अपनी उंगलियों से इस तरह के चित्र बनाते हैं।

बुद्ध दांतवाले संघाराम के पूर्व 10 ली दूर पहाड़ के उत्तरी भाग में एक चट्टान पर एक छोटा-सा संघाराम बना हुआ है। प्राचीन विद्वान स्कंधिल शास्त्री ने इस स्थान पर 'चगस्सी फान पीश आशा' (विभाषा प्रकरण पाकशास्त्र) नामक ग्रंथ की रचना की थी। इस संघाराम में पत्थर का लगभग 50 फीट ऊंचा एक स्तूप बना हुआ है, जिसमें एक अर्हत का शरीर है। प्राचीन समय में लंबे-चौड़े शरीरवाला एक अर्हत था। लोग उसकी हंसी उड़ाया करते थे कि यह भोजन करना खूब जानता है, परंतु सत्यासत्य धर्म क्या है, यह नहीं जानता। वह अर्हत जब निर्वाण के निकट पहुंचा तब लोगों को पास बुलाकर कहने लगा कि बहुत शीघ्र मैं अनुपाधिशेष अवस्था को प्राप्त करूंगा। मेरी इच्छा है कि मैं सब लोगों को बता दूं कि किस प्रकार मैंने परमोत्तम धर्म ज्ञान को पाया है। लोग यह सुन कर हंसने लगे। वहां भीड़ भी जमा हो गई। अर्हत ने उस समय उन लोगों से यह कहा कि मैं तुम लोगों की भलाई के लिए अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत और उसका कारण बतलाता हूं—

''अपने पूर्व जन्म में मैंने पापों के कारण हाथी का तन पाया था और पूर्वी भारत के एक राजा के फीलखाने में रहा करता था। उन्हीं दिनों एक श्रमण, भगवान बुद्ध के सिद्धांतों की खोज में भारतवर्ष में भ्रमण कर रहा था। राजा ने मुझे उस श्रमण को दान में दे दिया। मैं बौद्ध धर्मग्रंथों को पीठ पर लादे इस स्थान पर आया और कुछ दिनों के बाद ही मर गया। उन पुनीत ग्रंथों को पीठ पर लादने के प्रभाव से मेरा जन्म मनुष्य योनि में हुआ। कुछ दिनों के बाद पुनः मृत्यु होने पर अपने पूर्व-पुण्य के प्रताप से मैं अगले जन्म में संन्यासी हो गया और सांसारिक बंधनों से मुक्त होने के प्रयत्न करने लगा। मुझे सभी छह परम शक्तियां प्राप्त हो गईं और मैंने तीनों लोकों के सुख-साधनों का परित्याग कर दिया। परंतु भोजन के समय मेरी पुरानी आदत बनी रही। वैसे, मैं अपनी क्षुधा को घटाने का प्रयत्न करता रहा। इस समय मेरे शरीर के पोषण के निमित्त जितने भोजन की आवश्यकता है, उसका तृतीयांश ही भोजन करता हूं।'' यद्यपि उसने यह सब वर्णन किया, परंतु लोग उसकी हंसी उड़ाते रहे। थोड़ी देर के बाद वह समाधिस्थ होकर आकाशगामी हो गया और उसके शरीर से अग्नि और धुआं निकलने लगा। इस तरह वह निर्वाण को प्राप्त हो गया और उसकी हड्डियां भूमि पर गिर पड़ीं, जिनको बटोरकर लोगों ने स्तूप बना दिया।

राजधानी से पश्चिमोत्तर 200 ली चलकर मैलिन संघाराम पहुंचा। इसी स्थान पर पूर्ण शास्त्री ने विभाषाशास्त्र की टीका रची थी। नगर के पश्चिम में एक नदी बहती थी जिसके उत्तरी किनारे की ओर पहाड़ की दक्षिणी ढाल पर 'महासांघिक' संप्रदाय का एक संघाराम बना हुआ था। इसमें लगभग 100 बौद्ध भिक्षु रहते थे। इस स्थान पर बोधिल शास्त्री ने 'तत्त्वसंचय शास्त्र' की रचना की थी।

प्रस्तुति–कुमार निर्मलेंदु

संदर्भ ग्रंथ–

1. ह्वेनसांग ने कश्मीर को चीनी भाषा में 'कियाशिमिलो' कहा है।
2. 'ली' चीन में दूरी मापने की एक इकाई है। 5 'ली' की दूरी 1 मील के बराबर होती है। इसके हिसाब से सातवीं शताब्दी ई. में ह्वेनसांग के अनुसार कश्मीर राज्य का कुल क्षेत्रफल 1166 वर्ग मील था। निश्चित रूप से इसमें कश्मीर घाटी के बाहर का भूभाग भी शामिल रहा होगा, क्योंकि कश्मीर घाटी का कुल क्षेत्रफल लगभग 300 वर्ग मील ही है।
3. यहां 'समाज' का आशय उत्सव से है। उत्सव को पालि भाषा में 'समज्जा' कहा जाता है। मौर्य सम्राट अशोक ने अपने शिलालेखों-स्तंभलेखों में भी उत्सव के अर्थ में 'समज्जा' (समाज) शब्द का प्रयोग किया है। ''जातकों से पता चलता है कि समज्जा एक विशेष प्रकार की मनोरंजक गोष्ठियां थीं, जिसमें स्त्री-पुरुष और बच्चे-बूढ़े इकट्ठा होकर कई प्रकार के खेल-तमाशे, नृत्य-संगीत, हस्तियुद्ध, मेषयुद्ध, अजायुद्ध, मल्लयुद्ध आदि खेल खेलते थे। इन्हें 'समाज' भी कहा जाता था।''
   कुमार, निर्मलेन्दु (2019). 'मगधनामा', पृ. 219, प्रयागराज : लोकभारती प्रकाशन।
4. पाकिस्तान के वर्तमान खैबर-पख्तूनख्वा सूबे का एक जिला है–स्वात। प्राचीनकाल में पश्चिमी हिमालय के भीतर का यह भूभाग आर्यों को इतना मनोरम लगा कि उन्होंने यहां सुंदर-सुंदर घर बनाए और इस इलाके का नाम 'सुवास्तु' (अर्थात् 'सुंदर गृह') रख दिया। उल्लेखनीय है कि स्वात और पंचकोरा नदियों के संगम पर छह हजार फीट ऊंचे पहाड़ हैं। स्वात के ये पहाड़ देवदार के उन जंगलों से ढके हुए हैं, जिनकी लकड़ियों से आर्यों ने अपने सुंदर वास्तु बनाए थे।

   ऋग्वैदिक काल में स्वात और पंचकोरा नदी के बीच की इस रमणीय पर्वतभूमि का नाम सुवास्तु था, लेकिन ई. सन् के प्रारंभ में उसे 'उद्यान' कहा जाने लगा। यदि आर्य वहां के सुंदर घरों पर मुग्ध होकर उसे सुवास्तु कहने लगे थे, तो 'सीमांत गांधी' खान अब्दुल गफ्फार खां के अनुसार वहां के अमृततुल्य मेवों के बगीचों के कारण उस क्षेत्र को

'उद्यान' कहा जाने लगा। सुवास्तु संभवतः उद्यान का विशेषण था, किंतु कालांतर में वहां के लोगों ने बागों का वैभव देखकर उस प्रदेश को 'उद्यान-प्रदेश' कहना उचित समझा।

5. 'विष्णुपुराण' में कहा गया है कि वर्णसंकर और शूद्र लोग सिंधु नद, डारविका देश, चंद्रभागा और कश्मीर में राज करेंगे।

6. ह्वेनसांग ने बुद्ध के 100 वर्ष बाद लिखा है, लेकिन अब यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि 483 ई.पू. में गौतम बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ; और उसके 210 वर्ष बाद 273 ई. पू. में अशोक मगध के राजा हुए थे।

7. ह्वेनसांग ने बुद्ध के 400 वर्ष बाद लिखा है, लेकिन अब यह सिद्ध हो चुका है कि कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई. में हुआ था; और उसकी स्मृति को स्थायी रखने के लिए शक् संवत की शुरुआत की गई थी। इसप्रकार, महात्मा बुद्ध के निर्वाण के लगभग 500 वर्ष बाद कनिष्क राजा हुआ था।

8. बौद्ध धर्म के नियमों के तीन विशाल संग्रहों—सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक को 'त्रिपिटक' कहा गया है। ये ग्रंथ मागधी (यानी पालि) भाषा में रचे गए हैं। प्राचीन काल में इन पवित्र ग्रंथों को पिटारियों या टोकरियों में सुरक्षित रखे जाने के कारण ही इनको 'पिटक' कहा गया है।

9. पंच महाविद्या हैं—(क) शब्दविद्या अर्थात् व्याकरण, (ख) अध्यात्मविद्या, (ग) चिकित्साविद्या, (घ) हेतुविद्या, (ङ) शिल्पस्थानविद्या।

10. अलबरूनी ने 'अद्दिस्तान' को कश्मीर की राजधानी बताया है। यह संस्कृत शब्द 'अधिष्ठान' का अपभ्रंश है; और इसका शाब्दिक अर्थ है—मुख्य नगर। दरअसल, इसी स्थान पर श्रीनगर बसा हुआ है। ह्वेनसांग के समय में 'अधिष्ठान' ही नई राजधानी थी। कश्मीर की पुरानी राजधानी 'पुराधिष्ठान' थी। यह हारी पर्वत (वर्तमान शंकराचार्य पहाड़ी) के दक्षिण-पूर्व में लगभग दो मील की दूरी पर थी, जिसको वर्तमान में पानड्रेथान कहते हैं। कश्मीरी भाषा में 'पान' का अर्थ है—पुराना।

11. ह्वेनसांग द्वारा वर्णित इस संदर्भ से सातवीं शताब्दी ई. के कश्मीर में बौद्धों और नागवंशियों के प्रबल संघर्ष का स्पष्ट संकेत मिलता है। उल्लेखनीय है कि ह्वेनसांग की कश्मीर-यात्रा (631-633 ई.) के समय वहां के राजा का नाम दुर्लभ वर्धन था। उसने 625 ई. में कश्मीर में कारकोट वंश की स्थापना की थी। वह नाग नामक एक पर्वतीय जाति से संबंधित था, इसलिए उसके कुल को नागवंश भी कहा जाता है। अलेक्जेंडर कनिंघम का अनुमान है कि उनके कुल में नागों की पूजा होती होगी, इसलिए वे लोग नागवंशीय कहलाते रहे होंगे।

□

स्वामी विवेकानंद की कश्मीर यात्रा

स्वामी विवेकानंद अंबाला से रावलपिंडी, मरी होते हुए श्रीनगर पहुंचे, जहां उन्होंने न्यायमूर्ति ऋषिवर मुखोपाध्याय का आतिथ्य स्वीकार किया। कश्मीर की जलवायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल रही। अनेक कश्मीरी पंडित स्वामी जी के पास विभिन्न विषयों पर चर्चा के लिए आने लगे। 14 सितंबर, 1897 को स्वामी जी कश्मीर नरेश के आमंत्रण पर राजभवन के अतिथि बने। वहां उनका भव्य स्वागत किया गया। उन्हें आसन पर बैठाकर महाराजा प्रताप सिंह स्वयं नीचे बैठे। दोपहर बाद दो से चार बजे तक उन्होंने राजा के साथ जनहित के विभिन्न विषयों पर चर्चा की। कश्मीर नरेश उनकी विद्वत्ता से अभिभूत हो उठे। 17 सितंबर से स्वामी जी ने अक्तूबर के प्रथम सप्ताह तक डल झील में एक नाव में निवास किया। उस नाव की व्यवस्था महाराज द्वारा की गई थी। उस अवधि में स्वामी जी ने निकटवर्ती इतिहास प्रसिद्ध स्थानों का भ्रमण भी किया।

12 अक्तूबर को वे श्रीनगर से पुनः मरी पहुंचे। वहां बंगाली और पंजाबी समाज के गणमान्य व्यक्तियों द्वारा उन्हें 14 अक्तूबर को अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया। अभिनंदन सभा में उन्होंने एक सुंदर और प्रभावपूर्ण व्याख्यान दिया। 16 अक्तूबर को वे मरी से रावलपिंडी पहुंचे। वहां वे हंसराज वकील के घर पर रहे। पहले दिन वहां उनकी भेंट आर्यसमाजी संत स्वामी प्रकाशानंद से हुई। 17 अक्तूबर को रावलपिंडी की जनता के आग्रह पर उन्होंने हिंदू धर्म पर व्याख्यान दिया। अंग्रेजी भाषा में उनका वह धाराप्रवाह भाषण दो घंटे तक चला। उसके बाद 19 अक्तूबर को उन्होंने कालीबाड़ी में 'स्वदेश' का सच्चा कल्याण कैसे हो, विषय पर भाषण दिया।

20 अक्तूबर, 1897 को स्वामी जी कश्मीर नरेश तथा जम्मू के अनेक अन्य संभ्रांत नागरिकों के आमंत्रण पर जम्मू गए। वहां उन्हें आदरपूर्वक उनके लिए पहले से निर्धारित स्थान पर ले जाया गया। दूसरे दिन स्वामी जी राजमहल गए, जहां महाराजा, उनके दो भाइयों तथा अनेक अन्य उच्चाधिकारियों ने उनका स्वागत किया। उन्हें सम्मानपूर्वक एक आसन पर बैठाया गया। इसके बाद महाराजा ने उनसे संन्यासियों के धर्म के विषय में प्रश्न किया। स्वामी जी ने उन्हें इस विषय में विस्तार से समझाया और कहा कि रूढ़ियों का परित्याग न करने से ही भारत की अवनति हुई है।

महाराजा के साथ उसी वार्तालाप में विदेश जाने पर धर्मच्युति दोष का प्रसंग आया तो स्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''विदेश यात्रा किए बिना वास्तविक शिक्षा प्राप्त नहीं होती।'' स्वामी जी की विदेश यात्रा के विषय में भी विस्तार से बातें हुईं। महाराजा कश्मीर से स्वामी जी का वह वार्तालाप लगभग चार घंटे तक चला। स्वामी जी के विचारों से महाराजा अत्यधिक प्रभावित हुए।

22 अक्टूबर को स्वामी जी ने राजभवन में भाषण दिया। उससे महाराजा इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने विशेष अनुरोध कर एक सप्ताह के लिए उन्हें जम्मू में रोक लिया। उनके अनुरोध पर स्वामी जी ने कुछ और भाषण भी दिए।

29 अक्टूबर, 1897 को स्वामी जी जम्मू से सियालकोट पहुंचे। वहां उन्होंने हिंदी में दो भाषण दिये। वहां महिला शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। वह देख स्वामी जी को बड़ा दुःख हुआ। उनकी प्रेरणा से सियालकोट में लाला मूलचंद ने एक बालिका विद्यालय की स्थापना की।

प्रस्तुति–डॉ. भवान सिंह राणा

□

मेरी कश्मीर यात्रा

विनोबा भावे

विनोबा भावे ने 22 मई, 1951 से 20 सितंबर, 1954 तक जम्मू-कश्मीर की यात्रा की थी। उस यात्रा के कुल 80 पड़ाव के दौरान उनके द्वारा दिए गए वक्तव्यों के चुनिंदा अंश प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

जंगल से नसीहत—कल मैं जंगल के रास्ते से आ रहा था। उस जंगल में मुख्तलिफ किस्म के दरख्त थे। हमारे साथ रेंजर थे। उन्होंने कहा कि जिस जंगल में एक ही किस्म के पेड़ होते हैं, वह जंगल बढ़ता नहीं और जिस जंगल में मुख्तलिफ किस्म के दरख्त होते हैं, वह जंगल तरक्की करता है। मैंने कहा—भारत ऐसी ही हालत में है। भारत में भी मुख्तलिफ जमातें रहती हैं। वेद के जमाने से आज तक यहां के लोगों को एक तजुर्बा है और सिलसिलेवार खेती की तहजीब मिली है और एक सभ्यता बनी हुई है। जोरदार और शानदार ऐसी 14 जबानें (भाषाएं) यहां फली हैं, फूली हैं। ऐसा कौन-सा देश है, जो ऐसी शान दिखा सकता है?

सुंदर आबोहवा—यहां पर हम सब तरह के भेद मिटाएंगे, तो बड़ा आनंद आएगा और कश्मीर एक सुंदर स्वर्ग बन जाएगा। इस स्वर्ग में सुविधा भी है। कश्मीर में ठंडक हुई, तो जम्मू में आने की सुविधा है। गर्मी हुई, तो हम कश्मीर में जा सकते हैं। दोनों प्रकार की आबोहवा का लाभ मिल सकता है, यह अच्छी बात है। कुदरत ने हमें बहुत नियामतें दी हैं, इसमें विज्ञान से भी मदद मिल सकती है, लेकिन विज्ञान की शर्त है। उस शर्त के साथ उसका उपयोग हमें करना होगा, तभी लाभ होगा। विज्ञान कहता है कि तुम लोग एक बनोगे तो लाभ होगा, नहीं तो खात्मा होगा। हमें विज्ञान से लाभ लेना चाहिए और उसे ले सकते हैं। उसके लिए हमें प्रेम से मिल-जुलकर रहना चाहिए।

कश्मीर का कर्तव्य—कश्मीरवालों की बड़ी हैसियत है। वे हिंदुस्तान के लिए बहुत कर सकते हैं। उसके लिए एक ही बात करनी है। जैसे कुदरत में मेल-जोल है, ऐसे हमारे जीवन में भी हो। आम के पेड़ में जो लकड़ी है, वह खाने के नहीं, जलाने के काम में आती है। लकड़ी का उस मीठे आम से क्या संबंध? लेकिन एक बीज बोएं तो उसी में से लकड़ी, फल, फूल, पत्ते निकलते हैं। पेड़ का एक पत्ता दूसरे पत्ते से मिला नहीं होता है, लेकिन सारे पत्ते एक ही पेड़ के हैं। लकड़ी, पत्ते, फल, फूल, सब में एक प्रेमरस भरा है। पेड़ को ऊपर से सूर्य की किरणें मिलती हैं। नीचे जड़ें हैं, वहां से पानी मिलता है, हवा भी मिलती है। अगर हवा, पानी या रोशनी इनमें से एक भी चीज

न मिले, तो पेड़ नहीं बढ़ेगा। इस तरह कुदरत में सारी चीजें मिली-जुली रहती हैं, इसीलिए खूबसूरती पैदा होती है। सृष्टि में जैसे अंदर एक रस है, वैसे मनुष्य के जीवन में प्रेमरस भरा रहेगा, तो सृष्टि के समान मनुष्य-समाज भी हरा-भरा रहेगा।

अब मैं चाहता हूं कि हम सब एक हों। कश्मीरवाले यह न समझें कि हम कश्मीर के बाशिंदे हैं या हिंदुस्तान के बाशिंदे हैं बल्कि हम यह समझें कि हम दुनिया के बाशिंदे हैं। इसीलिए हम 'जय जगत्' कहते हैं। मैं यहां अच्छा खादिम बनकर आया हूं, खिदमत में मुरब्बी बना हूं। उसकी मुश्क मुझे हुई है। आठ साल हिंदुस्तान घूमकर मैं यहां आया हूं, तो मुझे कुछ फन हासिल हुआ है। इसलिए मैं कुछ खिदमत कर सकता हूं।

खुद और खुदा

हम अपने दोष देखें, दूसरों के नहीं—कश्मीर में कई राजनीतिक पार्टियां हैं। आज डेमोक्रेटिक कॉन्फ्रेंस के लोग हमसे मिलने आए थे। उन्होंने कहा कि ''हम इस्लाम को मानने वाले हैं। इसलिए हम मानते हैं कि यह जो सैलाब आया है, वह हमारी बुराइयों का नतीजा है। यह इस्लाम का एक अकीदा (विश्वास) है कि जब हम खुदा को भूल जाते हैं, तभी आफतें आती हैं। यदि हम उसे न भूलें, तो कभी तबाही नहीं हो सकती।''

यह सही बात है कि हमारी बुराइयों के कारण अल्लाह का गजब हम पर उतरता है। किंतु जब हम यह बोलते हैं, तब सिर्फ तोते की तरह बोलते ही हैं, इस पर एतबार नहीं करते। सही माने में यह बात हमारी जबान पर तो है, पर दिल में नहीं है क्योंकि दरअसल हम ऐसा मानते, तो अपने अंदर दिल में पैठते और यों सोचते कि हममें क्या बुराइयां हैं? तब हम दूसरों की नहीं, अपनी ही नुक्ताचीनी करते, जरा अपने को जांचते कि क्या मैं ठीक काम कर रहा हूं। बजाय इसके कि हम दूसरों के दोष देखें, हम अपने दोष देखा करेंगे, तो इंसान कुछ सुधर सकता है।

जहां दिल बाग वहीं स्वर्ग

कश्मीर अपना कपड़ा बनाए—कश्मीर में जाड़े के दिनों में छह महीने बर्फ के कारण लोग घरों में बैठे रहते हैं, कुछ काम नहीं करते। उस वक्त लोगों को कुछ-न-कुछ काम मिलना चाहिए। यहां पर ऊनी कपड़ा ज्यादा बनता है, लेकिन सूती भी इस्तेमाल होता है। मेरा हिसाब है कि हर मनुष्य के लिए सालभर में बीस रुपये का कपड़ा लगता होगा। यानी यहां की चालीस लाख की आबादी के लिए आठ करोड़ रुपये का कपड़ा बाहर से आता है। यहां की बेरोजगारी दूर करने के लिए कपड़ा यहीं बनाना होगा। जम्मू में कपास होती है। यहां कातने का फन भी है और घर-घर में चरखा पड़ा है। इसलिए यह काम चलना चाहिए।

इंजन साइंस का, पटरी रूहानियत की—कुछ लोगों का खयाल है कि बाबा बिल्कुल पुराने दकियानूस औजार लेकर गांव में काम करना चाहता है, लेकिन यह बिल्कुल गलत बात है। मैं तो चाहता हूं कि गांव में 'एटॉमिक एनर्जी' आए, जो विकेंद्रित हो। मैं उसके इंतजार में हूं। मुझे साइंस का कतई डर नहीं है। मैं चाहता हूं कि साइंस का इंजन जोरदार चले। हमारी जिंदगी की ट्रेन बहुत रफ्तार से बढ़े, लेकिन उसके लिए पटरी रूहानियत की हो। इंजन साइंस का हो, लेकिन ट्रेन किस पटरी पर चले, यह इंजन नहीं बताएगा, यह अक्ल उसे नहीं है। इसलिए मैं साइंस के इंजन के साथ

रूहानियत की पटरी चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि इस तरह गांव का, मुल्क का और दुनिया का मंसूबा बने। इस मंसूबे के दो पहलू होंगे—1. रूहानियत और 2. साइंस।

ग्राम-स्वराज्य और विश्व-साम्राज्य

सच्ची आजादी कब?—बाहरी आजादी के लिए यह जरूरी है कि हम जिस जगह रहते हैं, वहां हमारा जीवन मिला-जुला हो, हम आपस में एक-दूसरे से प्यार करते हों। फिर किसी तीसरे की हुकूमत हम पर नहीं चलेगी, लेकिन अगर हम आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, तो सरकार का कानून आ बैठता है और हमारी आजादी में पाबंदी आ जाती है। गांव-गांव के लोग मिल-जुलकर रहते हैं, अपना कारोबार खुद संभालते हैं, प्यार से गांव का एक परिवार बनाकर रहते हैं, तो वह आजादी है। फिर गांव को सरकार की मदद तो मिलेगी, लेकिन सरकार का दखल न होगा। जगह-जगह सरकार का कानून आए, प्रजा के बोझ का सारा जिम्मा सरकार पर आए, लोग आपस में लड़ते-झगड़ते रहें और उनके झगड़ों को मिटाकर अमन कायम करने की सारी जिम्मेदारी भी सरकार पर ही आए, तो वह सच्ची आजादी नहीं है।

सच्ची आजादी तभी आएगी, जब—1. हम अपने मन, इंद्रियों और बुद्धि पर काबू रखना सीखेंगे, 2. गांव को एक परिवार बनाकर रहेंगे, जमीन की मालकियत मिटाएंगे, गांव के झगड़े गांव के बाहर नहीं ले जाएंगे, 3. कपड़ा, तेल आदि रोजमर्रा की चीजें गांव में ही बनाएंगे, जिससे गांव के सब हाथ काम में लगें। अगर रोजमर्रा की चीजें बाहर से लेनी पड़ती हैं, तो वह गुलामी ही है, न कि आजादी।

दुर्जन को सज्जन बनाना—गांव वालों को हर रोज शाम को इकट्ठा होकर भजन करके फिर गांव के बारे में सोचना चाहिए। किसी को क्या दुःख है, किसको क्या कमी है, कहां सेवा की जरूरत है आदि सब देखकर सेवा का इंतजाम करना चाहिए। दुर्जन पर प्रेम से जब्त रखकर उसे सज्जन बनाया जाएगा। खराब चीज में से अच्छी चीज पैदा हो सकती है। जैसे मनुष्य के मैले की खाद बनती है, तो उससे मेवे और फल पैदा होते हैं। इस तरह समाज में जो बुराइयां हैं, उनका इलाज सारे गांव वाले मिलकर सोचेंगे। झगड़े मिटाने के काम में बहनों को आगे आना चाहिए। इस तरह अपने गांव के लोगों को खुद संभालना यह आजादी का लक्षण है।

जम्मू-कश्मीर अच्छा राज्य कैसे बनेगा?—हम चाहते हैं कि गांव-गांव में ग्राम-स्वराज्य बने और गांव-गांव की सेवा के लिए शांति-सैनिक मिलें। वे जाति, धर्म, पंथ, पक्ष आदि का खयाल नहीं करेंगे, इंसान की इंसान के नाते सेवा करेंगे और मौके पर शांति कायम रखने के लिए मर-मिटेंगे। इस तरह अपने भाइयों के लिए प्रेम से जमीन देनेवाले और प्रेम से उनकी सेवा करने वाले निकलेंगे।

आज यहां हमें चार भूदान-पत्र मिले थे। यहां जमीन पर सीलिंग है। इसके बावजूद यहां के लोगों ने, जिनके पास मर्यादा से भी कम जमीन है, हमें दान दिया। यह बहुत बड़ी बात है। इससे मुझे बहुत खुशी हुई। भगवान ने हमें संपत्ति, श्रम-शक्ति, जमीन आदि जो कुछ दिया है, उसका एक हिस्सा समाज को देना चाहिए। ये दान दिल की गहराई से दिए जा रहे हैं। अंदर के प्रेम को बता रहे हैं।

जैसे हवा, पानी सबके लिए है, वैसे ही जमीन सबके लिए है, ऐसा समझकर गांव के लोग

सारी जमीन गांव की बना दें, तो गांव में सरकारी दखल नहीं होगा, लेकिन सरकारी मदद मिलेगीं। कानून तो स्टीम रोलर जैसा होता है। कानून की मंशा सभी को इंसाफ देने की हो, तब भी वह सभी को इंसाफ नहीं दे सकता, इसलिए गांव को एक परिवार बनाकर हम जमीन सबकी बना देते हैं, तो सरकार का कानून गांव में दखल नहीं दे सकेगा। गांव-गांव के लोगों को यह एहसास हो कि हमारा गांव एक कुनबा है। यों समझकर वे जमीन की मिल्कियत मिटा दें, शामिलात मिल्कियत मानें, जमीन बांट दें, शख्सी मिल्कियत न रहने दें, गांव की एक सभा बनाएं, जो यह जिम्मा उठाए कि गांव के हर शख्स को काम और खाना देना होगा। गांव की दस्तकारियां बढ़ाने का काम भी वह करे। इस तरह गांव-गांव अपना गांव यानी एक स्टेट ही है, ऐसा महसूस करके अपना मंसूबा बनाए। फिर हम कहां रहें, भारत में, एशिया में या दुनिया में, यह सवाल ही नहीं रहेगा। हम अपनी जगह हैं और ईश्वर की गोद में हैं।

इंकिलाबे क्लब

कश्मीर दुनिया का मरकज—यहां से सारी दुनिया को रोशनी मिलती है। यह सिर्फ लफ्जों की बात नहीं है। हमारे पुराणों में इसका जिक्र है। हमारे पुरखों ने माना है कि दुनिया का मरकज या मध्यबिंदु मेरु कहां है? आज पता चलता है कि मेरु यानी कश्मीर है—काश मेरु यानी प्रकाशमेरु, जहां से चारों ओर प्रकाश फैलता है। इसी 'काशमेरु' को बोलचाल की भाषा में 'कश्मीर' कहते हैं। देवता कहां रहते हैं, इसका जवाब पुराणों में दिया गया है कि वे मेरु के स्थान में रहते थे, यानी आजकल की जबान में कश्मीर में रहते थे। इसमें कोई शक नहीं कि हमारे पुरखे बहुत पुराने जमाने से यहां रहते होंगे और यहां से चारों ओर फैले होंगे। लोकमान्य तिलक ने कहा था कि हमारे पुरखे उत्तरी ध्रुव पर रहते थे और वहां से आगे बढ़े। कुछ लोगों का खयाल है कि एक जमाने में कश्मीर सारी दुनिया का मरकज रहा होगा। यहां से चीन जा सकते हैं, हिंदुस्तान जा सकते हैं, पश्चिमी एशिया भी जा सकते हैं। इस लिहाज से कश्मीर की तवारिख शायद दस हजार साल की होगी। इसकी खुसूसियत यह थी कि यहां मुख्तलिफ जमातें रहती आई हैं।

यहां के लोग जाहिल नहीं—यहां के लोग सुख और दुःख को बर्दाश्त करते गए। इसलिए वे पढ़े-लिखे भले ही न हों, लेकिन उनमें गहरा इल्म भरा हुआ है। वह इल्म तजुर्बे से हासिल होता है और पुश्त-दर-पुश्त चला आता है, यानी बाप से बेटे को मिलता है। इसलिए यहां के लोग जाहिल नहीं हैं, वे एकदम किसी के बहकावे में नहीं आते हैं। उनकी जिंदगी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है, इसलिए वे पिछड़े हुए दीख पड़ते हैं। खासकर बाहर के लोग यहां आते हैं, तो कहते हैं कि यहां के लोग आगे बढ़े हुए नहीं हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि ये लोग दूसरों को लूटने के काम में आगे बढ़े हुए नहीं हैं। ये नहीं जानते कि दूसरो को कैसे लूटना, चूसना और अपना बोझ दूसरों पर कैसे लादना है! ये अपना बोझ खुद उठाते हैं। इसलिए जाहिल या अज्ञानी कहे जाते हैं, लेकिन ये ईमानदार हैं, नेक हैं, अपने दोनों हाथों से काम करके जीना पसंद करते हैं। दिल में प्यार है।

अंग्रेजी और कश्मीरी—जब हम कश्मीर के लोगों की तरफ देखते हैं, तो उनकी तमीज में कोई कमी नजर नहीं आती है। हमदर्दी में, जबान से भगवान का नाम लेने में, हाथ से काम करने में वे किससे कम हैं? तो उनमें कमी क्या है? कहा जाता है कि ये लोग अंग्रेजी नहीं जानते हैं, यही बड़ी कमी है। ये अंग्रेजी नहीं जानते, तो अंग्रेज लोग कश्मीरी नहीं जानते। उनकी जबान अंग्रेजी

है, तो इनकी कश्मीरी। उनके लिए अंग्रेजी काफी है, तो इनके लिए कश्मीरी काफी है। लल्लेश्वरी ने कश्मीरी में गाने लिखे, जिनका अंग्रेजी तर्जुमा हमने पढ़ा, तो हमें अचरज मालूम हुआ। एक औरत 600 साल पहले कश्मीरी जबान में इतने ऊंचे विचार लिखती है, तो वह जबान कमजोर नहीं मानी जाएगी। कश्मीर के लोग बड़े तजुर्बे वाले हैं, दस हजार साल के पुराने हैं। इसलिए हमें यह खयाल कतई नहीं करना चाहिए कि ये लोग पिछड़े हुए हैं।

कश्मीरी भाषा नागरी में—मैं चाहता हूं कि कश्मीर की यात्रा में कश्मीरी सीखूं। यहां के तालीम के मंत्री से हमने कहा कि कृपा करके कश्मीरी किताबें नागरी और उर्दू—दोनों रस्मूलखत (लिपि-अक्षर) में छापा कीजिए। इससे कश्मीरी के आगे बढ़ने में काफी मदद मिलेगी। मैं चाहता हूं कि कश्मीरी खूब बढ़ें। कश्मीरी साहित्य को आप खूब बढ़ा सकते हैं। जहां इतनी खूबसूरत कुदरत है, वहां बड़े-बड़े शायर पैदा हो सकते हैं। आप यह न समझें कि कश्मीरी में जान नहीं है। कश्मीरी में खूब जान है। उसने संस्कृत, फारसी, अरबी, पंजाबी वगैरह सभी भाषाओं से माल लिया और वह मालामाल हुई है। उसके साथ-साथ उसकी अपनी भी चीजें हैं। इसलिए कश्मीरी में बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

रूहानियत से ही मसलों का हल

कश्मीर का छह मुल्कों से सीधा ताल्लुक—आज रायशुमारी चाहनेवाले भाई हमसे मिलने आए थे। मैंने उनसे कहा कि तुम लकीर के फकीर मत बनो! जरा सोचो, तो क्या 'मेजॉरिटी वोट' (बहुमत) लेना और उसे माइनॉरिटी (अल्पमत) पर लादना, यह बात दुनिया में चलेगी? आज दुनिया में कोई भी मसला छोटा नहीं रहता, बड़ा रूप लेता है। इसलिए सारी दुनिया की दृष्टि (वर्ल्ड वाइड आस्पेक्ट) से सोचो। मेरे पांव में फोड़ा है तो वह केवल पांव का ही नहीं, कुल जिस्म का है। इसमें सिर्फ पांव को ही दिलचस्पी नहीं, सारे जिस्म को है। हम यहां कश्मीर वैली में बैठे हैं। एक बाजू में उसका संबंध हिंदुस्तान से है। दूसरी बाजू में पाकिस्तान और तीसरी बाजू में अफगानिस्तान से है। फिर उधर चीन और रूस से भी संबंध है और अमेरिका से भी। मगर वह दीखता नहीं, पाकिस्तान में अमेरिका पड़ा है। इस तरह छह मुल्क इसमें बिल्कुल 'डायरेक्टली कन्सर्ड' हैं। उनका इससे सीधा ताल्लुक है।

जम्हूरियत कब पनपेगी

काश, ऐसा हुआ होता!—गांधी जी चाहते थे कि कांग्रेस गैरजानिबदार संस्था होकर काम करे। जिस दिन वे गए, उस दिन उन्होंने अपनी यह इच्छा लिखी थी कि कांग्रेस लोक-सेवक संघ में पुष्पित एवं फलित हो। वह सियासी पार्टी न रहकर गैरजानिबदार जमात बन जाए और सत्ता पर तथा समाज पर नैतिक अंकुश रखे। गांधी जी ने कहा, लेकिन उनके साथियों को यह बात जंची नहीं। मैं उन्हें भी दोष नहीं देना चाहता। हर एक के सोचने का ढंग होता है और हर एक का दिमाग भी अलग होता है। उस समय देश में परिस्थिति भी कुछ ऐसी थी कि वैसी परिस्थिति में शायद हममें यह काम करने की शक्ति नहीं है, ऐसा गांधी जी के साथी महसूस कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने बापू की इच्छा के अनुकूल कदम नहीं उठाया होगा। खैर, अगर गांधी जी की बात मानी होती, तो कांग्रेस आज सेवापरायण संस्था होती और अपने निष्पक्ष बयानों से नैतिक असर डालनेवाली जमात बनती। वह आज नहीं बन सकी है और जिसका बनना निहायत जरूरी है।

सियासी नेता दिलों को जोड़ने का नहीं दिलों को तोड़ने का ही काम करते हैं।

हिंदुस्तान पुरानी सियासत के रास्ते पर चलता रहेगा, तो देश की ताकत नहीं बनेगी। इसलिए सियासत से अलग होकर एक ऐसी जमात बनानी चाहिए, जो अलग-अलग पार्टियों के बीच जहां भी घर्षण हो, वहां तेल डाल सके, स्नेह दे सके। सेवापरायण, सत्यनिष्ठ और स्नेह बढ़ानेवाली जमात के लोग तटस्थ होकर हुकूमत करनेवाली पार्टी की तथा दूसरी पार्टियों की गलतियां बताएंगे और सहानुभूतिपूर्वक उन्हें सुधारने की कोशिश करेंगे, तो देश में एक नैतिक ताकत बनेगी।

जवान मेरा रूहानी सैलाब कबूल करें

दिमाग ठंडा रखिए—मैं कहना यह चाहता हूं कि विज्ञान के जमाने में यह बात बहुत खतरनाक है कि हम जज्बा पैदा करें। इस जमाने में जज्बा कतई पैदा नहीं करना चाहिए, ठंडे दिमाग से सोचना चाहिए। दिल में जोश रहे, क्योंकि उसके बिना कोई काम नहीं कर सकता, लेकिन उसके साथ दिमाग में होश भी रहे, लेकिन यहां तो दिल में भी जोश और दिमाग में भी जोश है। जिस गाड़ी में गार्ड का डिब्बा ही न हो, दोनों तरफ इंजन ही हो, तो वह गाड़ी कहीं भी गिर सकती है। जब इंजन के साथ गार्ड भी हो, तो वह गाड़ी को बराबर काबू में रखता है। वैसे ही इंसान को अपने पर जब्त रखना चाहिए और दिमाग बिल्कुल ठंडा रखना चाहिए।

जबानें सीखें—यहां जिस तरह चौदह अच्छी, ताकतवर जबानें हैं, वैसी दुनिया के दूसरे किसी देश में नहीं हैं। यूरोप में ऐसी ही अच्छी जबानें हैं, लेकिन अभी वह एक देश नहीं बन पाया है। वहां अलग-अलग, छोटे-छोटे देश हैं। यहां कश्मीर में भी मुख्तलिफ जबानें हैं। कश्मीरी, उर्दू, हिंदी, पंजाबी, डोगरी, बोधी-इतनी सारी जबानें चलती हैं। इसलिए यहां स्कूल खोलने हों, तो इतनी सारी जबानें पढ़ानी होंगी। इसके अलावा पंडितों की जबान संस्कृत है, तो दूसरे अरबी-फारसी भी सीखते हैं। इतने छोटे-से सूबे में, जहां सिर्फ 40 लाख लोग रहते हैं, 7-8 जबानें पढ़ाने का इंतजाम हमें करना होगा। यह अपने देश की खूबी है कि यहां हम सारे इकट्ठा हुए हैं।

कश्मीर पर दुनिया का हक—कुछ लोग पूछते हैं कि कश्मीर किसका हिस्सा है? मैं उनसे कहता हूं कि तुम कैसे बेवकूफ बने हो, जो इस तरह पुराने जमाने का सवाल पूछते हो! अगर पुराने जमाने की बात होती, तो मैं कहता कि कश्मीर जंबूद्वीप का हिस्सा है, लेकिन आज वैसा नहीं कहूंगा, बल्कि यही कहूंगा कि कश्मीर दुनिया का हिस्सा है। यहां दुनियाभर के 'टूरिस्ट' (मुसाफिर) आते हैं और करोड़ों रुपये देकर चले जाते हैं। वे यहां की खूबसूरती देखते हैं, तो क्या इस खूबसूरती पर कश्मीर का ही हक है? हमें समझना चाहिए कि इस पर कुल दुनिया का हक है, जैसे-जैसे विज्ञान तरक्की करेगा, वैसे-वैसे दुनिया की कुल कौमें ज्यादा नजदीक आएंगी। ऐसी हालत में पुराने सवाल क्या पूछते हो कि कश्मीर पर किसका-किसका हक है? कश्मीर पर कुल दुनिया का हक है। हिंदुस्तान, पाकिस्तान, अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, जापान वगैरह सब देशों पर कुल दुनिया का हक है। अगर ऐसा नहीं होगा, तो दुनिया में कशमकश जारी रहेगी और कुल दुनिया तबाह हो जाएगी। यह सवाल सिर्फ कश्मीर का नहीं, बल्कि कुल दुनिया का है। विज्ञान के जमाने में हम पहले जैसे अलग-अलग नहीं रह सकते।

फौजी भाइयों से

जो एक साथ खाते नहीं, वे एक साथ कैसे लड़ेंगे?—पानीपत की लड़ाई में एक बाजू

अहमदशाह अब्दाली और दूसरी बाजू मराठों की फौज थी। जैसे अभी आप आमने-सामने खड़े हैं, वैसे ही वे एक-दूसरे के आमने-सामने खड़े थे। वे एक-दूसरे को देखना चाहते थे, एकदम हमला करना नहीं चाहते थे। एक दिन शाम को अहमदशाह अब्दाली ने देखा कि सामने मराठों की फौज में छोटी-छोटी आगें जल रही हैं। उसने अपने सेनापति से पूछा : ''यह क्या हो रहा है?'' उसने जवाब दिया कि ''इन लोगों में जातिभेद है। ये एक-दूसरे के हाथ का खाना नहीं खाते। इसलिए अलग-अलग रसोई बना रहे हैं।'' यह सुनकर अहमदशाह ने अपने साथी से कहा—''अगर ऐसा है, तब तो हमने जीत लिया।'' कहने का सार यह है कि जो एक साथ नहीं खाते, वे एक साथ कैसे मरेंगे? आप तो खाना एक साथ खाते हैं, खेलते भी एक साथ हैं, लेकिन भगवान का नाम एक साथ नहीं लेते, तो अजीब बात हो जाती है। मेरा यह सुझाव है कि सब एक साथ थोड़ी देर बैठकर भगवान का नाम लें, अलग-अलग भी लें, लेकिन एक साथ भी लें। हमारे साथ भी अलग-अलग धर्म वाले लोग रहते हैं, लेकिन प्रार्थना में सब एक साथ हो जाते हैं।

हर नागरिक दुनिया का नागरिक हो—मैं यह जो सारा बोल रहा हूं, इसके मायने यह नहीं हैं कि आप कोई बेकार काम कर रहे हैं, लेकिन आप और हम तब कामयाब होंगे, जब आपके देश में उनको और उनके देश में अपको जाने में कोई रुकावट न होगी। किसी भी देश में दूसरे देशवाले को रोका नहीं जाएगा, जैसे बंबई का नागरिक सारे हिंदुस्तान का नागरिक होता है, वैसे ही हिंदुस्तान का नागरिक कुल दुनिया का नागरिक हो। यानी किसी भी देश का नागरिक सारी दुनिया का नागरिक बने। यही हमें करना है और इसके लिए दिल को वैसा ही, व्यापक बनाना होगा।

उस्ताद क्या करें?

खुद को पहचानो—अपना जो कुछ काम चलता है, उसे भूलकर, ताजा दिमाग लेकर घूमने जाइए। अपना घर, बच्चे, स्कूल, इम्तहान, पाठय-पुस्तकें आदि सब भूल जाइए। अपने सारे लेबल छोड़कर घूमने निकलिए। मैं किसी का भाई, किसी का बाप, किसी का उस्ताद, किसी का किरायेदार, यह सब छोड़िए और सिर्फ 'मैं हूं' इतना ही लेकर आसमान में घूमिए। दुनिया में इंसान के पांव में यह एक जंजीर, बेड़ी कसकर बांधी हुई है, जो उसे इधर-उधर जाने नहीं देती, सोचने नहीं देती, कुछ भी करने नहीं देती। इसलिए इन सबसे जरा दूर जाइए। घर-संसार से, सियासत से और इस जिस्म से भी अलग होकर देखिए, तब पता चलेगा कि 'मैं कौन हूं', मेरा रूप क्या है। जब तक हमने नहीं पहचाना कि मैं कौन हूं, तब तक हम तालिबे इल्म (विद्यार्थी) भी नहीं बन सकते, तो उस्ताद क्या बनेंगे? इसलिए आप इस पर गौर कीजिए कि मैं कौन हूं। 'फलाने' का बोझ सिर पर रहेगा, तो काम नहीं होगा। जब तक तुम खुद को नहीं पहचानते हो, तब तक क्या 'टीचते' (पढ़ाते) हो? मैं कौन हूं, यह सोचो और 'मैं पर जितने पर्दे आ गए हैं, उन सबको हटा दो! दुनिया के झमेलों से, जिम्मेवारी से जरा अलग होकर अपने को परले आसमान में ले जाने की बात मैं नहीं कर रहा हूं, वहां तो सिर फूट जाएगा। बल्कि मैं तो कहता हूं कि अपने को नजदीक वाले आसमान में ले जाओ।

दिल जुड़ जाएं और निडर बनें

'दुश्मन नहीं, दोस्त कहिए'—'जय-जगत्' के मायने यह हैं कि हम किसी से डरेंगे नहीं और किसी को डराएंगे भी नहीं। किसी से दबेंगे नहीं और किसी को दबाएंगे नहीं। हम दब्बू नहीं

हैं। यह है निडरता। यह निडरता हममें होनी चाहिए। दूसरी बात है सब से प्यार करना। यह भावना होनी चाहिए कि सारी दुनिया में हमारे ही रिश्तेदार हैं, हमारे ही लोग हैं। कुल दुनिया में हमारे ही दोस्त फैले हैं, दोस्तों से दुनिया भरी है। इसमें कोई दुश्मन नहीं है—'ना कोई बैरी नाहिं बिगाना'। यहां बोलने का एक रिवाज है, कहते हैं—''यहां इस पहाड़ी पर हमारी फौज खड़ी है और उस बाजू दुश्मन है।'' उधर भी इसी तरह बोलने का रिवाज होगा, लेकिन हमें यह सोचना चाहिए कि हम किसी के दुश्मन नहीं, सब हमारे दोस्त हैं। हम ऐसी जिंदगी बसर करें कि हमें किसी का डर न हो और न हम किसी को डराएं ही। आज यहां फौज खड़ी है और बच्चे खेल रहे हैं, किसी चीज का डर, खौफ नहीं है, लेकिन किसके बल पर? तो फौज के ही बल पर, लेकिन अगर यहां से फौज हट जाए या हार जाए तो? खतम!

जय जगत् का कौल

'जय जगत्' भारत के लिए स्वाभाविक चीज—भारत इंटरनेशनल नेशन (अंतरराष्ट्रीय राष्ट्र) है, मामूली राष्ट्र नहीं। दस साल में हम इतने आगे बढ़े कि आज यहां का बच्चा-बच्चा 'जय जगत्' बोलने लगा है। यूरोप के लोग जब इस बात को सुनते हैं, तो उन्हें खुशी और ताज्जुब मालूम होता है कि हिंदुस्तान के बच्चे किस तरह यह वसी खयाल कबूल कर सकते हैं। मैं कहना चाहता हूं कि हिंदुस्तान के बच्चे 'जय जगत्' इसलिए कबूल करते हैं कि ऋषि-मुनियों का, नबियों का पैगाम यहां की हवा में फैला है। इसलिए हिंदुस्तान का बच्चा छोटी बात मुश्किल से समझ सकता है। मैं दूसरे देश से अलग हूं, इसे नहीं समझ सकता, लेकिन मैं कुल दुनिया का हूं और दुनिया हमारी है, इस बात को आसानी से समझ सकता है। सर्वोदय का मकसद यही है कि वह देश-देश के बीच जो दीवारें खड़ी की गई हैं, उन्हें तोड़ना चाहता है। जैसे आज हम हिंदुस्तान के एक सूबे से दूसरे सूबे में जा-आ सकते हैं, प्यार से कहीं भी रह सकते हैं, तिजारत कर सकते हैं, दर्शन के लिए, इल्म पाने के लिए जा सकते हैं, वैसे ही दुनिया में इंसान कहीं भी जा-आ सकता है, यही हमें कहना है। जब तक यह नहीं होगा, तब तक सर्वोदय माननेवाले लोग चैन नहीं पा सकते। इसलिए देखते-देखते हम 'जय जगत्' तक पहुंच गए। इतनी वह चीज फितरती है।

'जय जगत्' मंत्र है—'जय जगत्' यह कोई नारा नहीं है। नारे एक-दूसरे के साथ टकराते हैं। इसलिए यह नारा नहीं, बल्कि अरबी में जिसे 'कौल' कहते हैं या संस्कृत में 'मंत्र' कहते हैं, वह है। जैसे गायत्री मंत्र, अल्लाफातिहा मंत्र, 'बिस्मिल्ला हि र्रहमान, निर्रहीम' यह मंत्र है, ऐसे ही 'जय जगत्' मंत्र है, 'कौल' है। 'जय जगत्' के पेट में 'जय हिंद', 'जय कश्मीर', 'जय गांव' सब आ जाता है। पुराना तरीका यह था कि एक की जीत में दूसरे की हार होती थी, लेकिन अब हमने नया तरीका निकाला है, जिसमें आपकी, हमारी, सामने वाले की, सबकी जीत ही होती है। इसलिए सर्वोदय का कौल है 'जय जगत्'।

(साभार : मोहब्बत का पैगाम, विनोबाजी की कश्मीर-यात्रा, आचार्य विनोबा, सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी)

□

कश्मीरी और नागरी

राजनाथ भट्ट

पंडित ईश्वर कौल कृत 'कश्मीर शब्दामृतम्' कलकत्ता स्थित 'एशियाटिक सोसाइटी' से 1897 ई. में छपा है। इस ग्रंथ का हिंदी रूपांतरण डॉ. सुशीला ने किया है तथा इसे 2014 ई. में 'अयन प्रकाशन' नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है। यह कश्मीरी भाषा का पहला व्याकरण है, जिसे भट्टोजि दीक्षित की शैली में संस्कृत सूत्रों में लिखा गया है। यह ग्रंथ लेखक के मरणोपरांत सर जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन के दिशा-निर्देश में छपा है। ग्रियर्सन ने इसकी भूमिका भी लिखी है।

पंडित ईश्वर कौल ने कश्मीरी में प्रयुक्त विशेष ध्वनियों को 'अप्रसिद्ध' ध्वनियां कहा है। कश्मीरी भाषा 9वीं शती से 14वीं शती तक शारदा लिपि में लिखी जाती रही है। 14-15वीं शताब्दी के बाद इसे फारसी-अरबी लिपि में लिखने का प्रचलन हुआ। अंग्रेजी काल में कुछ लोगों ने रोमन लिपि का भी उपयोग किया, परंतु अधिकतर लोग फारसी-अरबी लिपि का ही उपयोग करते रहे।

1947 ई. के बाद सरकार द्वारा गठित एक समिति ने फारसी-अरबी लिपि चिह्नों में संशोधन करके, इसी लिपि को सरकारी लिपि की मान्यता दी जिसे राज्य सरकार ने स्वीकार किया।

1989-90 के 'विस्थापन' के पश्चात् विस्थापित हिंदू समाज ने अपनी मातृभाषा के प्रचार-प्रसार एवं संरक्षण के लिए एक समिति का गठन किया जिसके अध्यक्ष प्रो. रूपकृष्ण भट्ट थे। इस समिति ने देवनागरी लिपि को कश्मीरी-भाषा के अनुकूल बनाने के लिए मामूली से संशोधन किए ताकि विस्थापित समाज अपनी मातृभाषा को पढ़ सके, जान सके। कश्मीरी-देवनागरी लिपि चिह्नों को इसप्रकार रखा जाता है—

व्यंजन

क	ख	ग
च	छ	ज
ट	ठ	ड

त	थ	द	न
प	फ	ब	म
च़	छ़		
य	र	ल	व
श	स	ज़	ह

व्यंजनों की तालिका में तीन ध्वनियां बिंदु के माध्यम से चिह्नित की गई हैं। इनमें च़ और छ़ वर्त्स्य स्पर्श-संघर्षी व्यंजन हैं तथा ज़ वर्त्स्य-संघर्षी व्यंजन हैं। इसप्रकार बिंदु का उपयोग आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है। इन व्यंजनों के उपयोग के कुछ उदाहरण इसप्रकार हैं–

च़ास	-	खाँसी
छ़छ़	-	दिखावा
छ़ल	-	जाल
ज़ान	-	पहचान

स्वरों की तालिका में अधिक नवीनता मिलती है। कश्मीरी में अग्र 'ए' तथा पश्च् 'ओ' के ह्रस्व रूप मिलते हैं, जो दक्षिण भारत की भाषाओं में भी मिलते हैं। केंद्रीय स्वरों में संवृत 'अ̱' 'अ̱' के अतिरिक्त केंद्रीय-मध्य 'अ', 'आ' भी हैं; इन्हें कुछ स्थानों पर ॲ, ऑ के द्वारा चिह्नित किया जाता है। पश्च स्वरों की तालिका में ह्रस्व-ओ के अतिरिक्त अर्ध-विवृत ॲ तथा ऑ उपलब्ध हैं, इन्हें अव, अवा चिह्नों से भी लिखा जाता है। स्वरों की तालिका इसप्रकार है–

	अग्र	केंद्रीय	पश्च्
संवृत	इ ई	ऊ̱ ऊ̱	उ ऊ
मध्य	ऐ ए	अ' आ'	ओ ओ
अर्ध-विवृत	-	-	ॲ ऑ
विवृत	-	-	अ आ

इसप्रकार कश्मीरी में 16 स्वर हैं, परंतु दीर्घ ऑ का उपयोग केवल दो-तीन शब्दों में ही पाया जता है, उदाहरणार्थ–

सॉद 'सवा'। स्वरों के उपयोग तथा उनकी मात्राओं के उदाहरण निम्नवत् हैं–

सिर	-	रहस्य
सीर	-	ईंट
सेख	-	'बालू', 'रेत'

सेर	-	'सेर'
त॒र	-	'चिथड़ा'
त॒र	-	'सर्दी'
त'र/तॅर		'पार की'
ब', द्॒य/बॅद्॒य	-	'गुच्छे'
ता'र/तॉर	-	'पार करायी'
पुर	-	'भरा'
पूर	-	'पूरब'
फोल	-	'फला'
काठ	-	'गुठना'
मोल	-	'पिता'
कोठ	-	'कोट'
मॅठ/म्वठ	-	'मुट्ठी'
सॉद/स्वाद	-	'सवा'
तल	-	'नीचे/तलो'
काल	-	'काल'

'य' व्यंजन को छोड़कर सभी व्यंजनों का तालव्यकरण हो जाता है, जो स्वनिमिक भी है और रूपिमिक भी। उदाहरणार्थ–

1. कुल - पेड़

   क्युल - कील

इस उदाहरण में 'तालव्यकरण' स्वनिमिक है।

2. कुल - पेड़ - एकवचन

   कुल्य - पेड़ - बहुवचन

इस उदाहरण में 'तालव्यकरण' रूपिय के रूप में बहुवचन का द्योतक है। बहुवचन का दूसरा उदाहरण भी देखिए–

क्युल - 'कील'

किल्य - 'कीलें'

सहायक ग्रंथ–

1. कौल, अशोक, (2008). Lexical Borrowings in Kashmiri, Delhi: IILS.
2. कौल, पंडित ईश्वर, (1897, 2014). 'कश्मीरशब्दामृतम', कलकत्ता : एशियाटिक सोसायटी, नई दिल्ली : अयन प्रकाशन।
3. भट्ट, रूपकृष्ण, (1987). 'A Descriptive Grammar of Kashmiri' , दिल्ली : अमर प्रकाशन।

□

कश्मीरी भाषा का भविष्य

महाराजकृष्ण मुस्सा भरत

जिस कश्मीरी भाषा के प्राचीन इतिहास का संबंध भारतीय आर्य भाषा परिवार से रहा, जिसका उद्‌गम स्रोत हमें ऋग्वैदिक आर्यों की भाषा में मिलता है, उस प्राचीन भाषा का भविष्य आज संकट के घेरे में है। यह भाषा पूर्वकाल में शारदा लिपि में लिखी जाती रही, पर कालांतर में मध्यकालीन कश्मीर के रक्तरंजित इतिहास में इस तथ्य के अनेक प्रमाण हैं कि भारतीय संस्कृति और इतिहास के निकट इस भाषा और इसकी लिपि को कैसे आततायी आक्रांताओं ने समय-समय पर लहूलुहान कर दिया। केवल नाममात्र से कश्मीरी भाषा की संज्ञा पाने वाली यह भाषा, जिसमें वैदिक संस्कृति की सुगंध विद्यमान थी, को विदेशी आक्रमणकारियों ने अरबी और फारसी की शब्दावली से बदलने की कुचेष्टा की। वर्तमान में यह भाषा फारसी-अरबीकृत विदेशी शैली में लिखी जाती है। इसकी लिपि को नस्तालीक भी कहा जाता है।

कश्मीरी भाषा का एक गौरवशाली इतिहास रहा है। इस भाषा का प्राचीनतम लिखित इतिहास हमें 'छुम्म संप्रदाय' शीर्षक की पांडुलिपि के सूत्रों से मिलता है, जो संभवतः 10वीं-11वीं शताब्दी के कालखंड की कृति है। 12वीं शताब्दी में संस्कृत में रची गई विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'राजतरंगिणी' पंडित कल्हण द्वारा शारदा में लिखी गई है। इस ऐतिहासिक पुस्तक में संस्कृत भाषा के साथ-साथ कहीं-कहीं पर स्थानीय देशी भाषा अर्थात् कश्मीरी के शब्द भी हैं। 13वीं शती में 'महानय प्रकाश' सर्वगोचर देशी भाषा में शितिकंठ द्वारा रचित है। देशी भाषा शब्द का प्रयोग स्थानीय भाषा अर्थात् कश्मीरी भाषा के लिए उपयोग में लाया जा रहा होगा। 14वीं शताब्दी में जब मुस्लिम आक्रांताओं ने कश्मीर की भाषा को अरबी फारसीकृत करने का षड्‌यंत्र आरंभ कर दिया था, उन्हीं दिनों कश्मीरी भाषा के साहित्य को संत कवयित्री लल्लेश्वरी (ललद्यद) ने अपने शब्द और भाव दिए। आदि कवयित्री लल्लेश्वरी ने कश्मीरी भाषा में वाखों की रचना की। यह वाख उनकी साधना की पराकाष्ठा थी। उनके वाखों की शब्दावली उस समय संस्कृत के निकट थी, जो श्रुति परंपरा से हम तक पहुंचे और कालांतर में अरबी-फारसी के शब्द बाहुल्य से वह कितने सुरक्षित रह पाए होंगे, कहना कठिन है। 18वीं शताब्दी के राजानक भास्कराचार्य ने लल्लेश्वरी के 60 वाखों का संस्कृत में अनुवाद किया, यह संभवतः लल्लेश्वरी के वाखों का पहला लिपिबद्ध रूप था।

कश्मीरी भाषा संस्कृत के निकट रही है, यह अनेक विद्वानों का मत रहा है। भाषा वैज्ञानिकों की दो धाराएं हैं। एक धारा में वे विद्वान आते हैं, जो कश्मीरी भाषा का उद्‌गम दरद, पैशाची, ईरानी में मानते हैं और दूसरी धारा के भाषाविद् कश्मीरी भाषा का संबंध ऋग्वैदिक आर्यों की छान्दस भाषा में जीवित पाते हैं। इन विद्वानों का मानना है कि कश्मीरी भाषा का निर्माण संस्कृत से हुआ है। पहली धारा के प्रमुख विद्वान ग्रियर्सन हैं, जो कश्मीरी भाषा को दरद, पैशाची तथा ईरानी से जोड़ते हैं, साथ ही वे इस भाषा का संबंध संस्कृत से भी बताते हैं। इनके इस विरोधाभास पर कश्मीरी भाषा साहित्य के भाषाविद् डॉ. शशिशेखर तोषखानी का कहना है कि ''पैशाची-दरद-ईरानी का कश्मीरी के साथ जो समीकरण प्रस्तुत किया जाता है, वह भाषा वैज्ञानिक निकष पर खरा नहीं उतरता। इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि कश्मीरी में कुछ दरद शब्द उधार लिये गए हों, पर केवल दरद भाषा नहीं माना जा सकता; न भारतीय आर्य परिवार में इसे बहिष्कृत किया जा सकता है।'' (कश्मीरी साहित्य का इतिहास, पृ. 10)

दूसरी धारा के भाषाविदों में डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, बूहलर, शालिग्राम, टर्नर, डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा तथा श्रीकंठ तोषखानी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 'श्री चटर्जी के अनुसार कश्मीरी पर प्राचीन काल से ही संस्कृत का प्रभाव रहा है तथा इस दृष्टि से वह शीना या काफिरी भाषाओं से भिन्न हैं। पं. शालिग्राम कौल का मत है कि जिस प्रकार समस्त भारतीय आर्य भाषाएं आर्य परिवार से संबद्ध हैं, उसी प्रकार, कश्मीरी भाषा भी आर्यकुल की प्रमुख भाषा संस्कृत से जन्मी है। बूहलर का भी यही मानना है कि कश्मीरी भाषा का उद्‌गम स्रोत संस्कृत ही है। (कश्मीरी भाषा और साहित्य, पृ. 28)

कश्मीरी भाषा के मूल की खोज करते हुए यह तथ्य भी सामने आए कि जिस भाषा का संबंध संस्कृत के साथ रहा, जो प्राकृत, पालि की अवस्थाओं से होती हुई विकसित हुई, उस भाषा में कुछ शब्द दरद या पैशाची के जुड़ने से उसे पूर्णतया पैशाची या दरद मूल का नहीं माना जा सकता, क्योंकि मूलतः उसमें वैदिक संस्कृति और आर्यकुल के संस्कार विद्यमान हैं। कश्मीरी भाषा की गौरवमयी परंपरा चौदहवीं शती के मध्य तक विद्यमान रही, पर विदेशी आक्रांताओं के कारण इस भाषा का सौंदर्य धूमिल होता गया, जिस भाषा को शारदा लिपि में अपनी ध्वन्यात्मक संरचना में साथ व्यक्त किया जाता रहा है; उसी भाषा में अरबी-फारसी शब्दों के बाहुल्य से भाषा का अपना मौलिक स्वाद ही विलुप्त हो गया। उच्चारण में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया। लिपि परिवर्तित होने के कारण आमजन को इसे पढ़ने में असहजता का अनुभव हुआ। कश्मीर का साहित्य शारदा के स्थान पर फारसी, अरबी में लिखा जाने लगा, भाषा का विकास रुक गया। देशी भाषा पर विदेशी भाषा का आवरण चढ़ गया। कश्मीरी भाषा के साथ जो अन्याय स्वतंत्र भारत में कश्मीर में हुआ, वह अन्याय मध्यकालीन कश्मीर के क्रूर इतिहास में सबसे अधिक रहा।

इतिहास साक्षी है कि सन् 1340 में सनातन वैदिक कश्मीर में विदेशी आक्रमणकारियों का कब्जा हुआ। कश्मीर की अंतिम सम्राज्ञी कोटारानी के बाद घाटी में पहले मुस्लिम शासक ने

कश्मीर के शासन पर कब्जा कर लिया। यहीं से घाटी की पुरातन संस्कृति के विखंडन की गाथा प्रारंभ हुई। न केवल कश्मीरी भाषा के मूल स्वरूप को बदला गया, अपितु इसकी लिपि को भी अरबीकृत किया गया। शारदा, जो यहां की राजभाषा थी, उसके स्थान पर फारसी को राजकाज की भाषा बना दिया गया। चौदहवीं शती के मध्य तक जहां शारदा का प्रचलन था, उसकी गति धीरे-धीरे रोक दी गई। कुछ समय तक शारदा और फारसी लिपि समानांतर रूप से आगे बढ़ीं, पर आगे के अत्याचारों ने शारदा लिपि को ब्राह्मणों तक ही सीमित कर दिया।

मध्यकालीन कश्मीर में समय-समय पर अरबों, तुर्कों, मंगोलों तक मध्य एशिया से आए विदेशियों ने कश्मीर की चेतना पर चोट की, तलवार के जोर पर यहां की संस्कृति, संस्कारों के रूप को क्षत-विक्षत कर दिया। लगभग 600 वर्षों का अतिक्रमण झेल चुकी भाषा का मूल रूप, जो कहीं विस्मृति के कगार पर था, उसने 1820 में पठानों के शासन के अंत के साथ ही सांस ली। महाराजा रणजीत सिंह की सेना के शौर्य और पराक्रम से कश्मीर विदेशी शासकों से पुनः मुक्त हो गया। यहां पंडित बीरबल धर जैसे महान तेजस्वी योद्धा का उल्लेख करना परमावश्यक है, जिन्होंने कश्मीर से लाहौर दरबार तक दुर्गम यात्रा करके महाराजा रणजीत सिंह के समक्ष सहायता की गुहार लगाई थी। इतिहास में यह तथ्य भी वर्णित है कि महाराजा रणजीत सिंह, महाराजा गुलाब सिंह और उनके जनरल जोरावर सिंह के अभूतपूर्व पराक्रम ने गिलगिट, बाल्तिस्तान, पंजाब, मुल्तान, सिंध आदि क्षेत्रों को विदेशी शक्तियों से मुक्त कराया था, इन क्षेत्रों को वेदों में 'सप्त सिंधु' के नाम से भी जाना गया है।

प्रायः यह कथा भी गढ़ी जा रही है कि कश्मीर में पठानों के बाद सिख तथा डोगराओं का शासन रहा। यह कथा इस रूप में भी परोसी जाती रही है कि जैसे पठान विदेशी थे वैसे ही सिख और डोगरे भी। इस कथा को पुनः परिभाषित करने की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप इतिहास का सच सामने आए। इसमें कोई दो राय नहीं है कि पठान विदेशी थे और सिख व डोगरा शासक भारतीय मिट्टी की गंध में पले-बढ़े थे। महाराजा रणजीत सिंह और महाराजा गुलाब सिंह इसी धरती के सपूत थे, जिनके पराक्रम से कश्मीर को पुनः भारतीय जनमानस के साथ जोड़ा गया और कश्मीरी पंडित बीरबल धर तो इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सिख शासक के पास गए थे कि उनकी धरती पर विदेशी शक्तियों ने अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है और वह अपनी मातृभूमि को पुनः स्वतंत्र कराना चाहते थे। लगभग 600 (सन् 1339-1820) वर्षों के अंतराल के बाद पुनः कश्मीर विदेशी आक्रांताओं से मुक्त हो गया। कश्मीरी भाषा ने कुछ वर्षों तक सिख और डोगरा शासन में उन्मुक्त सांस ली, पर डोगरा शासन के दौरान ही ईस्ट इंडिया कंपनी के रूप में भारत में घुसे अंग्रेजों ने इस देश पर धीरे-धीरे आधिपत्य जमा लिया।

यद्यपि डोगरा शासन में कश्मीरी भाषा ने पहली अंगड़ाई ली थी, पर प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण वह फिर से उपेक्षा का शिकार हुई। 1947 में जब हमारा देश स्वतंत्र हुआ तो शेख अब्दुल्ला ने यहां की बागडोर संभाली। उस समय अंग्रेजी व उर्दू के साथ-साथ कश्मीरी भाषा के विकास की

भी बात हुई। शारदा लिपि की अवहेलना करते हुए केवल फारसी में कश्मीरी भाषा को लिखे जाने की मान्यता मिली। फारसी लिपि की अवैज्ञानिकता पर बात करते हुए 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' नामक पुस्तक में दृढ़ता के साथ इसकी चर्चा हुई है कि शारदा लिपि के सम्मुख फारसी नहीं टिक सकती। ''फारसी कश्मीरी भाषा के लिए एक उपयुक्त लिपि नहीं है। कश्मीरी भाषा की अपनी कुछ विशिष्ट ध्वनियां हैं। इनके उच्चारण के लिए फारसी के रूढ़ संकेत अवैज्ञानिक तथा दोषपूर्ण हैं। यही कारण है कि इस लिपि में लिखी जाने वाली कश्मीरी को अनुमान व अध्यवसाय के साथ पढ़ना पड़ता है। श्री आजाद ने भी फारसी लिपि की अनुपयुक्तता को स्वीकार किया था।'' (कश्मीरी भाषा और साहित्य, पृ. 43) श्री आजाद का पूरा नाम अब्दुल अहद आजाद है, जिन्होंने कश्मीरी कविता को नए तेवर दिये थे।

स्वतंत्र भारत में सरकारी स्तर पर 1948 में कश्मीरी भाषा के लिए लिपि निर्धारण हेतु एक समिति का गठन किया गया था, जिसे 1955 में अंतिम रूप दे दिया गया। उस लिपि निर्धारण समिति में शारदा के साथ-साथ देवनागरी लिपि को भी वैकल्पिक लिपि के रूप में रखा जा सकता था, पर ऐसे स्वतंत्र विचारों को स्थान ही नहीं दिया गया। विडंबना तो यह भी है कि जिस प्रदेश में कहीं भी उर्दू मातृभाषा नहीं है, उसी पर राजभाषा के रूप में उर्दू को थोपा गया और यहां तक कि कश्मीरी और जम्मू की डोगरी भाषा को मुख्यधारा से हटा दिया गया। पहले राज्य में प्राथमिक स्तर पर कश्मीरी भाषा को पढ़ाए जाने की बात की गई थी, जिसे कार्यान्वित नहीं किया जा सका। इसी कारण सन् 2008 में राज्य सरकार ने फिर एक प्रयास किया। ''सन् 2008 में राज्य सरकार ने कश्मीरी भाषा को प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पढ़ाना अनिवार्य कर दिया है, फिर भी इस भाषा के विद्यार्थियों-पाठकों का दायरा अपेक्षित रूप से बढ़ नहीं पा रहा है। इसका महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि इस भाषा की नस्तालीक लिपि के जानकार सीमित हो रहे हैं।'' (कश्मीरी भाषा और साहित्य, पृ. 47)

हम जिस कश्मीरी भाषा के भविष्य का आकलन कर रहे हैं और इस भाषा के अस्तित्व पर गहराते संकट के बारे में तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं, जब वही बात कश्मीर के एक स्थानीय वयोवृद्ध कवि करते हैं, तो स्थिति की गंभीरता का एहसास और तीव्रता के साथ होने लगता है। कश्मीरी भाषा साहित्य के मूर्धन्य कवि, लेखक अमीन कामिल फारसी-अरबीकृत लिपि में साहित्य सृजन करते आ रहे हैं। यह लिपि उर्दू भाषा की लिपि की तरह दाएं से बाएं लिखी जाती है। यह लिपि उतनी वैज्ञानिक भी नहीं है, जितनी वैज्ञानिक देवनागरी लिपि है। कश्मीरी भाषा के लिए सरकारी स्तर पर भी मान्यता प्राप्त लिपि संश्लिष्ट लिपि है और कई अक्षरों को जोड़कर एक अक्षर की संरचना बनती है। एक ही अक्षर में कई अक्षर गुंथे हुए होते हैं, जिन्हें पहचानकर पढ़ पाना और लिखना कठिन कार्य है। यह चर्चा यहां पर इसलिए हो रही है, क्योंकि स्वयं कश्मीरी भाषा के ख्यातनाम साहित्यकार अपनी ही भाषा की लिपि की दुरूहता की बात कर रहे हैं।

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा अमीन कामिल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर बनाए

गए एक वृत्तचित्र में स्वयं कामिल इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि घाटी के कुल ऐसे सौ, दो सौ या हजार लोग होंगे, जो कश्मीरी भाषा पढ़ भी रहे हैं और लिख भी रहे हैं, यह भाषा हम तक सीमित है, इसका कुप्रभाव यह भी है कि मेरे लेखन की समीक्षा करने वाले ही कम हैं। जिस कारण मेरा आप लोगों तक पहुंचना मुश्किल होता है। मुझे यह ज्ञात नहीं होता कि मैं कैसा लेखन कर रहा हूं, मुझमें क्या कमी है? क्या खूबी है, मुझे क्या लिखना चाहिए, ऐसा कुछ है ही नहीं, वह सब समाप्त हो गया।''

कश्मीरी भाषा के भविष्य के बारे में जो चिंता इस लेख में प्रकट की जा रही है वैसी ही मान्यता कश्मीर के उस कवि, लेखक, समीक्षक की है जिसने अपना पूरा जीवन इस भाषा के प्रति समर्पित कर दिया। सन् 1956 में उसका पहला कविता संग्रह प्रकाशित हुआ था। उन्होंने कहानियां रचीं, उपन्यास लिखे, आलोचना साहित्य में भी अपना योगदान दिया। अपने लेखन से प्रतिष्ठा भी पाई। साहित्य अकादमी पुरस्कार के साथ-साथ पद्मश्री से भी अलंकृत हुए, पर जिस भाषा में लिखा, जीवन के अंतिम मुहाने तक पहुंचकर उन्हें ऐसा लगा कि वह सब कुछ समाप्त हो गया, जिसकी चाह उनमें थी। जब फारसी-अरबी लिपि के पढ़ने वाले ही नगण्य रहे, भाषा में शब्दों की दुरूहता आड़े आए तो साहित्य एवं साहित्यकार को कैसे समझा जा सकता है।

कश्मीरी भाषा के प्रति सरकार की उदासीनता का उल्लेख करते हुए आमिन कामिल फारसी लिपि से पहले के इतिहास पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए एक वृत्तचित्र में कश्मीरी भाषा के बारे में कहते हैं कि ''कश्मीर में दीर्घकाल तक संस्कृत भाषा पठन-पाठन और लेखन की भाषा रही है, साथ ही सरकारी भाषा भी। इस्लाम के आने पर यह स्थान फारसी ने ले लिया। इसके बाद उर्दू सरकारी भाषा बनी। कश्मीरी भाषा को कभी भी पठन-पाठन और सरकारी भाषा बनने का अवसर ही नहीं मिला। शेख अब्दुल्ला ने 1947 के बाद प्राथमिक विद्यालयों में कश्मीरी भाषा को अनिवार्यता से पढ़ाए जाने का निर्देश जारी किया था, जिसका प्रभाव 1952 तक रहा।'' (वार्षिकी, 2017, पृष्ठ 82)

यह बात स्पष्ट हो रही है कि वर्तमान में जिस कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया जा रहा है, उसमें सहजता सरलता के साथ-साथ संत कवयित्री ललद्यद के वाखों की मिठास चाहिए। सरकारी स्तर पर ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए कि यह भाषा विद्यालय स्तर से पठन-पाठन का विषय बने। जिस उर्दू भाषा को जम्मू-कश्मीर में राजकाज की भाषा बनाया गया, वह कहां तक तर्कसंगत है? क्या अन्य वैकल्पिक लिपियों पर विचार नहीं किया जा सकता? जब तक शारदा लिपि को पुनः पुनर्जीवित नहीं किया जाता, उसमें प्रकाशन की सुविधाएं उपलब्ध नहीं कराई जातीं तब तक सरकारी स्तर पर देवनागरी लिपि को भी कश्मीरी भाषा की वैकल्पिक लिपि के रूप में प्रयोग करने की मान्यता मिले। केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने कश्मीरी भाषा को देवनागरी लिपि में भी लिखने की मान्यता प्राप्त की है। कोई भी भाषा तभी विकास पा सकती है, जब उसकी लिपि सर्वग्राह्य हो। जब कश्मीरी भाषा के पढ़ने-लिखने वालों की संख्या सन् 2014 में एक हजार तक बताई गई हो,

तो ऐसी भाषा को सुरक्षित रख पाना कितना चुनौती भरा है। हम 2014 की बात इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि जिन प्रतिष्ठित कश्मीरी साहित्यकार कामिल ने ऐसे आंकड़े दिए उनका निधन अक्तूबर 2014 में हो गया। उसके बाद बीते समय का आकलन कर पाना कठिन होगा कि आज एक हजार का वह आंकड़ा कितना रह गया होगा?

कश्मीरी भाषा संविधान की आठवीं अनुसूची में है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह यह भी समृद्ध हो, इसके पढ़ने-लिखने वाले साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों व आमजन की संख्या बढ़े, इस हेतु इसके अरबी-फारसीकृत विदेशी रूप में संशोधन करने की आवश्यकता है। देवनागरी लिपि, जो इन दिनों एक वैकल्पिक लिपि के रूप में सामने आई है, को सरकारी मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। लिपि के द्वारा ही हम भाषा को चिरकाल तक जीवित रख पाएंगे। जब भाषा की लिपि का आवरण ही बदल जाता है तो उसके साथ-साथ उस भाषा का व्यवहार, संरचना, उच्चारण शैली का ढंग भी परिवर्तित हो जाता है। कश्मीरी भाषा के साथ भी ऐसा ही हुआ। कश्मीरी भाषा और उसके लिए सर्वग्राह्य लिपि के व्यवहार पर चिंतन करने की आवश्यकता है, यही समय की मांग है, तभी कश्मीरी भाषा का भविष्य सुनहरा होगा।

संदर्भ ग्रंथ–

1. तोषखानी, डॉ. शशि शेखर, (1985). 'कश्मीरी साहित्य का इतिहास', जम्मू : जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी।
2. रैणा, डॉ. शिब्बन कृष्ण, (1972). 'कश्मीरी भाषा और साहित्य', दिल्ली : सन्मार्ग प्रकाशन।
3. निदारिया, डॉ. भ.प्र. (सं.), (2012). 'वार्षिकी 2012', नई दिल्ली : केंद्रीय हिंदी निदेशालय।
4. डगोरे, अनिता (सं.), (2017). 'वार्षिकी 2017', नई दिल्ली : केंद्रीय हिंदी निदेशालय।

□

अपनी हिंदी-नागरी सँवारिए

वृषभ प्रसाद जैन

हिंदी के लिए वर्तनी के अब तक बने नियमों का अध्ययन कर भाषाविद् वृषभ प्रसाद जैन ने हिंदी-नागरी सँवारने के लिए नये मानक नियम बनाये हैं। इस पर प्रतिक्रियाएं आमंत्रित हैं। **—समन्वयक संपादक**

पूर्व पीठिका

1. बचपन से देख रहा हूँ कि हमारी नागरी वर्णमाला में कुछ वर्ण कभी घटा दिए जाते हैं, कभी कुछ जोड़ दिए जाते हैं और कभी कुछ भिन्न तरह से लिखने की बात की जाने लगती है तथा इसप्रकार की बातें लम्बे समय से की जाती रही हैं, पर हमारी शिक्षा-व्यवस्था की स्थितियाँ निरंतर खराब होती चली गईं, जिस का परिणाम यह हुआ है कि आज हमारी विश्वविद्यालयीन शिक्षा की उच्चतम उपाधि, यथा—एम.ए. और पी-एच.डी. तक को धारण करने वाला भी अपनी भाषा में यदि चार वाक्य लिखता है, तो उन वाक्यों की वर्तनी में चार नहीं, चौदह तक अशुद्धियाँ देखने में आ रही हैं, पर ये अशुद्धियाँ न हों—ऐसा करने के लिए हम ने कोई ठोस यत्न या तो किये नहीं या हम नहीं कर सके। यह लेख वर्तमान में उस दिशा में एक कदम है।

2. संस्कृत और खासकर लौकिक संस्कृत संश्लिष्ट योगात्मक भाषा थी या रही है, वहाँ एक-एक शब्द या एक-एक वाक्य कई-कई पृष्ठों तक जाता दिखता है, बाण की कादम्बरी और वादीभसिंह सूरि की गद्य-चिंतामणि के गद्य के प्रयोग इस के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। संस्कृत के उक्त प्रयोग-काल में ही संस्कृत में विश्लेषणात्मक या आयोगात्मक भाषा की ओर भारतीय भाषाएँ बढ़ने लगी थीं अर्थात् बड़े सामासिक प्रयोग धीरे-धीरे कम होते गए या छोटे होते गए, विभक्तियाँ अलग लिखी जाने लग गईं और निपात आदि भी। यह स्थिति प्राकृत और अपभ्रंश काल में हमारी भारतीय भाषाओं की विश्लेषात्मक या आयोगात्मक रूप में लगभग स्पष्ट हो गई थी। हिंदी इस का और-उत्तरार्द्ध है। भाषाओं में परिवर्तन नियमित होता है, चाहे जब, चाहे जो नहीं। हमें इन तथ्यों को विचार करने के बाद ही लिपि और वर्तनी के संदर्भ में निर्णय लेने हैं और वैसे निर्णय यदि हम लेंगे, तो वे निर्णय हमारी परंपरा और प्रकृति के अनुरूप ही नहीं, दीर्घ-गामी भी होंगे।

3. कुछ विद्वान् अध्यापक-प्राध्यापक हिंदी-नागरी की इन में से कुछ-कुछ अशुद्धियों को

लेकर लंबे समय से लिखते आ रहे हैं, उन की सूची देना यहाँ अभीष्ट नहीं है और उस से वर्तमान परिस्थिति में कुछ प्रयोजन सिद्ध होने वाला भी नहीं है, अतः उसे हम यहाँ नहीं दे रहे हैं।

4. चूँकि नागरी की विशेषता यह थी कि वह जिस तरह बोली जाती रही है, ठीक उसी तरह लिखी जाती भी रही थी या जिस तरह लिखी जाती रही, ठीक उसी तरह सुनी जाती भी रही, पर आज की नागरी वैसी नहीं रह गयी है, इसलिए भी यह यत्न किया जा रहा है। यहाँ यह निरंतर ध्यान में रखना है कि हम उसे पुनः स्थापित करें व नये प्रयोगों को आत्मसात् भी करें।

5. विश्व की अनेक लिपियों के साथ यह तथ्य (जैसा बोला जाए, वैसा लिखा भी जाए) जुड़ा हुआ नहीं था व नहीं है अर्थात् उन की भाषाएँ जिस तरह बोली जाती हैं, उस तरह उन की लिपियों में लिखी नहीं जा पाती हैं। अतः नागरी वर्णमाला के विस्तार को लेकर समाज में बहुत्र चर्चा होने भी लग गई और इस विस्तार के लिए कई बार यत्न हुए भी। इन में विनोबा जी के द्वारा किया गया वर्धा का बृहत्तर देवनागरी का प्रसंग भी है। इस विस्तार की चार दिशाएँ हैं—1. हिंदी के जनपदीय उच्चारण पूरी तरह से नागरी में लिखे जा सकें; 2. भारतीय भाषाओं के सभी उच्चारण पूरी तरह से नागरी में लिखे जा सकें; 3. विश्व की सभी भाषाओं के सभी उच्चारण पूरी तरह से नागरी में लिखे जा सकें; 4. भारत की जिन भाषाओं के पास कोई लिपियाँ अभी तक नहीं हैं, उन के भी सभी उच्चारण पूरी तरह से नागरी में लिखे जा सकें, इन सभी कामों के लिए यत्न किये जाएँ। इसी क्रम में कई व्यक्तियों औंर संस्थाओं के द्वारा पूर्व में बहुत विकल्प सुझाये गए थे, उन में से कई विकल्प मूल-आधार से भिन्न-दिशा-गामी या विरोधी-जैसे या निराधार-से या तार्किक धरातल पर कमजोर भी रहे हैं, पर कुछ मजबूत भी।

6. हमारे देश में भाषा और वर्तनी की सजगता में पत्रकारिता की भूमिका भी बहुत महत्त्व की होती रही है, परंतु आज की पत्रकारिता क्या वह भूमिका सजग होकर निभा पा रही है या नहीं?...यह प्रश्न भी आप के मन में सहज उठेगा ही। बहुत पीछे न भी जाएँ, तो हमारी हिंदी वर्तनी के पत्रकारिता से जुड़े इतिहास में तीन संपादकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, ये हैं—दैनिक आज के संपादक श्री बाबू राव विष्णु पराड़कर, दिनमान के संपादक श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', जनसत्ता के संपादक श्री प्रभाष जोशी जी।

7. पंडित बाबू राव विष्णु पराड़कर जी ने सन् 1920 में दैनिक आज के माध्यम से हिंदी-भाषी समाज को अनेक नये शब्द दिये, जिन में प्रमुख हैं—सर्वश्री, श्री, राष्ट्रपति, मुद्रास्फीति आदि। आज की वर्तनी के लिए उन्होंने कुछ नियम स्थिर किये, उन में से अधिकांश नियम आज भी 'आज' अखबार में प्रचलित हैं, जैसे—विभक्ति और प्रत्ययों, जिन्हें आज परसर्ग कहा जाता है, का मूल के साथ लिखा जाना, जैसे—राष्ट्रपति ने देशवासियों से।

8. सन् 1965 में दिनमान के संपादक श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी ने अपनी पत्रिका के लिए हिंदी वर्तनी के कुछ नियम स्थिर किये थे, हालाँकि उन के संपादन के कार्यकाल में ही उन की पत्रिका में ही उन के अनेक सहयोगी उन नियमों को नहीं मानते थे, फिर-भी उन में से कुछ को जान लेना आवश्यक है; जैसे—1. विभक्तियाँ सर्वनामों के साथ लिखी जाएँ, 2. पूर्व-कालिक 'कर' प्रत्यय को मूल धातु के साथ मिला कर लिखा जाए, 3. चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वार को लिखा जाए, 4. आधे 'न' की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाए, 5. जब लिखायी,

पढ़ायी, चढ़ायी आदि क्रियाओं का प्रयोग संज्ञा के रूप में हो, तो 'ई' का प्रयोग किया जाए, 6. संस्कृत शब्दों में जहाँ 'यी' का प्रयोग होता है, वहाँ 'ई' का प्रयोग उचित नहीं, आदि-आदि।

9. सन् 1983 में श्री प्रभाष जोशी जी ने जनसत्ता की वर्तनी के लिए लगभग 39 नियम बनाये, जिन में से कई नियम बिना किसी तर्क और आधार के बनाये लगते हैं, वैसे भी इन के द्वारा सुझाये गए नियम भाषा को लेकर अधिक थे, वर्तनी का लेकर कम, उन के कुछ नियम हैं—1. हिंदी वर्तनी में 'य' वैकल्पिक रूपों के बारे में काफी अराजकता है, उन में एकरूपता के ख्याल से और छपाई की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हम 'ये' की जगह 'ए' और 'यी' की जगह 'ई' का प्रयोग करेंगे, यह निर्णय उन शब्दों की प्रकृति को अनदेखा-सा कर रहा है; 2. चंद्रबिंदु का प्रयोग नहीं करेंगे, पर अपवाद के रूप में 'हँसना' को छोड़ दिया; 3. हम पंचमाक्षर की जगह आमतौर पर अनुस्वार का प्रयोग करेंगे; 4. 'जबकि' का प्रयोग नहीं करेंगे; 5. 'वाला' और 'कर' शब्दों का प्रयोग संज्ञा और क्रियाओं के साथ मिलाकर करना चाहिए; 6. लोकतंत्र, जनतंत्र, गणतंत्र, प्रजातंत्र समानार्थी शब्द हैं, इन की जगह लोकतंत्र का ही प्रयोग किया जाए, केवल गणतंत्र दिवस के संदर्भ में गणतंत्र का, आदि-आदि। श्री जोशी जी का उक्त विचार जनतंत्र और प्रजातंत्र शब्दों के प्रयोग को हिंदी के प्रयोग से बाहर कर रहा है। जब-कि उक्त चारों शब्दों को और उन के पहले पदों को ध्यान से देखें, तो ये सभी शब्द पूरी तरह पर्यायवाची नहीं हैं, सब की धातुएँ भिन्न हैं, सब के अर्थ भी ठीक वही नहीं हैं, जो किसी भी एक के हैं, अतः इन्हें पूरी तरह समानार्थी मानना उचित नहीं और किसी भी संपादक या पत्रकार को भाषा के किसी भी प्रयोग को भाषा से बाहर करने का अधिकार भी संभवतः नहीं है। उचित-अनुचित के आधार पर वह उसे दिशा तो दे सकता है, परन्तु उसे उस भाषा के शब्द-कोश को समृद्ध तो करना चाहिए, पर संभवतः कम तो नहीं ही करना चाहिए।

10. हमारे अनुज-कल्प पत्रकारिता के प्रोफेसर कृपाशंकर चौबे लिखते हैं कि विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ एक ही शब्द को नाना ढंग से लिख रही हैं, इसके फलस्वरूप जहाँ पाठकों में भ्रम बढ़ा है, वहीं वर्तनी को चौपट करने में भी उन की पीड़क भूमिका है। वे उदाहरण देते हैं—नवभारत टाइम्स और जनसत्ता से, नवभारत टाइम्स लिखता है—एजेंसी, प्रतिशत, उड़ीसा, जायेगी, जायेंगे, तो जनसत्ता लिखता है—एजंसी, फीसदी, ओड़ीशा, जाएगी और जाएंगी। (पत्रकारिता के उत्तर आधुनिक चरण, लेखक : कृपाशंकर चौबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2003)

11. रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर के भाषाविज्ञान के वरिष्ठ प्रोफेसर डॉक्टर रमेश चन्द्र महरोत्रा जी की वर्ष 2003 में प्रकाशित रचना 'अपनी हिंदी सुदृढ़ कीजिए' महत्त्वपूर्ण है, जिस में चालीस नियम इस संदर्भ में सुझाये गए थे, इस विमर्श-निर्णय के आधार में उक्त रचना में दिये गए उन के विचारों का भी साभार उपयोग किया गया है।

12. भारत की आजादी के बाद नागरी वर्णमाला की मानकीकरण की जिम्मेदारी संवैधानिक रूप में भारत सरकार के द्वारा स्थापित केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली को सौंपी गई थी। इस निमित्त निदेशालय 'देवनागरी लिपि तथा हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तक 2020 में भी वितरित कर रहा है, वह खास संस्करण 2010 का है और तब भी वह पुनर्मुद्रण-जैसा था। मैंने स्वयं वर्ष 2000 से 2001 के दौरान महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के अधीन स्थापित लखनऊ स्थित भाषा-केंद्र में नागरी वर्तनी पर एक कार्यशाला बुलायी थी, जिस में

केंद्रीय हिंदी निदेशालय के उपनिदेशक स्तर के कई अधिकारियों ने भाग लिया था, पर उस में लिये गए निर्णयों के आधार पर कुछ कार्यवाही निदेशालय के स्तर पर होनी थी और सुझाये गए सभी बिंदुओं को नहीं, तो कम-से-कम कुछ बिंदुओं को लेकर जरूर निदेशालय की ओर से उस उल्लेख के साथ नया संस्करण प्रकाशित होना चाहिए था तथा उस के आधार पर कुछ विचार-चर्चा आगे बढ़ायी जानी चाहिए थी, जो अब-तक नहीं हो सका, मैं ने यह बात निदेशालय के अनेक निदेशकों को मौखिक रूप में और उस की केंद्रीय अनुदान समिति की जब-जब बैठकें हुईं, तब-तब उन बैठकों के दौरान भारत सरकार के माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री जी के द्वारा नामिति बाहरी सदस्य के रूप में भी इस पर काम करने के लिए मौखिक रूप में कहा और कुछ अंशों में लिखवाया भी। मैंने कई बार यह भी पूछा कि पिछले 25 वर्षों में बिंदु संख्या 4 में से उल्लिखित चार बिंदुओं को लेकर कितने नये लिपि-चिह्न वर्तमान प्रचलित मानकी-कृत वर्तनी में जोड़े गए हैं, इस का भी कोई सटीक उत्तर संख्या बताते हुए निदेशालय की ओर से अभी तक नहीं दिया जा सका। अधिकारियों के सामने व्यवस्था की सीमाओं के कारण संभवतः कुछ विवशताएँ और कुछ भिन्न प्राथमिकताएँ भी हो सकती हैं, पर भाषा और लिपि की दृष्टि से यह काम आवश्यक होने के नाते ही व्यक्तिगत स्तर पर भारतीय भाषा मंच के अधीन अब अपनी सीमाओं में करने का हम ने निर्णय लिया है।

13. सामान्यतः भाषा में उपलब्ध अनेक विकल्पों में से एक को मानक मानने की प्रक्रिया को मानकीकरण कहा जाता है, पर हिंदी और भारतीय भाषाओं के सन्दर्भ में इसे सत्य नहीं माना जा सकता। इसी सन्दर्भ में यह भी महत्त्वपूर्ण बिंदु है कि मानक होता ही वह है, जिसे मान दिया जाए और जिस का प्रयोग कर के हम अभिमान का अनुभव कर सकें और यह कह सकें कि हम ने भाषा के इस उच्च-आदर्श-रूप का प्रयोग करना सीख लिया है। हिंदी को लेकर हम विचार करें, तो पाते हैं कि हिंदी में ये उच्च-आदर्श प्रयोग अनेक हैं, क्योंकि भोजपुरी, अवधी, ब्रज, मालवी आदि हिंदी के जानपद रूप के प्रयोग करने वाले का जो उच्च-आदर्श-रूप मानक होगा, वह मराठी, उड़िया, असमिया, कन्नड़, तमिल आदि अन्य भारतीय और ऐसे ही जापानी, चीनी, अँग्रेजी, डच, फ्रेंच आदि विदेशी मातृभाषा वालों के उच्च-आदर्श-रूप मानक एक नहीं हो सकते, क्यों-कि हर मातृभाषा वाले की समस्या और उच्च-आदर्श-रूप के उच्चरित/प्रयोग करने की सीमा भी भिन्न-भिन्न होगी, इसलिए भारतीय भाषाएँ अनेक मानकों और उप-मानकों वाली भाषाएँ हैं, हमें उन के लिपि-चिह्न या वर्तनी के चिह्न देते समय इन बातों को अवश्य ध्यान में रखना होगा, क्यों-कि हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाएँ भी किसी एक प्रयोक्ता की नहीं हैं।

14. भारतीय भाषाओं की वर्तनी और लिपि को समृद्ध करते समय हमें इस बात की सजगता भी रखनी है कि भारतीय भाषाओं की जो भिन्न-भिन्न लिपियाँ हैं, उनका मूल रूप सुरक्षित रखते हुए उन के मूल-आधारों पर ही उन्हें समृद्ध करना है तथा भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं के मूल उच्चरित रूप मानक देवनागरी में कैसे ठीक से प्रस्तुत हो जाएँ, इस दृष्टि से अपनी नागरी को समृद्ध करना है।

15. इसी क्रम में हम ने पूर्वोत्तर के अरुणाचल की निशि-जनजाति की कुछ कहानियों का एक संकलन उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान के सहयोग से डॉक्टर आनिया ताना जी के संपादन में प्रकाशित किया है।

16. हम ने इसी क्रम में रोमन लिपि को समझाने और उस को उच्चरित करने वालों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए ही विस्तारित रोमन का 'Jinvani' नाम का एक फॉन्ट 'अखिल विश्व जैन मिशन न्याय' के अधीन विकसित किया है, जिस के आधार पर आप भारत के अधिकांश भू-भाग में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को लिख सकते हैं तथा कालांतर में उस के आधार पर नागरी सीख सकते हैं और नागरी के साथ जुड़ सकते हैं।

17. हमारी आकांक्षा है कि हिंदी के अतिरिक्त समस्त भारतीय भाषाओं और विश्व की भाषाओं को लेकर इस पुस्तक के संस्करण क्रमशः तैयार किये जाते रहें और आगे भी प्रकाशित होते रहें, जिस से सम्पूर्ण विश्व के विभिन्न मातृ-भाषा-भाषियों को अपनी अभिव्यक्ति के वास्तविक रूप को संरक्षित करने और उसे फिर से डिकोड अर्थात् यथा-उच्चरित रूप में ग्रहण कर उच्चरित करने का अवसर भी मिलता रहे।

18. वर्तमान में भी क्या समाज के निर्माण में या उसे दिशा देने में पत्रकारिता जगत् की कोई भूमिका है और वह, यदि ऐसी अपनी भूमिका, मानता भी है, तो-फिर इसप्रकार की भाषा और वर्तनी को गढ़ने की कोई बात वहाँ से फिर क्यों नहीं उठी?...इस का कोई साधार उत्तर पत्रकारिता के संसार के पास नहीं है। कुल मिला कर 'देर आये, दुरुस्त आये' के विचार को लेकर अब भी सब-नहीं, तो कुछ-पत्रकार-समूह भी इस पुस्तिका में सुझाये गए बिन्दुओं को लेकर आगे बढ़ते हैं या सम्मुख आते हैं, तो निश्चित रूप से समाज को रचने की/दिशा देने की अपनी समुचित भूमिका भी पत्रकारिता जगत् निभा पाएगा।

आलेख का मूल पाठ

भाषा और वर्तनी के लेखन में उस की परंपरा को बचाते हुए उसे समृद्ध करने के यत्न होने चाहिए और इसी दृष्टि से उस में यथा-साध्य एक-रूपता आये, इस के लिए मानकों के निर्धारक नियम आवश्यक हैं। हम इस दिशा में एक कदम रख रहे हैं, अतः आगे दिये गए नियम, नियमन और चलन, मित-व्ययिता और भेदकता, ऐतिहासिक परंपरा तथा विकास-परक सुविधा आदि बिंदुओं के समन्वय की दृष्टि से दिये जा रहे हैं।

1. कुछ समय पहले मैं एक ग्रन्थ की टीका को जब सम्पादित कर रहा था, तो उस समय उस की भाषा से गुजरा और तब लगा कि हिंदी वर्तनी व व्याकरण के वर्तमान नियम पर्याप्त नहीं हैं, जिस के फल-स्वरूप सम्पादन की प्रक्रिया को समृद्ध करने के लिए वर्तनी व व्याकरण के कई नियम भी विकसित करने पड़े, क्यों-कि उस तरह के नियम पहले से हिंदी वर्तनी व व्याकरण में उपलब्ध नहीं थे; जैसे—'तो-फिर' को हम ने सामासिक चिह्न (हाइफन) के साथ रखना उचित समझा, क्यों-कि जहाँ कृति में 'तो-फिर' का इस्तेमाल हुआ है, वहाँ न 'तो' का अर्थ रहता है और न 'फिर' का और दोनों मिलकर एकार्थ में सामासिक रूप से रूढ़ होकर प्रयुक्त होते दिखते हैं। इसप्रकार हिंदी व्याकरण में एक नया सिद्धान्त भी विचारने का अवसर मिला कि सामासिकता केवल दो संज्ञा पदों के बीच में ही नहीं होती, बल्कि वह योजक अव्ययों आदि अन्य पदों के बीच में भी होती है...

इसप्रकार कुल मिलाकर नियम बना—जहाँ न 'तो' का अर्थ रहता है और न 'फिर' का और दोनों मिलकर एकार्थ में सामासिक रूप से प्रयुक्त होते हैं, वहाँ 'तो' और 'फिर' के बीच में सामासिक चिह्न का प्रयोग करना उचित है; यथा—'तो-फिर'।

2. ऐसे ही एक प्रयोग मिलता है कि ''... और ध्यान दो''। अब यहाँ योजक दिखने वाले 'और' का प्रयोग योजक के रूप में नहीं है, बल्कि उसका प्रयोग है 'अतिरिक्त' या 'थोड़ा-और' अर्थ वाले सर्वनाम के रूप में, इसलिए सिद्धान्त यह उभरा कि योजक दिखने वाला सदैव योजक नहीं होता, वह कई बार सर्वनाम भी होता है या विशेषण भी। यहाँ 'और ध्यान' के बीच में सामासिक चिह्न लगाने की आवश्यकता है, इसप्रकार साधु प्रयोग हुआ—

'और-ध्यान'

3. एक प्रयोग है कि '...आँच आने-वाली है'। अब इस प्रयोग को ध्यान से देखें, तो 'है' क्रिया वर्तमान-कालिक है, पर यह साफ दिखता है कि वाक्यार्थ का यथार्थ वर्तमान में नहीं घट सकता, वह-तो भविष्य में घटता-सा दिखता है, इससे स्पष्ट है कि ये-सब प्रयोग अब-तक नियम-बद्ध व्याकरण की सीमा में नहीं आते, क्यों-कि ध्यान से देखने पर यह साफ दिखता है कि यह न वैसा वर्तमान है और न वैसा भविष्य, जो-कि उपलब्ध नियमों में पहले से व्याख्यात हैं, बल्कि मुझे तो यह प्रयोग काल की एक नई कोटि 'आसन्न-भविष्य-मूलक वर्तमान' वाला दिखता है। यहाँ '...आँच आने वाली है' में 'आने' और 'वाली' के बीच में सामासिक चिह्न लगाने की आवश्यकता है, क्यों-कि 'आने' और 'वाली' दोनों मिलकर आँच की विशेषता बता रहे हैं अर्थात् साधु प्रयोग हुआ—'...आँच आने-वाली है'।

4. एक वाक्य है—'नवीन कर्मास्त्रव और कर लेता है'—इस वाक्य में क्रिया-प्रयोग है—'और कर लेना'—इस प्रयोग को जब ध्यान से देखते हैं, तो यह प्रयोग अनेक-पदीय आत्मनेपदी संयुक्त-क्रिया के रूप में दिखता है, जिस का अर्थ है कि 'न चाहते हुए भी अतिरिक्त रूप से कर लेना'। इस प्रयोग के चार घटक हैं—पहला घटक है 'और', दूसरा घटक है 'कर' और तीसरा है 'लेना', बाद के दोनों घटक क्रिया-मूलक 'कर' और 'ले' धातुओं से बने हैं, जब-कि पहला घटक 'और' दिखने में अव्यय व योजक है, परन्तु वह वस्तुतः सार्वनामिक अव्यय है; जिस का अर्थ 'अतिरिक्त' रूप से है, इसप्रकार इस क्रिया-प्रयोग में सर्वनाम एवं धातु-मूलक घटक इसी क्रम में आते हैं और ये तीनों घटक मिलकर एक अर्थ कह रहे हैं, इस के अतिरिक्त चौथा घटक काल-वाचक 'है' पदान्त है, इसलिए यह क्रिया सामासिक-अर्थ वाली संयुक्त-क्रिया है। इसे इस रूप में मानने के पीछे तर्क यह है कि इस के चारों घटक समान-स्तरीय नहीं हैं, अतः इसे केवल या शुद्धतः सामासिक-क्रिया नहीं माना जा सकता; इसलिए यह सामासिक के साथ-साथ संयुक्त-क्रिया है। इसप्रकार कुल मिलाकर साधु प्रयोग हुआ—

''और-कर-लेता है''

5. ''जपते-जपते समाधि-लेना श्रेष्ठ है''—इस प्रयोग को हम ध्यान से देखें, तो अब-तक के हिंदी वर्तनी-प्रयोगों में समाधि लेना के बीच में सामासिक चिह्न (हाइफन) का प्रयोग नहीं होता था, पर मुझे लगता है कि बिना सामासिक चिह्न के 'श्रेष्ठ' विशेषण किस का होगा?...'समाधि' का या 'लेना' का?...इस का उत्तर नहीं मिलता। श्रेष्ठ विशेषण समाधि-लेना रूप सामासिक क्रियार्थक-संज्ञा का है, यह बात सामासिक चिह्न (हाइफन) के लगने पर ही स्पष्ट होती है, अतः मुझे लगता है कि हिंदी व्याकरण व वर्तनी के नियम में ऐसी क्रियाओं के बीच में या ऐसे

क्रिया-मूलक संज्ञा-पदों/अव्यय-पदों के बीच में सामासिक चिह्न (हाइफन) का लगाना अनिवार्य है। ऐसे ही जपते-जपते कृदंतीय अव्ययात्मक सामासिक पद है। इसप्रकार कुल मिलाकर साधु प्रयोग हुआ—''जपते-जपते समाधि-लेना श्रेष्ठ है''।

6. निम्न प्रयोग और देखें—जो-कुछ, सब-कुछ; वह-सब, यह-सब पहले दोनों प्रयोगों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि उत्तरवर्ती पद अपना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता, वह पहले पद को ही कुछ-और स्पष्ट करता है, पर पहला पद ही प्रमुख है, अतः ऐसा लागता है कि दोनों पद मूलतः सर्वनाम हैं, पर अपना अलग-अलग अर्थ न रखते हुए भी सामासिक रूप में एक-अर्थ ही कह रहे हैं, इसलिए एकीभूत हैं और इसीलिए इन दोनों के बीच में योजक सामासिक चिह्न लगना अनिवार्य है और ऐसा नियम हिंदी-वर्तनी-व्याकरण के लिए आवश्यक है। यही स्थिति 'वह-सब' तथा 'यह-सब' प्रयोगों की भी है। इसप्रकार कुल मिलाकर साधु प्रयोग हुए—

''जो-कुछ, सब-कुछ; वह-सब, यह-सब''।

7. जो-कि, जैसा-कि, जैसे-कि, ज्यों-कि आदि प्रयोगों को भी देखें, तो इन के भी पहले पद ही प्रमुख अर्थ-निर्धारक हैं तथा पहले पद सर्वनाम-रूप-जैसे हैं, जब-कि दूसरा पद अव्यय और योजक है, पर इस दूसरे पद के बिना भी हिंदी की सहज वाक्य-रचना नहीं बनती, इसलिए इस दूसरे पद का होना भी प्रथम पद के साथ अनिवार्य-सा है और इसीलिए इन दोनों पदों के बीच में समास होता-सा दिखता है तथा यही कारण है कि वहाँ योजक सामासिक चिह्न अनिवार्य है। इसप्रकार कुल मिलाकर साधु प्रयोग हुए—''जो-कि, जैसा-कि, जैसे-कि, ज्यों-कि''।

8. 'जब-कि' का प्रयोग जो-कि, जैसा-कि, जैसे-कि-जैसा है, पर यहाँ 'जब' काल-वाचक है और 'कि' योजक, पर इस दूसरे पद के बिना भी हिंदी की सहज वाक्य-रचना नहीं बनती, इसलिए इस दूसरे पद का होना भी प्रथम पद के साथ अनिवार्य-सा है और इसीलिए इन दोनों पदों के बीच में समास होता-सा दिखता है तथा यही कारण है कि वहाँ योजक सामासिक चिह्न अनिवार्य है। यहाँ कुल मिलाकर साधु प्रयोग हुआ—'जब-कि'।

जनसत्ता के संपादक श्री प्रभाष जोशी जी 'जबकि' के प्रयोग को पूरी तरह से करने की बात करते रहे हैं, पर वे इस का कोई आधार नहीं देते हैं। तात्त्विक दृष्टि से विचार किया जाए, तो पत्रकार/संपादक को भाषा में हो रहे प्रयोग को दिशा तो देनी चाहिए और उस दिशा देने के पीछे कोई विचार भी होना चाहिए, बिना विचार के यदि वह ऐसा करता है या निर्देश देता है, तो उस के ऊपर निराधार क्रिया करने वाले का आक्षेप लगता है तथा वह ऐसी स्थिति में भाषा में सहज रूप से प्रयोग को रोक भी नहीं सकता है और शायद वह रोका जाना भी नहीं चाहिए, क्यों-कि ऐसे में भाषा के सहज हो रहे एक प्रयोग को हम बिना किसी कारण के प्रयोग से बाहर करने के जिम्मेदार हो जाएँगे, जिस से शायद हमें बचना चाहिए।

9. 'भर' निपात जिस पद के साथ जुड़ता है, उस पद को यह 'भर' निपात अव्यय में बदल देता है और इस के पहले सामासिक चिह्न का प्रयोग किया जाना चाहिए, क्यों-कि वह जिस में जुड़ता है, उस के साथ एकीभूत होकर रहता है। यथा—''उस ने तुम्हारी-भर सुनी।'' यहाँ 'भर' केवल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। एक दूसरा प्रयोग देखिए—''गाँव-भर के लोग आ गए।'' यहाँ 'भर' सम्पूर्ण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, पर यह 'भर' यहाँ भी एकीभूत भाव में बदल रहा है, अतः 'भर' सामासिक पद-रचक है।

10. जहाँ पंचमाक्षर (नासिक्य वर्ण ङ्, ञ्, ण्, न्, म्) से अनुस्वार (ं) का विकल्प हो, वहाँ सदा अनुस्वार लिखा जाए, ऐसा केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने देवनागरी मानक निर्धारित करते समय निर्णय किया था, ऐसा ही विचार श्री प्रभाष जोशी जी का भी रहा है। उदाहरण–

अ-ग्रहणीय	ग्रहणीय
रङ्क, गङ्गा	रंक, गंगा
पञ्च, वाञ्छनीय	पंच, वांछनीय
कण्टक, काण्ड	कंटक, कांड
हिन्दी, बन्धु	हिंदी, बंधु
सम्पादक, कुम्भ	संपादक, कुंभ
अहम्, सायम्	अहं, सायं

विकल्पात्मक स्थिति न होने पर, उदाहरणार्थ–'वाङ्मय, दिङ्नाग; गण्य, विषण्ण; जन्म, प्रसन्न; अम्ल, सम्मान' को क्रमशः 'वांमय, दिंनाग; गंय, विषंण; जंम, प्रसंन; अंल, संमान' नहीं लिखा जा सकता। (इसीलिए हिंदी ने संस्कृत के 'संन्यास' और 'पुंलिंग' को 'सन्यास' और 'पुल्लिग' कर लिया है।) जब-कि शब्द-संरचना मूल की दृष्टि से यह उचित नहीं है।

उपर्युक्त निर्णय लेते समय छापेखाने और टंकण-मशीन (टाइप-राइटर) की तात्कालिक सीमा को प्रमुखतः ध्यान में रखा गया था, परन्तु ये भिन्न-भिन्न पंचमाक्षर उच्चारण में एक-रूप तब भी नहीं हुए 'थे' व आज भी नहीं हुए हैं अर्थात् भिन्न-भिन्न ही थे व आज भी भिन्न-भिन्न रूप में ही उच्चरित होते हैं। भाव यह है कि ये पंचमाक्षर उच्चारण के स्तर पर आज भी उपस्थित हैं और आज छापाखाना और टंकण की प्रक्रिया पूरी तरह संगणक (कंप्यूटर) आश्रित हो गई है तथा आज हमारी विवशता की वह सीमा भी नहीं रह गई है, इसलिए हमें उन पंचमाक्षरों को फिर-से लौटाने/प्रयोग में स्थापित करने की जरूरत है, परन्तु आज इन्हें अचानक लौटाया नहीं जा सकता है, क्यों-कि पिछले 70 सालों में हमारा भिन्न प्रकार का अभ्यास विकसित हो गया है, अतः पंचमाक्षरों के प्रयोग को हम अधिक वरीयता देते हैं और इसप्रकार त्याज्य को ही वरीयता देते हैं और वरेण्य को निरंतर कम करते हुए धीरे से अस्वीकृत करने की ओर जा रहे हैं।

11. य, र, ल, व आदि अंतःस्थों और श, ष, स, ह आदि ऊष्मों के पहले का अनुस्वार किसी पंचमाक्षर से परिवर्तनीय नहीं होता, इसलिए 'संयम, संरक्षण, संलग्न, संवाद, संशय, संसार, संहार'–जैसे शब्दों को 'सञ्यम, सम्रक्षण, सन्लग्न, सम्वाद, सन्शय, सन्सार, सन्हार'–जैसा लिखा जाना सही नहीं है।

12. चंद्रबिंदु (ँ = स्वर के साथ रहने वाली अनुनासिकता लेखीय प्रतीक) और अनुस्वार (ं = नासिक्य व्यंजन मकार का विकल्प)। पहला स्वर-रूप है और दूसरा व्यंजन-रूप। इसप्रकार दोनों की प्रकृति बिल्कुल अलग-अलग है और दोनों अर्थ-भेदक और पृथक्-पृथक् पहचान वाले घटक भी हैं। कुल मिलाकर निम्नांकित साधु प्रयोग भेदकता के साथ हुए–

टँकी (सिली), टंकी (पानी भरने का कुंड या हौज); रँग (क्रियार्थक शब्द-विशेष), रंग (संज्ञार्थक शब्द-विशेष); सँवार ('सँवारना' में), संवार (आच्छन्न); स्वाँग (हलका-फुलका नाटक), स्वांग (स्वयं का अंग); हँसी (हँसने की क्रिया), हंसी (मादा हंस) आदि।

जहाँ ऐसा भेद दिखाना अभिप्रेत हो या जब लेखन तकनीकी हो, तब यथा-स्थान चंद्रबिंदु के प्रयोग में सावधानी बरती जाए, किन्तु जहाँ भ्रम की स्थिति न हो, वहाँ छपाई आदि की कठिनाई को देखते हुए, विशेष-कर शिरो-रेखा के ऊपर मात्रा विद्यमान होने पर और छोटे टाइप के मुद्रण में, चंद्रबिंदु की जगह भी अनुस्वार ही लिख देने की छूट किसी-किसी विरल परिस्थिति में ली जा सकती है, पर यह काम-चलाऊ रूप ही होगा, परिशुद्ध रूप नहीं। जैसे—

'सिंचाई, सींचना, पेंच, भैंस, चोंच, औंधा' इत्यादि में (जो परिशुद्ध लेखन में क्रमशः 'सिँचाई, सौँचना, पैँच, भैँस, चौँच, औँधा' इत्यादि होंगे)। ये पहले इसीप्रकार लिखे भी जाते थे, इस की पुष्टि पहले की पाण्डुलिपियों के देखने से होती है। हम ने ये-जो परिशुद्ध लेखन के प्रयोग के उदाहरण बताये हैं, ये अधिकांश वर्तमान देवनागरी फॉन्टों में अंकित भी नहीं किये जा सकते, अतः इस दृष्टि से उन फॉन्टों का विकास करने की भी आवश्यकता है।

13. शब्द का तत्सम रूप जहाँ अभीष्ट हो, वहाँ उस का विसर्ग-युक्त रूप ही लिखिए। यथा—दुःख, दुःसह, निःशुल्क, शनैः-शनैः, आदि।

14. तत्समेतर निम्न शब्दों में विसर्ग नहीं रहेगा और 'ह' ही रहेगा। जैसे—'छह, वगैरह' आदि में।

15. हिंदी के हलंत शब्दों को लेकर ऐसी मिथ्या अवधारणा प्रचलित हो गई है या कर दी गई है कि हलंत शब्दों से अंतिम हल्-चिह्न लुप्त हो चुका है या हो चला है, उन में उसे चाहें तो न लिखें, परन्तु यदि हम ऐसा नहीं करते हैं, तो इस से तत्सम रूप मूल से भटकना भी होगा और मूल का विस्मरण भी होगा। यथा—अकस्मात्, अर्थात्, परिषद्, पश्चात्, पृथक्, भगवान्, महान्, विद्युत्, विद्वान्, विधिवत्, शरद्, श्रीमान्, सम्यक्, सम्राट् आदि में; लेकिन प्रोफेसर रमेश चंद्र महरोत्रा ने लिखा है कि विशेष लेखन में जहाँ वह व्यतिरेकी हो, वहाँ उसे जरूर लिख देना चाहिए, जैसे—

कीर्तिमान् (कीर्तिशाली), कीर्तिमान (रिकॉर्ड);
चित् (चेतना), चित (पीठ के बल);
जगत् (संसार), जगत (कुएँ का चबूतरा);
परीक्षित् (अभिमन्यु का पुत्र), परीक्षित (जाँचा हुआ);
विराट् (बहुत बड़ा), विराट (मत्स्य देश का राजा);
सन् (वर्ष), सन (जूट);
हल् (शुद्ध व्यंजन), हल (समाधान)।

इसी सन्दर्भ में प्रोफेसर रमेश चंद्र महरोत्रा ने लिखा है कि (सावधान! अति-शोधी-करण की झोंक में, उदाहरणार्थ—पंचम्, दशम्, विगत्, नमन्, विराजमान्, शत्-शत्, सतत्' आदि में हल्-चिह्न लगाना बहुत गलत है और लोग ऐसा करने लग गए हैं।)

16. प्रोफेसर रमेश चंद्र महरोत्रा व निदेशालय के अनुसार—हल्-चिह्न और इ की मात्रा—'भङ्गिमा, पट्टियाँ, चिट्ठियाँ, हड्डियाँ, बुद्धि, पद्मिनी, द्वितीय, चिह्नित' आदि अशुद्ध हैं। इन के शुद्ध रूप क्रमशः 'भंगिमा, वाङ्मिति, पट्टियाँ, चिट्ठियाँ, हड्डियाँ, बुद्धि, पद्मिनी, द्वितीय, चिह्नित' आदि हैं। (हलंत/स्वर-हीन वर्ण मात्रा नहीं लेता।) [यहाँ हमारा विचार है कि हमें, जिन्हें हम ने ऊपर अशुद्ध कहा है, उन्हें अशुद्ध नहीं कहना चाहिए, क्यों-कि वे प्रयोग हमारे नागरी के

पारंपरिक लेखन में शताब्दियों से मिल रहे हैं और यदि हम ऐसा करेंगे, तो हमारी नयी पीढ़ी हमारे शताब्दियों के लेखन को अशुद्ध समझेगी और उसे अशुद्ध भी कहने लगेगी; दूसरे कुछ वर्षों बाद उस लेखन को ठीक तरह से पहचान भी नहीं सकेगी; इसलिए हमारा मत है कि हमें पारंपरिक प्रयोग को भी यथावत् रखना चाहिए और विकल्प के रूप में नये प्रयोगों को भी दे देना चाहिए।]

17. प्रोफेसर रमेश चंद्र महरोत्रा ने लिखा है कि जब अर्थ व्यंजन (अ-रहित) और पूर्ण व्यंजन (अ-सहित) का विकल्प हो, तो उसे पूर्ण ही लिखा जाए (अर्ध लिखकर उस से संयुक्ताक्षर न बनाया जाए)। उदाहरण–

त्याज्य	**वरेण्य**	**त्याज्य**	**वरेण्य**
अंग्रेजी	अँगरेजी	गर्दन	गरदन
अक्सर	अकसर	गर्मी	गरमी
इँग्लिश	इँगलिश	पार्टी	पारटी
उल्टा	उलटा	बिल्कुल	बिलकुल
कुर्सी	कुरसी	तस्वीर	तसवीर

...परन्तु मुझे लगता है कि प्रोफेसर महरोत्रा जी का उपर्युक्त निर्णय उचित नहीं है, क्यों-कि देवनागरी की प्रकृति और विशेषता है कि जो शब्द जैसे बोला जाता है, वैसे ही लिखा जाए, ताकि उस की मूल प्रकृति का हनन न हो और चूँकि भाषा का मूलाधार उसका उच्चारण है, अतः उसे ही स्व-सिद्ध मानकर चलना चाहिए। अब प्रश्न उठेगा कि फिर मानक कैसे बनेगा?...यहाँ मानक निर्धारण में आभिजात्य प्रयोग को आधार के रूप में लेना चाहिए और आभिजात्य से अभिप्राय शिक्षित और समाज में प्रतिष्ठित से लेना चाहिए; जैसे–एक समय था, जब अज्ञेय जी नवभारत टाइम्स के प्रधान सम्पादक थे, तो वे शब्दों के जो प्रयोग करते थे, पूरा देश उन प्रयोगों को करता था और वे नित नूतन प्रयोग किया करते थे, अतः मेरे विचार से उपर्युक्त शब्दों के निम्न प्रयोग किये जाने चाहिए–

अ-ग्रहणीय	**ग्रहणीय**	**अ-ग्रहणीय**	**ग्रहणीय**
अंग्रेजी	अँग्रेजी	गरदन	गर्दन
अकसर	अक्सर	गरमी	गर्मी
इँगलिश	इँग्लिश	पारटी	पार्टी
उलटा	उल्टा	बिलकुल	बिल्कुल
कुरसी	कुर्सी	तसवीर	तस्वीर

18. रु में उ की मात्रा है और रू में ऊ की मात्रा है। व्यतिरेकी शब्द-युग्म देखें- दारु (काठ, देवदारु वृक्ष), दारू (शराब)। संकेतानुसार 'दुरुह, जरुरत, नेहरु, शुरु, जागरुक, रुप आदि अशुद्ध है और दुरूह, जरूरत, नेहरू, शुरू, जागरूक, रूप आदि शुद्ध, इसीप्रकार तरूण, रूचि, पुरूष, विरूद्ध, तिरूपति, गुरू अशुद्ध हैं तो तरुण, रुचि, पुरुष, विरुद्ध, तिरुपति, गुरु आदि शुद्ध।

19. विकल्प की स्थिति होने पर श्रुति-मूलक 'य' के प्रयोग से अधिकांश बचना चाहिए, पर कुछ अपवाद भी हैं। उदाहरण के लिए–'(क्रिया) जायेंगी, लीजिये, चाहिये, (परसर्ग) के लिये आदि त्याज्य हैं। इन की जगह क्रमशः जाएँगी, लीजिए, चाहिए, के लिए' आदि वरेण्य हैं। 'मातायें,

हुये, हुयी—जैसे शब्दों में तो 'य' का लिखा जाना विकल्पात्मक नहीं, पूर्णतः अशुद्ध है। (ये 'माताएँ, हुए, हुई आदि शुद्ध हैं)। अब प्रश्न उठेगा कि '(संज्ञा) किराया, किराये, किराए; रुपया, रुपये, रुपए; (विशेषण) नया, नये, नयी, नए, नई; (क्रिया) हँसाया, हँसायी, हँसाई, हँसाये, हँसाए; दिखाया, दिखायी, दिखाई, दिखाये, दिखाए; सोया, सोये, सोयी, सोई, सोए; गया, गये, गयी, गए, गईं; चलाया, चलाये, चलाए, चलायी, चलाई' आदि रूपों का क्या करें?...वस्तुतः भाषा में एक नियमितता होती है और व्याकरण उस नियमितता को नियम के रूप में प्रस्तुत करता है। भाषा में इन-सब के आधार रूप—किराया, रुपया, नया, हँसाया, दिखाया, सोया, गया, चलाया आदि रूप सहज प्रयोग हैं और इन के स्थान पर इन के 'आ' वाले रूप नहीं हैं और न माने जा सकते हैं अर्थात् किराआ, रुपआ, नआ, हँसाआ, दिखाआ, सोआ, गआ, चला आदि रूप नहीं हैं और न माने जा सकते हैं, तो-फिर इन के ये रूप—किराए, रुपए, नए-नई, हँसाई-हँसाए, दिखाई-दिखाए, सोई-सोए, गए-गईं, चलाए-चलाई' भी भाषा की नियमितता के आधार तार्किक नहीं माने जा सकते हैं।

20. आज-कल, अनुयायी, अव्ययीभाव, दायित्व, स्थायी—जैसे शब्दों को भी कुछ लोग अनुयाई, अव्यईभाव, दाइत्व, स्थाई- जैसा लिखने लगे हैं, लेकिन इस लेखन को वैकल्पिक रूप-जैसी मान्यता नहीं मिल पाई है अर्थात् इन के इकार/ईकार वाले रूप स्वीकार्य नहीं हैं।

इसी प्रसंग में श्री प्रभाष जोशी जी का यह मत है कि सर्वत्र 'ये' की जगह 'ए' और 'यी' की जगह 'ई' का प्रयोग करेंगे, श्री जोशी जी का यह निर्णय उन शब्दों की प्रकृति को अनदेखा-सा कर रहा है और यह भी कि सर्व-व्यापकता के उक्त निर्णय के समय कोई आधार भी उन्होंने नहीं दिया।

21. रेफ के पूर्व द्वित्व (या दीर्घ) तथा एकाकी व्यंजन का पर-विकल्प भी मिलता है, अतः दोनों स्वीकार्य हैं, पर सरलता की दृष्टि से सदा एकाकी व्यंजन (सरल रूप) लिखें। उदाहरण—मूर्च्छा-मूर्छा, कर्त्तव्य-कर्तव्य, उर्द्ध-अर्ध, मूर्द्धा-मूर्धा, वर्म्मा-वर्मा आदि।

22. ऑ का यथास्थान प्रयोग करें (आ-ऑ-औ की त्रि-मुखी अर्थ-भेदकता स्पष्ट करने के लिए- काल-कॉल-कौल, ला-लॉ-लौ, हाल-हॉल-हौल)। उदाहरण—ऑफिस, स्टॉक, सी-सॉ। (लेकिन डायलॉग, लाफिंग, स्कार्फ, स्टाफ- जैसे सही शब्दों को 'डॉयलॉग, लॉफिंग, स्कॉर्फ, स्टॉफ'—जैसा न लिख डालें।)

23. सैद्धान्तिक और व्यावहारिक परिशुद्धता के नाम पर ॲ का महत्त्व भी जान लें, जो ए, ऐ, अ सब से अलग है। प्रमाणार्थ—बॅल (घंटी), बेल (लता), बैल, बल। अँग्रेजी से आगत कई सौ शब्दों (ऑ-युक्त शब्दों से भी ज्यादा और काफी ज्यादा) में यह नया स्वर प्रयुक्त हो रहा है। कुछ उदाहरण—इंजेक्शॅन, इंस्पॅक्टर, ॲक्ट्रेस, ॲम.ॲस-सी., गॅस्ट, पॅक, टॅस्ट, डॉयरॅक्टर, पी-ॲच.डी., पॅन, पॅस, बॅड, रेडीमॅड, लॅशर, लॅटर, सॅट, सॅटर, सॅक्स, हॅज, हॅल्थ। ए को भी पहचान लें। 'घॉसलेट' के ए से बॉसकेट' का और 'लॅपेट' के ए से 'लगेज' का ए छोटा है (अर्थात् ऍ है)। अन्य उदाहरण—क्रिकेॅट, कैसेॅट, मार्‌केॅट, लिमिटेॅड, मिसेॅज, लैंग्वेॅज इत्यादि।

हिंदी में ऐसे दो-ढाई दर्जन अँग्रेजी के शब्द इस अंतर को बिना समझे चल रहे हैं।

24. अरबी-फारसी से आगत व्यंजन-ध्वनियों के द्योतक नीचे बिंदी-लगे वर्गों का व्यवहार कम-से-कम तब जरूर किया करें, जब या-तो उन के कारण होने वाली अर्थ-भेदकता स्पष्ट करनी

हो, या—फिर उन का वैसा प्रयोग अभीष्ट हो। उदाहरण—करार-क़रार, हलका-हलक़ा, ताक-ताक़, खाना-ख़ाना, सखी-सख़ी, सीख-सीख़, गौर-ग़ौर, सागर-साग़र, दाग-दाग़, जमाना-ज़माना, सजा-सज़ा, नाज-नाज़, फन-फ़न, अफ़रा-तफरी, कफ-कफ़ (कुछ लोग झोंक में ज को भी ज़ कर डालते हैं, जैसे—ज़न्नत, ज़ाहिल, मज़ाल, लहज़ा।) ज और फ अँग्रेजी से आये हुए शब्दों में भी चलते हैं; उदाहरण—रिज़र्वेशन, सोशलिज़्म; फ़ैन, शिफ़्ट। नुक्ता-युक्त लिखा जाना उचित नहीं है, क्यों-कि यहाँ अर्थ-भेदकता की बात नहीं है।

25. केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निर्देशानुसार हिंदी में ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द, ह के संयुक्ताक्षर हल्-चिह्न लगाकर ही बनाये जाएँ। उदाहरण—ङ्म (वाङ्मय); छ्व (उच्छ्वास); ट्ट नहीं, ट्ट (खट्टा); ठ्य नहीं, ठ्य (पाठ्य); ढ्य नहीं, ढ्य (धनाढ्य); ह्ड नहीं, ड्ढा (बुड्ढा); द्य नहीं, द्य (विद्या); द्व नहीं, द्व (द्वारा); ह्न नहीं, ह्न (चिह्न); ह्म नहीं, ह्म (ब्रह्म); ह्य नहीं, ह्य (बाह्य); ह्व नहीं ह्व (आह्वान) आदि। क, ग और फ के संयुक्ताक्षर इन्हें आगे से तोड़कर बनाएँ, जैसे—क्त (मुक्त); ङ्ग (पङ्गा); फ्त (मुफ्त);...परन्तु हमारा विचार है कि हमें अपनी परम्परा में प्रचलित संयुक्ताक्षरों के प्रयोग को भी जारी रखना चाहिए, क्यों-कि इन से हम दूर हो जाएँगे, तो कालांतर में इन का पहचानना भी हम से दूर हो जाएगा और वैसी रचनाओं को हम न पढ़ पाएँगे और न समझ ही पाएँगे।

26. केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निर्देशानुसार खड़ी पाई हटाकर बनाये जाने वाले अर्ध-व्यंजनों वाले संयुक्ताक्षर ऊपर-नीचे वाले नहीं, आगे-पीछे वाले बनाएँ। उदाहरण के लिए घ्न नहीं, घ्न (विघ्न); च्च नहीं, च्च (सच्चा); ज्ज नहीं, ज्ज (सज्जन); न्न नहीं, न्न (अन्न); ल्ल नहीं, ल्ल (मल्ल); ष्ट नहीं, ष्ट (दुष्ट); ष्ठ नहीं, ष्ठ (घनिष्ठ)। त्त को भी त्त के रूप में लिखें त्ता (पत्ता)।

जहाँ व्यंजनों के द्वित्व के प्रयोग एक-साथ होते हैं, वहाँ लिपि में दोनों व्यंजनों को एक-साथ संयुक्त रूप में बनने वाले अक्षरांश तथा दोनों के अलग-अलग जुड़कर बनने वाले लिप्यक्षरांश भी विकल्प रूप में स्वीकार्य हैं, जिस से परम्परा का बोध भी हो सके और भेदकता के साथ संयुक्तता का भी।

27. 'चिह्न', 'ब्राह्मण'—जैसे तत्सम रूपों के साथ 'न्ह' के अत्यंत प्रचलित हो चुके 'चिन्ह', 'ब्राम्हण'—जैसे हिंदी-कृत रूपों को भी यथा-शैली स्वीकार कीजिए, ऐसा प्रोफेसर महरोत्रा-जैसे विचार वाले अनेक विद्वानों का मत है।

28. संस्कृत में 'तत्त्व, महत्त्व' शुद्ध हैं, पर हिंदी में 'तत्व, महत्व' भी पूर्णतः स्वीकार्य हैं।

...पर हमें लगता है, इसे स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए, क्यों-कि वर्तनी अ-व्यवस्था का नाम नहीं है; हाँ, ये प्रयोग बहु-प्रचलित हो गए हैं, पर बहु-प्रचलितता के आधार पर परम्परा-विरुद्ध और अशुद्ध की स्वीकृति होगी, तो-फिर वर्तनी प्रथमतः अ—व्यवस्था का पर्याय बनने लगेगी और कालांतर में अ-व्यवस्था-रूप प्रचलन में आ ही जाएगी, इस से हमें बचना चाहिए और परंपरा-सिद्ध व व्यवस्था-सिद्ध को ही स्वीकारना चाहिए। इसप्रकार 'तत्व और महत्व' कदापि हिंदी में भी स्वीकार नहीं हो सकता। इसीप्रकार यदि हम 'ब्राम्हण' को मानक/स्वीकार्य मान लें, तो समस्या यह होगी कि इस का मूलाधार 'ब्राम्ह' को मानना होगा, जिस की सिद्धि संभव नहीं और जो प्रयोग में भी नहीं तथा अर्थ का आधार भी नहीं।

29. 'वाला' को यथा-भाव पूर्ण-वर्ती शब्द से मिलाकर भी लिखना होता है और अलग करके भी। उदाहरण—मेरा घरवाला (अर्थात् 'पति'), आनेवाला तूफान; तूफान आने (ही) वाला है (अर्थात् आने को है)। 'मेरे घरवाला पेड़' को 'मेरे घर-वाला पेड़' भी लिखा जाता है।

30. 0 और संख्या-शब्दों के लिए अंकों का प्रयोग उच्चारण भिन्न हो जाने पर न करें। उदाहरण के लिए—चूँकि '1ला, 2रा, 3रा, 4था' को क्रमशः 'एकला, दोरा, तीनरा, चारथा' पढ़ा जा सकता है, इसलिए इन्हें 'पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा' ही लिखें। हाँ, 'पाँचवाँ, पचपनवाँ (पाँच-वाँ, पचपन-वाँ)' आदि लिखा जा सकता है, क्यों-कि इन का उच्चारण भिन्न नहीं है। छह संख्या-वाला संबंधित शब्द 'छठवाँ' नहीं, 'छठा' है (जिस के लिए संस्कृत में पंचम, सप्तम-जैसा शब्द न होकर 'षष्ठ' है)। ऐसे ही उदाहरणार्थ धीरे-धीरे को धीरे-2 न लिखें।

31. समास-चिह्न (हाइफन) का प्रयोग—'और' अर्थ देने पर शब्दों के मध्य '-' का प्रयोग करें, जैसे—'माता-पिता, तू-तू, अच्छा-बुरा, चलना-फिरना, जल्दी-जल्दी'। जहाँ सामासिक चिह्न 'का' आदि का अर्थ दे रहा हो, वहाँ यह चिह्न संबंधित शब्दों के मध्य लगाएँ या आवश्यकतानुसार इसे बिना लगाये उन शब्दों को सटाकर लिखें। उदाहरण—मानव-संसाधन-विकास-मंत्रालय, हिंदी-व्युत्पत्ति-कोश, शब्द-लोप, उस-जैसा, फूल-से बच्चे, पूर्व-मंत्री, सब-इंस्पेक्टर, कम-से-कम, राम-राज्य, आग-बबूला, आत्म-हत्या, चिड़िया-घर। बहुत प्रयुक्त होनेवाले अनेक संयुक्त शब्दों के बीच का समास-चिह्न गिरकर अपने बाएँ-दाएँ के शब्दों को चिपका देता है, जैसे—'भाषा-विज्ञान' से 'भाषाविज्ञान' में। जहाँ कई शब्द मिलकर/एकीभूत होकर अर्थात् एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं, वहाँ उन के बीच में सामासिक चिह्न का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिस से कि उन के मूलाधारों का भी बोध होता रहे और सामासिक रूप का भी।

32. सामासिक पदों में प्रति, यथा, मात्र आदि अव्ययों को मिलाकर लिखें। उदाहरण—प्रतिशत, यथासमय, नाममात्र, मानवमात्र, निमित्तमात्र; परन्तु जहाँ विग्रह दिखाना अभीष्ट हो, वहाँ इन अव्ययों के पहले और बाद में सामासिक चिह्न लगाया जा सकता है। यथा—प्रति-शत, यथा-समय, नाम-मात्र, मानव-मात्र, निमित्त-मात्र।

33. 'श्री' और 'जी' को नाम का अंश होने पर ही मिलाकर लिखें, अन्यथा (आदर-सूचक होने पर) अलग लिखें। उदाहरण—श्री श्रीराम शर्मा, श्री रामजी उपाध्याय, चाचा जी आदि।

34. आज-कल 'आचार्य श्री' पद का प्रयोग अनेक रूपों में हो रहा है, यहाँ स्पष्ट बोध्य यह है कि जब आचार्य का प्रयोग विशेषण के रूप में और श्री का प्रयोग आदर के अर्थ में हो रहा हो, वहाँ इनका प्रयोग पृथक्-पृथक् किया जाना चाहिए और जहाँ ये दोनों पद मिलकर बहुब्रीहि समास का अर्थ दे रहे हों, वहाँ ये दोनों पद मिलाकर या-फिर सामासिक चिह्न के साथ प्रयोग किये जाने चाहिए; यथा—'आचार्यश्री' और 'आचार्य-श्री', मुनिश्री, मुनि-श्री आदि।

35. सामासिक चिह्न से निर्देश-चिह्न (डैश) को दुगना '—' बड़ा लिखें। पहला 'योजक' होता है और दूसरा 'वियोजक'। कुछ लोग सामासिक चिह्न को समास-चिह्न भी कहते हैं, वस्तुतः यह समास-द्योतक या समास-कारक या समास-वाचक चिह्न है, सीधे या केवल 'समास-चिह्न' नहीं। सामासिक चिह्न के रूप में '-' और उदाहरण के लिए '—' का प्रयोग करें। आप देख ही रहे हैं कि दोनों में अंतर 'लघु' और 'दीर्घ' रेखा का है।

36. लोप-चिह्न मुख्य रूप से तीन छोटे-छोटे बिंदुओं से प्रदर्शित किया जाता है। जब किसी शब्द का जान-बूझकर प्रयोग न करना हो या तत्काल याद न आ रहा हो, तो लोप-चिह्न प्रयुक्त होता है और जब बात छूटी हुई हो, तो तीन-तीन बिंदुओं को कई बार लगाया जाता है। यथा—तेरी...तैसी, अरे हाँ... अब याद आ गया, यदि आप... चाहें ... ... तो।

37. संक्षेप-सूचक (॰) का प्रयोग बिंदु (.) की भाँति भी होता है। जैसे—एम. ए.~एम॰ए॰ (मास्टर ऑफ आर्ट्स), पी. एच.डी.~पी-एच॰डी॰, कि.मी.~कि॰ मी॰ (किलोमीटर), से. मी.~से॰मी॰ (सेंटीमीटर), दे.~दे॰ (देखिए) आदि।

38. शब्द-चिह्न ('') का प्रयोग किसी पुस्तक आदि के नाम को एक कॉमा/अल्प-विराम-जैसे उद्धरण-चिह्न में रखा जाता है। यथा—'हमारी मातृभाषा' मातृभाषाओं के गौरव को बताने वाली पुस्तक है। 'अपनी मातृभाषा, परम्परा और संस्कृति का सम्मान करें...' नाम शीर्षक अवश्य पढ़ें।

39. किसी के कहे हुए वाक्य को ज्यों-का-त्यों उद्धृत करते समय, नाटकों में संवाद के साथ तथा किसी सिद्धान्त वाक्य अथवा लोकोक्ति के साथ (‘‘’’) उद्धरण-चिह्न का प्रयोग किया जाता है। यथा—''सुखार्थिनो कुतो विद्या, विद्यार्थिना कुतः सुखम्'', ''अध-जल गगरी छलकत जाय'', आचार्य-श्री कहते हैं—''राख की नींव पर-तो निर्माण फिर-भी सम्भव है, किन्तु किसी विदेशी भाषा की नींव पर राष्ट्र-निर्माण असंभव है।''

40. ऊर्ध्व अल्प-विराम (') का प्रयोग अँग्रेजी के अपॉस्ट्रॉफी के लिए किया जाता है। अँग्रेजी में इस चिह्न का प्रयोग संबंध-कारक का भी सूचक है, पर हिंदी में तो यह चिह्न मात्र' अंक-लोप का ही सूचक है। यथा—सन् '47 से सन् '50 तक = सन् 1947 से सन् 1950 तक।

41. हर्ष, विषाद, घृणा, आश्चर्य, विस्मय आदि प्रकट करने वाले शब्दों, उप-वाक्यों अथवा वाक्य के अंत में विस्मय-सूचक चिह्न या संबोधन-सूचक चिह्न का प्रयोग करते हैं। जैसे—कितना सुहावना है यह स्थान!, हाय! बेचारा मर गया!, इतनी लंबी दीवार! ईश्वर न करे! चिरंजीवी हो!। तीव्र मनोविकार व्यक्त करने के लिए एक ही बार (!) चिह्न का प्रयोग करते हैं। निरंतर वृद्धि के लिए दो चिह्न या तीन चिह्न का प्रयोग अभीष्ट है। जैसे—शोक! शोक!! महाशोक!!!

42. पर-सर्गीय विभक्ति-चिह्न आदि को पूर्व-वर्ती शब्द से अलग लिखें। उदाहरण—बच्चे ने, मुझ (तक) को, कल से, उस (भर) के लिए, आप (ही) का, हम और तुम-सब में से। ('उन्होंने का 'ने' इसलिए अलग नहीं होगा, क्यों-कि 'उन्हों' स्वतंत्र शब्द नहीं है।) 'मैं ने, मुझ को, आप से इस के लिए, जिन में आदि के ये चिह्न बीच में विभाजक शब्द न रहने पर पूर्व-वर्ती सर्वनाम के साथ चिपकाकर भी मान्यता के साथ खूब लिखे जा रहे हैं, पर इन्हें पृथक् लिखा जाना चाहिए।

43. निम्नलिखित अग्राह्य और ग्राह्य और शब्द-रूपों का भेद पकड़ें—

अंत्येष्ठि-अंत्येष्टि, विशिष्ठ-विशिष्ट, अध्यात्मिक-आध्यात्मिक, अपराधिक-आपराधिक, कपालिक-कापालिक, व्यवसायिक-व्यावसायिक, संसारिक-सांसारिक, विदेशिक-वैदेशिक, पुराणिक-पौराणिक, अनाधिकार-अनधिकार, दुरावस्था-दुरवस्था, अत्याधिक-अत्यधिक, अनुग्रहीत-अनुगृहीत, संग्रहीत-संगृहीत, ऐय्याश-अय्याश, तय्यार-तैयार, नैयर-नय्यर, आध्यात्म-अध्यात्म, आर्शीवाद-आशीर्वाद, दुरदशा-दुर्दशा, पुर्नस्थापित-पुनर्स्थापित, प्रार्दुभाव-प्रादुर्भाव, बर्हिमुखी-बहिर्मुखी,

सौहार्द्र-सौहार्द, ऑटोमोबाईल-ऑटोमोबाइल, पाईप-पाइप, फ़ाईल-फाइल, लाईट-लाइट, लाईन-लाइन, उज्जवल~उज्वल-उज्ज्वल, प्रज्ज्वलित-प्रज्वलित, कनिष्ट-कनिष्ठ, गरिष्ट-गरिष्ठ, गाली-गलौच-गाली-गलौज, नाबालिक-नाबालिग, दंपत्ति~दंपति/दंपती, द्रष्टा-दृष्टा, स्रष्टा-सृष्टा, निश्फल-निष्फल, दृष्य-दृश्य, शाबास-शाबाश, पोष्टमास्टर-पोस्ट-मास्टर, टेशन-स्टेशन, सहस्त्र-सहस्र, स्त्रोत-स्रोत आदि। प्रस्तुतीकरण-प्रस्तुति-करण, शुद्धीकरण-शुद्धि-करण, सशक्तीकरण-सशक्ती-करण आदि प्रयोगों में उत्तरवर्ती को ही व्याकरण-सम्मत माने जाने की परंपरा रही है, परंतु इन दोनों प्रयोगों को विकल्पात्मक रूप में स्वीकार्य माना जाना चाहिए, क्यों-कि पूर्ववर्ती प्रयोग हमारी भिन्न व्याकरण-परंपरा से भी सिद्ध है। इस की विशद चर्चा व्याकरण संबंधित रचना में पृथक् से की जाएगी।

44. इसप्रकार के दो प्रयोग मिलते हैं, 'इस' 'प्रकार' यहाँ प्रथम प्रयोग ग्राह्य नहीं हैं, क्यों-कि 'इस' तिर्यक् सर्वनाम रूप और 'प्रकार' संज्ञा रूप। इन दोनों का जो पृथक्-पृथक् अर्थ है, वह इसप्रकार में ग्राह्य नहीं, दोनों का मिलकर जो संयुक्त अर्थ है, वही ग्रहणीय है। अतः इस और प्रकार का जो मिला हुआ 'इसप्रकार' रूप है, वही अर्थ की दृष्टि तथा सामासिकता की भी दृष्टि से ग्रहणीय है। यह हिंदी का विशेष प्रकार का सामासिक रूप है, जो अव्यय रूप है और जिस की पृथक् से हिंदी व्याकरण में चर्चा अपेक्षित है।

45. हिंदी में बहुत सीमा तक विशेषण और क्रिया का लिंग संज्ञा के लिंग पर निर्भर करता है, इसलिए संज्ञा का लिंग कोश आदि व क्षेत्र विशेष की अवधारणा/संपर्क से जान लेना पहली जरूरत है। गलत लिंग-प्रयोगों की सूची व्यक्ति-व्यक्ति के अनुसार बहुत लंबी हो सकती है। यहाँ कुछ नमूने देखें और कोष्ठकों में दिये गए संकेत के अनुसार विशेषण और क्रिया का लिंग स्वयं सुधार लें—(अ) अच्छी बजट (पुल्लिग), की लालच (पुल्लिग), संस्थान (पुल्लिग), टूटी हुई वाहन (पुल्लिग), टिकट (पुल्लिग) माँगी, पॉलिश (पुल्लिग) कर ली, स्कूल (पुल्लिग) खुल गई, फ्रिज (पुल्लिग) खरीदी गई। (आ) पराए स्त्री (स्त्रीलिंग), हमारा जीवात्मा (स्त्रीलिंग), ऐसा बकवास (स्त्रीलिंग) अच्छा नहीं लगता, प्रदेश के जेलों (स्त्रीलिंग) में, रामायण (स्त्रीलिंग) पढ़ा, असलियत (स्त्रीलिंग) सामने आना चाहिए, शिकायत (स्त्रीलिंग) किया गया।

विशेषण और विशेष्य का लिंग क्षेत्र के अनुसार बोध्य है, उदाहरण के लिए भोजपुरी, अवधी में दही खट्टी है और ब्रज में वही दही खट्टा है।

46. सामासिक शब्द का लिंग पूर्व-वर्ती नहीं, पर-वर्ती अर्थात् बाद वाले शब्द के अनुसार होता है, जैसे—'बीजों के विक्रय-दरों में कमी' गलत है। चूँकि 'दर' स्त्रीलिंग है, इसलिए 'के' की जगह 'की' होगा। इस के विपरीत, 'उस के क्रोध-ज्वाला में' क्रोध के अनुसार 'उस के' नहीं, 'ज्वाला' के अनुसार 'उस की' होगा आदि।

47. 'लड़का, डाकिया, साला, समझौता, धंधा, घोड़ा' जैसे आकारांत, पुल्लिग, एकवचन, जातिवाचक, संबोधन-रिश्ते से इतर, तद्भव संज्ञाओं के बाद परसर्ग आदि होने पर इन्हें और इन के पूर्व-वर्ती 'बड़ा, दूसरा-जैसे आकारांत, पुल्लिग, एकवचन विशेषण को विकारी रूप देकर एकारांत बनाएँ; जैसे—लड़के ने कहा ('लड़का ने' नहीं), डाकिए की जेब में ('डाकिया की' नहीं), बड़े साले से ('बड़ा साला से' नहीं), ताजे समझौते से धंधे में हानि ('ताजा समझौता से धंधा में' नहीं),

घोड़ेवाले पर ('घोड़ेवाला' पर या 'घोड़ावाला पर' नहीं), मेरे दूसरे बेटे के बेटे को देखो ('मेरा दूसरा बेटा का बेटा को' नहीं) आदि।

48. 'ने' से संबंधित विविध प्रयोगों के प्रति सचेत रहें। उदाहरणार्थ—

अशुद्ध	**शुद्ध**
मैं चिट्ठी लिखा।	मैं ने चिट्ठी लिखी।
हम सिनेमा देखे।	हम ने सिनेमा देखा।
लड़की कूड़ा फेंक दी।	लड़की ने कूड़ा फेंक दिया।
भाभियाँ छोले बनाई होंगी।	भाभियों ने छोले बनाये होंगे।
माता जी उसे बताई।	माता जी ने उसे बताया।
आप अवश्य सुने होंगे।	आप ने अवश्य सुना होगा।

इसी क्रम में—लड़कों ने किताबें लाई थीं। लड़के किताबें लाये थे। नियम—'ने' केवल अभिकर्ता कारक में तब लगता है, जब कर्तृ क्रिया सकर्मक और भूतपक्ष में हो ('लाना'—जैसे दो-एक अपवादों का छोड़कर)। इस के मौजूद रहने पर वाक्य की क्रिया का लिंग-वचन कर्म के अनुसार चलता है, बशर्ते कि वह कारक-चिह्न से रहित हो।

49. मुख्य क्रिया को व्यर्थ ही एकारांत न बनाएँ। उदाहरण—

अशुद्ध	**शुद्ध**
मैं कर देते रहता हूँ।	मैं कर देता रहता हूँ।
वह हाथ मलते रहा।	वह हाथ मलता रहा।
तू पैसे लुटाते फिरेगी।	तू पैसे लुटाती फिरेगी।
वह प्रेमी बदलते गई।	वह प्रेमी बदलती गई।

50. मानक हिंदी की दृष्टि से 'बच्चा फिंका जाता, बच्ची अपनी फिंकाई, रस्सी खिंचा जाएगी, घर बिका गया' आदि को 'बच्चा फिंक जाता, बच्ची फिकी, रस्सी खिंच जाएगी, घर बिक गया' आदि होना चाहिए।

51. कृदंत की पूर्वकालिकता पूरी करने के लिए 'कर' क्रिया के आगे 'के' तथा अन्य क्रियाओं के आगे 'कर' या 'के' को धातु से चिपकाकर लिखें, पर जहाँ संज्ञा या विशेषण के बाद पूर्वकालिक वाचक रखना अभीष्ट है, वहाँ उसे संज्ञा/विशेषण से बिना चिपकाए लिखें (विभाज्यता के तर्क पर)। उदाहरण—झगड़कर-झगड़ा करके, पतला करके, चौड़ा करकर या करके, लंबा करकर या करके, सुनाकर और सुनवाकर, सुन-सुनाकर, सुनकर (या 'सुन के')।

52. 'मत' का प्रयोग केवल अशिथिल आज्ञार्थ में करें। ''मत जा; मत जाओ; मत जाइए''; ''मत जाइएगा'' में 'मत' सही है, ''मत जाए; मत जाएँ'' में गलत। ''कहीं वह छुट्टी मत मार दे; वे कहते हैं कि प्रतिनिधि आएँ मत; उस से कह दो कि वह ऐसा मत करे'' में 'मत' की जगह 'न' होगा।

53. जब वाक्य के प्रथम भाग में कारण या वजह से 'या' 'लिए'-जैसा शब्द आ चुका हो, तब क्यों-कि नहीं, 'कि' लिखें। उदाहरण (अशुद्ध-शुद्ध)—'वह इस कारण गई, क्यों-कि बीमार थी' अशुद्ध, 'वह इस कारण गई कि बीमार थी' शुद्ध। 'मैं इस वजह से सोया, क्यों-कि थका था'

अशुद्ध, 'मैं इस वजह से सोया कि थका था' शुद्ध। 'आप इसलिए आइए, क्यों-कि हम साथ चलेंगे' अशुद्ध, 'आप इसलिए आइए कि हम साथ चलेंगे' शुद्ध।

54. बहुत्र देखा गया है कि 'पर' की जगह हम 'में' का प्रयोग कर बैठते हैं, जब-कि वहाँ 'पर' का प्रयोग होना चाहिए, अतः ऐसे स्थलों पर 'में' की जगह 'पर' लिखें। उदाहरण—साइकिल में 44 सवार; स्टोव में चाय चढ़ी है; खाट में बैठ जाइए; पति काम में गए हैं; दुश्मन ने जेल में हमला बोल दिया; वह लेख दूसरे पृष्ठ में देखें; वह छप्पर में चढ़ गया; आँखों में पट्टी बँधी है; दीवारों में नारे लिखे थे; मूँछों में ताव दे दो।

55. 'लगभग' लिखने की जरूरत परखें। अर्थतः अर्थात् अर्थ की दृष्टि से इस की जरूरत किसी स्थूल संख्या के दोनों ओर कुछ कम-ज्यादा रूप आस-पास की अनिश्चितता दिखाने के लिए वहाँ होती है, जहाँ किसी कारण से ठीक गणना संभव न हो। गलत उदाहरण—लगभग सत्तावन परिवार; लगभग सौ से अधिक; देश में लगभग पंद्रह-बीस दल हैं; लगभग तीन किताबें। (उदाहरणों में 'लगभग' का प्रयोग समुचित नहीं है।) इन के स्थान पर ये प्रयोग उचित हैं—लगभग पचपन-छप्पन या छप्पन-सत्तावन परिवार; लगभग निन्यानवे-सौ या सौ-एक-सौ-एक; देश में लगभग पंद्रह-सोलह या सोलह-सत्रह या उन्नीस-बीस या बीस-इक्कीस दल हैं; लगभग दो-तीन या तीन-चार किताबें।

56. अनेक, अनंत और बहुत प्रयोग स्वयं बहु-वचन के वाचक हैं, अतः इन के स्थान पर किये जाने वाले अनेकों, अनंतों और बहुतों प्रयोग गलत हैं।

57. क्रियार्थक संज्ञा के एकारांत विकारी रूप (जैसे—सुनने, बनाने) का अनुसरण यदि गति-वाची क्रिया (जैसे—'जा या चल' न कर रही हो, तो) निम्न प्रदत्त उदाहरणों के अनुसार क्रिया के बाद 'को' या 'के लिए' का न लिखा जाना अधूरा-पन है—बातें सुनने-पढ़ने मिलीं, संकट से निबटने सामूहिक प्रयास, व्यवस्था सुधारने कड़े कदम, शासन मदद देने सदा तत्पर, दल का नायक बनाने जोड़-तोड़ शुरू आदि अर्थात् इन के बाद 'को' या 'के लिए' अवश्य लिखा जाना चाहिए।

58. लिंग-वचन से अप्रभावित क्रियार्थक संज्ञा और लिंग-वचन से प्रभावित उस के मुख्य क्रिया-रूप में अंतर पहचानें। उदाहरण—दोष-युक्त और दोष-मुक्त क्रियार्थक संज्ञा-रूप—पेड़े खाने ठीक रहेंगे। पेड़े खाना ठीक रहेगा। रोटी खानी लाभप्रद है। रोटी खाना लाभप्रद है। रोटियाँ खानी ठीक नहीं। रोटियाँ खाना ठीक नहीं। मुख्य क्रिया-रूप—मुझे पेड़े खाना थे। मुझे पेड़े खाने थे। उसे रोटी खाना चाहिए। उसे रोटी खानी चाहिए। मुझे रोटियाँ खाना हैं। तुझे रोटियाँ खानी हैं।

59. कुछ अन्य अशुद्ध और शुद्ध प्रयोगों के उदाहरण—'दरअसल में नहीं, 'दरअसल' वा 'असल में' '।' 'बावजूद भी' नहीं, 'बावजूद' (या 'मौजूद होते हुए भी') सही। 'मेरे से तेरे को' नहीं, 'मुझ से तुझ को' सही। 'तुम्हारा हस्ताक्षर' नहीं, 'तुम्हारे हस्ताक्षर' सही। 'सभी चारों' नहीं, 'सभी चार' या 'चारों'। 'कहाँ पर' नहीं, 'कहाँ' (या 'किस जगह पर')। 'की बजाय' नहीं, 'के बजाय'। 'यह चले गए' नहीं, 'ये चले गए'। 'वह राष्ट्रपति हैं' नहीं, 'वे राष्ट्रपति हैं'। 'बस या मोटर-साइकिल की ठोकर' नहीं, 'बस या मोटर-साइकिल की टक्कर'। 'भगवान् का दर्शन करें' नहीं, 'भगवान् के दर्शन करें'। शब्द-भंडार-शैली-प्रवहमानता की दृष्टि से मानक हिंदी के निरंतर विकसित और व्यापक होते आधुनिक रूप में संस्कृत, उर्दू, अँग्रेजी आदि के हजारों प्रचलित शब्द पूरी तरह घुल-मिल और मिल-जुलकर प्रयुक्त हो रहे हैं। इस संबंध में हिंदी के प्रमुख समाचार-पत्रों से लिये गए कुछ नमूने

द्रष्टव्य हैं—चिकित्सक के खिलाफ रिपोर्ट, फरियादी की आपत्ति, ड्राफ्टिंग मशीनों का विक्रय, फिटनॅस-प्रमाणपत्र, मुलाकात के दौरान लोकतंत्र के सिद्धान्तों को कायम रखा गया।

60. ड और ड़ तथा ढ और ढ़ के अंतर के सम्यक् प्रयोग की जानकारी न होने से इस से संबंधित अशुद्धियाँ बहुत होती हैं, हमें इस की सजगता की जानकारी का प्रचार करना चाहिए, ताकि ऐसी अशुद्धियों से बचा जा सके। वस्तुतः 'ड़' और 'ढ़' का प्रयोग स्वर-मध्यम अर्थात् दो स्वरों के बीच में और शब्दांत में ही होता है (जो लोग अधिकांश हिंदी प्रयोग को व्यंजनांत मानते हैं, उन के मत में और जो अधिकांश हिंदी प्रयोग को स्वरांत मानते हैं, उन के मत का ग्रहण तो ऊपर के नियम से हो रहा है)। यथा—

पड़ा, खड़ा, सड़ा, बूढ़ा, बढ़ाना, जड़ना, खड़ाऊँ, गढ़ा, गढ़ी, पढ़ना आदि।

61. समास और संधि के अंतर को समझकर ही प्रयोग कीजिए। संधि कभी शब्द की बाहरी संरचना को और कभी आंतरिक संरचना में ध्वन्यात्मक परिवर्तन करती है, जब-कि समास प्रमुखतः अर्थ की संरचना को प्रभावित करने के आधार पर बाह्य संरचना में परिवर्तन करता है। भाव यह है कि समास में प्रमुखतः अर्थ-संरचना प्रधान है और सन्धि में ध्वन्यात्मक बाह्य संरचना।

62. 'लिये' और 'लिए' के अंतर को भी समझते हुए ही प्रयोग करें। पहला 'लिये' भूत-कालिक एक वचन 'लिया' क्रिया का बहु-वचन रूप है और दूसरा 'लिए' अव्यय पदांश या क्रियापूरक भी; यथा—1. उस ने 10 आम लिये; यहाँ 'लिये' किसी वस्तु के लेने के अर्थ में है। 2. मैं ने तुम्हारे लिए आभूषण खरीदे। यहाँ 'लिए' दूसरे व्यक्ति के लिए अर्थात् सम्प्रदान के अर्थ में प्रयुक्त है और अव्यय पदांश भी। 3. मैं ने तुम्हारे लिए आभूषण खरीद लिए। यहाँ 'लिए' खरीदने की क्रिया का पूरक है, अतः क्रियापूरक है, लेना क्रिया के अर्थ में नहीं।

इसी प्रकार 'दिये' और 'दिए' के अन्तर को समझना चाहिए। प्रथम 'दिये' देना-अर्थवाचक 'दिया' क्रिया का बहु-वचन एवं दीपक अर्थवाचक 'दिया' का बहु-वचन रूप भी है और द्वितीय 'दिए' क्रियापूरक घटक है। यथा—अ. उस ने रुपये दिये। ब. उस ने दस दिये भेंट कर दिए। इन दोनों वाक्यों में पहली क्रिया दिये और दूसरे वाक्य के पहले प्रयोग में 'ये' युक्त 'दिये' का प्रयोग करना होगा। जब-कि मैं ने उसे आवश्यक काम करने दिए। यह द्वितीय 'दिए' देना अर्थवाचक नहीं है। वह तो क्रियापूरक है, जब-कि पहला देना अर्थवाचक है और दीपक अर्थवाचक 'दिया' का बहु-वचन है।

63. जहाँ 'आ' और 'जा' का 'आना' और 'जाना' के अर्थ में हिंदी की भूत-कालिक क्रिया के संबंध में प्रयोग करेंगे, वहाँ तो इन के रूप 'आयी', 'आये' और 'गयी', 'गये' उपयुक्त हैं, परन्तु जहाँ सहायक क्रिया या अन्य क्रिया-निष्पादक घटक के रूप में इन का प्रयोग करना हो, वहाँ इन के 'आई', 'आए' तथा 'गई', 'गए' प्रयोग किये जाने चाहिए। जैसे—वे लोग दस किताबें पढ़ गए (यहाँ गए का गमन अर्थ नहीं है, वह तो पढ़ने की स्थिति बताने वाला क्रिया-निष्पादक या क्रियापूरक घटक है)। दस लड़के गाँव गये। (यहाँ 'गये' का गमन अर्थ है और वह 'गया' का बहुवचन रूप है)। इसीप्रकार आगमन अर्थ में 'आ' के प्रयोग को भी लेना चाहिए।

64. ऊपर का नियम यह भी संकेत करता है कि जहाँ एक वचन भूतकाल की समापिका क्रिया में 'या' प्रत्यय लगता है, वहाँ उस का बहुवचन रूप 'ये' का ही प्रयोग करना चाहिए।

65. हिंदी की सामान्य प्रकृति है कि दो स्वरों का सामान्यतः एक-साथ बिना श्रुति के

प्रयोग नहीं होता, अपवादों को छोड़कर। इसी प्रकार नया, गया, आया आदि के भी बहुवचन बनाने चाहिए।

66. खायेंगे-खायेंगी, पियेंगे-पियेंगी, जायेंगे-जायेंगी, आयेंगे-आयेंगी, रोयेंगे-रोयेंगी, सोयेंगे-सोयेंगी आदि में 'य' श्रुति वाले प्रयोग उचित नहीं हैं, क्यों-कि इन के अधिकांश उच्चारणों का जब संग्रह किया गया, इन के 'य' श्रुति-रहित व चन्द्र-बिंदु-सहित प्रयोग ही मिले यथा—खाएँगे-खाएँगी, पिएँगे-पिएँगी, जाएँगे-जाएँगी, आएँगे-आएँगी, रोएँगे-रोएँगी, सोएँगे-सोएँगी आदि; इसीप्रकार इन के एकवचन रूप खायेगा-खायेगी, पियेगा-पियेगी, जायेगा-जायेगी, आयेगा-आयेगी, रोयेगा-रोयेगी, सोयेगा-सोयेगी आदि ग्रहणीय नहीं और इन के स्थान पर खाएगा-खाएगी, पिएगा-पिएगी, जाएगा-जाएगी, आएगा-आएगी, रोएगा-रोएगी, सोएगा-सोएगी आदि का प्रयोग करना चाहिए, अतः इन प्रयोगों को ही हम अपवाद रूप मानक मानेंगे।

67. हम अज्ञेय जी के इस विचार से सहमत हैं कि जब लिखायी, पढ़ायी, चढ़ायी आदि क्रियाओं का प्रयोग संज्ञा के रूप में हो, तो 'ई' का प्रयोग किया जाए, क्योंकि ये दोनों प्रयोग की व्याकरणिक कोटि के अन्तर को भी दिखाने वाले होंगे और इन के उच्चारण भी भिन्न-भिन्न होंगे।

68. हिन्दी और नागरी एवं भारतीय भाषाओं में लिपि के स्तर पर तो तीन प्रकार के क्रमशः श, ष और स हैं, परंतु उच्चारण के स्तर पर हिंदी की जनपदीय भाषाओं में से ही किसी-किसी में दो और किसी में तो केवल एक ही है, अतः लिखते समय इन के सम्यक् प्रयोग में प्रायशः बहुत अशुद्धियाँ होती हैं, इसलिए इन का प्रयोग बहुत सजग होकर किया जाना चाहिए, क्यों-कि ये तीनों शब्द प्रयोग के स्तर पर अर्थ-भेदक भी हैं। यथा—कोश (शब्द भंडार के अर्थ में), कोष (धन संग्रह के अर्थ में), कोस (दूरी की माप के अर्थ में)।

69. हिंदी की जनपदीय भाषाओं के उच्चारण को ठीक उसी रूप में लिखे जाने की दृष्टि से अभी तक नागरी को समृद्ध नहीं किया गया, जिस का परिणाम यह है कि हिंदी की जनपदीय भाषाएँ ही अपने उच्चरित रूप को सुरक्षित करते हुए नागरी में नहीं लिखी जा पातीं, फलतः हिंदी के जनपद नागरी को अपना या अपना-जैसा नहीं मान पाते, इस के लिए हमें व्यवस्था करनी होगी, हम ने ऊपर ॲ, ऍ की बात तो की, पर अवधी और बुंदेली में ह्रस्व ओकार भी है, जिसे 'ऑ' के रूप में लिखा जाना चाहिए। जैसे—बुंदेली में 'रखो' और 'चलो' रूप नहीं है, वहाँ तो 'रखौं' और 'चलौं' है, अतः हमें ऐसे रूपों को लिखने के लिए सजग होकर नागरी में उक्त प्रकार की व्यवस्था करते हुए उक्त तरह से ही लिखने की आवश्यकता है।

70. हिंदी में बहुवचन बनाने की प्रक्रिया में प्रमुखतः एक वचन के दीर्घ ईकार स्वर को ह्रस्व किया जाता है। आप निम्न उदाहरणों से वर्तनी के नियम को पुष्ट कर सकते हैं—दवाई, प्राणी, लड़की, कठिनाई, दूरी के क्रमशः दवाइयाँ, दवाइयों; प्राणियों; लड़कियाँ, लड़कियों; कठिनाइयाँ, कठिनाइयों; दूरियों आदि।

71. हिंदी देवनागरी में अभी तक अर्ध-विराम (,), सार्ध-अर्ध-विराम (;) और विराम चिह्न (।) के नियम नहीं बने, निदेशालय के मानकीकरण में इन्हें ही अल्पविराम (,), अर्ध-विराम (;) और विराम (।) कहा गया। लोक-भाषा में इन्हें ही आधा विराम, पौना विराम और विराम कहा जाता है। लोक-भाषा में छंद की पूर्ति पर विराम के द्वित्व का भी प्रयोग होता है, जिसे पूर्ण विराम कहने

की परंपरा है। इसे ही छंद की भाषा में यति और विराम से भी समझा जाता है, परन्तु उन के प्रयोगों में वह सजगता अभी अधिकांश हिंदी समाज में नहीं है, जो होनी चाहिए। शब्दों के बीच की दूरी को अंतराल कहा जाता है और इसीप्रकार अंतराल की भिन्नताओं को लेकर भी या उन्हें रेखांकित करने वाले नियम भी नहीं बने, अतः उन के प्रयोगों में भी वह सजगता नहीं है, जो होनी चाहिए। यद्यपि मैं स्वयं अपने लेखन में इन नियमों का अपने स्तर पर प्रयोग कर रहा हूँ, पर ये सभी नियम एक स्थान पर संगृहीत नहीं हैं, अतः हम इन नियमों को शीघ्र रेखांकित करते हुए पृथक् से प्रकाशित करेंगे।

चूँकि किसी भी भाषा के शब्द हिंदी में घुसकर, हिंदी के नियमों में ढलकर, हिंदी को कमजोर नहीं बना सकते, इसलिए चाहिए यह कि अपने पूर्वाग्रह छोड़कर ऐसी हर अभिव्यक्ति को हिंदी और उस की वर्तनी नागरी में स्थान दिया जाए, जो किसी भी हिंदी-भाषी की जबान पर ज्ञान और मान-सम्मान के साथ चढ़ चुकी हो। हिंदी केवल हमारे एक व्यक्ति या एक घर की भाषा नहीं है, यह-तो अब संपूर्ण विश्व की भाषा बन चुकी है और ऐसे ही अन्य अनेक भारतीय भाषाएँ भी। □

रचनाकारों के पते

रजनीश कुमार शुक्ल : कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 07152-230904, 230907 (का.), rksphilosphy@gmail.com

जवाहरलाल कौल : 301, रामा अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. 2, सेक्टर-11, द्वारिका, नई दिल्ली-110075, 9711361937, kauljawaharlal@gmail.com

रतनलाल शांत : एम. 201, रॉयल पॉम्स, अखनूर रोड, तालाब तिल्लो, जम्मू-180002 (जम्मू-कश्मीर), 9419684914, rlshant201@gmail.com

महेश कौल : मकान सं. 101, बुआ मंदिर के निकट, पातोली, मैगोट्रियन, जम्मू-180001 (जम्मू-कश्मीर), 8899793779, kaulmahesh@rediffmail.com

जयंत उपाध्याय : सहायक आचार्य, दर्शन एवं संस्कृति विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि., वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9415618968, 7355014441, drjayantupadhyay@gmail.com

प्रमोद कुमार सिंह : सहायक आचार्य, दर्शनशास्त्र विभाग, जे.एन. कॉलेज, धुर्वा, रांची-834002, (झारखंड), 9955582972, pramodsingha@gmail.com

ज्योति शुक्ला : संपादन सहायिका, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, 35 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली jyotishukla195@gmail.com

अवतार मोटा : मकान सं. 28, बैंक कॉलोनी, कैंप रोड, तालाब तिल्लो, जम्मू-180002 (जम्मू-कश्मीर), 7889532686, akm24776@gmail.com

नंदिनी सिन्हा : पी-एच.डी. शोधार्थी, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 7903433301, 9934334043, nandini10om@gmail.com

अप्रमेय मिश्र : 5C नलिनी निवास, दाऊदपुर, डी.आई.जी. बंगले के सामने, गोरखपुर-273001 (उ.प्र.), 9540508953, drapramay@gmail.com

शशिशेखर तोषखानी : डी-8/8050, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, 9871781391

अग्निशेखर : 'सुम्बल', बी-90, लेन 12, भवानी नगर, जानीपुर, जम्मू-180007 (जम्मू-कश्मीर), 96970033775, agnishekharinexile@gmail.com

के.एन. पंडित : जेएमसी-1048, जवाहरनगर, तालाब तिल्लो, जम्मू-180002 (जम्मू-कश्मीर), 9469650591, knp627@gmail.com

अमित कुमार विश्वास : सहायक संपादक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9970244359, amitbishwas2004@gmail.com

योगेश शर्मा : सहायक आचार्य, संस्कृत दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022, (राजस्थान), 9509451183, ycsharma2004@gmail.com

क्षमा कौल : 90 बी, लेन संख्या 12, भवानी नगर, जानीपुर, जम्मू-180007 (जम्मू-कश्मीर) 9906001813, kaulkshama@gmail.com

मयंक शेखर : सहायक आचार्य, स्कूल ऑफ हिस्टोरिकल स्टडीज, नालंदा विश्वविद्यालय, राजगीर-803116 (बिहार), 9711055441, mayank.shekhar@nalandauniv.edu.in

उदय प्रताप सिंह : बी.एफ.एस. 13, हरनारायण विहार, सारनाथ, वाराणसी-221007, (उ.प्र.), 9415787367, dr.udaipratapsinghvns@gmail.com

जयप्रकाश सिंह : सहायक आचार्य, कश्मीर अध्ययन केंद्र, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला-176215 (हिमाचल प्रदेश), 9882601975, jpsh.pol@gmail.com

शंभू जोशी : सहायक आचार्य, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9970865987, shambhujoshi@gmail.com

दीपक बुदकी : भारतीय डाक सेवा (सेवानिवृत्त), पूर्व सदस्य पोस्टल सर्विसेज बोर्ड, ए -102, एस जी इंप्रेशन, सेक्टर 4-बी, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012 (उ.प्र.), 9868271199, deepak.budki@gmail.com

मिथिलेश कुमार : सहायक आचार्य, महात्मा गांधी फ्यूजी गुरुजी सामाजिक कार्य अध्ययन केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9764969689, mkt1980@gmail.com

प्रेमी रोमानी : डी.-1806, असवारी, नादेड़ सिटी, सिंहगढ़ रोड, पुणे-411041 (महाराष्ट्र), 7889930656, premi_romani@yahoo.co.in

हिमांशु शेखर : सहायक आचार्य, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9871520878, himanshu_jnu@yahoo.co.in

कृपाशंकर चौबे : अधिष्ठाता, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9836219078, drkschaubey@gmail.com

गौरीशंकर रैणा : 169, बी-पॉकेट, ए.जी.-1, विकासपुरी, नई दिल्ली-110018, 9810479810 gsr19@rediffmail.com

विनोद कुमार गुप्ता (निर्मल विनोद) : 1/सी, हरि सिंह नगर, रिहाड़ी कॉलोनी, जम्मू- 180005, (जम्मू-कश्मीर), 9419139311, drnvinod16@gmail.com

पद्मा सचदेव : 2 बी, 81 विंडरमेरे, ऑफ न्यू लिंक रोड, ओशीवारा, अंधेरी वेस्ट, मुंबई- 400053, (महाराष्ट्र), 9811147654

आशीष कौल : फ्लैट नं. 301/302, बी विंग, रिवीरा टावर लोखंडवाला टाउनशिप, कांजीवली इस्ट, मुंबई-400101 (महाराष्ट्र), 9920423303, ashishkaul@gmail.com

रहमान राही : विचारनाग, सउरा, श्रीनगर (जम्मू-कश्मीर), 01942402353

रफीक राज : इंदिरा गांधी रोड, बगाट बरगला, श्रीनगर-190005(जम्मू-कश्मीर), 7889968878, rafiqraaz@gmail.com

फारूख नाजकी : 58, शिवपोरा, हाउस नं. 398, श्रीनगर-190001(जम्मू-कश्मीर), 9419012874, farooqnazki@gmail.com

शबनम अशायी : ऑल इंडिया रेडियो, रेसिडेंसी रोड, नियर जीरो ब्रिज, श्रीनगर-190001 (जम्मू-कश्मीर), 7006550763

मोहन सिंह : गुरहा सलाथियन मंडी, उध डगराली, सांबा-181143 (जम्मू-कश्मीर), 9419182817, 7051987355, mohansinghduggar@gmail.com

ध्यान सिंह : ग्राम एवं पोस्ट–बतेरा, जम्मू-181206 (जम्मू-कश्मीर) 9419259879

महाराज कृष्ण संतोषी : 113/ए, लेन 4, आनंद नगर, बोहरी, तालाब तिल्लो, जम्मू-180002 (जम्मू-कश्मीर), 9419020190, mksantoshi7@gmail.com

सतीश विमल : एल-2, रेडियो कॉलोनी, राजबाग, श्रीनगर-190008, (जम्मू-कश्मीर), 9419059179, satishvimal@gmail.com

दिलीप कुमार कौल : मकान नं. 25/2, साईं बाबा वाली गली, सर्वोदय कन्या विद्यालय के सामने, कुतुबगढ़, दिल्ली-110039, 9910047612, dikulkaul@gmail.com

कुलदीप चंद अग्निहोत्री : कुलपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला-176215 (हिमाचल प्रदेश), 9418177778, kuldeepagnihotri@gmail.com

आशुतोष भटनागर : निदेशक, जम्मू-कश्मीर अध्ययन केंद्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली, 9871873686, ashujksc@gmail.com

सीमा संगसार : फुलवरिया, बरौनी, बेगुसराय (बिहार), 9304268005, sangsar.seema@gmail.com

नेहा चतुर्वेदी : बी-8, एफ-407, सुभाष नगर हाउसिंग कॉम्पलेक्स, रिषा ग्लास फैक्ट्री के समीप, पोस्ट–प्रभाष नगर, सेरामपोर हुगली- 712249 (पश्चिम बंगाल), 9339715766, nehapresi@gmail.com

विजय कुमार कौल : निदेशक, सूचना एवं भाषा अभियांत्रिकी केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र), 9970720873, kaulv2002@yahoo.com

सुप्रिया पी. : सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, तेजस्विनी हिल्स, पोस्ट पेरिया, कासरगोड-671320 (केरल), 9747293735, supriya@cukerala.ac.in

मनोरंजिनी कोटेमने : बी-503, समीर बिल्डिंग, सुशील समीर सीएचएस, चिल्ड्रेन एकेडमी स्कूल के समीप, अशोक नगर, कांदिवली ईस्ट, मुंबई- 400101 (महाराष्ट्र), 9900484788/9481013466 kmanoranjnee@gmail.com

टी.जी. प्रभाशंकर प्रेमी : अवकाश प्राप्त हिंदी प्रोफेसर, बेंगलुरु विश्वविद्यालय, बेंगलुरु-560056, (कर्नाटक), tgprabhashankar@yahoo.com

एम. गोविंदराजन : फ्लैट नं. 11, जी 1, कृष्ण रेखा अपार्टमेंट्स, एस.आर.वी.एस. कॉलोनी मेन रोड, कील् कट्टलै, चेन्नई-600117 (तमिलनाडु), 7010148266, 8303300125 mgovindrajan@gmail.com

एम. वेंकटेश्वर : फ्लैट नं. 310, कंचेरला टावर, गोलकोंडा क्रॉस रोड, मुशेराबाद, हैदराबाद-500020 (तेलंगाना), 9849048156, mannar.venkateshwar9@gmail.com

अशोक चावड़ा : 3, मधुबन अपार्टमेंट्स, गायत्री ज्ञानपीठ के निकट, ओल्ड वडाज, अहमदाबाद-380013 (गुजरात), 9426680633, a.chavda@yahoo.co.in

संदीप मधुकर सपकाले : सहायक आचार्य, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001(महाराष्ट्र),9175606910, smsapkale@gmail.com

हरमहेन्द्र सिंह बेदी : कुलाधिपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला-176215 (हिमाचल प्रदेश), 9356133665, harmohinderbedi@gmail.com

अरुण होता : 2 एफ, धर्मतल्ला रोड, कस्बा, कोलकाता-700042, (पश्चिम बंगाल), 9434884339, ahota5@gmail.com

कल्लोल चक्रवर्ती : फ्लैट नं. जी-1, प्लॉट नं. 1/22ए, राजेंद्रनगर, सेक्टर-5ए, साहिबाबाद, जिला-गाजियाबाद-201005, (उ.प्र.), 9873498474, kc5068@gmail.com

रसाल सिंह : अधिष्ठाता, छात्र कल्याण, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू-180012, (जम्मू-कश्मीर), 8800886847, rasalsingh.du@gmail.com

रोमसा शुक्ला : शोधार्थी, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद-380009, (गुजरात), 9667179592, shuklaromasa@gmail.com

कुमार निर्मलेंदु : 5/114, विराम खंड, गोमती नगर, लखनऊ-226010 (उ.प्र.), 9415248712, kumarnirmalendu@gmail.com

राजनाथ भट्ट : भाषाविज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005 (उ.प्र.), 9415222335, mbhat2k@gmail.com

महाराजकृष्ण मुस्सा भरत : शारदा कॉलोनी, पटोली, ब्रह्मणा, जम्मू-181205 (जम्मू-कश्मीर), 9419113462, bharatmk_64@yahoo.in

वृषभ प्रसाद जैन : आचार्य, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र), 9453323113, vrashabh.jain@gmail.com

□□□